हमारी योजना

'गुरमुखी लिपि मे हिन्दी-काव्य' हिन्दी अनुसन्धान-परिषद्-ग्रन्थमाला का उनत्तीसवाँ ग्रन्थ है। 'हिन्दी अनुसन्धान परिषद्' हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय की सस्था है जिसकी स्थापना अक्तूबर, सन् १९५२ मे हुई थी। परिषद् के मुख्यत दो उद्देश्य हैं : हिन्दी-वाङ्मय-विषयक गवेषणात्मक अनुशीलन तथा उसके फलस्वरूप प्राप्त साहित्य का प्रकाशन।

अब तक परिषद् की ओर से अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो का प्रकाशन हो चुका है। प्रकाशित ग्रन्थ तीन प्रकार के हैं—एक तो वे जिनमे प्राचीन काव्यशास्त्रीय ग्रन्थो का हिन्दी-रूपान्तर विस्तृत आलोचनात्मक भूमिकाओ के साथ प्रस्तुत किया गया है, दूसरे वे जिन पर दिल्ली विश्वविद्यालय की ओर से पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की गई है; और तीसरे ऐसे हैं जिनका अनुसधान के साथ—उसके सिद्धान्त और व्यवहार दोनो पक्षो के साथ—प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। प्रथम वर्ग के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रन्थ हैं—(१) हिन्दी काव्यालकारसूत्र, (२) हिन्दी वक्रोक्तिजीवित, (३) अरस्तू का काव्यशास्त्र, (४) हिन्दी काव्यादर्श, (५) अग्नि-पुराण का काव्यशास्त्रीय भाग (हिन्दी रूपान्तर), (६) पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परम्परा, (७) होरेस कृत 'काव्यकला', (८) हिन्दी अभिनवभारती, (९) हिन्दी नाट्य-दर्पण, (१०) सौन्दर्य तत्त्व और काव्य-सिद्धान्त।

द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रन्थ हैं—(१) मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ, (२) हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, (३) सूफी मत और हिन्दी साहित्य, (४) अपभ्रश साहित्य, (५) राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य, (६) सूर की काव्य-कला, (७) हिन्दी मे भ्रमरगीत काव्य और उसकी परम्परा, (८) मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय सस्कृति के आख्याता, (९) हिन्दी रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य, (१०) मतिराम : कवि और आचार्य, (११) आधुनिक हिन्दी-कवियो के काव्य-सिद्धान्त, (१२) ब्रजभाषा के कृष्णकाव्य मे माधुर्य-भक्ति, (१३) प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी-उपन्यास, (१४) हिन्दी मे नीति-काव्य का विकास, (१५) आधुनिक हिन्दी-मराठी मे काव्यशास्त्रीय अध्ययन, (१६) आधुनिक हिन्दी-काव्य मे रूप-विधाएँ।

तीसरे वर्ग के अन्तर्गत तीन ग्रन्थो का प्रकाशन हो चुका है

(१) अनुसन्धान का स्वरूप, (२) हिन्दी के स्वीकृत शोध प्रबन्ध, (३) अनुसन्धान की प्रक्रिया।

प्रस्तुत ग्रन्थ द्वितीय वर्ग का सत्रहवाँ प्रकाशन है, जिसे हम विनत गर्व के साथ हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञो की सेवा मे अर्पित कर रहे है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन एक विशिष्ट घटना है। इससे सच्चे अर्थ मे ज्ञानक्षेत्र का विस्तार हुआ है। हमारा विश्वास है कि इस ग्रन्थ और इस प्रकार के अन्य ग्रन्थो के प्रकाशन से हिन्दी साहित्य का मानचित्र ही बदल जाएगा।

परिषद् की प्रकाशन-योजना को कार्यान्वित करने मे हमे हिन्दी की अनेक प्रसिद्ध प्रकाशन-सस्थाओ का सक्रिय सहयोग प्राप्त होता रहा है। उन सभी के प्रति हम परिषद की ओर से कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं।

हिन्दी अनुसंधान परिषद्,
दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली-६

नगेन्द्र
अध्यक्ष

वक्तव्य

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध मेरे चार वर्षों के परिश्रम का परिणाम है। मुझे यह लिखते हुए अत्यन्त हर्ष का अनुभव होता है कि मुझे अपने शोध-कार्य मे पजाब के अनेक विद्वानो का सहयोग और साहाय्य प्राप्त रहा है। प्रो० प्रीतमसिंह जी, पटियाला, महन्त मुक्तरामजी, भूदन और महन्त नारायणसिंहजी, अमृतसर के स्नेहपूर्ण साहाय्य के बिना कतिपय अज्ञात ग्रन्थो का अध्ययन हो सकना सम्भव न था।

मेरे निर्देशक गुरुवर डा० नगेन्द्र के पथ-प्रदर्शन ने अनेक जटिल समस्यायें सुलझाने मे सहायता दी है। उनकी प्रेरणा और प्रोत्साहन सदा मेरा सबल रहे हैं।

मैं इन सब विद्वानो का चिरकृतज्ञ हूँ।

खालसा कालेज,
नई दिल्ली-५
१-६-६३

हरिभजन सिंह

डॉ० नगेन्द्र को

रूपरेखा

प्रथम खण्ड

प्राक्कथन

पजाब मे हिन्दी (ब्रज) साहित्य का आरम्भ पजाबी साहित्य के साथ ही हुआ। पजाब का प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य बाबा फरीद शकरगज का है। पजाबी साहित्य का इतिहास लिखने वाले अधिकाश विद्वान् फरीद को पूर्व-नानक-कालीन कवि मानते हैं और आदि ग्रन्थ मे सकलित फरीद-साहित्य की प्रामाणिकता को सदेह अथवा विवाद का विषय नही मानते। इसी फरीद-साहित्य मे एक पद इस प्रकार आरम्भ होता है .

तपि तपि लुहि लुहि हाथ मरोरउ
बावलि होइ सो सहु लोरउ
तै सहि मन महि कीआ रोसु
मुझ अवगन सह नाही दोसु
तै साहिब को मैं सार न जानी
जोबन खोइ पाछै पछुतानी ॥१॥२६॥३।

काली कोइल तू कित गुन काली
अपने प्रीतम के हउ बिरहे जाली
पिरहि बिहून कतहि सुख पाए
जा होइ कृपालु त प्रभू मिलाए ॥२॥[1]

उपर्युक्त पद में एक शब्द 'सह' (फारसी शौ पति) के अतिरिक्त शेष सभी हिन्दी काव्य के चिर-परिचित शब्द हैं। क्रिया पद 'कीआ' और सयोजक 'की', 'के', एव 'मरोरउ', 'लोरउ', 'पाछै' आदि शब्द इस पद के खडी बोली मिश्रित ब्रज रूप के साक्षी हैं। इस पद का हिन्दी रूप इसी कवि की पजाबी रचना से तुलना करने पर और भी उभरता है। इन्ही की वाणी से कुछ उद्धरण इस प्रकार है . .

फरीदा जै तै मारनि मुकीआ तिना न मारे घुमि।
आपनडै घरि जाईऐ पैर तिना दे चुमि।[2]
फरीदा जगल जगल किआ भवहि वणि कडा मोड़ेहि।
वसी रबु हिआलीऐ जगलु किआ ढूढेहि।[3]

---

१. आदिग्रन्थ पृ० ७९४

२. आदिग्रन्थ पृ० १३७८

३. आदिग्रन्थ पृ० १३७८

कंघि कुहाड़ा सिर घड़ा वणि के सर लोहारु।
फरीदा हउ लोड़ी सह अपना तू लोड़हि अंगिआर।[1]
फरीदा साहिब दी करि चाकरी दिल दी लाहि भरांदि।
दरवेसा नो लोड़ीऐ रुखां दी जीरादि।[2]

उपर्युक्त उद्धरण मे वसी (उच्चारण वस्सी), घुंमि (उच्चारण घुम्मि), चुंमि (उच्चारण चुम्मि), रुखा (उच्चारण रुक्खा) आदि अपभ्रंश के समीपवर्ती शब्द रूप, हिआलीऐ, जीरादि आदि अपरिचित शब्द तो इसे हिन्दी से दूर करते ही हैं, दे, मोड़ेहि, लोडी, दी, लोडीऐ आदि संयोजक और क्रियापदो की तुलना पूर्वोद्धृत पद के का, के, लोरउ, मरोरउ, से करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि फरीद दो भाषा-शैलियों मे रचना कर रहे है, एक भाषा शैली पंजाबी की ओर उन्मुख है तो दूसरी हिन्दी की ओर। इन दोनों शैलियो के मिलन से एक तीसरी मिश्रित-शैली का उदय भी हुआ।

नानक काल

बाबा फरीद की उपरि-उद्धृत वाणी सचमुच ही तेरहवी शताब्दी की वाणी है, इस विषय मे कोई विश्वसनीय प्रमाण उपलब्ध नही। डा० लाजवन्ती रामाकृष्णा और डा० रामकुमार वर्मा इन पंक्तियो का लेखक पन्द्रहवी शताब्दी के फरीद सानी को मानते है। वस्तुतः पंजाब मे साहित्यिक परम्परा का सुनिश्चित आरम्भ गुरु नानक से होता है। नानक काल मे उपर्युक्त दोनो भाषा-शैलियों मे रचना करने की प्रवृत्ति को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। फरीद (यदि उन्हे तेरहवी शताब्दी का मान लिया जाए) मुख्यत. पंजाबी भाषा के कवि थे। उनकी वाणी मे हिन्दी रचना की मात्रा अत्यन्त नगण्य है। किन्तु गुरुओ की वाणी मे हिन्दी रचना की मात्रा उत्तरोत्तर बढती जाती है, यहाँ तक कि पाँचवें गुरु तक पहुँचते-पहुँचते संतुलन हिन्दी के पक्ष मे होना आरम्भ हो जाता है। गुरुवाणी मे से हिन्दी के कुछ पद उदाहरण रूप मे उद्धृत हैं।

गुरु नानक

(क) सावणि सरस मना घणि वरसहि रुति आए
मै मनि तनि सहु भावै पिरु परदेसि सिधाए
पिरु घरि नही आवै मरीऐ हावै दामनि चमक डराए
सेज इकेली खरी दुहेली मरणु भया दुखु माए
हरि विनु नींद भूख कहु कैसी कापड़ तनि न सुखावए
नानक सा सोहागणि कंती पिर कै अंक मिलावए।[3]

(ख) गगन मै थालु रवि चंदु दीपक बने
तारिका मंडल जनक मोती॥
धूपु मलआनलो पवणु चवरो करे
सगल बनराइ फूलत जोती॥१॥

१. आदि ग्रन्थ पृ० १३८०
२. आदि ग्रन्थ पृ० १३८१
३. आदि ग्रन्थ पृ० ११०८

कैसी आरती होइ भवखंडना तेरी आरती
अनहता सबद वाजंत भेरी ॥१॥२६।३॥
सहस तव नैन नन नैन है तोहि कउ
सहस मूरति नना एक तोही
सहस पद विमल नन एक पद गंध बिनु
सहस तव गंध इव चलत मोही ॥[१]

गुरु अंगद

जो सिरु साई ना निवै सो सिर दीजै डारि
नानक जिसु पिंजुरु महि बिरहा नाही सो हिंजर लै जारि।[२]

गुरु अमरदास

(क) भाई रे भगति हीणु काहे जगि आइआ
पूरे गुर की सेव न कीनी बिरथा जनमु गवाइआ।[३]

(ख) हम कीआ हम करहगे हम मूरख गावार।[४]

गुरु रामदास

(क) मेरो सुन्दर कहहु मिलै कितु गली
हरि के संत बतावहु मारगु हम पीछै लागि चली।
पिअ के वचन सुखाने हीअरै इह चाल बनी है भली।
लटुरी मधुरी ठाकुरु भाई ओह सुन्दरि हरि ढुलि मिली।
एको प्रिअ सखीआ सभ प्रिअ की जो भावै पिर सा भली
नानक गरीब किआ करै विचारा हरि भावै तितु राहि चली।[५]

(ख) हरि दरसन कउ मेरा मन बहु तपतै जिउ तृखावंत बिनु नीर।
मेरे मन प्रेमु लगो हरि तीर।
हमरी वेदन हरि प्रभु जानै मेरे मन अंतर की पीर।
मेरे हरि प्रीतम की कोई बात सुनावै सा भाई सा मेरा बीर।
मिलु मिलु सखी गुण कहु मेरे प्रभ के ले सतिगुर की मति धीर।
जन नानक की हरि आस पुजावहु हरि दरसन सात सरीर।[६]

गुरु अर्जुनदेव

(क) मू लालन सिउ प्रीति बनी ॥२६।३॥
तोरी न तूटै छोरी न छूटै ऐसी माधो खिच तनी ॥१॥

---

१. आदि ग्रन्थ पृ० ६३३
२. आदि ग्रन्थ पृ० ८९
३. आदि ग्रन्थ पृ० ३२
४. आदि ग्रन्थ पृ० ३९
५. आदि ग्रन्थ पृ० ५२७
६. आदि ग्रन्थ पृ० ८६१

दिनसु रैनि मन माहि बसतु है ।।
तू करि किरपा प्रभ अपनी ।।२।।
बलि बलि जाउ सिम्राम सुन्दर कउ
अकथ कथा जाकी बात सुनी ।।३।।
जन नानक दासनि दासु कहीअतु है ।।
मोहि करहु कृपा ठाकुर अपनी ।।४।।[१]

(ख) कवण गुन प्रानपति मिलउ मेरी माई ।।१।।२६।।३।।
रूप हीन बुधि बल हीनी मोहि परदेसनि दूर ते आई ।।१।।
नाहिन दरबु न जोबन माती ।।
मोहि अनाथ की करहु समाई ।।२।।
खोजत खोजत भई बैरागनि ।।
प्रभ दरसन कउ हउ फिरत तिसाही ।।३।।
दीनदयाल कृपाल प्रभ नानक
साध संगि मेरी जलनि बुझाई ।।४।।[२]

पजाब मे हिन्दी-काव्य को प्रचारित एव हिन्दी कवियो को प्रोत्साहित करने का श्रेय, मुख्यत , सिक्ख गुरुओ को ही है। उन्होने स्वय ब्रज भाषा को अपनी वाणी का माध्यम बनाया, पजाब-बाह्य पूर्वकालीन भक्त कवियो की हिन्दी रचनाओ का प्रचार पजाब मे किया, पजाब-बाह्य तत्कालीन हिन्दी कवियो को अपने दरबार मे आश्रय दिया तथा अपने प्रतिभा-सम्पन्न पजाबी शिष्य 'भाई गुरु दास' को हिन्दी मे काव्य रचना करने के लिये प्रोत्साहन दिया।

सोलहवी शताब्दी के अन्त तक सिक्ख धर्म का सगठनात्मक रूप पूर्णत स्पष्ट हो गया था। गुरु अपने प्रचार-क्षेत्र को पजाब तक ही सीमित न रखना चाहते थे। पजाबेतर क्षेत्र से सम्बन्ध स्थापित करने का भाव गुरु-परिवार मे सदैव रहा है। इसी अभिप्राय से उन्होने कबीर, जयदेव, त्रिलोचन, नामदेव, परमानन्द, पीपा, रविदास, रामानन्द, आदि गैर-पजाबी कवियो की वाणी को आदि ग्रन्थ मे स्थान देकर उसे गुरु वाणी के समान ही वन्द्य एव आदरणीय ठहराया। पचम गुरु ने अपना एक पद सूरदास को समर्पित करके उन्हें अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की। भाट कवियो को गुरु दरबार मे आश्रय मिला। उनकी वाणी को आदि ग्रन्थ मे सम्मिलित करके गुरु दरबार ने उन्हें उच्चतम पुरस्कार भेंट किया। गुरु न केवल पजाब-बाह्य कवियो की रचना को पजाब मे प्रचारित करना चाहते थे बल्कि हिन्दी क्षेत्र को भी पजाब मे होने वाले कार्य के स्वरूप और गतिविधि से परिचित कराना चाहते थे। इस अभिप्राय के लिये उन्होने अपने प्रचारक हिन्दी क्षेत्र मे भेजे। भाई गुरु दास ऐसे ही प्रचारक थे जो बहुत दिनो तक बनारस और आगरा मे रहे।

---

१. आदि ग्रन्थ पृ० ८२७
२. आदि ग्रन्थ पृ० २०४

संक्षेप में सत्रहवी शताब्दी के आरम्भ तक पंजाब मे हिन्दी काव्य-रचना और काव्य श्रवण की परम्परा दृढ़ हो चुकी थी।

इतना ही नही इस परम्परा को चिरस्थायी रूप देने का सत्प्रयास भी इन्ही दिनों हुआ। सत्रहवी शताब्दी के आरम्भ में ही आदि ग्रन्थ का संकलन हुआ। आदि-ग्रन्थ पंजाब का प्राचीनतम प्रामाणिक ग्रन्थ है। इससे पूर्व केवल दो हस्तलिखित ग्रन्थों (बाबा मोहन की पोथियाँ) के उपलब्ध होने की सूचना मिली है। ये दोनों पोथियाँ आदि ग्रन्थ का ही एक भाग हैं किन्तु इनकी प्रामाणिकता इतनी असंदिग्ध नहीं जितनी आदि ग्रन्थ की। पंजाब में हिन्दी काव्य के अनुसन्धाता को अपना कार्य आदि ग्रन्थ से ही आरम्भ करना होगा।

आदि ग्रन्थ के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि पंजाबी गुरु पंजाबी काव्य परम्पराओं का परित्याग किये बिना हिन्दी काव्य परम्पराओ को अपनाने में कितने उदार थे। आदि-ग्रन्थ में अनेक काव्य शैलियो के दर्शन होते है जिनमे से हिन्दी काव्य अध्येताओं के लिये निम्नलिखित विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं :

१. गेय पद शैली;
२. दोहा-चौपाई शैली; और
३. कवित्त-सवैया शैली।

सत्रहवी और अठारहवी शती में पंजाब में रचित हिन्दी काव्य का प्रधान प्रेरणा-स्रोत आदि ग्रन्थ है। हमारे शोध-प्रबन्ध की कालावधि में रचित वाणी-साहित्य मुख्यतः गेय पद शैली का, प्रबन्ध-काव्य दोहा-चौपाई शैली का और दरबारी काव्य कवित्त-सवैया शैली का अनुसरण करते हैं। एक और उल्लेखनीय बात यह भी है कि इस काल का लगभग समस्त काव्य, आदि ग्रन्थ के समान, गुरुमुखी में ही लिपिबद्ध हुआ है। संक्षेप मे, सत्रहवी-अठारहवी शताब्दी के हिन्दी काव्य के लिए मार्ग पहले से ही प्रशस्त हो चुका था।

इससे यह समझना भ्रमोत्पादक होगा कि सत्रहवीं-अठारहवी शताब्दी के लेखक आदि ग्रन्थीय काव्य-परम्पराओं का अनुकरण करने से ही संतुष्ट है। वस्तुतः आदि ग्रन्थ ने उनके सामने एक विकासोन्मुख धर्म एव विकासोन्मुख काव्य का स्वरूप उपस्थित किया। इस विकास यात्रा मे त्याग, ग्रहण और समन्वय सब के लिये स्थान है। सत्रहवी-अठारहवी शती आदि ग्रन्थ से प्रेरणा पा कर आगे बढती है। इस युग ने अपना नया ग्रन्थ—दशम ग्रन्थ, प्रस्तुत किया। यह ग्रन्थ आदि ग्रन्थीय धर्म भावना एव काव्य शैली को आधार के रूप मे स्वीकार करता हुआ उसमे नव-विस्तृति भी करता है। न अठारहवी शताब्दी सोलहवी शताब्दी की केवल प्रतिलिपि है और न अठारहवी शताब्दी का साहित्य सोलहवी शताब्दी के साहित्य का अनुकरण मात्र। सत्रहवी एव अठारहवी शताब्दी मे एक नव-चेतना उद्‌बुद्ध हो रही थी। अतः इस युग के साहित्य मे युग-चेतना का प्रतिबिम्बित होना आवश्यक था। संक्षेप में, हमारी अवधि मे पड़ने वाला साहित्य अपने अतीत से सम्बद्ध भी है और समसामयिक यथार्थ से उद्‌बुद्ध भी।

ऐतिहासिक परिस्थितियाँ

हमारे कवियो ने अपनी काव्य रचना कैसे अशात और असुरक्षित वातावरण में की, इसका अनुमान तत्कालीन ऐतिहासिक परिस्थितियो से किया जा सकता है। सत्रहवी शताब्दी का आरम्भ जहाँगीर के राज्याभिषेक (सन् १६०५ ई०) से होता है। जहाँगीरी पजाब की प्रथम महत्वपूर्ण घटना है गुरु अर्जुनदेव का बलिदान (सन् १६०६ ई०)। इस घटना के पश्चात् पजाब दीर्घकाल के लिए युद्ध, विप्लव, आक्रमण, लूट-मार एव उत्पीडन का शिकार रहा। जहाँगीर के राज्याभिषेक से रणजीतसिंह के राज्याभिषेक (सन् १८०१) तक शान्ति और सुरक्षा का एक दशाब्द भी पजाबियो के भाग्य मे न था। जहाँगीर के समय म सिक्खो और मुगलो के बीच कोई युद्ध तो न हुआ, किन्तु सिक्खो द्वारा सुरक्षार्थ गढ-रचना, सैन्य-सगठन एव सैन्य-प्रशिक्षण आदि का श्रीगरोश अवश्य हुआ।

युद्ध एव आक्रमण—उत्तर-जहाँगीर काल मे युद्धाग्नि एक बार ऐसी भडकी कि फिर पूर्णरूप से कभी शान्त नही हुई। शाहजहाँ के राज्यकाल मे गुरु हरिगोबिन्द, औरगजेब के राज्यकाल मे गुरु गोविन्दसिह, बहादुरशाह और फरुखसियर के राज्यकाल मे बदा बैरागी की अध्यक्षता मे पजाब निवासी मुगल-सत्ता से लोहा लेते रहे। बदा बैरागी की मृत्यु के उपरान्त राज्य सत्ता द्वारा उत्पीडन और दमन का चक्र अभूतपूर्व क्रूरता से चला और सिक्खो की ओर से इस उत्पीडन का मुकाबला भी अतुलनीय साहस और पराक्रम से हुआ। बदा बैरागी के निधन काल से रणजीतसिंह के राज्याभिषेक तक पजाबी योद्धाओ के अस्त्र शस्त्र निरन्तर, निरवकाश, युद्धकर्म मे व्यस्त रहे। इस कालावधि मे पजाब की धरती कितनी रक्तार्द्र रही, इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि मुगल एव सिक्खो के नियमित युद्ध और अनियमित लूट-मार एव रक्तपात के अतिरिक्त मुगल शासन और सिक्ख-वीर, दोनो को ही नादिरशाह एव अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणो का नौ बार सामना करना पडा था, इसी समय मे दो विकराल 'घल्लूघारे' (सर्वनाश) हुए जिनमे भाग लेने वाले सहस्रश शूरवीरो की पूर्णाहुति हुई।[1] सक्षेप मे हम कह सकते है कि हमारे शोध-प्रबन्ध की कालावधि आन्तरिक युद्धो और बाह्य आक्रमणो की अविच्छिन्न शृ खला के रूप मे ही दृष्टिगत होती है। ऐसे समय मे जबकि शासक और शासित दोनो वर्गों की चिरसगिनी कृपाण बन रही थी, कवित्व के मर्म को समझने और सौष्ठव को सराहने का समय किसके पास था। किन्तु ऐसे समय मे भी भगवती सरस्वती की आराधना होती रही, यह आश्चर्य का विषय भी है और श्लाघा का भी।

धर्मान्ध उत्पीडन—इस काल के युद्धो का पूर्वचर, सहचर और अनुचर था धर्मान्ध उत्पीडन, जिसके कारण युद्ध समाप्त होकर भी समाप्त न होता था। भय और आतक जन-जीवन का अभिन्न अग बन चुका था। पचम गुरु की निर्मम हत्या (सन् १६०६)[2] हिंदू जनसाधारण को आतकित करने का प्रथम प्रयास था। तदु-

---

१ देखिये डा० गण्डा सिंह लिखित 'अहमद शाह अब्दाली'।
२ कनिंघम, पृ० ४८।

सिक्ख के सिर की कीमत नियत थी। इस प्रलोभन के कारण सैंकडों की संख्या में निरपराध सिक्खो की हत्या हुई और शेष को अपना घर-बार छोडकर जंगलों एव पर्वतो की शरण लेनी पडी।

लाहौर के सूबेदार जकरियाखाँ के शासन-काल मे उपर्युक्त फरमान पर बहुत सख्ती से अमल हुआ। उसने प्रत्येक दिशा मे सैनिक टुकडियाँ भेजी। ये ग्राम और जंगलो से सिक्ख स्त्री-पुरुषो को ढूँढ कर लाते। प्रत्येक दिन लाहौर मे नखास नाम के स्थान पर उन्हे कत्ल किया जाता था।[1] परिणामत सिक्ख बस्ती से और भी दूर होते गए। उनका कोई घर-घाट न था, लूट-मार के अतिरिक्त आजीविका का कोई साधन न था। एक बार जब सिक्खो द्वारा लुट जाने पर नादिरशाह ने लाहौर के शासक जकरिया खाँ से पूछा, ये शरारती कौन है तो उसने उत्तर दिया था, 'ये फकीर हैं जो अपने गुरु-सरोवर की यात्रा के लिए वर्ष मे दो बार आते है और स्नानान्तर पुन विलुप्त हो जाते है।' नादिर ने पूछा, 'ये रहते कहाँ हैं' ? 'अपने घोडो की काठियो पर'—जकरिया खाँ का उत्तर था।[2]

जब तक पजाब पर मुगलो का अधिकार रहा, उत्पीडन का यह चक्र किसी न किसी रूप मे चलता ही रहा। ऐसे वातावरण मे काव्य-रचना की सभावना कितनी क्षीण होगी, इसका अनुमान किया जा सकता है।

सघ चेतना : राष्ट्र-चेतना का प्रथम आभास—हमारे शोध-काल की प्रमुख ऐतिहासिक विशिष्टता है, सघ-चेतना का उदय। राष्ट्र भावना का बीज गुरु नानक देव के समय से ही रोपित हो चुका था। गुरु नानक देव की वाणी मे ऐसे पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं, जहाँ वे निज भाषा, निज शास्त्र, निज-वेशभूषा आदि की अवहेलना करने वालो की भर्त्सना करते हैं। तत्कालीन राजनीतिक-व्यवस्था की जितनी कडी आलोचना गुरु नानक द्वारा हुई, तत्कालीन परिस्थितियों में से उसे असाधारण साहस का ही परिचायक मानना चाहिए।[3] गुरु नानक की वाणी देशीय मूल्यों की सुरक्षा पर बल देती है और परदेशीय राजनीतिक दमन का विरोध करती है। यही विरोध-भावना आगे चलकर विद्रोह का प्रेरक बनी।

गुरु नानक के पश्चात् ज्यो-ज्यो गुरु-सस्था सगठन का केन्द्र-बिन्दु बनती गई, राष्ट्र-भावना सहज, सरल गति से एक सुनिश्चित रूप धारण करती गई। गुरु अर्जुन देव के समय तक सिक्खो की सख्या बहुत बढ चुकी थी। दीवाली और वैसाखी पर सहस्रो की सख्या में वे एकत्रित होते थे। अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिए एकत्रित यह जनसमूह अपने आधिभौतिक जीवन मे भी एक स्वाभाविक ऐक्य भावना का अनुभव करने लगा था। पचम गुरु को प्राण-दण्ड देने वाले शासक के मन मे स्पष्ट रूप से यह आशका थी कि गुरु आधिभौतिक जीवन का नेतृत्व भी कर रहा है।[4]

---

१. तेजा सिंह, गण्डा सिंह, पृ० १७५।
२. मेकॉलिफ, पृ० ८६, फॉरस्टर, पृ० २७२।
३. देखिये, इस निबन्ध के प्रथम खण्ड, प्रथम अध्याय में गुरु वाणी का वैशिष्ट्य नामक शीर्षक।
४. तौजिके जहाँगीरी, पृ० ३५।

गुरु अर्जुन देव के निधनोपरान्त प्रतिरक्षा भावना प्रथम बार सैन्य-रूप धारण करती प्रतीत होती है। गुरु हरिगोविन्द और तदुपरान्त गुरु गोविन्दसिंह के सभी युद्ध प्रतिरक्षा की भावना से ही प्रेरित थे। गुरु गोविन्द सिंह की अपनी वाणी मे ऐसे पद मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि राजनीतिक सत्ता हस्तगत करना उनका उद्दिष्ट न था। वे बाबर-परिवार को "दुनी शाह" मानने को तैयार हैं।[1] गुरु जी के समकालीन कवियो मे निश्चय ही, कहीं-कहीं ऐसी पंक्तियाँ मिलती हैं जिनसे पता चलता कि हिन्दू-राज्य की आकाक्षा उनके अन्तर्मन मे करवट ले रही थी।[2] किन्तु कुल मिलाकर गुरु जी के युद्ध इतने विद्रोह-भावना से सचालित प्रतीत नही होते जितने प्रतिरक्षा-भावना से। औरगजेब की मृत्यु पर उत्तराधिकार-युद्ध मे बहादुरशाह की सहायता इसी विश्वास को दृढता प्रदान करती है।

किन्तु, शासक वर्ग द्वारा ज्यो-ज्यो उत्पीडन और दमन की मात्रा बढती गई, प्रतिरक्षा-भावना प्रतिकार-भावना का रूप धारण करती गई। बन्दा और उसके सहयोगी प्रतिकार-भावना से ही परिचालित थे।[3] दशम गुरु के दो छोटे साहिबजादो की बर्बर-हत्या का बदला, मुगल-राज्य का नाश और स्वराज्य की स्थापना—बन्दा के सामने ये उद्देश्य सदा स्पष्ट रूप से विद्यमान थे। परिणामत बन्दा ने गुरु शत्रुओं का नाश करने के पश्चात् पहली बार पजाब के बहुत बडे भाग मे स्वराज्य-स्थापित किया। सरहिन्द के अत्याचारी शासक का अन्त करने के पश्चात् उसने सरहिन्द, समाना, थानेसर आदि स्थानो पर अपने शासक नियुक्त किए।[4] स्वय राजनीतिक सत्ता ग्रहण की और गुरु के नाम से मुद्रा चलाई।[5] कुछ समय के लिए मालवा, दोआबा, माझा और रियाडकी का भूभाग बन्दा के शासन मे था।[6] पजाब मे जमीदारी-व्यवस्था का अन्त उसी के शासनकाल मे हुआ।[7] उपर्युक्त भूभाग मे जब कोई क्षेत्र उसके हाथ से निकल गया, वह उसे पुन प्राप्त करने का यत्न करता रहा।

सक्षेप मे, पजाब को बन्दा की सर्वोत्कृष्ट देन स्वराज्य-भावना है। एक बार स्वराज्य स्थापित करने के पश्चात् बन्दा के उत्तराधिकारी विद्रोहियो के मन मे स्वराज्य-भावना कभी धूमिल नही होने पाई। यह वही भावना थी जिसका चरम परिपाक फूल-वशीय रियासतो एव महाराजा रणजीतसिंह के राज्य की स्थापना मे हुआ।

धर्म-भावना—यहाँ इतना विशेष रूप से द्रष्टव्य है कि इस सारे युग मे राष्ट्र-भावना धर्म-भावना के अभिन्न अग के रूप मे ही दृष्टिगत होती है। जब भी कोई

---

१ दशम् ग्रंथ, पृ० ७१।
२ देखिए इसी निबन्ध में तृतीय खण्ड में गुरु दरबारी काव्य।
३ गण्डा सिंह, पृ० ३१।
४. तेजा सिंह, गण्डा सिंह, पृ० ८८।
५ गण्डा सिंह, पृ० ८३।
६. तेजा सिंह, गण्डा सिंह, पृ० ८५, ९१।
७ तेजा सिंह, गण्डा सिंह, पृ० ८७।

विद्रोही सिक्ख शासको द्वारा पकडा जाता था उसे मृत्यु-दण्ड का भय भी दिया जाता था और इस्लाम कबूल कर लेने पर मुक्ति का प्रलोभन भी। स्पष्ट है इस्लाम-प्रसार के प्रेरक कारण विशुद्ध धार्मिक न थे। इस्लाम प्रचार का आग्रह राजनीतिक भी था। पजाब मे किसी भी मुसलमान व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूह द्वारा मुगल राज्य का विरोध नही हुआ। मुसलमान प्रजा शासक वर्ग के अत्याचार से सुरक्षित थी और शासक वर्ग मुसलमान प्रजा से किसी प्रकार के विद्रोह की आशका से मुक्त था। अत शासक वर्ग बढते हुए विद्रोहान्दोलन का अवरोध सैन्य-शस्त्रो से भी करता था और धर्म-प्रचार से भी। जिस मात्रा से विद्रोह-आन्दोलन सशक्त होता गया, दण्ड-विधान अधिकाधिक बर्बर होता गया और धर्म-परिवर्तन का आग्रह प्रबलतर होता गया। परिणामत दोनो ओर धार्मिक कट्टरता बढती गई। धर्म शासन-समर्थन एव शासन-विरोध का प्रतीक बनता गया।

सिक्खो मे जहाँ एक ओर विद्रोह-भावना के कारण धार्मिक कट्टरता बढी, वहाँ इसी भावना के कारण धार्मिक सहिष्णुता भी। जहाँ तक इस्लाम का सम्बन्ध है, वे प्राण दे कर भी इसके बढते हुए प्रभाव को रोकते थे। उन्होने न केवल स्वय इस्लाम कबूल करने से इन्कार किया, बल्कि जहाँ थोडे समय के लिये उनका राज्य स्थापित हुआ, नवमुसलमानो को पुन धर्म-परिवर्तन के लिए प्रोत्साहन भी दिया किन्तु, जहाँ तक हिन्दू-धर्म का सम्बन्ध है, वे अधिकाधिक सहिष्णु होते गये। उन्होने अनेक प्रकार के हिन्दू मतवादो के प्रति कभी कट्टर सिद्धान्तवादी दृष्टिकोण नही अपनाया। जब सिक्खो के सिर का मूल्य निर्धारित हुआ और उनके लिए बस्तियो मे रहना असम्भव हो गया तो अखालसा हिन्दुओ की सहायता और सद्भावना उनके अस्तित्व की अनिवार्य शर्त बन गई। ये हिन्दू आवश्यकता पडने पर उन्हें अपने घरो मे छिपा लेते थे, उनके भोजनादि का प्रबन्ध करते थे और मुसलमान सैनिको से उनकी रक्षा करते थे।[1] सिक्खो के धर्म-स्थानो की रक्षा भी अखालसा उदासी-सतो एव सहजधारी (केश-रहित) सिक्खो द्वारा हुई। सिक्खो के लिए यह समय सैद्धान्तिक तर्क-वितर्क का नही था। इस परिस्थिति मे खालसा धर्म हिन्दू धर्म से बहुत भिन्न नही था। बहुत से सहजधारी (केश-रहित) सिक्ख हिन्दुओ से भिन्न प्रतीत नही होते थे। इस सम्बन्ध मे सहजधारी सिक्ख दीवान कौडामल का उदाहरण लिया जा सकता है। कौडामल सिक्ख मतावलम्बी थे किन्तु केश-रहित होने के कारण मुस्लिम शासन के दीवान नियुक्त हो सके। उदासी और निर्मला सतो मे पुराण-भावना का उदय इसी समय का ही प्रभाव प्रतीत होता है।

ऐतिहासिक परिस्थितियाँ और काव्य निर्माण

काव्य सृजन की व्यापक रिक्तियाँ—उपरि वर्णित ऐतिहासिक परिस्थितियो का एक सर्व-स्पष्ट प्रभाव तो यह है कि पजाब की तत्कालीन काव्य निर्माण-प्रक्रिया मे व्यापक रिक्तियाँ दृष्टिगत होती है। सन् १७०८ (वीर बदा का आगमन) से

---

१ तेजासिह, गडासिह, पृ० ११०।

सन् १७६५ (लाहौर विजय) तक पजाबी जीवन सर्वथा अव्यवस्थित रहा। पंजाबी हिन्दू और सिक्ख आत्मरक्षा, प्रतिकार, विद्रोह और विरोध के युद्धो मे व्यस्त रहे; काव्य-सृजन और काव्य-श्रवण का किसी को अवकाश न था। अतः कोई आश्चर्य नही कि इस समय मे (१७०८ से १७६५ तक) कोई महत्त्वपूर्ण काव्य रचना पजाब के इस जन-समुदाय द्वारा नही हो सकी। इसके बाद भी साहित्य रचना की गति प्रायः मन्द ही रही।

ग्रन्थो का लोप—इस सम्बन्ध मे ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि ऐसे अव्यवस्थित वातावरण मे ग्रथों की सम्भाल भी ठीक तरह न सकती थी। आदि-ग्रन्थ की प्रथम प्रति, दशम ग्रन्थ का बहुत बडा भाग, दरबारी कवियो द्वारा रचित विद्यासागर नामक ग्रन्थ और महाभारत के कतिपय अनूदित पर्व शत्रु-सेना से लडते समय सदा के लिए काल-कवलित हो गए। इन ग्रन्थो के विनाश का वृत्तान्त तो इतिहास-वेत्ताओ को पता है, किन्तु विनाश की सम्पूर्ण कहानी बता सकने मे इतिहास असमर्थ है। निरतर असुरक्षित और अव्यवस्थित जीवन व्यतीत करने वाले पजाबी कितने ही छोटे-बडे ग्रन्थो की रक्षा न कर पाये होगे—ऐसी कल्पना सहज ही की जा सकती है। इससे पहले पूर्वनानक-काल मे प्राय सम्पूर्ण काव्य-भण्डार ऐसी ही असुरक्षा की भेंट हो चुका था। सत्रहवी और अठारहवी शताब्दियो मे कुछ ग्रन्थों का उद्धार हो सका, इसका श्रेय तत्कालीन जागरण को ही है।

हमारी निश्चित धारणा है कि इस युग का एक बहुत बडा काव्य-भण्डार तत्कालीन सामाजिक अव्यवस्था की भेंट हो गया। आज जो साहित्य उपलब्ध है वह परिमाण की दृष्टि से तत्कालीन सृजन-क्रिया का प्रतिनिधि नही माना जा सकता। अधिक से अधिक वह गुण की दृष्टि से ही प्रतिनिधित्व करने का दावा कर सकता है।

वर्ग साहित्य

१. शासक वर्ग : (फारसी मे इतिहास-ग्रन्थ)—पजाब की मुस्लिम जन-सख्या सहज रूप से ही दो भागो मे बँटी हुई दिखाई देती है। सिक्ख-साहित्य मे 'तुरक' और 'मुसलमान' दो शब्दो का साभिप्राय प्रयोग हुआ है। ये शब्द मुस्लिम जन-सख्या के जाति-गत विभाजन की ओर इगित करते हैं। तुर्क शब्द शासक-वर्ग का सूचक है। यह वर्ग धार्मिक दृष्टि से ही नही, सास्कृतिक दृष्टि से भी अभारतीय था। नवोदित हिन्दू राष्ट्र चेतना का विद्रोह इसी शासक-वर्ग के प्रति था। यहाँ यह विशेष रूप से स्मरणीय है कि सपूर्ण सिक्ख साहित्य मे जहाँ 'तुरक' के लिए कई बार निन्दा-सूचक भाषा का प्रयोग हुआ, वहाँ 'मुसलमान' का उल्लेख सदा आदर-सूचक भाषा मे हुआ है। इस दण्डप शासक-वर्ग से काव्य-सृजन की आशा व्यर्थ है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे उनके हृदय से कोमलता और आर्द्रता के सभी स्रोत सूख चुके थे। हम इन्हें दण्ड-विलास मे व्यस्त पाते हैं। इस वर्ग द्वारा किसी प्रकार की काव्य-रचना का परिचय हमारी शोधावधि मे नही मिलता। हाँ उसके आश्रित इतिहासकारों द्वारा समकालीन इतिहास का अभिलेखन अवश्य हुआ है।

प्राप्त न हो सका था। पंजाब का जन जीवन एक नवीन चेतना से उद्‌बुद्ध हो रहा था। ऐसे वातावरण में न तो शृंगारी मुक्तकों के गुलदस्ते सजाने का समय था और न अलंकार शास्त्र की सूक्ष्मताओं के अभ्यास का ही अवकाश किसी कवि के पास था। परिणामतः हिन्दी भाषी क्षेत्र की तत्कालीन मुख्य प्रवृत्तियों का सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के पंजाबी कवियों पर आभार सर्वथा नगण्य है।

अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में फूलवंशीय रियासतों की स्थापना हुई और पंजाब में भी हिन्दी कवियों को राज्याश्रय मिलना आरम्भ हुआ। इस समय हिन्दी भाषी क्षेत्र में रीतिकालीन प्रवृत्ति ह्रासोन्मुख थी। तो भी फूलवंशीय दरबार से प्रोत्साहन पाकर कवियों ने रीति और शृंगार की रचनायें की। वस्तुतः अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में तो इस प्रवृत्ति का एक क्षीण-सा आभास ही मिलता है। इसका चरम उत्कर्ष उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ। यह विचित्र तथ्य है कि रीति के उत्कर्ष-काल में पंजाब इस प्रवृत्ति से अस्पृष्ट रहा और इसके ह्रास-काल में यह प्रवृत्ति यहाँ अपनाई गई। संक्षिप्ततः, सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में पंजाबी काव्य-सृजन के प्रेरणा स्रोत साधारणतः इस क्षेत्र में ही विद्यमान थे।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पंजाब में तीन प्रकार के जन-समुदाय तीन प्रकार की रचनाओं में संलग्न थे—

१. पंजाबी हिन्दू—जिन्होंने शासक वर्ग का सशस्त्र विरोध किया। यह वर्ग एक नवीन धार्मिक और राष्ट्रीय चेतना से अनुप्राणित था। इन्होंने हिन्दी भाषा और गुरुमुखी लिपि को अपने पुनरुत्थान का माध्यम बनाया। यह वर्ग और इसकी वाणी नवोदित 'हिन्दू राष्ट्र चेतना' की प्रतीक है।

२. पंजाबी मुस्लिम—ये शासक वर्ग का सबल विरोध करने में असमर्थ थे। शासक और प्रजा का निरन्तर वैमनस्य इन्हें खलता था। इन्होंने मुक्तक पदों (सूफी काफियाँ) और प्रेमाख्यानों की रचना की। ये प्रेम का सन्देश देते थे। इन्होंने पंजाबी भाषा और फारसी लिपि को अपना माध्यम बनाया।

३. पंजाबी मुलाजिम हिन्दू—इनके हित शासक वर्ग से सम्बन्धित थे, किन्तु इनके सांस्कृतिक सम्बन्ध हिन्दू प्रजा से थे। इन्होंने प्रेमाख्यानों की रचना की। इनकी भाषा हिन्दी और लिपि कभी गुरुमुखी, कभी फारसी होती थी। यह वर्ग तत्कालीन जन-जागरण से विच्छिन्न था।

पंजाब का शासक वर्ग न केवल स्वयं काव्य रचना न कर सका, वह देशी कवियों को प्रोत्साहन भी न दे सका। परिणामतः इस काल की समस्त रचना हर प्रकार की कृत्रिमता से प्रायः अस्पृष्ट है। तृतीय वर्ग (जिसकी रचना परिमाण में बहुत कम है) की रचना के अतिरिक्त शेष समस्त काव्य जनसाधारण के लिये रचा गया है। सूफी हो अथवा किस्साकार, गुरु हों अथवा गुरु-भक्त, वे एक विशिष्ट जन-समूह को सम्बोधन करते रहे हैं और उनकी इच्छाओं, आकांक्षाओं को बड़े प्रामाणिक रूप में प्रतिबिम्बित करते हैं। इस काल की समग्र रचना समाज-परक है। अतः उसकी शैली में एक स्वाभाविक अवक्रता है जो तुरन्त प्रभाव डालती है।

इस सम्बन्ध मे यह भी उल्लेखनीय है कि इस काल की कविता कवि की व्यक्तिगत रुचियो को प्रतिबिम्बित नही करती और न वह किसी व्यक्ति के एकात अध्ययन अथवा मनन के अभिप्राय से लिखी गई है। इसे प्रवृत्ति-प्रधान काव्य कहना असगत न होगा।

प्रमुख लेखक

इस निबन्ध मे समाविष्ट लगभग सभी कवियो के काव्य का विवेचन एव मूल्याकन प्रथम बार हो रहा है। केवल गुरु गोबिन्दसिह के जीवन एव कृतियो पर एक उल्लेखनीय ग्रन्थ (डा० अष्टा का दशम ग्रन्थ का कवित्व) अभी-अभी प्रकाशित हुआ है। निम्नलिखित कवियो एव उनकी कृतियो पर इससे पूर्व कोई उल्लेखनीय कार्य नही हुआ

गुरु तेग बहादुर	(मुद्रित)
मिहरवान	(हस्तलिखित)
हरिया जी	(हस्तलिखित)
सतरेण[1]	(हस्तलिखित)
गुलाब सिह	(मुद्रित)
सहज राम	(हस्तलिखित)
गुर दास गुणी (मुद्रित सस्करण अलभ्य)	(हस्तलिखित)
राजा राम दुग्गल	(हस्तलिखित)
सुक्खासिह	(मुद्रित)
सेनापति	(मुद्रित)
अणी राय	(मुद्रित)
केशव दास	(मुद्रित)
सतराम छिब्बर	(हस्तलिखित)
हृदय राम भल्ला	(मुद्रित)
गुरु गोविन्दसिह के दरबारी कवि	(मुद्रित)

इन कवियो मे से अनेक कवियो की रचनायें आकार, विषय-वस्तु एव काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से पर्याप्त महत्त्व की अधिकारी हैं। हरिया जी का 'ग्रन्थ', सतरेण जी का 'नानक-विजय', एव सुक्खासिह जी का 'गुरु-विलास' बृहदाकार ग्रन्थ है, इनमे से दो का आकार रामचरित मानस के बराबर है और एक ग्रन्थ 'नानक-विजय' का आकार तो आदि ग्रन्थ के बराबर है। काव्य सौष्ठव की दृष्टि से सेनापति, अणी राय एव हृदयराम भल्ला विशेष रूप से उल्लेखनीय है। दशम ग्रन्थ मे सकलित रचनायें आकार, भाव एव शैली, किसी भी दृष्टि से उच्च कोटि के कवि से टक्कर लेने मे समर्थ हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि इस काल के कवि न केवल विशुद्ध शोध की

---

१ सन्तरेण की दो छोटी रचनाएँ अभी अभी प्रकाशित हुई है। उनका महत्वपूर्ण, विशालकाय ग्रन्थ 'नानक विजय' हस्तलिखित है।

दृष्टि से विचारणीय हैं, बल्कि अपनी विषय-वस्तु एव रचना-नैपुण्य की दृष्टि से भी विवेचनीय हैं।

इन पक्तियो के लेखक का यह दावा नही कि उसने अपनी सीमा के भीतर आने वाले समस्त साहित्य का अवगाहन किया है। इतना सतोष अवश्य है कि वह पहली बार सत्रहवी-अठारहवी शताब्दी के पजाबी हिन्दी साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियो और प्रमुख कवियो एव उनकी कृतियो का आलोचनात्मक परिचय दे पाया है। अभी बहुत से डेरो मे गुरुमुखी लिपि मे लिखित अनेक हिन्दी ग्रन्थ पडे हैं, उनका उद्धार होना शेष है। इस अवधि मे अनेक सस्कृत ग्रन्थो का अनुवाद 'भाषा' मे हुआ। कदाचित् अनूदित ग्रन्थो की सख्या मौलिक ग्रन्थो से भी अधिक है। इन ग्रन्थों की अनुवाद-कला मूल्याकन की अपेक्षा करती है।

अपने विषय की सीमा मे रहते हुए भी हमे कुछ ऐसे गद्य-ग्रन्थो का पता चला है जिनकी ओर भावी अनुसन्धाताओ का ध्यान आकृष्ट करना अनुपयुक्त न होगा। ये गद्य-कृतियाँ हिन्दी भाषा के प्रारम्भिक प्रयास कहलाने की अधिकारी हैं। इसमे से कुछ प्रयास निश्चय ही मु शी सदासुखलाल, सैयद इशा अल्ला खाँ, लल्लू लाल और सदल मिश्र से पूर्व के हैं। इनके अति सक्षिप्त उद्धरण हमने यथास्थान दे दिए हैं। ये रचनाएँ आकार और गद्य शैली दोनो ही दृष्टियो से उपेक्षणीय नही। इनमे से कुछ गुरुमुखी लिपि मे मुद्रित हो चुकी हैं। अधिकाश अभी हस्तलिखित रूप मे ही अनुसन्धाताओ की प्रतीक्षा कर रही हैं। फारसी लिपि मे लिखित हिन्दी साहित्य की उपलब्धि के सकेत भी हमे प्राप्त हुए हैं। सभा चन्द सोधी का किस्सा कामरूप इसी कोटि की एक उल्लेखनीय कृति है। पजाबी सूफियो की कृतियो मे भी हिन्दी काव्य के कुछ उदाहरण मिल सकते हैं। ये सब फारसी मे लिपिबद्ध हैं। हमारी काल-सीमा से बाहर फूलवशीय दरबार एव रणजीतसिह के दरबार मे आश्रित कवियो का समुचित मूल्याकन होना अभी शेष है। सरदार सतोखसिह और ज्ञानी ज्ञानसिह दो ऐतिहासिक प्रबन्धकार हैं। इन पर भी अभी काम होना शेष है।

लिपियाँ—पजाब मे लिपियो का प्रयोग साम्प्रदायिक आधार पर होता आया है। मुसलमान लेखक निरपवाद रूप से फारसी लिपि का और हिन्दू-सिक्ख लेखक अधिकाश गुरुमुखी लिपि का प्रयोग करते हैं। कभी-कभी कोई हिन्दू लेखक फारसी (किस्सा कामरूप) अथवा नागरी (किस्सा नल दमयन्ती) लिपि का भी प्रयोग कर लेता था किन्तु ऐसे अपवाद बहुत कम रहते थे।

हिन्दी-पजाबी—हिन्दू सिक्ख लेखक तीन भाषा शैलियो मे रचना कर रहे थे—हिन्दी (मुख्यत ब्रज), पजाबी और मिश्रित। मिश्रित शैली के प्रयोग के कारण हिन्दू सिक्ख लेखको की पजाबी रचनाओ मे ब्रज और हिन्दी रचनाओ मे पजाबी का पुट होने के कारण इन भाषा-शैलियो की सीमा एक दूसरे का स्पर्श करती रहती थी। हमारी अवधि से पहले की रचनाओ मे एक बहुत बडा अश ऐसी ही रचनाओ का है। स्मरण रहे कि गुरु वाणी मे प्रयुक्त शब्द भण्डार का अधिकाश भाग समान रूप से हिन्दी और पजाबी शब्द भाण्डार कहलाने का अधिकारी है। गुरुओ ने भाषा-भेद को दूर करने के लिये 'क्रिया-पदो' का प्रयोग कम से कम किया। समान शब्दावली

वाले और क्रियापद-हीन काव्य के विषय मे कई बार निर्णय करना कठिन हो जाता है कि वे हिन्दी काव्य के उदाहरण हैं कि पजाबी काव्य के। मिश्रित शब्दावली वाले काव्य मे तो स्थिति और भी कठिन हो जाती है।

किन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है मिश्रित शैली का उत्तरोत्तर लोप होता जाता है। सत्रहवी शताब्दी के आरम्भ मे हमे दो भाषा-शैलियो का ही प्रचलन दृष्टिगत होता है। हमारे काल के प्रथम कवि भाई गुरु दास ने स्पष्टत दो भिन्न शैलियो मे रचना की। उनकी वारें ठेठ पजाबी और उनके कवित्त सवैया विशुद्ध ब्रज मे लिखे गये हैं। दोनो मे से एक-एक उदाहरण प्रस्तुत है।

(क) आई पापणि पूतना दुही थणी विहु लाई वहेली
आइ बैठी परवार विच नेहु लाइ नवहाण नवेली
कुच्छड लए गोविन्द राइ कर चेटक चतुरग महेली
मोहण मम्मे पाइओन बाहिर आइ गरब गहेली
देह वधाइ उचाइअनु तिह चर्यार नार अठखेली
तिहु लोआ दा भार दे चम्मडिया गल होइ दुहेली
खाइ पछाड पहाड वाग जाइ पइ ओजाड धकेली
कीती माउ तुल्ल सहेली ॥१०।२२।[1]

(ख) सुपन चरित्र चित्र बानक बचित्र बने
पावन पवित्र मित्र आज मेरे आए है
परम दयाल लाल लोचन बिसाल मुख
वचन रसाल मधु मधुर पी आए हैं
शोभत सेजासन बिलासन दै अकमाल
प्रेम रस बिसम ह्वै सहिज समाए ह
चात्रिक शब्द सुन अखिया उघर गई
भई जल मीन गति बिरह जगाए हैं।२०५।[2]

भाई गुरु दास की इन दो प्रकार की रचनाओ मे शब्दावली, क्रिया-पद, कारक-चिह्न आदि का अन्तर इतना स्पष्ट है कि किसी भी पूर्वग्रह-मुक्त व्यक्ति के लिए यह निर्णय करना कठिन न होगा कि किसे पजाबी रचना माना जाए और किसे हिन्दी रचना।

भाई गुरु दास के पश्चात् हिन्दू-सिक्ख लेखको मे केवल एक ही भाषा-शैली मे काव्य रचना की प्रवृत्ति का उदय हुआ। ये सभी कवि हिन्दी (ब्रज) को अपनी काव्य-रचना का माध्यम बनाते हैं। बीच-बीच मे खडी बोली और पजाबी का भी हल्का किन्तु निर्भ्रान्त पुट है। इसी पुट के कारण हमे बहुत सतर्क रहना पडा है। कोई काव्य-रचना हिन्दी है या पजाबी, इसका निर्णय करने के लिए हमने उनकी शब्दावली,

---

१. वारॉ भाई गुरु दास जी, पृ० ११३।
२ कवित्त सवैये भाई गुरु दास जी, पृ० १२१।

और व्याकरण (विशेषत क्रिया पदो, कारक-चिह्नो और विशेषणो) पर ध्यान दिया है। कुछ सहायता हमे उनके छन्द-प्रबन्ध के अध्ययन से भी मिली है। हमने इनमे से किसी एक कसौटी को ही अन्तिम निर्णायक न मानकर इन तीनो के सामूहिक प्रभाव के आधार पर ही निर्णय किया है। सक्षेप मे हमारी कसौटी इस प्रकार रही है।

(क) शब्दावली म पजाबी देशज शब्दो का अभाव हो। शब्दावली हिन्दी-कोश मे स्वीकृत हो।

(ख) पजाबी व्याकरण सम्बन्धी विशेषताओ का अभाव हो और हिन्दी (विशेषत ब्रज) व्याकरण सम्बन्धी विशेषतायें विद्यमान हो।

(ग) मुख्यत हिन्दी छन्दो का प्रयोग हो।

यह निर्णय करत समय हमने सदा स्मरण रखा है कि इन रचनाओ के अधिकाश लेखक पजाबी हैं। उनकी शब्दावली म कही-कही पजाबी पुट का होना अथवा कभी किसी पजाबी क्रिया रूप अथवा कारक-चिह्न का अपवाद रूप से प्रयुक्त होना स्वाभाविक है। कभी किसी लेखक ने हिन्दी शब्दावली मे पजाबी छन्द का निर्वाह करने का यत्न भी है। किन्तु ऐसे उदाहरण अत्यन्त विरल हैं।

इस वैज्ञानिक परीक्षण के अतिरिक्त हमन दो व्यावहारिक कसौटियो का प्रयोग भी किया है। हमने इन कवियो की समकालीन पजाबी कवियो से तुलना भी की है और परवर्ती पजाबी साहित्य के इतिहास लेखको के मत से भी परिचय प्राप्त किया है। हमे सतोष है कि इस व्यावहारिक परीक्षण द्वारा वैज्ञानिक परीक्षण से प्राप्त निष्कर्षो का समर्थन ही हुआ है। समकालीन कवियो के अध्ययन से यह बात निरपवाद रूप से स्पष्ट होती रही है कि पजाब मे एक ही समय दो भाषा-शैलियो मे रचना होती रही है। इनमे एक झुकाव पजाबी देशज शब्दावली और पजाबी छन्दो की ओर रहा है। इस रचना म पजाबी व्याकरण की विशिष्टताओ के दर्शन होते है। दूसरी प्रकार की रचना का झुकाव तदभव शब्दावली और हिन्दी छन्दो के निर्वाह की ओर रहा है। इसमे पजाबी व्याकरण की विशिष्टताओ का अभाव है और इनके क्रिया रूप, कारक-चिह्न आदि हिन्दी (विशेषत ब्रज) व्याकरण के अनुसार हैं।

इस सम्बन्ध मे पजाबी विद्वानो का मत जानने के लिए हमने पजाबी भाषा के सभी प्रसिद्ध इतिहासो का अध्ययन किया है। हमारा अभिप्रत यह रहा है कि पजाबी विद्वान इन रचनाओ पर अपना स्वत्व कहाँ तक मानते है। इस सम्बन्ध मे हमारा अध्ययन निम्नलिखित ग्रथो पर आधृत है

१ डा० मोहन सिह

पजाबी साहित्य का इतिहास (अग्रेजी)
पजाबी साहित्य की भूमिका (अग्रेजी)
पजाबी अदब की मुख्तसर तारीख़ (पजाबी गुरुमुखी)

२. बावा बुधसिंह
    हंस चोग (पंजाबी-गुरुमुखी)
    कोयल कूक (पंजाबी-गुरुमुखी)
    बबीहा बोल (पजाबी-गुरुमुखी)
३. डा० गोपालसिंह दर्दी
    पंजाबी साहित्य का इतिहास (पजाबी-गुरुमुखी)
४. डा० सुरेन्द्रसिंह कोहली
    पंजाबी साहित्य का इतिहास (पजाबी-गुरुमुखी)
५. कृपालसिंह कसेल और परमिन्दरसिंह
    पजाबी साहित्य की उत्पत्ति और विकास (पंजाबी-गुरुमुखी)

इस अध्ययन ने भी हमारी धारणा का ही पोषण किया है। बावा बुधसिंह डा० दर्दी, डा० कोहली, कृपालसिंह ने इन काव्य-कृतियों मे से किसी एक का वर्णन भी अपने इतिहास-ग्रथों मे करना उपयुक्त नही समझा। गुरु गोविन्दसिंह की "चण्डी दी वार" और भाई गुरुदास की "वारो" को उन्होने अवश्य पंजाबी रचनायें माना है जो हमारे मतानुसार सर्वथा उचित ही है। हमने गुरु गोविन्द और गुरुदास की अन्य रचनाओ को हिन्दी मानते हुए भी उनकी इन रचनाओं को हिन्दी रचना नही माना। संक्षेप में इन विद्वानो से हमारा पूर्ण मतैक्य है, एक भी रचना के विषय मे इनसे हमारा विवाद नही है।

किन्तु डा० मोहनसिंह ने कुछ विचित्र बातें कही हैं जिन्हें स्वीकार करना हमें उचित प्रतीत नही होता। उन्होने गुरु गोविन्दसिंह, हृदय राम भल्ला और निर्मला गुलाबसिंह की समस्त रचनाओ को पंजाबी रचनायें माना है। क्यो ? उन्होंने निर्णय दिया है, तर्क देना वे भूल गये हैं। इस विषय मे उनकी उक्तियाँ इस प्रकार हैं :

१. यदि यह (गुरु गोविन्दसिंह का काव्य) पजाबी नही तो दूसरी किसी पंजाबी की हमे आवश्यकता नही। यदि यह उच्चतम साहित्य है तो इससे निम्नतर साहित्य से क्या लाभ :

> रूप को निवास है, कि बुद्धि को प्रकास है
> कि सिद्धता को वास है, कि बुद्धि हूँ को घरु है
> देवन को देव है, निरजन अभेव है
> अदेवन को देव हैं कि सुद्धता को सरु है
> जान को बचैया है, इमान को दिवैया
> जम काल को कटैया है, कि कामना को करु है
> तेज को प्रचण्ड है, अखण्डन को खण्ड हैं
> महीपन को काण्ड है, कि इस्त्री हैं न नर हैं
> (पंजाबी अदब की मुख्तसर तारीख पृ० १८०)

२. हृदय राम भल्ला को पंजाबी कवियो मे स्थान देते हुए वे कहते हैं :

हनुमान नाटक की भाषा कुछ मजमून के तकाजे के कारण, कुछ का...

कवित्त, सवैया की जरूरत और मजबूरी के कारण हिन्दी हो गई है, किन्तु संदेह नहीं कि पिछली पन्द्रह पीढ़ियों ने इस नाटक से बहुत ही लाभ उठाया है।

(पंजाबी अदब दी मुख्तसर तारीख, पृ० १००)

३ गुलाबसिंह की पुस्तिकाओं का परिगणन इस प्रकार किया है :

गुलाबसिंह की मौलिक वेदान्तिक, व्याख्यात्मक काव्य (जन्म १७३२ ई०)—अध्यात्म रामायण, भाव रसामृत, मोक्ष पंथ, कर्म विपाक और प्रबोधचन्द्र नाटक (१७८९ ई०)।[1]

४ एक और स्थान पर गुरु गोविन्दसिंह की भाषा पर अपना मत व्यक्त करते हुए कहते हैं

"गुरु जी ने जान बूझ कर बहुत कम देशज शब्दों का प्रयोग किया है। नब्बे प्रतिशत तद्भव शब्द हैं और पाँच प्रतिशत अत्यन्त समर्थ किन्तु साधारण अरबी-फारसी शब्द हैं।"[2]

डा० मोहनसिंह के उपर्युक्त मत के विषय में निम्नलिखित तथ्य ज्ञातव्य हैं :

१ इसे पंजाब के किसी एक विद्वान् का भी समर्थन प्राप्त नहीं।

२ उनका मत स्वतोव्याघात दोष से ग्रस्त है। जिस मजमून के तकाजे, काव्य रूप, कवित्त, सवैया की जरूरत और मजबूरी के कारण हनुमान नाटक की भाषा "हिन्दी" हो गई है, वही तकाजे, जरूरत और मजबूरी दशम ग्रंथ में भी विद्यमान हैं। दोनों का विषय एक-सा है, काव्य-रूप (प्रबन्ध) एक-सा है, छन्द (कवित्त, सवैया आदि) समान हैं, शब्द भाण्डार भी समान है। एक की भाषा हिन्दी है तो दूसरे की भाषा हिन्दी क्यों नहीं ? स्मरण रहे डा० मोहनसिंह के मतानुसार दशम गुरु पंजाबी देशज शब्दों का प्रयोग नहीं करते। और सबसे विचित्र तथ्य यह है कि डा० महोदय के अपने मतानुसार 'हिन्दी' भाषा की रचना हनुमान नाटक पंजाबी रचना कहलाने की अधिकारी कैसे है ?

३ डा० महोदय ने अपने मत का अकाट्य खण्डन वहाँ किया है जहाँ उन्होंने पंजाबी भाषा की व्याकरण सम्बन्धी विशिष्टताओं का उल्लेख किया है। उनके शब्द इस प्रकार हैं :

Among the distinctive features of Panjabi grammar are the use of d (द) in verb forms, present tense, instead of t (त) though t (त) is retained in the past tense of certain verbs, the use of da (दा) instead of [illegible] of certain verbs [illegible] person by the [illegible] a us—Note you,

---

१. Original Vedantic interpretative poetry by Gulab Singh (b 1732 A D)—Adhyatam Ramain Bhavrasamrit, Mokh Panth, Karam Vipak and Prabodh Chandar Natak (1789 A D)

(*An Introduction to Panjabi Literature* page 120)

२ The Guru has deliberately used but few typically Desi words, 90% are tadbhavas and about 5% are most expressive and yet common Arabic Persian words

(*An Introduction to Panjabi Literature*, p 69)

I shall thrash him, the presence of special post positions to, te, so, nū, kū, tīk etc, the absence of neuter gender and the suffixing of all male-gender words by ā or ū and all female gender words by ı or o, the use of a plural adjective to qualify a plural noun, the inflection of the Subject or the object, libral coinage of verbs from nouns and nouns from verbs, ending of almost all substantives either with an u or an ı—a phonetic peculiarity like doubling of the end consonants or their softening or replacement by u

(*An Introduction to Panjabi Literature*, p. 22-23)

डा० महोदय की व्याकरण-विषयक कसौटी सर्वथा अदोष है, किन्तु मनोरंजक तथ्य यह है कि उनके द्वारा परिगणित विशेषताओं मे से किसी एक के दर्शन भी उन दशम ग्रन्थीय उद्धरणों मे नहीं होते जो उन्होंने अपनी दूसरी पुस्तक (पंजाबी अदब दी मुख्तसर तारीख) मे पंजाबी काव्य के उदाहरण-रूप मे दिए हैं। यहाँ उनका संक्षिप्त विवेचन असंगत न होगा

१ (क) जनु खेलन को सरता तट जाय
चलावत है छिछली लरका।
(ख) करी है हकीकत मालूम खुद देवी सेती,
लीआ महखासुर हमारा छीन धाम है।

चलावत (ब्रज), करी है (ब्रज) और लीआ (लिया) (खड़ी बोली) स्पष्टत हिन्दी क्रिया-रूप है। डा० महोदय के अनुसार इनके पंजाबी रूप क्रमश चलावदा, कीती है और लीता होने चाहिएँ।

२ (क) मानहु सारसुती के प्रवाह मे सूरन के जस के उठे बुम्बे।
(ख) हाथी की चिंघार पल पीछे पहुचत ताहि,
चीटी की पुकार पहिले ही सुनियतु है।

कारक-चिह्न के, की आदि के स्थान पर दे, दी का प्रयोग, डा० महोदय के कथनानुसार, पंजाबी भाषा की विशिष्टता है। यहाँ उस विशिष्टता के दर्शन नही होते।

इन दो प्रमुख विशिष्टताओं के समान ही कोई भी अन्य व्याकरण-विषयक विशिष्टता गुरु गोविन्दसिंह की वाणी (चण्डी दी वार, और एकाध पद के अतिरिक्त) मे नही पाई जाती। यही बात हृदय राम और गुलाबसिंह निर्मला की काव्य-रचना के विषय में सत्य है। सारांश यह है कि (१) वे हृदय राम द्वारा लिखित हनुमान नाटक की भाषा को हिन्दी मानते हुए भी इसे पंजाबी रचना मानते हैं। (२) जिन कारणों से हनुमान नाटक की भाषा को हिन्दी मानते है, उन्ही कारणो से दशम ग्रंथ की भाषा को हिन्दी नही मानते। (३) पंजाबी भाषा की व्याकरण-विषयक विशेषताओं के दशम गुरु की वाणी में दर्शन न होने पर उसे पंजाबी मानते हैं। डा० महोदय के इस विलक्षण और स्व-विरोधी मत को किसी भी अन्य पंजाबी विद्वान् का समर्थन प्राप्त नही। अत हमने इन तीनों कवियों की रचनाओं को हिन्दी रचनाओं के अन्तर्गत ही रखा है।

सक्षेप मे हमने किसी भी काव्यकृति को 'हिन्दी' मान लेने से पूर्व उसका सम्यक् परीक्षण करने के लिये निम्नलिखित निकष का प्रयोग किया है :

(क) वैज्ञानिक

(१) शब्द भाण्डार
(२) व्याकरण
(३) छन्द प्रबन्ध

(ख) व्यावहारिक

(१) समकालीन पजाबी काव्यकृतियो से तुलना,
(२) परवर्ती पजाबी विद्वानो का मत ।

हमारी सीमाएँ—हमने अपने शोध क्षेत्र को निर्दिष्ट सीमाओं के भीतर रखने का प्रयास किया है । ये सीमाएँ पचविध हैं

(१) काल विषयक,
(२) भाषा विषयक,
(३) साहित्यिक रूप विषयक,
(४) लिपि विषयक, और
(५) आलोचना विषयक

हमारा शोध-कार्य सत्रहवी और अठारहवीं शताब्दी की काल-सीमा मे बँधा हुआ है । यह कालावधि एक सुनिश्चित ऐतिहासिक इकाई के रूप मे दृष्टिगत होती है । इस अवधि का प्रारम्भ गुरु अर्जुन देव की शहादत (सन् १६०६ ई०) और इसका अन्त महाराजा रणजीतसिंह के राज्याभिषेक (सन् १८०१ ई०) से होता है । धार्मिक एव राजनीतिक कारणो से प्रेरित गुरु अर्जुनदेव की हत्या के उपरान्त पजाब मे पहले प्रतिरक्षा, फिर प्रतिकार की भावना से एक आन्दोलन का सगठन हुआ । इसे गुरु गोविन्दसिंह के समय मे एक सुदृढ रूप प्राप्त हुआ । अब यह आन्दोलन प्रतिरक्षा अथवा प्रतिकार की भावनाओ से ही परिचालित न था, इसके समक्ष एक भावात्मक उद्देश्य भी था—राज्य सत्ता की प्राप्ति । महाराजा रणजीतसिंह का राज्याभिषेक इस आन्दोलन के सफल पर्यवसान का प्रतीक है । इस काल का पजाबी इतिहास मुख्यत इसी विद्रोहान्दोलन का इतिहास है । हमने इस काल का अध्ययन करते समय काल को एक निरपेक्ष गति के रूप मे न ले कर सामाजिक घटनाओ की क्रमबद्ध कथा के रूप मे ही लिया है । इस काल की काव्यकृतियों का अध्ययन हमने इसी ऐतिहासिक कथा के सदर्भ मे किया है ।

हमारी दूसरी सीमा भाषा-विषयक है । हमने केवल हिन्दी काव्य-कृतियो का अध्ययन करने का प्रयास किया है । हिन्दी और पजाबी मे अन्तर करने के लिये हमने जिस कसौटी का प्रयोग किया है, उसका उल्लेख पीछे हो चुका है । इस सम्बन्ध मे हम एक अन्य तथ्य का उल्लेख करना उचित समझते हैं -

हमने इस काल मे पडने वाली पजाबी रचनाओ का अध्ययन तो प्रस्तुत नही किया, किन्तु उनकी नितान्त उपेक्षा करना भी हमारे लिये सम्भव न था । भाषा-

विषयक जो विभाजक दीवारें मानव-समाज ने बना रखी हैं वे जैसी दिखाई देती हैं .सी हैं नहीं। सामाजिक चेतना का प्रसार इन विभाजक दीवारो को स्वीकार नही करता। किसी भी द्विभाषी प्रदेश की सामाजिक चेतना का विश्वसनीय परिचय प्राप्त करने के लिये उन दोनो भाषाम्रो के साहित्य का अनिवार्य परिशीलन करना होगा। उदाहरण के लिये गुरु वाणी का सम्यक् परिचय प्राप्त करने के लिये हम अपना अध्ययन उसके हिन्दी भाग तक ही सीमित नही रख सकते।

कहने का अभिप्राय यह है कि यद्यपि इस शोध-प्रबन्ध मे हमारा सम्बन्ध हिन्दी रचनाम्रो से ही रहा है, फिर भी उनका आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने के लिए उनकी समकालीन एव पूर्वकालीन पजाबी कृतियो को भी हमने अपने मन.-पार्श्व मे रखा है और आवश्यकता पडने पर किसी तथ्य के समर्थन अथवा खण्डन के लिये उद्धृत भी किया है।

हमारी तीसरी सीमा साहित्य रूप गत है। हमारा उद्देश्य केवल हिन्दी 'काव्य' का ही अध्ययन प्रस्तुत करना रहा है। शोध का विषय अग्रेजी मे स्वीकृत होने के कारण काव्य शब्द पोएट्री के पर्याय-रूप मे ही ग्रहण किया गया है। इस काल मे रचित गद्य, तो हमारी परिधि से बाहर है ही, समग्र पद्य को भी हमने नही अपनाया। इस काल मे कई वेदान्त ग्रथो का अनुवाद हुआ। हमने केवल भाव-सौंदर्य से युक्त, कल्पना-प्रसूत एव मौलिक पद्य को ही (हिन्दी) काव्य माना है, दार्शनिक एव अनूदित पद्य को नही।

हमारी चतुर्थ सीमा लिपि-विषयक है। केवल गुरुमुखी लिपि मे उपलब्ध काव्य ही हमारे शोध का विषय है। लिपि-विषयक सीमा से ही सम्बद्ध प्रदेश विषयक सीमा है। गुरुमुखी लिपि का प्रचलन पजाब प्रदेश मे ही होने के कारण हमारा शोध कार्य पजाब क्षेत्र तक ही सीमित रहा है। पजाब-प्रदेश मे फारसी-लिपि का भी प्रचलन था। पजाब के सूफी कवियो मे भी हिन्दी काव्य के उदाहरण मिलने की सम्भावना है। दो पुस्तको की पाण्डुलिपियाँ देवनागरी मे भी प्राप्त हुई हैं। किन्तु फारसी और देवनागरी लिपि मे उपलब्ध हिन्दी काव्य हमारी परिधि से बाहर रहा है।

आज कुछ रचनाएँ ऐसी भी हैं जो गुरुमुखी, देवनागरी एव फारसी तीनो लिपियो मे उपलब्ध हैं। उदाहरण के लिए गुरुवाणी। इस सम्बन्ध मे हमारी दृष्टि काल सीमा पर भी रही है। कोई रचना हमारे अध्ययन का विषय है अथवा नही, यह निर्णय करने के लिए हमने सदा इस बात का ध्यान रखा है कि वह सत्रहवी और अठारहवी शताब्दी मे किस लिपि मे उपलब्ध थी।

हमे अन्तिम सीमा का निर्देश अपने शीर्षक मे प्रयुक्त 'आलोचनात्मक' शब्द मे मिला है। यह निर्देश हमे तथ्य से तत्त्व की सीमा मे ले जाता है। आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते समय हमने उसके ऐतिहासिक और साहित्यिक दोनों प्रकार के महत्त्व का विवेचन करने का प्रयास किया है। किसी कृति के ऐतिहासिक महत्त्व को ग्रहण करने के लिए हमने उसे राजनीतिक इतिहास के संदर्भ मे भी देखा है और

साहित्यिक इतिहास के प्रसग मे भी। इन काव्यकृतियो की रचना किन ऐतिहासिक परिस्थितियो मे हुई, वे किस ऐतिहासिक सत्य को प्रतिबिम्बित करती हैं, यह जानने के अतिरिक्त हमने यह भी जानना चाहा है कि पजाब एव हिन्दी प्रदेश की साहित्यिक परम्परा मे उनका स्थान क्या है। इसके अतिरिक्त, उनका स्वतन्त्र भावगत एव कलागत महत्त्व आँकने की भी हमे वाछा रही है।

आलोचनात्मक अध्ययन करते समय हमे एक बाधा का अनुभव हुआ है। हिन्दी पाठक इस शोध-विषय से लगभग अपरिचित हैं। इस अपरिचित विषय का आलोचनात्मक अध्ययन हिन्दी पाठको को सर्वथा अवास्तविक प्रतीत न हो, इस असुविधा का ध्यान रखते हुए हमने 'परिचयात्मक' को भी 'आलोचनात्मक' का एक अग माना है क्योकि वस्तु परिचय के बिना आलोचना वायवी होकर रह जाती है। निर्दिष्ट सीमा का इतना अतिक्रमण हमने अवश्य किया है।

प्राप्त सामग्री—इस विषय पर विशुद्ध अनुसन्धानात्मक अथवा आलोचनात्मक सामग्री बहुत कम मिलती है। गैर पजाबी विद्वान् पजाब-बाह्य विषयो मे व्यस्त रहे, यह स्वाभाविक ही है। किन्तु पजाबी विद्वान् भी अपने साहित्यिक विषय के प्रति उदासीन रहें, यह खेद की बात है।

राष्ट्रभाषा मे रचित साहित्य की शोध और उसके मूल्याकन की प्रवृत्ति बहुत पुरानी नही है। इसका आरम्भ बीसवी शती के आरम्भ से होता है। बीसवी शती के पजाब मे परिस्थितियाँ ऐसे शोध-कार्य के अनुकूल न थी। इन परिस्थितियो का सक्षिप्त उल्लेख यहाँ असगत न होगा।

उन्नसवीं शती के अन्तिम चरण मे पजाब मे धार्मिक पुनर्जागरण के आन्दोलन आरम्भ हुए जिनमे ईसाई मिशनरियो का प्रचार आन्दोलन, स्वामी दयानन्द का आर्य समाज और सिक्खों का सिह सभा आन्दोलन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन्ही आन्दोलनो के फलस्वरूप पजाब की हिन्दू-सिक्ख जनता मे विशुद्धतावादी पुनरुत्थान की प्रवृत्ति का जन्म हुआ। इस प्रवृत्ति का प्रभाव धार्मिक विश्वास पर ही नही, धार्मिक-साहित्य पर एव उसके माध्यम 'भाषा' पर भी पडा।

आर्य-समाज—प्रारम्भ मे आर्य समाज आन्दोलन का उद्देश्य ईसाई मिशनरियो के प्रचार की रोकथाम था। इस उद्देश्य म सिक्ख जनसाधारण ने भी उन्हे पूरा सहयोग दिया। आर्य-समाज और सिक्खों का परस्पर सहयोग इतना बढा हुआ था कि 'जहाँ आर्य-समाज के जलसे होते थे, वहाँ प्रबन्ध साधारणत सिक्खो द्वारा ही होता था।'[1] सरदार जवाहरसिह आर्य समाज के मत्री थे। किन्तु जब स्वामी

---

१ पजाब दिया लहरा, शमशेरसिंह अशोक, १९५४, पृ० १८३।
आर्य समाज के प्रामाणिक ग्रन्थों में भी यह तथ्य स्वीकृत है। लाहौर, अमृतसर, जालन्धर, रावलपिण्डी में स्वामी जी सिक्खों की कोठियों में ठहरे। उनके व्याख्यानों का प्रबन्ध सिक्ख गुरुद्वारों, सिक्ख बुगों, एव सिक्खों की कोठियों में हुआ। देखिए पण्डित घासीराम रचित महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित, पृ० ४११, ४२९, ४३१, ४३७, ४४० और ४७४।

रहा, किन्तु ज्यों-ज्यों आन्तरिक विरोध बढा, ये दोनों एक दूसरे से अलग होते गए। सिंह सभा सिक्ख धर्म की विशिष्टता और पंजाबी-भाषा के प्रचार पर बल देती हुई दृष्टिगत होती है। सिंह सभा की नियमावली के अनुसार सभा के विभिन्न उद्देश्यों में से कुछ इस प्रकार हैं :

(अ) सिक्ख-धर्म के नियमों (सिद्धान्तो) को प्रकट करना और प्रत्येक स्थान पर इस श्रेष्ठ धर्म की चर्चा करना।

(आ) उन ऐतिहासिक धार्मिक पुस्तकों को, जैसे जन्म साखी, गुरु प्रणाली आदि, जिन मे किसी प्रकार का कुछ सशय है, यथार्थ का पता लगा कर, पूर्वापर देख कर शुद्ध करना।

(इ) पंजाबी-भाषा द्वारा प्रचलित शिक्षा-प्रणाली की उन्नति करना।

इन नियमो से स्पष्ट है कि सिंह सभा सिक्ख-धर्म की विशिष्ट इयत्ता की स्थापना के लिए कृतनिश्चय थी। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वह अपने प्राचीन ग्रन्थो मे संशोधन करना भी अनुचित न समझती थी। ऐसे विशिष्ट धर्म का प्रचार वह पंजाबी भाषा मे करना चाहती थी। ऐसी परिस्थिति में उन हिन्दी काव्य-कृतियों के प्रति पहले संदेह और फिर उदासीनता बढी जो अपनी पौराणिक भावना के कारण सिक्ख-मत की विशिष्टता को संदेहास्पद बनाती थीं। इनका पठन-पाठन उत्तरोत्तर कम होता गया। परिणामत इनके शोध और विवेचन का कार्य सिक्ख विद्वानो को भी अपनी ओर आकृष्ट नही कर सका।

इस धर्म और भाषा-विषयक वैमनस्य मे अंग्रेजी शासन का कितना हाथ है, यह बहुत स्पष्ट नहीं। इतना निर्विवाद है कि सिंह सभाई नेताओं का एक दल सरकार से सहयोग करने का पक्षपाती था।[1] सिंह सभा की नियमावली अंग्रेज

१. (क) सिंह सभा लाहौर के प्रमुख नेता प्रोफेसर गुरमुखसिंह ने अपनी कार्य-विधि की घोषणा इस प्रकार की थी :

१. पंजाबी भाषा में कौमी साहित्य की रचना,
२ सिक्खों को धार्मिक एव व्यावहारिक शिक्षा देने का यत्न करना,
३. अन्य मत अथवा मन मत में घुलमिल रहे सिक्खों को इस ओर से रोकना और पक्के सिक्ख बनाना।
४. अंग्रेजी हुकूमत के सहयोग मे रहना

—पंजाब दियां लहरां, पृ० १७०

(ख) सिंह सभा को नियमावली में निम्नोद्धृत पंक्तियां भी उल्लेखनीय हैं :

५. ··· 'जो (व्यक्ति) सरकार के नजदीक मुजरिम गिने गए हों····· वे सिंह सभा के सदस्य नहीं बन सकते।

पुन :

१०. खैर-ख्वाही कौम, फरमांबरदारी सरकार, सिक्ख धर्म से प्यार और उन्नति करना विद्या (शिक्षा) की पंजाबी भाषा द्वारा तथा मसलहत उमदी हर बात में लिहाज रखा जाएगा।

—पंजाब दियां लहरां पृ० १-१

पदाधिकारियो को सभा की शैक्षिक-शाखा का सदस्य बनाने की आज्ञा देती थी ।[१] एक समय पजाब के अग्रेज गवर्नर इसके सदस्य थे ।[२] किन्तु इस प्रकार पजाबी भाषा को विशेष लाभ पहुँचने का कोई भी प्रमाण उपलब्ध नही है । हिन्दी और पजाबी अग्रेजी शासन की कृपा-कोर से वचित ही रही ।

सक्षेप मे, हमारा मत है कि बीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध मे परिस्थितियाँ हिन्दी काव्य ग्रन्थो के शोध के लिए अनुकूल न थी । उन्नीसवी शती के अन्तिम चरण मे धार्मिक पुनर्जागरण के जो आन्दोलन पजाब मे चले उनका प्रभाव हिन्दी भाषा के प्रचार, प्राचीन हिन्दी काव्य ग्रन्थो के अध्ययन एवं नवीन हिन्दी काव्य ग्रन्थो के सृजन के लिए हितकर नही हुआ । आर्य समाज ने हिन्दी भाषा के प्रचार का कार्य पूर्ण सदाशयता से किया, किन्तु उनके सत्प्रयास से जिस प्रकार का वातावरण उत्पन्न हुआ, वह (सिक्ख धर्म से सम्बन्धित) प्राचीन काव्य ग्रन्थो के अध्ययन के लिए अनुकूल न था। सिह सभा द्वारा पजाबी भाषा पर बल दिया गया । इस सभा ने सिक्ख-धर्म की विशिष्टता स्थापित करने के लिए अपने प्राचीन (पौराणिक भावना से समाविष्ट) ग्रन्थो का सशोधन भी अनुचित नही समझा । सशोधन का कार्य तो बहुत अधिक नही हो पाया, किन्तु उनका यह निर्णय जिस मन स्थिति का परिचायक है वह पौराणिकभावना-युक्त ग्रन्थों के पठन-पाठन के अनुकूल न थी । इस प्रकार विषय और भाषा दोनो दृष्टियो से सिह सभा का प्रभाव इन ग्रन्थो के अध्ययन के प्रतिकूल पडा । ऐसी परिस्थिति मे इन काव्य ग्रन्थो के विषय मे किसी प्रकार की शोधात्मक अथवा आलोचनात्मक सामग्री का न मिलना आश्चर्यजनक नही ।

हमारा योगदान

(क) तथ्यानुसन्धान—इस शोध प्रयास की आधार सामग्री को तीन कोटियो मे विभक्त किया जा सकता है ।

(१) सवज्ञात—इस कोटि मे आने वाली सामग्री हिन्दी एव पजाबी विद्वानो को समान रूप से ज्ञात है ।

(२) ज्ञाताज्ञात—इस सामग्री से पजाबी विद्वान् तो परिचित है किन्तु लिपि की बाधा के कारण हिन्दी विद्वानो का इससे सम्यक् परिचय नहीं है ।

(३) अज्ञात—यह सामग्री हिन्दी और पजाबी विद्वानो की दृष्टि मे अभी तक नही आई ।

---

१ सिह सभा का उक्त नियम इस प्रकार है

> ७ उच्चपदाधिकारी अग्रेजी बहादुर शैक्षिक शाखा के सदस्य बन सकते है । अन्य मतावलम्बी भी इस सभा के सदस्य बन सकते है यदि यह निश्चय हो जाए कि वे सिक्ख धर्म और पजाबी भाषा के हितैषी हैं ।
>
> —पजाब दियाँ लहराँ, पृ० १८१

२. तदुपरान्त सिक्खों की विनती पर पहले सर राबर्ट ईजरटन लाटसाहिब पजाब और फिर सर चार्ल्स रिचीमन श्री गुरु सिंह सभा के अभिभावक बने । इनके अतिरिक्त अन्य गण्यमान्य अग्रेज आफिसरों ने भी सिह सभा की शैक्षिक शाखा के सदस्यतापत्र भरे ।

—पजाब दियाँ लहराँ, पृ० १७८

विशुद्ध तथ्यानुसन्धान के श्रेय का दावा तृतीय कोटि की सामग्री के लिये ही किया जा सकता है। अत. सर्वप्रथम इसी का उल्लेख उपयुक्त होगा। यह सामग्री निम्नलिखित है :

कर्ता	ग्रन्थ	मुद्रित अथवा हस्तलिखित
१. हरि जी	सुखमनी सहस्रनाम	हस्तलिखित
२. हरि जी	गोष्ट मिहरवान	हस्तलिखित
३. हरिया जी	हरिया जी का ग्रन्थ	हस्तलिखित
४. सहजराम	परचियाँ	हस्तलिखित
५. राजा राम	सूर रभावत	हस्तलिखित

इस सामग्री के विषय मे निम्नलिखित तथ्य द्रष्टव्य हैं :

१. इन सभी कृतियो पर रचना काल अथवा लिपि काल दिया हुआ है, जिससे इनके निर्णय-काल के विषय मे कोई विवाद नही।

२. प्रथम चार कृतियो की प्रतिलिपियाँ भी उपलब्ध हैं जिनसे इनकी प्रामाणिकता की परीक्षा सम्भव है।

हमारा विनम्र निवेदन है कि उपरिलिखित सर्वथा अज्ञात ग्रन्थो का अनुसन्धान ज्ञान-सीमा का विस्तार करने मे सहायक होगा क्योकि,

१. इनमे कुछ ग्रन्थ (१, २, ३) ऐतिहासिक महत्त्व के हैं। ये ग्रन्थ पजाबी की एक पुष्ट किन्तु उपेक्षित काव्य प्रवृत्ति (कच्ची वाणी) को समझने मे सहायता देते हैं।

२. इनमे से एक ग्रन्थ (३) सत्रहवी शताब्दी के सभी काव्य-रूपो का विश्वसनीय परिचय प्राप्त करने में सहायता देता है।

३. इनमे से दो ग्रन्थ (१, २) पजाब मे रचित प्राचीनतम खडी बोली गद्य (१७०३ वि०) के विस्तृत उदाहरण उपस्थित करते हैं।

४. इन ग्रन्थों मे गद्य (१), पद्य (२), मुक्तक (३), प्रबन्ध (४, ५), धर्म-सापेक्ष (१, २, ३), धर्म-निरपेक्ष (५), सभी प्रकार के काव्य एव सभी भाषा-शैलियाँ (३) प्राप्त होती हैं।

५. काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से भी इनका (विशेषत. ३, ५ का) महत्त्व निर्विवाद है।

ज्ञाताज्ञात—निम्नलिखित ग्रन्थो से पजाबी विद्वान् परिचित है किन्तु गुरुमुखी लिपि से अनभिज्ञ होने के कारण हिन्दी विद्वान् इनसे सम्यक् रूपेण परिचित नही—

१. सतरेण	मन प्रबोध
२. गुलाब सिंह	भाव रसामृत
३. सहज राम	आसावरियाँ
४. हृदय राम	हनूमान नाटक
५. सरूप दास भल्ला	महिमा प्रकाश (हस्तलिखित)

६. संत दास छिब्बर	साखियाँ (हस्तलिखित)
७. संतरेण	नानक विजय (हस्तलिखित)
८. गुर दास वाणी	कथा हीर राँझन की
६. बावन कवि	स्फुट कवित्त-सवैये
१०. अमृत राय	चित्र विलास
११. सेना पति	गुरु शोभा
१२. केशव दास	वार अमर सिंह की
१३. केशव दास	बारह मासा (हस्तलिखित)
१४. अणी राय	जंगनामा
१५. सुक्खा सिंह	गुरु विलास

बावन कवियों के स्फुट कवित्त-सवैयों के अतिरिक्त इन सभी ग्रन्थों की हस्त-लिखित प्रतियाँ पंजाब के कतिपय पुस्तकालयों एवं निजी संग्रहालयों में विद्यमान हैं। इनमें से अधिकांश का मुद्रण हो चुका है और चार ग्रंथ ऐसे हैं जो अभी हस्तलिखित रूप में ही विद्यमान हैं। इन ग्रंथों का अध्ययन प्रस्तुत करने से पूर्व इनके रचना काल की परीक्षा कर ली गई है। इनमें से अधिकांश पर रचना काल दे दिया गया है, शेष (१।१, ५।२, १।३, ४।३, ५।३, ६।३) का काल-निर्णय करते समय बाह्य साक्ष्य और परिस्थितिजन्य साक्ष्य का ध्यान रखा गया है। सर्व लोह, प्रेम अम्बोध, मालकौस की वार, आदि अनेक रचनायें, जिनके रचना काल के विषय में सन्देह था, इस अध्ययन में सम्मिलित नहीं की गईं।

हिन्दी विद्वानो के लिये इस सामग्री का महत्त्व वैसा ही है जैसा कि किसी मौलिक तथ्यानुसन्धान का। पंजाबी विद्वानों का इससे सम्बन्ध बहुत दूर का है। गुरुमुखी लिपि में लिखित अथवा मुद्रित होने के कारण वे इन कृतियों से परिचित अवश्य हैं, किन्तु यह परिचय अत्यन्त सतही है। इनका पठन-पाठन तो दीर्घ काल से उपेक्षित ही है—इनमें से किसी एक पर परिचयात्मक कोटि का निबन्ध भी नहीं लिखा गया। पंजाबी साहित्य के इतिहासों में इनका विवेचन आधार-ग्रन्थों के रूप मे तो हो ही नहीं सकता था, सहायक-ग्रन्थों के रूप में भी इनका प्रयोग नहीं हुआ—केवल चार ग्रन्थों (२, ४, ८, ६) के नाम पंजाबी साहित्य के इतिहासों में उल्लिखित हैं—बस ! कुल मिला कर पजाब का विद्वद्वर्ग इनकी ओर उपेक्षा का भाव ही प्रदर्शित करता रहा है।

पंजाब प्रदेश के साहित्य पर अब तक निम्नलिखित शोध-कार्य हुआ है :

१. डा० मोहनसिंह; पंजाबी साहित्य का इतिहास (अंग्रेजी)।
२. डा० लाजवती रामाकृष्णा; पंजाबी सूफी कवि।
३. डा० शेरसिंह; सिक्ख मत का दर्शन।
४. डा सुरेन्द्र सिंह कोहली; आदि ग्रंथ का आलोचनात्मक अध्ययन।
५. डा० धर्मपाल अष्टा; दशम ग्रंथ का कवित्व।
६. डा० जयराम मिश्र; गुरु ग्रन्थ साहिब के दार्शनिक सिद्धान्त।

इनमे से प्रथम ग्रन्थ का महत्त्व मौलिक तथ्यानुसन्धान के कारण है। ये तथ्य मुख्यतः पजाबी साहित्य से सम्बन्धित हैं। डा० महोदय हिन्दी को पजावी समझ कर इस क्षेत्र मे भी कभी-कभी पदार्पण करते है। किन्तु, कुल मिला कर वे अपनी सीमा से परिचित हैं और उन्होने पजाव के विशाल हिन्दी साहित्य को या तो छोड दिया है, या वह उनकी दृष्टि से ओझल रहा है। उनके अतिरिक्त किसी भी अन्य विद्वान् ने तथ्यानुसन्धान की ओर ध्यान नहीं दिया। सब ने सुपरिचित कवियो एव कृतियो तक ही अपने शोध प्रयास सीमित रखे हैं। हमारा विषय-क्षेत्र इन सबसे भिन्न होने के कारण नवीन तथ्यो (ग्रन्थो) के उद्घाटन मे सहायक हो सका है।

हमारा विश्वास है कि प्रस्तुत अध्ययन जहाँ हिन्दी विद्वानो के लिये सर्वथा नवीन तथ्यो का उद्घाटन करेगा वहाँ पजावी विद्वानो को भी अपने इतिहास का सही परिपार्श्व स्थिर करने मे सहायता देगा।

(ख) तथ्याख्यान—अपनी अनुसधान यात्रा मे हम जो कुछ तथ्यो की उपलब्धि कर पाये हैं, उसे इस यात्रा का पहला पडाव ही समझना चाहिये। हमारे मत मे तथ्यानुसन्धान इस शोध-प्रवन्ध का अपेक्षाकृत गौण अश है। हमारी आकाक्षा अज्ञात एव अल्पज्ञात ग्रन्थो की अपेक्षा इस भूभाग की अज्ञात एव अल्पज्ञात आत्मा के अनुसन्धान की रही है। सत्रहवी और अठारहवी शताब्दी का गुरुमुखी साहित्य इन्ही शतियो की पजावी आत्मा का प्रतिविम्ब है। प्रतिविम्ब से विम्ब तक पहुँचना हमारा ध्येय रहा है।

इस विम्ब के दो पक्ष हैं

१. स्वतन्त्र एव स्थिर,

२. सम्बद्ध एव गतिशील

प्रत्येक ग्रन्थ अपने आप मे स्वतन्त्र भी है और अपने पूर्व पर से बँधा हुआ भी। उसका अपना स्थिर महत्त्व रहता है और समग्र साहित्य के गतिशील प्रवाह मे उसका योगदान भी रहता है। हमारी दृष्टि आख्यान के दोनो पक्षो पर पर रही है, किन्तु हमारा अन्तिम गन्तव्य तथ्य और तथ्याख्यान के आधार पर सत्रहवीं और अठारहवी शती के पजाव की आत्मा का पुनर्निर्माण ही रहा है।

सत्रहवी और अठारहवी शताब्दी का पजाव द्विभाषी प्रदेश है। 'द्विभाषी' शब्द का प्रयोग हम अत्यन्त सीमित और सुनिश्चित अर्थ मे कर रहे है। हमारा अभिमत केवल इतना है कि तत्कालीन पजाव दो भाषाओ मे साहित्य रचना कर रहा था। तत्कालीन पजाव की साहित्य-आत्मा के साक्षात्कार के लिये इस समस्त काव्य भाण्डार का सम्यक् अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। जहाँ तक हम जानते हैं ऐसा प्रयास पजाव मे अभी तक नहीं हुआ। पजाबी विद्वानो द्वारा साहित्य के जो इतिहास लिखे जा रहे हैं, उनमे से किसी एक ग्रन्थ मे भी इतिहास को युग-चेतना के प्रतिविम्ब रूप मे ग्रहण करने का आग्रह नहीं। वे सभी ग्रन्थ निरपवाद रूप से कवि-वृत्त-सग्रह हैं। प्रवृत्तियो के आधार पर साहित्यिक सामग्री के समुचित वर्गीकरण एव तत्सम्बधित कालखण्डो के नामकरण की समस्या पर अभी गम्भीर चिन्तन नहीं हुआ। ऐसा न हो

सकने के दो कारण प्रमुख हैं। एक—पंजाबी इतिहास-लेखक अपनी विशेष स्थिति के कारण पंजाब में रचित विशाल साहित्य भाण्डार के प्रति उदासीन रहे हैं। इस उपेक्षित साहित्य-भाण्डार में गुरुमुखी में लिखित हिन्दी काव्य-राशि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसका मूल स्वर पौराणिक है। फ़ारसी में लिपिबद्ध विशाल पंजाबी काव्य भी उपेक्षित पड़ा है। इसका मूल स्वर इस्लामी है। दूसरे—पंजाबी इतिहास-लेखकों का दूसरा वैशिष्ट्य है तथ्याख्यान में अरुचि। सभी इतिहास-ग्रन्थ तथ्यों का सतही परिचय देने से सन्तुष्ट हैं। उनके आन्तरिक महत्त्व का परिचय सर्वत्र अलभ्य है। परिणाम यह है कि पंजाब की साहित्य आत्मा का अत्यन्त खण्डित एवं स्थिर चित्र ही उपस्थित हो पाया है। हमने इस चित्र को किंचित् पूर्णता प्रदान करने का विनम्र प्रयास किया है। हमें आशा है कि पंजाब को इस (हिन्दी) अत्यन्त जीवन्त काव्य परम्परा के परिपार्श्व में जब पंजाबी साहित्य का मूल्यांकन होगा तो उसका बिम्ब अधिक पूर्ण बन सकेगा।

तथ्याख्यान करते समय हमने दो बातों का ध्यान रखा है। ये तथ्य पंजाबी जनजीवन का अंग हैं और भारतीय जनजीवन का अंग भी। इन काव्य कृतियों का वृहत्तर हिन्दी काव्य में क्या स्थान होगा, यह सोचने-समझने का प्रयास भी हमने किया है। प्रकारान्तर से, पंजाब का हिन्दी साहित्य को योगदान और हिन्दी भाषा का पंजाबी साहित्यात्मा को योगदान—इस युक्त गन्तव्य की ओर हम अग्रसर रहे हैं।

प्रथम अध्याय

गुरुवाणी

प्राप्य सामग्री

हिन्दी भाषा मे गुरुवाणी पर विशेष कार्य नही हुआ। डाक्टर बडथ्वाल जी का 'हिन्दी साहित्य की निर्गुणधारा' एव श्री परशुराम चतुर्वेदी लिखित उत्तर भारतीय सत परम्परा, दो ऐसे ग्रथ हैं जो गुरुवाणी के सैद्धातिक पक्ष पर सक्षेप सा प्रकाश डालते हैं।

अग्रेजी भाषा मे हिन्दी की अपेक्षा अधिक काम हो पाया है। इस सम्बन्ध में श्री मैकालिफ, डा० ट्रम्प, डा० शेरसिंह, प्रो० पूर्णसिंह और प्रि० तेजासिंह के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन महानुभावो के ग्रन्थो का अध्ययन गुरुवाणी के सिद्धान्त-पक्ष का विश्वसनीय परिचय प्राप्त करने मे पर्याप्त सहायता देता है। अभी-अभी डा० सुरेन्द्रसिह कोहली एव डा० धर्मपाल जी अष्टा ने भी क्रमशः आदिग्रन्थ एव दशमग्रन्थ पर एक-एक शोध-प्रबन्ध लिखा है।

किन्तु गुरुवाणी मे समाविष्ट विभिन्न मान्यताओ का प्रतिप्रामाणिक परिचय कराने वाले दो महा-ग्रथ हैं गुरु शब्दरत्नाकर (कर्ता भाई कान्ह सिह) और शब्दार्थ (कर्ता सरदार तेजासिह और उनके सहयोगी)। इनमे प्रथम ग्रथ सिक्ख धर्म का 'इन्साइक्लोपीडिया' है और दूसरा आदि ग्रथ पर भाष्य। सिक्ख विद्वानो मे इन दोनो ग्रथो की प्रामाणिकता सर्वथा निर्विवाद है। भाई साहब भाई जोधसिह का 'गुरमति निर्णय' एक और उल्लेखनीय ग्रथ है जिसमे गुरुवाणी के आध्यात्मिक सिद्धान्तो की सुव्यवस्थित एव तर्कसम्मत व्याख्या हुई है। कुछ काम गुरुवाणी के भाव एव भाषागत सौंदर्य पर भी हुआ है। इस सम्बन्ध मे डा० गोपालसिह दर्दी के 'आदि ग्रथ दी साहित्तिक विशेषता' एव डा० मोहनसिह दीवाना के 'जापु साहब का टीका' दो उल्लेखनीय ग्रथ हैं। किन्तु ये दोनो ही प्रयास प्रारम्भिक कोटि के हैं।

यहाँ यह बात विशेष रूप से द्रष्टव्य है कि डा० धर्मपाल अष्टा के अतिरिक्त किसी महानुभाव ने हमारे शोध क्षेत्र मे आने वाले गुरुओ की कृतियों का स्वतन्त्र रूप से मूल्याकन नही किया है।

इस प्रबन्ध मे गुरु तेग बहादुर की वाणी एव गुरु गोविन्दसिह के भक्ति-काव्य का स्वतन्त्र अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास प्रथम बार किया जा रहा है। यह अध्ययन प्रस्तुत करते समय हमने दो बातो का विशेष ध्यान रखा है.

प्रथम, गुरुवाणी परम्परा और हिन्दी भक्ति-काव्य परम्परा के प्रसग में इनका विवेचन हो। इन दोनों के छोर जहाँ कही मिलते हैं, वहाँ स्पष्ट सकेत दे दिया जाये।

गुरुवाणी परम्परा को उसकी संपूर्णता में ग्रहण किया जाए। आदिग्रंथीय वाणी और दशमग्रंथीय भक्ति-वाणी की मूलभूत एकता को समझा जाए।

द्वितीय; गुरु-द्वय की वाणी के शाश्वत महत्व के साथ-साथ उसके ऐतिहासिक महत्त्व को भी ग्रहण किया जाए।

पूर्वपीठिका

गुरुवाणी क्या है ?

सामान्य मत—आदि ग्रंथ में संगृहीत सभी रचनाओं का सामान्य अभिधान वाणी है, श्रद्धालु सिक्ख आदि ग्रंथ में संकलित समग्र रचना-समूह को वन्द्य एवं प्रणम्य मानते हैं। आदि ग्रंथीय नानक-वाणी, कबीरादि भक्तों की वाणी एवं फ़रीद की वाणी के निदश समान रूप से स्वीकार्य एवं ग्राह्य माने जाते है। गुरु गोविन्दसिंह के पश्चात् सदेह गुरुओं की परम्परा समाप्त होने पर आदिग्रथ ही गुरुपदासीन हुए। यदि गुरु की वाणी को ही गुरुवाणी माना जाए तो आदिग्रंथ (गुरु ग्रंथ) की समस्त वाणी को गुरुवाणी का अभिधान देना अनुपयुक्त न होगा।

विद्वानों का मत—सिक्ख विद्वान् एव जनसाधारण सुविधा की दृष्टि से आदिग्रंथीय वाणी को तीन भागों में विभक्त करते रहे हैं :

(१) गुरुओं की वाणी ;
(२) भक्तों की वाणी ;
(३) भाटों की वाणी।

सिक्ख विद्वान् साधारणतया इन तीनों वर्गों में आने वाले वाणी-संग्रह को आदरणीय एवं ग्राह्य मानते हैं, किन्तु सिक्ख सिद्धांतों का प्रामाणिक निरूपण करते समय वे अधिकतर गुरुओं की वाणी को ही आधार मानते हैं। सिक्ख सिद्धांतों का अत्यंत प्रामाणिक विवेचन करते समय 'गुरुमति निर्णय' के विद्वान् लेखक ने अपने मत के समर्थन के लिये सदा सर्वदा गुरुओं की वाणी से ही उद्धरण प्रस्तुत किये है। 'गुरु शब्द रत्नाकर' के विद्वान् लेखक ने तो स्पष्ट रूप में केवल गुरुओं की वाणी को ही 'गुरु वाणी' का अभिधान दिया है। वे "गुरु नानकदेव और उनके रूप सद्गुरुओ की वाणी"[१] को ही गुरु वाणी मानते हैं। "भगतवाणी" के प्रसग में वे लिखते है (आदि ग्रंथ में) "भिन्न भिन्न मज़हब और मिल्लत के भगतों की वाणी गुरुवाणी के साथ मिला कर लिखी गई है।"[२] इससे स्पष्ट है कि वे केवल गुरुओं की वाणी को ही गुरुवाणी का अभिधान देते हैं। डा० शेरसिंह एवं सरदार साहिब सिंह ने भी सिक्ख सिद्धांतों का विवेचन करते समय उपर्युक्त विद्वानों का अनुसरण किया है और केवल गुरुओं की वाणी को ही अपनी मान्यताओ का आधार बनाया है। अतः यह निष्कर्ष संगत प्रतीत होता है कि सिक्ख विद्वान् केवल गुरुओं की वाणी को गुरुवाणी रूप में स्वीकार करते हैं।

---

१. गुरु शब्द रत्नाकर, पृ० १२५१
२. गुरु शब्द रत्नाकर, पृ० २६६८

"दशमग्रंथीय वाणी"

दशम गुरु श्री गोविन्दसिंह की वाणी आदि ग्रंथ मे सगृहीत नही। साधारण विश्वास के अनुसार दशम गुरु की समस्त वाणी दशम ग्रथ मे सगृहीत है। दशमग्रंथीय रचनाओ मे से कुछ रचनाओ—जापु साहिब, सवैये, कुछ स्फुट शब्द, चरित्रोपाख्यान का एक भाग—का पाठ, श्रवण सिक्ख श्रद्धालुओ के नित्यनियम का भाग भी है।

किन्तु आदिग्रंथ की प्रामाणिकता जितनी असंदिग्ध है, दशमग्रंथ की प्रामाणिकता उतनी ही विवादास्पद है। अधिकाश विद्वानो ने दशमग्रंथ की प्रामाणिकता पर अपना मत स्पष्ट रूप से व्यक्त तो नही किया किन्तु सिक्ख मत की सैद्धान्तिक 'मान्यताओ' का विवेचन करते समय दशमग्रंथीय वाणी को आधार नही बनाया। सिक्ख जनसाधारण एव विद्वान् दशमग्रन्थ के एक बहुत बडे भाग के प्रति उदासीन से हैं। उसका पठन-पाठन कुछ गिने-चुने काव्य-प्रेमियो तक ही सीमित है।

दशमग्रंथीय वाणी के विषय मे निम्नाकित तीन तथ्य विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं—

१. दशमग्रंथीय रचना मुख्यतः प्रबन्धात्मक रचना है। इसमे इतना सिद्धान्त-निरूपण नही जितना चरित-कथन है। इसकी प्रकृति आदिग्रन्थीय वाणी से भिन्न है।

२. आदिग्रन्थीय वाणी सिक्खमत की 'श्रुति' कही जा सकती है। इसे 'धुर की वाणी' जैसे अभिधानो से स्मरण किया गया है। दशमग्रंथ के लेखक अपनी रचना को इस कोटि की रचना नही मानते। एक स्थान पर वे कहते हैं कि 'कवि ने इस प्रबन्ध की रचना कौतुक-हेतु ही की है।'[1] एक अन्य स्थान पर वे विष्णु अवतार की कथा अति तन्मयता से कहने के पश्चात् विष्णु को अपना पूज्य मानने से इन्कार कर देते हैं।[2] कहने का अभिप्राय यह है कि दशमग्रंथीय समस्त वाणी उसी रूप मे मान्य नहीं जिस रूप मे आदिग्रंथीय वाणी।

३. आदिग्रंथ का प्रथम सम्पादन गुरु अर्जुन द्वारा हुआ किन्तु इसे अन्तिम रूप देने का श्रेय गुरु गोविन्दसिंह को ही है। नवम गुरु की वाणी उन्ही के द्वारा आदिग्रन्थ मे सम्मिलित की गई। उन्होने स्वयं अपनी वाणी आदिग्रंथ मे सम्मिलित नहीं की। इसका एक कारण उनकी विनय भी है। किन्तु कदाचित् ऐसा निर्णय करते समय उनके सामने 'कौतुकार्थ रचित वाणी' और 'धुर की वाणी' का अन्तर

---

१. कोतक हेत करी कवि ने सतिसय की कथा इह पूरी भई है।—दशम ग्रंथ, पृ० ६६

२. जो इह कथा सुनै अरु गावै। दूख पाप तिह निकट न आवै
बिसन भगत की ए फल होई। आदि व्याधि छ्वै सकै न कोई ॥८५६॥
....
पाइ गहे जब ते तुमरे तब ते कोऊ आंख तरे नहीं आन्यो
राम रहीम पुरान कुरान अनेक कहैं मत एक न मान्यो ॥ ८६३ ॥

भी स्पष्ट रूप से विद्यमान था। सिक्ख विद्वानो मे भी ऐसा विश्वास पाया जाता है। श्री केसरसिंह छिब्बर ने अपने 'बसावली नामा' मे इस तथ्य की ओर स्पष्ट सकेत किया है। जब सिक्खो ने प्रार्थना की कि दशमग्रथ को आदिग्रथ मे मिलाया जाय तो

वचन किया, ग्र थ साहिब है वह;
यह है हमारा खेल
साथ न मिलाया, आह प्यारा;
कौन जाने भेद।[1]

अत हमने दशमग्रथ को दशम गुरु की कृति मानते हुए उसकी समस्त रचना को गुरु वाणी अभिधान नही दिया। 'गुरु वाणी' शीर्षक के नीचे उनकी उसी वाणी का अध्ययन प्रस्तुत किया है जो—

१ प्रबन्धात्मक नही,
२ कौतुकार्थ नही रची गई; तथा
३. जो आदिग्रथीय वाणी के समान नित्य-नियम का भाग बन चुकी है।

सक्षेप मे हमने इस निबन्ध मे गुरु वाणी का प्रयोग आदिग्रन्थ मे सकलित गुरुओ की समस्त वाणी एवं दशमग्रथ मे सकलित ऐसी वाणी के लिये किया है जिसका स्वभाव एव प्रवृति आदिग्रथीय गुरुवाणी से भिन्न नही।

गुरुवाणी की प्रमुख विशेषतायें

१. सामयिक एव शाश्वत सत्य का समन्वय—गुरुवाणी ब्रह्म, जीव, माया आदि आध्यात्मिक विषयो पर ही अपना मत व्यक्त करने से सन्तुष्ट नही, वह अपने समय की भौतिक—राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक—समस्याओ की ओर भी ध्यान देती है। समस्त भक्ति धारा भौतिक कारणो से प्रेरित हो रही थी। कबीर का प्रबल वर्ण-विरोध एव तुलसी का लोकरजनकारी दृष्टिकोण इसके स्पष्ट प्रमाण हैं। कबीर की दृष्टि जितनी सामाजिक असमानता पर रही, उतनी राजनीतिक अत्याचार एव अनाचार पर नही। तुलसी का रामराज्य वर्णन प्रकारान्तर से तत्कालीन राज्य-व्यवस्था की आलोचना समझी जा सकती है। किन्तु तत्कालीन ऐतिहासिक यथार्थ का जैसा स्पष्ट और निर्भ्रान्त उल्लेख गुरुवाणी मे मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। शासक-वर्ग की सीधी, स्पष्ट आलोचना के ऐसे उदाहरण कदाचित् ही किसी सन्त, सूफी अथवा भक्त की वाणी मे मिलें। वे राज्यवर्ग (सामान्य एव विशेष) तथा कर्मचारी वर्ग की बडी निर्मम आलोचना करते हैं। कुछ उदाहरण उपस्थित किये जाते है—

राजन्यवर्ग (विशेष)

लोधी

रतन विगाडि विगोए कुती मुइआ सार न काई।[2]

(इन पठान कुत्तो ने रत्नो जैसे भारतवासियो को मिट्टी में मिला दिया अर्थात्

---

१. बसावलीनामा दसों पातिशाही, छन्द २६८ का अनुवाद।
२. आदि ग्रथ, पृ० ३६०।

मुगलो का बहुत जमकर सामना नही किया और ऐसा बहुमूल्य देश यो ही गँवा बैठे हैं। मृत्यु के पश्चात् कोई इन्हें स्मरण भी नही करेगा।)[1]

मुगल

खुरासान खसमाना कीग्रा हिंदुसतानु डराइग्रा
ग्रापै दोसु न देई करता जमु करि मुगलु चढ़ाइग्रा।[2]

बाबर

(१) पाप की जंञ लै काबलहु धाइग्रा जोरी मंगै दानु वे लालो।
सरमु धरमु दुइ छपि खलोए कूड़ु फिरै परधान वे लालो।
काजीग्रा बामणा की गलि थकी ग्रगदु पड़ै सैतानु वे लालो[3]

(ग्रर्थात् बाबर पाप की बारात लेकर काबल से चढ ग्राया है ग्रौर बलात् (भारत रूपी दुल्हन) का (कन्या) दान माँगता है। लज्जा ग्रौर धर्म कही छिप गये हैं। ग्रसत्य का ग्रकण्टक राज्य है। काजी ग्रौर ब्राह्मणो की बात समाप्त हुई। ग्रब शैतान ही विवाह सम्पन्न कराता है)[4]

(२) बाबर बाणीफिरगई कुइर न रोटी खाए

राजन्यवर्ग (सामान्य)

कलि काती राजे कासाई धरम पख कर उडरिग्रा।
कूडि ग्रमावस सच चन्दरमा दीसै नाही कहि चढिग्रा।[5]

कर्मचारी वर्ग (विशेष)

सुलही ते नाराइण राखु॥
सुलही का हाथु कही न पहुँचै सुलही होइ मूग्रा नापाकु॥रहाउ॥
काढि कुठारु खसमि सिरु काटिग्रा खिन महि होइ गइग्रा है खाकु॥
मदा चितवत चितवत पचिग्रा जिनि दीना तिन दीना धाकु॥१॥[6]

कर्मचारी वर्ग (सामान्य)

गुरुवाणी मे शोषक एव भ्रष्ट राज्य कर्मचारियो की स्थान-स्थान पर बडी कटु ग्रालोचना की है—

(क) राजे सीह मुकदम कुत्ते[7]

(राजे शेर हैं जो निरीह जनता की मास-मज्जा निगल जाते हैं। राज्य-कर्मचारी कुत्ते हैं जो ग्रवशिष्ट हड्डियो को भी चबा जाते हैं)

---

१. शब्दार्थ, पृ० ३६०
२. ग्रादि ग्रथ, पृ० ३६०
३. ग्रादि ग्रथ, पृ० ७२२
४. शब्दार्थ, पृ० ७२२
५. ग्रादि ग्रथ, पृ० १४५
६. ग्रादि ग्रथ, पृ० ८२५
इस शब्द (पद) में सम्राट् जहाँगीर के गुरुद्रोही कर्मचारी सुलहीखाँ की मृत्यु का वर्णन है। देखिए गुरु शब्द रत्नाकर, पृ० ६६०।
७. ग्रादि ग्रन्थ, पृ० १२८८

(ख) कादी कूड़ बोलि मल खाइ
(काजी झूठ बोल कर अभक्ष्य खाते हैं।)

शोषक[1] राजाओं और भ्रष्ट राज्य-कर्मचारियों के विरुद्ध गुरु नानक देव का रोष इतना स्थायी रूप ग्रहण कर चुका था कि आध्यात्मिक क्षेत्र में लोभ, पाप, मिथ्याचार आदि की व्याख्या करने के लिये उन्होंने राजा, राजमन्त्री एवं राज्यकर्मचारियों को उपमान रूप में ग्रहण किया।[2] ये उपमान उन दिनों बहुत स्वाभाविक प्रतीत होते होंगे किन्तु काव्य में इनका प्रयोग प्राणों का मोह त्याग कर ही किया जा सकता था। अत्याचारी राजनीतिक सत्ताधारियों की आलम्बन और उद्दीपन रूप में ऐसी निर्भीक आलोचना तत्कालीन उत्तर भारतीय साहित्य में अद्वितीय वस्तु थी।

आध्यात्मिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते समय वे ऐतिहासिक यथार्थ को दृष्टि से ओझल नहीं करते, शाश्वत और सामयिक के ऐसे ही समन्वय का उदाहरण है उनका 'हुकुम' अथवा 'भाणा' नामक सिद्धान्त। गुरुवाणी में हुकुम एवं भाणा का सिद्धांत गुरुनानक से ही आरम्भ होता है। यह सिद्धांत जहाँ एक ओर ईश की जगत्‌नियंत्रक शक्ति का प्रतिपादन करता है, वहाँ सत्ताधारी वर्ग के विरुद्ध सामूहिक चेतना उत्पन्न करने का माध्यम भी बनता है।

'हुकुम' एक राजनीतिक शब्द है। हाकिम अथवा शासक की आज्ञा ही 'हुकुम' है। गुरु नानक इस राजनीतिक शब्द का प्रयोग आध्यात्मिक प्रसंग में करके इसके अर्थ एवं महत्त्व का विस्तरण कर रहे हैं। इस सिद्धांत के दो पक्ष हैं, 'आध्यात्मिक-शाश्वत' एवं 'व्यावहारिक-सामयिक'। आध्यात्मिक क्षेत्र में इसकी स्थापना है कि इस नाना रूपा सृष्टि के सभी कर्म, सभी व्यवहार, एक नियम द्वारा शासित हैं[3] कोई पदार्थ, कोई व्यक्ति इस नियम से बाहर नहीं। इस नियम का नियंत्रण ईश

---

१. गुरुवाणी में राजकीय शोषण का ही विरोध नहीं हुआ, प्रजा के बीच चलने वाले आर्थिक शोषण का विरोध भी गुरुवाणी द्वारा हुआ :

माणस खाणे करहि निवाज।
छुरी वगाइनि तिन गलि ताग॥ आदि ग्रंथ०, पृ० ४७१

(मानव भक्षी भी निमाज पढ़ते हैं। छुरी चलाने वाले भी उपवीत धारण करते हैं)

२. लोभ राजा है और पाप उसका वजीर, झूठ उसका सरदार है, काम उसका नायब है। ये सब मिलकर मंत्रणा करते हैं। —आदि ग्रंथ, पृ० ४६८

लबु पापु दुइ राजा महता कूड़ु होआ सिकदारु
कामु नेबु सदि पुछिऐ बहि बहि करे बीचारु
—आदि ग्रन्थ, पृष्ठ ४६८।६

३. हुकमी होवनि आकार हुकमु न कहिआ जाई
हुकमी होवनि जीअ हुकमी मिलै वडिआई
हुकमी उतमु नीचु हुकमी लिखि दुख सुख पाईअहि
इकना हुकमी बखसीस इकि हुकमी सदा भवाईअहि
हुकमै अंदरि सभ को बाहरि हुकम न कोइ
नानक हुकमै जे बुझै त हउमै कहै न कोइ।
—आदि ग्रन्थ, पृष्ठ १

(अथवा पातिसाह) के हाथ है।[1] व्यावहारिक क्षेत्र मे इसका आदेश है कि हमारे सभी कर्म अहकार द्वारा परिचालित न होकर आज्ञा पालन की भावना से शासित होने चाहियें। 'आज्ञायें' तो प्रिय, अप्रिय, सभी प्रकार की हैं। किन्तु, यह सिद्धात अप्रिय घटनाओ (आज्ञाओ) को भगवान का प्रसाद मान कर स्वीकार कर लेने का आदेश एव सबल देता है।[2] इसी सिद्धात ने अधिकारहीन प्रजा के लिए अभाव-जन्मा सहिष्णुता को अस्त्र के रूप मे प्रयोग करने का मार्ग सुझाया। यह 'गरीबी' को 'गदा' मे परिणत करने का महामत्र है।[3]

गुरुवाणी मे मानव समाज को गुरुमुख एव मनमुख इन दो वर्गों मे बाँटा गया है। स्थूल दृष्टि से यह विभाजन विशुद्ध धार्मिक प्रतीत होता है किन्तु इसका राजनीतिक अर्थ भी निर्भ्रान्त है। गुरु से उपदिष्ट एव 'हुकुम' से अनुशासित व्यक्ति हैं गुरुमुख और 'हुकुम' की अवहेलना करने वाले अपने मन अथवा अहकार से चालित व्यक्ति है मनमुख। हुकम से टूटा हुआ, विलासी एव अत्याचारी, शासक वर्ग (मनमुख) मरणासन्न है।[4] गुरु की सहानुभूति गुरुमुख वर्ग से है। गुरु कहते है कि 'मेरा सम्बन्ध नीच कहे जाने वाले वर्ग से है, उच्च वर्ग से नहीं।'[5] गुरुमुख-वर्ग को सगठित करने का भाव गुरुवाणी मे सदा प्रस्तुत रहा है।

सक्षेप मे, हमारी धारणा है कि गुरुवाणी का अध्ययन करते समय हमे उसके बहुमुखी बिम्ब (Multiple Image) पर दृष्टि रखनी चाहिये। गुरुवाणी आध्यात्मिक और भौतिक सत्य का समन्वय प्रस्तुत करती है।

भारतीय परंपरा से सम्बन्ध—गुरुवाणी की दूसरी विशिष्टता यह है कि उसकी जड़ें इसी धरती मे हैं। गुरुवाणी का सिद्धात-निरूपण एव इसकी अभिव्यजना-शैली उपनिषदो एव पुराणों की परपरा से सयुक्त है। गुरुवाणी की ब्रह्म (अकाल पुरुष) एव आत्मा सम्बन्धी मान्यताओ का मूल स्रोत, स्पष्टत वैदिक साहित्य ही है। गुरुवाणी द्वारा प्रतिपादित मत अद्वैतवाद का ही एक रूप है। डा० बडथ्वाल ने इसे

---

१. सो पातिसाहु साहा पातिसाहिबु नानक रहणु रजाई ॥

—आदि ग्रन्थ, पृष्ठ ६

२. केतिआ दूख भूख सद मार ॥
एहि भि दाति तेरी दातार ॥

— आदि ग्रन्थ, पृष्ठ ५

३. गरीबी गदा हमारी ॥

— आदि ग्रन्थ, पृष्ठ ६२८

४. चीज करनि मनि भावदे, हरि बुझनि नाही हारिआ ॥

— आदि ग्रन्थ, पृष्ठ ४७३

५. नीचा अदरि नीच जाति नीची हू अति नीचु ॥
नानकु तिन के संगि साथि वडिआ सिउ किआ रीस ॥

यह तो स्पष्ट ही है कि ये प्रतीक जातीय अवचेतन का अग होने के कारण हमारे मनोभावो को उद्दीप्त करने की क्षमता रखते हैं। गुरु नानक की वाणी के लोकप्रिय और प्रभविष्णु होने मे इनका भी निस्सदेह योग रहा होगा। किन्तु यह कहना कि अपनी रचना को अधिक लोक-ग्राह्य बनाने के लिये ही उन्होने इनका प्रयोग किया, अति सरलता मात्र होगा। अभिव्यक्ति के लिये नानक-सा विचारक विचार-क्षेत्र मे समझौता कर लेगा, ऐसी कल्पना भी नही की जा सकती।

तत्कालीन हिन्दू समाज बडी अधोगति की अवस्था मे था। राजनीतिक क्षेत्र मे मुस्लिम-सत्ता की पूर्ण प्रतिष्ठा हो जाने के दुष्परिणाम सास्कृतिक क्षत्र मे भी परिलक्षित हो रहे थे। हिन्दू प्रजा मुस्लिम शासको द्वारा सास्कृतिक क्षेत्र मे भी पराजित हो रही थी। उनका रहन-सहन, भाषा, वेश, सब मुस्लिमो जैसा हो रहा था। गुरु नानक इस सास्कृतिक अध पतन की ओर जागरूक थे —

१ नाउ खुदाई अलहु भइआ[1]

(भगवान का नाम खुदा अथवा अल्लाह हुआ)

२ नील बसत्र ले कपडे पहिरे तुरक पठाणी अमलु कीआ[2]

(लोग नील वस्त्र पहनने लगे तथा तुर्कों और पठानो के समान व्यवहार करने लगे)।

३. अतरि पूजा पडहि कतेबा सजमु तुरका भाई ।।छोडीले पाखडा।।[3]

(हे ब्राह्मण, तुम अन्दर बैठ कर पूजा करते हो, बाहर मुस्लिम शासकों को दिखाने के लिए कुरान पढते हो। तुम्हारा आचार-व्यवहार सब मुसलमानो जैसा है। इस पाखण्ड को छोड दो।)

४ नील वसत्र पहिरि होवहि परवाणु ।।
मलेछ धानु ले पूजहि पुराणु।।[4]

(नील वस्त्र धारण करने के कारण ही वे (क्षत्रिय) मुस्लिम शासको को स्वीकार्य हैं। जिन्हें म्लेच्छ कहते हैं उन्ही से आजीविका कमाते हैं और फिर भी पुराण की पूजा करते हैं, अर्थात् समझते हैं कि हम पुराण के अनुसार जीवन यापन कर रहे हैं।)

५ अभाखिआ का कुठा बकरा खाना ।।
चउके उपरि किसै न जाणा ।।[4]

(अभाषा (अरबी कलमा) पढ कर हलाल किया हुआ बकरा खाते हैं, और कहते हैं हमारे चौके तक कोई न जाये।)

---

१. आदि ग्रन्थ, पृ० ४७०
२ आदि ग्रथ, पृ० ४७०
३. आदि ग्रथ, पृ० ४७१
४. आदि ग्रथ, पृ० ४७२

६. खत्रीआ त धरमु छोड़िआ मलेछ भाखिआ गही ॥[1]

(क्षत्रियों ने धर्म छोड़ दिया है और म्लेच्छ भाषा को ग्रहण कर लिया है।)

७. आदि पुरखु कउ अलहु कहीऐ सेखा आई वारी ॥
देवल देवतिआं करु लागा ऐसी कीरति चाली ॥
कूजा, बांग, निमाज, मुसल्ला नील रूप बनवारी ॥
घरि घरि मीआं सभना जीआं बोली अवर तुमारी॥[2]

(आदि पुरुष को अल्लाह कहा जाने लगा। शेखों की अमलदारी हो गई है। देवों और देवालयों पर कर लगा दिया गया है। विचित्र रीति है यह। सब ओर कूजा, अज़ान, निमाज़ दिखाई देते हैं। अब तो भगवान भी नीलवस्त्र में ही दिखाई दे सकता है। प्रत्येक घर में 'मियाँ मियाँ' का शोर है। तुम्हारी भाषा भी बदल गई है।)

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि हिन्दू जनता के पैर अपनी संस्कृति से उखड़ रहे थे। आजीविका के लिए मुसलमानों पर आश्रित होने के कारण उन की वाणी, व्यवहार, वेशभूषा, भोजन सब पर मुस्लिम प्रभाव ने जैसे धावा बोल रखा था। इस धावे का मुक़ाबिला जिन विविध पाखण्डास्त्रों से हिन्दू जनता कर रही थी उस का विरोध तो गुरु नानक ने किया ही, उन्हें इस सांस्कृतिक आक्रमण से बचने के लिए एक अमोघ अस्त्र भी दिया—वह था अपनी संस्कृति का गर्व।[3] अवतारवाद के विश्वासी न होते हुए भी उन्होंने देव-सृष्टि तथा पौराणिक कथाओं के प्रति जनश्रद्धा को विचलित नहीं होने दिया—वस्तुतः वे उसे पुष्ट करते हैं, केवल उनमें से किसी एक देवता को ब्रह्म का अवतार अथवा विकल्प नहीं मानते।

वे अन्न, जल, अग्नि तो देवता मान लेने की वैदिक कालीन प्रवृत्ति को अपनाते हुए कहते हैं—

अन्नु देवता पाणी देवता बैसंतर देवता लूणु ॥
पंजवा पाइवा घिरतु। ता होआ पाकु पवितु ॥
—आसा दी वार

अपनी रचना सोदरु (पृ० ८-६) में उन्होंने पवन, पानी, बैसन्तर, चित्रगुप्त, धर्मराज, ईश, ब्रह्मा, देवी (शारदा, लक्ष्मी, पार्वती), देवताओं सहित इन्द्र, ऋषीश्वर, मोहिनी, मनमोहन, स्वर्ग, मत्स्य, पाताल, अड़सठ तीर्थ, (नव) खंड, मण्डल, ब्रह्मांड को

---

१. आदि ग्रंथ, पृ० ६६३।

२. आदि ग्रंथ, पृ० ११६१।

३. नानक हिन्दू धर्म के उद्धारक और सुधारक होकर अवतरित हुए थे, उसके शत्रु हो कर नहीं। सुधार के वे ही प्रयत्न सफल हो सकते हैं जो भीतर से सुधार के लिए अग्रसर हों, नानक यह बात जानते थे। उन्होंने परम्परा से चले आते हुए धर्म में उतना ही परिवर्तन चाहा, जितना संकीर्णता को दूर करने तथा सत्य की रक्षा करने के लिये आवश्यक था। उन्होंने मूर्तिपूजा, अवतारवाद और जाति-पाँति का खंडन किया परन्तु त्रिमूर्ति (ब्रह्मा-विष्णु महेश) के सिद्धांत को स्पष्ट रूप में स्वीकार किया।

डा० बड़थ्वाल : हिन्दी काव्य में निर्गुण संप्रदाय, पृ० ६५

ब्रह्म का स्तुति-गान करते दिखाया है। इस प्रकार निर्गुण निराकार ब्रह्म की वे बड़ी सजीव चिन्मय झाकी दिखा सके।

अपने सिद्धान्त के समर्थन मे पुराण और इतिहास के बडे ही उपयुक्त उदाहरण ढूंढ लाते हैं। यहाँ उनका एक उदाहरण दिया जाता है—

गोतमु तपा अहलिआ इसत्री, तिसु देखि इन्द्र लोभाइआ।
सहस सरीर चिह्न भग हूए, ता मनि पछोताइआ॥ १॥
कोई जाणि न भूले भाई॥
सो भूलै जिसु आपि भुलाए, बूझै जिसै बुझाई॥रहाउ॥
तिनि हरीचन्द पृथमीपति राजै, कागदि कीम न पाई॥
अउगणु जाणै त पुन करे, किउ किउ नेखासि विकाई॥२॥
करउ अढाई धरती मागी, बावन रूपि बहाने
किउ पइआलि जाइ किउ छलीऐ, जे बलि रूपु पछाने॥ ३॥
राजा जनमेजा दे मती, बरजि बिआसि पढाइआ
तिन्ह करि जग अठारह धाए, किरतु न चले चलाइआ॥४॥[1]

पौराणिक और ऐतिहासिक प्रसगो का समावेश अपनी काव्य रचना मे करके गुरु नानक ने गुरु-काव्य की एक स्वस्थ और स्थायी परम्परा को जन्म दिया। तृतीय, चतुर्थ और पचम गुरुओ ने इस परम्परा का अनुसरण किया और गुरु गोविन्द सिंह की रचना मे यह प्रवृत्ति अपनी चरमकोटि पर पहुँच गयी। गुरुदास, बावनकवि, सुक्खासिंह, निर्मला गुलाबसिंह, प्रभृति सिक्ख कवि भी इस परम्परा से लाभान्वित हुए। वस्तुत. यह परम्परा आधुनिक शताब्दी के आरम्भ तक बराबर चली आती है। तत्पश्चात् यह धार्मिक-साम्प्रदायिक अन्दोलनो के कारण काल-कवलित हो गई।

स्पष्ट है कि प्राचीन का यथावत् पुनरुद्धार न चाहते हुए भी गुरुवाणी प्राचीन का निराकरण नही करती। वस्तुतः वह उसका सविवेक प्रयोग करती है जिसके कारण इसका सम्बन्ध भारत की प्राचीन आध्यात्मिक एव सास्कृतिक परम्परा से टूटता नही है। सक्षेप मे हम कह सकते हैं कि गुरु नानक देव एवं उनके उत्तराधिकारी धर्म को एक गतिशील एवं विकासोन्मुख प्रवाह के रूप मे ग्रहण करते हैं। वे प्राचीन को ग्रहण करते हुए उसके त्याग का अधिकार नही छोडते। धर्म को भाव की वस्तु समझते हुए भी बुद्धि का बहिष्कार आवश्यक नही समझते। बुद्धि के कारण हम अतीत का कुछ त्याग कर सकते हैं तो बुद्धि के कारण ही वर्तमान स्थापनाओं को भविष्य मे त्यागा जा सकता है। ईश तक जाने वाला मार्ग 'भाव'-भक्ति का मार्ग है, किन्तु बुद्धि का बहिष्कार करने वाला मार्ग शैतान तक जाने वाला मार्ग है। नानक कहते हैं:

बुद्धि द्वारा भगवान् की सेवा की जाती है, बुद्धि द्वारा ही मान प्राप्त किया जाता है। बुद्धि द्वारा ही (वेद शास्त्र) पढ़े जाते हैं और उनका (वास्तविक) महत्त्व

१—आ'द 'थ, पृ० १३४३-१३४४

समझा जाता है। नानक कहते हैं यह (सच्चा) मार्ग है, बाकी बातें (=मार्ग) शैतान की हैं।[1]

धर्म के प्रति यह तर्क-सम्मत दृष्टिकोण गुरुवाणी का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वैशिष्ट्य है। इसी के कारण धर्म मे पर्याप्त लचक रहती है। गुरु तेगबहादुर और गुरु गोविन्दसिंह का अध्ययन करते समय हमने उसके इसी समजित, तर्कसम्मत एव जीवन्त रूप को दृष्टि मे रखा है।

गुरु तेग बहादुर

सिक्ख धर्म के नवम गुरु श्री तेगबहादुर का जन्म सवत् १६७८ वि० (१६२१ ई०) मे पजाव प्रान्त के अमृतसर नामक नगर मे हुआ। अष्टम गुरु हरिकृष्ण जी के देहावसान पर आप सवत् १७२१ वि० (सन् १६६४ ई०) मे गुरुपदासीन हुए।

आप अत्यन्त एकान्तप्रिय थे। गुरुपदासीन होने से पूर्व आपका अधिकाश समय एकान्तवास एव भगवद्-भजन मे ही बीता। गुरुपदासीन होने के पश्चात् आपने गुरुपदाभिलाषी स्वजनो से दूर रहना ही उचित समझा। एक बार विदा लेकर आप पुन केन्द्रीय पजाव मे नहीं लौटे। तत्पश्चात् आपका अधिकाश जीवन हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र मे व्यतीत हुआ। तीर्थ-सेवन मे आपकी विशेष रुचि थी।

तत्कालीन शासन की धार्मिक नीति का अहिंसात्मक विरोध करने के फल-स्वरूप आपको मृत्युदण्ड दिया गया और सवत् १७३२ (सन् १६७५ ई०) को राजधानी दिल्ली के मुख्य बाजार मे आपकी हत्या की गई।

रचना—तेगबहादुर की रचना कलेवर मे बहुत अधिक नही, आदि ग्रथ में इनके केवल ५६ शब्द (पद) और ५७ दोहे सगृहीत हैं।[2] कुल मिला कर ये ५१२ पक्तिया बनती हैं।[3] गुरु अगद को छोड कर शेष सभी गुरुओ से आपकी रचना कलेवर मे कम है।

यह सारी रचना विशुद्ध, अमिश्रित हिन्दी (ब्रज) मे है।

विषय—गुरु तेगबहादुर की रचना का क्षेत्र पूर्ववर्ती गुरुओ की अपेक्षा बहुत सीमित है। पूर्ववर्ती गुरुओं के समान,उन्होंने तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियो और समस्याओ के विषय मे कुछ नही कहा है। उनकी वाणी का क्षेत्र आध्यात्मिक विषयो

---

१. अकली साहिबु सेवीऐ अकली पाईऐ मानु
अकली पढि के बुझीऐ अकली कीचै दानु
नानक आखे राहु एहु होरि गला सैतानु। —आदि ग्रथ, पृ० १२४५

२. गुरु तेगबहादुर की रचना गोडी (६ पद), आसा (१ पद), देवगधारी (३ पद), बिहागड़ा (१ पद), सोरठ (१२ पद), धनासरी (४ पद), जैतसिरी (३ पद), टोडी (१ पद), तिलग (३ पद), बिलावल (३ पद), रामकली (३ पद), मारू (३ पद), बसत (५ पद), सारग (४ पद), जैजावती (४ पद) रागो के अन्तर्गत सगृहीत हैं। दोहे रागो के अन्तर्गत नहीं हैं। गुरु तेगबहादुर की रचनाएँ गुरु गोविन्द सिंह द्वारा गुरु ग्रथ में अकित की गयी थीं।

३. २२ पद आठ-आठ पक्तियों वाले, ४७ पद छ छः पक्तियों वाले। ५७ दोहों में 'बल होआ बन्धन छुटे' वाला दोहा भी सम्मिलित है।

तक ही सीमित है। सृष्टि की नश्वरता एवं सांसारिक—मुख्यतः गार्हस्थ्य—सम्बन्धों का मिथ्यात्व दिखा कर जीव का ध्यान ब्रह्म की ओर लगाना ही उनकी वाणी का विषय है।

इस सीमित क्षेत्र में उनकी धारणायें पूर्ववर्ती गुरुओं की धारणाओं से भिन्न नहीं, किन्तु उनमें बल (Emphasis) का अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है। पूर्ववर्ती गुरुओं के समान गुरु तेगबहादुर भी अद्वैतवादी हैं। जीव और ब्रह्म की तात्त्विक अभिन्नता वे स्वीकार करते हैं। ब्रह्म सत्य है और शेष सब मिथ्या है—ऐसा वे बार बार कहते हैं। किन्तु जहाँ पूर्ववर्ती गुरुओं का बल 'ब्रह्म सत्य' पर है, वहाँ गुरु तेगबहादुर का बल 'जगन्मिथ्या' पर है।

नश्वरता—गुरु तेगबहादुर की वाणी का प्रमुख विषय नश्वरता है। उन्होंने इस संसार को कहीं "बादर की छाई" के समान नश्वर कहा है और कहीं मृगतृष्णा के समान अभावात्मक। पूर्ववर्ती गुरुओं की रचना में भी यत्र-तत्र सृष्टि की अभावात्मकता का कथन मिलता है, किन्तु अधिकतर संसार को नश्वर ही कहा गया है, उसके अस्तित्व को सर्वथा अस्वीकार नहीं किया गया। गुरु तेगबहादुर की वाणी में जग-रचना का अभावात्मक कथन पूर्ववर्ती गुरुओं की अपेक्षा किंचित् अधिक मात्रा में है। संसार की नश्वरता पर बल भी उन्होंने पूर्ववर्ती गुरुओं की अपेक्षा अधिक दिया है।

गुरु जी के इसी अतिरंजित बल का प्रभाव उनकी रचना शैली पर भी पड़ा है। सृष्टि के अनस्तित्व का प्रभाव उनके अवचेतन पर इतना गहरा है कि सृष्टि का वैविध्यपूर्ण सौंदर्य उनके काव्य का न विषय बन सका है न उनकी अभिव्यक्ति का साधन। मानवीय और मानवेतर सृष्टि की अनन्त रूप समृद्धि का आंशिक प्रयोग भी उनकी रचना में नहीं हो पाया है।

पूर्ववर्ती गुरु प्रकृति के सौंदर्य के प्रति इतने उदासीन न थे। ब्रह्म का निवास वे मन के भीतर भी मानते थे और प्रकृति के बीच भी। गुरु नानक "जाति मे ज्योति" का विशेष रुचि से वर्णन करते थे। गुरु तेगबहादुर ने भी 'बाहरि भीतरि एको जानहु इहु गुर गिआनु बताई" कह कर "सृष्टि मे समाये" हुए ब्रह्म की ओर संकेत तो अवश्य किया है, किन्तु उनकी वाणी मुख्य रूप से, ब्रह्म को अपने भीतर खोजने का ही उपदेश देती है।

"रघुनाथ" के सगुणबोधक शब्दों का भी प्रयोग किया गया[1] है। किन्तु कुल मिलाकर गुरु तेगबहादुर का ब्रह्म व्यक्तित्व की अपेक्षा अस्तित्व रूप में अधिक उभरता है। ब्रह्म और जीव के बीच न प्रणय, न मैत्री और न सेवा का सम्बन्ध उनके पदों में स्थापित किया गया है। जीव को उसका भजन करने का ही उपदेश किया गया है। इन पदों का ब्रह्म जीव के समीप तो है उसका आत्मीय नहीं।

मानवीय सम्बन्धों का मिथ्यात्व—सृष्टि की नश्वरता से ही सम्बद्ध दूसरा विषय है सामाजिक सम्बन्धों का मिथ्यात्व। सृष्टि की अभावात्मकता और नश्वरता की अतिशय अनुभूति का प्रभाव मानवीय मनोभावों की उष्णता पर अच्छा नहीं पड़ता। हम देख चुके हैं कि जीव और ब्रह्म के बीच जो सम्बन्ध गुरु तेगबहादुर के पदों में स्थापित किया गया है वह मानवीय मनोवेगों पर आधारित नही है। गुरु तेगबहादुर गृहस्थ जीवन के सम्बन्धो के भी परित्याग—कम से कम उनकी उष्णता के परित्याग—का ही उपदेश देते है। इस परित्याग की प्रेरणा भी उन्होंने नश्वर मानव जीवन की नश्वरता से ही प्राप्त की है। मृत्यु के समय दारा, मीत, सुत सभी साथ छोड़ देते हैं, अतः इनसे प्रेम बढ़ाना उचित नहीं। गुरु तेगबहादुर ने स्पष्ट शब्दों मे इनके त्याग की अनुमति तो कही नही दी, किन्तु उनके शब्दों का समूचा प्रभाव गृहस्थ-सम्बन्धो की उष्णता का पोषण नहीं करता। यह ठीक है कि वे एक स्थान पर जिज्ञासु को वन-प्रस्थान से रोकते हैं, किन्तु वे उसे जगत की झूठी प्रीति के विषय में भी बार-बार संकेत कर देते हैं। उनके वर्जन का बल स्पष्टतः गृहस्थ पर है, वन-प्रस्थान पर नही।[2] एकाध स्थान पर वे वैरागी के भाग्य को सराहते भी दिखाई देते हैं—

> जिहि विखिआ सगली तजी लीओ भेख बैराग
> कहु नानक सुन रे मना तिह नर माथै भाग ॥१७॥
> जिहि माइआ ममता तजी सभ ते भइओ उदासु
> कहु नानक सुन रे मना तिहि घटि ब्रह्म निवासु ॥१८॥
> आदि ग्रंथ, पृ० १४२७

उदासीनता—वास्तव में गुरु तेगबहादुर को न बन्धन प्रिय है न त्याग, वे संसार के प्रति उदासीनता-समन्वित समत्व दृष्टि का उपदेश देते हैं। दूसरे शब्दो में

---

१. (क) सगल जनमु बिखिअनि सिउ खोइआ सिमरिओ नाहि कन्हाई— आदिग्रंथ पृ० १००८
(ख) कहु नानक इह बिपत मैं टेक एक रघुनाथ—आदि ग्रंथ पृ० १४२६,

२. तुलसी का एक पद है—

अन्तहु तोहि तजेंगे पामर तू न तजै अबही ते।
(विनय पत्रिका, पृ० ३११, गीता प्रेस, संस्करण त्रयोदश, सं० २००१)

गुरु जी इसके पूर्वार्ध से पूर्णतः सहमत हैं। यही बात लगभग ऐसे शब्दों में और इसी स्वर में उन्होंने बार-बार कही है, किन्तु इसके उत्तरार्ध के विषय में वे मौन हैं। यहाँ तुलसी और तेगबहादुर की स्थिति का अन्तर जान लेना भी उपयुक्त होगा। जहाँ तुलसी का गृह-त्याग हो चुका था, वहाँ तेगबहादुर जीवन पर्यन्त गृहस्थ रहे। हाँ, उनके जीवन का एक बहुत बड़ा भाग परिवार से दूर व्यतीत हुआ।

वे वस्तु और मन के सम्बन्ध मे वस्तु की अपेक्षा मन को महत्त्व देते हैं। वस्तु का सौंदर्य अथवा वैरूप्य महत्त्वपूर्ण नही, महत्त्वपूर्ण है उसके सौंदर्य-वैरूप्य के प्रति मन की उदासीनता। यही उदासीनता हमे ममार के प्रति समत्व दृष्टि अपनाने मे सहायता देती है। गुरु जी ने समत्व दृष्टि की प्राप्ति और मुक्तावस्था मे कोई अन्तर नही माना—

१. हरख सोग जाकै नही बैरी मीत समानि ।।
कहु नानक सुनि रे मना मुकति ताहि तै जान ।।१५।।
आदि ग्रंथ, पृ० १४२७

२ हरख सोग ते रहै अतीता तिनि जगि ततु पछाना ।।
उसतति निंदा दोऊ तिआगे खोजै पदु निरबाना ।।
आदि ग्रंथ, पृ० २१६

३. हरख सोग परसै जिह नाहिन सो मूरति है देवा ।।
सुरग नरक अमृत बिखु ए सम तिउ कचन अरु पैसा ।।
उसतति निंदा ए सम जा के लोभ मोह फुनि तैसा ।।
दुखु सुखु ए बाधे जिह नाहिन तिह तुम जानउ गिआनी ।।
नानक मुकति ताह तुम मानउ, इह विधि को जो प्रानी ।।
—आदि ग्रन्थ, पृ० २२०

साराश यह है कि गुरु तेगबहादुर की वाणी के प्रमुख विषय निम्नलिखित हैं—

(१) ससार की नश्वरता ,
(२) मानवीय सम्बन्धो का मिथ्यात्त्व , और
(३) ससार के प्रति उदासीन रह कर ईश्वर चिन्तन।

तेगबहादुर की वाणी का ऊपरी दृष्टि से अध्ययन करने पर जिस प्रवृत्ति का प्रभाव पडने की सर्वाधिक आशका हो सकती है वह है पलायनवादी प्रवृत्ति। निस्सदेह, ससार को नश्वर और मानवीय सम्बधो को खोखला समझने वाली, ससार के हर्ष-शोक के प्रति उदासीन रहने का उपदेश देने वाली यह वाणी पलायनवादी प्रवृत्ति की द्योतक प्रतीत होती है। और जब इस वाणी के रचयिता के जीवन चरित का अध्ययन करने पर पता चलता है कि वह ससार के हर्ष-शोक के प्रति पलायनवादी उदासीनता नही अपना सका, हिन्दुत्व पर विपदा पडने पर वह सर्वोच्च बलिदान देने से भी नही चूका तो उसकी कथनी और करनी मे स्पष्ट व्यवधान की समस्या भी उठ खडी होती है। भले ही उसकी करनी कथनी से उच्च है—उच्च होकर भी वह भिन्न तो है हो। इस विरोधाभास का समाधान करने के लिये हमे पलायनवादी प्रवृत्ति का ही विश्लेषण करना होगा।

पलायन, कठोर परिस्थिति से बचाव प्राप्त करने के लिये कम कठोर परिस्थिति की शरण में जाने की प्रवृत्ति को कहते हैं। रीतिकालीन साहित्य को पलायनवादी साहित्य कहना किसी हद तक न्यायसगत होगा। राजनीतिक पराभव और

सामाजिक अध.पतन से पराङ्मुख होकर शृंगार की शरण ग्रहण करने वाले साहित्य पर यदि पलायनवाद का आरोप लगाया जाये तो अनुपयुक्त न होगा। गुरु तेगबहादुर का प्रादुर्भाव भी रीतिकाल मे ही हुआ। धार्मिक कट्टरता से प्रेरित राजनीतिक आतंक उन दिनो सम्पूर्ण हिन्दु-जाति के लिए खतरा बना हुआ था। क्या इस कठोर-कटु-यथार्थ से भाग कर उदासीनता की पर्याय मुक्ति की कामना करने वाला साहित्य पलायनवादी नही ?— यह प्रश्न किया जा सकता है।

यह मानना होगा कि गुरु तेगबहादुर के साहित्य मे तत्कालीन सामाजिक यथार्थ के प्रति उस प्रखर जागरूकता का परिचय नही मिलता जिसके दर्शन उनसे पूर्व गुरु नानक की वाणी मे होते है। इसमे लोकमगल की साधनावस्था का उल्लेख नही। यह क्रातिकारी साहित्य नही। किन्तु क्या यह पलायनवादी है ?

पलायन, जैसा कि ऊपर कहा गया है, कठिन परिस्थिति से सरल परिस्थिति की ओर होता है। रीतिकाल का शृंगार-साहित्य नारी की रूपराशि मे शरण ग्रहण करता है। तेगबहादुर का साहित्य नारी (गृहस्थी, मीत, सुत) से दौड कर समत्व की शरण ग्रहण का उपदेश देता है। यह कठिन से सरल की ओर पलायन नही, यह सरल से कठिन की ओर यात्रा है। यह तत्कालीन शृंगारमूलक काव्य प्रवृत्ति के प्रति विरोध का स्वर है, दूसरे शब्दो मे तत्कालीन पलायनवादी प्रवृत्ति का विरोध है। यह तत्कालीन व्यापक कामुकता से समाज को बचाने का परोक्ष प्रयास है। इस वाणी की 'उदासीनता' सामाजिक यथार्थ के प्रति इतनी उदासीन नही है।

एक और बात यहाँ विचारणीय है। पलायनवादी रचना मे दिशा-विरोध का परिचय तो मिलता है, निजी गतव्यस्थल का नही। ऐसी रचना किसी भयावह विपदा से त्रसित होकर उससे विरोधी दिशा मे भागती हुई तो प्रतीत होती है किन्तु उसका-प्राप्तव्य क्या है, इसका पता नही चलता। इस आध्यात्मिक रचना मे अन्तिम उद्देश्य—मुक्ति, अथवा मृत्यु से निपटने का भाव, अधूमिल रूप से स्पष्ट रहता है। अतः 'सुत, दारा, सपति सगल' का परित्याग अथवा परदारा, परनिन्दा से सम्बध-विच्छेद-बचाव नही है, यह यम से जूझने की तैयारी है। जब काल आयेगा तो कहीं भागा न जायेगा, अतः अब ही उससे निपटने के साधन जुटाओ—

> बीत जैहै, बीत जैहै, जनमु अकाज रे।
> निस दिन सुन कै पुरान ॥
> सूझत नह रे अजान ॥
> काल तउ पहूचिओ आनि कहा जैहै भाजि रे ॥
>
> —आदि ग्रन्थ, पृ० १३५२-३

खण्डन का अभाव— ऊपर कहा जा चुका है कि गुरु तेगबहादुर का विषय-क्षेत्र पूर्ववर्ती गुरुओं की अपेक्षा सीमित है। उन्होंने कई ऐसे विषयों को नहीं छुआ जो पूर्ववर्ती गुरुओ के प्रिय रहे हैं। उनमे एक है खण्डन-मण्डन। वस्तुतः खण्डन प्रवृत्ति का दमन गुरु अर्जुन के समय से ही हो रहा था। इसके कुछ ऐतिहासिक कारण भी थे। अकबर की मृत्यु के पश्चात् इस्लाम अधिकाधिक उग्र और अन्यमतावलम्बियो

के प्रति असहिष्णु होता गया। उसके खण्डन का अर्थ था उसकी उग्रता और असहिष्णुता मे और अभिवृद्धि। दूसरी ओर पजाब मे इस्लाम द्वारा आतंकित हिन्दु धर्म के अतिरिक्त खण्डन का अर्थ था उसकी जिजीविषा को दुर्बल बनाना। अब ऐतिहासिक तकाजा खण्डन का नही था, अपितु हिन्दु जाति को एकत्रित करके इस्लाम के राजनीतिक-धार्मिक-सांस्कृतिक आक्रमण को रोकने के योग्य बनाना था। इस बीच खडनादि द्वारा इस्लामी असहिष्णुता को अनावश्यक आमन्त्रण न देना ही समय की मांग थी।

वेद-पुराण-तीर्थ— नवम गुरु तक आते आते गुरु-मत मे निश्चय ही पुराण, वेद आदि के प्रति भुकाव-सा पैदा हो गया था। गुरु तेगबहादुर वेद, पुराण, स्मृतियों आदि से प्रेरणा ग्रहण करना सर्वथा उचित समझते हैं। इनके प्रति विद्रोह का भाव तो इनकी रचना मे बिलकुल दिखाई नही देता। उन्हें शिकायत है तो केवल इतनी कि चचल मन वेद-पुराण आदि के मार्ग पर चलता हुआ (भी) हरि-गुण-गायन क्यो नही करता—

(१) कोई भाई भूलिओ मनु समझावे।
वेद पुरान साध मग सुनि कर निमख न हरि गुन गावे।[१]

(२) वेद पुरान पडे (पढे) को इह गुन सिमरे हरि को नामा।[२]

(३) माई मनु मेरो वसि नाहि।
निस बासुर बिखिअन कउ धावत किहि बिधि रोकउ ताहि।
वेद पुरान सिमृति के मत सुनि निमल न हीए बसावै।
पर धन परदारा सिउ रचिओ बिरथा जनमु सिरावै।[३]

(४) बीत जैहै बीत जैहै जनम अकाज रे
निस दिन सुन के पुरान॥
समझत नह रे अजान॥
काल तउ पहूचियो आनि
कहा जैहै भाजि रे॥[४]

इन उदाहरणों से इतना तो स्पष्ट है कि वेद-पुराण आदि का पठन-पाठन साधन मात्र है, साध्य हरि-गुण-गायन ही है। इसी प्रकार वे तीर्थादि को भी साधन के रूप मे अपनाते दिखाई देते हैं। तीर्थ व्यर्थ तभी है जब तीर्थ करने पर भी मन चाचल्य-त्याग न करे —

(१) कहा भइओ तीरथ ब्रत कीए राम सरनि नही आवै[५]

(२) तीरथ करै ब्रत फुनि राखै नह मनूआ बस जाको[६]

१. आदि ग्रन्थ, पृ० २२०
२. आदि ग्रन्थ, पृ० २२०
३. आदि ग्रन्थ, पृ० ६३२-३
४. आदि ग्रन्थ, पृ० १३५२-३
५. आदि ग्रन्थ, पृ० ८३०
६. आदि ग्रन्थ, पृ० ८३१

(३) तीरथ वरत अरु दान करि मन मैं धर गुमान
नानक निहफल जात तिहि जिउ कुंवर इसनानु[1]

राम भजन को सर्वोपरि मानते हुए भी वे तीर्थ के महत्त्व को घटाते नही। मृत्यु के समय मन को तीर्थ न करने का इतना ही पश्चात्ताप रहता है जितना हरि भजन न करने का—

मन को मन ही माहि रही
न हरि भजे न तीर्थ सेवे चोटी काल गहि ।[2]

शैली—मानवीय परिस्थितियो एव प्राकृतिक दृश्यो का अभाव-सा होने के कारण कविता के चित्रहीन होने की आशका बनी रहती है। गुरु तेगबहादुर ने कुछ पौराणिक प्रसगो द्वारा, कुछ सामान्य मानवीय परिस्थितियों द्वारा और कुछ अलकारों द्वारा इस कमी की पूर्ति करने का यत्न किया है।

पौराणिक प्रसग—सूर और तुलसी ने भी अपने विनय पदो मे पौराणिक प्रसगो का प्रचुर मात्रा मे प्रयोग किया है। गुरु तेगबहादुर ने इनका बहुत कम प्रयोग किया है। उनकी सारी रचना मे गज, ग्राह, नारद, ध्रुव, द्रौपदी, अजामिल, गणिका का ही उल्लेख है। इन प्रसगो मे से किसी एक का ब्यौरा उन्होने प्रस्तुत नहीं किया। हल्का सा सकेत करके शेष पाठक की कल्पना पर छोड देते हैं—

१ गज की त्रास मिटी छिनहु महि, जब ही राम बखानो
२ नारद कहत सुनत ध्रुव बारिक भजन माहि लिपटानो
३ अजामलु कउ अतकाल मे नारायन सुधि आई
४ पचाली को राजसभा मे राम नाम सुधि आई

कुल मिला कर ये पौराणिक प्रसग चित्र-सृष्टि मे बहुत कम हद तक ही सहायक हुए हैं।

मानवीय परिस्थितियां—गुरु तेगबहादुर की काव्य रचना मे पात्र और परिस्थितियो के दर्शन भी कही-कही होते हैं। विशेष पात्र एव विशेष परिस्थितियां तो उनके काव्य मे हैं ही नहीं, कुछ सामान्य परिस्थितियो के लघु चित्र उनकी रचना मे अवश्य मिलते हैं—

१ बिरधि भइओ सूझै नही कालु पहूचिओ आन
२ सिर कपिओ पग डगमगै नैन जोति ते हीन

(इस चित्र जैसा लाघव और घनत्व उनके किसी चित्र मे नहीं)

---

१ आदि ग्रन्थ, पृ० १४२८
२ विचित्र नाटक के साक्ष्य से भी प्रतीत होता है कि गुरु तेगबहादुर की तीर्थ स्नान के प्रति विशेष रुचि रही है—

मुर पित (मेरा पिता-तेगबहादुर) पूरब कीयसि पयाना
भांति-भांति के तीरथि न्हाना
जब ही जात त्रिबेणी भए
पुन दान दिन करत बितए
—दशमग्रन्थ, पृष्ठ ५६

तदुपरान्त भाई सुक्खासिंह लिखित गुरु विलास में गुरु तेगबहादुर के तीर्थाटन का अपेक्षाकृत विस्तार से उल्लेख किया गया है।

३ सुख के हेति बहुतु दुख पावत सेव करत जन जन की
४ कहा भइओ जउ मूडु मुडाइओ भगवउ कीनो भेसु
५ मन ते प्रान होत जब निआरे टेरत प्रति पुकारि
आध घरी कोऊ नहि राखै घरि ते देत निकारि
६. घर की नारि बहुत हित जा सिउ सदा रहत सग लागी
जब ही हस तजी इह काइआ प्रत प्रेत करि भागी

गुरु तेगबहादुर का मन ब्यौरे के चित्रण म नही रमता है। अत उनके चित्र सामान्य, सक्षिप्त, सरल और स्पष्ट रहते हैं।

अलकार—गुरु तेगबहादुर की शैली उनके विषय के अनुरूप ही सवथा सयत और सतुलित है। उनकी रचना हर प्रकार के चाचल्य एव प्रदशन स बचने का व्रत सा लिए हुए है। 'बचन मन' को नाना रूपामाया के आकर्षण से बरजने वाली उनकी रचना स्वय भाषा की नानारूपा केलि क्रीडा के मोह मे नहीं पडी। उसमे प्रदशन की तडक भडक नही, सयम की गरिमा है।

अलकारो का प्रयोग अधिकतर भाव म अतिरेक एव तीव्रता लाने के लिए, विचार को बिम्बित तथा स्पष्ट करने के लिए अथवा कवि के भाषाधिकार के प्रदर्शन के लिए किया जाता है। प्रदशन विषयक उद्देश्य तो गुरु तेगबहादुर की रचना से स्वत बहिष्कृत है। भावातिरेक उनके विषयानुकूल नही। तीव्रता भी वस्तुत अतिरेक का ही अग है। उसके दर्शन भी इस रचना मे दुर्लभ से हैं। हां, विचारो को बिम्बित करने के उद्देश्य से ही गुरु तेगबहादुर ने अलकारो का प्रयोग किया है।

यह प्रयोग भी गुण और मात्रा दोनो दृष्टियों से बहुत सयत रहा है। अतिशयमूलक तथा विरोधमूलक अलकारो का तो सवथा अभाव है केवल सादृश्यमूलक अलकारो को ही स्थान मिल पाया है। और यह कदाचित् आवश्यक भी था। मानवीय पात्रो एव परिस्थितियो से रहित, सम्पूर्ण-सृष्टि की अभावात्मकता की प्रचारक यह रचना सादृश्यमूलक अलकारो के बिना बिम्बाभाव के कारण, कदाचित काव्य-श्रेणी म आ ही न सकती।

तो भी, गुरु जी के अलकार प्रयोग मे प्रयास का सर्वथा अभाव है। किसी नये उपमान के दशन तो उनकी रचना म होते ही नही, पुराने उपमानो मे भी केवल उ ही का प्रयोग किया है जो अपने सारल्य और नित्यप्रयोग के कारण जनसाधारण की भाषा का अभि न अग बन गये हैं। कुछ एक उदाहरण इस प्रकार हैं—

नश्वर ससार

१ झूठा तनु साचा करि मानिओ जिउ सुपना रैनाई
२ जो दीसै सो सगल बिनासै, जिउ बादर की छाई
३ बारू भीति बनाई रचि पचि रहत नही दिन चारि
तैसे ही इह सुख माइआ के उरझिउ कहा गवारि

४. छिन छिन अउध बिहातु है फूटे घट जिउ पानी
५. बिनसत नह लगै बार ओरे सम गात है
६. जैसे जल ते बुदबुदा उपजै बिनसै नीत
जग रचना तैसी रची कहु नानक सुन मीत
७. मृग तृसना जिउ झूठा इह जग
८. इहु जगु धूँए का पहार।

अधम मन

१. दुआरहि दुआर सुआन जिउ डोलत नह सुध राम भजन की
२. सुआन पूछ जिउ होइ न सूधो कहिओ न कान धरै
३. जैसे पाहनि जल महि राखिओ भेदै नहि तिहि पानी
तैसे ही तुम ताहि पछानउ भगति हीन जो प्रानी
४. मनु माइआ मै रमि रहिओ निकसत नाहिन मीत
नानक मूरति चित्र जिउ छाडित नाहनि मीत
५. एक भगति भगवान जिह प्रानी के नाहि मन
जैसे सूकरु सुआन नानक मानो ताहि तन
६. पशु जिउ उदरु भरउ

भक्त-भगवान-भजन

१. नानक लीन भइओ गोविन्द सिउ जिउ पानी संगि पानी
२. पुहप मधि जिउ बासु बसतु है मुकर माहि जैसे छाई
३. कहु नानक हरि भजु मना जिहि विधि जल को मीन
४. स्वामी को गृहु जिउ सदा सुआन तजत नहीं नित
नानक इह विधि हरि भजउ, इक मनि हुइ इकि चित

स्फुट

१. माइआ मोह महा संकट बन
२. रतनु गिआनु, रतनु जनमु, नाम रतनु, रतनु रामु
३. महा मोह अगिआनु तिमिर
४. काही जम की फासी
५. छुटी न मन की काई
६. काल-बिआलु जिउ परिओ डोलै मुख पसारे मीत

जैसे कि ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है सादृश्य मूलक अलकारों मे से भी गुरु जी ने केवल उपमा और रूपक का प्रयोग किया है और वह भी बहुत कम मात्रा में, सम्पूर्ण रचना (५९ पद, ५७ दोहे) मे ३० बार से भी कम।

उनके सभी उपमान मानवेतर सृष्टि—मुख्यतः पशु और प्रकृति—से लिये

गये हैं। मानव के सादृश्य के लिये उन्होंने पशुओं—तथापि प्रशोभन को चुना है, और नश्वरता के लिये क्षण-भगुर प्राकृतिक पदार्थों एव दृश्यों को।

इन तीन साधनों[1]—पौराणिक प्रसगो, सामान्य मानवीय परिस्थितियों तथा अलकारों—के द्वारा उन्होंने काव्य मे बिम्ब-रचना का प्रयास तो किया है, किन्तु कुल मिला कर उनकी रचना बिम्ब-समृद्धि का प्रभाव नही डालती। उनके कई एक पदों मे तो चित्रो का सर्वथा अभाव है। यहाँ दो उदाहरण देने ही पर्याप्त होंगे—

(क) साधो मन का मानु तिआगउ।
काम क्रोधु सगति दुरजन की ताते अहिनिसि भागउ ॥१॥
॥ रहाउ ॥
सुख दुखु दोनो सम करि जानै अउर मानु उपमाना ॥
हरख सोग ते रहै अतीता तिनि जगि ततु पछाना
उसतति निंदा दोऊ तिआगै, खोजै पद निरवाना
जन नानक इहु खेलु कठनु है किनहू गुरमुखि जाना

(ख) मन की मन ही माहि रही ॥
ना हरि भजे न तीरथ सेवे चोटी कालि गही ॥१॥ ॥रहाउ ॥
दारा मीत पूत रथ सम्पति धन पूरन सब मही ॥
अवर सगल मिथिआ ए जानउ भजनु रामु को सही ॥१॥
फिरत फिरत बहुते जुग हारिओ मानस देह लही ॥
नानक कहत मिलन की बरीआ सिमरत कहा नही ॥२॥

गुरु तेगबहादुर के शब्द (पद) मूल स्वर की दृष्टि से दो श्रेणियों मे विभक्त किये जा सकते हैं—

१ सहानुभूति मूलक,
२ उपदेश मूलक।

इन दोनो प्रकार के शब्दो मे दान और ग्रहण के भाव स्पष्टत झलकते दिखाई देते हैं। कवि अपने अन्तस की विपदा दूसरो को दिखा कर उनसे सहानुभूति और उपदेश की याचना भी करता है तथा उनके अन्तस् मे झाँक कर उनकी विपदा को समझ कर उन्हें सहानुभूति एव उपदेश प्रदान करने मे भी झिझक का अनुभव नहीं करता। दोनों प्रकार के शब्दो मे सामीप्य एव आत्मीयता स्पष्ट परिलक्षित होती है। ये दोनो कदाचित उनकी रचना के प्रमुख गुण हैं। सहानुभूतिमूलक पदो मे वे श्रोता के स्तर पर उतर कर बडी विनम्रता से उनसे साहाय्य-याचना करते हैं—

१ कोऊ भाई भूलिओ मनु समझावै
२ बिरथा (व्यथा) कहउ कउन सिउ मनकी
३ यह मनु नैक न कहिउ करै
सीख सिखाइ रहिओ अपनी सी दुरमति तै न टरै

---

१. क्रिया-पदों का लाक्षणिक प्रयोग ऐसा ही एक और साधन है जिसका उल्लेख भाषा शीर्षक के नीचे किया गया है।

४ अब मैं कउनु उपाउ करउ
  जिह विधि मन को ससा चूकै भउ निधि पारि परउ
५ कहउ कहा अपनी अधमाई
  उरझिओ कनक कामनी के रस नह कीरति प्रभु गाई
६ अब मैं कहा करउ री माई
  सगल जनमु बिसिअनि सिउ खोइआ
  सिमरिओ नाहि कन्हाई
६ पापी हीऐ मैं कामु बसाई
  मनु चचलु यातै गहिओ न जाइ

कई बार श्रोता-वक्ता एक ही व्यक्ति रहता है और आत्मीयता का रग और भी गहरा हो जाता है। ऐसी स्थिति मे ग्लानि, पश्चात्ताप, आत्म-प्रकाशन अधिक सदाशयता से हो सकता है। स्वसबोधन के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

१ मन रे कउनु कुमति तै लीनी
  परदारा निंदिआ रस रचिउ
  राम भगति नही कीनी
२ मन रे गहिओ न गुर उपदेसु।
  कहा भइओ जउ मूडु मुडाइओ भगवउ कीनो भेसु ॥
  साचि छाडि कै झूठह लागिओ जनमु अकारथ खोइओ
  करि परपच उदर निज पोखिओ पसु की निआई सोइओ
३ मन करि कबहू न हरि गुन गाइओ
  बिखिआसकति रहिओ निस बासुर कीनो अपनो भाइओ

× × ×

परनिंदिआ कारनि बहु धावत समझिओ नह समझाइओ
कहा कहउ मैं अपनी करनी जिह विधि जव युगवाइओ

जब कभी वे दूसरे के रूप की चाह रैते अथवा उसे सहानुभूति के शब्द कहते हैं तो भी सरल सामीप्य का भाव बना रहता है। अपने श्रोता को वे प्रीतम, साधो, नर, प्रानी आदि शब्दो से सम्बोधित करते हैं—

नर अचेत पाप ते डरु रे
दीन दइआल सगल भै भजन
सरनि ताहि तुम परु रे

उपदेशमूलक पदो मे भी यह सामीप्य बना रहता है। उपदेष्टा और उपदिष्ट में मित्र का-सा सम्बन्ध प्रतीत होता है। ऐसी स्थिति मे यदा-कदा उग्र शब्द, मूर्ख, गवार सम्बोधन रूप मे, स्वान, सूकर उपमान रूप मे—भी अखरते नही। अनुनय की शक्ति और अहमन्यता का अभाव उनके उपदेशमूलक पदो के मुख्य गुण हैं। एक उदाहरण इस प्रकार है—

१. चेतना है तउ चेत लै निसि दिनि मैं प्रानी
छिन-छिन अउध बिहातु है फूटे घट जिउ पानी ॥१॥ रहाउ॥
हरि गुन काहि न गावही मूरख अगिग्राना।
झूठे लालचि लागि के नहि मरनु पछाना ॥
अजहू कछु बिगरिओ नही जो प्रभ गुन गावै।
कहु नानक तिहि भजन ते निरभै पद पावै ॥

इसी सहज आत्मीयता, सामीप्य, एव आत्म-अनावरण के कारण उनके उपदेशमूलक पदो म भी गीति-तत्त्व की कमी नहीं होने पाती।

भाषा

गुरु अर्जुन तक आते-आते गुरुओ द्वारा शुद्ध-हिन्दी मे लिखने की परम्परा स्थिर हो चुकी थी। मिश्रित भाषा म लिखने की रुचि कम हो रही थी। शुद्ध-हिन्दी अथवा ठेठ पजाबी को ही काव्य रचना का माध्यम बनाया जा रहा था।

गुरु तेगबहादुर इसी शुद्ध-भाषा परपरा के अनुगामी हैं। उन्होंने न केवल मिश्रित भाषा मे रचना नही की, बल्कि ठेठ पजाबी को भी काव्य रचना का माध्यम नहीं बनाया। इस प्रकार वे प्रथम सिक्ख गुरु हैं जिन्होंने विशुद्ध और केवल हिन्दी में रचना की है। पूर्ववर्ती गुरुओ से प्राप्त परम्परा को पुष्ट करने मे उनके दीर्घकाल तक हिन्दीभाषा भाषी क्षेत्र मे निवास का भी निस्सदेह हाथ रहा होगा।

गुरु तेगबहादुर की भाषा पूर्ववर्ती गुरुओं की अपेक्षा अधिक केन्द्रोन्मुख है। उसमे पजाबियत का विशेष आग्रह नही है। उनकी भाषा तद्भव प्रधान होती हुई भी पूर्ववर्ती गुरुओ की अपेक्षा तत्सम की ओर अधिक झुकाव रखती है। पहले गुरुओं की भाषा की मुख्य विशिष्टता है फारसी और देशज शब्दो का प्रचुर प्रयोग। गुरु तेगबहादुर की सम्पूर्ण रचना मे देशज और फारसी शब्दों का पूर्ण बहिष्कार है। देशज अथवा फारसी शब्द अपवाद रूप मे भी दिखाई नही देते। एक और स्पष्ट अन्तर यह है कि किसी शब्द की रूप विकृति नहीं हुई है। अत उनकी भाषा में शब्दो का वह ग्राम्यीकृत रूप दिखाई नही देता जो पूर्ववर्ती गुरुओ की मुख्य विशेषता रही है। तेगबहादुर की भाषा स्पष्टत अधिक नागरिक, अधिक केन्द्रोन्मुख है।

अपवाद रूप मे कुछ शब्द ऐसे आगये हैं जो इसका सम्बन्ध पूर्व परम्परा से स्थापित करते है।—बिरथा, निदिग्रा, असथिर, सखनावै, बहुते। हिन्दी मे बिरथा-वृथा का तद्भव रूप है। पजाबी मे यह वृथा एव व्यथा दोनो का तद्भव रूप है। गुरु तेगबहादुर द्वारा यह शब्द दोनो अर्थों मे ही प्रयुक्त हुआ है।

(क) दुरलभ देह पाइ मानस की बिरथा जन्मु सिरावै (वृथा)
(ख) बिरथा कहउ कउन सिउ मन की (व्यथा)

(२) गुर वाणी मे असथिर, असथित, असनेहु—स्थिर, स्थित, स्नेह आदि का ही बिगडा हुआ रूप है। कदाचित ऐसा उच्चारणात्मक सुभीते के लिये ही हुआ है। भाषा कोष की दृष्टि से अस्थिर (असथिर) स्थिर का ठीक विपरीतार्थक शब्द है।

आदि ग्रन्थ मे असथिर का प्रयोग स्थिर अर्थ में अनेक बार हुआ है। गुरु तेगबहादुर ने भी इसी अर्थ मे इसका प्रयोग किया है —

(क) इक विनसै इक असथिरु मानै
अचरज लखिओ न जाई

(३) 'निंदिआ' (उच्चारण निन्द्या) निन्दा का पजाबी तद्भव है। ब्रज, अवधी मे इस रूप का प्रयोग देखने मे नही आता। गुरु तेगबहादुर ने इस रूप का (ततसम रूप का भी) प्रयोग किया है—

(क) परदारा निंदिआ रस रचिओ राम भगति नही कीनी
(ख) उसतति निंदा दोऊ तियागै खोजै पदु निरवाना

गुरु तेगबहादुर की सम्पूर्ण वाणी मे 'सखनावै' और 'बहुते' दो ऐसे शब्द हैं जो उनके पजाबी होने के साक्षी हैं। सखना (पजाबी) का अर्थ है रीता। 'सखनावै' इस विशेषण का ब्रजानुकूल क्रिया रूप है—

रीते भरे भरे सखनावै यह ता को विवहारो

बहुते (बहुत ही) बहुत का शुद्ध पंजाबी रूप है। इस रूप में यह ब्रज क्षेत्र में प्रचलित नहीं रहा...

फिरत फिरत बहुते जुग हारिओ
मानस देह लही पृष्ठ १७

गुरु जी ने अभिधा शक्ति का ही अधिकतर प्रयोग किया है। उपदेशमूलक रचना के लिये अभिधा शक्ति ही अधिक उपयुक्त रहती है। अभिव्यक्ति की सरलता की ओर भी उनका ध्यान रहा है। तो भी सरलता के क्षेत्र मे रह कर भाषा का जितना लाक्षणिक प्रयोग किया जा सकता है वह गुरु तेगबहादुर ने किया है। लाक्षणिक क्रिया-पदो (अथवा कही-कही क्रियाविशेषणो) द्वारा गुरु जी ने हल्के चित्रों की सृष्टि की हैं। कुछ एक उदाहरण इस प्रकार हैं :—

१. साधो इहु मनु गहिओ न जाई
२. करि परपच जगत कउ डहकै
३. हित सिउ बांधिओ चीत
४. चोटी काल गही
५. तनु जारा
६. पावन नाम जगत मैं हरि को कबहू नाहि संभारा
७. अहिनिसि अउध घटै नही जानै भइओ लोभ सग हउरा
८. पूत मीत माया ममता सिउ इह विधि आपु बंधावै

कहने की आवश्यकता नही कि इतनी लाक्षणिकता जनसाधारण की भाषा का सहज अग है और इसके लिए कवि को विशेष आयास नही करना पडा। उनकी रचना मे इस प्रकार की सहज लाक्षणिकता का प्रयोग भी बहुत कम मात्रा मे हो पाया है। परिणामस्वरूप भाषा हर प्रकार के प्रदर्शन और शोखी से मुक्त है।

सरल एव आयास रहित होने पर भी उनकी भाषा नैपुण्य, लाघव और घनत्व का प्रभाव डालती है। इसमे चुस्ती तो नही, किन्तु एक सहज कसावट अवश्य है। कुछ एव पक्तियो मे तो लोकोक्ति बन जाने की शक्ति है—

(क) मैं काहू कउ देत नहि नहि मैं मानत आनि
(ख) सुख मे बहु सगी भए दुख मे सग न कोइ
(ग) नर चाहत कछु अउर अउरै की अउरै भई
(घ) चिन्ता ताकी कीजिए जो अनहोनी होइ पृ० ६६
(ङ) सग सखा सब तजि गए कोऊ न निबहिओ साथ पृ० ७०

किसी-किसी स्थान मे एक पक्ति मे ही सम्पूर्ण सयुक्त चित्र देने की शक्ति इनकी भाषा मे है—

(क) सिर कपिओ पग डगमगै नैन जोति तै हीन
(ख) जैसे जल ते बुदबुदा उपजै बिनसै नीत

उनके पदो एव दोहो की पक्तियाँ निरपवाद रूप से आत्म-निर्भर हैं। किसी पक्ति का भाव दूसरी पक्ति तक के लिए उठा नही रखा गया।

गुरु गोबिंदसिंह

सिक्ख धर्म के दशम गुरु श्री गोबिंदसिंह का जन्म बिहार प्रात के पटना नामक स्थान पर सवत् १७२६ वि० (सन् १६६६ ई०) को हुआ। अपने पिता के निधनोपरान्त सात वर्ष की आयु मे ही वे पजाब प्रात के आनन्दपुर नामक स्थान पर गुरुपदासीन हुए और सिक्ख सम्प्रदाय के धार्मिक, सास्कृतिक एव राजनीतिक पथ प्रदर्शन का दायित्व सभाला।

युद्ध और काव्य मे उनकी एक-सी रुचि थी। वस्तुत उन्होने युद्ध और काव्य का प्रयोग एक ही कार्य की सिद्धि के लिये किया। उन्होने अपना प्रथम युद्ध बीस वर्ष की आयु मे लडा और अपनी प्रथम काव्यकृति की रचना सोलह वर्ष की आयु मे की।[1] उन्होने न केवल स्वय काव्य रचना की, बल्कि अनेक कवियो को अपने दरबार मे आश्रय दिया। कई सस्कृत ग्रन्थो का अनुवाद उचित पारिश्रमिक दे कर भी कराया। आपने अपने कुछ शिष्यो को सस्कृत ग्रन्थो के अध्ययनार्थ काशी भी भेजा।

आपकी समस्त रचना 'दशम ग्रथ' मे सकलित है। इस ग्रथ मे हिन्दी (व्रज), पजाबी, एव फारसी भाषाओ की रचनायें सकलित हैं। हिन्दी भाषा की रचनाओ के नाम इस प्रकार हैं —

> जापु, अकाल उस्तति, विचित्र नाटक जिसमें [अपनी कथा, चण्डी चरित्र-द्वय, विष्णु के चौबीस अवतार, मीर महदी, नौ उपावतार, नौ शब्द (विष्णुपद) एव बत्तीस स्फुट सवैये सम्मिलित हैं], शस्त्रनाम माला, ज्ञान प्रबोध एव चरित्रोपाख्यान।

---

१. चण्डी चरित्र (प्रथम) के २२७ छन्द एव वार भगउती जी (पजाबी) की रचना सवत १७४२ (सन् १६८५) में हुई।

इनके अतिरिक्त कुछ स्फुट कवित्त सवैये भी दशम ग्रथ मे सकलित हैं। प्रस्तुत निबन्ध मे इन सभी रचनाग्रो का अध्ययन भक्ति-काव्य (गुरवाणी), पौराणिक प्रबन्ध, ऐतिहासिक प्रबन्ध एव उपाख्यान नामक अध्यायो मे किया गया है।

रचनाएं (भक्ति-काव्य)

दशम ग्रथ मे सकलित जिन रचनाग्रो को सम्पूर्णत भक्ति-काव्य के अन्तर्गत स्थान दिया जा सकता है, वे हैं—

१. जापु,
२. अकाल उस्तति,
३ स्फुट स्वैये (जागत जोत जपै निस बासुर), और
४ स्फुट विष्णुपद (रे मन ऐसो करि सन्यासा)।

किसी भी लेखक की भक्ति भावना को उसकी एकाध रचना तक ही सीमित नही किया जा सकता। भक्ति भावना उसके व्यक्तित्व का एक अभिन्न अग बनी रहती है और उसकी अभिव्यक्ति सर्वत्र—कही प्रत्यक्ष और कही परोक्ष रूप मे—हुआ करती है। दशम ग्रथ के लेखक की भक्ति भावना को भी सम्पूर्ण एव सम्यक् रूप से समझने के लिये हमे उसकी सम्पूर्ण कृति का ही आश्रय लेना होगा। इस सम्बन्ध मे उनकी तीन रचनायें तो ऐसी हैं, जिनके मगलाचरण उनकी भक्ति-भावना पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं और दो रचनाय ऐसी हैं जिनकी समाप्ति भगवान के गुणानुवादन के साथ हुई है। ये रचनायें हैं—

(क) १. विचित्र नाटक (अपनी कथा),
२ ज्ञान प्रबोध,
३ चरित्रोपाख्यान।

(ख) १ चण्डी चरित्र (२),
२ चरित्रोपाख्यान।

इनके अतिरिक्त चौबीस अवतार वर्णन मे भी स्थान-स्थान पर ब्रह्म, अवतार आदि के विषय मे लेखक की भावना अभिव्यक्त हुई है। जिस प्रकार तुलसीदास की भक्ति भावना को केवल गीतावली, कवितावली, विनयपत्रिका आदि मे सगृहीत मुक्तक पदो के आधार पर ही नही समझा जा सकता, इसके लिये मानस का परिशीलन भी अत्यावश्यक है, इसी प्रकार गुरु गोविन्द सिंह की भक्ति-विषयक धारणा का चित्र चौबीस अवतार वर्णन के अध्ययन के बिना अपूर्ण ही रहेगा।

किन्तु यहाँ एक आपत्ति की ओर सकेत कर देना आवश्यक है। तुलसीदास की सभी कृतियो मे परस्पर विरोध नही, सभी रचनाओ मे तुलसी के इष्ट मर्यादा पुरुषोत्तम (अवतार) राम हैं। दशम ग्रथ की सभी रचनाओ मे ऐसी सहज स्पष्ट एकता नहीं है। स्थूलत दशम ग्रथ के पाठक को तीन प्रकार के विरोधो की प्रतीति होती है—

१. दशम ग्रथ मे सकलित विभिन्न रचनाओ का परस्पर विरोध,

२ दशम ग्रंथ मे सकलित किसी एक ही प्रबन्ध के विषय मे लेखक के स्वविरोधी विचार;

३. दशम ग्रथ मे सकलित रचनाओ का सिक्ख 'श्रुति' आदि ग्रथ से विरोध।

इन सभी विरोधो, विशेषतः तृतीय विरोध के कारण, दशम ग्रथ के कर्त्तृत्व के विषय मे सन्देह उठाया जाता रहा है। जहाँ जापु, अकाल उस्तुति, स्फुट सवैयो और विष्णुपदो का प्रचलन सिक्ख श्रद्धालुओ में रहा है, वहाँ ज्ञान प्रबोध, चरित्रोपाख्यान, चौबीस अवतार, आदि का नही। हमारी धारणा है कि उपर्युक्त विरोध तत्त्वगत न होकर स्थूल अधिक हैं। वस्तुत सम्पूर्ण दशम ग्रथ मे एक ही भावना समाविष्ट है। इन विरोधो की अवास्तविकता दिखाने का अवसर भी इसी अध्याय मे आयेगा। यहाँ अभिप्रेत इतना ही है कि हमने दशमग्रथ के लेखक की भक्ति-भावना को सम्यक् रूपेण समझने के लिये उसकी सभी कृतियो का आश्रय लिया है।

दशम ग्रन्थ का ईश—गुरु गोविंदसिंह पूर्व गुरुओ के समान ही निर्गुण निराकार ब्रह्म मे विश्वास रखते हैं और उन्होंने ब्रह्म के अद्वैत रूप का ही बार-बार गुण-गान किया है। उन्होने अद्वैतवादियो के समान ब्रह्म (निर्विकल्प, निरुपाधि, निर्विकार) और ईश्वर (मायाच्छादित ब्रह्म) मे कोई अन्तर स्पष्ट रूप से नही माना है। ब्रह्म का वर्णन उन्होने अभावात्मक और भावात्मक उभय शैलियो में किया है जिससे उनके अकाल पुरुष मे गुणातीत ब्रह्म और कर्ता हर्ता ईश्वर दोनो का समावेश हो गया है।

स्पष्ट है कि उनके निर्गुण मे सगुण का अनिवार्य निराकरण नही। उन्होंने अवतारो के अस्तित्व को भी स्वीकार किया है, किन्तु उन्हें अकालपुरुष का समकक्ष नही माना। उन्होने 'सगुण' और 'अवतार' मे एक अन्तर बना रखा है। तो भी कही-कही ईश्वर का सगुण स्वरूप अवतार के बहुत निकट आ जाता है।

उन्होने सृष्टि मे फैले हुए ईश्वर का भी वर्णन किया है।[1] किन्तु यह सृष्टि मुख्यत मानव-सृष्टि ही है। गुरु नानक और दूसरे सिक्ख गुरुओ के समान मानवेतर सृष्टि में व्याप्त ब्रह्म का विस्तृत वर्णन करने की रुचि उनमे नही है।

एकाध स्थान पर वैदिक बहुदेववाद का आभास भी उनकी रचना मे मिलता है, वस्तुत वे बहुदेवो को एक, अद्वैत ब्रह्म के रूप मे ही ग्रहण करते हैं।[2] कुल मिला कर, वे अद्वैत ब्रह्म के ही विश्वासी हैं। जीव और ब्रह्म की तात्विक एकता

---

१ जत्र तत्र दिसा विसा हुए फैलिओ अनुरागु—दशम ग्रथ, पृ० ५

२ नमो सूरज सूरजे, नमो चन्द्र चन्द्रे
नमो राज राजे, नमो इन्द्र इन्द्रे
नमो अन्धकारे, नमो तेज तेजे
नमो बृन्द बृन्दे, नमो बीज बीजे—दशम ग्रथ, पृ० १०।

अभावात्मक दोनो प्रकार के विशेषणों से स्पष्ट है कि वह निराकार है। किन्तु इसी रचना मे कही-कही ऐसे सकेत भी मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि वह निराकार सगुण का निराकरण नही करता। उदाहरणार्थ 'जापु' मे भगवान को 'अवधूत वरन' और 'आजान बाहु' कहा गया है।[1] अकाल उस्तती में भी भगवान को 'अद्वै,' 'अलख', 'अवरण', 'अविकार' आदि विशेषणो से स्मरण किया गया है।[2] किन्तु इस रचना मे भी ऐसी पक्तियाँ मिलती हैं जिनसे सगुण भावना पोषित होती है।

> कहू गीत के गवैया, कहू बन के बजैया,
> कहू निरत के नचैया, कहू नर के आकार हो।[3]

इसी प्रकार विचित्र नाटक (अपनी कथा) एव ज्ञान प्रबोध के मगलाचरण मुख्यत निराकार का स्तवन करते हुए उसके सगुण, साकार रूप की ओर भी सकेत करते हैं।[4] राग रामकली म लिखे शब्दा (विष्णुपदो) म भी भगवान के निराकार और साकार दोनो रूपो का ही उल्लेख है। एक स्थान पर तो गुरु जी ने भगवान के 'सूछम' और 'बिरध' दो रूपो का उल्लेख करते हुए कहा है कि सूक्ष्म का वर्णन कठिन है, अत वे स्थूल का वर्णन करने का ही प्रयास करते है—

> सूछम रूप न बरना जाई
> बिरध सरूपहि कहौ बनाई।[5]

यहाँ प्रश्न उठता है कि 'बिरध स्वरूप' से गुरु जी का अभिप्राय क्या है। निर्गुण सतो एव सिक्ख गुरुओ की वाणी मे भी ऐसे उदाहरण मिलते है जहाँ उन्होने निराकार का वर्णन करते हुए उसे एक व्यक्तित्व देने का प्रयास किया। परिणामत ब्रह्म को आकार भी मिल गया है और गुण भी। क्या गुरु गोविन्दसिंह भी इसी पद्धति का अनुसरण कर रहे हैं अथवा वे भगवान के अवतार म विश्वास रखते हैं? और यदि अवतार मे उनका विश्वास है, तो उनकी अवतार-भावना का स्वरूप क्या है? क्या अवतार म उनका विश्वास किसी निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए है?

हमारी धारणा यह है कि उन्होने रहस्यवादी पद्धति का अनुसरण करते हुए निराकार का साकारवत् वर्णन भी किया है, एव उसके विभिन्न अवतारों की कथा

---

१ (क) कि अवधूत बरनै। कि बिभूत करनै। १०४। दशम ग्रथ, पृ० ६
(ख) आजान बाहु। एकै सदाहु। १६५। दशम ग्रथ, पृ० ६

२ अलख रूप अच्छै अनभेखा। राग रग जिह रूप न रेखा।
बरन चिहन सभ हूँ ते न्यारा। आदि पुरख अद्वै अविकारा। दशम ग्रथ, पृ० ११

३ दशम ग्रथ, पृ० १३

४. यहा ज्ञान प्रबोध से ही उदाहरण देना पर्याप्त होगा—
आजान बाहु सारग कर धरणं ।।२६।।
पदम नाभ पदमाहू नवल नारायण नर हरि ।।३४।।
कमलक नैन कहू आवहि कटि केहर कुजर गवन
कदली कुरग करपूर गति बिन अकाल दुज्जो कवन।३७।

—दशम ग्रथ, १३०-१३१

५. दशम ग्रथ, पृ० ४७।

भी बड़ी श्रद्धा एवं तन्मयता से कही है। किन्तु, उनकी अवतार भावना तुलसी, सूर आदि भक्तों की अवतारभावना से भिन्न है। एक विचित्र विरोधाभास यह भी है कि उन्होने अवतारों की कथा भी कही और अवतारवाद का खण्डन भी किया है।

निराकार भगवान के जो चित्र दशम ग्रंथ में दृष्टिगत होते हैं उन्हें स्थूल रूप से हम दो वर्गों मे विभक्त कर सकते हैं :—

(१) महाकाल एवं चण्डी, ये नराकार हो कर भी भगवान का अवतार नहीं, स्वयं निराकार भगवान ही हैं। अन्य सभी अवतार इन्हीं का रूप हैं।

(२) राम, कृष्ण आदि चौबीस अवतार जो भगवान का अवतार होकर भी भगवान नही। वे शेष नर-सृष्टि के समान ही महाकाल की दाढ़ के नीचे दबते-पिसते रहते हैं।

हम यहाँ सर्वप्रथम द्वितीय कोटि में आने वाले अवतारों का ही वर्णन करना चाहते हैं। चौबीस अवतारों मे केवल राम और कृष्ण का वर्णन ही विस्तार सहित हुआ है। पौराणिक परम्परा मे इन्हे विष्णु का अवतार माना गया है। दशम ग्रंथ में 'काल' ने विष्णु का स्थान ग्रहण कर लिया है। कभी वह स्वयं अवतार धारण करता है और कभी विष्णु को अवतार धारण करने की आज्ञा देता है। उदाहरणार्थ दशम ग्रंथ के राम श्रीकाल और कृष्ण श्री विष्णु के अवतार हैं।[1] रहते वे भी क्षीरसागर मे हैं और अवतार लेने का उद्देश्य साधुओं का परित्राण एवं दुष्टों का विनाश ही है। यहाँ रामावतार एवं कृष्णावतार से उद्धरण देना अनुपयुक्त न होगा—

(क) अव मैं कहौ राम अवतारा। जैस जगत भो करा पसारा।
बहुत काल बीतत भयौ जबै। असुरन वंस प्रगट भयौ तबै।१।
असुर लगे बहु करन बिखाधा। किनहूं न तिनै तनक मै साधा।
सकल देव इकठे तब भये। छीर समुद्र जह थी तह गए।२।
बहु चिर बसत भये तिह ठामा। बिसन सहित ब्रह्मा जिह नामा।
बार बार ही दुखत पुकारत। कान परी कलके धुनि आरत।३।
तोटक। जिसनादक लखै बिमनं। मृदहास करी कर काल धुनं
अवतार धरो(धरौ) रघुनाथ हरे। चिर राज करी सुख सो अवधे।४।
दशम ग्रंथ पृ० १८०

(ख) परम पाप तैं भूमि डरानी। डगमगात बिध तीर सिधानी
ब्रह्म गयौ छीर निध जहाँ। काल पुरख इसथित थे तहाँ
कह्यो बिसन कह निकट बुलाई। बिसन अवतार धरो तुम जाई
दशम ग्रंथ पृ० २५५

रामावतार और कृष्णावतार के अंत में उन्होने विष्णु-भक्ति के माहात्म्य का

---

१. कृष्ण काल पुरुष के अवतार हैं या विष्णु के, स्थिति इतनी स्पष्ट नहीं।
ऊपर दिये उद्धरण के पश्चात् एक और स्थान पर उन्हें ब्रह्म अथवा कालपुरुष का अवतार बताया गया है —
ब्रह्म कह्यो ब्रह्मा कहु (को) जादु अवतार ले मै अर दैतन मारौ —दशम

वर्णन एक वैष्णव-भक्त की-सी श्रद्धा से किया है।[1] इतना होने पर भी उन्हे पूर्णतः अवतारवादी नही कहा जा सकता। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें राम और कृष्ण की जीवन गाथा के प्रति जितनी श्रद्धा है उतनी राम और कृष्ण के अवतार के प्रति नही। राम और कृष्ण की कथा कह कर और अपने सेनानी अनुयायियों को सुना कर वे युद्ध के लिये उत्साह उत्पन्न करना चाहते है। यहाँ ध्यान रखने योग्य बात यह भी है कि उन्होंने राम और कृष्ण (एव अन्य अवतारो) के अवतरण का उद्देश्य लीला न बता कर दुष्टो का विनाश ही बताया है। इसी दुष्ट-निकदन शक्ति से वरदान प्राप्त करने की इच्छा उन्हे उनके चरित-गायन की प्रेरणा देती रही, इस विषय मे गुरु जी ने किसी प्रकार का संदेह कही रहने दिया। कृष्णावतार की समाप्ति पर वे कहते हैं —

दसम कथा भागौत की भाखा करी बनाय।
अवर वासना नाहि प्रभ धरम जुद्ध के चाय।[2]

संक्षेप मे हम कह सकते हैं कि राम, कृष्ण आदि की जीवन कथा के प्रति गुरु गोविंदसिंह को उतनी ही श्रद्धा है जितनी किसी वैष्णव भक्त को हो सकती है। इनका चरित गायन उन्होने विशेष तन्मयता से किया है। इन्हें वे श्री विष्णु का अवतार भी मानते हैं जो एक उच्च एव अनुकरणीय उद्देश्य की प्राप्ति के लिये, (भूभार को दूर करने के लिये)[3] इस धरती पर अवतरित हुए हैं किन्तु वे राम और कृष्ण को निराकार ब्रह्म अथवा श्रीकाल पुरुष का समकक्ष मानने को तैयार नही। इस बात की अतिरिक्त पुष्टि दशम ग्रथ के कई पदो से हो सकती है जहाँ उन्होंने राम और कृष्ण का उल्लेख महाकाल के चबैना के रूप में किया है।[4]

---

१. जो इह कथा सुनै अरु गावै। दूख पाप तिह निकट न आवै
विमन भगत की ए फल होई। आधि बयाधि छ्वै सकी न कोई
दशम ग्रंथ (रामावतार), पृ० २५४

२. दशम ग्रंथ, पृ० ५७०

३. कतहूँ सिपाही हुइ के साधत सिलाहन को
कहूँ छत्री हुइ के अर (अरि) मारत मरत हो
कहूँ भूम भार को उतारत हो महाराज
कहूँ भव भूतन की भावना भरत हो
—दशम ग्रंथ, पृ० १२

४. (क) जिते राम हुए। सभै अन्त मूए।
जिते किसन हूये है। सभै अन्त छै है।
—दशम ग्रन्थ, पृ० ४४

(ख) किते कृस्न से कीट कोटै उपाय
उसारे गडे (गढे) फेरि मेटे बनाये।
—दशम ग्रंथ, पृ० २१

(ग) किते कृस्न से कीट कोटै बनाए।
किते राम से मेटि डारे उपाए
... ...
जिते राम से कृस्न हुइ बिसन आये
तिस्यो काल खाप्यो न ते काल धाए
—दशम ग्रंथ, पृ० ४१

राम और कृष्ण के जीवन का इतनी श्रद्धा से वर्णन इससे पहले किसी गुरु ने नही किया था। स्पष्ट है कि निराकार ईश्वर द्वारा भू भार दूर करने के लिए अवतार भेजने का यह विश्वास पूर्ववर्ती गुरुओ की ईश-भावना से ईषत् भिन्न होकर भी उसी की विस्तृति है। इस विस्तृति का श्रीगणेश गुरु गोबिन्दसिंह से बहुत पहले हो चुका था। ज्यों-ज्यों सिक्ख आन्दोलन का राजनीतिक प्रभाव अधिक स्पष्ट होने लगा और पंजाब की हिन्दू जनता अपने इहलौकिक जीवन की कटुता के निवारण के लिये सिक्ख गुरुओं पर अधिकाधिक आशा रखने लगी, अवतार भावना का समावेश सहज स्वाभाविक रूप मे होता गया। पंचम गुरु के समकालीन भाटों और भाई गुरुदास की वाणी में अवतारभावना का स्पष्ट परिचय मिलता है। गुरु गोबिन्द सिंह अवतारों की कथा कह कर सिक्ख परम्परा में एक दम अपूर्व बात नही कर रहे थे।

क्रूरकर्मा ईश्वर—सम्पूर्ण भक्ति साहित्य में ईश्वर के उग्ररूप को चित्रित करने की रुचि दृष्टिगत नही होती। भक्ति साहित्य को प्रकारान्तर से प्रेम साहित्य भी कहा जा सकता है। भक्त कवियो ने अपने प्रेम के आलम्बन की सुन्दर, मनोहारी झांकी उपस्थित करने में ही अपनी प्रतिभा की सफलता मानी है। तुलसी के राम, सूर के कृष्ण और सिक्ख गुरुओं के सगुणवत् चित्रित अकाल पुरुष सभी के व्यक्तित्व बहुत मनोहारी है जिन पर भक्तजन इस प्रकार न्योछावर होते है जैसे अपने पति अथवा प्रिय पर नारी। वस्तुतः हमारे सम्पूर्ण भक्ति साहित्य मे नारी-भावना का प्राधान्य है। नारीभाव से पुरुष-परमेश्वर को चाहने की प्रवृत्ति ही हिन्दी भक्ति काव्य की प्रधान प्रवृत्ति है। सूर की गोपियां तो कृष्ण को नारी रूप से प्रेम करती ही हैं, निर्गुण सन्तों की रहस्यमयी वाणी मे भी भक्त-भगवान का सम्बन्ध स्त्री-पुरुष का ही है। सिक्ख गुरुओ ने भी अकाल 'पुरख' की उपासना नारीभाव से ही की। उनका कहना था कि पुरुष तो एक ही है, शेष सब नारियां ही हैं।[1] तुलसी के राम में भी स्त्री मोहिनी शक्ति का निवास है। तुलसी स्वय दास्य भाव से राम की सेवा करते हैं। कहने की आवश्यकता नही कि तुलसी का दैन्य भी इतना पुरुषोचित गुण नही, जितना नारी सुलभ—वही नारी की-सी विवशता और पुरुष की कृपा कोर की याचना उनके यहाँ पाई जाती है। रीतिकाल मे, जब कि गुरु गोबिन्दसिंह दशम ग्रंथ की रचना कर रहे थे, हमारा काव्य और भी स्त्रैण हो उठा था।

हमारे काव्य की इस स्त्रैणता का मुख्य कारण तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति है। मुस्लिम शासन से प्रपीड़ित और आतंकित भारत की अवस्था एक अबला से अधिक अच्छी न थी। भक्ति काव्य मे अभिव्यक्त दैन्य एव आत्मसमर्पण निरीह जनसाधारण की विवशता का ही प्रतिबिम्ब है।

गुरु गोबिन्दसिंह इस उत्पीड़न और आतंक के वातावरण तथा इस वातावरण से उत्पन्न मानसिक दौर्बल्य को बदल देना चाहते थे। अतः उनकी वाणी का स्वर पूर्वकालीन भक्तो की वाणी से भिन्न है। गुरु गोबिन्दसिंह का व्यक्तित्व भी

---

१. ठाकुरु एकु सबाई नारि—आ. ग्रंथ, पृ० ९३३

सभी पूर्वकालीन कवियो के व्यक्तित्व से भिन्न था। भक्ति और युद्ध दो विपरीत प्रकार के कर्म माने जाते रहे हैं। ऐसे विद्वानो की भी कमी नही जो भक्ति कर्म को युद्ध कर्म की असफलता का परिणाम मानते रहे हैं। भक्ति और युद्ध का जो सम्मिलन[1] गुरु गोविन्द सिंह के चरित्र मे देखा गया, वह सर्वथा अपूर्व है। युद्ध कर्म की सगिनी होने के कारण भक्ति का स्वरूप भी बदल गया है। हिन्दी साहित्य मे प्रथम बार भगवती चण्डी अथवा महाकाल को भक्ति का आलम्बन बनाया गया। इनकी कृपाकोर की प्राप्ति भी प्रेम से ही होती है।[2] किन्तु इस प्रेम साधना के लिए नारी-भाव से आत्मनिवेदन करने का एक भी उदाहरण दशम ग्रथ मे नही मिलता। दासभाव के दर्शन कुछ स्थानो पर अवश्य होते है। गुरु जी अपने-आप को परम पुरुष का दास समझते हैं,[3] एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिये इस ससार मे आये हैं ऐसा उनका विश्वास है।[4] अपने लिये 'कीट' और 'दास' शब्द का प्रयोग भले ही उन्होने कई बार किया है, किन्तु उनके दास कम की पूर्ति इतनी कथनी की अपेक्षा नही रखती, जितनी करनी की। अत उन्होने बार-बार दैन्य प्रदर्शन करने के स्थान पर अपने स्वामी द्वारा सौंपे हुए कार्य को करने मे ही अपने दासत्व का सफल निर्वाह समझा है। वे अपने दासत्व मे भी अपने क्षत्रियत्व को नहीं भूलते, अत बार-बार अपने इष्ट से तुलसी के समान भक्ति की याचना नही करते बल्कि युद्ध क्षेत्र मे (स्वामी द्वारा सौंपे कार्य की पूर्ति के लिये) जूझ मरने की याचना करते हैं।[5] दूसरे शब्दो मे जहाँ तुलसी जैसे भक्तो के लिये साधन और साध्य दोनो भक्ति है, वहाँ गुरु गोविन्दसिंह के लिये भक्ति मुख्यत साधन ही है।

जैसे कि पहले कहा जा चुका है गुरु गोबिन्दसिंह का इष्ट निराकार अकाल पुरुष है। इस अकाल पुरुष के उग्र रूप को उन्होने श्री कालपुरुष भी कहा है। दशम ग्रन्थ मे उनके वन्द्य अधिकतर श्रीकाल ही रहे हैं। कालपुरुष को उन्होने श्रीकाल, महाकाल, सर्वकाल, सर्वलोह, महालोह, असिकेतु, खड्गकेतु, असिपाणि अथवा खड्गपाणि

१. (क) अवर वासना नाहि प्रभ धर्म जुद्ध को चाय
(ख) धन्न जियो तिह को जग मैं मुख ते हरि, चित्त मैं जुद्ध बिचारे
—दशम ग्रन्थ, पृ० ५७०

२ साचु कहौ सुन लेहु सभै जिन प्रेमु कियो तिन ही प्रभ पायो
—दशम ग्रन्थ, पृष्ठ १५

३. मैं हौं परम पुरख को दासा। देखनि आयो जगत तमासा
—दशम ग्रन्थ पृ० ५७

४. हम इह काज जगत मो आए। धरम हेत गुर देव पठाए
जहाँ तहाँ तुम धरम बिथारो। दुष्ट दोखियन तकरि पछारो
—दशम ग्रन्थ, पृ० ५७

५. धनी को पूत हौ बामन को नहि कै तपु आवत है जु करो
अरु और जजार जितो गृह को तुहि त्याग कहा चित ता मै धरो
अब रीझ के देहु वहै हम को जोऊ हौ बिनती कर जोर करो
जब आउ (आयु) की औध निदान बने अति ही रन मै तब जूझ मरो
—दशम ग्रन्थ, पृ० ५७०

अस्टाइध (अष्टायुध) चमकै भूषण दमकै अति सित झमकै फु क फन
जै जै होसी महखासुर मर्दन रमकपर्दन दैत जिण ।

दशम ग्रन्थ (अकाल उस्तति) पृ० ३१

(२) कर वाम चापिय कृपाण कराल
महा तेज तेजे विराजै विसाल
महा दाढ गाढ सु सोह अपार
जिनै चरवीय जीव जग्य हजार
डमा डम्म डउरू सितासेत छत्र
हाहा हूह हास झमा झम्म अत्रं
महा घोर सबद वजे सख ऐस
प्रलै काल के काल की ज्वाल जैस

दशम ग्रन्थ (विचित्र नाटक) पृ० ४०

महाकाल का वर्णन गुरु जी ने शस्त्रास्त्रों के रूप में भी किया है। वे उसे खड्गपाणि ही नहीं कहते, खड्ग भी कहते हैं। शस्त्रों के रूप में महाकाल की वन्दना इन शब्दों में हुई है—

१ नमस्कार स्री खड्ग को करौ सु हितु चितु लाय —पृ० ३६
२ जै जै जग कारण सृस्ट उवारण मम प्रतिपारण जै तेगं—पृ०३६
३ नमो देव देव नमो खड्ग धार —पृ०४५
४ नमो खड्ग खडं कृपाणं कटार
सदा एक रूप सदा निरविकार —पृ०४५
५ मेर करो तृण ते मुहि जाहि गरीब निवाज न दूसर तोसो
भूल छिमो हमरी प्रभ आप न भूलन हार कहूँ कोऊ मोसो
सेव करी तुमरी तिनके सम हो गृह देखियत द्रव भरोसो
या कल में सभ काल कृपान के भारी भुजान को भारी भरोसो

—दशम ग्रन्थ पृ० ४५

गुरु गोविंदसिंह के युद्ध वर्णन के प्रसग मे हम देखेंगे कि वे युद्ध जैसे कराल कर्म को भी एक मनोहर क्रीडा के रूप मे चित्रित करते हैं। उन्होंने युद्ध के अधिष्ठाता करालरूप, क्रूरकर्म महाकाल को भी भय का नहीं, प्रेम का ही विषय बनाने का यत्न किया है। वे बार बार 'प्रीत करे प्रभु पायत है' 'जिन प्रेम कियो तिनही प्रभु पायो' आदि पक्तियो द्वारा शक्ति के उपासको को प्रेम की ही अनुमति देते हैं। अत कभी कभी वे भैरव रूप महाकाल की भी 'महासुन्दर' 'महाभिराम' झाँकी उपस्थित करते हैं —

घट भादव मास की जान सुभ । तन सावरे रावरेश्र हुलस
रद पगत दामनिय दमक । घन घु घर घट सुर घमक ।५८।

भुजग प्रयात ।
घटा सावण जाण स्याम सुहाय
मणी नील नगिय लख सीस न्याय
महासुन्दर स्याम महा अभिराम
महा रूप रूप महा काम काम ।५६।[1]

हम पहले कह चुके हैं कि अवतारवाद के सिद्धान्त की ईषत् स्वीकृति गुरु गोविन्दसिंह की ईश भावना को पूर्वकालीन गुरुओं की ईश-भावना से भिन्न करती है। हम यह भी देख चुके हैं कि राम और कृष्ण का अवतार रूप मे वर्णन करते हुए भी गुरुजी उन्हें साधारण मानवो के समान कराल काल की महादाढ मे दबता पिसता दिखाते हैं। वस्तुत उनके मन मे जो आत्मर्पण महाकाल अथवा भगवती चण्डिका के प्रति है, वह किसी और देवी-देवता के प्रति नहीं। महाकाल का वर्णन उभयात्मक रूप मे हुआ है। वह निर्गुण भी है और सगुण भी। सगुण होकर भी वह अवतार नहीं। विष्णु अवतार रूप मे राम और कृष्ण का अभिधान धारण करते हैं, महाकाल निर्गुण और सगुण उभय रूप मे ही महाकाल हैं। यही कारण है कि गुरु जी ने राम और कृष्ण के लिये जिस प्रकार 'कीट' आदि शब्दो का प्रयोग किया है, महाकाल अथवा भगवती चण्डी के लिए नही। राम और कृष्ण की कथा का श्रद्धापूर्वक बखान करते हुए भी गुरु जी राम और कृष्ण को इष्ट रूप मे स्वीकार न कर सके। महाकाल तथा चण्डी ही उनके इष्ट हैं जैसा कि निम्नलिखित पक्तियो से स्पष्ट है—

(१) पाइ गहे जब ते तुमरे (श्री असिपाणि के) तब ते कोऊ आख तरे नहि आन्यो।
राम रहीम कुरान पुरान अनेक कहे मत एक न मान्यो।[2]

(२) मैं न गनेसहि प्रिथम मनाऊँ। किसन बिसन कबहू न घ्याऊँ
कान सुने पहचान न तिन सो। लिव लागी मोरी पग इन सो
महाकाल रखवार हमारो। महालोह मैं किंकर थारो
अपना जान करो रखवार। बाह गहे की लाज विचार।[3]

सक्षेप मे हम कह सकते हैं कि योद्धा-कवि गुरु गोविंदसिंह का मन मुख्यत अकाल पुरुष के भैरव रूप के चित्रण और वन्दन मे रमा है। इसे उन्होने निर्गुण और सगुण उभयात्मक रूप मे अकित किया है। गुरु नानक देव की रचना का विवेचन करते हुए हमने देखा था कि ब्रह्म के उभय रूप की स्वीकृति सिक्ख परम्परा म है। सिक्ख गुरुओ द्वारा ब्रह्म का निराकार ऐसे रूप म स्वीकृत हुआ है जिस मे सगुण का निराकरण अनिवार्यत अपेक्षित नही। तो भी सिक्ख गुरुओ ने अवतार-सिद्धात को कभी नही माना। उनका 'सगुण' अवतार नही। गुरु गोविन्दसिंह ने, सिद्धातत, इस मत का पालन किया है। किन्तु उनका महाकाल अवतार न होकर भी

१ दशम ग्रन्थ पृ० ४३
२ दशम ग्रन्थ (रामावतार) पृ० २५४
३ दशम ग्रन्थ (कृष्णावतार) पृ० ३१०

अवतार के जितना निकट है उतना पूर्ववर्ती सिक्ख गुरुओं का अकाल पुरुष नही। वे उसे अवतार नही कहते। उनका भिन्न नाम धाम नही। उनका कोई सांसारिक माता-पिता नही। न वे जन्म प्राप्त करते हैं, न बाल क्रीड़ायें करते हैं और न मृत्यु को प्राप्त होते हैं। इस रूप मे वे अवतार नही। किन्तु भूभार उतारने के लिए धरती पर प्रकट होते है, अपने हाथों दुष्टो से जूझते हैं और उनका संहार करते हैं। उनका इतना रूप अवतार-पुरुष से अवश्य मिलता है। संक्षेप मे महाकाल अवतार पुरुष का निकटतम रूप है।

दूसरी बात ध्यान योग्य यह है कि उनका महाकाल साधारणत अपने रुद्र रूप मे भी अकित हुआ है। यहाँ वे सिक्ख परम्परा मे एक नई अभिवृद्धि करते दिखाई देते हैं। भगवान का अवतारप्राय रूप मे वर्णन और रुद्ररूप में वर्णन—ये दोनों उनके द्वारा सचालित युद्ध कर्म का ही परिणाम हैं।

पक्षपाती ईश्वर—योद्धा-भक्त गुरु गोबिन्दसिंह द्वारा जो सर्वथा नवीन तत्त्व भक्ति-साहित्य को दिया गया वह है ईश्वर के पक्षपाती स्वरूप की स्थापना। धर्म-युद्ध मे जूझ मरने का वरदान गुरु भवगती शिवा से अवश्य मांगते हैं, किन्तु इससे भी पहले वे अपने शत्रुओं की पराजय मांगते हैं।[१] श्री महाकाल से वर मांगते हुए वे अपने सेवको और सिक्खो की रक्षा और अपने शत्रुओं के नाश के लिये प्रार्थना करते है।[२] स्पष्टत. यह योद्धा-भक्त का दृष्टिकोण है। योद्धा अपने प्रतिद्वन्द्वी का आदर तो कर सकता है, उसकी विजय की कामना नही कर सकता।

शत्रु-नाशक भगवान का वर्णन उनकी एकाध रचना मे ही नही है। उनकी सभी रचनाओ मे यत्र तत्र अरि-भजन भगवान का वर्णन हुआ है। उनकी कृति जापु साधारणतः पूर्व कालीन सिक्ख गुरुओ के उपदेशो का ही अनुसरण करती है परन्तु इस रचना मे भी भगवान के अरि-भजन स्वरूप का बखान हुआ है।

अरि वर अगंज। हरि नर प्रभंज ।१६०।
करुणालय हैं। अरघालय है ।१७०।
अर गजन है। रिप तापन हैं ।१८१।
गनीमुल सिकस्तै। गरीबुल परस्तै ।१२१।

अकाल उस्तति मे भी अरि-नाशक भगवान का वर्णन हुआ है—

---

१. देह शिवा वर मोहि इहै सुभ करमन ते कबहू न टरो
न डरो अरि सों जब जाइ लरो निस्चै कर अपनी जीत करो
अरु सिख हो आपने ही मन को इह लालच हउ गुन तउ उचरो
जब आव की औध निदान बनै अत ही रन मैं तब जूझ मरो
—दशम ग्रन्थ (चण्डी चरित्र १) पृ० ९९

२. चुनि चुनि सत्र हमारे धावहु
आप हाथ दे मोहि बचावहु
सुखी बसे मोरो परिवारा
सेवक सिख्य सभै करतारा—दशम ग्रन्थ (चरित्रोपाख्यान) पृ० १३८६

कतहूँ सिपाही हुइके साधत सिलाहन को
कहूँ छत्री हुइ के अर मारत मरत हो।[1]
काल हूँ के काल हैं कि सत्रन के साल है
कि मित्रन को पोखत है कि वृद्धता को वासी हैं।[2]

इस प्रकार के पक्षपाती ईश्वर की स्थापना हिन्दी साहित्य मे प्रथम बार हुई है। हिन्दी साहित्य मे कंसारि कृष्ण या रावणारि राम के उदाहरण अवश्य मिलते हैं। निश्चय ही वे सिक्ख-गुरुओ के अकाल पुरुष के समान 'निर-वैर' नही। न ही तुलसी का दृष्टिकोण सिक्ख गुरुओ जैसा (न कोऊ बैरी नाही बेगाना) है। तो भी तुलसी के राम, सूर के कृष्ण अथवा कबीर के राम गुरु गोबिन्दसिंह के महाकाल के समान पक्षपाती नही। राम और कृष्ण की रावण और कंस से जो कलह है, उसके निजी कारण है। रावण राम का निजी शत्रु है महाकाल का निजी शत्रु कोई नही। दूसरे तुलसी अपने निजी शत्रुओं के विनाश के लिये राम से प्रार्थना नही करते, न राम ऐसी प्रार्थना सुनते अथवा स्वीकार करते है। गुरु गोबिन्दसिंह का महाकाल उसे अपने युद्धों मे सहायता देता है, गुरु जी उससे अपनी, अपने परिवार, अपने सेवकों तथा सिक्खों की कुशल के लिये तथा अपने शत्रुओ के विनाश के लिये प्रार्थना करते हैं। इस प्रकार उनका महाकाल एक वर्ग विशेष का भगवान बन जाता है।

हिन्दी साहित्य मे ऐसे भगवान की कल्पना सर्वथा नवीन होने पर भारतीय साहित्य में एकदम नवीन नही। पौराणिक अवतार भी देवताओ की भलाई के लिये, एवं असुरो के विनाश के लिये ही संसार मे अवतरित होते रहे है। पौराणिक परम्परा का पालन करते हुए चौबीस अवतार वर्णन मे गुरु जी ने भी अवतार-पुरुषों को देवताओ के पक्ष मे और असुरो के विपक्ष मे युद्ध करते दिखाया है। गुरु जी ने इस सिद्धान्त को पौराणिक कथाओं की सीमा से बाहर निकाल कर समसामयिक जीवन के यथार्थ पर भी लागू किया है। उन्होंने अपने समय के समाज के संघर्ष को देवासुर द्वन्द्वय के समतुल्य माना है। उन्होने अपने आपको अवतार न कहकर परम पुरुष का दास अथवा कीट ही कहा है किन्तु परम पुरुष ने उन्हें भी उसी उद्देश्य के लिये भेजा है जिसके लिये वह अन्य अवतारो को भेजता रहा है।[3] अतः यहाँ जो काम वे कर रहे हैं वह उनका निजी नही। यह सत्य है कि औरगजेब से जूझने का उनका एक निजी कारण अपने पिता की औरंगजेब के हाथों मृत्यु भी है, किन्तु गुरु जी ने इस कारण को विशेष महत्त्व नही दिया। गुरु तेगबहादुर की मृत्यु का अति सक्षिप्त वर्णन करके फिर आप उसका कभी उल्लेख नही करते। अत. महाकाल से

---

१. दशम ग्रन्थ (अकाल उस्तति) पृ० १२
२. दशम ग्रन्थ (अकाल उस्तति) पृ० ३७
३. हम इह काज जगत मो आए। धरम हेत गुरदेव पठाए।
जहा तहा तुम धरम बिथारो। दुस्ट दोखियन पकरि पछारो।
—दशम ग्रन्थ पृ० ५७
धरम चलावन संत उबारन। दुस्ट सबन को मूल उपारन
—दशम ग्रथ पृ० ५८

'दुष्ट मलेच्छ करो रणघाता', 'मो रच्छा निज कर दे करिये', ऐसी प्रार्थना करते हुए उन्हें किसी प्रकार का संकोच नहीं। संक्षेप में जिस प्रकार के पक्षपाती भगवान की कल्पना उन्होंने की है, उसका उदाहरण पौराणिक परम्परा में विद्यमान है। गुरु जी के सम्बन्ध में नई बात केवल इतनी है कि यहाँ 'लेखक' और 'याचक' एक ही व्यक्ति है, तथा वे ऐतिहासिक काल, तथापि अपने काल, में भगवान की पक्षपाती कृपा की याचना कर रहे हैं।

खण्डन

१ वर्णाश्रम धर्म।

२. नारी।

३. धार्मिक मतमतान्तर।

वर्णाश्रम धर्म—गुरु नानक की रचना का अध्ययन करते हुए हम देख चुके हैं कि उन्होंने झूठ बोल कर अभक्ष्य खाने वाले तथा उपवीत धारण किये हुए मानव भक्षक ब्राह्मणों की बहुत बड़ी आलोचना की थी। गुरु नानक के उपरान्त ब्राह्मणों की आलोचना कभी इतनी कड़ाई से नहीं हुई। वस्तुतः गौ और ब्राह्मण सदा रक्ष्य समझे जाते रहे। गुरु गोविन्दसिंह की रचना में भी गौ और ब्राह्मण को पूज्य और सेव्य ही समझा गया है।[१] स्वयं उनके पिता ने तिलक और उपवीत की रक्षार्थ ही प्राण उत्सर्ग किये थे—ऐसा उनका विश्वास है।[२] वर्ण-संकर भी उन्हें प्रिय नहीं, वे कलियुग में बढ़ रहे शूद्रत्व से चिन्तित हैं।[३] और इसी के विनाश के लिये अवतार की कल्पना करते हैं।[४]

जिस वर्ण-संकर का वर्णन 'कलकी-अवतार' नामक रचना में हुआ है, वह हमारा चिर-परिचित साधारण वर्ण-संकर नहीं। इस शूद्रत्व का सम्बन्ध राज्य-सत्ता से है। 'कलकी अवतार' का खलनायक राजा शूद्र है। उसी की कृपा से वर्ण-संकर उपस्थित हो रहा है और वही ब्राह्मण वर्ग को पूजादि से रोक रहा है। प्रथम गुरु के पश्चात् ब्राह्मणवर्ग की आलोचना बंद हो जाने का एक कारण यह है कि ब्राह्मण उत्तरोत्तर धर्मान्ध राज्य सत्ता का कोपभाजन हो रहा था। ब्राह्मण के तिलक और यज्ञोपवीत सम्पूर्ण हिन्दुत्व के प्रतीक बन रहे थे। इस प्रकार ब्राह्मण आलोचना का नहीं रक्षा का पात्र बन रहा था। अतः वर्णाश्रम के प्रति विशेष आस्था न रखने

१. (क) पूजहु बिप्पन को गुरु सज्जन पूजन जा गिर है रह जइयै
—दशम ग्रन्थ पृ० २६७-८

(ख) बिप्पन सेव सदा करियै —दशम ग्रन्थ पृ० ५०१

२. तिलक जजू (उपवीत) राखा प्रभ ताका
कीनो बडो कलू महि साका —दशम ग्रन्थ पृ० ५४

३. संकर बरण प्रजा सब होई। छत्री जगत न देखिय कोइ
....
शूद्र धाम पति है महारानी। बैस नारि हुई है छत्राणी
—दशम ग्रन्थ पृ० ५७२

४. शूद्र धाम समस्त नासार्थ हेतु। कलकीवतार करने सचेत —द० ग्र०, पृ० ५८४

वाले सिक्ख धर्म द्वारा भी वर्णाश्रम का उपकार ही हुआ। जीवन के प्रति क्षत्रिय का-सा दृष्टिकोण रखने वाले गुरु गोबिन्दसिंह ने 'छत्री सभै कृत विप्पन के'[1] कह कर ब्राह्मण देवता की उत्कृष्टता को ही स्वीकार किया है।

गुरु गोबिन्दसिंह ने ब्राह्मण का पद घटाया नहीं, निम्न कहे जाने वाली जातियों का पद बढाया अवश्य है। पूर्ववर्ती सन्तो ने वर्णाश्रम धर्म पर कठोर भाषा में आक्रमण किया था। उनके द्वारा ब्राह्मण की भर्त्सना तो हुई, तथाकथित निम्न जातियों की प्रशंसा नही हो सकी। निम्नजातियो को उच्च जातियो का समकक्ष बताते समय उनका स्वर बड़ा सकोचशील रहा है। 'इनमे क्या बुरा है और तुम मे क्या अच्छा ?'[2] अथवा 'एक ही ईश्वर की बनाई मानव-सृष्टि मे उच्च-नीच कैसा ?'[3] संतो का तर्क कुछ इसी प्रकार का रहा है। वस्तुत इससे अच्छा तर्क वे प्रस्तुत भी न कर सकते थे। अभी निम्न कही जाने वाली जातियो के लिए कोई ऐसा कर्त्तव्य-पथ निश्चित न हो सका था जिसका महत्त्व समाज द्वारा स्वीकृत होता। संतो ने निम्न श्रेणी को उच्च श्रेणी के समकक्ष प्रमाणित करने के लिए तर्क—कदाचित् अकाट्य तर्क—की सृष्टि की, गुरु गोबिन्दसिंह ने उनके लिये आदरणीय एव अनुकरणीय वृत्ति की सृष्टि की। उनके नेतृत्व मे लड़ने वाले धर्म-युद्ध के सेनानियो मे एक बहुत बडी सख्या इन्ही जातियो की थी। इस प्रकार गुरु गोबिन्दसिंह द्वारा नव-मूल्य का सृजन हुआ। हिन्दी साहित्य मे ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में पहली बार अद्विज जातियों की इतनी स्पष्ट, इतनी असन्दिग्ध प्रशंसा हुई :—

जुद्ध जिते इनही के प्रसादि इनही के प्रसादि सुदान करे।
अघ औघ टरे इनही के प्रसादि इनही की कृपा फुन धाम भरे॥
इनही के प्रसादि सुविद्या लई इनही की कृपा सभ सत्रु मरे।
इनही की कृपा ते सजे हम है नहि मो से गरीव करोर परे॥
सेव करी इनही कह भावत और की सेव सुहात न जी को।
दान दियो इनही को भलो अरु आन को दान न लागत नीको॥
आगे फले इनही को दयो जग मे यश और दयो सब फीको।
मो गृह मे तनते मनते सिर लौ धन है सबही इनही को॥

उत्तर-नानक-कालीन गुरुओं द्वारा ब्राह्मणो की आलोचना न होने का एक कारण कदाचित् यह भी था कि स्वय सिक्ख-सस्था मे ही पुजारी-प्रवृत्ति जन्म ले रही थी। गुरु नानक देव के जीवन काल मे सिक्ख-सस्था की रूपरेखा बहुत स्पष्ट नही हुई थी। गुरु-परम्परा का आरम्भ उनके जीवन की सान्ध्य-वेला मे और

---

१. दशम ग्रंथ पृ० ७१६

२. तुम कत ब्राह्मण हम कत सूद।
हम कत लोहू तुम कत दूध। —आदि ग्रंथ पृ० ३२४

३. अव्वल अला नूरु उपाइआ कुदरति के सब बंदे
एक नूर ते सभ जग उपजिआ कौण भले को मंदे —आदि ग्रंथ पृ० १३४९

इसका समुचित सस्थापन उनके स्वर्गारोहण के पश्चात् ही हुआ। गुरु-परम्परा के सिक्ख धर्म मे पुजारीवृत्ति का प्रवेश हुआ। जब कुछ समय पश्चात् गुरुत्व पैतृक अधिकार-सा बन गया तो गुरु परिवार मे विगर्हणीय कलह का भी सूत्रपात हुआ। कई बार तो समानान्तर गुरु-गद्दियाँ भी स्थापित हुईं। सिक्ख गुरु स्वय बहुत उच्च व्यक्तित्वशाली थे और बहुत सरल जीवन व्यतीत करते थे तो भी गुरुत्व से सम्बन्धित पूजा-भेंट आदि का प्रभाव गुरु परिवार से सम्बन्धित अन्य सदस्यो पर बहुत शुभ नही पडा। उनकी मानसिक अवस्था पूजापाठ पाने वाले पाखण्डी ब्राह्मणो जैसी ही होने लगी थी।

ज्यो-ज्यो सिक्ख धर्म के अनुयायियो की सख्या बढती गई,—भेंट उपहार को एकत्र करने की समस्या जटिल होती गई। कई बार सिक्खो को यह भी पता न रहता था कि वास्तविक गुरु कौन है। एक बार तो गुरु गद्दी के दावेदारो की सख्या बाईस तक थी। सिक्ख गुरुओ ने भेंट एकत्र करने के लिए अपने प्रतिनिधि नियुक्त किए, जिन्हें 'मसन्द' (फारसी शब्द मसनद का विकृत रूप) कहा जाता था। ये देश के विभिन्न भागो मे बसने वाले सिक्खो से भेट एकत्रित करते और गुरु तक पहुँचाते थे।

श्रद्धालु सिक्ख इनका गुरवत् आदर करते थे। समय पाकर इन 'मसन्दो' मे भ्रष्टाचार का प्रवेश हुआ। श्रद्धालु सिक्खो द्वारा एकत्रित समस्त धन गुरु तक नहीं पहुँचता था। गुरु परिवार की धार्मिक शक्ति के मुख्य साधन होने के कारण कई बार ये गुरु को भी आँखें दिखाने का साहस कर बैठते थे। गुरु गोबिन्दसिंह ने इन सिक्ख-ब्राह्मणो की आलोचना की। उन्होने मसन्द-प्रथा का ही अन्त किया, बहुत से मसन्दो को मृत्यु की आज्ञा दी और स्पष्ट शब्दो मे सिक्खो को मसन्द-मार्ग का अनुसरण करने से रोका—

(जो जुगियान के जाय कहै सब जोगन को गृह माल उठै दै
जा परो सन्यासन दै कहै दत्त के नाम पै धाम लुटै दै)
जो करि कोऊ मसन्दन सो कहै सरब दरब ले मोहि अबै दै
लेउ ही लेउ कहै सबको नर कोऊ न ब्रह्म बताइ हमै दै।
जो करि सेव मसदन की कहे आनि प्रसादि सबै मोहि दीजै
जो कछु माल तवालय सा अबही उठि भेट हमारी हो कीजै
मेरोई ध्यान धरो निस बासुर भूल कै और को नाम न लीजै
दीने को नामु सुनै भजि रातहि लीने बिना नहि नैकु प्रसीजै
आखन भीतरि तेल कौ डार सुलोगन नीर बहाइ दिखावै
जो धनवान लखै निज सेवक ताहि परोसि प्रसादि जिमावै
जो धनहीन लखै तिह देत न मागन जात मुखो न दिखावै
लूटत है पसु लोगन को कबहू न प्रमेसुर के गुन गावै।[1]

सक्षेप मे हम कह सकते हैं कि गुरु गोविन्दसिंह ने ब्राह्मण वर्ग की परम्परागत उत्कृष्टता को अस्वीकार नही किया। ब्राह्मण उनके द्वारा पूज्य ही ठहराये गए।

१. दशम ग्रन्थ, पृ० ७१५-१६

किन्तु उनके द्वारा सर्वाधिक उपकार अद्विज जातियों का हुआ। उनकी प्रशंसा उन्होंने मुक्त कण्ठ से की। स्वयं सिक्ख-धर्म में जो एक प्रकार की ब्राह्मण प्रवृत्ति जड़ पकड़ चुकी थी, उसका उन्मूलन उनके द्वारा हुआ। इन सिक्ख—ब्राह्मणों—मसन्दों की स्पष्ट भर्त्सना उनके द्वारा हुई।

नारी :—गुरु गोविन्दसिंह की नारी-भावना का विस्तृत विवेचन इसी निबंध के द्वितीय भाग में हुआ है। यहाँ उसकी पुनरावृत्ति आवश्यक नहीं। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि उन्होंने न तो नारी की अमिश्रित निन्दा ही की है और न उसे सदा-सर्वदा प्रशंसनीय समझा है। उनके मन में नारी का एक आदर्श चरित्र विद्यमान था। उनकी आदर्श नारी सदाचार सम्पन्न सुगृहिणी भी है और वीरांगना भी। जिस प्रकार निम्न जातियाँ अपने कर्त्तव्य के सामाजिक महत्त्व के कारण ही समाज में आदरणीय स्थान पा सकती हैं, इसी प्रकार नारी भी।

धार्मिक मतमतान्तर :—गुरु गोविन्दसिंह का विभिन्न धार्मिक मतमतान्तरों के प्रति दृष्टिकोण सामान्यतः बड़ा सहिष्णु, उदार और वैज्ञानिक है। उसमें स्वीकृति का भाव है। पूज्य, पुजारी और पूजा का बाह्य स्वरूप—धर्म के इन तीनों पक्षों में वे तात्विक एकता को स्वीकार करते हैं। राम और रहीम, हिन्दू और तुरक, देहुरा और मसीत तथा पूजा और नमाज को वे तत्त्वतः एक ही मानते हैं। भगवान अनेक नामों से पुकारा जाकर भी अनेक नहीं हो जाता, मानव जाति भगवान को भिन्न नामों से स्मरण करके भी अपनी मानवीय एकता को नहीं खो बैठती। बाह्य स्वरूप की विभिन्नता को वे भौगोलिक परिस्थितियों का परिणाम मानते हैं।[1] अनेक भाषाओं में अभिव्यक्त होकर भी परम सत्य एक ही है। वस्तुतः वे अनेक भाषाओं

---

१. कोऊ भयो मुंडिया संन्यासी कोई जोगी भयो
कोऊ ब्रह्मचारी कोऊ जती अनमान बो
हिन्दू तुरक कोऊ राफजी इमाम साफी
मानस की जात सबै एकै पचहान बो
करता करीम सोई राजक रहीम ओई
दूसरो न भेद कोई भूल भ्रम मान बो।
एक ही की सेव सब एक ही को गुरदेव
एक ही सरूप सबै एकै जोत जानबो ॥
देहुरा मसीत सोई पूजा और निमाज ओई
मानस सबै एक पै अनेक को भ्रमाउ है।
देवता अदेव जच्छ गंध्रब तुरक हिन्दू
न्यारे न्यारे देसन के भेस को प्रभाउ है
एक नैन एकै कान एकै देह एकै बान
खाक बाद आतस औ आब को रलाउ है
अलह अभेख सोई पुरान और कुरान ओई
एक ही सरूप सबै एक ही बनाउ है
—दशम ग्रन्थ (अकाल उस्तति) पृ० ६

को भी एक ही परम सत्य का रूप मान कर उन्हें नमस्कार करते[१]। इसी प्रकार देशी और परदेशी, वैदिक और अवैदिक, निर्गुणवादी और सगुणवादी सभी प्रकार के धार्मिक सम्प्रदायों को एक ही ईश को प्राप्त करने के भिन्न मार्ग समझते हैं।[२] विभिन्न सम्प्रदायों के पूज्य देवता और अवतार महादेव, विष्णु, ब्रह्मा, दत्तात्रेय, गोरख, रामानन्द, मुहम्मद सब उसी द्वारा बनाये तथा संसार में भेजे गए हैं।[३] संक्षेप में वे भिन्न सम्प्रदायों के सह-अस्तित्व के न्याय को स्वीकार करते हैं और इनके प्रति उनका दृष्टिकोण बड़ा सहिष्णु है।

उन्हें शिकायत है तो यह कि विभिन्न मतों के अनुयायी अपनी ही धर्म-पुस्तकों में बताये उपदेशों का पालन नहीं करते।[४] यही पाखण्ड और कलियुगी अनाचार का मुख्य कारण है। गुरु जी की सारी आलोचना का मूल स्रोत यही है।

गुरु नानक ने अपने समय में लोगों को अच्छा ब्राह्मण, अच्छा योगी अथवा अच्छे मुसलमान के लक्षण लगभग एक से ही बताये थे। उनका बल उन नैतिक मूल्यों के पालन पर था जिनका उपदेश लगभग हर धर्म ने दिया है। गुरु गोबिन्दसिंह ने इसी पद्धति का अनुसरण करते हुए अच्छा सन्यासी अथवा अच्छा योगी बनाने का उपदेश दिया। यहाँ एक दो उदाहरण अनुपयुक्त न होंगे।

(१) रे मन इह बिधि जोगु कमाओ।
सिंङी साच अकपट कठला ध्यान बिभूत चड़ाओ ॥२६।३।
ताती गहु आतम बसि कर की भिच्छा नाम अधार।
बाजे परम तार ततु हरि के ऊपजे राग रसारं ॥१॥[५]

---

१. कहूँ आरबी तोरकी पारसी हो
कहूँ पहलवी पसतो संसकृती हो।
कहूँ देसभाख्या कहूँ देववानी
कहूँ राजविद्या कहूँ राजधानी।
—दशम ग्रन्थ पृ० २२

२. कहूँ जच्छ गंध्रब उरग कहूँ विद्याधर
कहूँ भये किन्नर पिशाच कहूँ प्रेत हो
कहूँ हुइकै हिन्दुआ गाइत्री को गुप्त जप्यो
कहूँ हुइकै तुरका पुकारे बांग देत हो
कहूँ कोक काव हुइकै पुरान को पढ़त मत
कत हूँ कुरान को निदान जान लेत हो
कहूँ बेद रीत कहूँ ता स्यों बिरुद्ध
कहूँ त्रिगुन अतीत कहूँ सरगुन समेत हो।
—दशम ग्रन्थ पृ० १२

३. दशम ग्रन्थ (बचित्तर नाटक) पृ० ५५-५६

४. (क) न कुरान को मतु लैहगे। न पुरान दैखन देहुगे।
(ख) मान हैं न बेदन सिंमृति कतेबन लोक लाज तजि नाचे।
—दशम ग्रन्थ पृ० ५७५

५. दशम ग्रन्थ पृ० ७१०

(२) रे मन ऐसो करि सन्यासा ।
बन से सदन सबै करि समझहु मन ही माहि उदासा ।१।३६।३।
जत की जटा जोग का मज्जन नेम के नखन बढाओ
ज्ञान गुरू आतम उपदेसहु नाम बिभूत लगाओ ।१।
अलप अहार सुलप सी निद्रा दया छिमा तन प्रीति
सील सतोख सदा निरबाहिवो ह्वैवो त्रिगुन अतीति ।२।
काम क्रोध हंकार लोभ हठ मोह न मन सो ल्यावै
तब ही आतम तत को दरसे परम पुरख कह पावै ।३।[1]

एक और तत्त्व जिस पर गुरु जी ने बल दिया है वह है 'प्रेम'। नैतिक मूल्यों के समान 'भगवान से प्रेम' का उपदेश भी सभी धर्म किसी न किसी रूप में देते हैं। गुरु जी का कहना है कि प्रेम के बिना भगवान की प्राप्ति असम्भव है। प्रेम के बिना धर्म पाखण्ड बन जाता है। इसी प्रेमहीन, श्रद्धाहीन पाखण्ड का खण्डन गुरु जी ने बार बार किया है।[2] हृदयहीन तीर्थ-सेवन, मूर्ति-पूजा, नमाज़ सभी की आलोचना गुरु जी ने की है।[3] इस प्रसंग में इतना स्पष्ट रहना चाहिए कि उन्होंने विभिन्न साम्प्रदायिक क्रिया-कलाप का खण्डन करते हुए सभी का ध्यान कभी प्रेम और कभी ज्ञान समन्वित भावना की ओर खींचा है।[4] दूसरे सम्प्रदायों की आलोचना अपने सम्प्रदाय-विशेष की उत्कृष्टता सिद्ध करने के लिए कदापि नहीं हुई। सम्पूर्ण दशम ग्रन्थ में ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलता।

---

१. दशम ग्रन्थ पृ० ७०६

२. (क) कहा भयो जो दोऊ लोचन मूंद कै बैठि रह्यो बक ध्यान लगायो।
न्हात फिर्यो लिए सात समुन्द्रन लोक गयो परलोक गवायो।
बासु कियो बिखियान सो बैठ कै ऐसे ही ऐसे सु बैस बितायो।
साच कहूं सुन लेहु सभै जिन प्रेम कियो तिनही प्रभु पायो।

—दशम ग्रन्थ, पृ० १४

(ख) जैसे करट टगन कह ठाठा ऐसे हरिहित कीजै।
तब ही महाज्ञान को जानै परम पयूखहि पीजै।

—दशम ग्रन्थ पृ० ६७९

३. काहू लै पाहन पूज धरो सिर काहू लै लिंग गरे लटकायो।
काहू लख्यो हरि अवाची दिसा महि काहू पछाह को सीस निवायो।
कोऊ बुतान को पूजत है पसु कोऊ मृतान को पूजन धायो।
कूर क्रिया उरझ्यो सभ ही जग श्री भगवान को भेदु न पायो।

—दशम ग्रन्थ पृ० १४-१५

४. नाच्यो ही करत मोर दादर करत सोर सदा घनघोर घन करयो ही करत है।
एक पाय ठाढे सदा बन मै रहत ब्रिछ फूक फूक पाव भूम स्रावग धरत है।
पाहन अनेक जुग एक ठौर बास करे काग और चील देस देस बिचरत है।
ज्ञान के विहीन महादीन मै न हूजै लीन भावना यकीन दीन कैसे कै तरत है।

—दशम ग्रन्थ पृ० १८

आलोचना करते समय गुरु जी का स्वर सामान्यत बहुत सयत रहा है। वस्तुत सारे गुरु-साहित्य मे खण्डन की प्रवृत्ति पर बडा अकुश रखा गया है। दशम ग्रन्थ मे भी सामान्यत इसी परम्परा का पालन हुआ है। केवल एकाध स्थान पर खण्डन करते समय शब्द-चयन उस सुरुचि से नहीं हुआ जो दशम ग्रन्थ की प्रमुख विशिष्टता है।

भाव —गुरु गोबिन्दसिंह का ब्रह्म सम्बन्धी दृष्टिकोण एक ज्ञानी अथवा तत्वविद् का दृष्टिकोण नही। मूलत वे भक्त हैं। ब्रह्म के साथ उनका प्रेम का एव व्यक्तिगत नाता है। वे अपने आपको भागवान का पुत्र मानते है जो एक विशिष्ट आज्ञा का पालन करने के लिए इस ससार म भेजे गये हैं। पिता-परमेश्वर की आज्ञा पालन के लिए उन्हे मर्त्यलोक म आना ही पडा अन्यथा वे भगवान के चरणों से दूर न होना चाहते थे।

उनकी ईश भावना की अभिव्यक्ति सदा भाव के स्तर पर हुई है। इन भावो मे मूल भाव हैं—रति, उत्साह, विस्मय और निर्वेद। मुख्यत उन्होने अपनी भक्ति के आलम्बन की कल्पना प्रेम मूर्ति अथवा वीरमूर्ति के रूप म ही की है।

सामान्यत उनकी दृष्टि अपने प्रिय के मानसिक गुणो—उसकी करुणा, दया, दान, रति—आदि पर ही रही है। उसके रूप का अकन वे इस रूप मे नही कर सके जिस रूप मे उन्होने (और अन्य कवियो ने) मुरलीधर कृष्ण का किया है। हाँ, उसे सूक्ष्म उपमानो द्वारा एक बडा ही ललित व्यक्तित्व देने का यत्न अवश्य किया है। वे उसे गीत, तान, नृत्य, राग, अनुराग, प्रीति आदि शब्दो द्वारा स्मरण करते हैं। पीयूष, मयूख और मदपान आदि शब्दो के प्रयोग से वे उसके व्यक्तित्व के आस्वाद्य रूप से हमें परिचित कराते हैं —

> कहू गीतनाद के निदान को बतावत हो
>
> कहू नृतकारी चित्रकारी के निधान हो
>
> कतहू पयूख हुइकै पीवत पिवावत हो
>
> कहू मयोख ऊख कहू मदपान हो।[1]

गुरु गोविन्दसिंह ने अपने प्रिय का 'रूप' वर्णन करने के लिए मुख्यत ललित कलाओं—काव्य-कला, नृत्य-कला सगीत-कला, चित्र-कला की शब्दावली का प्रयोग किया। उनकी रति के आलम्बन को ललित मूर्ति कहा जाय तो अनुपयुक्त न होगा। भगवान के मृदुमगल रूप की झाँकी को गहरा करने के लिये वे उसे भादो की धरा के समान श्यामल, उसकी वाणी को नव-किंकणी के समान मनोहर बताते हैं।

> (१) नव किंकण नेवर हुअ[2]
>
> (२) घण घु घर घटण घोर सुर[3]

---

१ दशम ग्रन्थ, पृ० १२

२. दशम ग्रन्थ पृ० ४१

३ वही पृ० ४३

(३) घट भादव मास की जाण सुभं
तन सावरे रावरेग्रं हुलसं[1]

(४) घमकि घुंघरं सुरं
नवंन नाद नूपरं[2]

इस ललित-मूर्ति को अधिक ऐन्द्रिय बनाने के लिए उसके ज्वाला से जलते रूप, और उसके यौवन की ओर हमारा ध्यान खीचते हैं—

(१) जोबन के जाल हो[3]
(२) निरजुर निरूप हो कि सुन्दर सरूप हो[4]
(३) ज्वाल-सी जलत हो[5]

और जब उसके आन्तरिक व्यक्तित्व के वर्णन का अवसर आता है तो गुरु जी उसके अनेक ऐसे गुणों, उसकी करुणा, दया, उत्साह आदि का वर्णन करते है जिससे उसका मानवीय चरित्र और भी उभर आता है। कहने का तात्पर्य यह कि गुरु जी ने अपने निराकार, निर्गुण प्रिय को भी एक मानवीय व्यक्तित्व के रूप में चाहा है। वह सौंदर्य, लालित्य और मानवता से परिपूर्ण है। ऐसी मृदुमंगल मूर्ति से प्रेम ही का नाता जोड़ा जा सकता है। गुरु जी द्वारा समाधिस्थ तपस्वी, तीर्थ-सेवी, कर्मकांडी, व्याख्याता, पण्डित का जो विरोध हुआ है उसके कदाचित् सौन्दर्य-शास्त्रीय कारण भी हैं।[6] आलम्बन (भगवद्-विषयक) रति को उद्बुद्ध करे, और आश्रय में अन्य प्रकार की प्रतिक्रिया हो, यह स्थिति किसी भी सौंदर्योपासक मे खीझ उत्पन्न कर देगी। गुरु जी ने भगवद्-प्राप्ति का एक ही साधन बताया है वह है प्रेम अथवा भक्ति।[7]

---

१. दशम ग्रन्थ पृ० ४३
२. वही पृ० ४२
३. वही पृ० १३
४. वही पृ० १३
५. वही पृ० १३
६. कहा भयो दोऊ लोचन मूंद के बैठ रह्यो बक ध्यान लगायो
नहाय फिर्‌यो लिये सात समुन्द्रन लोक गयो परलोक गवायो
बासु कियो बिख्यान सो बैठ के ऐसो ही ऐसे सुबैस बतायो
साचु कहो सुन लेहु सभै जिन प्रेमु कियो तिनही प्रभु पायो

—दशम ग्रन्थ पृ० १४

७. भावना विहीन कैसे पावे जगदीस को —दशम ग्रन्थ पृ० १=
बिनु भगत को न कबूल। —दशम ग्रन्थ पृ० १५

निर्वेद :—गुरु तेग बहादुर के काव्य का अध्ययन करते समय हम देख चुके हैं कि उनके काव्य की मुख्य प्रवृत्ति नश्वरता है। वे धर्म और भक्ति के लिए प्रेरणा नश्वरता से ही प्राप्त करते है। इसीलिए उनके दशम ग्रन्थ जैसे भक्ति-काव्य मे भी निर्वेद के उदाहरण मिल जाते हैं। गुरु गोबिन्दसिंह के व्यक्तित्व मे अपने पूज्य पिता की अपेक्षा ऐहिक ससार के प्रति कम अरुचि थी। जहाँ उनके पिता मे वैराग्य की प्रवृत्ति प्रधान थी, वहाँ उनकी प्रधान प्रवृत्ति सघर्ष की थी। परिणामत निर्वेद के प्रसग मे वे अपने पिता से भिन्न हैं। जहाँ गुरु तेग बहादुर नश्वरता के चित्र सामान्यत. जनसाधारण के जीवन से लेते हैं, वहाँ गुरु गोबिन्दसिंह सम्पन्न वर्ग के प्रसग मे ही नश्वरता का वर्णन करते हैं। गुरु तेग बहादुर के पदो मे साधारण मानव मृत्यु के समय माता, पिता, पत्नी, पुत्र, धन, सम्पत्ति को छोडता हुआ दिखाई देता है, वहाँ गुरु गोबिन्दसिंह के सवैयो मे 'भारी भुजान के भूप,'[1] 'भारी गुमान भरे मन मे,'[2] 'दुर्जेय योद्धा', 'गाढे गढान को तोडनहार'[3] ही अन्त समय श्री, शोभा और सम्पत्ति को त्याग कर 'अन्त को अन्त के धाम' सिधारते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

सम्पन्न वर्ग की नश्वरता के प्रसग मे ही नश्वरता का वर्णन करने के नैतिक कारण हैं और साहित्यिक कारण भी। यहाँ हम साहित्यिक कारणो की ही चर्चा करेंगे। समृद्ध जीवन के सहयोग से गुरु गोबिन्दसिंह की रचना को वह समृद्ध-बिम्बाधार प्राप्त हो गया है जिसके दर्शन गुरु तेग बहादुर की रचना मे नहीं होते। यहाँ 'कोट तुरग-कुरग से कूदत'[4] सिर भुकाते हुए 'भारी भुजान के भूप'[5] 'बाजत ढोल मृदग नगारे'[6] हिनहिनाते हुए 'हयराज हजारे'[7] 'माते मतग'[8] 'गाढे गढान'[9] पर्वतो को पख के समान उडाते हुए शूरवीर[10] सब चित्र को चाक्षुष और श्रावणिक सौंदर्य प्रदान करते है। स्पष्ट है कि ये सभी चित्र-खण्ड उदबुद्ध निवद को बडी सफलता से उद्दीप्त करते हैं। नश्वरता के आधार पर हमारे निर्वेद को उद्‌बुद्ध और उद्दीप्त करने वाले तथा हमे भगवद्-भक्ति की प्रेरणा देने वाले चित्रो के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(१) माते मतग जरे जर सग अनूप उतग सुरग सवारे
कोट तुरग कुरग से कूदत पौन के गौन को जात निवारे
भारी भुजान के भूप भली बिधि न्यावत सीस न जात विचारे
एते भये तो कहा भये भूपत अत को नागे ही पाय पधारे[11]

(२) जीत फिरे सभ देस दिसान को बाजत ढोल मृदग नगारे
गु जत गूड (गूढ) गजान के सुन्दर हसत ही हयराज हजारे
भूत भविख भवान के भूपत कौन गने नह जात विचारे
स्रीपति स्रीभगवान भजे बिनु अत को अत के धाम सिधारे।[12]

---

१ २. ३ दशम ग्रन्थ पृ० १२
४. ५ दशम ग्रन्थ पृ० १२
६ ७ ८ ९. १० दशम ग्रन्थ पृ० १३
११. वही पृ० १२
१२. वही, पृ० १३

(३) सुद्ध सिपाह दुरन्त दुवाह सुसाजि सनाह दरजान दलेंगे
भारी गुमान भरे मन में कर परवत पंख हलै न हलेंगे
तौर अरीन मरोर मवासन माते मतंगन मान मलेंगे
स्रीपति स्री भगवान कृपा बिनु त्याग जहान निदान चलेंगे ।[1]

स्पष्ट है कि गुरु जी की नश्वरता-भावना का भी उनकी युद्ध-भावना से गहरा सम्बन्ध है ।

विस्मय—भगवान युग-युगान्तर से भय और विस्मय का आलम्बन रहा है । भगवान के विस्मयकारक रूप का उल्लेख नानक-काव्य का अध्ययन करते समय हो चुका है । सिक्ख साहित्य में 'विसमाद' नामक शब्द एक सिद्धान्त (के प्रतिनिधि) के रूप में स्वीकृत है । भगवान के विराट् रूप, उसकी सृष्टि की अनेकरूपता और अपरिमित विशालता, उसके भक्ति के बहुविध रूप, सभी उसे अज्ञेय बनाते और परिणामतः हमें विस्मय विमुग्ध करते हैं ।

नानक काव्य में हमने विस्मय को हुकुमसिद्धान्त—यह अनेकरूपा सृष्टि एक ही नियम द्वारा संचालित है—के सहचर के रूप में देखा था । गुरु गोविन्दसिंह में यह सिद्धान्त इतने स्पष्ट रूप से तो प्रतिपादित नहीं, किन्तु सृष्टि की अनेकरूपता और भगवान (अथवा हुकुम) की एकता का उल्लेख बार-बार हुआ है । अनेकरूपिणी सृष्टि के अणु-अणु में समाये हुए ईश्वर को देखकर वे विस्मय और आत्मविस्मृति की अवस्था में कहते हैं—

जलस तुही । थलस तुही ।
नदिस तुही । नदस तुही ।
वृछस तुही । पतस तुही ।
छितस तुही । उरधस तुही
....
....
जिमी तुही । जमा तुही
मकी तुही । मका तुही
अंमू तुही । अमै तुही
अछू तुही । अछै तुही
....
तुही तुही । तुही तुही
तुही तुही । तुही तुही
तुही तुही । तुही तुही
तुही तुही । तुही तुही

आत्मविस्मृति जो रस-दशा का लगभग अनिवार्य लक्षण है, यहाँ अति-स्पष्ट रूप में विद्यमान है । यह वही अवस्था है जिसके साहचार्य में कबीर 'नाव में नदिया

[1] दशम ग्रन्थ, पृ० १३

डूबी जाय' 'बूँद समानी समुद में' एव 'समुद समाना बूँद में' आदि विचित्र विरोधाभासो की रचना कर सके थे। कबीर ने इस अवस्था को 'हैरान' सज्ञा दी है।

विस्मय का दूसरा स्रोत भगवान की परस्पर-विरोधी अनेकरूपता भी है। वह स्रष्टा भी है और सृष्टि भी। गुरु गोबिन्दसिंह ने ब्रह्म को दाता-भिखारी, गुणातीत सगुण, पती कामी, सचेत-अचेत, मित्र-शत्रु, आदि अनेक स्वविरोधी विशेषणो से विभूषित किया है। ये गुण उसके बाह्य आकार की नही, अपितु आन्तरिक व्यक्तित्व की विस्मय-कारक जटिलता को ही अभिव्यक्त करते हैं—

> कतहू सुचेत हुइकै चेतना को चार कियो
> कतहू अचित हुइकै सोवत अचेत हो।
> कतहू भिखारी हुइकै माँगत फिरत भीख
> कहू महादान हुइके माग्यो धन देत हो।
> कहूँ महाराजन को दीजत अनत दान
> कहूँ महाराजन ते छीन छित लेत हो।
> कहूँ वेदरीत कहूँ तास्यो विपरीत
> कहू निगुन अतीत कहूँ सरगुन समेत हो।[१]

ऊपर जो दो उद्धरण दिये हैं वे विस्मय के आलबन भगवान के बाह्य रूप और आन्तरिक व्यक्तित्व के वैचित्र्य को पर्याप्त रूप से स्पष्ट करते हैं। उसके प्राप्त करने के लिये उसकी सृष्टि द्वारा अनेक प्रकार के विचित्र क्रिया-कलाप का सम्पादन भी विस्मय के उद्दीपन का कार्य करता है—

> तन सीत घाम बरखा सहत। कई कल्प एक आसन वितत
> कई जतन जोग बिना बिचार। साधत तदप पावत न पार
> कई उरध वाह देसन भ्रमत। कई उरध मद्ध पावक भुलत
> कई सिमृति सास्त्र उचरत वेद। कई कोक काव करथत कतेब
> कई अगन होन कई पौन अहार। कई करत कोट म्रिति को अहार
> कई करत साक पै पत्र भच्छ। नही तदप देव होवत प्रतच्छ[२]

संक्षेप मे हम कह सकते हैं कि गुरु गोबिन्दसिंह की कविता जहाँ हमारी (भगवद्-विषयक) रति, हमारे उत्साह और निर्वेद को जागृत एव उद्दीप्त करती है, वहाँ हमारे विस्मय को भी। सक्षेप मे गुरु जी की भक्ति भावना की सृष्टि प्रेम, वीर, शान्त और अद्भुत की भित्ति पर हुई है।

अलकार—सामान्यत दशमग्रथ की रचना अलकार-बहुला है।[३] रीतिकालीन चमत्कारवादी प्रवृत्ति से गुरु गोबिन्दसिंह भी प्रभावित हैं। किन्तु आश्चर्य की बात है कि उनका भक्ति-काव्य इस प्रवृत्ति से सर्वथा अस्पृष्ट रहा है। पौराणिक

---

१. दशम ग्रन्थ पृ० ११ १२
२. दशम ग्रन्थ पृष्ठ २३
३. दशम ग्रन्थ की अलकार-सृष्टि का विवेचन इसी निबन्ध के द्वितीय खण्ड में पौराणिक प्रबन्ध नामक अध्याय में प्रस्तुत किया जायेगा।

प्रबन्धो मे भी जहाँ कही ईश-वन्दना या चण्डी-स्तुति का प्रसंग आ गया है, उन्होने अपनी चमत्कारवादी प्रवृत्ति पर अकुश लगा दिया है। सम्भवतः वे भक्ति-काव्य के पुण्यक्षेत्र से चमत्कार को बहिष्कृत ही रखना चाहते हैं।

वस्तुत जहाँ अनुभूति का प्रवाह तीव्र होता है और भाव अपनी आदि-सरलता मे व्यक्त हो जाने के लिये विह्वल होता है, वहाँ कवि साधारणत. अभिधा-प्रधान भाषा को ही अभिव्यक्ति का साधन बनाता है। गुरु जी ने भक्ति-विह्वल कवि की काव्य-प्रसाधनो के प्रति अरुचि को दशम ग्रन्थ के एक पंजाबी पद मे इस प्रकार प्रकट किया है—

"मेरे प्रिय मित्र को मुझ दीन-हीन की दशा कह सुनाना।
कहना कि तेरे बिना रजाई का ओढना रोग के समान
और महल मे रहना सर्प-संगति सा प्रतीत होता है।
सुराही शूल-सी, प्याला खजर-सा और (काव्य)
व्यंग्य कसाई (के छुरे) सा प्रतीत होता है"[1]

उनका सारा भक्ति-काव्य उपर्युक्त कथन की सत्यता का साक्षी है।

छन्द और भाषा—गुरु जी के छन्द-प्रबन्ध और भाषा-प्रयोग का विस्तृत और व्यापक विवेचन पौराणिक प्रबन्धो के प्रसग मे किया जायेगा। उनके भक्ति-काव्य की भाषा उनकी अन्य रचनाओं की भाषा से भिन्न नही। अत यहाँ केवल एक-दो प्रासंगिक बातें कहना ही पर्याप्त होगा।

छन्द की दृष्टि से गुरु गोविन्दसिंह अपने पूर्ववर्ती गुरु-कवियों से सर्वथा भिन्न हैं। छन्द का इतना वैविध्य और छन्द-निर्वाह का इतना निर्दोष रूप इससे पहले देखने मे नही आता। गुरु जी ने तीन मात्राओं के एकाक्षरी छन्द से लेकर ४७ मात्राओं के कवित्त तक छोटे-बडे कई छन्दो का प्रयोग किया है। इनमे से कई न केवल सिक्ख भक्ति-साहित्य मे बल्कि सम्पूर्ण भक्ति-साहित्य मे प्रथम बार प्रयुक्त हुए हैं। इनमे वर्णवृत्त भी हैं और मात्रिक छन्द भी।

गुरु गोविन्दसिंह की भक्ति-भावना ही युद्ध-भावना द्वारा प्रभावित नही, उनकी काव्य-अभिव्यक्ति भी वीर-काव्य की परम्परा द्वारा प्रभावित है। उन्होंने अपने भक्ति-काव्य के लिये बहुत से छन्द रासो-साहित्य से प्राप्त किये हैं। वस्तुतः छन्द-चयन, और छन्द-वैविध्य के लिये दशम ग्रन्थ (एव उसमे सगृहीत भक्ति-काव्य) की तुलना यदि किसी और ग्रंथ से हो सकती है तो वह है पृथ्वीराज रासो। इस कथन की सत्यता का अनुमान नीचे दी हुई छन्दों की उस तालिका से लगाया जा

---

१. दशम ग्रन्थ में चण्डी की वार के अतिरिक्त कुछ मुक्तक कविता-सवैया और एक पद पजाबी भाषा में लिखा हुआ है। शेष सारी रचना ब्रजभाषा में है। पजाबी पद इस प्रकार है—

मित्र प्यारे नूं हाल मरीदाँ दा कहणा
तुध बिनु रोगु रजाइयाँ दा ओढण नाग निवासा दे रहणा
सूल सुराही खन्जर प्याला बिंग कसाइयाँ दा सहणा
यारड़े दा सानूं सथर चंगा भट्ठ खेड़ियाँ दा रहणा —दशम ग्रंथ पृ० ७११

सकता है जिसका प्रयोग जापु और अकाल उस्तत जैसी विशुद्ध भक्ति-रचनाओं में हुआ है :—

१. छप्पै	२. भुजग प्रयात
३. चाचरी	४. चरपट
५. रुआल	६. मधुभार
७. भगवती	८. रसावल
६. हरिबोलना	१०. एकाक्षरी
११. चौपाई	१२. कवित्त
१३. सवैया	१४. तोमर
१५. निराज	१६. लघु निराज
१७. पाधडी	१८. तोटक
१९. रुआमल	२०. दोहा
२१. दीर्घ त्रिभगी	

गुरु-साहित्य की रुचि सामान्यतः एक रचना के लिए एक छन्द अपनाने की रही है, गुरु गोविन्दसिंह की रुचि छन्द-वैविध्य की ओर है। गुरु जी छन्दों के विषय मे अपने पूर्ववर्ती गुरु-कवियों की अपेक्षा अधिक सचेत भी हैं। उन्होंने हर रचना के आरम्भ मे एवं हर छन्द-परिवर्तन पर छन्द का निर्देश कर दिया है। आदिग्रन्थ मे छन्द-निर्देश की कोई परम्परा नही।

भाषा के प्रयोग मे भी उनकी अपनी विशिष्टता है। गुरु तेगबहादुर तक हिन्दी-अमिश्रित-सिक्ख-धर्म की भाषा के रूप मे स्वीकृत-सी प्रतीत होती है। उन्होंने न तो मिश्रित भाषा का प्रयोग किया, न पजाबी भाषा का। इससे प्रकट होता है कि पजाब के गुरुओं द्वारा विशालतर, एव सर्वभारतीय परम्परा से सम्बन्ध जोडने का प्रयास हो रहा था। गुरु गोविन्दसिंह ने इसी प्रयास को जारी रखा। उनकी भाषा न केवल अमिश्रित है बल्कि इसमे तत्सम शब्दों का अपेक्षाकृत बाहुल्य भी है। बहुत-से शब्द केवल इसीलिये तद्भव प्रतीत होते है, क्योंकि गुरुमुखी लिपि मे उन्हें शुद्ध तत्सम रूप मे लिखने की सामर्थ्य नही थी। भाषा और छन्दों की दृष्टि से भी उनके काव्य का स्वभाव पजाबी की अपेक्षा 'हिन्दी' के अनुकूल ही है। कहने का तात्पर्य यह है कि पजाब मे हिन्दी भाषा मे काव्य रचना तो बहुत पहले से हो रही थी, उसकी अलकार छन्द, भाषा-विषयक अपनी परम्परायें बन रही थी। किन्तु गुरु गोविन्दसिंह ने इन परम्पराओं का अनुसरण न कर हिन्दी-भाषी क्षेत्र मे रचे जा रहे साहित्य का अनुसरण किया। इस दृष्टि से उनका कर्तृत्व कही अधिक है।

उपसहार

सिद्धात—गुरु तेगबहादुर एव गुरु गोविन्दसिंह ने सिक्खमत की सैद्धान्तिक स्थापनाओं मे कोई महत्त्वपूर्ण अभिवर्धन अथवा परिवर्तन नही किया। वस्तुत सिक्ख-मत की जो सैद्धान्तिक रूपरेखा गुरु नानक द्वारा स्थिर की गई थी, नानकोत्तर गुरुओं ने उसका अनुसरण अटल निष्ठा से किया। नानकोत्तर गुरुओं की वाणी का महत्त्व उसकी भाव-प्रवणता एव काव्यसौन्दर्य के कारण है, मौलिक तत्त्व-चिन्तन के कारण नही।

गुरु तेगबहादुर एव गुरु गोविन्दसिंह भी इसी सैद्धान्तिक परिसीमा के प्रति निष्ठावान हैं। तो भी इन गुरु-द्वय की वाणी का अपना सिद्धान्तगत वैशिष्ट्य अवश्य है। इनकी वाणी मे सैद्धान्तिक अभिवर्धन अथवा परिवर्तन की रुचि नही, समग्र सैद्धान्तिक व्यवस्था के किसी पक्ष विशेष के प्रति मोह और किसी अन्य पक्ष के प्रति उदासीनता के उदाहरण अवश्य मिलते हैं। नश्वरता पर ऐकान्तिक बल गुरु तेगबहादुर की वाणी का निजी वैशिष्ट्य है। ईश के क्रूर, पक्षपाती रूप का उद्घाटन गुरु गोविन्द सिंह की वाणी को पूर्ववर्ती गुरुवाणी से पृथक् करता है।

इन गुरु-द्वय की एक अन्य सिद्धान्तगत विशिष्टता यह है कि उन्होंने गुरु के महत्त्व का प्रतिपादन करने मे विशेष रुचि नही दिखाई। गुरु गोविन्दसिंह के भक्ति-काव्य मे भी गुरु-महिमा निरूपण का विशेष आग्रह नही। गुरु सिक्खमत की सिद्धान्तगत व्यवस्था का इतना महत्त्वपूर्ण अग है कि इसके बिना सिक्खमत की कल्पना ही नही की जा सकती। प्रथम पाँच गुरुओ की वाणी मे गुरु-महिमा का गायन इतनी एकस्वर श्रद्धा और तीव्रता से एव इतनी बार हुआ है कि नवम और दशम गुरु की वाणी मे इसका निराकरण प्राय इसे पूर्ववर्ती गुरुवाणी से सर्वथा विशिष्ट कर देता है।

इस तथ्य के कारणो की जाँच करते समय हमे स्मरण रखना चाहिए कि गुरु सिक्खधर्म की सिद्धान्तगत व्यवस्था का ही नहीं सस्थागत व्यवस्था का भी अग था। इस सस्था के ऊर्ध्वगमन के साथ-साथ ही एक अधोगामी प्रवृत्ति भी जड पकडती गई। हर बार जब गुरुगद्दी एक गुरु से दूसरे गुरु के पास जाती तो कुछ ऐसे व्यक्ति रुष्ट हो जाते जो अपने आपको गुरुगद्दी का अधिकारी समझते थे। वे अपने आप को अलग से गुरु घोषित कर देते। परिणामत सिक्खमत की एक प्रामाणिक गुरु सस्था के समानान्तर एक से अधिक अप्रामाणिक गुरु-सस्थायें एव गुरु परिवार भी उठ खडे हुए थे। गुरु वाणी की नकल मे गुरु नानक के नाम से सम्बन्धित अप्रामाणिक अथवा 'कच्ची' वाणी का प्रचलन भी इन अप्रामाणिक गुरुओ द्वारा हुआ। तृतीय, चतुर्थ एव पचम गुरु इन्हीं पाखण्डी गुरुओं एव अप्रामाणिक वाणियों के विरुद्ध लड़ रहे थे। अत उनकी वाणी मे गुरु महिमा एव (सच्ची) गुरुवाणी पर विशेष, कदाचित अतिशय, बल दिया गया है। एक बार एक ही स्थान बाबा बकाला पर, पाखण्डी गुरुओ की गणना बाईस तक पहुँच गई और श्रद्धालु सिक्खो के लिये प्रामाणिक अप्रामाणिक मे अन्तर कर सकना कठिन हो गया था। इन्ही पाखण्डी, स्वयभू गुरुओ के कारण ही गुरु तेगबहादुर केन्द्रीय पजाब से सदा के लिये विदा ले आये थे। वे जन्मभर इन पाखण्डियो से दूर रहे। गुरु तेगबहादुर की वाणी मे गुरु महिमा के प्रति मौन इसी पाखण्ड की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप है, ऐसा सहज मे ही मान्य प्रतीत होता है। यहाँ यह स्मरणीय है कि गुरु-स्तवन भले-बुरे, सद्गुरु और पाखण्डी गुरु सभी को समान रूप से लाभ पहुँचाता था। गुरु तेगबहादुर तो इस सस्था के प्रति मौन रहे किन्तु गुरु गोविन्दसिंह ने इस सस्था का अन्त ही कर दिया। अत यह कहना अनुचित न होगा कि इन गुरु-द्वय की वाणी मे गुरु का जो अतिशय गुणगान नही हो पाया उसके कारण सस्थामूलक हैं।

किन्तु, कदाचित, सस्थामूलक कारण इस तथ्य की आंशिक व्याख्या ही कर

पाते हैं। इस तथ्य को पूर्णरूप से समझने के लिए गुरु-सिद्धात के विकास का अध्ययन करना आवश्यक होगा। भारतीय तत्त्वचिन्तकों ने चिरकाल से गुरुमहिमा को स्वीकार किया है। उपनिषदो मे ब्रह्म-विद्या की दुरूहता एव आचार्य अथवा गुरु द्वारा पथप्रदर्शन की अनिवार्य आवश्यकता की ओर स्पष्ट सकेत किये गये हैं।[१] यहाँ विशेष द्रष्टव्य है कि आरम्भ मे गुरुपद का अधिकारी कोई वेदज्ञ एव ब्रह्मनिष्ठ महात्मा ही हो सकता था।[२] किन्तु बुद्धोत्तर काल मे गुरु सिद्धान्त का जो विकास हुआ उसका स्वरूप बहुत कुछ शास्त्र विरोधी एव ब्राह्मण विरोधी ही है। तान्त्रिक सिद्धो मे तन्त्र-साधना की दुरूहता (आन्तरिक आग्रह) और ब्राह्मण विरोध (बाह्य आग्रह) के कारण ही गुरु के प्रति अटल भक्ति का सिद्धान्त स्थिर हुआ था। 'ज्यों ज्यो महायानी परम्परा म बौद्ध धर्म तर्क-शीलता छोड कर साधना और अनुभूति-परक होता गया त्यो-त्यो बौद्ध धर्म मे गुरु का महत्त्व बढता गया।[3] साधना की इस दूरूहता के अतिरिक्त गुरु की महत्ता म इस अदभुत वृद्धि का दूसरा रहस्य भी है। तन्त्र-सम्प्रदाय नये सम्प्रदाय थे और उनके प्रवर्त्तक अधिकाश या तो अब्राह्मण थे या ऐसे ब्राह्मण जो कर्मकाण्डी वैदिक ब्राह्मणो द्वारा हेय समझे जाते थे। अत अपनी स्थिति सुदृढ बनाने के लिए अपने प्रतिद्वद्वी वदिक ब्राह्मण आचार्यों को पराजित करने के लिए उन्होने अपने सम्प्रदाय और अपने शिष्यो का समुचित सगठन करना चाहा होगा जो गुरु के प्रति अटूट श्रद्धा के बिना असम्भव है।[४]

सिद्धो के परिवर्ती नाथो और सतो मे भी भक्तिकर्म पूर्ववत् दुरुह बना रहा। एव ब्राह्मण-वर्ग के प्रति विरोध का भाव भी बना रहा। फलत तान्त्रिक सिद्धो के साधना-मार्ग को स्वीकार न करते हुए भी उन्होने सिद्धो द्वारा प्रतिपादित गुरु महत्त्व को स्वीकार करने मे 'सकोच' नही किया।

नानक-मार्ग न तो दुरुह साधना का मार्ग है और न इसमे ब्राह्मण-विरोध का स्वर इतना प्रबल और तीव्र है जितना सतमार्ग मे। तो भी नानक-मार्ग मे गुरु-महत्त्व को स्वीकार किया गया है। इसका मुख्य कारण तो यह प्रतीत होता है कि 'गुरु' उस नवीन चेतना का प्रतीक बन चुका था जिसके कारण धर्म के द्वार निम्न जातियो के लिए खुल सके थे। 'गुरु' वर्ण-धर्म पर आश्रित धार्मिक सकीर्णता के विरुद्ध विद्रोह का प्रतीक बन चुका था। अत गुरु नानक द्वारा इसका अपनाया जाना बहुत स्वाभाविक ही था।

नानक-मार्ग मूलत वेद विरोधी या विप्र विरोधी मत नही है। अत नानक-मार्ग मे गुरु सिद्धात का प्रतिपादन वेदविरोधी अथवा विप्रविरोधी दृष्टि से कदापि

---

१ श्वेताश्वतर उपनिषद ,

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ
तस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मन ६।२।३

२ बृहदारण्यक उपनिषद

तस्मादेव विच्छान्तोदान्त उपरतस्ति तिक्षु
समाहितो भूत्वात्मन्येवात्मान पश्यन्ति ।४।४।२३।

३. डा० धर्मवीर भारती सिद्ध साहित्य—पृ० १६७

४. डा० धर्मवीर भारती सिद्ध साहित्य—पृ० १६७

नही हुआ। नानक-मार्ग का उद्देश्य पंजाव की सम्पूर्ण हिन्दू जाति को सगठित करना और उनकी आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक मुक्ति का माध्यम प्रस्तुत करना रहा है। खण्डन और मण्डन के विवाद मे पड कर सघ-शक्ति को दुर्बल बनाना नानक-मार्ग का अभिप्रेत नही है। ज्यो-ज्यो गुरु सगठन का स्थूल केन्द्रबिन्दु बनता गया त्यो-त्यो खण्डन का स्वर क्षीण होता गया। गुरु नानक के उत्तराधिकारियो की वाणी मे खण्डनात्मक प्रवृत्ति सर्वथा नगण्य है और जब पचम गुरु के निधनोपरात संगठन का आग्रह प्रवलतर होता गया और हिन्दू जाति के सभी अगो के सयुक्त सघर्ष के लिए आयोजन होने लगा तो 'गुरु' का सिद्धातपरक रूप अपेक्षाकृत क्षीण होने लगा। कम से कम उसकी आवृत्ति उतने आग्रह से नही हुई। यह वही समय था जब सिक्खमत पौराणिक प्रभाव को अधिक निस्संकोच भाव से ग्रहण करने लगा था। हमारे मत मे यह प्रवृत्ति गुरु-सिद्धान्त से सयुक्त किसी प्रकार की भी अवैदिक अथवा अद्विज भावना के निराकरण की ही द्योतक है। पचम गुरु के परवर्ती कवि गुरुओ मे गुरु महत्त्व का प्रतिपादन कितने कम आग्रह से किया गया है इसका सम्यक् अध्ययन करने के लिए हमने आदिग्रथ मे सम्मिलित गुरु तेगवहादुर की वाणी एव उसी सदर्भ मे उन्ही पृष्ठो अथवा उसके निकटतम पृष्ठो पर, अकित अन्य गुरुओ की वाणी मे 'गुरु' शब्द का परिगणन किया है जो इस प्रकार है :—

	गुरु तेगबहादुर		अन्य गुरु	
राग	पृष्ठ एवं पक्तियाँ	गुरु शब्द का प्रयोग	पृष्ठ एवं पंक्तियाँ	गुरु शब्द का प्रयोग
गउडी	२१९	२ वार	२१९	६ वार
आसा	४११	×	४११	×
देव गधारी	५३६ (१८)	०	५३६	१
सोरठि	६३२	२	६३०	११
धनासरी	६८५(१६)	२	६८५(१२)	४
जैतसरी	७०२-७०३(१९)	०	७०३(१५)	२
टोडी	७१८(६)	१	७१८(६)	१
तिलग	७२६-२७ (१७)	१	७२६(प्र० १७)	१७
विलावल	८३०-८३(१८)	१	८३१(१६)	५
रामकली	९०१-९०२(२२)	०	९०१(२०)	३
मारू	१००८ (१७)	१	१००९(प्रथम १७ पक्तियाँ)	७
वसत	११८६-११८७(२८)	१	११८५-११८६(२३)	५
सारग	१२३१-३२(२२)	०	११३२(२२)	४
जैजावन्ती	११५२-५३(२३)	०	११५३(१३)	२
(श्लोक)	१४२६-२९(श्लोक)	२	१४२३-२५	३५
		१३		१०३

गुरु गोविन्दसिंह की वाणी मे गुरु का महत्त्व-गान इससे भी कम हुआ है। गुरु गोविन्दसिंह की उन वाणियों मे जिनकी प्रामाणिकता सर्वथा असदिग्ध है गुरु-महत्त्व का प्रतिपादन एक बार भी नही हुआ। दो एक स्थान पर गुरु परम्परा का श्रद्धापूर्ण स्मरण अवश्य हुआ है।

साराश यह है कि जहाँ गुरु तेगबहादुर और गुरु गोविन्दसिंह द्वारा सिक्ख सिद्धात के मूल आधार मे कोई परिवर्धन या परिवर्तन नही किया गया वहाँ उन्होंने उसके किसी पक्ष विशेष पर बल अपने युग की आवश्यकताओ के अनुसार दिया है। इससे हमारी पूर्व-कथित स्थापना का अतिरिक्त समर्थन होता है। स्थापना यह है कि सिक्ख धर्म एक जीवन्त, अग्रसर आन्दोलन है जिसमे अपने मूल सिद्धान्तो के प्रति निष्ठावान रहते हुए युग की आवश्यकताओ के अनुसार नवीन तथ्यो का ग्रहण और प्राचीन तथ्यो पर बलाबल का परिवर्तन सभव है।

शैली —सिद्धान्त ही नही प्रतिपादन शैली की दृष्टि से भी गुरुवाणी एक गतिशील प्रवाह का प्रभाव डालती है। गुरु तेगबहादुर और गुरु गोविन्दसिंह की वाणी स्पष्टत एक नवीन दिशा की ओर अग्रसर दिखाई देती है।

गुरु तेगबहादुर से पूर्व रचित गुरुवाणी मे पजाबी लोक-काव्य शैली के अनुसरण का आग्रह बहुत स्पष्ट है। वार (युद्ध गीत), घोडी (विवाह गीत), लावाँ (भाँवर-गीत), अलाहणी (मृत्यु-गीत), बारहमाहा (बारहमासा), रुत (ऋतु), पहरे (वनिजारो के गीत), करहले (सारबानो के गीत), दिनरैण (दिनचर्या), थिति (तिथियाँ), आदि लोक-काव्य के अनेक रूपो को गुरुवाणी मे अपनाया गया है।[१] गुरु तेगबहादुर की वाणी मे इन लोक-काव्य रूपो का नितान्त अभाव है। गुरु गोविंद सिंह के भक्ति-काव्य मे इनके दर्शन नही होते। हाँ, 'बारह मासा' और 'वार' का प्रयोग अवश्य हुआ है किन्तु प्रबन्ध-काव्य मे। बारह मासा तो हिन्दी और पजाबी दोनो का साझा काव्य रूप है। विशुद्ध पजावी लोक-काव्य से दशम ग्रन्थ का सम्बन्ध एक पजाबी वार (वार भगौती) के ही कारण है। कुल मिलाकर गुरु तेगबहादुर और गुरु गोविन्दसिंह की वाणी विशुद्ध पजाबी लोक-काव्य-शैली का अनुसरण न करके हिन्दी काव्य-शैलियो का अनुसरण करती है। गुरु तेगबहादुर की पद शैली और दोहा शैली और गुरु गोविन्दसिंह की कवित्त-सवैया शैली एव पद्धटिका-शैली का प्रयोग हमारे मत का समर्थन करता है। सिक्ख धर्म के इतिहास मे कवित्त, सवैया, पद्धटिका आदि अनेक हिन्दी छन्दों का प्रयोग किसी गुरु-कवि द्वारा प्रथम बार हुआ है।

भाषा —भाषा की दृष्टि से भी गुरु तेगबहादुर और गुरु गोविन्दसिंह की रचना अपने पूर्ववर्ती गुरुओ से विशिष्ट है। दोनो गुरुओं की वाणी मे मिश्रित भाषा-शैली का सर्वथा अभाव है। गुरु तेगबहादुर की वाणी मे एक भी पद अथवा दोहा पजाबी भाषा मे नही लिखा गया। गुरु गोविन्दसिंह के १४२८ (मुद्रित) पृष्ठो मे पजाबी भाषा की रचना ६ पृष्ठो तक ही सीमित है। उनके भक्ति-काव्य में पजाबी

---

१. देखिये 'वाणी ब्योरा' पृ० ६ से ५० तक तथा पृ० ८६ से ६०

भाषा-शैली का प्रयोग नहीं किया गया। संक्षेप में हमारा मत है कि भाषा की दृष्टि से गुरु तेगबहादुर और गुरु गोविन्दसिंह की रचना पूर्ववर्ती गुरुओं की रचना से स्पष्टत भिन्न है।

सारांश यह है कि सत्रहवीं शताब्दी की गुरुवाणी की सिद्धान्त, प्रतिपादन शैली, बिम्बाधार और भाषा की दृष्टि से अपनी पृथक् विशेषता है। सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी की गुरुवाणी का क्रमानुसार अध्ययन करने पर वह एक जीवन्त और अग्रसर प्रवाह के रूप में दृष्टिगत होती है।

द्वितीय अध्याय

गुरुदास

जीवन

भाई गुरुदास के प्रारम्भिक जीवन के सम्बन्ध म कोई निश्चित सूचना उपलब्ध नही है। वे गुरु अमरदास (सन् १४७९-१५७४) के भतीजे थे। गुरुदास नाम से ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि गुरु अमरदास के इस भतीजे का नामकरण गुरु अमरदास द्वारा गुरु मत ग्रहण करने (सन् १५४०) के पश्चात् ही हुआ। डा० वीर सिंह का अनुमान है कि 'भाई (गुरुदास) साहब का जन्म सम्वत् १६०२ वि० के समीप हुआ। वे इसे अधिकाधिक सम्वत् १६०० से १६१० वि० (सन् १५४३ से १५५३ ई० के बीच मानते है।

भाई गुरुदास का सम्पर्क चार सिक्ख गुरुओ—गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुयु अर्जुनदेव और गुरु हरिगोबिन्द—से रहा। उन्हें सिक्ख धर्म के प्रचारार्थ आगरा, काशी आदि कई स्थानो पर रहना पडा। सस्कृत और हिन्दी के पण्डित होने के नाते हिन्दी-भाषी क्षेत्र मे सिक्ख धर्म के प्रचार के लिये वे योग्यतम व्यक्ति थे।

भाई गुरुदास का देहावसान सन् १६३७ ई० (सवत १६९४) मे हुआ। इनका दाह सस्कार छठे गुरु हरिगोविन्द जी ने अपने हाथो किया।

कृतित्व —भाई गुरुदास जी ने पजाबी और हिन्दी, दोनो भाषा-शैलियो मे रचना की। पजाबी मे 'वारो' और हिन्दी मे स्फुट कवित्त-सवैयो का सृजन किया। इन कवित्त सवैयो की सम्मिलित सख्या ६७५ है। इनमे से अन्तिम ११९ के अनुसन्धान का श्रेय डा० वीरसिंह को है।

भाई गुरुदास की रचना का सुनिश्चित काल कही नही दिया गया, किन्तु यह सर्वथा अज्ञात भी नही है। वारो और कवित्त-सवैयो का आरम्भ गुरु वन्दना से हुआ है। दोनो ही रचनाओ मे उन्होने गुरु हरिगोविन्द (गुरुत्व काल सन् १६०६-१६४४ ई०) की वन्दना की है। वन्दना के ये पद आरम्भ मे हैं और समस्त रचना की क्रमिक छन्द-गणना के अग हैं। अत यह अनुमान असगत न होगा कि इन दोनो रचनाओ (वार और कवित्त-सवैये) के एक बहुत बडे भाग का सृजन हरिगोविन्द के गुरुत्व-काल मे हुआ। कुछ रचना गुरु अर्जुन देव के समय मे भी हुई होगी। जनश्रुति के अनुसार आदि ग्रन्थ मे भाई गुरुदास की वाणी सम्मिलित तो न की गई, किन्तु इसे गुरु अर्जुनदेव द्वारा 'गुरु ग्रन्थ की कुजी' की पदवी प्रदान की गई। गुरु ग्रन्थ का सम्पादन-कार्य १६०४ मे सम्पन्न हुआ। इन दोनो तथ्यो से यही ज्ञात होता है कि गुरु दास जी कुछ वाणी सन् १६०४ तक लिख चुके थे और

इनकी कुछ वाणी १६०६ के पश्चात् लिखी गई। सक्षेप मे हम इन्हें सत्रहवीं शताब्दी के प्रथम चरण का कवि कह सकते हैं।[1]

प्रतिपाद्य

(क) माधुर्य भक्ति —पजाब मे माधुर्य भक्ति की परम्परा फरीद शकरगज (तेरहवी शताब्दी) से आरम्भ होती है। उनके हिन्दी पद और पजाबी दोहे समान रूप से मधुर भावना से सिक्त हैं। तदुपरान्त सिक्ख गुरुओ की वाणी भी इसी भावना से अनुप्राणित है। दास्य, सख्य और वात्सल्य के उदाहरण भी सिक्ख गुरुओ की वाणी मे मिलते हैं, किन्तु गुरु वाणी मे सबलतम स्वर माधुर्य-भक्ति का ही है। सक्षेप मे भाई गुरुदास से पूर्व पजाब मे माधुर्य-भक्ति की एक पुष्ट परम्परा स्थापित हो चुकी थी। पूर्ववर्ती रचनाओ से प्रतिनिधि उदाहरण प्रस्तुत है।

१ फरीद

तपि तपि लुहि लुहि हाथ मरोरउ।
बावलि होई सो सह[2] लोरउ।[3]

२. गुरु नानक

पिरु घरि नही आवै धन किउ सुख पावै बिरहि बिरोध तनु छीजे।
कोकिल अबि सुहावी बोलै किउ दुख अकि सहीजै।[4]

३ अगद

सावणु आया हे सखी कतै चिति करेहु
नानक भूरि मरहि दोहागणी जिन्ह अवरी लगा नेह।[5]

४. अमरदास

सुणि सुणि काम गहेलीए किआ चलहि बाह लुडाइ।
आपणा पिरु न पछाणही किआ मुहु देसहि जाइ।
जिन सखी कतु पछाणिआ हउ तिनकै लागउ पाइ।[6]

५ रामदास

मेरो सुन्दरु कहहु मिले कितु गली।
हरि के सन्त बतावहु मारगु हम पीछै लागि चली
॥१॥२६॥३॥

---

१. डा० वीरसिंह के अनुसार उनके नायिका भेद सम्बन्धी कवित्तों की रचना गुरु हरिगोविंद के समय में (सन् १६०६ के पश्चात्) हुई। देखिए भाई वीरसिंह द्वारा सपादित कवित्त भाई गुरुदास की भूमिका, पृ० ६२ और ६६।

२ सह (फारसी शाह)—पति।

३. आदि ग्रन्थ, पृ० ७९८।

४. आदि ग्रन्थ, पृ० ११०८।

५. आदि ग्रन्थ, पृ० १२८०।

६. आदि ग्रथ, पृ० ३७

प्रिग्र के वचन सुखाने हीग्ररै इह चाल बनी है भली ।
लटुरी मधुरी ठाकुर भाई ओह सुन्दरि हरि ढुलि मिली ।[1]

६. गुरु अर्जुन

कवन गुन प्रानपति मिलउ मेरी माई ।
रूप हीन बुधि बलि हीनी मोहि परदेसनि दूर ते आई ।[2]

गुरुवाणी मे व्यक्त मधुर-भावना के स्वरूप का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिये इसकी तुलना तत्कालीन पंजाबी सूफियो की मधुर-भावना से का जानी चाहिये। यहाँ विस्तृत तुलना अप्रासगिक होगी। इतना ही पर्याप्त होगा कि सूफी मधुर-भावना का स्वरूप विशुद्ध पजाबी है । वे हीर-राँझा, सोहणी-महीवाल के प्रतीको का अत्यन्त विस्तृत प्रयोग करते हैं। गुरुवाणी मे इनका सर्वथा बहिष्कार है। गुरुवाणी मे अभिव्यक्त मधुर-भावना का स्वरूप निश्चय ही सूफियो की अपेक्षा कम पजाबी है। जब सूफी शाह हुसैन के सौजन्य से हीर-राँझा और सोहणी-महीवाल का आत्यंतिक प्रयोग हुआ तो उनके समकालीन पंचम गुरु ने लालन, श्याम आदि का प्रयोग भी अपूर्व नैरन्तर्य से किया :

१. मू लालन सिउ प्रीति बनी
तोरी न तूटै छोरी न छूटै ऐसी माधउ खिच तनी
बलि बलि जाऊ सियाम सुन्दर कउ अकथ कथा जाकी बात सुनी ।[3]
२. तिसु मोहन लालु पिआरे हउ फिरउ खोजंतीआ ।[4]
३. मोहन नीद न आवै हावै हार कजर बसत्र अभरन कीने ।[5]
४. कमल नैन अंजन सिआम चन्द्र बदन चितसार ।[6]
५. सावल सुन्दर रूप बणावहि बेणु सुनत सभ मोहैगा ।[7]

गुरु अर्जुन की वाणी मे ऐसी अगणित पक्तियाँ यत्र-तत्र मिलती हैं। सक्षेप मे भाई गुरुदास से पूर्व पजाब में मधुर-भक्ति की एक पुष्ट परम्परा स्थापित हो चुकी थी और उसका स्वरूप हिन्दी क्षेत्र मे प्रचलित रूप के निकट था।

भाई गुरुदास को हिन्दी क्षेत्र मे रहने का अवसर मिला था। उन्होने गेय पद शैली को छोडकर रीति कवियो के प्रिय छन्द कवित्त और सवैया अपनाये। उनकी मधुर भावना भी रीति-कवियो से प्रभावित प्रतीत होती है। प्रिय अथवा पति के लिये 'नायक' शब्द का प्रयोग तो गुरुओ ने भी किया था, जीवात्मा के लिये 'नायिका' शब्द प्रचलित करने का श्रेय भाई गुरुदास को ही है । उनकी नायिका का स्वरूप देखिये :—

---

१. आदि ग्रथ, पृ० ५२७
२. आदि ग्रथ, पृ० २०४
३. आदि ग्रन्थ, पृ० ८२७
४. आदि ग्रन्थ, पृ० ७०३
५. आदि ग्रन्थ, पृ० ८३०
६. आदि ग्रन्थ, पृ० १३६४
७. आदि ग्रन्थ, पृ० १०८२

ककही दै माग उरझाए सुरझाए केस
कु कम चन्दन को तिलक दे लिलार मैं।
अजन खजन दृग, बेसरि, करन फूल
वारी सीस फूल दै तमोल मुख द्वार मैं।
कण्ठ श्री कपोत मरकत औं मुक्ताहल
वरन वरन फूल सोभा उर हार मैं।
चरचरी ककन मुद्रिका महदी वनी
अगिया अनूप छुद्र पीठ कटि धार मैं।३४७।

पुन.

मज्जन के चीर चार, अजन, तमोल रस
अभरन सिंगार साज सिहजा विछाई है।
कुसम सुगन्धि अरु मन्दर सुन्दर माझ
दीपक दिपत जगमत जोति छाई है।
सोधत सोधत सउन लगन मनाइ मन
बाछत विधान चिरकार बारी आई है।
औसर अभीच नीच निद्रा मैं सोवत खोए
नैन उघरत अत पाछै पछुताई है।६५८।

गुरु वाणी मे नायिका का स्वरूप, कुल मिला कर ग्रामीण मुग्धा का ही रहा, औपचारिक रूप से सुसज्जित, नागरिक वासकसज्जा, नायिका का चित्र पजाब के वाणी-साहित्य मे प्रथम बार प्रवेश पा रहा है। गुरदास ने सभी प्रकार की नायिकाओं का चित्रण तो अपने कवित्तो में नही किया है। प्रोषित-पतिका, वासकसज्जा और खडिता के उदाहरण ही उनकी रचना मे मिलते हैं। तो भी, उनकी रचना को पढकर ऐसी प्रतीति अवश्य होती है कि उनके मन में भेद-उपभेद सम्बन्धी विचार अवश्य विद्यमान था। वे रमा को सर्वनायिका की छवि छीनने का उलाहना देते हैं (६४९)। अपने विषय मे वे निश्चय नही कर पाते कि वे स्वाधीनपतिका (सुहागिन) हैं, प्रोषितपतिका (विरहिणी) हैं कि खण्डिता (दुहागिन)। 'मेरो यहा नाम है' (६४२) कहते हुए गुरुदास जैसे नायिका-भेद सम्बन्धी शास्त्रीय विभाजन से सन्तुष्ट प्रतीत नहीं होते। फरीद और गुरु कवियो की माधुर्य भक्ति का वातावरण जनसाधारण का है। गुरवाणी की नायिका साधारणत ग्रामीण स्त्री है। चतुर्थ गुरु और पचम गुरु की वाणी मे कुछ एक स्थलो पर नागरिक लक्षण उभरते दृष्टिगत होते हैं, किन्तु उनकी वाणी मे भी अधिकाशत बाट जोहती ग्रामीण मुग्धा अथवा रूपहीन, यौवनहीन, अनाथ कन्या ही प्रेम-निवेदन करती दिखाई देती है। भाई गुरदास की नायिका निरपवाद रूप से नागरिक है। एकाध स्थान पर तो यह राजपत्नी के रूप मे भी चित्रित है। ग्रामीण नायिका के चित्र का तो सर्वथा अभाव है। नागर वातावरण की ओर इगित करने वाले कुछ उद्धरण यहाँ देने अनुपयुक्त न होंगे

१. बिन प्रिय राग नाद वाद ज्ञान ग्रान कथा
लागै तन तीछन दुसह उर बान है ॥५७४॥
—पृष्ठ १०६

२. याही मस्तक पेखि रीझत को प्रान नाथ,
हाथि ग्रापनें बनाय तिलकु दिखावते ॥५७६॥
—पृष्ठ १०८

३. जैसे दासी नायिका के अग्रभाग ठाढी रहै
धावै तित तित ही को जितही पठाइयै ॥६१०॥
—पृष्ठ १४५

४. कवन तम्मोल करि रसना सुजसु रसै
कउन करि ककन नमस्कार कीजिये
कवन कुसमहार करि उर धारियत
कौन अंगिया सु कर ग्रकमाल दीजिये ॥६२६॥
—पृष्ठ १६२

५. वार डारउ विविध मुक्ति मन्द हासु पर ॥६४६॥
—पृष्ठ १८२

६. मज्जन के चीर चार, ग्रजन तमोल रस,
ग्रभरन सिंगार साज, सिहजा (सेजा) बिछाई है
कुसम सुगन्धि ग्ररु मन्दर सुन्दर माझ
दीपक दिपत जगमग जोति छाई है ॥६५८॥
—पृष्ठ १६६

गुरवाणी साहित्य मे जीवात्मा को विरह-विधुरा मुग्धा के रूप में ही प्रस्तुत किया गया है। सभोग के विस्तृत एव ऐन्द्रिय चित्र उपस्थित करने का श्रेय भी गुरुदास को है। शरत्पूर्णिमा को कुसुम-शैया पर यौवनवन्त नायक-नायिका का चित्र उपस्थित है :

जैसीऐ सरद निस, तैसेई पूरन ससि
वैसेई कुसम दल सिहजा[१] सुवारी है।
जैसीए जोवन बैस, तैसेई ग्रनूप रूप,
वैसेई सिंगार चारु गुन ग्रधिकारी है।
जैसेई छबीले नैन, तैसेई रसीले बैन
सोभत परस्पर महिमा ग्रपारी है।
जैसेई प्रवीन प्रिय प्यारे प्रेम रसिक हैं
वैसेई बचित्र ग्रति प्रेमनी प्यारी है।[२]

---

१. सिहजा—सेज
२. कवित्त—सवैये स० ६५५

इसी प्रकार वे पुष्प-शैया पर विराजमान नायिका को सावधान करते हैं कि वह प्रभात होने से पूर्व ही 'काम-केलि' सम्पन्न कर ले :—

जउलौ दीप जोति होति नाहिन मलीन आली
जउलौं नाहि सिहजा[1] कुसम कुमलात है
जौलों न कमलन प्रफुल्लत उडत अल[2]
बिरख बिहंगम न जउलौ चुहचुहात है।
जौलौं भासकर को प्रकास न अकास बिखैं
तमचुर सख बाद सबदि न प्रात है।
तौलौं काम केल कामना सकूल पूरन के
होइ निहकाम प्रिय प्रेम नेम घात है।[3]

रीतिकालीन शृंगार-भावना के अनुकूल ही गुरुदास ने 'बहु-नायक' की कल्पना की। इस स्थिति मे सवतियों[4], मान[5], दूती[6] आदि का वर्णन भी भाई गुरदास ने पर्याप्त विस्तार से किया है।

संभोग के समान वियोग शृंगार के चित्रों में भी पर्याप्त ऐन्द्रियता है। विरह-विदग्धा नायिका की स्मृति मे 'रैन समैं चैन को सिहजासन बुलावही' तथा 'कर गहि कर, उर-उर सै लगाइ पुन' के ही चित्र हैं।[7] विरह का अतिशयोक्तिपूर्ण एवं चमत्कारपूर्ण वर्णन भी रीतिकालीन प्रवृत्ति के ही अनुसार है :—

बिरह दावानल प्रगटी न तन बन बिखैं
असन बसन तामैं घृत परजारि है।
प्रथम प्रकासे धूम अतिहि दुसहा
ताही ते गगन घन घटा अन्धकार है।
भभक मभूको ह्वै प्रकास्यो है अकाश ससि
तारका मंडल चिनगारी चमकार है।
कासिउ कहउ कैसे अन्तकाल वृथावन्त गति
मोहि दुख सोई सुखदाई संसार है।[8]

संक्षेप में हमारा मत यह है कि जहाँ गुरुवाणी में अभिव्यक्त मधुर भावना भक्ति-कालीन भावना के अनुकूल है, वहाँ भाई गुरदास की मधुर-भावना रीतिकालीन

---

१. सिहजा—सेज
२. अल—अलि
३. कबित्त—सवैये सं० ६६१
४. कवित्त—सवैये ६६३
५. कवित्त—सवैये स० ६६४
६. कवित्त—सवैये सं० ६६०
७. कवित्त—सवैये—स० ६६५
८. कवित्त—सवैये संख्या ६६८।

शृंगार-प्रवृत्ति, उसकी औपचारिकता, ऐन्द्रियता एवं चमत्कार-प्रियता से प्रभावित है। गुरुदास पंजाब मे रीति प्रभाव को लाने वाले प्रथम कवि हैं।[1]

भाई गुरुदास के पश्चात् यह प्रभाव किसी और भक्त कवि ने ग्रहण नही किया। उनके परवर्ती गुरुद्वय मे भगवान से मधुर सम्बन्ध स्थापित करने का आग्रह नही है। ऐतिहासिक परिस्थितियो के कारण भगवान के महाकाल रूप का ही आवाहन हुआ। पंजाबी सूफियो मे मधुर-भावना की क्षीण धारा अवश्य बहती रही।[2]

(ख) गुरु-भक्ति—जिस माधुर्य भक्ति का उल्लेख गत पृष्ठो मे किया गया है, उसका सम्बन्ध गुरुदास के पचास-साठ कवित्तो से ही है। शेष लगभग छ सौ से ऊपर कवित्त-सवैयो का प्रिय विषय हैं गुरु। उनका अभीष्ट है गुरु महिमा का भरपूर, भावपूर्ण गायन। गुरु के नाते वे गुरुभक्ति, गुरूपदेश, गुरुकृपा, गुरुमुख, गुरुसिख, गुरु ब्रह्म, गुरसगुण, गुरु-निर्गुण आदि को भी अपने कवित्तो का विषय बनाते हैं। गुरुदास के कवित्तो मे बहुत कम कवित्त ऐसे मिलेंगे जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से गुरु महिमा का उल्लेख न करते हो। सक्षेप मे, हम कह सकते हैं कि यदि गुरुवाणी का प्रमुख प्रतिपाद्य भक्ति है तो गुरुदास वाणी का प्रमुख प्रतिपाद्य गुरु-भक्ति है।

सम्पूर्ण सत साहित्य मे गुरु की महिमा निर्विवाद रूप से स्वीकृत है। सिक्ख धर्म भी गुरु को सर्वोपरि मानता है। कबीर ने गुरु को गोविन्द से बढकर माना था, क्योंकि उन्ही की कृपा से वे गोविन्द तक पहुँचे हैं। गुरु वाणी मे भी ऐसे पद मिल जाते हैं जहाँ गुरु को गोविन्द से अभिन्न माना गया है।[3] शुद्ध सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से गुरु का स्थान ब्रह्म के समकक्ष न हो कर ब्रह्म-प्राप्ति के साधन रूप मे ही है। कबीर वाणी और गुरुवाणी मे गुरु का वर्णन इस रूप मे भी हुआ है। किन्तु सम्पूर्ण सत साहित्य मे साधन को भी साध्य के समान ही श्रद्धा का विषय माना गया है। गुरुवाणी मे गुरु के प्रति श्रद्धापूर्ण और भावपूर्ण आत्मसमर्पण का वर्णन कबीर की वाणी की अपेक्षा बहुत विस्तृत है। गुरु और सिक्ख के सम्बन्धो मे भावना की उतनी ही

१. (ग) जब से कान्ह ने मुरली-बजाइ है। मैं बावली हो कर उसकी ओर भागी।

काफी ३६। पृ० १६१।

२ बुल्हे शाह (सन् १६८०-१७५८) की कुछ पक्तियाँ देखिये —

(क) राझा जोगी है और मै जोगिन। उसके लिए मैं पानी तक भरूँगी।

काफी ६, पृ० १०१

(ख) मेरे हाथों में ककन, बाजुओं में चूड़ियाँ और गले में नव-रंग चोला है। राझा तो मुझे बावली बना गया है।—काफी १६, पृ० १४१।

(डा० मोहनसिंह द्वारा सपादित 'बुल्हेशाह')

३. (क) गुरु मेरी पूजा गुरु गोबिन्दु। गुरु मेरा पारब्रह्म गुरु भगवन्तु

—गुरु ग्रथ, पृष्ठ ८६४।

(ख) गुर परमेसर एक जाणु। जो तिस भावै सो परवाणु

—गुरु ग्रंथ, पृष्ठ ८६४।

(ग) सतिगुरु देउ परतखि हरि मूरति जो अमृत बचन सुणावै

—गुरु ग्रथ, पृष्ठ १२६४।

तीव्रता है जितनी सम्पूर्ण भक्ति-काव्य में भगवान और भक्त के सम्बन्ध मे व्यक्त की गई है। सिक्ख गुरु से क्षण मात्र के वियोग को भी असह्य समझता है और गुरु को मिलाने वाले सज्जन के लिए क्या कुछ करने के लिए तत्पर नही रहता ? 'अपना तन मन काटि-काटि' कर अर्पण करने को वह तत्पर है। सूफी काव्य में प्रिय से वियुक्त साधक की तीव्रानुभूति का जैसा उल्लेख मिलता है वैसी ही विरहानुभूति का उल्लेख गुरु काव्य में गुरु और सिक्ख के सम्बन्ध में किया गया है।

मेरा मन लोचै गुर दरसन ताई
बिलप करे चात्रिक की निआई
त्रिखा न उतरै सांति न आवै बिनु दरसन संत पिआरे जीउ ॥१॥
हउ घोली जीउ घोलि घुमाई गुर दरसन संत पिआरे जीउ ॥१॥६॥३॥
तेरा मुखु सुहावा सहज धुनि बाणी
चिरु होआ देखे सारिंगपाणी
धन्नु सुदेसु जहाँ तू वसिआ मेरे सजण मीत मुरारे जीउ ॥२॥
हउ घोली जीउ घोलि घुमाई गुर सजण मीत मुरारे जीउ।
इक घड़ी न मिलते ता कलिजुगु होता
हुणि करि मिलीऐ प्रिअ तुधु भगवंता
मोहि रैणि न विहावै नीद न आवै बिनु देखे गुर दरबारे जीउ ॥३॥
हउ घोली जीउ घोलि घुमाई गुर दरसन संत पिआरे जीउ।[1]

गुरु काव्य में केवल शिष्य ही गुरु के लिए तड़पता-विलपता नही दिखाया गया, गुरु का शिष्य के प्रति व्यवहार भी वैसा ही है। जैसे आकाश मे उड़ती हुई पक्षिणी शिशु-विहगों को नही भुलाती, वैसे ही गुरु भी अपने शिष्य के कुशलक्षेम के प्रति उदासीन नही रहता :—

जिउ जननी सुतु जणि पालती राखै नदरि मझारि।
अंतरि बाहरि मुख दे गिरासु खिनु खिनु पोचारि।
तिउ सतिगुरु गुर सिख राखता हरि प्रीति पिआरि ॥१॥
मेरे राम हम बारिक हरि प्रभ के है इआणे।
धन्नु धन्नु गुरु गुरु सति गुरु पाधा जिनि हरिउ उपदेसु
दे कीए सिआणे ॥१॥२६॥३॥
जैसी गगन फिरंती ऊडती कपरे बागे वाली
ओह राखे चीतु पाछे बिचि बचरे नित हिरदे सार समाली
तिउ सतिगुर सिख प्रीति हरि हरि की गुर सिख रखै जीअ
नाली ॥२॥[2]

भाई गुरदास भी गुरु और सिक्ख के बीच ऐसे हार्दिक सम्बन्ध का उल्लेख

१. आदि ग्रंथ, पृ० ९६।
२. आदि ग्रंथ, पृ० १६६।

करते हैं। कुछ एक स्थानो पर तो ऐसा प्रतीत होता है कि गुरु और सिक्ख का परस्पर सम्बन्ध 'गुह्य' माधुर्य-भाव से शासित है —

जैसे बरनारि करि सिहजा (सेजा) सजोग भोग
होत परभाति तन छादन छिपावही।
. ...
तैसे गुर सिक्ख उठि बैठत अमृत जोग
सम सुधा रस चाखि सुख तृप्तावही ।।५६८।।
जैसे कुलवधू गुर जन मे घु घट पट
सिहजा सजोग समै अतर पिय से
... ...
लोगन मै लोगाचार गुर मुख एककार
सबद सुरत उनमन मन हिय सै ।५७।

किन्तु ऐसे पदो की सख्या अत्यन्त न्यून है। मुख्यत वे दास्य भाव से ही गुरु की भक्ति करना चाहते हैं। अनेकानेक पदो मे उन्होने अपने हाथ, पाँव, नेत्र आदि की सार्थकता गुर सेवा में ही मानी है —

सीस गुर चरन, करन उपदेस दीख्या
लोचन दरस अवलोक सुख पाइयै
रसना सबद गुर हस्त सेवा डंडौत
रिदै गुर ज्ञान उनमन लिव लाइये ।६२८।
लोचन अमोल गुर दरस अमोल देखे
स्रवन अमोल गुर बचन धरन कै।
नासका अमोल चरनारबिंद वासना कै
रसना अमोल गुर मन्त्र सिमरन कै। ३३।

गुरुदास भक्त ही नही, प्रचारक भी हैं, अतः उनके गुरु-वर्णन का एक वैशिष्ट्य यह भी है कि वह कई स्थानो पर अध्यात्म-मूलक न होकर सस्थामूलक है। नानक-मार्ग विशुद्ध अध्यात्म मार्ग नही है। गुरु नानक की दृष्टि समाज के हर्ष-शोक पर सदैव रही और उन्होंने आध्यात्मिक एव सामाजिक मूल्यो का समन्वय प्रस्तुत किया। गुरुवाणी का विवेचन करते हुए इसका सकेत किया जा चुका है। गुरु नानक के पश्चात् उनके उपदेशो के आध्यात्मिक पक्ष पर जितना बल दिया गया, उतना सामाजिक पक्ष पर नही। नानकोत्तर गुरु तीव्र आध्यात्मिक अनुभूति सम्पन्न महापुरुष थे। सामाजिक समस्याओ मे वे अधिक नही उलझे।

तो भी ज्यो ज्यो इन गुरुओ के अनुयायियो की सख्या बढती गई, पजाब क्षेत्र में सिक्ख गुरुओ का महत्त्व एक सामाजिक-सस्था के रूप मे स्थापित होने लगा। गुरु अर्जुनदेव को जहाँगीर द्वारा मृत्युदण्ड दिया जाना इसी महत्त्व की ओर सकेत करता है। इन आध्यात्मिक विचारो का प्रचार एव सस्था का रूप ग्रहण कर रहा था। पजाब के हिन्दू सगठित हो रहे थे। सत्सग, चाहे अनचाहे, सघशक्ति को जन्म

दे रहा था। शासक वर्ग को यह संगठन प्रिय न था। शोषित हिन्दू जनता के लिए यह संगठन उनका सर्वस्व था।

गुरुदास का गुरु-वर्णन गुरु-सस्था के इसी सामाजिक महत्त्व से प्रेरित है। भाई गुरुदास की रचना मे गुरु-प्रेम के साथ-साथ सिक्ख-प्रेम का वर्णन भी बहुत भावेगपूर्ण भाषा मे हुआ है। सिक्ख का सिक्ख से प्रेम आध्यात्मिक साधना में कितना सहायक है, यह बहुत स्पष्ट नही है ; किन्तु सिक्ख का सिक्ख से प्रेम इहलौकिक हितों की रक्षा मे अवश्य सहायता प्रदान कर सकता है। यहाँ 'सिक्ख' शब्द विशेष रूप से विचारणीय है। यों तो कबीर ने भी स्वप्न मे राम का नाम लेने वाले सज्जन के जूतों के लिए अपने तन का चाम देने की अभिलाषा व्यक्त की है ; गुरुओ ने भी साधु सेवा अथवा साधु संगति पर बल दिया। गुरुदास ने सिक्ख प्रेम पर बल देकर अपनी रचना के संस्थामूलक तत्त्व को अधिक स्पष्ट किया है।[1] उस समय जातीय रक्षा दृढ़ सस्था के द्वारा ही संभव हो सकती थी। वे इस संस्था के लिए कोई मूल्य अदेय नही समझते। सिक्ख जिस मार्ग पर चल कर सामूहिक शक्ति के केन्द्र गुरु तक आता है वहाँ वे अपनी भस्म तक बिखेरने को तत्पर हैं :—

नख सिख लौ सगल अंग रोम रोम करि
काटि काटि, सिखन के चरन पर वारियै,
अगनि जलाय, फुनि पीसन पीसाय ताहि
ले उडै पवन होय अनिक प्रकारियै।
जत कत सिख पग धरै गुर पथ प्रात
ताहू ताहू मारग मै भसम का डारियै।
तिह पद पादक चरन लिव लागी रहै,
दया कै दयाल मोहि पतित उधारियै। कवित्त—६७२

संक्षेप में हमारा मत है कि भाई गुरुदास के दो रूप हैं—भक्त और प्रचारक। भक्त रूप मे वे बहुनायक ब्रह्म की मधुर-भाव से और गुरु की (मुख्यतः) दास्य भाव से भक्ति करते हैं। प्रचारक रूप मे वे गुरु-सस्था को दृढ़ बनाये रखने के विश्वासी है।

रस :—गुरुदास की गति मुख्यतः शृंगार और शान्त रस तक ही है। भक्ति-काव्य मे अन्य रसो की अवहेलना बहुत अस्वाभाविक नही। शृंगार-रस के अनेक उदाहरण माधुर्य-भक्ति के प्रसग मे प्रस्तुत किये जा चुके हैं। यहाँ दो एक अतिरिक्त तथ्यो की ओर सक्षेप मे इंगित करना ही अभीष्ट है।

भाई गुरुदास के कवित्त देव-विषयक, अपार्थिव, शृंगार से सम्बन्धित हैं। उनकी अन्य रचनाओ, उनकी शिक्षा-दीक्षा, जीवन-चरित आदि को प्रमाण रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है। डा० वीरसिंह का कथन है : प्रत्यक्षतः ऐसा प्रतीत होता

---

१. भाई गुरुदास के मन में सिक्ख और साधु का अन्तर स्पष्ट था :—
जैसे बांस बार दरसन साध किआ काहू
तैसा फल सिक्ख को चापि पग सुआए का—कवित्त ६७३

है कि वे विरहिणी नायिका के भेद-प्रभेद पर रचना कर रहे हैं, किन्तु उस रचना में अंकित रहता था अपने भक्ति-रत मन के गुरु-बिछोह का हाल, परन्तु देखो उनकी प्रवीणता कि इन छन्दो मे आप ऐसे पद पदार्थ (?) रख देते है जिनसे विचारशील (व्यक्ति) को पता चल जाता है कि यह विरह सिक्ख का गुरु की ओर है और परमार्थ का मार्ग आलोकित करता है[1]। डा० वीर सिंह का मत एक सीमा तक मान्य हो सकता है, किन्तु उनके सभी छन्दो मे सदा-सर्वदा अपार्थिव विरह का चित्र निर्भ्रान्त रूप से स्पष्ट नही है। ऐसे अनेक छन्द मिलते है जहाँ उनकी 'प्रवीणता' ने 'परमार्थ' की ओर संकेत करना उचित नही समझा। उदाहरण उपस्थित है :—

याही मस्तक पेखि रीझत को प्राननाथ
हाथि आपनै बनाइ तिलकु दिखावते।
याही मस्तकि धारि हस्त-कमल प्रिय
प्रेम कथा कहि कहि मानन मनावते।
याही मस्तक नाही नाही कहि भागती थी
धाइ धाइ हेत करि उरहि लगावते।
सोई मस्तक धुनि धुनि पुन रोइ उठों
स्वपने हू नाथ नाहि दरस दिखावते।५७६।
पाय लागि लागि दूती बेनती करत हुती
मानमती होइ काहू मुख न लगावती।
सजनी सकल कहि मधुर बचन नित
सीख देति हुती प्रति उत्तर नसावती।
आपन मनाइ प्रिय टेरत है प्रिया प्रिया,
सुनि सुनि मोनि गहि नायिका कहावती।
बिरह बिछोहु लग पूछत न बात कोऊ
बृथा न सुनत ठाढी द्वारि बिललावती।५७५।

इसमे कोई सन्देह नही कि गुरुदास ने सदा स्वकीया, एव सेवा-परायण नायिका का ही चित्र अंकित किया है किन्तु उनका देवानुरक्त होना सर्वत्र स्पष्ट नहीं है। कई छन्दों में विशुद्ध पार्थिव शृंगार की प्रतीति होती है।

कहा जाता है कि भाई गुरुदास ने ये छन्द काशी निवास के समय गुरु विरह की तीव्रानुभूति की दशा मे लिखे। इन छन्दो मे सम्भोग का वर्णन वियोग की अपेक्षा कम मात्रा मे नही हुआ। भाई गुरुदास के जीवन से पता चलता है कि काशी निवास के समय उनका सम्पर्क वहाँ के नरेश से रहा। क्या ये छन्द राजदरबारी प्रभाव के परिचायक हैं? इतिहास इस प्रश्न का निर्णायक उत्तर देने मे असमर्थ है। कुछ भी हो, सिक्ख-साहित्य मे यह प्रवृत्ति गहरी जड न पकड सकी और कुछ समय के पश्चात् समाप्त हो गई।

अलंकार :—भाई गुरुदास की अलंकारो मे विशेष रुचि है। क्या इसे भी रीतिकालीन चमत्कार-प्रवृत्ति का ही प्रभाव माना जाए? चमत्कार-प्रवृत्ति के दर्शन तो

१. कवित्त भाई गुरुदास, द्वितीय खंड, पृ ६६—६७

गुरुदासवाणी में होते हैं, किन्तु हमारा मत है कि भाई गुरुदास की अलंकार-शैली का प्रेरणा-स्रोत इससे भिन्न है। वे गुरुवाणी के प्रचारक एवं व्यास थे। उनकी अलंकार-शैली उनकी व्यास-शैली का ही अंग है। भाई गुरु दास के प्रत्येक कवित्त में साधारणतः एक भाव, विचार अथवा सिद्धान्त होता है, जिसे वे कवित्त की अंतिम पंक्ति में कहते हैं। प्रथम तीन पंक्तियो मे वे तीन समानान्तर अप्रस्तुतों (साधारणतः उपमाओं) द्वारा उसे स्पष्ट करते हैं। उनके अलंकारो को समानार्थक उक्तियों का अभिधान देना अनुचित न होगा।

जैसे तो पपीहा प्रिय प्रिय टेर हेरै बूँद
वैसे पतिव्रता पतिव्रत प्रतिपाल है।
जैसे दीप दिपत पतंग पेखि ज्वारा जरै
तैसे प्रिया प्रेम नेम प्रेमन सम्हार है।
जल सै निकसि जैसे मीन मरि जात तात,
विरह वियोग विरहनी वपु हार है।
विरहनी प्रेम नेम पतिव्रता कै कहावै
करनी कै ऐसी कोटि मधे कोऊ नार है।६४५।
जैसे कर गहत सरप सुत पेख माता
कहे न पुकार फुसलाइ उर मण्ड है।
जैसे वैद रोगी प्रति कहे न विथार वृथा
संजम कै औखद खवाइ रोग डण्ड है।
जैसे भूल चूक चटिया की न वीचारे पाधा
कहि कहि सिख्या मूरख मति खण्ड है
तैसे पेख औगन कहै न सतिगुर काहू
पूरन विवेक समझावत प्रचण्ड है।३५६।

भाई गुरुदास की अलंकार-शैली रीतिकालीन कवियों से भिन्न प्रकार की है। इसका एक स्पष्ट प्रमाण तो यही है कि उनके अधिकांश उपमेय ग्रामीण-जीवन से सम्बन्धित हैं और वे चमत्कार के उद्देश्य से नहीं, व्यास-कार्य की सफल पूर्ति के लिए प्रयुक्त हैं। चमत्कार उनके नायिका-सम्बन्धी छन्दों (जिनकी संख्या ५० के लगभग है) तक ही सीमित है।

भाई गुरुदास की अलंकार-शैली का अनुसरण भी किसी परवर्ती कवि द्वारा नहीं हुआ। एक नियमित अलंकार शैली का प्रयोग गुरु गोविन्दसिंह द्वारा भी हुआ। किन्तु जहाँ भाई गुरुदास की रुचि कवित्त के आरम्भ मे तीन अप्रस्तुत-वाक्य और अन्त मे प्रस्तुत-वाक्य देने की है वहाँ गुरु गोविन्दसिंह तीन पंक्तियो मे एक दृश्य का वर्णन करने के पश्चात् अंतिम पंक्ति मे अलंकार देकर दृश्य को समेट लेते हैं।

छन्द :—भाई गुरुदास छन्द-नैपुण्य मे रुचि रखते हैं, छन्द-वैविध्य मे नही। उन्होने अपनी पंजाबी रचना के ६१३ छन्दों के लिए एक ही 'निशानी' छन्द और

अपनी हिन्दी रचना में ६७५ (अब तक उपलब्ध) मुक्तको में लिए एक ही कवित्त छन्द का प्रयोग किया है।

छन्द-योजना पर उनका अपूर्व अधिकार है। वस्तुत पजाब मे पिंगल के बधनों का निरपवाद पालन भाई गुरुदास द्वारा ही हुआ। उनसे पूर्व के पजाबी साहित्य में सृजनात्मक क्रिया का नियत्रण पिंगल शास्त्र द्वारा न होकर, रचयिता की स्फूर्ति द्वारा ही हुआ है।

यह विचित्र तथ्य है कि पजाब मे छन्दो के सुनिश्चित नामो का प्रयोग करने मे सकोच रखा गया है। आदिग्रथ मे सकलित भाट-वाणी को 'सवये' (सवैये) 'स्री मुख वाक' अथवा 'भट्टो के सवैये' का अभिधान दिया गया है। इस रचना मे सवैयों के अतिरिक्त छप्पय, कवित्त आदि अनेक छन्दो का प्रयोग हुआ है। जहाँ आदिग्रथ मे अनेक छन्दो का एक नाम लिया गया है वह भाई गुरुदास का एक ही छन्द कवित्त, कवित्त-सवैये के अभिधान से प्रसिद्ध है। हमारा अनुमान है कि यह नाम छन्द विशेष के लिए इतना नही है अपितु छन्द-शैली के लिए प्रयुक्त किया जा रहा है।[1]

निस्सदेह गुरुदास से पूर्व भी थोडे-से कवित्त पजाब मे लिखे जा चुके थे, परन्तु इस छन्द शैली को लोकप्रिय करने का श्रेय भाई गुरुदास को ही है।

भाषा :—भाई गुरुदास अमिश्रित एव परिनिष्ठित भाषा के प्रेमी हैं। वस्तुत भाई गुरुदास की पजाब काव्य-परम्परा को सर्वोत्कृष्ट देन अमिश्रित एव परिनिष्ठित ब्रजभाषा ही है। उनकी वाणी मे प्रादेशिक विशिष्टताओ के द्योतक प्रयोगो की सख्या न्यूनातिन्यून है। यह वही भाषा-शैली है जिसका प्रयोग हृदयराम (रचना सन् १६२३), गुरु तेगबहादुर, गुरु गोविन्दसिह और गुरुदरबारी कवियो द्वारा हुआ। भाई गुरुदास की रचना से अमिश्रित भाषा-शैली का प्रयोग आरम्भ होता है।

भाई गुरुदास का ऐतिहासिक महत्त्व

गुरुदास तक पहुँच कर पजाब की काव्य-परम्परा मे मूलभूत परिवर्तन होता दिखाई देता है। गुरुदास की वाणी विषय वस्तु और प्रतिपादन-शैली की दृष्टि से पूर्ववर्ती वाणी से सर्वथा विशिष्ट एव विलक्षण है।

विषय वस्तु —नायिका भेद और सख्यामूलक गुरुभक्ति गुरुदास वाणी की दो विलक्षण विशिष्टतायें हैं। इन दोनो प्रवृत्तियो का वाणी-साहित्य पर कोई उल्लेखनीय प्रभाव नही पडा। नायक नायिका की काम केलि की लीक पर भक्ति का प्रति-

---

१. गुरु गोविन्दसिंह रचित, 'चण्डीचरित्र-उक्तिविलास' का प्रमुख छन्द सवैया है। बीच बीच में दोहा, चौपाई, कवित्त का भी प्रयोग है। किन्तु पद्धटिका बध में लिखित दूसरी रचना 'चडी-चरित्र' से इसका शैलीगत वैशिष्ट्य प्रकट करने के लिए वे कहते हैं कि मैंने यह कथा कवित्तों में लिखी है। स्पष्ट है यहां कवित्त एक शैली विशेष के अर्थ में प्रयुक्त है। मूल छन्द इस प्रकार है —

चण्डी चरित्र कवित्तन मै बरन्यो सभही रस रुद्रमयी है।
एकते एक रसाल भयो नख ते सिख लौं उपमा सु नई है। —दशमग्रथ, पृ० ६६

पादन परवर्ती गुरुवाणी में सर्वथा अलभ्य है। परवर्ती वाणी में गुरु-भक्ति को भी विशेष स्थान नहीं मिल सका, इसका सम्यक् विवेचन हमने 'गुरुवाणी' नामक अध्याय में किया है।

शैली :—तत्सम-बहुल शब्द-भाण्डार, गेय-पद शैली के स्थान पर कवित्त-सवैया शैली का प्रयोग, और कला-नैपुण्य की ओर उचित ध्यान, गुरुदास वाणी की शैलीगत विशेषताएँ हैं। इस सम्बन्ध मे उनका योगदान ऐतिहासिक महत्व का है। सोलहवीं शताब्दी के वाणी साहित्य की विशेषताएँ हैं तद्भव-बहुल शब्द-भण्डार, गेय पद शैली और अनिपुण छन्द-निर्वाह। कहना होगा कि भाई गुरुदास ने पंजाब के हिन्दी काव्य को एक शैली-गत चेतना दी, जिसका अनुसरण परवर्ती कवियो द्वारा हुआ। गुरु गोविन्दसिह, सेनापति, अणीराय एवं अन्य गुरुदरबारी कवियों द्वारा जिस शैली का प्रयोग हुआ है उसकी पुष्ट स्थापना गुरुदास द्वारा ही हुई।

तृतीय अध्याय

कच्ची वाणी

जिस प्रकार भक्त भगवान से मानवीय स्तर पर सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है, उसी प्रकार सिक्ख अपने गुरु से ऐसे सम्बन्ध चाहता है जिसमे मानवीय सवेदना या आदान-प्रदान सभव हो सके। गुरुवाणी मे ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जहां गुरु प्रियतम, स्वामी, सखा अथवा जननी के रूप मे चित्रित हुआ है।[1] तो भी, सिक्ख गुरुओ की आरम्भ से ही ऐसी रुचि रही है कि गुरु-सिक्ख सम्बन्ध मे व्यक्ति-तत्त्व को न्यूनतम स्थान दिया जाए। सिक्ख गुरु-व्यक्ति की सेवा आदि मे ही उलझ कर न रह जाये और उसे ही अपने साधना-मार्ग का अन्तिम गन्तव्य न समझ ले इस उद्देश्य से उन्होंने 'शब्द गुरु' अथवा 'वाणी गुरु' के सिद्धान्त पर अत्यधिक बल दिया। सिक्ख-धर्म मे गुरु—व्यक्ति की अपेक्षा गुरु-शब्द अथवा गुरुवाणी को अधिक अनुकरणीय ठहराया गया है।[2] गुरु नानक से लेकर आदिग्रथ के सम्पादक गुरु अर्जुनदेव तक सभी गुरुवाणी के महत्त्व पर बल देते हैं और उसे ही गुरु-रूप मे स्वीकार करने का उपदेश देते हैं —

(क) वाणी गुरू गुरू है वाणी विचि वाणी अमृत सारे।[3]

---

१. यहाँ कुछ उदाहरण दिये जाते हैं :—

(क) जैसे गगनि फिरती ऊडती कपरे बागे वाली।
ओह राखै चीतु पीछै विचि बचरे नित हिरदै सारि सभाली।
तिउ सतिगुर सिख प्रीति हरि-हरि की गुरु सिख रखै जीअ नाली।
—आदि ग्रथ, पृष्ठ १६८

(ख) मै सतिगुर सेती पिरहड़ी किउ गुर बिनु जीवा माउ।
—आदि ग्रन्थ, पृष्ठ ७५१

(ग) भखडु भागी मीहु बरसै भी गुरु देखण जाई।
समु दु सागर होवै बहु खारा गुरसिख लघि गुर पहि जाई।
जिउ प्राणी जल बिनु है मरता तिउ सिखु गुर बिनु मरि जाई।
जिउ धरती सोभ करे जलु बरखे तिउ सिखु गुर मिलि बिगसाई।
—आदि ग्रन्थ पृष्ठ ७५७-७५८

२. गुर कहिआ सा कार कमावहु।
गुर की करणी काहे धावहु।
(गुरु जो कहता है, वह कर्म करो, गुरु की करनी का क्यों अनुकरण करते हो ?)
—आदि ग्रथ, पृष्ठ ९३३

३. आदि ग्रथ, पृ० ९८२

(ख) सतिगुर बचन वचन है सतिगुर पाधरु मुकति जनावैगो[1]
(ग) सबदु गुर पीरा गहिर गभीरा बिनु सबदे जगु बउरान ।[2]

जैसे ही सिक्ख गुरुओ की प्रामाणिक परम्परा के अनुकरण मे अप्रामाणिक, स्वघोपित गुरुओ की सख्या बढी, वैसे ही प्रामाणिक गुरुवाणी के अनुकरण मे अप्रामाणिक वाणी की रचना भी होने लगी। प्रामाणिक एव अप्रामाणिक वाणियो को क्रमश सच्ची एव कच्ची वाणी के नाम से भी पुकारा जाता है। केवल 'सच्ची' वाणी ही अनुकरणीय है, इस बात पर गुरु नानक के समय से ही बल दिया जाने लगा था।[3] ऐसा प्रतीत होता है कि गुरु नानक के जीवन-काल मे ही लोग उनके अनुकरण पर वाणी-रचना करने लगे थे। उनके पश्चात् तृतीय, चतुर्थ एव पचम गुरुओ ने अनेक बार सच्ची वाणी का महत्व प्रतिपादित किया[4] एव कच्ची वाणी की ओर से सिक्खो को सावधान किया।[5] तृतीय गुरु ने तो कच्ची वाणी की विशेषरूप से भर्त्सना की है। ऐसा प्रतीत होता है कि सिक्ख गुरुओ की वाणी का कोई प्रामाणिक सग्रह सकलित न होने के कारण पाखण्डी गुरु अथवा कवि अपनी रचनाओ के प्रचार द्वारा सिक्ख जनता को भ्रान्त करने लगे थे। अपने सिक्खो को सावधान करते हुए वे कहते हैं :

आवहु सिख सतिगुरू के पिआरिहो गावहु सची वाणी।
बाणी त गावहु गुरू केरी वाणीआ सिरि बाणी।
सतिगुरू बिना होर कची है वाणी।
वाणी त कची सतिगुरू बाझहु होर कची वाणी।
कहदे कचे सुणदे कचे कचीआ आख वखाणी।
हरि हरि नित करहि रसना कहिआ कछू न जाणी।
चितु जिनका हिरि लइआ माइआ बोलणि पए र वाणी।
कहै नानकु सतिगुरू बाझहु होर कची वाणी।[1]

चतुर्थ गुरु रामदास कच्ची वाणी पर अपना आक्रोश इस प्रकार प्रकट करते हैं :—

सद् गुरु की वाणी सत्य सरूप है। गुरु-वाणी से ही (सत्य) बना जाता है। सद्गुरु के अनुकरण पर जो कच्ची (वाणी) कहते हैं वे मिथ्याभाषी हैं। उनका मिथ्यात्व

---

१. आदि ग्रथ पृ० १३१
२. आदि ग्रथ, पृ० ६३५
३. साचो वाणी मीठा अमृत धार।
जिनि पीती तिसु मोख दुआर। (गुरु नानक रचित)
—आदि ग्रथ, पृ० १२७५
४. पूरे गुर की साची बाणी। सुख मन अतरि सहजि समाणी। (गुरु अमरदास रचित)
—आदि ग्रथ, पृ० ६६३
५. पूरे गुरु की बाणी। पार ब्रह्म मन भाणी। (गुरु अर्जुनदेव रचित)
—आदि ग्रथ, पृ० ६२५
६. आदि ग्रथ पृ० ९२०

विनष्ट होगा। उनके मन मे कुछ और है उनके मुख में कुछ और है। वे माया रूपी विष के लिये ही यह (वाणी रचना की) झक मारते हैं।[1]

वस्तुत वाणी-रचना उन दिनों गुरु का अनिवार्य चिह्न मानी जाने लगी थी। नानक गुरु-वश मे हरिगोविन्द प्रथम ऐसे गुरु थे जिन्होने वाणी की रचना नहीं की। किन्तु उनके प्रतिद्वन्द्वी, अप्रामाणिक गुरु मिहरवानु ने वाणी-रचना पर विशेष बल दिया।[2] वे अपनी रचना-योग्यता के बल पर ही अपने आप को गुरु प्रमाणित करना चाहते थे। उनसे पहले भी कई महानुभाव अपने आपको गुरु पद का अधिकारी समझते थे। बहुत सी अप्रामाणिक वाणी इन्ही महानुभावो अथवा इनके वशधरो की प्रेरणा एव प्रोत्साहन का परिणाम है, ऐसा अनुमान सहज ही किया जा सकता है। कुछ महानुभावो के नाम इस प्रकार है .—

गुरु नानक के पुत्र-द्वय श्रीचन्द एव लक्ष्मीचद
गुरु पुत्र लक्ष्मीचद का पौत्र धर्मचन्द
द्वितीय गुरु अगद के पुत्र दासू एव दातू
तृतीय गुरु अमरदास के पुत्र मोहण एव मोहरी
चतुर्थ गुरु रामदास के पुत्र पृथिया एव महादेव।[3]

गुरु पदाभिलाषियो की सख्या एक ही समय बाईस तक पहुँच जाने का उल्लेख सिक्ख इतिहास मे मिलता है। अत अनुमान किया जा सकता है कि प्रामाणिक गुरुओ से सख्या मे कही अधिक इन पाखण्डी गुरुओ द्वारा कितनी अप्रामाणिक वाणी की रचना हुई होगी। आज इसका बहुत सा भाग अप्राप्य है। किन्तु प्राप्य भाग से जिन प्रवृत्तियो का पता चलता है, उनका परिचय निम्नांकित पक्तियो में दिया जायेगा।

(क) अनुकरण (नानक) :—कच्ची वाणी को हम दो मुख्य वर्गों मे बाँट सकते हैं। प्रथम वर्ग मे ऐसी रचनायें आती है जो नानक नाम से सम्बन्धित हैं। स्मरण रहे कि गुरु गोविंदसिंह के अतिरिक्त सभी गुरु-कवियो ने अपनी रचनाओ मे नानक नाम (अथवा उपनाम) का ही प्रयोग किया है। गुरु नानकदेव के पश्चात् नानक नाम गुरु का ही पर्याय समझा जाता था। गुरु नानकदेव के सभी उत्तराधिकारी भी

---

१. निम्नलिखित पक्तियों का गद्यरूप :
मतिगुर की बाणी सति सरूपु है गुरबाणी बणीऐ
सतिगुर की रीसै होरि कचुपचु बोलदे से कूड़िआर कूडे झड़ि पड़ीऐ
ओना अन्दरि होरु मुखि होरु है बिखु माइआ नो झखि मरदे कड़ीऐ
—आदि ग्रथ, पृ० ३०४

२. जि को भगति की पातिसाही बैठे सुजान को मथे। अरु सबदि बाना करे। दइ ५५ अरु भोगु सी गुरु बाबे नानक जी का।
(ये गद्य बानगी सत्रहवीं शताब्दी की है)—सुखमनी सहसनाम पाण्डुलिपि (प्रीतमसिंह पुस्तकालय), पृ० ३१०

३. ये सभी नाम भाई गुरदास की छब्बीसवीं वार की तेतीसवीं पौड़ी से लिये गये हैं। देखिये वारां भाई गुरदास पृष्ठ २६३।

अपने आप को नानक ही समझते थे। क्या नानक के उत्तराधिकारियो मे से किसी महानुभाव ने गुरु पद ग्रहण करने से पूर्व भी काव्य-रचना की ? सिक्ख विद्वानो ने कभी यह प्रश्न नही उठाया। आदिग्रथ मे सगृहीत उनकी सारी रचना नानक नाम से ही सम्बन्धित है और वह सारी गुरुवाणी समझी जाती है। केवल महला १, महला २, आदि के सकेत से ही पता चलता है कि यह कौन से गुरु-व्यक्ति की रचना है।[1] अप्रामाणिक गुरुओ ने भी अपनी वाणी के साथ नानक एव महला शब्दो को जोडकर अपना गुरुत्व प्रतिपादित करने का यत्न किया। अप्रामाणिक गुरु हरि जी का जो गद्य-पद्य-मिश्रित ग्रथ आज प्राप्त है उसमे स्पष्ट रूप से महला ८ का निदश किया गया है और जहाँ कही भी वाणी उद्धृत है, वहाँ 'नानक' नाम (अथवा उपनाम) का प्रयोग किया गया है। उदाहरण इस प्रकार हैं :—

(क) मागउ दान दरसु देहि स्वामी।
तू मन की जाणे अति जामी।
जन नानकु नीचु द्वारै आया।
करि किरपा प्रभ आप मिलाया।[2]

(ख) जिनि कीनी सेवागुरु की सो आपि भया गुरदेउ।
जिनि सेवा कीनी गुरु की तिन पाया अलख अभेउ।
मन वाछत फल पाइये जो राखे गुरु की टेउ।
जन नानक ऐसे गुरु को वार-वार तू सेउ।[3]

अब तक नानक नाम से सम्बन्धित हर ऐसी रचना अप्रामाणिक समझी जाती रही है जो आदि ग्रथ मे सकलित नही हो पाई। प्रामाणिकता की दृष्टि से आदिग्रथ बडा अद्वितीय ग्रथ है। पचम गुरु द्वारा जो रचनायें इसमे सकलित हो गई वे लगभग यथावत् रूप मे हमे आज प्राप्त हैं। उनमे मात्रा तक का भी परिवर्तन सिक्ख श्रद्धालुओ को सह्य नही। प्रामाणिकता के मोह के कारण ही प्राचीन लेखन शैली मे लिपिबद्ध आदि ग्रथ का पद-विच्छेद भी सिक्ख विद्वानो एव जनसाधारण को मान्य नही हो सका। आदिग्रथ की प्रामाणिकता सर्वथा असदिग्ध है। किन्तु आदिग्रथीय वाणी की प्रामाणिकता से आदिग्रन्थेतर वाणी की अप्रामाणिकता सिद्ध नही होती।

---

१. महला—क्योंकि सभी गुरु कवियों ने अपनी वाणी मे नानक नाम का प्रयोग किया है, अत साधारणत यह जानना कठिन हो जाता है कि कोई पद विशेष किस गुरु-व्यक्ति का लिखा हुआ है। इस समस्या को सुलझाने के लिए 'महला' शब्द का प्रयोग किया गया है। महला का अर्थ है शरीर। सभी गुरु आत्मा की दृष्टि से एक थे, उनके शरीर भिन्न थे। अत महला १, महला २, महला ३, आदि का अर्थ है नानक का प्रथम, द्वितीय अथवा तृतीय शरीर, अर्थात नानक देव, गुरु अगद, गुरु अमरदास।

हिन्दी के कतिपय विद्वान् महला शब्द पर ध्यान न देने के कारण धोखा खा गए हैं, परिणामत हमारे साहित्य के इतिहास-ग्रथों में नवम गुरु तेग बहादुर (महला ९) की रचना प्रथम गुरु नानक देव की रचना समझ कर उद्धृत हो गई है।

२ सुखमनी सहस्रनाम (हस्तलिखित) पन्ना १६

३. गोष्ट मिहरवान की (हस्तलिखित) पन्ना ६७

आज भी कई ऐसे पद सिक्ख-श्रद्धालुओं के श्रद्धा-पात्र ग्रन्थों मे पाए जाते हैं, जो नानक नाम से सम्बंधित हैं, किन्तु आदिग्रन्थ मे सगृहीत नही हो पाये। वे अप्रामाणिक गुरुओ अथवा स्वार्थी कवियो द्वारा अनिवार्यतः किसी स्वार्थ-साधन के निमित लिखे गये, ऐसा प्रमाण भी वही नही मिलता। हो सकता है गुरु नानक की सम्पूर्ण वाणी आदि ग्रन्थ मे सकलित न हो पाई हो। यहाँ पुरातन जन्म साखी (१६६१ के पश्चात्) मे उद्धृत नानकवाणी की ओर सकेत करना आवश्यक प्रतीत होता है। गुरु नानक के इस प्राचीनतम जीवन चरित के प्रति सिक्ख विद्वानो एव जनसाधारण में विशेष आदर है। निश्चय ही इसे अप्रामाणिक समझ कर इस प्रकार अस्पृश्य नहीं समझा जाता जिस प्रकार मिहरवानु, हरि जी आदि अप्रामाणिक गुरुओ की वाणी को। इस ग्रन्थ मे नानक नाम से सम्बन्धित कई ऐसे पद मिलते हैं जो आदि ग्रन्थ में सकलित नही किये गये। एक उदाहरण इस प्रकार है—

> जिस तू रखहि मिहरवानु कोई न सकै मारे।
> तेरी उपमा किआ गनी तउ अगनत उधारे।१।
> रखि लेहि पिआरे राखि लेहु मै दासर तेरा।
> जलि थलि महीअलि रवि रहिआ सचा ठाकुर मेरा।२६।३।
> जै देउ नामा तै राखे तेर भगति पिआरे।
> जिन कउ तै आपणा नामु दीआ से तै परि उतारे।
> नाना सैनु कबीरु तिलोचनु तउ राखि लीए तेरे नाम संगि बनिआ।
> रवदास चमिआरु धाना तउ राखि लीआ तेरिआं भगता सगि गनिआ।
> नानकु करता बेनती कुल जाति का हीना
> ससार सागर ते काढि के आपुना करि लीना।[1]

विषय वस्तु, भाषा, छन्द आदि की दृष्टि से यह पद नानकवाणी से विशेष भिन्न नही। केवल आदिग्रन्थ मे समाविष्ट न होने के कारण ही इसे कच्ची वाणी के नाम से अभिहित करना उपयुक्त प्रतीत नही होता।

सक्षेप से कच्ची वाणी के सम्बन्ध मे हमारा मत इस प्रकार है—

(क) नानक नाम से सम्बन्धित कुछ वाणी स्पष्ट रूप से अप्रामाणिक गुरुओ अथवा उनके सेवको की रचना है। सिक्ख गुरुओ की प्रामाणिक परम्परा मे न पड़ने के कारण उन्हे कच्ची वाणी का नाम देना उचित है।

(ख) किन्तु नानक नाम से सम्बन्धित कुछ वाणी ऐसी भी है जिसके रचयिता के विषय मे कोई विश्वसनीय सकेत नही। वह आदि-ग्रन्थ मे सगृहीत नहीं हो पाई, इस दृष्टि से वह प्रामाणिक नही। हो सकता है कि काल-प्रवाह ने उसके मौलिक रूप को अपरिवर्तित न रहने दिया हो। किन्तु इस वाणी का कर्ता निश्चय ही कोई नानकेतर व्यक्ति है, ऐसा कहने के लिये भी कोई प्रमाण उपलब्ध नही।

---

१. पुरातन जन्म साखी, पृ० ६२-६३

(ग) कुछ कच्ची वाणी ऐसी भी है जो नानक-नाम से सम्बन्धित नहीं, किन्तु उसमे नानकवाणी का अनुकरण करने का स्पष्ट प्रयास है।

समर्पित वाणी—कच्ची वाणी का सृजन कुछ स्वार्थी व्यक्ति अपने स्वार्थ साधन के उद्देश्य से कर रहे थे, तृतीय एव चतुर्थ गुरु इस तथ्य के साक्षी हैं। किन्तु अनुकरण सदा-सर्वदा स्वार्थ द्वारा ही प्रेरित हो, यह आवश्यक नही। अनुकरणात्मक प्रवृत्ति श्रद्धा द्वारा भी सचालित हो सकती है। इस श्रद्धा-प्रेरित अनुकरण के उदाहरण आदि-ग्रन्थ मे मिलते हैं। स्वय गुरुओ ने स्वनिर्मित पदो को अन्य भक्तो के नाम से सम्बन्धित कर दिया है। स्पष्टतः ऐसा उन्होंने उक्त भक्तो के प्रति अपनी श्रद्धा प्रदर्शित करने के अभिप्राय से ही किया है। तृतीय और पचम गुरुद्वय ने स्वनिर्मित श्लोको मे फरीद नाम का प्रयोग किया है। पचम गुरु ने अपना एक पद भक्तवर सूरदास से सम्बन्धित किया है, केवल महला ५ से ही प्रतीत होता है कि इसके वास्तविक कर्ता गुरु अर्जुन देव हैं। सम्पूर्ण पद निम्नांकित है—

छाडि मन हरि विमुखन का सगु
सारग महला ५ सूरदास
१. ओंकार सतिगुर प्रसादि ॥ ॥ हरि के सगि बसे हरि लोक
तनु मनु अरपि सरबसु सभु अरपिओ अनद सहज धुनि भोक
॥१॥२६॥३
दरसनु पेखि भए निरबिखई पाए है सगले थोक ॥
आन बसतु सिउ काजु न कछूऐ सुन्दर बदन अलोक ॥१॥
सिआम सुन्दर तजि आन जु चाहत जिउ कुसटी तनि जोक ॥
सूरदास मनु प्रभि हथि लीनो दीनो इहु परलोक ॥२॥१॥[1]

यह प्रवृत्ति, कदाचित् आधुनिक 'समर्पण' के तत्कालीन[2] रूप की परिचायक है। 'नानक' के स्थान पर 'सूरदास' लिखकर गुरु अर्जुन ने 'सूरदास' को श्रद्धाजलि अर्पित की है। आदिग्रन्थ में स्वीकृत इस प्रवृत्ति का पालन आदि ग्रन्थ से बाहर भी हुआ। नानक नाम से सम्बन्धित जो वाणी आदिग्रन्थ से बाहर मिलती है, उसके एक भाग का सृजन इसी प्रकार की श्रद्धा द्वारा भी सम्भव हो सकता है। पजाब मे स्वनिर्मित रचना को नानक नाम से ही सम्बन्धित करने की प्रवृत्ति नही, अपितु कबीर, सूर, तुलसी आदि हिन्दी भक्तो से सम्बन्धित करन की प्रवृत्ति के भी सकेत मिलते हैं। इससे पता चलता है कि इन महाकवियो की रचनाओ का पजाब में विशेष प्रचलन था और ये कवि पजाबी कवियों के श्रद्धाभाजन थे। यहाँ कबीर, सूर, एव तुलसी से सम्बन्धित पदो के उदाहरण उद्धृत करना असगत न होगा। ये सभी पद सहजराम कृत 'आसावरियाँ' नामक गद्य-पद्य मिश्रित ग्रन्थ[3] से दिये जा रहे हैं—

---

१. आदि ग्रन्थ पृष्ठ, १२५३
२ सोलहवी शताब्दी का अन्त अथवा सत्रहवीं शताब्दी का आरम्भ।
३ रचना काल सन् १७६८ ई० से पूर्व।

कबीर :

पाडे जी होग तपावस भारी ।
धरम राय की साख सुनावहि, चित्त गुपत लिखारी ।१।२६।३
ब्रह्मण होइ पशू कों धाइ, खून करै ग्रेह भारी ।
रसना कारण काया बिगाड़े, तें नर नरके जाइ
बाढ टूक के रीधन लागा, फेरन लागे डोई
जिस मढ होते अन्न न खाते, सो मढ पाए रसोई
न्हाइ, धोइ, सुच सजम कीनें, दे दे बैठे कारा
लै लै हाड चचोरन लागें, डूबे सन परवारा
कहत कबीर सुनहु भाई सतहु, कल को इहु बिकारा
राम नाम रस हिरदै सचहु, तब तुम उतरहु पारा

—आसावरियाँ, पृष्ठ २८४

सूर : शब्द राग टोडी

मेरे तो प्रतिव्रत तुही राम । मैं तुमते अनिक लोप पावौं
एह सीस तोहि दीनो, सो तुझे ही को निवावौं
अब तिहारो होइकै, मैं कवन को कहावौं ।१।२६।३।
कामधेनु गृह ते काढ, काहे अजा आन दुहावौ
हस्ती पीठ उतार कै, काहे गरधव चढ धावौं ।।१।।
मुक्तमाल तोड के, काहे को कचकण्ठ पावौं
कनिक मदर त्याग कै, काहे तृण की छान छनावौ ।।२।।
कुकम लेप त्याग कै, काहे काजर मुख लगावौं
सूरदास मनमोहन तुमरे द्वारे ही जस गावौं ।।३।।

आसावरिया, पृष्ठ २९०

तुलसी : शब्द राग सोरठि

कबहूँ हउ यहि रहनि रहौगो
बिन प्रभ आन न कतहूँ धावत, हौं हो रिप कउ दौर गहौंगो
।।१।।२६।३।
सरब मीत सब सखे हमारे, बाचा मिष्ट कहौगो
निर्मल चालो सतन वाली, ता स्यो लपटि रहौंगो ।।१।।
जग सुख स्वाद काम बिपया रस, ताभहि नाहि वहौगो
प्रभ को ज्ञान कुठार हथ करकै, अवगण काट रहौगो ।।२।।
दुर बचनन अमृत कर अचवउ, तुलसी तिनहि सहौगो
तुम बिन आन बान सभ भूलै चाहन इहो चहौगो ।।३।।

आसावरियाँ, पृष्ठ २८१

सूर : राग नट

तुझ ते बिछुरी हौ भई मीन
सगल औध बिखया सग खोई दुरमति दुखी अधीन ।१।२६।३।

पशुवत दशा, भाग नहीं मस्तक, दुंद द्वैत मन लीन ।
जगत अडम्बर मीठे लागहि, सतिगुर ज्ञान विहीन ।१।
जन जन पहि मरकट ज्यों नाचौ, निज स्वारथ अत दीन ।
परम कठोर भयो हियौ हमरौ, पर निंद्या परवीन ।२।
संतन भाल दयाल हौं जावौं, देवहु पतित पवीन ।
अवके छुटके ठौर न कतहूँ, सरन सूर परवीन ॥३॥
—आसावरियाँ, पृष्ठ २७५

तुलसी : शब्द राग केदारा
माया मोहनी मन हरन
भोगियां को पीस चावूयो जोगियां वस करन ।१।१६।३।
चपल चाल विशाल लोचन, रूप नाना धरन ।२।
पकड़ के अच बीच बोड़े, नहीं देत काहू तरन ।१।
असुर सुर नर इन्द्र ब्रह्मा कपोल सम रिद जरन
भाग जागे दास तुलसी, परि रघबीर सरन ।२।
—आसावरियाँ, पृष्ठ ३१३

इस प्रकार की समर्पित वाणी सूर, तुलसी जैसे महाकवियों को ही श्रद्धांजलि अर्पित नहीं करती बल्कि कतिपय ऐसे साधु व्यक्तियों का भी सम्मान करती है जिन्होंने स्वयं कभी काव्य-रचना नहीं की। कवि सहजराम ने अपने अधिकांश पदो को अपने दीक्षा-गुरु श्री सेवाराम[1] से सम्बन्धित किया है। स्पष्ट है यहाँ प्रेरक भाव श्रद्धा है, लोभ नही। इन्ही सेवाराम द्वारा कुछ पद नवम गुरु तेगबहादुर[2] को भी समर्पित हैं। तेगबहादुर को समर्पित पदों में उन्होने नानक नाम का प्रयोग किया

---

१. एक न भूला दोइ न भूले, भूला सगल संसारा
कोइ न अपना बेड़ा बाध्या, मौजल सुण कर मारा
बिन सतसंग बिना हरि मिमरन पावत दूख अपारा
सेवादास हरि भगति न करदे, महामूढ मन कारा
—आसावरियाँ, पृष्ठ ११४

२. सिरी राग महला ९ ॥
मन रे क्या सोइ रह्या उठि जाग
जम साम निहारे दर खड़ा, उठ गुर की चरनी लाग ।२६।३।
माया के मद मोह्या, सुत वनिता के साथ
देख बालू अन्दर विगस्या, कछू न आयो हाथ ।१।
काम क्रोध अर लोभ मोह, इनके सग निवास
जाण काया अमर कर, लेखे सास गिरास ।२।
आपणा आप न समल दे, ना समझे वुणियाद
बन्हे भार अतोलवे, रच्या कूड़े माद ।३।
कागद केरी पुतली, जल महि करत तरंग
नानक इस बल कारणे, क्यों सहि पायो भंग ॥४॥
—आसावरियाँ, पृष्ठ २६९

है। ऐसे पदो की रचना किसी स्वार्थ साधन के उद्देश्य से नहीं हुई। इन्हें समर्पित वाणी का अभिधान देना उपयुक्त होगा। इतना हमे अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि वे उक्त भक्तो के ।माणिक पदो के महत्त्व को स्वीकार करते हैं। उनका बहिष्कार इनका उद्देश्य नहीं।

साहित्य—कच्ची कही जाने वाली वाणी का सृजन बहुत बडे पैमाने पर हुआ। अनेकानेक हस्तलिखित ग्रन्थो मे इनके उद्धरण मिलते हैं। आदिग्रन्थ की कतिपय प्राचीन प्रतियो मे भी कुछ ऐसे पद विद्यमान हैं जो आदिग्रन्थ की प्रामाणिक प्रति में नही। सभी प्राचीन जन्मसाखियो मे अप्रामाणिक पद समाविष्ट हैं। यदि अनेक ग्रन्थो मे विकीर्ण कच्ची वाणी को एकत्रित किया जाए तो एक विशालकाय ग्रन्थ का निर्माण हो सकता है।

आदि ग्रन्थ के सम्पादन के पश्चात् अप्रामाणिक वाणी के सकलन की ओर भी ध्यान दिया गया। 'दीवाना' पद्धति के उदासी सन्त हरिया जी की वाणी इस सकलनात्मक प्रवृत्ति का परिणाम है। इस प्रकार यह कच्ची वाणी ग्रन्थ रूप मे भी विद्यमान है और अनेकानेक ग्रन्थों मे स्फुट उद्धरणों के रूप मे भी।

कच्ची वाणी के विषय मे सबसे बडी आपत्ति उसके रचयिता तथा रचना-काल के विषय मे है। नानक नाम से सम्बन्धित इस रचना-सग्रह के लेखक अपने आपको नेपथ्य मे रखना चाहते थे और, कदाचित, इसके रचनाकाल को भी प्रकट नही करना चाहते थे। परिणामत इस विशाल रचना-समूह के रचयिताओ एव रचना काल के विषय मे सदेह बना रहना बहुत स्वाभाविक है।

हमारी कालावधि मे ऐसी कच्चीवाणी भी प्राप्त है जिसके रचयिताओ के नाम मिलते हैं और जिसका रचना-काल भी विवाद का विषय नही। हमने केवल उन्ही को अपने अध्ययन का विषय बनाया है।

हमारे प्रथम लेखक 'हरि जी' हैं जिन्होने मीना गुरु मिहरवान जी से प्रोत्साहन पाकर 'सुखमनी सहसनाम' एव 'गोष्ट मिहरवानु जी की' की रचना की। लेखक ने आदिग्रथीय परम्परा का अनुसरण करते हुए समस्त पद अपने नाम से सम्बन्धित न करके नानक नाम से ही सम्बन्धित किये हैं। तो भी इन ग्रथो से ही ऐसे सकेत मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि ये पद 'आठवें' मीना गुरु हरि जी द्वारा ही लिखित हैं।[1] इन दोनों ग्रन्थों मे रचना तिथि भी अकित है।

दूसरे लेखक हरिया जी हैं। इनके जीवन का सक्षिप्त परिचय प्राप्त करने में भी हमे सफलता मिली है। इनके ग्रन्थ से इनके रचनाकाल के विषय में सकेत मिलते हैं। उपर्युक्त तीनो ग्रन्थो मे पर्याप्त सामग्री है जिससे कच्ची वाणी मे समाविष्ट प्रवृत्तियो का अध्ययन सहज सभव है।

गद्य—कच्चे कहे जाने वाले कवियों की पजाब मे रचित हिन्दी साहित्य को सबसे बडी देन गद्य क्षेत्र मे है। सिक्ख गुरुओ एव उनके सेवक लेखकों की रुचि पद्य की ओर रही। कुछ एक हुकुमनामो एव सक्षिप्त, स्फुट निर्देशो के अतिरिक्त सिक्ख

१. उदाहरण ग्रन्थ-परिचय प्रस्तुत करते समय दिये गये हैं।

गुरुग्रो की कोई गद्य कृति देखने मे नही ग्राती । ग्रप्रामाणिक 'गुरुग्रो' ने गद्य साहित्य को समृद्ध करने का प्रयास किया । इस दिशा मे मिहरवानु एव हरि जी के यत्न विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । 'सुखमनी सहस्रनाम,' 'गोष्ट मिहरवानु जी की,' 'जन्म साखी गुरु नानक जी की' इनके विशाल गद्य-प्रयासो के साक्षी है। गद्य-ग्रन्थो का विवेचन हमारे निबन्ध का विषय नही । परिशिष्ट भाग मे केवल एक ग्रन्थ (हरि जी कृत सहस्र नाम, रचनाकाल सम्वत् १७०३) से उद्धरण दे दिया गया है ।

कच्ची वाणी का वैशिष्ट्य

कच्ची वाणी को विशुद्ध ग्रनुकरणात्मक साहित्य समझ लेना भ्रममूलक होगा । यह सत्य है कि गुरु सस्था का उत्तरोत्तर उत्कर्ष देखकर गुरु परिवार के कुछ स्वार्थी सदस्यो ने ग्रपने ग्रापको गुरु घोषित किया[1] ग्रौर ग्रादिग्रथीय वाणी के ग्रनुकरण पर स्वय वाणी की रचना की, ग्रथवा ग्रपने सेवको से कराई । यह पूर्ण सत्य नही ।

कच्ची वाणी का ग्रपना विशिष्ट व्यक्तित्व है, जो गुरुवाणी का प्रत्यक्ष विरोधी न होने पर भी उससे भिन्न है । कच्ची वाणी मुट्ठी भर स्वार्थी व्यक्तियो की स्वार्थपरता की ही द्योतक नही, यह हिन्दू धर्म की उस सुदृढ एव सर्वग्राही परम्परा की परिचायक भी है जिसे सक्षेप से पौराणिक परम्परा का नाम दिया जा सकता है। गुरुग्रो द्वारा कच्ची वाणी का इतना उग्र विरोध हुग्रा, इसका मुख्य कारण कच्ची वाणी का यही वैशिष्ट्य प्रतीत होता है।

सिक्ख गुरु धर्म को तर्क-सम्मत दिशा देने का यत्न कर रहे थे । वेद-पुराण का प्रत्यक्ष विरोध न करते हुए भी वे इनके ग्रन्धानुसरण का विरोध कर रहे थे । ग्रवतारवाद, वर्णाश्रम, चमत्कार ग्रादि मे उनकी ग्रास्था न थी । कच्ची कही जाने वाली वाणी इसी ग्रवतारवाद, वर्णाश्रम, चमत्कार ग्रादि का समर्थन करने वाली पौराणिक भावना के पुनरुद्धार की द्योतक है ।

कच्ची वाणी की सर्वाधिक रचना बाबा मिहरवानु के प्रोत्साहन से हुई । उनके नाम से सम्बन्धित 'सुखमनी सहस्रनाम' नामक ग्रथ के ग्रध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि इसका धार्मिक दृष्टिकोण गुरुवाणी से सर्वथा भिन्न है । इस ग्रथ मे ग्रवतार-भावना निस्सकोच रूप से स्वीकृत है । विष्णु के दशावतारो[2] की कथाएँ उनके महत्त्वानुसार कही सक्षिप्त ग्रौर कही विस्तृत रूप से कही गई हैं । इस ग्रथ से ग्रवतारवादी प्रवृत्ति की पोषक पक्तियो के उदाहरण इस प्रकार हैं :

---

१. यहाँ एक उदाहरण ग्रनुपयुक्त न होगा । पृथिये पुत्र मिहरवानु के मरवण में रचित 'गोष्ट बावे मिहरवानु' में गुरु परम्परा का वर्णन इस प्रकार है :
बोलो भाई वाह गुरु बाबा नानक, सतिगुरु ग्रगद, सतिगुरु ग्रमरदास, सतिगुरु रामदास, सतिगुरु ग्ररजन, सतिगुरु साहिब, सतिगुरु मिहरवानु
'हस्तलिखित गोष्ट मिहरवानु' की पृष्ठ १५

२. मत्स्य, कच्छप, वैराह, नृसिंह, धन्वन्तरी, यज्ञ, कपिल, दत्तात्रेय, राम ग्रौर कृष्ण

अवतार लियो हरि मच्छि का करि खेल दिखाया ।
प्रले नीर का अंत है तेरा अंत न पाया ।
जनि नानक उपमा क्या कहो सभु तेरी माया ।[1]
धार्‌यो रूपु कुरंभ का सतिजुगि लै अवतारु
दधि मथ्‌यो सिर गिरि पर्‌यो मिट्‌यो असुर अहंकारि ।[2]
क्या रावनि के हाथि विचारे कारनु रघुपति कीआ ।
रावनि मुकुति होवनि के कारनि गहणे राखी सीया ।
रावनि छेदि मुकति पैठाया राजु भभीछनि दीआ ।
नानक सो तूं पुरखु विधाता संता का अंग कीआ ।[3]

मिहरवानु जी के प्रोत्साहन से रचित एक अन्य ग्रंथ में भी अवतार-भावना को स्वीकार किया गया है

लीला प्रभ अवतार की गनी न जाय अनंति ।
प्रेमु मगनु अरु ध्यान करि गावहि हरि संति ।
मन की सरधा जान के जन नानक मिले भगवंत ।[4]

अप्रामाणिक गुरुओ ने न केवल पौराणिक अवतारो की कथायें कही, बल्कि गुरु नानक की जीवन कथा लिखने का प्रथम उद्योग भी इन्ही महानुभावो द्वारा हुआ। गुरु नानक की सभी प्राचीनतम जन्मसाखियो मे अप्रामाणिक वाणी अथवा कच्ची वाणी का समावेश हमारे कथन को प्रमाणित करता है। इन जन्मसाखियो की दूसरी विशिष्टता यह है कि वे गुरु नानक को अवतार पुरुष के रूप मे चित्रित करती हैं। पौराणिक अवतारो के प्रति आस्था न रखने वाले सिक्ख भी इन जन्म-साखियो के प्रति आस्था रखते हैं। परिणामत गुरु नानक के चरित्र का जो रूप जन-साधारण मे स्वीकृत है वह किसी अवतारपुरुष के चरित्र से भिन्न नही है। संक्षेप मे कहा जा सकता है कि अप्रामाणिक वाणी जिस प्रवृत्ति के प्रचार का माध्यम बन रही थी, वह प्रवृत्ति अपना प्रभाव प्रामाणिक सिक्ख-मार्ग पर भी डाले बिना नही रही।

दशम ग्रंथ मे समाविष्ट चौबीस अवतार-वर्णन इस बात का अकाट्य प्रमाण है कि इस प्रवृत्ति का आग्रह बहुत सबल था और दशम गुरु जी को भी उसका प्रभाव स्वीकार करना पडा। अवतारो मे आस्था न रखने पर भी वे अवतारों की कथायें अतीव तन्मयता से कहते हैं। गुरु गोविंदसिंह के निधनोपरान्त अठारहवी और उन्नी-सवी शताब्दी मे यह प्रवृत्ति बराबर सिक्ख जनसाधारण एव सिक्ख विद्वानो को प्रभावित करती रही। सक्षेप मे, हमारी धारणा है कि अप्रामाणिक कही जाने वाली वाणी अति पुष्ट और प्रभविष्णु प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व कर रही थी।

---

१. सुखमनी सहसनाम, पृष्ठ २६
२. सुखमनी सहसनाम, पृष्ठ ४१
३. सुखमनी सहसनाम, पृष्ठ १४५
४. 'गोष्ट मिहरवानु की', पृष्ठ १३३

अवतारवाद ही नही, पौराणिकता के अन्य चिन्ह भी कच्ची वाणी मे दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिए वेद और वर्ण-धर्म मे विश्वास। कुछ उदाहरण इस प्रकार है :

वरनु आस्रमु अरु ग्रिस्ति का धरम कह्या गुरदेउ।
जितु जितु लाए पारब्रह्म तितु तितु लागे सेउ।
जत्र वजाया त्यो वजे जन नानक परे न भेउ।[1]
वेदा का तनु जानि कर जाइ मिलहु प्रभु सोइ।[2]

पौराणिक प्रवृत्ति के एक और लक्षण 'समन्वय' के दर्शन भी इन वाणियो मे होते हैं। उदाहरण के लिए पुराणो का 'सगुण अवतार' निर्गुण ब्रह्म की अभिव्यक्ति है, उसका स्थानापन्न नही। हरि जी ने भारतीय पुराण के सभी अवतारो के प्रति अपनी आस्था व्यक्त करते हुए ब्रह्म के निर्गुण रूप को भी ग्रहण किया है।[3] इसके अतिरिक्त, उन्होंने प्रामाणिक गुरुवाणी मे समाविष्ट सिद्धान्तो को ग्रहण करने की रुचि दिखाई है। गुरुमहत्त्व पर उन्होने उसी नैरन्तर्य से बल दिया है। आदिग्रथ का अनुसरण करते हुए उन्होने गुरु-व्यक्ति का स्तवन भी किया है और गुरु-धारणा का महत्त्व भी प्रतिपादित किया है। आदिग्रथ की भट्ट-वाणी गुरु-व्यक्तियो को ईश्वर के अवतार के रूप मे प्रस्तुत करती है। सुखमनी सहस्रनाम मे अप्रमाणिक गुरु मिहरवानु का स्तवन कृष्णावतार रूप मे किया है—

आदि अति मधि तीनि महि दुहु का एक ध्यानु।
ज्यो नरनारायणु रूपु है स्री मिहरवानु स्री कान्ह।
भेद नाही इना नानका सचु सच्चा गुरु मिहरवानु।[4]

गुरु धारणा का महत्त्व इस प्रकार प्रतिपादित किया गया है :

ध्यान किया गुरदेव का चरन पूज गुरदेउ
मत्र जपहु गुरदेव का कीजे गुरु की सेउ
जन नानक गुरु सग प्रीति करि पावहि अलख अभेउ।[5]

सक्षेप मे हमारी धारणा है कि मिहरवानु जी के प्रश्रय मे रचित कच्ची वाणी एक सीमा तक ही प्रामाणिक गुरुवाणी का अनुसरण करती है। इसके अतिरिक्त उसका अपना विशिष्ट व्यक्तित्व भी है। वह एक सुदृढ, समय-समादृत परपरा के प्रचार का माध्यम भी है। जैसे हिन्दीभाषी क्षेत्र में ज्ञानमार्गी शाखा के लगभग

---

१. सुखमनी सहस्रनाम, पृ० २२३
२. सुखमनी सहस्रनाम, पृ० २४५
३. ना तिनु रूप न रेख है ना तिस देहि न प्रान
ज्यों जल महि मुख देखिये जल ते न्यारा जान।
—सुखमनी सहस्रनाम, पृ० १२२
४. सुखमनी सहस्रनाम, पृ० २६७
५. सुखमनी सहस्रनाम, पृ० ७३

समकालीन राम-मार्गी और कृष्ण-मार्गी शाखाओ का प्रचलन हुआ, वैसे ही पजाब मे प्रामाणिक गुरुओ द्वारा प्रचारित निर्गुण-भक्ति के साथ-साथ अप्रामाणिक गुरुओं द्वारा प्रचारित सगुण-भक्ति का श्रीगणेश हुआ। पजाब मे सिक्ख गुरुओ द्वारा प्रवाहित भक्ति धारा इतनी सबल थी कि उसके प्रत्यक्ष विरोध मे किसी अन्य भक्तिमत का स्थापन सर्वथा असम्भव प्रतीत होता था। अत मिहरवानु आदि महात्माओ ने गुरु-मार्ग का विरोध न करते हुए, उसे अपनाते हुए और उसका आश्रय ग्रहण करते हुए पौराणिक प्रवृत्ति का प्रचार किया। इस दिशा मे उन्हे जो सफलता प्राप्त हुई वह सर्वथा नगण्य नही कही जा सकती।

कलापक्ष—'सुखमनी सहसनाम' और 'गोष्ट मिहरवानु जी की' मुख्यत कथा-गोष्ठी-साहित्य हैं। इनका एक बडा भाग तो गद्य मे ही लिखा गया है। पद्य का प्रयोग गद्य के सहायक रूप मे ही हुआ है। एक कथा अथवा गोष्ठी की समाप्ति पर एक पद्य-खण्ड मे कथा अथवा गोष्ठी का साराश उपस्थित करने का प्रयत्न होता है। इन लघु पद्य-खण्डो से लेखक के काव्य नैपुण्य का विशेष परिचय नही मिलता। बीच-बीच मे कुछ पद्य खण्ड ऐसे भी आगये हैं जहाँ कवि की निजी (कथा निरपेक्ष) भावनाओ का पता चलता है। ऐसी प्रगीतात्मक पक्तियो मे कवि की काव्य-प्रतिभा का असदिग्ध परिचय मिलता है। उदाहरणस्वरूप कुछ पक्तियाँ प्रस्तुत है :

(क) मागउ दान दरसु देहि स्वामी
तू मन की जाणै अति जामि
जन नानक नीचु द्वारे आया
करि किरपा प्रभ आप मिलाया।[1]

(ख) जनि नानक दास तेरे दासनि दासा
इकु पलि भरि दीजे सगि निवासा
तू जानहि मना होरिनि[2] आसा
दीजै ऊदि ज्यो सारग प्यासा।[3]

(ग) मैं अवला सोई सालाही
तुध बिन मेरा कोई नाही
देहि दरस दोहागनि ताई
जन नानक धूरि लै माथे लाई।[4]

---

१. सुखमनी सहसनाम, पृ० १६।
२. होरिनि (पजाबी)=औरों की
३. सुखमनी सहसनाम, पृ० ३६
४. सुखमनी सहसनाम, पृ० ११६

हरिया जी

हरिया के जीवन के विषय मे बहि:साक्ष्य से कोई सामग्री प्राप्त नही। उनके ग्रंथ[1] से केवल इतना ही पता चलता था कि हरिया, हरिदास, हरिचन्द, हरिमल[2] आदि नाम से पुकारे जाते थे, जाति के जाट[3] और विश्वास से नानक-पंथी थे।[4]

हरिया नानक पंथी थे, इसके प्रमाण उनके ग्रंथ मे सर्वत्र बिखरे हुए हैं। उनके ग्रंथ में प्रत्येक राग का आरम्भ '१ ओंकार सति बावा नानकु'—इस मंगल वचन से होता है। कुछ स्थानों पर आपने गुरु नानक के साथ बाला शब्द का भी प्रयोग किया है।[5] हो सकता है कि गुरु नानक के जाट अनुयायियो ने अपना एक अलग सम्प्रदाय खड़ा कर लिया हो। अपने आपको नानक पंथ और बाले की दसतारे से सम्बन्धित बता कर ये इस प्रकार संप्रदाय की ओर संकेत करते प्रतीत होते है। इस तथ्य का समर्थन बहि:साक्ष्य से भी होता है। इन पंक्तियो के पाठक को पता चला है कि बाला और हरिया दोनो सिद्धू जाट थे और उदासी संत थे। इनका निवास-स्थान भटिंडा जिला का बल्लूआणा नामक गाँव था। ये दीवाना साधु कहलाते है। इस गाँव में बाला की समाधि आज भी विद्यमान है। इनके डेरे से पता चला है कि ये मीना गुरु मिहरवान से दीक्षित थे। इससे पता चलता है कि जिस प्रकार प्रामाणिक गुरुओं के संदेश का प्रसार उदासी संतों द्वारा हो रहा था, उसी प्रकार अप्रामाणिक गुरुओ ने भी अपने संदेश के प्रचारार्थ निवृत्तिमार्गी उदासी संतों की अपनी परंपरा चलाई थी।

हरिया जी के ग्रंथ की केवल एक हस्तलिखित प्रति ही प्राप्त हुई है। इसी ग्रंथ की प्रतिलिपि दीवाना साधुओं के डेरे बल्लूआणा में भी विद्यमान है। यह ६६४ पत्रों का विशालकाय ग्रन्थ है। इस ग्रंथ का सम्पादन गुरु अर्जुन द्वारा सम्पादित आदि ग्रन्थ के अनुकरण पर रागानुसार हुआ है। इसमे हरिया जी की सारी वाणी तैंतीस रागों में संगृहीत की गई है।

इस ग्रन्थ की जो प्रति उपलब्ध है, उसमे १७६२ सं० का निर्देश है। यह लिपि-काल है अथवा रचनाकाल, इस विषय मे कोई निर्देश नहीं है। इससे केवल एक ही बात निश्चित होती है कि इस ग्रंथ की रचना १७६२ सं० (१७३७ ई०) से पहले की है।

---

१. ग्रंथ हरिया जी का; पत्र संख्या ६६४, प्राप्त प्रोफेसर प्रीतमसिंह, अरविन्द, लोयर माल, पटियाला।

२. विनवै हरीआ पावे सोई—पृ० ५४
   नरक ते हरीदास राखहु तउ सरणि तुमारी जाए—पृ० ४६२
   हरमल साकी पकी लंक अमोलखि पाई—पृ० १३३
   ऐसी बोई हरचन्दा लगे नाही दूख—पृ० १५२

३. हरिया साधू बोल्या सहज सउ नामु पसाया नामु
   जट जटनी का पूतरा गुरु ते चरै बिग्यानु—पृ० ६५७

४. नानक पंथी हरीआ कहीये बाले की दसतारे—पृ० ४०६

५. १ ओंकार राखु सही। सतिबावा नानकु बाला। राग गूड बिलासु—पृ० ५११

इस ग्रन्थ में एक पद में संसार की नश्वरता के प्रसंग में कवि बाबर और हुमायूँ के देहावसान का वर्णन करता है।[१] इससे इतना निश्चित है कि इस ग्रंथ की रचना हुमायूँ की मृत्यु के पश्चात्—१५५६ ई० के पश्चात् ही हुई। अत १५५६ ई० से १७३७ ई० के बीच कभी इस ग्रंथ की रचना हुई। अब देखना यह है कि रचना काल इन दोनों छोरों में से किसके अधिक निकट है।

अनुकरण इस ग्रंथ का विशिष्टतम गुण है। इस में कई एक काव्यशैलियों एवं काव्यकृतियों का अनुकरण हुआ है। उससे इसका रचनाकाल निश्चित करने में बहुत कुछ सहायता मिल सकती है।

इस ग्रंथ का हल्का सा अध्ययन भी यह स्पष्ट कर देता है कि इस ग्रन्थ का प्रेरणा-स्रोत (अथवा अनुकरण-स्रोत) आदि ग्रन्थ है। जहाँ आदि ग्रन्थ में संगृहीत गुरु नानक के अनुकरण पर 'जापु', 'आसा दी वार' और 'आरती' की रचना की गई है, वहाँ पंचम गुरु अर्जुनदेव के अनुकरण पर बारह माह, सोद दखणे और सुखमनी की रचना हुई है। यह अनुकरण गुरु अर्जुनदेव के गुरुपद ग्रहण से गुरु ग्रंथ संपादन (१५८१-१६०१ ई०) के बीच हुआ अथवा उनके स्वर्गारोहण के पश्चात्। सुखमनी की रचना तो सोलहवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में हुई। अत सम्भावना यही है कि हरिया जी द्वारा उसका अनुकरण सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में ही कभी हुआ। यदि हरिया जी के मन में ग्रंथ रचना का चाव था तो यह भी आदि ग्रंथ के संपादन (१६०१ ई०) के पश्चात् ही उत्पन्न हुआ होगा। अत. यह अनुमान करना समीचीन प्रतीत होता है कि हरिया जी की कुछ रचना गुरु अर्जुन के गुरुत्व-काल में और कुछ तदुपरांत हुई।

हरिया जी पर अन्य प्रभाव गुरदास, शाह हुसैन और दामोदर के हैं। ये तीनों गुरु अर्जुनदेव के समकालीन थे। गुरदास की वार शैली के अनुकरण पर ये भी अपने पदों की प्रत्येक पंक्ति में नई उपमा देते हैं। तुकान्त भी गुरदास के अनुकरण पर है। शाह हुसैन यदि 'कहै हुसैन फकीर साईं दा' को तकिया कलाम के रूप में अपनाते हैं तो हरिया जी 'कहै फकीर खुदाई हरिया' कह कर उनके पदचिह्नों पर चलते हैं। हीर-रांझे का संवाद तो निश्चय ही दामोदर के अनुकरण पर है। गुरदास (१५५८-१६२७), शाह हुसैन (१५३६-१५९३), और दामोदर (अकबर काल) तीनों ही गुरु अर्जुन (१५६३-१६०६) के समकालीन हैं। बाबर हुमायूँ की मृत्यु का संदर्भ भी इसी काल की पुष्टि करता प्रतीत होता है।

हरिया जी ने केवल पंजाबी कवियों का प्रभाव ही नहीं ग्रहण किया, उन्होंने हिन्दी-भाषी क्षेत्र के कवियों की काव्यशैलियों का भी अनुकरण किया। उन पर सबसे स्पष्ट प्रभाव सूरदास की गीति शैली का है। यही बात लीला और भँवरगीत पर बल है। यहाँ कुछ एक उदाहरण देना समीचीन होगा —

१ जसोधा तुमसरि अवरि न माई (पृ० ३४)

---

१. बाबर सखे हमाऊ पे गए होइ परालुखी —१४७

२. ऊधो प्यारे तुम कहोअहु गोपी जाई
जोग कमावहु न डोलावहु आगिआ है ब्रिजराइ (पृ० ३४)
३. अब हम जोगु न होई
जो तुम मुख ते जोग पठावहु दृढ कर चितु न जोई (पृ० ३४)
४. टुक समझावहु अपने वार कूं सुनहु जसौधे माइ
वार गुआर ले सगी साथी बैकुंट वाले जाइ (पृ० ४०)
५. कालि सखी जमना के तीरा मिलिआ नन्द दुलारु री
ताते मति असुरत भई है जोगीसर जिउ मतवार री (पृ० ४६)

स्पष्ट है कि यहाँ हरिया जी विषय और शैली मे सूर का अनुकरण कर रहे हैं। यह शैली भी गुरु अर्जुन देव की समकालीन है, उन्होंने स्वयं सूरदास के अनुसरण पर एक 'शब्द' की रचना की थी।[1] अतः सूरशैली का अनुकरण भी हमारे उपर्युक्त मत—कि हरिया जी गुरु अर्जुनदेव के समकालीन थे—की पुष्टि करता प्रतीत होता है।

जहाँ गुरु अर्जुन के समकालीन प्रसिद्ध कवियों का अनुकरण हरिया जी में पाया जाता है, वहाँ परवर्ती कवियों की रचना शैलियों के अनुकरण पर इस ग्रंथ में एक भी पद नही। हरिया जी का ग्रंथ मुख्यतः अनुकरणात्मक हैं। उन्होंने अपने समय की सभी लोकप्रिय रचना-शैलियों को अपनाया। अतः यह अनुमान लगाना अनुपयुक्त न होगा कि यह ग्रन्थ लिखते समय गुरु तेगबहादुर और गुरु गोविन्दसिंह की रचनायें इनके सम्मुख न थी। इसी प्रकार जहाँ कृष्ण लीला के लिए सूर की गीति शैली का अनुकरण इनके ग्रन्थ मे देखा जाता है, वहाँ रीतिकालीन विहारी, मतिराम, देव आदि के समान दोहा, कवित्त-सवैया को आपने कृष्ण-लीला का माध्यम नही बनाया। कदाचित् ये सब काव्य शैलियाँ हरिया जी के सामने न थीं।

हरिया जी द्वारा प्रयुक्त भाषा शैली द्वारा भी इस विषय में, हमारा पथ-प्रदर्शन होता है। प्रथम पाँच गुरुओ और अन्तिम दो गुरुओं की भाषा में बहुत स्पष्ट अन्तर है। हरिया जी की भाषा निर्विवाद रूप से प्रथम पाँच गुरुओं की भाषा शैली का अनुसरण करती है।[2]

इन सब से यही निष्कर्ष निकलता है कि हुमायूँ की मृत्यु (१५५६ ई०) के पश्चात् काव्य-रचना करने वाले हरिया जी ने दामोदर (अकबरकाल), शाह हुसैन (१५३९-१५९३ ई०), अर्जुनदेव (रचनाकाल १५८१-१६०१ ई०), सूरदास (सन् १५६३ ई० के आस पास)[3], आदि से प्रभाव ग्रहण किया। ग्रन्थ रचना की प्रेरणा आपको गुरु अर्जुनदेव द्वारा संपादित (१६०१ ई०) गुरु ग्रन्थ से मिली हो—यह भी संभावना की परिधि में ही प्रतीत होता है। गुरुवाणी के अनुकरण पर रचना करने वाले हरिया जी द्वारा गुरु तेगबहादुर (सन् १६२१-१६७५) अथवा गुरु गोविन्दसिंह

१. आदि ग्रन्थ, पृ० १२५३।
२. भाषा के विस्तृत विश्लेषण के लिए देखें—शीर्षक भाषा, छन्द, अलंकार आदि।
३. शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १४८।

(सन् १६६६-१७०८ ई०) का अनुकरण न किया जाना इस बात का प्रमाण है कि वे कदाचित् इनसे पूर्व ही अपनी जीवन लीला सवरण कर चुके थे। अतः हरिया जी के रचनाकाल को १५५६ ई० से १६६५ ई०[1] के बीच ही मानना चाहिए।

विषय :—हरिया जी का ग्रन्थ अनेक प्रकार के धार्मिक विश्वासो का सग्रह है। इसमे पौराणिक परम्परा की कथावार्ता, नाथपरम्परा मे पडने वाले भर्तृहरि और गोपी चन्द के किस्से, सन्त परम्परा मे प्रचलित 'शब्द' (=पद) और अष्टछाप परम्परा का अनुसरण करने वाले गीत, सभी कुछ हैं। इनके अतिरिक्त इसमे सूफी सिद्धान्त का पिष्टपेषण भी है, रामभक्तो के हितार्थ पजाबी वार शैली मे रामायण की कथा भी वस्तुत. इस ग्रथ मे नाथ मार्ग, सत मार्ग, सूफी-मार्ग, कृष्ण-भक्ति, राम-भक्ति आदि, तत्कालीन सभी भक्ति-मार्गों के अनुगामियो को प्रसन्न करने की सामग्री विद्यमान है। विषय के वैविध्य के अनुरूप ही भाषा का वैविध्य भी दर्शनीय है। जिस प्रकार अनेक गुरुओ, भक्तो, भाटो आदि की रचनाओ का सकलन होने पर भी आदिग्रथ मे विषय और सिद्धान्त की सुदृढ एकता है, इसी प्रकार एक ही व्यक्ति हरिया जी की रचना होने पर भी इस ग्रथ मे सैद्धातिक विशृंखलता के दर्शन होते हैं। हर प्रकार के सिद्धान्त के लिए हरिया जी के पास वाणी है। अत खण्डन-मण्डन की—जो सतो का बडा प्रिय विषय रहा है—प्रवृत्ति के दर्शन यहाँ नही होते हैं। केवल दो एक स्थान पर ही ये 'हलाल' खाने की जिद करने वाले मुसलमानो[2] और मलयुक्त रहने का आग्रह करने वाले जैनियो पर बरसे हैं।[3] भगवान का किसी प्रकार भी स्मरण करने वाले आस्तिको के प्रति उन्हे सहानुभूति है। निर्गुण और सगुण भक्ति के प्रति उन्हें समान रूप से श्रद्धा तो है ही, वे मुसलमान पीरो की खानकाह पर नतमस्तक होने से भी सकोच नही करते।[4]

हरिया जी के ग्रन्थ मे विषय के अनुरूप ही भाषा मे भी वैविध्य पाया जाता है। पजाबी (माझी और मुलतानी), मिश्रित सधुक्कडी और कुछ कम मिश्रित ब्रज-

१. गुरु तेगबहादुर का गुरु-पद-ग्रहण वर्ष।

२. मेरे मन हलाली कहा कहावहि
मरम के बधे बूझत नाही देखत हराम गटकावहि ।२६।३।
अरणगत जीअ अनादे केरे चबहि पावक जालु
गेह्र भीतर खसरि पानिआ उहु किसु कीआ हलालु ।।१।।
....
इकु हलालु छोडहि घर भीतरि पर गृह भोगण जाहि
परदरबु मु चाहि करि भरवासा जानत सूअर खाहि ।।४।।
....
सो हलाली जो एक पछाणे चलै आपु निवाद
रामु रहीमु सिपत बखाणै तिसु दरगह ठाक न पाइ ।।६।।
रोजे रखहि निवाज गुजारहि ढूढाह मसीत खुदाइ
हरीए को सुआमी घट महि रविआ गगा हज न जाइ ।।७।। —पृ० ८४

३. कोइ दसे जैन मारगि रखहु जीअन घाई
रहहु कुचील पीवहु मलवाणी पावक न पाइन पाइ —पृ० ८८

४. हरीआ विनवे रे खनकाई तेरी है सरणाई —पृ० ४११

इन सभी को इन्होंने अपनी रचना का माध्यम बनाया है। निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति (मुख्यतः कृष्ण भक्ति) के पदों के लिए क्रमशः मिश्रित सधुक्कड़ी और कम मिश्रित व्रज का प्रयोग है। हरिया जी के ग्रंथ का यही भाग हिन्दी काव्य के अन्तर्गत लिया जाना चाहिये।

निर्गुण काव्य :—निर्गुण भक्ति के पदों के लिए हरिया जी का मुख्य प्रेरणा-स्रोत गुरु ग्रंथ—तत्रापि प्रथम पाँच गुरुओं की वाणी—है। भाषा और भाव दोनों ही दृष्टियों से हरिया जी की रचना और गुरुवाणी में ऐसा साम्य है कि साधारण पाठक के लिए हरिया जी की 'कच्ची वाणी' से 'सच्चीवाणी' का धोखा हो जाना बहुत सम्भव है। एक स्थान पर हरिया जी ने शिकायत भी की है कि 'सच्ची वाणी' को ही भगवान तक पहुँचने का साधन क्यों माना जाए।[1] यहाँ एक उदाहरण पर्याप्त होगा —

प्रभ कै सिमरनि धरमराइ न पूछै। प्रभ कै सिमरनि मगपंथ न मूछै।
प्रभ कै सिमरनि चित गुपतु भैहाहि। हरि दरगह सेवक हो जाहि।
हरि प्रभ सिमरति सभसु किसै भावै। प्रभ सिमरतु सचि समावै।
प्रभ सिमरत का सभ को अधीनु। जाहरु दीओै महा प्रवीनु।
प्रभ के सिमरन की महमा मै गणी न जाइ। हरीआ प्रभ सिमरन वैकुंठी पाइ।[2]
प्रभ के सिमरनि गरभि न बसै। प्रभ कै सिमरनि दुखु जमु नसै।
प्रभ कै सिमरनि कालु परहरे। प्रभ कै सिमरनि दरगहि टरै।
प्रभ सिमरत कछु विघन न लागै। प्रभ कै सिमरनि अनदिनु जागै।
प्रभ कै सिमरनि भउ न विआपै। प्रभ कै सिमरनि दुखु न संतापै।[3]

हरिया जी के निर्गुण पदों में भगवान को ओंकार के नाम से स्मरण किया गया है।[4] उसी की इच्छा से माया, माया से त्रिदेव और इस सृष्टि की उत्पत्ति हुई है।[5] वही जीव का भरण-पोषण करता है।[6] कबीर, नानक और अन्य सिक्ख गुरुओं ने उसे बाहर, भीतर, मन और प्रकृति में फैला हुआ बताया था और साथ ही उसे निराकार, निर्गुण, अयोनि आदि विशेषणों से विशिष्ट किया था। हरिया ने उसे ओंकार कह कर ही संतोष किया है। उन्होंने ब्रह्म के निराकार, निर्गुण, अयोनि स्वरूप को अधिक महत्त्व नहीं दिया और इस विषय पर सैद्धान्तिक विवेचन करने से उन्होंने अपने आप को बचाया है। इस प्रकार उन्होंने अपने सगुण पदों के लिए औचित्य बनाये रखा है। निर्गुण पदों में ब्रह्म के स्वरूप की स्पष्ट चर्चा न करके

---

१. एक लोक कहते मुक्द अगिआनी।
मुखि उचरावहु सची वानी। —पृ० ५८
२. ग्रंथ हरिया जी का —पृ० २०८
३. आदिग्रंथ, पृ० २६२
४. ओअंकारि मनमा धारी। देवी उत्पत्ति होई नारी —पृ० १३
५. ओऊ देव तीन उपाए…………………—पृ० १३
६. तुम दाता मैं मैसारी। हय दे रासहु पेज मुरारी —पृ० ५८

उन्होंने एक प्रकार से अपने निर्गुण और सगुण पदों के विरोध का निराकरण कर दिया है।

निर्गुण पदों मे उन्होंने अधिकतर मन में बसे ब्रह्म की ही अधिक चर्चा की है,[1] प्रकृति में समाये ब्रह्म को विशेष महत्त्व उनकी रचना मे नही मिल पाया। प्रकृति में समाये ब्रह्म का वर्णन उन्होंने सगुणपदो के माध्यम से किया है।[2] इस प्रकार उन्होंने ब्रह्म के निराकार और साकार उभयरूपों को स्वीकार किया है और इन रूपो के वर्णन के लिए उनके अनुरूप काव्य-शैलियों को अपनाया है।

हरिया जी ने भगवान की भक्ति सेवक भाव से ही की है। कहीं-कहीं शिशु-भाव और नारी-भाव से भक्ति अपवाद के रूप मे ही है। साधारणतः वे सेवक, भिखारी आदि के रूप मे भगवान के निकट जाते हैं। मधुरभाव से भक्ति उन्होने अपने सगुण पदो के लिए ही सुरक्षित कर रखी है। निराकार प्रभु-कन्त को पाने की जो उत्कट और निरन्तर अभिलाषा प्रथम पाँच गुरुओं की वाणी में पाई जाती है, वह हरिया जी की कृति मे नही।

संक्षेप मे कहा जा सकता है कि हरिया जी की निर्गुण रचना का अपना विशिष्ट व्यक्तित्व है। वह संत परम्परा का अन्धानुकरण नही है। यह रचना ब्रह्म को निराकार मानती हुई भी उसके निराकार-स्वरूप पर विशेष बल नही देती। वह अन्तःकरण मे बसे ब्रह्म को जितना महत्त्व देती है, प्रकृति में समाये ब्रह्म को नहीं, उपासना में सेवकभाव को जिस नैरन्तर्य से अपनाती है, मधुरभाव को नहीं। इस प्रकार वह निर्गुण वर्णन मे भी सगुण वर्णन के लिए अवकाश रखती है।

हरिया जी ने निर्गुण पदो मे सब से अधिक महत्त्व गुरु को दिया है। यह महत्त्व कहाँ तक उनके जीवन की निजी मजबूरियों से उत्पन्न हुआ, कहा नही जा सकता। किन्तु गुरु-महिमा उनके निर्गुणपदों की धुरी है। यदि यह कहा जाये कि उन्होने नानक पथ (सिक्ख पंथ) के मूल मन्त्र[3] को 'गुरुप्रसादि'[4] अंश को सर्वोपरि माना है, तो अनुचित न होगा। सिक्ख मतानुसार ही हरिया का मत है कि जीव का 'हउमै' अहंकार उसे ब्रह्म से नही मिलने देता, उसे भ्रम मे डाले रहता है, गुरु इस अहंकार को मिटाता है। इस अहंकार का निराकरण तीर्थ-शास्त्र-नारायण से नही किया जा

---

१. अन्तु घटि घटि रहिआ समाइ..........
घट महि रहिआ प्रभु मुरारी..............—पृ० ५४

२ अदर कान्हा, बाहर कान्हा, कान्हा जिह्वा समाइआ
जलि थलि महीयलि कान्हो कान्हा दूजा कहा दसटाइआ —पृ० ८७
वणतृण कान्हु गडको भी कान्ह सगली कान्ह दसटाइआ —पृ० ८७

३. १ ओंकार सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि।
आदि ग्रंथ, पृ० १

४. गुरु प्रसादि अर्थात भगवान गुरु के प्रसाद से ही प्राप्य है।

सकता।[1] गुरु ही ऐसा तीर्थ है जिसमे स्नान करने से जन्मजन्मान्तर के पाप धुल जाते हैं[2] और आत्मा हरि को मिलने योग्य बनती है। अत- वह बार बार गुरु को विनती करता है वह उसे हरि-कन्त से मिला दे।[3] हरि मिलन गुरु मिलन पर इतना निर्भर है कि उसे हरि विरह से भी अधिक गुरु विरह का शोक है। उसे दुःख है कि जीवन की रात्रि गुरु के बिना कट रही है।[4]

गुरु प्राप्ति के पश्चात् नाम स्मरण का पडाव है। सिक्खधर्म को नामधर्म भी कहा गया है। हरिया ने नाम की महिमा को भी स्वीकार किया है।[5] नाम के पश्चात् भी भगवद्-प्राप्ति ईश्वरीय अनुकपा पर निर्भर है। हरिया जी ने ईश्वरीय अनुकम्पा को वर्षा से उपमित किया है। यह वर्षा जीवन की सारी पिपासा को सोख लेती है। यह वर्षा वातावरण को शीतल और सुखद बनाती है। इसी वर्षा के सौजन्य से 'सुहागिन' को उसका 'प्रिय' मिलता है। हरिया ने इसी वर्षा का बार-बार वर्णन किया है। वस्तुतः हरिया जी की निर्गुणवाणी का सरसतम अंश वर्षा-वर्णन ही है। केवल यही एक ऐसा अंश है जहाँ उनकी दृष्टि प्रकृति पर गई है और जहाँ उन्हे भक्त एक विरहिणी स्वकीया के रूप मे दिखाई दिया है। यहाँ हरिया जी के अनेक वर्षा-वर्णनो मे एक उदाहरण उपस्थित किया जाता है—

देखहु री माई घनहर के दिन आए
धुलकहि बदल गगन सब छाया घनहि प्रिउ पलाए।।२६।३।

---

१. बोलि साधू सच वखाणु। गुर परसादी एको जाणु
नित उठि पढता वेद पुराणु। रघुपति घटि महि रहिआ समाइ।
छ ढहि कतेब नाहि खुदाई। अलहु घटि घटि रहिआ समाई।
गगा जमना जाहि गुदारी। घटि महि रहिआ प्रभु मुरारी।
मके मदीने जावहि हज। खु न पाईये कितही पज
जोग अभिआस जति कहावे। करता गुमान फिरि फिरि आवे
सेख कहाइ वढे मसीति। इक्की होर न कची भीति।
हउमे दुतीए की गढि मिटाई। ता तुहि दरगह रहै सजाद
गुर पीर मिले उजारा होइ। विनवे हरीआ पावै सोई पृ०—५४

२. ऐसा तीरथु सति गुरु कहीऐ
जनम जनम के प्राछत खोवे, जे सगि चरणा गहीऐ —पृ० ८२

३. कोई सतनु परउपकारी बेनत सुणे मही
इकु तिलु मरसु मिटावे मोरा मै भी वत लही
गुरु गुर विनवे हरीआ बपुरा एक मे समझ कही —पृ० ६२

४. गुर बिनु राति जावे सम बिरथी बहुड़ि न लभे बेरी —पृ० १४६

५. नामु तेरा पारस मैल लहि जाइ। नाम तेरा कामधेनु तोटि न काइ।
नामु तेरा लसकर बहुतु जोगु। तेरे नाम समानि नही को रोगु।
नामु तेरा अम्रित हरि रस भोगु। नाम तेरा दारू तूटे रोगु।
नामु तेरा सुख निधि दुख बिनासु। नाम जपत होइ रासानु।
नामु तेरा सोमा उजलु रासि। नाम जपत मै ले सबासि॥
—पृ० ८३

भूले पवन लगे ठर ठाढी वदल नीर कसाए ।
घोरि घोरि वरसहि घट काली दामन चमक दिखाए ॥१॥
भीगत चीरु पडे मुचु नीरु मन्दर चुचहि सवाए
थल भीगे सर सु पट भरिऐ वरसत लाल न पाए ॥२॥
धरणि सीगार किया मिलि प्री सउ मोरी पाइल पाए
भई सुहागणि कत घर आया दादर गावहि तलाए ॥३॥
वण तृणु साख भई हरियावलि मिलि सखियाँ मगल गाए ।
अनु धनु उपति हुआ प्रभि कीआ विरथा को न जाए ॥४॥
तुमारे मिलणे की वड्याई मे मुँह कथी न जाए
तुछु तुछ माहे वेदु तिलु वपरा के हरीआ सेसु अलाए ॥५॥[१]

सगुण काव्य—हरिया जी के निर्गुण काव्य का विवेचन करते हुए हम देख चुके हैं कि उनके निर्गुण-वर्णन मे ही सगुण के बीज विद्यमान है । अत उन्हें घट भीतर ही वस रहे रामराय[२] से कौशल्यानन्दन, सियापति, राम तक पहुँचने मे विशेष आयास नही करना पडता ।[३] यही से वे रामलीला की ओर झुक जाते है और स्थान-स्थान पर राम के जीवन सम्बन्धी घटनाओ का इस प्रकार वर्णन करते हैं कि 'घट-घट मे लेटा', राम और 'दशरथ का वेटा' राम मे कोई अन्तर प्रतीत नही होता ।[४] हरिया जी ही नही सम्पूर्ण सत परपरा मे गज, गणिका, वाल्मीकि, अजामिल, ध्रुव, अम्बरीष, अहल्या, बलि, प्रहलाद, आदि की कथाओ का जो समावेश है, वह निर्गुण पदो मे भी सगुण के लिए कुछ स्थान वना ही लेता है । हरिया ने इन कथाओ का वहुत प्रचुरता से प्रयोग किया है ।[५]

हरिया जी जैसे निर्गुण और सगुण मे विशेष अन्तर नही करते वैसे ही राम और श्याम मे भी नही । वे निर्गुण सतो के समान राम और श्याम की प्राप्ति के लिए अभ्यर्थना करते हैं ।[६]

हरिया जी की रचना मे एक सामान्य सा नियम यह है कि वे जहाँ घट मे बसे प्रभु का घट से बाहर, प्रकृति मे चित्रण करते हैं, वहाँ वे सतो की रहस्यवादी

---

१. हरिया जी का ग्रथ पृ० ६५

२ मेरे राम राय हम ऐसे मुघद उपाए
राम नाम घट भीतर रहिआ लागे आनि सुआए—१५५

३. निसदिनि सिमरहु राजा रामु
कौसलिया नन्दन सीता कतानु
भमीखणु आया सरणि समाया मिल्या छोडि अभिमानु—१३२

४. अहिल्या कू साप गौतमि दिया सैल पथरु भई नर जीता
सिया विवाहण प्रभू पग मेरा उडी होइ पुनीता—७१

५. गज गनका अपावन तारे, छीपा, वाल्मीकु माणसिआरा
तउ दरस मुकति सिधाये अजमल रवदास चमारा—७१

६. वावा दसहुँ वासा राम का
होइ किरपाल दसहु गुर मेरे दरसनु पाई साम का—८१

शैली को छोड सूर, तुलसी की लीलागान शैली का आश्रय लेते हैं। लीलागान के लिए उन्होने लोकप्रिय लीलानायक राम और कृष्ण को चुना है। उन्होंने रामकथा तो पजाबी वार-शैली मे लिखी है, कृष्ण कथा के लिये उन्होने सूर की पद-शैली को अपनाया है।

सूर ने कृष्ण कथा मे से बालकथा और गोपीविरह को ही विशेष महत्त्व दिया है। हरिया ने भी इन दोनो को ही अपने काव्य का विषय बनाया है। जहाँ सूर मे इन दोनो का महत्त्व लगभग समान है, वहाँ हरिया जी मे यह सतुलन दिखाई नही देता। कृष्ण की शिशु कथा पर तो एकाध पद ही मिलता है।[1] हरिया जी ने कृष्ण लीला गान मे राधिका-कृष्ण-मिलन, नारी-मोहिनी-बासुरी और राधिका-कृष्ण विछोह पर ही बल दिया है, जिससे राधिका-कृष्ण का प्रतीकात्मक रूप सदा केन्द्र मे रहता है। जैसे हरिया जी ने अपने निर्गुण वर्णन मे सगुण के लिए गु जाइश रखी है, वैसे ही सगुण वर्णन मे भी निर्गुण परपरा की अवहेलना नही की। उन्होने यथा-सभव कृष्ण-लीला के उसी अश पर बल दिया है, जिसका प्रतीकात्मक मूल्य निर्गुण परपरा द्वारा स्वीकृत है। निर्गुण-काव्य मे ब्रह्म को पति के रूप मे चाहने की परपरा तो विद्यमान है ही। सत कबीर उसे बालम, गुरु नानक उसे पिर, गुरु अर्जुन उसे लालन के रूप मे चाहते रहे है। हरिया जी भी उस निर्गुण से इसी प्रकार का सम्बन्ध रखते हैं। हरिया जी का निर्गुण से प्रेम किसी निर्जीव, अक्रिय अस्तित्व के प्रति एकपक्षीय प्रेम नही। वे कहते है कि एक हाथ से तो ताली नही बजती, अत. वे अपने निर्गुण प्रिय के लिए तियमोहन व्यक्तित्व की कल्पना करते हैं।[2] यह मोहक व्यक्तित्व कृष्ण का है।

राधिका-कृष्ण को यमुना तट पर, अथवा निर्जन बाट पर मिली, एक बिजली सी कूँद गई, मन अब ठहरता नही। राधिका की इस दशा से सब पर विदित हो गया कि यह कान्ह पर सुधि खो बैठी है।[3] तदुपरात राधिका कृष्ण का

---

१. साधु सतू खीचड़ बाटी खाहि मेरे फरजन्द —पृ० १०५
(यह गोकुल निवासी कृष्ण का पजाबी रूप है)

२. जाने कउनु बिराने मन की
जानत ममटि करहु प्रभ मेरे इक हथ (डि) ताड़ी बजहु न ठनकी।२६।३।
ज्यों चात्रकि प्रीति मेघि लगाई, इन्द्र न जाने उसके तनकी।१।
ज्यो चन्द्र चकोर ध्यानु लगाया चन्द्र न खलोवै एक भरि पल की।२।
ज्यों चकवी प्रीति सूर लगाई रैनि बिहाणी तारे गनती।३।
ज्यों राधे प्रीतिवनहि पुकारे, हरिया बिनवै अहि बिधि जन की।४।
—पृ० ५

३. (क) कालि सखी जमना के तीरा, मिल्या नन्द दुलारु री
ताने मति अमुरत भइ है, जोगीसर ज्यों मतवार री
मोकूँ निरख इक निछु मुसकाना दीआ अधरा बिधारू री
ज्यों रैणि अंधेरी बदल बरखत जगु कीआ बीजु उजारू री
नृप कन्या की राधे सोई—लायो कान्हि प्यार री —पृ० ४६

बांसुरी[1] की घोर सुनने के लिए लालायित रहती है। वास की वासुरी का भाग्य सराहती है क्योकि उसे कृष्ण के अधर-रस पान करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। माता उसे रोकती है। कृष्ण से प्रेम करना तो सुप्त-सर्प को लताडना है,[2] किन्तु राधिका है कि रुकती ही नही। इस बीच कृष्ण मथुरा चले गये। पता चला कि कुब्जा पर रीझ गये हैं।[3] राधिका नारी सुलभ ईर्ष्या से दुःखी है। कृष्ण उद्धव के हाथ योगसाधना का उपदेश भिजवाते हैं। किन्तु राधिका को विश्वास ही नही होता।[4] अन्त मे राधिका की ऐसी दशा होती है कि वह स्वय कृष्ण रूप हो जाती है।

हरिया ने 'हरिये के प्रभ सरगणि लीला भुठे जोग न अलाए' कह कर सगुण भक्ति का पिष्टपेषण किया है, किन्तु यह उसकी निर्गुण भावना का खण्डन नहीं। खण्डन यहाँ 'योगमार्ग' का हुआ है। जहाँ हिन्दी-भाषी क्षेत्र के सत कवियो ने योग

(ख) मेरा मनु उम लगा जाइ।
साम सु दरू वक सुप काले गयो चीतु उठाई।
सासि घड़ोली धारे आवत दधि वेचरा के ताइ।
नदनदन को मिल्यो कनीआ अहि मन ठहरे नाही—८७

(ग) कान्हे की बौरानी राधे, सुणिअदु लोक सवाइया —पृ० ६८

१. बांसुरी

(क) मेरे हीअरे बैन वरे
वास की टेर सुनत उद्मनी रोमि रोमि छीन परे।२६।३।
धार गुवार लै सगी साथी वावत अधर धरे।
जो जो सुणे सो चलणु ना पावै कोई तिहरु करे
वावत सारे सुणो निदु लोई परे ते परे परे। —पृ० ५५८

(ख) सावलिये स्यौं मेरा मनु मान्या। मनु तुम वरजहु लोकु इआन्या
बिन्द्राबन महि वेनु बजावे। सुणि सुणि घोर मेरा मनु अधावे —पृ० ६८

(ग) री मैं सरे न वाझ मुरारी
बिन्द्राबन महि वैनु बजावे तिसु हथ जानि हमारी —पृ० १६०

(घ) धनु धनु भाग वास की मुरलिया ठाकुर अधर लगाए —पृ० ६६

२. खी राधे क्यों जीवहि वरजत मैया
सुते नाग तनाडहि पैरो क्यों छेड़यो कान्ह कन्हैया। —पृ० ६०४

३. ऊधो मालनि मिहर कमाए।
सामि सु दर वसि करि लीने तोतक जिवै बुलाए।
कोमु भरि गोकल ते मथुरा इक दिन सामि न आए।
दुखते डम्भ उचेडै मालणि ऊपर अकु चुराएँ। —पृ० १०२

४. (क) अब हम जोगु न होई।
जो तुम मुझने जोगु पठावहु दृढ करि चितु न जोई। —पृ० ३४

(ख) तुमरी मति गई कह ठउड़ा भावै पुछहु धूँ कु जाइ।
अनरथ बोलहु सावहु मटखिया लहहु मनु सजाइ॥
....

अपने मुख ते स्याम न कहते हमहू न भरमाइ
हरिये के प्रभ सरगणि लीला झुठे जोग न अलाइ —पृ० ३८

को विशेष महत्त्व या स्थान दिया वहाँ पंजाब के संतों—सिक्ख गुरुओं—ने योग का खण्डन किया है। यहाँ सगुण भक्ति का समर्थन परोक्ष रूप से पंजाब की निर्गुण धारा का समर्थन ही है। हरिया जी ने निर्गुण भक्ति के अन्य अंशों का खण्डन करना आवश्यक नहीं समझा। स्पष्ट है कि वे पंजाब की निर्गुणधारा से टूटना न चाहते थे।

हरिया जी की राधिका विरह दशा में हर ओर कृष्ण के ही दर्शन करती है[1] और अन्त में वह 'प्रेम गली अति सांकड़ी' के अनुसार स्वयं कृष्ण बन जाती है।[2] यहाँ राधिका पंजाबी सूफी कवियों की हीर के समान बन जाती है। अकबर-कालीन किस्सा-लेखक दामोदर की हीर भी रांझा हो गई थी।[3] अतः राधिका जिस प्रकार विरह में तप कर स्वयं कृष्ण बन जाती है—पंजाब की निर्गुण परम्परा इससे अनभिज्ञ न थी। हरिया राधिका के प्रतीक से वही कह रहे हैं जो आदिग्रन्थ में प्रतीक के बिना कहा जा चुका था।[4] अतः हरिया जी के सगुण काव्य की राधिका पंजाबी निर्गुण काव्य परम्परा के अनुकूल थी।

संक्षेप में यह कहना उपयुक्त होगा कि हरिया जी की निर्गुण और सगुण रचनाएँ एक दूसरे का विरोध नहीं करतीं बल्कि एक दूसरे की पूर्ति और पुष्टि करती हैं।

हरिया जी की निर्गुण और सगुण रचना के बीच एक और समानता है। पंजाब की निर्गुण काव्य-धारा की प्रमुख विशिष्टता उसका ईश्वरीय अनुकम्पा अथवा पुष्टि में विश्वास है। यही विश्वास सिक्ख काव्यधारा को हिन्दी-भाषी क्षेत्र की ज्ञानाश्रयी शाखा से विशिष्ट करता और हिन्दी क्षेत्र की पुष्टिमार्गीय सगुण धारा के निकट लाता है। भगवान् की प्राप्ति भगवद्-कृपा पर निर्भर है। हम देख चुके हैं कि हरिया जी ने भगवद्-प्राप्ति को वर्षा से उपमित किया है। यह वर्षा जीव के यत्नों

---

१. अन्दर कान्हा बाहर कान्हा कान्हा जित्था समाया
जलि थलि महीयलि कान्हो कान्हा दूजा कहा दसाया
....
वण तृण कान्हु मटुकी भी कान्ह सगली कान्ह दसटाया —पृ० ८७

२. कान्ह चवन्ती कान्हो होई दुहुकी नाही जाया —पृ० ९८
(जाया=जगह)

३. उलटी हीर हियें विच रांझा, हाल न जाणे कोई
रांझा रांझा मैं कैनूं आखा, आपे रांझण होई
—कसेल, पंजाबी साहित्य दी उत्पत्ती ते विकास,—पृ० २६१
(हीर की दशा कोई क्या जाने। वह हृदय में हीर से रांझा हो चुकी थी। वह कहती थी—मैं रांझा रांझा कह कर किनको पुकारूँ। मैं स्वयं रांझा बन चुकी हूँ।)

४. कबीर तूं तूं करता तू हुआ, मुझ महि रहा न हूं।
जब आपा परका मिट गया, जत देखउँ तत तू। —पृ० १३७५

का फल न होकर भगवान की सहज कृपा की अभिव्यक्ति मात्र ही है। हरिया जी अपने सगुण पदो मे राधिका के मुख से इसी सहज कृपा की भिक्षा मँगवाते हैं।[1]

यदि हरिया को अकबर काल और जहांगीर काल के प्रारम्भिक वर्षों से सम्बन्धित मान लें, तो कहना होगा कि पुष्टिमार्गीय काव्य को पजाब मे सर्वप्रथम प्रचलित करने का श्रेय इन्हीं को है।[2] सूरदास की ख्याति तो इस समय तक पजाब मे पहुँच ही चुकी थी। स्वय गुरु ग्रन्थ के सम्पादक ने 'छाडि मन हरि विमुखन को सग' इस टेक पर एक पद की रचना की थी और उसे सूरदास के नाम से सम्बन्धित करके उनके प्रति अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की थी। किन्तु, पजाब मे सिक्ख गुरुओ के यत्न से निर्गुण-काव्य की ऐसी प्रबल प्रवाहिनी बही थी कि उसके सामने सगुणधारा के टिकने की कोई आशा न थी। पजाबी जनता उस निर्गुणधारा को पूर्णत अपना चुकी थी। हरिया जी ने उसका विरोध नही किया, बल्कि उसके कई अगो की पुष्टि और पूर्ति की। दूसरी बात दर्शनीय यह है कि उन्होंने सगुण काव्यधारा को यथासभव पजाबी वातावरण के अनुकूल ढालने का यत्न किया। बाल कृष्ण पजाबी बालक के समान सागु, सतू, खिचडी खाता है, और वह भी 'बाटी' मे।[3] राधिका के प्रेम वर्णन के लिये उसने बहुत से बिम्ब दामोदर की हीर से लिये हैं। भाषा मे भी उसने पजाबियत का स्पष्ट पुट रखा है। हरिया के सगुण-काव्य मे निर्गुण-काव्य की अपेक्षा मिश्रण कम है, किन्तु उसने सूरदास के समान अमिश्रित ब्रज का प्रयोग नही किया। उसने सगुणपदो के लिए शब्दावली गुरुओ की निर्गुणवाणी से ही उधार ली है। कुछ एक उदाहरण इस प्रकार हैं—

१. जलि थलि महीयलि कान्हो कान्हा दूजा कहा दृसटाया
वण तृण कान्हु, मटुकी भी कान्हु, सगली कान्हु दृसटाया।

हरिया जी : —पृ० ८८

जलि थलि महीअलि भूरिआ रविया विचि वणा
(गुरु अर्जुन) आदि ग्रथ, — पृ० १३३

(वह जल, थल और पाताल मे समाया हुआ, वह वन मे व्याप्त है)

२. कान्हे की बौरानी राध सुणिअहु लोक सवाइया,

हरिया जी : —पृ० ९८

---

१. ऊधो घनहर लाइ घोर।
धरनी सुहागु मिल्या रतिवती बोलहि दादर मोर ।।२६।३।।
घास साख हरी बनराए बड़कण लागे ढोर।
अनादि पुरखु उतपति हूआ चुकि गये सोग सोर।
इन्द्र जिवै बसहु प्रभ मोरै हरीआ रहे न कोर। —पृ० १०३

२. पजाबी साहित्य में सर्वप्रथम राम और कृष्ण सम्बन्धी सगुण काव्य रचना का श्रेय भी कदाचित हरिया जी को ही मिलेगा।

३. सागु सतू खीचड़ बाटी खाहि मेरे फरजन्द। —पृ० १०५

सति गुर जेवहु दाता को नही सनि सणिग्रहु लोक सवाइग्रा
गुरु नानक, ग्रादि ग्रथ—पृ० ४६५

३ वार गुवार लै सँगो साथी वावत ग्रधर धरे ।
हरिया जी :—

वाजे तेरे नाद ग्रनेद ग्रसखा केते तेरे वावण हारे ॥
गुरु नानक, ग्रादि ग्रथ—पृ० ८

इस प्रकार ग्रादि ग्रन्थ की शब्दावली का ग्रपनी सगुण रचना मे प्रयोग कर हरिया जी ने पजाब की काव्यधारा से टूटने की ग्रपेक्षा जुडे रहने का ही यत्न किया।

हरिया जी की भाषा, छन्द, ग्रलकार—हरिया जी की भाषा शैली का ग्रादर्श ग्रादि ग्रन्थ है—विशेषत प्रथम पाँच गुरुग्रो की भाषा शैली । गुरु नानक द्वारा एक ऐसी भाषा शैली का निर्माण हुग्रा जो धरती के निकट भी हो ग्रौर गम्भीर ग्राध्यात्मिक चितन को ग्रभिव्यक्त करने म समर्थ भी हो । गुरु नानक से पहले कबीर ग्रादि सतो ने भी ऐसी ही भाषा शैली को ग्रपनाया था । यह भाषा साधुभाषा ग्रथवा सधुक्कडी भाषा के नाम से विख्यात हुई । गुरु नानक की भाषा इसी साधुभाषा का पजाबी रूपान्तर समझी जानी चाहिये । उनकी भाषा का एक विशिष्ट गुण सस्कृत, फारसी शब्दो का पजाबीकरण ग्रथवा तद्भवीकरण है । गुरु नानक ग्रौर उनके बाद ग्राने वाले गुरुग्रो के यत्नो से सस्कृत फारसी शब्दो के पजाबीकृत रूपो का ग्रच्छा खासा भण्डार तैयार हो गया था । इनमे कुछ शब्द तो पजाबी साहित्य मे ग्रपना लिये गये ग्रौर कुछ केवल गुरुवाणी का ही विशिष्ट ग्रग बन कर रह गये । कादी (काजी), ग्रारवला (ग्रायु), निरजास (निर्णय), कलाम (कलम), कागदि (कागज), वावण (वादन) ग्रादि ऐसे ही शब्द हैं । पचम गुरु तक प्रान्तीय विशिष्टता के सूचक इन शब्दो की बहुत भरमार है । चतुर्थ ग्रौर पचम गुरु की भाषा मे ग्रपेक्षाकृत केन्द्रोन्मुख होने का ग्राग्रह है किन्तु प्रान्तीय विशिष्टताग्रो को एकदम बहिष्कृत कर सकना सम्भव न था । पचम गुरु के बाद तो भाषा के केन्द्रोन्मुख होने की प्रवृत्ति जोर पकडती गई । गुरु तेगबहादुर ग्रौर गुरु गोविन्दसिंह की भाषा इस प्रवृत्ति की पराकोटि है । उनकी भाषा मे कोई पजाबी शब्द न ग्राया हो, ग्रथवा कोई प्रान्तीय विशिष्टता न हो—ऐसा कहना तो सभव नही, किन्तु उसमे प्रादेशिक वैशिष्टय की मात्रा बहुत ही कम है । हरिया जी की भाषा निर्विवाद रूप से प्रादेशिक वैशिष्ट लिये हुए है ग्रौर प्रथम पाँच गुरुग्रो की भाषा शैली का ग्रनुसरण करती है । वस्तुत वह इतनी शुद्ध नही, जितनी पचम गुरु की भाषा । पचम गुरु मे ग्रनेक ऐसे पद मिलेंगे जो पजाबी शब्दावली (ग्रथवा पजाबी तद्भवो) से सर्वथा मुक्त हो । हरिया जी मे ऐसे पद विरले ही मिलेंगे । कही-न-कहीं किसी प्रादेशिक विशिष्टता के दर्शन हो ही जाते हैं । मनमैंगल, जमजदार, हलत पलत, मूसा टूकै ग्रारवला, निहकेवल, घर निरजास, थाप उथाप, खरी उडीणी, माणा, जरवाणा, गोहल, जमककर, कलाम, हउमै कडा, वावण, सास गरास, लवलोभ, गुदारी, वरसै छहवर लाय, सैसार, मैहाणा, चवन्ती, राजहु पैज, सुणिग्रहु लोक सबाया—ऐसे ग्रनेक शब्द हैं जो प्रथम पाँच गुरुग्रो

की विशिष्टता हैं। हरिया जी की वाणी में इनका प्रचुर प्रयोग उनका सम्बन्ध निर्विवादरूप से इस परम्परा और इस काल से जोडता है।

छन्दों की दृष्टि से भी हरिया जी गुरवाणी का ही अनुकरण करते हैं। चौपई, दोहा, सोरठा, विष्णुपद उनके प्रिय छन्द हैं। उनकी हिन्दी रचना इन्हीं छन्दो मे है। छन्द-वैविध्य इस युग की विशिष्टता नही। रीतिकाल के प्रसिद्ध छन्द कवित्त और सवैया अभी पजाव में लोकप्रिय नही हुए थे। अत. हरिया जी की रचना मे इनका प्रयोग नही है। छन्द निर्वाह मे भी वे अपने युग का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। छन्द चुस्त, कसा हुआ, दोष रहित नही—जैसा कि गुरुदास, हृदयराम, गुरु गोविन्दसिंह और उनके समकालीन कवियो की रचनाओ मे है।[1] गोविन्दसिंह के आनन्दपुर मे तो दरवारी कवियो का अच्छा खासा जमघट रहता था। रीतिकालीन परम्पराओ को पंजाब में प्रचलित करने का श्रेय उन्हें ही है। उन परम्पराओं मे से एक था काव्य शिल्प पर अत्यधिक वल। गुरु गोविन्दसिंह जी से पहले शिल्प मे पूर्णता—दोषहीनता—लाने का सचेत प्रयास नही हुआ था। हरिया जी की वाणी इस ऐतिहासिक तथ्य का स्पष्ट प्रमाण है।

---

१. निम्नलिखित छन्दों की मात्रा-गणना उनके ढीले छन्द निर्वाह को ही प्रकट करती है—

(क) साधे का दोखी महा हत्यारा — १८
तिसु समानि नाही गलवढ कुड़यारा — २०
साध का दोखी अग्य बीचारी — १७
तिसु समानि नाही चोर पेखी जूआरी — २३ —पृ० ३६८

(ख) इन्द्र वरसै छहवर लाइ — १४
हरि प्रम मेज्या सहज सुभाइ — १५
इन्द्र वरसे लाइ लाइ घोर — १६
निसदिन बोलहि दादर मोर — १५
धरत्य समाजी मिल्या मलार — १६
सुहागणि अदलु बण्या सीगार — १७ —पृ० ६८

चतुर्थ अध्याय

उदासी संतों की वाणी

उदासी सम्प्रदाय

सिक्ख साहित्य मे उदासी शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग नानकवाणी मे मिलता है। सिद्ध-मण्डली से गोष्ठी करते समय गुरु नानक ने अपना परिचय उदासी शब्द से दिया है। वे कहते है "मैं 'गुरमुखि' की खोज करने के लिए उदासी हुआ हूँ। 'निवासी' हो कर भी मैंने 'उदासी' भेष उसी के दर्शनार्थ धारण किया है।"[1]

गुरु नानक के पश्चात् 'उदासी' शब्द गुरु नानक की यात्राओं एव इन यात्राओं मे अपनाई गई 'रीति' के सम्बंध मे कई बार हुआ है। अति प्राचीन जन्मसाखियों में गुरु नानक की यात्राओं को 'उदासियों' की सज्ञा दी गई है।[2] प्रामाणिक नानक-गुरु परपरा के अनन्य सेवकों और कवियों ने भी इन यात्राओं का वर्णन करते समय कहा है कि उदासी-रीति के सचालक गुरु नानक ही थे।[3] उदासी सम्प्रदाय के कई साधु भी गुरु नानक को अपने सम्प्रदाय के आदि-सचालक के रूप मे स्वीकार करते हैं—

आदि अचारज नानक देव निरजन अंजन जाहि विलासी।
सिम्रित वेद पुराणन मारग जीव लगाइ कटी भव फासी।
जीवन तारन कारन आपन आइ मही सु विकुंठ निवासी
ताहि नमामि सिरी गुर को जिन पंथ कर्‌यो जग माहि उदासी।[4]

स्वय गुरु नानक के समय एक सन्यासी मत—नाथमत—पजाब मे बहुत लोकप्रिय हो रहा था जिसका अत्यन्त स्पष्ट विरोध गुरु नानक द्वारा हुआ। नाथपंथियों के साथ हुए वाद विवादों का जो विवरण हमें नानक-वाणी, गुरुदास-वाणी और पुरातन जन्मसाखी मे मिलता है उससे स्पष्ट हो जाता है कि वे निवृत्ति, भेष, प्राणायाम, चमत्कार

---

१. किसु कारणि गृहु तजिओ उदासी। किसु कारणि इहु भेखु निवासी।
... ...
गुरमुखि खोजत भए उदासी। दरसन कै ताई भेखु निवासी।
—आदिग्रंथ, पृष्ठ ९३९

२. देखिये पुरातन जन्म साखी, पृष्ठ २५, ७८, ९०, ९८

३. बाबे भेख बणाया उदासी की रीति चलाई ॥१॥२४॥
वारा भाई गुरदास जी, पृष्ठ १२

४. सतरेण कृत नानक विजय १। १। २०।३

आदि के कड़े आलोचक थे। उनके द्वारा संचालित अथवा उनकी वाणी से प्रेरणा पाने वाला उदासी मत नाथपंथ द्वारा समर्थित प्रवृत्तियों का अनुमोदन कदापि नहीं कर सकता। वह नाथपंथ से कितना भिन्न होगा, इसका सम्यक् परिचय प्राप्त करने के लिए नानकमत और नाथमत का संक्षिप्त तुलनात्मक अध्ययन असंगत न होगा।

गुरु नानक और नाथमत—गुरु नानक से लगभग पाँच शताब्दियाँ पूर्व गोरखनाथ जैसे महाप्राण महात्मा का प्रादुर्भाव हुआ जिसने पंजाब के जनजीवन पर बड़ा गहरा प्रभाव डाला। चौरंगीनाथ, चर्बरनाथ, रतननाथ प्रभृति नाथों ने गोरख द्वारा उपदिष्ट मार्ग की परंपरा अक्षुण्ण बनाये रखी। गुरु नानक की जीवन कथा से पता चलता है कि यह परंपरा उनके जीवन काल तक बराबर चलती आ रही थी। जनसाधारण इनके सिद्धि-बल से आतंकित रहता था। गुरु नानक को बटाला के समीप अचल नामक स्थान पर ऐसे ही नाथ-सिद्धों से निपटना पड़ा था। 'सिद्ध-गोष्टि' नामक रचना भी नाथ-सिद्धों की मान्यताओं और उनके असामाजिक आचार-व्यवहार के खण्डन के लिए ही लिखी गई थी।

गुरु जी की रचना में योगियों के पारिभाषिक शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग देखकर कुछ विद्वानों को ऐसा संदेह हुआ है कि उनकी वाणी योगमत (गोरखमत, नाथमत) द्वारा बहुत प्रभावित हुई है।[१] परवर्ती गुरु कवियों की वाणी में भी पंच-शब्द, अनाहत नाद, इड़ा, पिंगला, सुखमना, उनमना, दसमद्वार, मुद्रा, खिंथा, आदि शब्दों का बार-बार प्रयोग हुआ है, अतः यहाँ यह जान लेना उचित होगा कि गुरु नानक ने योग धारा का प्रभाव कहाँ तक ग्रहण किया है और उनके माध्यम से आगे बढ़ने वाली उदासीन-परंपरा का स्वरूप पूर्ववर्ती परंपरा से कितना समानता और कितनी असमानता रखता है।

योग मार्ग 'हठात् मोक्ष द्वार को खोलने'[२] का मार्ग है। 'हठयोगी प्राण वायु का निरोध करके कुण्डलिनी को उद्बुद्ध करता है। उद्बुद्ध कुण्डलिनी क्रमशः षट्चक्रों को भेद करती हुई सातवें अन्तिम चक्र सहस्रार में शिव से मिलती है। प्राणवायु ही इस उद्बोध और शक्ति संगमन का हेतु है ······।'[३]

जब हठ योगी की इस परिभाषा से नानक द्वारा उपदिष्ट मार्ग की तुलना करते हैं तो दोनों में एक स्पष्ट अन्तर दृष्टिगत होता है। नानक मूलतः भक्त हैं और भक्ति उनके अनुसार भगवान का 'प्रसादि' है। मूल मन्त्र में निराकार ओंकार के स्वरूप-वर्णन के पश्चात् नानक कहते हैं उसकी प्राप्ति 'सतिगुर प्रसादि' पर निर्भर है। उसकी प्राप्ति के लिए यत्न आवश्यक है पर उसकी प्राप्ति यत्न का सुपरिणाम न हो कर उसकी अनुकम्पा का ही सुफल है। यह धारणा इतनी हठयोग के समीप

---

१. Dr Sher Singh, *Philosophy of Sikhism*, p 103

२. नाथ सम्प्रदाय, १२४

३. नाथ सम्प्रदाय, १२६

नहीं जितनी पुष्टि मार्ग के।[1] हठ योग की हठ-भावना का नानक द्वारा उपदिष्ट मार्ग मे कोई स्थान नही।

ऊपर कहा गया है कि नानक भगवद् प्राप्ति के लिए यत्न की आवश्यकता स्वीकार करते हैं। यह श्रम भी हठयोगियो के प्राणसधान से सर्वथा भिन्न है। जैसे योगी उद्बुद्ध कुण्डलिनी की शिव-यात्रा मे पडने वाले षट्-चक्रो की चर्चा करते हैं वैसे ही नानक भी ऊर्ध्वमुखी जिज्ञासु के मार्ग मे पड़ने वाले पंच खण्डो—धर्मखण्ड, ज्ञानखण्ड, सरम (श्रम) खण्ड, करम (कृपा) खण्ड, सचखण्ड—का वर्णन करते हैं। जहाँ यौगिक क्रिया का आधार भौतिक है वहाँ नानक द्वारा वर्णित यात्रा नैतिक और आध्यात्मिक है। धर्मखण्ड मे आत्मा अपने कर्तव्य को पहचानती है और अपने गन्तव्य (सचखण्ड : सत्य लोक) की ओर अग्रसर होती है। ज्ञानखण्ड मे पिण्ड और ब्रह्माण्ड के आवरण उठते हैं और उसे असीम की विराट् सृष्टि की झाँकी मिलती है। सारा विश्व एक परिवार सा प्रतीत होता है। इस प्रतीति के उपरान्त जीव सृष्टि की सेवा का भार अपने सिर पर लेता है। इसी का नाम सरम खण्ड (श्रम खण्ड) है। इसके पश्चात् जगन्नायक की अनुकम्पा (करम) होती है और तत्पश्चात् जीवात्मा सचखण्ड मे निवास करने का अधिकार प्राप्त करती है।

योग और नानक के यात्रा खण्डो का अन्तर स्वत-स्पष्ट है। जहाँ योगी अपनी दृष्टि को अन्दर खीचता है वहाँ नानक (ज्ञान खण्ड मे) अपने बाहर फैले विराट् की झाँकी देखने की अनुमति देते हैं। तदुपरात जहाँ योगी अपने आप मे ही 'श्रम' करता हुआ दिखाई देता है वहाँ नानक अपने श्रम का केन्द्र सृष्टि को बनाते हैं। नानक का श्रम 'सेवा' का पर्याय है जिसमे आत्मा सम्पूर्ण सृष्टि को अपना आत्मीय समझकर उसके काम आना चाहती है। इस अन्तर का मूल कारण उनकी परमतत्त्व सम्बधी धारणाओ मे अन्तर है। जहाँ योगी का शिव ब्रह्मरध्र मे निवास करता है वहाँ नानक का 'सच' भीतर भी है, बाहर भी। इन यात्रा-खण्डो की असमानता का एक कारण यात्रियो के स्वरुप की असमानता भी है। योग मे जीव केवल आत्मा अथवा कुण्डलिनी रह जाता है। योगी प्राणसधान से मानवीय 'सवेदना का नाश कर देते हैं। नानक का यात्री आत्मा भी है, मानव भी। नानक मानवीय सवेदना के न केवल नाश की अनुमति नही देते वे उसके पोषण पर बल देते हैं। अतः उनके यात्रा मार्ग के पडाव आध्यात्मिक भी हैं और नैतिक भी।

यह तो स्पष्ट हो चुका कि साधनारत योगी का अभीष्ट वैयक्तिक मुक्ति है। इस विशाल सृष्टि—उसके सौन्दर्य और उसकी पीडा की ओर से वे सर्वथा उदासीन हैं। गुरु नानक सृष्टि के सौन्दर्य से आकृष्ट और उसकी पीडा से द्रवित होते हैं। वे ससार मे निर्लिप्तभाव से रहने का उपदेश देते हैं।[1] जहाँ नाथयोगी का ध्येय निर्विघ्न

---

१. भगवान के अनुग्रह से ही प्रेम प्रधान भक्ति की ओर जीव की प्रवृत्ति होती है। भगवान के इस अनुग्रह को ही पोषण या पुष्टि कहते हैं। इसी से इस मार्ग को पुष्टिमार्ग कहते हैं।

—हिन्दी साहित्य, पृ० ६५

समाधि और गृहत्याग है वहाँ नानक गृह-त्याग की अनुमति नही देते। वे कर्मों का नाश भी नही चाहते, केवल कर्म को प्रभु की आज्ञा (हुकुम) समझकर उसका पालन करना चाहते हैं। यहाँ नानक योग से अधिक गीता के निकट हैं।[२]

संसार त्याग की शिक्षा देने वाले योगियों का अपना संसार है। उसकी विशिष्ट रीति-नीति है, विशिष्ट वेष-भूषा है और जैसा कि प्रत्येक मत में होना स्वाभाविक है इनके यहाँ भी तत्त्व बाह्याचार से दब गया है। नानक ने इस बाह्याचार का अपने ढंग से खण्डन किया। 'योग न खिंथा धारण से प्राप्त होता है न दण्ड धारण से। मुद्रा पहनने, सिर मुंडवाने तथा शृंगी बजाने से भी योगी नही बना जा सकता। योग को पाने की युक्ति तो यह है कि अजन (कलुष, ससार) मे भी निरंजन (अकलुष) भाव से रहो'।[३] और यदि मुन्दा, झोली, विभूति से ही प्रेम है तो 'संतोष की मुद्रा पहनो, श्रम के खप्पर और झोली बनाओ तथा परमात्मा के ध्यान की विभूति शरीर पर धारण करो। मृत्यु का स्मरण ही तुम्हारी खिंथा हो। कुंआरी कन्या जैसी पवित्रता ही तुम्हारी जुगति (आचार-व्यवहार) हो और प्रतीति (विश्वास) ही तुम्हारा दण्ड हो।[४]

योग-साधना मे कुंडलिनी-शिव के मिलन की अन्तिम सिद्धि के अतिरिक्त कुछ और सिद्धियाँ भी प्राप्त होती हैं। सिद्धियाँ अति-मानवीय, अति-प्राकृतिक शक्तियाँ हैं और हठयोग की परम्परा के अनुसार ये आठ हैं—अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व तथा कामवशामित्व। सिद्धियों की परम्परा का

---

१. जैसे जल महि कमलु निरालमु मुरगाई नैसाणे।

—आदिग्रंथ, पृ० ९३८

२. (क) प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।

—गीता ३।२७

हुकमी होवनि आकार हुकमु न कहिआ जाई
हुकमी होवनि जीअ हुकमि मिलै वडिआई

—आदिग्रंथ, पृ० १

(ख) अहंकार विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥

—गीता, ३।२७

नानक हुकमै जे बुझै त हउमै कहै न कोइ

—आदिग्रंथ, पृ० १

हम कीआ हम करहगे हम मूरख गावार

—आदिग्रंथ, पृ० ३९

३. जोगु न खिंथा, जोगु न डंडे, जोगु न भसम चढाईऐ
जोगु न मुंदी मूंडि मुडाइऐ, जोगु न सिडी वाइऐ
अंजन माहि निरंजनि रहीऐ, जोग जुगति इव पाईऐ—आदिग्रंथ, पृ० ७३०

४. मुंदा संतोखु, सरमु पतु झोली धिआन की करहि बिभूति
खिंथा कालु कुआरी काइआ जुगति डंडा परतीति-जपु॥२८॥

ारम्भ वैदिक काल से ही होता है और ये वज्रयानी सिद्धो के माध्यम से नाथो को त हुई। प्राचीन-काल से सिद्धियाँ उत्तम, मध्यम और अधम वर्गों में विभाजित होने ी थी।[1] उत्तम सिद्धि चित्तवत ही मानी जाती थी और शेष सिद्धियो को उससे ा स्थान दिया गया था।[2] ऐसा प्रतीत होता है कि नानक काल मे अधम, मध्यम टि की सिद्धियो पर ही बल दिया जा रहा था। गुरु नानक को इनका निजी अनुभव । उन्होने इन सिद्धियो को भगवद्-प्राप्ति के मार्ग में बाधा समझकर इनका खण्डन किया। भौतिक सिद्धियों पर आध्यात्मिक सिद्धि की उत्तमता स्थापित करते हुए उन्होने कहा—हे योगी, ज्ञान तेरी भुक्ति (भडार) हो, दया उसकी भडारे की वितरक हो, प्राणी मात्र मे प्रवाहित प्राण-धारा तेरा नाद, स्वय अकाल पुरुष तेरा नाथ हो— जिसके वश मे सारी सृष्टि है। ऋद्धियाँ और सिद्धियाँ तो तुम्हे पथभ्रष्ट करने के साधन मात्र हैं।[3]

योगियो ने गृहस्थ-त्याग का प्रचार करने का मुख्य साधन नारी-निन्दा को बनाया। यह नारी-निन्दा पूर्ववर्ती बौद्ध सिद्धो के गुह्य काम-क्रीडा की प्रतिक्रिया के रूप मे प्रगट हुई। बौद्ध-सिद्धो का यह अतिचार भी पूर्ववर्ती हीनयानी बौद्ध भिक्षुओ के अप्राकृतिक जीवन के विरुद्ध विद्रोह था। हीनयानी बौद्ध भिक्षु, वज्रयानी बौद्ध-सिद्ध, नाथ-पथी योगी तथा उनसे प्रभावित निर्गुणिये सत सभी स्त्री के प्रति अति-वादी दृष्टिकोण अपनाते रहे। वे न तो सृष्टि-विधान अथवा सामाजिक व्यवस्था मे उसके महत्त्व को समझ पाए और न पुरुष तथा स्त्री के बीच प्राकृतिक स्वस्थ सम्बन्ध का ही निर्देश कर सके।

नानक की दृष्टि इस अतिचार पर गई। निर्गुण सतो मे संभवत. वे पहले सत थे जिन्होने नारी का पक्ष लिया। नारी से ही जन्म होता है, वही पालन-पोषण करती है, फिर उसी से विवाह-सम्बन्ध स्थापित होता है। नारी से ही मैत्री होती है और उसी से वश चलता है। नारी की मृत्यु होने पर (दूसरी) स्त्री ढूँढ़ी जाती है। उसकी निन्दा क्यो करते हो जिससे राजा तक जन्म पाते हैं? नारी ने ही नारी-निन्दको को जन्म दिया है, नारी के बिना किसी का अस्तित्व सम्भव नही[4]। ऐसा कह कर नानक ने नारी की निन्दा करने वाले अथवा सहने वाले समाज का ध्यान नारी की महिमा और महत्त्व की ओर खीचा।

सक्षेप मे हमारी धारणा यह कि नाथयोगी और नानक मे कोई समानता है तो यह कि दोनो अन्ततोगत्वा वैयक्तिक अह को परम-सत्य मे लीन कर देना चाहते हैं और इसके लिए गुरु की आवश्यकता स्वीकार करते हैं। इसके अतिरिक्त दोनो में कोई समानता नही। गुरु नानक न योगाभ्यास पर बल देते हैं न गृह-त्याग पर; न

१. धर्मवीर भारती, सिद्ध साहित्य, पृ० २२६
२. सिद्ध साहित्य, पृ० २२६
३. भुगति गिआनु, दइआ भडारणि, घटि घटि वाजहि नाद।
आपि नाथ नाथी सब जाकी रिधि सिधि अवरा साद।
—आदिग्रन्थ, पृ० ६
४. आदिग्रन्थ, पृ० ४७३।

मानवीय संवेदना का बहिष्कार चाहते हैं न कर्मों का नाश। यह तो हुई सिद्धान्त की बात। व्यवहार पक्ष मे नानक और नाथयोगी दोनो वर्णाश्रम धर्म का खण्डन करते हैं। इसके सिवा दोनो मे कोई समानता नही। नानक ने योगियो के बाह्याचार, उनकी वेष भूषा और उनके सिद्धि-प्रेम की स्पष्ट निन्दा की है।

नानक धर्म को एक विशिष्ट कर्म नही बना देना चाहते थे। उनके निकट धर्म की उपादेयता उसकी समाज-कल्याण-शक्ति मे है। स्पष्टतः नानकमार्ग योग-मार्ग न हो कर भक्ति-मार्ग है। वे भक्ति को योग और उसकी सिद्धियो से कहीं श्रेष्ठ मानते हैं। इसका कुछ आभास निम्न-लिखित उद्धरण से मिल जायेगा :

सिधु होवा सिधि लाई रिधि आखा आउ।
गुपत परगटु होइ जैसा लोकु राखै भाउ।
मतु देखि भूला वीसर तेरा चिति न आवै नाउ।[1]

(मैं सिद्ध हो जाऊँ तो सिद्धियो की हाट लगाऊँगा। ऋद्धियाँ भी मेरे वश में हो जाएँ। मुझे गुप्त और प्रकट होने की शक्ति मिल जाए और लोग मुझ पर श्रद्धा रखें। ऐसा न हो कि मैं तुम्हें भूल जाऊँ और तेरा नाम मेरे मन से उतर जाये।)

गुरु नानक की 'उदासियाँ

गृह-त्याग एव भेषादि के विरोधी गुरु नानक से स्वय अपने जीवन का एक बहुत बडा भाग घर से दूर साधु वेष मे व्यतीत किया, यह एक निर्भ्रान्ति सत्य है। वस्तुतः (आदिग्रथ के अतिरिक्त) सिक्ख साहित्य मे उदासी शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग गुरु नानक की यात्राओ के प्रसग मे ही हुआ है। हर यात्रा के समय गुरु नानक ने विशेष प्रकार का वेष धारण किया और विशेष प्रकार की रीति अपनाई। पुरातन जन्म साखी (सवत् १६६२) एव भाई गुरुदास (मृत्यु स० १६६४) इसके साक्षी हैं। पुरातन जन्म साखी मे गुरु नानक की चारो यात्राओ के सम्बन्ध मे निम्नाकित सकेत पाये जाते हैं :—

(क) प्रथम उदासी की पूर्व की। उस उदासी मे मरदाना रबाबी साथ था। तब पवन आहार किया। भेष वावे का :—एक वस्त्र आम्र-रजित, एक वस्त्र सफेद। एक पाँव मे जूना, दूसरे पाँव मे खडाँव, गले मे कफनी, सिर पर कलदरी टोपी, अस्थिमाला, माथ पर केशर का तिलक।[2]

(ख) दूसरी उदासी की दक्षिण देश की, आहार किंचित् रेत का करें। तब पाँव खडांव थी। हाथ लकुटी, सिर पर रस्सियाँ लपेटी, भुजाओ एव जघाओ पर रस्सियाँ लपेटी। माथे पर टीका लाल रग था। तब सैंदो जाट, जाति घेहा, उनके साथ था।[3]

(ग) तीसरी उदासी उत्तर-खण्ड की प्रारम्भ की। उस उदासी मे आक की खखडियाँ एव सूखे फल आहार था। पाँव मे चर्म, एवं सिर पर चर्म, सारा शरीर

१. आदिग्रन्थ, पृ० १४
२. पुरातन जन्म साखी (संस्करण १६५२), पृष्ठ २५ से अनूदित
३. वही, पृष्ठ ७८ से अनूदित

(चमडे से) लपेटा हुआ और माथे पर केशर का टीका। तब हस्सू लोहार एवं सीहाँ छीपा उनके साथ था।[1]

(घ) चौथी उदासी पश्चिम की हुई। पाँव मे चमडे के जूते। और चमडे की सलवार। गले मे अस्थिमाला। माथे पर लाल टीका। बालको मे खेले। तब नीले वस्त्र थे।[2]

भाई गुरदास ने (जो सिक्ख गुरुओं के निकटस्थ सेवक हैं एव सिक्ख धर्म के प्रति प्रामाणिक व्याख्याकार माने जाते हैं)[3] भी गुरु नानक के भेप एवं विशेप आहार (रेत, आक आदि के) का उल्लेख किया है।[4] वे गुरु नानक को उदासी-रीति के प्रवर्त्तक के रूप मे स्मरण करते हैं।[5] किन्तु, वे गुरु नानक की चारो यात्राओ अथवा उदासियो का वर्णन करने के पश्चात् कहते हैं कि उन्होने "उदासी भेप उतार दिया, गृहस्थो के समान वस्त्र धारण किया और (देशाटन छोड कर) चारपाई पर बैठ कर धर्मोपदेश करने लगे।[6] उपर्युक्त साक्ष्यो से स्पष्ट है कि :

(क) गुरु नानक की यात्राओ को 'उदासियो' के नाम से पुकारा जाता है।

(ख) भिन्न उदासियो मे गुरु नानक ने साधुओ के समान विशेप प्रकार का भेप धारण किया किन्तु प्रत्येक उदासी मे भेप दूसरी उदासियो के भेप से भिन्न था। किसी एक भेद को प्रचलित करना उनका उद्देश्य न था।

(ग) यात्राओ के उपरात गुरु जी ने उदासी भेप का त्याग किया।

(घ) गुरु नानक की वाणी प्रवृत्तिमूलक है, निवृत्तिमूलक नही।

इन सब तथ्यो से केवल एक ही निष्कर्ष निकलता है कि उदासी-सम्प्रदाय (अथवा किसी प्रकार के सन्यासी-सम्प्रदाय) को चलाना गुरु नानक का अभिप्रेत न था। हमारे निष्कर्ष का समर्थन इस तथ्य से भी होता है कि गुरु नानक ने अपने बाद गुरुपद का अधिकारी एक गृहस्थ को ही समझा।

उदासी मत और श्रीचन्द :—कुछ महानुभावो का विश्वास है कि उदासी सम्प्रदाय का समारभ गुरु नानक के पुत्र श्रीचन्द द्वारा हुआ। इस मत का सम्यक् निरीक्षण करते समय हमे दो बातो का विशेप ध्यान रखना चाहिये। प्रथम, उदासी सम्प्रदाय सदा नानकमतानुगामी रहा है। द्वितीय नानक मार्ग के प्रामाणिक विद्वानों

---

१. पुरातन जन्मसाखी, पृ० ६० से अनूदित
२. वही, पृ० ६८ सेअनूदित
३. गुरु शब्द रत्नाकर, पृ० १२४४
४. रेत अक्क आहार करि, रोड़ा की गुर करी विछाई।
—वारां भाई गुरदास, प्रथम वार, २४ वीं पौड़ी, पृ० १२
५. बाबे भेख बणाइआ, उदासी की रीति चलाई।
—वारॉ भाई गुरदास जी, प्रथम, वार २४वीं पौड़ी, पृ० १२
६. बाबा आया करतार पुरि भेख उदासी सगल उतारा।
पहिर ससारी कप्पडे, मजी बैठि किया अवतारा।
—वारॉ भाई गुरदास जी, प्रथम वार, ३८वीं पौड़ी, पृ० १६

का श्रीचन्द के प्रति विशेष आदर नही रहा है। बाबा श्रीचन्द ने गुरु नानक द्वारा मनोनीत गुरु अगद को गुरु मानने से इन्कार कर दिया था। गुरु नानक देव के पश्चात् वे सिक्ख सस्था से टूटे से रहते हैं। आदिग्रथ मे राय-बलवड ने इस घटना का वर्णन अपनी 'रामकली की वार' मे किया है। यह वार श्रीचन्द का वर्णन आदरसूचक शब्दो में नही करती। वे कहते हैं—

'जब गुरु (नानक) ने यह सत्याज्ञा की कि गुरु अगद को गुरु मानो तो कोई इससे क्यो विमुख हो। पुत्रो ने वचन न माना और गुरु से पराडमुख हो गये। वे दिल के खोटे विरोधी (बागी) हो गए। उन्होने (पाप की) गठरी बाँध कर उठाली।'[1]

नानक मार्ग के प्रामाणिक विद्वान् भाई गुरदास बाबा श्रीचन्द को नानक मार्ग के विरोधियो मे गिनते हैं। उन्होने अपनी छब्बीसवी वार की तैंतीसवी पौडी मे श्रीचन्द का नाम गुरु-सस्था के विरोधियो मे मूर्धन्य पर रखा है।[2] रायबलवड गुरु अगद के अत युवा श्रीचन्द के समकालीन हैं। भाई गुरुदास पचम गुरु के, अत वृद्ध श्रीचन्द के, समकालीन हैं। इससे यह निष्कर्ष सहज मे ही प्राप्त किया जा सकता है कि श्रीचन्द आजीवन सिक्ख-सस्था से टूटे रहे। उनके द्वारा सचालित मत सिक्ख मत का अनुगामी न होकर सिक्ख मत का समानान्तर अथवा विरोधी होता। क्योकि ऐसा नही हुआ, अत श्रीचन्द को इस मत का आदि सचालक मानना भ्रममूलक है। आज तक भी उदासी सत सिक्ख गुरुओ को (विशेषत गुरु नानक को) गुरु रूप मे स्मरण करते हैं और श्रीचन्द को 'बाबा' रूप मे। इस तथ्य से भी यही सकेत मिलता है कि श्रीचन्द इस सम्प्रदाय के आदि सचालक न थे। गुरु महत्त्व को स्वीकार करने वाले इस मत मे वे गुरु रूप मे स्वीकृत नही हैं।

सिक्ख साहित्य मे एक किंवदन्ती बहुत प्रसिद्ध है कि छठे गुरु-हरिगोबिंद ने अपना ज्येष्ठ पुत्र बाबा गुरदित्ता बाबा श्रीचन्द को सौंप दिया था। 'गुरु शब्द रत्नाकर' के अनुसार वे बाबा श्रीचन्द के प्रथम चेले थे। इस किंवदन्ती को स्वीकार करने मे दो आपत्तियाँ हैं —

(क) बाबा गुरदित्ता गृहस्थ थे। उनके गृहस्थ त्याग का कोई सकेत नही मिलता।

(ख) गुरु शब्द रत्नाकर (जो इस किंवदन्ती को मान्यता देता है) के अनुसार बाबा श्रीचन्द का मृत्यु सवत् १६६६ (पृष्ठ ७५०) और बाबा गुरदित्ता का

---

१ आदिग्रथ (रामकली की वार), पृ० ६६७ पर से निम्नलिखित पक्तियों का अनुवाद
सचु जि गुरि फुरमाइआ किउ एदू बोलहु हटीऐ।
पुत्री कउलु न पालिओ करि पीरहु कन मुरटीऐ।
दिलि खोटे आकी फिरन्हि बन्हि भारु उचारन्हि छटीए।

२ बाल जती है सिरीचन्द बाबाण देहुरा बणाया।
—वाराँ भाई गुरुदास, पृ० २१३

जन्म संवत् १६७० (पृष्ठ १२४५) है। स्पष्ट है कि श्रीचन्द अपनी मृत्यु के उपरांत जन्म प्राप्त करने वाले बाबा गुरदित्ता को दीक्षा न दे सकते थे।

इस किंवदन्ती पर विश्वास कर लेने पर भी यही सिद्ध होता है कि प्रथम चेले बाबा गुरदित्ता से पहले बाबा श्रीचन्द व्यक्तिगत रूप से संन्यासी का जीवन व्यतीत कर रहे थे, उनका संप्रदाय अभी न चला था। संप्रदाय ने सक्रिय रूप बाबा गुरदित्ता (संवत् १६७०-१६६५) के समय ही धारण किया। बाबा गुरदित्ता के चार सेवक हुए—बालू हसना, अलमस्त, फूलशाह और गोयंद जी। इन चार के अतिरिक्त छः और महानुभावों को भी उदासी भेष की 'बखशिश' सप्तम, नवम एवं दशम गुरु द्वारा हुई। 'चार धूनियाँ' एवं 'छः बखशिश' से ही सारा उदासी सम्प्रदाय विकसित हुआ। इन्ही के कारण उदासी साधुओं की संज्ञा 'दसनामी साधु' भी है।[१]

संक्षेप में हम कह सकते हैं—

(१) उदासी सम्प्रदाय के बीज नानकचरित और नानकवाणी में विद्यमान हैं। उदासी सम्प्रदाय के महात्मा उन्हे ही अपना आदि गुरु अथवा आदि आचार्य मानते हैं।

(२) बाबा श्रीचंद द्वारा इस सम्प्रदाय के संचालित होने का कोई निश्चित प्रमाण विद्यमान नही।

(३) उदासी सम्प्रदाय की अविच्छिन्न परम्परा छठे गुरु से आरम्भ होती है।

उदासी मत वैदिक धर्म का पुनरुद्धारक—उदासी एवं नाथ मतो के तुलनात्मक अध्ययन से जो तथ्य स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आता है वह यह है कि ये दोनों भिन्न प्रवृत्तियों के समर्थक हैं। पंजाब में उदासीमत का उदय एवं नाथमत का ह्रास लगभग एक ही समय होता है। उदासीमत वस्तुतः उस स्थान की पूर्ति करता दृष्टिगत होता है जो नाथमत के लुप्त हो जाने से रिक्त हो गया था। गुरु नानक और नाथो में जो गोष्ठियाँ हुईं उससे भी यही प्रतीत होता है कि यहाँ भक्ति और योग की प्रवृत्तियाँ एक दूसरे से उलझ रही हैं। यहाँ कुछ उदाहरण अनुपयुक्त न होंगे—

योगी सिद्ध प्रश्न करते हैं :—

(क) कह बैसहु कह रहीऐ बाले कह आवहु कह जाहो।

गुरु नानक उत्तर देते हैं :

आसणि बैठणि थिरु नाराइण ऐसी गुरमति पाए।[२]

(ख) हठ निग्रह करि काइआ छीजै।
वरतु तपनु करि मनु नही भीजै।
राम नाम सरि अवरु न पूजै।[३]

---

१. गुरु शब्द रत्नाकर, पृ० २७
२. आदिग्रन्थ, पृ० ९३८
३. आदिग्रन्थ, पृ० ९०५

(ग) सुणि माछिद्रा नानकु बोलै
वसगति पंच करे नह डोलै
ऐसी जुगति जोग कउ पाले
आप तरे सगले कुल तारे
सो अउधूतु ऐसी मति पावै
अहिनिस सुंनि समाधि समावै ॥१॥२६॥३॥
भिखिआ भाइ भगति मै चलै
होवै सु तृपति सतोखु अमुलै ।[1]

गुरु नानक 'योग' के स्थान पर 'नाम' का प्रचार करते थे । उदासी सम्प्रदाय मे भी 'नाम' को ही प्राधान्य मिला । अप्रत्यक्ष रूप से गुरु नानक द्वारा वैष्णव-धर्म का उद्धार हुआ । हठ योग का विरोध और भाव-भक्ति तथा नाम का प्रचार भी गुरु नानक द्वारा हुआ । इन्ही से प्रोत्साहन पाकर उदासी सम्प्रदाय मे वेद-पुराण-अनुगामिनी वैष्णव-प्रवृत्ति का अभ्युदय हुआ । उदासियो ने गुरु नानक को विष्णु के ऐसे नामावतार के रूप मे ग्रहण किया जो हिन्दू समन्वय भावना के अनुसार हठयोगी प्रवृत्ति का अन्तर्भाव भक्ति-प्रवृत्ति मे करता है । गुरु नानक के जन्म पर मत्स्येन्द्रनाथ उन्हें विष्णु के अवतार रूप मे पहचानता है ।[2] हठयोगी गोरख का अभिमान उनके मुख मे विश्व का विराट् रूप देखकर चूर्ण होता है और वह कहता है कि 'मैं अपनी मुद्राओं सहित तेरा पुत्र बनूंगा ।'[3] अवैदिक मतावलम्बी गोरखनाथ विष्णु के नामावतार नानक के पुत्र श्रीचन्द के रूप मे अवतरित हुए, ऐसी कल्पना करने वाले उदासी संत निश्चय ही योग का अन्तर्भाव भक्ति मे कर रहे हैं ।

उदासी संतों द्वारा भगवान् का निर्गुण और सगुण दोनो रूपो मे ग्रहण किया गया है । इस प्रकार वे उपनिषदो और पुराणो की परम्परा का अनुगमन करते हुए प्रतीत होते हैं । यहां दो उदाहरण उपयुक्त होंगे :

---

१. आदि ग्रन्थ, पृ० ८७७

२. बिसनू के समि चिन्य याहि तन जानियै
तेज और परताप उही पाहचानियै
बिसनू ही अवतार लयो है आइकै
गोरखको माछिंदर कह्यो सुनाइकै

—सतरेण कृत नानक विजय, २।६।३८।२४६

३. विराट रूप लाखों इन्दर वरण कुबेर । लाखों सागर और सुमेर ।
लाखों स्वर्ग मृतक पाताला । लाखों सकती लाखों काला ।
....

—वही २।१५।५० ५१।१६८

इसही मुद्रा सहित सुजान । तव सुत बन हो आइ महान

वही २।१५।५६।१६८

(क) ब्रह्म अनंद रूप जो हयैं। सतिचित आनंद ताको कह्यैं
सरब बुधि ब्रित साखी भास। नमो वेदांत वेद सुप्रकास।[1]

(ख) कमलासन की विनती सुनिकैं प्रगटे भगवान सुदीन दयाला
रवि कोटि समान सुतेज लसे सम नीलमणि तन रूप विसाला
करि माहि रथांग गदादर नीरज देखत नैन मिलै ततकाला
मकराकृत लोचन कान लसै वखि भृंगलता गल मैं वन माला।[2]

स्पष्ट है ये दोनों प्रवृत्तियां एक ही विशाल वैदिक परम्परा का अंग हैं। अतः यह निष्कर्ष असंगत प्रतीत नहीं होता कि नाथपंथ को निष्कासित करता हुआ उदासी सम्प्रदाय का अभ्युदय वैदिक धर्म की पुनरावृत्ति का ही परिचायक है। इस सम्प्रदाय मे गुरु नानक को अपना आदि-गुरु मानने का आग्रह बहुत प्रबल रहा है। अतः यह विश्वास भी समीचीन ही प्रतीत होता है कि अवैदिक नाथपंथ की रीति-नीति का जो विरोध गुरु नानक द्वारा हुआ, उदासी पथ द्वारा उसी ही की विस्तृति हुई।

भेष—उदासी सम्प्रदाय के 'भेष' के सम्बन्ध मे भी एक मनोरंजक कथा प्रचलित है। कहते हैं कि जब छठे गुरु हरिगोविंद जी नाथ-पंथी साधुओं से नानकमता (पीली भीत; उत्तर प्रदेश) गुरुद्वारा का उद्धार करने जा रहे थे तो मार्ग में उनकी भेंट तीर्थगामी श्री समर्थ स्वामी रामदास से हुई।[3] स्वामी रामदास जी ने प्रश्न किया—

हौं (मैंने) सुण्या था गुरु नानक की गादी पर बैठा है। नानक गुरु त्यागी साधु थे। तुम सस्त्र धारण करे हैनि। घोड़े फौज रक्खी है। सच्चा पातिशाह कहावता है। कैसा साधु है।

गुरु हरिगोविन्दि कह्या :

बातन फकीरी। जाहर अमीरी।
शस्त्र गरीब की रक्ख्या।
जर वाणे की भक्ख्या (अत्याचारी के भक्षणार्थ)
बाबा नानकि संसार नहीं त्याग्या था :
माया त्यागी थी।

रामदास प्रसन्न होया। कह्या :

'इहु हमारे मन भावती है।'[4]

इसी मिलन के स्मृति-चिन्ह स्वरूप स्वामी जी ने गुरुजी को अपनी जप-माल एवं भगवे वस्त्र भेंट किये। पीलीभीत पहुंच कर जब गुरु जी ने गुरुद्वारे का पुनरुद्धार

---

१. दयाल अनेमी कृत ज्ञान बोधिनी, पृष्ठ १६
२. संतरेण कृत नानक विजय, पृष्ठ १२३
३. श्री हनुवंत स्वामी लिखित श्री समर्थां ची बखर, पृष्ठ २२, २३
४. प्रो० गंडा सिंह द्वारा प्रोफेसर डी० वी० पोतदार कामेमोरेशन वाल्यूम में पृष्ठ २०२ पर पद टिप्पणी के रूप में उद्धृत हस्तलिखित 'पंचाह साखियां' नामक ग्रन्थ की छत्तीसवीं साखी।

'नानक विजय' में वे भगवान के नामावतार की लीलाओं का आख्यान करते हैं। 'अनभै प्रकाश' मे वेदात और 'उदासी-बोध' में उदासी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का निरूपण करते हैं। 'मन-प्रबोध' में सतरेण सम्प्रदाय-सिद्धात-निरपेक्ष आत्मोपदेश में व्यस्त दिखाई देते हैं। उपर्युक्त तीनो रूपों से जो एक समजित सत्य उद्भासित होता है वह यह है कि धर्म उनके लिये संकीर्ण साम्प्रदायिकता का पर्याय नही था। उन्होने धर्म को बहुविध-विकसित सत्य के रूप में ग्रहण किया है। उसके सभी स्तरों का उन्हें ज्ञान है।

उनके वैष्णव रूप का विवेचन इसी निबन्ध के द्वितीय खण्ड में ऐतिहासिक प्रबन्धों के प्रसंग मे किया गया है। अनभैप्रकाश और उदासी बोध पद्य बद्ध रचनायें होकर भी काव्य-कोटि मे स्थान पाने की अधिकारी नही। अतः इनका विस्तृत विवेचन हमे अभीष्ट नही। सतरेण की सैद्धातिक मान्यताओं को समझने के लिए इनका प्रयोग सहायक ग्रन्थों के रूप मे किया जा रहा है। इस अध्याय मे हम मुख्य रूप से मन प्रबोध का ही व्याख्यान करेंगे। इस ग्रथ मे इन्होने धर्म के व्यावहारिक पक्ष का उद्‌घाटन किया है।

सिद्धांत—संतरेण की रचनाओं में वेदान्त और भक्ति का समन्वय मिलता है। मूलतः वे अद्वैतवादी हैं। निर्गुण ब्रह्म,[1] जीव और ब्रह्म की तात्त्विक एकता,[2] अनिर्वचनीय माया[3] आदि मे उनका विश्वास है। यहाँ तक वे वेदान्ती हैं। किन्तु वे माया के निराकरण के लिए तथा ब्रह्म और जीव के एकत्व के लिए ज्ञान की अपेक्षा भक्ति पर अधिक बल देते है। अज्ञान का प्रतिलोम ज्ञान नही बल्कि भक्ति है। इसके बिना भवपाश नही कटता। संक्षेप मे उन्हे 'वेदान्ती भक्त' कहना उपयुक्त होगा।

सिक्ख सिद्धान्तों के प्रति उनकी आस्था है। निर्गुण ब्रह्म, जीव और ब्रह्म की तात्त्विक एकता, जीव मे भेद-बुद्धि उत्पन्न करने वाला अहकार (माया) और भाव-भक्ति सिक्ख-सिद्धान्त मे स्वीकृत हैं। किन्तु अध्यात्म-मार्ग मे गुरु की आवश्यकता पर जितना अधिक बल गुरुवाणी मे दिया है उतना संतरेण की वाणी में नही। वस्तुतः संतरेण ने गुरु-व्यक्ति (गुरु नानकदेव) के प्रति जितनी निर्भ्रान्ति श्रद्धा अभिव्यक्त की है उतनी गुरु-सिद्धात के प्रति नही की। अध्यात्म मार्ग मे गुरु का क्या स्थान है, सतरेण इस सम्बंध मे मौन हैं। इसे गुरु-सिद्धान्त की अवहेलना समझना उचित न होगा। गुरु-सिद्धात इस युग मे बहुत लोकप्रिय नही रहा। स्वयं गुरु तेग़बहादुर और

---

१. परब्रह्म सनातन राम जुऊ। इकला सुहुतो नहि पास बुऊ
निज रूप विखै सुहुतो मगनं। तित्त नाम न रूप हुतो जगनं ॥१।८
तह माय न ईस्वर जीव गुणं। नहि सिमृति वेद सुनीस गुणं
महततं नहं किरिआ सक्ती। नहि ज्ञान अज्ञानं, नही भक्ती ।१।६

२. इह जीव परातम रूप हुतो ।११०। मनप्रबोध

३. माया नाहि सदैव सु जान सुजान रे।
हो नाहिन सो निरवैनं जान महान रे।१।१६
नेवावैव सु नाहि माया जानिये ।१।२०

किया, एवं अपने सेवक भाई अलमस्त को प्रथम 'उदासी' के रूप मे स्थापित किया तो उन्होंने यही वस्त्र उसे भेंट किये।[1] संक्षेप से उदासी सम्प्रदाय को भगवा भेष समर्थ स्वामी रामदास से प्राप्त हुआ था। स्मरण रहे, गुरु नानक ने अपनी किसी उदासी मे भगवा-भेष धारण नही किया। किसी अन्य गुरु द्वारा भी भगवे वस्त्र पहनने का उल्लेख कही नही मिलता। अतः इस भेष को समर्थ स्वामी जी की देन समझना ही अनुपयुक्त न होगा।

संतरेण

जीवन चरित, रचना आदि—सतरेण उदासी सम्प्रदाय से सम्बन्धित संत थे। उनका जन्म सन् १७४१ ई० (सवत् १७९८) मे हुआ।[2] बहुत दिनो तक वे मालेर-कोटला रियासत के भूदन नामक ग्राम मे रहे और वही उन्होंने पाँच ग्रन्थों की रचना की। इनमे से चार ग्रन्थ आज उपलब्ध है।[3] पच परमेश्वर नामक स्तोत्र की रचना भी सन् १७७६ ई० की है।[4] यह स्तोत्र उदासी मत के पचायती अखाड़े द्वारा आरती रूप मे स्वीकृत हुआ। इससे प्रकट होता है कि ये १७७६ ई० तक कविरूप मे विख्यात हो चुके थे। मन प्रबोध मे कोई रचना काल नही दिया गया। किन्तु सतरेण द्वारा दी गई सूचना से प्रतीत होता है कि यह उनका प्रथम ग्रन्थ है। अतः यह अनुमान अनुपयुक्त न होगा कि इसकी रचना १७७६ ई० से पूर्व हुई। इस अध्याय मे सतरेण जी की वाणी की विवेचना इसी ग्रन्थ के आधार पर की जा रही है।

मन प्रबोध—संतरेण जी का प्रथम ग्रन्थ मन प्रबोध है। इसमे कुल १६६ छन्द हैं। दो छप्पय और दो दोहो के अतिरिक्त शेष सभी सवैये हैं।

इस ग्रन्थ की मूल पाण्डुलिपि सतरेणाश्रम मे विद्यमान है। वहाँ पहुँचने पर सूचना मिली कि इस ग्रन्थ का मुद्रण १९५३ मे हुआ था। प्रकाशक संतरेणाश्रम ही है। वितरण का कोई प्रबन्ध न होने के कारण सभी प्रतियाँ आज तक आश्रम मे ही सुरक्षित हैं। कुछ प्रतियाँ ही कतिपय विद्वानो अथवा श्रद्धालुओ तक पहुँची हैं।

इस अध्याय के लिये हमने मूल हस्तलिखित प्रति का प्रयोग किया है और मुद्रित प्रति का भी। दोनो की पृष्ठ सख्या भिन्न होने के कारण उद्धरणों मे छन्द-सख्या का ही निर्देश किया गया है।

संतरेण की रचनाओ मे उनके व्यक्तित्व के तीन रूप स्पष्टत. प्रतिबिम्बित हैं :

१. वैष्णव भक्त;

२. वेदान्ती एवं उदासी सिद्धान्तज्ञ,

३. व्यावहारिक उपदेष्टा।

---

१. श्री हनुवा स्वामी द्वारा लिखित समर्थ की बखर, पृ० २३

२. श्री सतरेण ग्रन्थावली, पृ० १

३. मन प्रबोध, नानक विजय, वचन सग्रह (अनभै अमृत सागर), उदासी बोध

४. श्री संतरेण ग्रन्थावली, पृ० ३-४

'नानक विजय' मे वे भगवान के नामावतार की लीलाओ का आख्यान करते हैं। 'अनभै प्रकाश' मे वेदात और 'उदासी-बोध' मे उदासी सम्प्रदाय के सिद्धान्तो का निरूपण करते हैं। 'मन-प्रबोध' मे सतरेण सम्प्रदाय-सिद्धात-निरपेक्ष आत्मोपदेश मे व्यस्त दिखाई देते हैं। उपर्युक्त तीनो रूपों से जो एक समजित सत्य उद्भासित होता है वह यह है कि धर्म उनके लिये सकीर्ण साम्प्रदायिकता का पर्याय नही था। उन्होने धर्म को बहुविध-विकसित सत्य के रूप मे ग्रहण किया है। उसके सभी स्तरो का उन्हे ज्ञान है।

उनके वैष्णव रूप का विवेचन इसी निबन्ध के द्वितीय खण्ड में ऐतिहासिक प्रबन्धो के प्रसग मे किया गया है। अनभैप्रकाश और उदासी बोध पद्य बद्ध रचनायें होकर भी काव्य-कोटि मे स्थान पाने की अधिकारी नही। अत इनका विस्तृत विवेचन हमे अभीष्ट नही। सतरेण की सैद्धातिक मान्यताओ को समझने के लिए इनका प्रयोग सहायक ग्रन्थो के रूप मे किया जा रहा है। इस अध्याय मे हम मुख्य रूप से मन प्रबोध का ही व्याख्यान करेंगे। इस ग्रथ मे इन्होने धर्म के व्यावहारिक पक्ष का उद्घाटन किया है।

सिद्धात—सतरेण की रचनाओ मे वेदान्त और भक्ति का समन्वय मिलता है। मूलतः वे अद्वैतवादी हैं। निर्गुण ब्रह्म,[1] जीव और ब्रह्म की तात्त्विक एकता,[2] अनिर्वचनीय माया[3] आदि मे उनका विश्वास है। यहाँ तक वे वेदान्ती है। किन्तु वे माया के निराकरण के लिए तथा ब्रह्म और जीव के एकत्व के लिए ज्ञान की अपेक्षा भक्ति पर अधिक बल देते हैं। अज्ञान का प्रतिलोम ज्ञान नही बल्कि भक्ति है। इसके बिना भवपाश नही कटता। सक्षेप मे उन्हे 'वेदान्ती भक्त' कहना उपयुक्त होगा।

सिक्ख सिद्धान्तो के प्रति उनकी आस्था है। निर्गुण ब्रह्म, जीव और ब्रह्म की तात्त्विक एकता, जीव मे भेद-बुद्धि उत्पन्न करने वाला अहकार (माया) और भाव-भक्ति सिक्ख-सिद्धान्त मे स्वीकृत हैं। किन्तु अध्यात्म-मार्ग मे गुरु की आवश्यकता पर जितना अधिक बल गुरुवाणी में दिया है उतना सतरेण की वाणी मे नही। वस्तुतः सतरेण ने गुरु-व्यक्ति (गुरु नानकदेव) के प्रति जितनी निर्भ्रान्ति श्रद्धा अभिव्यक्त की है उतनी गुरु सिद्धात के प्रति नहीं की। अध्यात्म मार्ग मे गुरु का क्या स्थान है, सतरेण इस सम्बध मे मौन हैं। इसे गुरु-सिद्धान्त की अवहेलना समझना उचित न होगा। गुरु-सिद्धात इस युग मे बहुत लोकप्रिय नही रहा। स्वय गुरु तेगबहादुर और

---

१. परब्रह्म सनातन राम जुऊ। इकला हुतो नहि पास कुऊ
निज रूप विसै सुहुतो मगन। विस नाम न रूप हुतो जगन ॥१।८
तह माय न ईस्वर जीव गुण। नहि सिमृति वेद सुतीम गुणं
महतत नह किरिआ सक्ती। नहि ज्ञान अज्ञानं, नही भक्ती ।१।९

२. इह जीव परातम रूप हुतो ।११०। मनप्रबोध

३. माया नाहि सवैव सु जान सुजान रे।
जो नाहिन सो निरवैव आन मज्ञान रे ।१।१९
वैवावैव सु नाहि माया जानिये ।१।२०

गुरु गोविन्दसिंह की वाणी में गुरु-सिद्धांत का प्रतिपादन नही हुआ। निर्मला गुलाबसिंह सेवापंथी सहजराम भी इस पर विशेष बल नही देता। सक्षेप मे हम कह सकते हैं कि संतरेण ने वेदान्त और भक्ति का जो समन्वय प्रस्तुत किया है वह सामान्यतः सिक्ख-सिद्धान्त के अनुकूल ही है।

व्यावहारिक पक्ष—मालेरकोटला जैसे पिछडे हुए भूभाग मे ब्रह्म और जीव विषयक सैद्धान्तिक सूक्ष्मताओं के प्रचार की गुंजाइश नही थी। निश्चय ही सतरेण जी ने अपने ग्रंथ 'अनभै प्रकाश' मे वेदान्त की सूक्ष्म स्थापनाओ का निरूपण पर्याप्त सफलता से किया है। किन्तु वे भूदन और पास-पडोस के भूभाग मे जो इतने लोकप्रिय हुए, सीधे-सादे, अशिक्षित कृषको के मन मे जो इतने गहरे पैठ गए उसका कारण सूक्ष्म सिद्धात-निरूपण नही था। उन्होने धर्म को ऐसे व्यावहारिक सत्य के रूप में प्रस्तुत किया जिसे अद्वैती सूक्ष्मताओ से अनभिज्ञ साधारण व्यक्ति भी समझ सकते थे।

चंचल मन—सतरेण जी, इस व्यावहारिक सत्य का आरम्भ चंचल मन से करते हैं। मन चचल है और किसी प्रकार भी स्थिरता ग्रहण नहीं करता। इस सत्य को उन्होने सरल, सुगम एव साधारण उपमाओ द्वारा अभिव्यक्त किया है :

> गज का कन (?) है कि कपी गन है
> मन आय नही हमरे बस मे रे
> कि धुजा पटि है कि छटाछटि है
> कि वनी लटि है मन तू दस मेरे।१०२।
> मन भूति कि प्रेति पिसाच किधौ
> कि अहे निगुरा मन भाख उदारा
> अग गौन किधौ घन छौन किधौ
> मन पौन कियौ कि अहे मन पारा।१०३।
> मन मैं तुमको समझाइ रह्यो
> पर तू समझै न महा कपटी रे
> हम नाच नचावति है सभ को
> जट को जिम नाच नचाइ जटी रे।६६।

सतरेण ने मन के चाचल्य को सस्कारजन्य, अपरिहार्य वैशिष्ट्य के रूप मे उपस्थित नही किया। उन्होने चाचल्य को अभाव-जन्मा विवशता के रूप मे अथवा विलास-जन्मा असतुष्टि के रूप मे ही अकित किया है। सतरेण के अनुसार सारी मानव-सृष्टि दुःख मे जन्म लेती, दुःख मे जीवन व्यतीत करती और दुःख मे ही मृत्यु को प्राप्त होती है।[1] चाचल्य इसी वस्तुस्थिति का परिणाम है। दुःख दारिद्रय से अभिभूत साधारण गृहस्थ के चचल मन का दृश्य इस प्रकार अकित हुआ है :

> घरि दीपक है तब तेल नही
> घरि तेल अहे तब नाहिन बाती।

---

१. दुख में जन्मै दुख माहि मरै, मध मैं दुख पाइ सुजीव अपारे।३०।
दुख में जन्मै दुख माहि मरै, दिन रैन परे दुख माहि सुसारे।१७।

घरि दाल अहे तव साग नहीं
घरि साग अहे तव नाहि दराती ।
घरि है मिरची तव लूण नहीं
घरि लूण अहे तव अव न राती ।
हम संतहि रेण कहे मन रे
भजि तू हरि को मन छोड भरांती ।१५०।
पगरी जव है तन ढाप नहीं,
तन ढाप अहे तव नाहिन धोती ।
घरि दाम अहे तव जाति नहीं,
जव जाति अहे तव नाहिन गोती ।
ललना पट है नथ नाक नहीं,
नथ नाक अहै तव नाहिन मोती ।
इक है वस्तु इक नाहि अहे,
हम संतहि रेण कहै भव होती ।१४६।

धनहीन, धनवान—यद्यपि हमारे कवि ने कहीं-कहीं धनवानों के दुःख का चित्रण भी किया है, किन्तु अधिकतर उनका ध्यान अभावग्रस्त जनसाधारण के दुःख पर ही रहा है । संतरेण दीन-दुःखी प्रजा के लिये काव्यरचना कर रहे हैं, इस विषय में उन्होंने कोई सन्देह नहीं रहने दिया । उन दिनों राजाओं और रईसों के आश्रित कवि धन कमाने के उद्देश्य से छन्द रचना कर रहे थे । संतरेण का साधारणतः संयत स्वर भी ऐसे कवियों का उल्लेख करते हुए आक्रोश से भर जाता है :

जो धन कारण छन्द वनावति
सो मन जान पसू नर नारे ।।१४।।
तिन की कथनी सभ है विरथी
वहि जावहिगे कवि प्रेति पथी रे ।।१२।।
नर जो तिन की कविता पढ़ि है
वहि जावहिगे सभि प्रेत पथी रे
हम संतहि रेण कहै मन को
तिन की कविता विरथी विरथी रे ।।१३।।

संतरेण की वाणी सर्वत्र शिष्टता और साधुता लिए हुए है । उन्होंने साधारणतः अप्रिय सत्य कहने से संकोच किया है । दर्शन उनकी वाणी का वैशिष्ट्य नहीं । अपवाद रूप से जहाँ कहीं वे धनिक वर्ग का उल्लेख करते हैं, उनके स्वर में अप्रत्याशित कटुता का समावेश हो जाता है । ऐसा प्रतीत होता है कि उनके व्यंग्य बाण धनिक-वर्ग के लिये ही सुरक्षित हैं :

धन सपति है तिमर चछु रोग सुदेखति है पर नाहि निहारे।
इक सेठ जि सेठ जि भाखति है इक आइ सलाम सलाम उचारे।
पर सेठ भयो वहरा न सुनै सभहू वहु लोक खरे सु पुकारे।
हम सतहि रेण कहै मन को धनवानन के मति जाइ द्वारे।१८।
धनवान करे अपमान सवै, मुख वोल कठोर करै धिरकारे।
तिन वाक सिलीमुख के सम है, मन के टुकरे टुकरे करि डारे।
तिन वाकन ते दुख होइ घना, उर भेद सुवाक सुपार पधारे।
हम सतहि रेण कहै मन को धनवाननि के मति जाइ द्वारे।१६।

चचल मन के भीतर चलने वाले द्वन्द्व का जो चित्र सतरेण द्वारा अकित हुआ है उसमे भी मन भाव और अभाव के बीच लटका हुआ प्रतीत होता है।[1] ग्रहण और त्याग के बीच लटकते हुए मन का चित्र भौतिक अभाव और विलास की प्रतिच्छाया ही प्रतीत होता है। गुरुवाणी की विशिष्टताओ का परिचय प्राप्त करते समय हम देख चुके हैं कि गुरु धर्म को एक वायवी वस्तु वना देने के पक्ष मे नही। वे उसे ऐसे समजित सत्य के रूप मे ग्रहण करते हैं जिसमे सामयिक अथवा शाश्वत किसी एक तत्त्व की भी अवहेलना न हो। सतरेण उसी परपरा का ग्रहण करते हुए प्रतीत होते हैं। गुरु नानक के समान वे भी अपने आपको पूर्णत निर्धन वर्ग के साथ समीकृत कर देते हैं,[2] वे भी धन सम्पत्ति को रोग और निर्धनता को शक्ति मानते हैं।[3] वे धर्म के दरवाजे धनिको के लिये वद तो नही कर देते हैं, किन्तु उनकी वाणी का समग्र प्रभाव यही है कि सुखी, सम्पन्न व्यक्ति (यदि धर्माधिकार से सर्वथा वचित नहीं तो) धर्म-कर्म के लिए प्राय अयोग्य होते हैं। अत वे स्थान-स्थान पर मानव को सचेत किये देते हैं कि सुख की चाह न करो, गरीबी तथा दुःख का स्वीकरण और सम्पत्ति तथा सुख का त्याग उनके मनप्रबोध का प्रमुख प्रतिपाद्य है।

---

१. (क) हम राम चहै, तुम काम चहो, हम चाहि वने, तुम धाम उदारे।७२।
(ख) मन पाप चहै, हम पुन्य चहै, मन राग चहै, हम चाह विरागे।
मन भोग विलास सुवास चहै, हम चाहिहैं हरि की बलि लागे।४६।

२ (क) नीचा अदरि नीच जाति नीची हू अति नीचु।
नानकु तिन के सगि साथि वडिआ सिउ किआ रीस।
—आदिग्रथ, पृ० १५

(ख) धनवाननि के मति जाइ द्वारे।१५, १६, १७, १८, १६।
—सतरेण, मन प्रबोध, पृ० ६–७

३. (क) माइआधारी अति अन्ना वोला। सबदु न सुणई वहु रोल घचोला।
—आदिग्रथ, पृ० ३१३

(ख) धन सपति है तिमर चछु रोग, सुदेखति है पर नाहि निहारे।१८।
—सतरेण, मन प्रबोध, पृ० १८

(ग) गरीबी गदा हमारी
—आदिग्रथ, पृ० ६२८

(घ) पुन दारिदर तिन औषध है।२०।
—सतरेण, मन प्रबोध, पृ० ७

नारी-भावना—घन के साथ-साथ वे स्त्रा के त्याग पर भी बल देते हैं। सतरेण स्वय निवृत्ति-परायण व्यक्ति थे और उनकी वाणी मे स्त्री निन्दा का स्वर अस्वाभाविक न होता। किन्तु नानक-मार्गी सत से स्त्री-निन्दा की आशा नही हो सकती। वस्तुत समकालीन सतवाणी और भक्तवाणी से गुरुवाणी का एक विपयगत वैशिष्ट्य यह भी रहा है कि वह स्त्री-निन्दा की निन्दा करती है। गुरुओ ने स्त्री को ज्ञानमार्ग अथवा भक्तिमार्ग की बाधा के रूप मे कभी भी ग्रहण नहीं किया।

सतरेण ने भी स्त्री-त्याग की बात भौतिक स्तर पर उठाई है ज्ञान अथवा भक्ति के आध्यात्मिक स्तर पर नही। इस दृष्टि से वे कबीरादि सतो से सर्वथा भिन्न है। नारी को लोक-वेद विहीन कह कर उसकी निन्दा करने की रुचि भी सतरेण को नही। सतरेण की नारी-भावना न आध्यात्मिक कारणो से परिचालित है न धार्मिक कारणो से।

सतरेण ने स्त्री की चर्चा नैतिक एव मनोवैज्ञानिक स्तर पर उठाई है। दूसरे शब्दो मे वे व्यभिचार और दौर्बल्य की निन्दा करते हैं नारी की नही। उन्होने एक से अधिक बार स्पष्ट शब्दो मे कहा है कि वे परनारी प्रसग मे ही निषेध की चर्चा कर सकते हैं।[1] एक स्थान पर तो वे स्पष्टत. परिवार और गृहिणी का पक्ष लेकर ही मनुष्य को परनारी गमन से रोकते है —

मदन रतन नर खोवति है पर नारन कै सतिसग सुवैसे।
घर नारन को न दए कवडी परनारन को सुदए नर पैसे।
बरजै तिन को बुधिवान घने, तिनकी न कही सु सुनै नर ऐसे।
हम सतहि रेण कहैं जग मैं, जिनका कुल वस चलै कहु कैसे ॥५६॥

नैतिक स्तर के अतिरिक्त वे मनोवैज्ञानिक स्तर पर भी (पर) स्त्री-त्याग का उपदेश देते हैं। नारी मानसिक एकाग्रता की शत्रु है, मानसिक उद्विग्नता का कारण है, इसीलिए वे मन को सचेत किए देते हैं —

चित मैं चितवे विस अग चढे जब अग कटै त बचै कहु कैसे।
मन के टुकरे टुकरे मुकरे, दरजी पट के मुकरे जिम तैसे ॥५१॥
निज रूप दिखाय हरै मन को चित के टुकरे टुकरे करि डारे।
हम सतहि रेण कहे अबला विन ही बरछी तलवार सुमारे ॥५२॥

सक्षेप मे, हमारे कवि अपने धार्मिक काव्य मे व्यावहारिक पक्ष का सदा ध्यान रखते हैं। व्यावहारिक स्तर पर धर्म की मूल समस्या मन चाचल्य की है। इस चाचल्य का सम्बन्ध आर्थिक अभाव से भी है और विलास से भी। मन चाचल्य की समस्या को लेकर हमारे कवि अपने पास-पडोस के अभावग्रस्त और व्यभिचारग्रस्त जीवन पर दृष्टिपात करते जाते हैं और ऐसा जीवन व्यतीत कर रहे जनवर्ग के प्रति अपनी सहानुभूति अभिव्यक्त करते जाते हैं। इसी मे उनकी लोकप्रियता का रहस्य है।

१. पर की अबला सम नागन के नख से सिख लौ विस माहि भरीने ।५०।
मदन रतन नर खोवति है पर नारन के सतिमग सुवैसे ।५३।
पर नारन को मति चाह करो हम सतहि रेण सु तोहि बखानो ।५७।

निवृत्ति—सुख, सपत्ति और स्त्री के त्याग का उपदेश देने वाले सतरेण का निवृत्ति मार्ग विशुद्ध आध्यात्मिक उपलब्धि का मार्ग नही। निवृत्ति प्रभावग्रस्त जनसमूह के लिए एक ऐसा समझौते का मार्ग भी प्रशस्त करती है जिससे उनका इहलौकिक, भौतिक, जीवन अपेक्षाकृत कम असह्य प्रतीत हो।

व्यावहारिक सिद्धान्त—सतरेण ने जहाँ अनभै प्रकाश ब्रह्म, जीव, माया का सूक्ष्म एव विस्तृत विवेचन किया है वहाँ ग्रपढ जनसाधारण के लिए कुछ सरल, व्यावहारिक सिद्धान्त भी स्थिर किये हैं।

ईश—मन प्रबोध मे उन्होने एकेश्वरवाद पर बल दिया है और बहुदेववाद का खण्डन। ईश्वर के दो रूपो स्रष्टा और द्रष्टा पर ही उनका विशेष बल रहा है।

स्रष्टा

बरि मद सुगध सु सीतल पौन करी तव खातर राम उदारे।
गिर अदर माणक राम करे, तव खातर चातर देख बिचारे।
पुनि झार पहार बनासपती फल फूल करे तव खातर सारे।
इतने उपकार करे हरि ने पर सतहि रेण सु तोहि बिसारे।८८।

द्रष्टा

दिन रैन पिखै, ससि भान पिखै ।।३२।।
मन काल पिखै, अवकाल पिखै ।।३३।।

जीव—जीव परमात्मा का रूप है, चाह (कामना) के कारण जीव अधोगति को प्राप्त होता है :—

इहु जीव परातम रूप हुतो ।११०।
परमातम ते उतपाति सुतेरी ।१२७।
परमातम ते उतिपन्न भयो
परमातम के सम है बलि तेरो।
परमातम रूप हुतो मन तूँ
पर चाह बनाइ लेयो तुहि चेरो ।१३२।

ब्रह्म और जीव का मिलन—जीव को ब्रह्मोन्मुख करने के लिए सतरेण जी ने 'कृतज्ञता' का प्रयोग प्रेरक भाव के रूप मे किया है। जीव को भगवान् का स्मरण करना चाहिए क्योकि उसने जीव के लिए ही सुख-साधनो से सम्पन्न सृष्टि की रचना की है।

जीव और ब्रह्म के मिलन का साधन है करनी तथा निवृत्ति। निवृत्ति इसी भौतिक जीवन से सम्बन्धित है, इसका परिचय हम गत पृष्ठो मे प्राप्त कर चुके हैं। सतरेण ने करनी का सम्बन्ध भी हमारे भौतिक, नैतिक जीवन से ही रखा है। सब से बडी करनी है नम्रता और पर-दुःख-कातरता।[१] उन्होंने साधना-मार्ग मे गुरु को

---

१. तन ते मन ते न दुखार किसी
परमातम रूप सबै नरनारी।
इसके सम और नहीं करनी
सु इही करनी हम तू उरधारी।१२३।

विशेष स्थान नहीं दिया। वे तीर्थसेवन[1] और अन्य बाह्य कर्मकाण्ड[2] को भी मन-निरोध में समर्थ नहीं समझते।

कहने का तात्पर्य यह है कि सरल, सादे सामाजिक जीवन पर ही उनका बल है। संतरेण आध्यात्मिकता का उपदेश नैतिकता के माध्यम से ही देते हैं।

धर्म के व्यावहारिक पक्ष का प्रतिपादन करने की प्रेरणा उन्हें आदि ग्रंथ से मिली है। संतरेण स्वयं आदिग्रंथ के पण्डित थे। उनकी वाणी मे अनेक पंक्तियां आदिग्रंथ की पंक्तियों से प्रभावित है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :—

संतरेण :— अर्थी तब चाहि करयो मन रे
तब तू अर्थी करि राम मुरारे।८।

आदिग्रंथ.— मागन मागनु नीका हरि जस गुर मागना। पृ० १०१८।

संतरेण :— रे मन तू गुन्यो जु चहै
कछु तो हरि के गुनि तू गुनि रे।१०।

आदिग्रन्थ :—, आराधना आराधन नीका
हरि हरि नाम आराधना। पृ० १०१८।

संतरेण :— धन संपति है तिमरं चछु रोग
सु देखति है पर नाहि निहारे।

आदिग्रन्थ :— माइ आधारो अति अंना बोला।
सबदुन सुणई बहु रोल घचोला। पृ० ३१३।

(धनवान अन्धा और बहरा होता है............)

संतरेण :— धनवानन कै अभिमान बडो
धनहीनन की बलि नाहि निहारे।१६।

आदिग्रन्थ :— निरधन की आदरू कोई न देइ
लाख जतन करै ओहु चिति न धरेई। पृ० ११५९।

संतरेण :— नभ को नर जो सर मारत है
उलट सर आइ लगै सु तिसो को।२४।

आदिग्रन्थ :— सरु संघे आगास कउ किउ पहुंचे बाण
अग ओहु अगंमु है वाहेदड़ जाण। पृ० १४८।

(आकाश की दिशा मे शर संधान करने वाले, यह बाण (आकाश तक) कैसे पहुँचेगा। वह तो अगम्य है। बाण पलट कर तुम्हें ही लगेगा।)

---

१. सुख मैं दुख मैं हरि को भज तू
मति रे भटिकै मथरा अर कासी।१२३।

२. तव खातर वेद पुराण सुने, तव खातर मैं चरतादिक धारे।
तव खातर संजम नेम सधे, तव खातर मैं फिरयो निरहारे।
तव खातर मैं सभि लाज तजी, तव खातर मानअमान सहारे।
इम संतहि रेण कहै मन कों, पर तू कपटी मन न समझा रे।।६४।।

रस—मन प्रबोध में उपदेश का प्राधान्य है किन्तु रस का निषेध नहीं। मन प्रबोध का रस है शान्त। संतरेण के रस-परिपाक का वैशिष्ट्य यह है कि उन्होने संसार की 'अनित्यता' को आलम्बन रूप में ग्रहण नहीं किया। उनका आलम्बन है संसार में व्याप्त दु.ख। उद्दीपन वही चिरपरिचित एकान्त वन एवं सत्संग है। उन दोनो मे उनका बल सत्संग पर अधिक है, एकान्त वन पर कम। अनुभावों में संसार के वैभव का प्रदर्शन, अध्यात्मचिन्तन एव संचारियों मे स्मृति, मति आदि प्रधान हैं।

अलंकार—संतरेण की रचना अत्यन्त साधारण बुद्धि वाले व्यक्तियों के लिए है। अत्यन्त सुपठ एवं काव्यानुशीलन में अभ्यस्त श्रोतामण्डली की तृप्ति के लिए उच्च कोटि के कला-नैपुण्य की आवश्यकता है। किन्तु सर्वथा अपठ और काव्यानुशीलन मे सर्वथा अनभ्यस्त श्रोतामण्डली की तृप्ति के लिए भी कला-नैपुण्य की आवश्यकता है। सायास अलकरण का विलोम कला-विहीनता नहीं, सहज सारल्य है। भूदन जैसे पिछड़े हुए भूभाग मे सहज सारल्य ही सफल हो सकता था। अपनी श्रोतामण्डली से पूर्णतः तथात्म सतरेण की रचना में सारल्य का होना स्वाभाविक है। कहीं-कहीं पर अत्यन्त सरल अलंकारो का प्रयोग भी हुआ है, मुख्यतः चिर-परिचित उपमाओं का। उदाहरण इस प्रकार हैं :—

१. गुरपग-नौका गहो रहो क्यों बैठ किनारे।२।
२. जिस से अस्व-मन बस ह्वं।२।
३. तिन वाक सिलीमुख के सम है।१६।
४. पट वीज समं पर औगुनि है।२१।
५. (परस्त्री) मन के टुकरे टुकरे सु करै
   दरजी पट के सुकरै जिम तैसे।५१।
६. ललना तन सुंदर रूप जिते
   सु तिते सम सैलनि जान उदारे
   जिम दूरहु सैल लगे रमणीक
   भरेविध कण्टकि पाहिन भारे।५३।
७. कि धुजा पटि है कि छटा छटि है
   कि वनी लट है मन तू बस मेरे।१०२।
८. अग गौन किधो घन छौन किधो
   मन पौन किधौ कि अहे मन पारा।१०१।

छन्द—मन प्रबोध मे दो छप्पय और दो दोहो के अतिरिक्त सर्वत्र सर्वया छन्द का प्रयोग हुआ है। छन्द की एकस्वरता विषय की एकस्वरता के कारण ही है।[1] मात्रा-परिगणन की दृष्टि से उनका छन्द-प्रबन्ध सर्वथा अदोष है। किन्तु वाक्य-प्रबन्ध में पर्याप्त कसावट न होने के कारण छन्द ढीला प्रतीत होता है। सफल छन्द-निर्वाह के

---

१. नानक विजय में छन्द-वैविध्य के दर्शन होते हैं। वहां विषय वस्तु में भी पर्याप्त वैविध्य है।

लिए दो प्रकार के नैपुण्य की अपेक्षा रहती है—पिंगल-विषयक और भाषा-विषयक। संतरेण मे प्रथम प्रकार के नैपुण्य के ही दर्शन होते हैं।

भाषा—संतरेण ने सर्वत्र सरल, खड़ी बोली मिश्रित व्रज का प्रयोग किया है। उन्होंने व्रज का वही रूप ग्रहण किया है जो पंजाबी, तत्रापि अशिक्षित, जन-साधारण के लिए सुबोध हो। केवल शब्दावली ही सरल नही, वाक्य-व्यवस्था में भी वक्रता का प्रवेश नही होने दिया। ऐसी सरल, अवक्र भाषा, संतरेण जी की विशिष्ट श्रोतामण्डली के ही अनुकूल नही, उनकी शांतरस-प्रधान काव्य-प्रकृति के भी अनुकूल है।

पचम अध्याय

सेवापंथी संतों की वाणी

प्राप्य सामग्री

सिख मत के अन्य सम्प्रदायो के समान सेवापथी सम्प्रदाय एव सेवापथी साहित्य की व्याख्या एव समीक्षा का काम बहुत दिनो तक उपेक्षित ही रहा। इस क्षेत्र मे प्राथमिक कार्य करने का श्रेय सर्दार प्रीतम पटियाला को है। सन् १९५२ मे उन्होने सेवापथी महात्मा भाई अड्डण द्वारा अनूदित ग्रथ 'पारस भाग' का सम्पादन किया। उसकी भूमिका मे विद्वान् सम्पादक ने सेवापथ, उसके सतो एव साहित्य का तथ्यपूर्ण परिचय दिया है। जिन पूर्व-ग्रथो मे सेवापथ सम्बन्धी सामग्री विकीर्ण थी, उनकी सूची भी उन्होंने दे दी है।

यह भूमिका अत्यत तथ्यपूर्ण होती हुई प्रोफेसर महोदय के अस्वास्थ्य के कारण अपूर्ण ही रह गई। सम्पूर्ण सेवापथी साहित्य का परीक्षण तो उनका उद्देश्य ही न था, स्वय सम्पादित ग्रथ की विषय-वस्तु एव शैली का विश्लेषण भी नही हो पाया। इस प्रकार सम्पूर्ण सेवा-पथी साहित्य का परीक्षण एव मूल्याकन अभी शेष है।

हमने इस अध्याय मे सेवा-पथी सम्प्रदाय का सक्षिप्त परिचय एव उनके धार्मिक काव्य का विवेचन करने का प्रयास किया है। प्रथम कार्य के लिये हम सर्दार जी महोदय की भूमिका से लाभान्वित हुए हैं। काव्य-विवेचन सम्बन्धी कार्य हिन्दी अथवा पजाबी भाषा मे सर्वप्रथम किया जा रहा है। इस कार्य के लिये हमने निम्नलिखित पुस्तको को आधार बनाया है —

१. आसावरियाँ, २. परचियाँ भाई सेवाराम जी।

सेवापथी महात्माओ की ये ही दो काव्य-कृतियाँ हमारी कालावधि मे पडती हैं। प्रथम पुस्तक सन् १९५५ वि० मे सर्वप्रथम सेवापथी सम्प्रदाय की सभा द्वारा प्रकाशित हुई। दूसरी पुस्तक अभी अप्रकाशित हैं। इसकी कई हस्तलिखित प्रतियाँ विभिन्न सेवापथी गुरुद्वारो अथवा डेरो मे मिलती है। हमने इस निबध के लिये महन्त नारायणसिह (अमृतसर) की सवत् १८३८ (सन् १७८१ ई०) मे लिपिबद्ध[1] प्रति से लाभ उठाया है। इस निबन्ध मे उद्धरण इसी प्रति से दिये गये हैं।

---

१. सम्मति दसि अरु आठ से तीस अष्ट बखान।
अस्सुनि वदि साधि दिन अष्टनि तिथि तिहि नाम।
अष्टिम तिथि जो नाम है चन्द्र वारि के बीच।
पोथी लिखी है चीति सो नारायण करि प्रीति। —परचियाँ पृ० ७२

हमारे यत्न के उपरान्त भी सेवापथी साहित्य का मूल्याकन अधूरा ही रहेगा। सेवापथी सतो की सर्वोत्कृष्ट साहित्यिक देन है उनकी गद्य-रचना। हमारे शोध-क्षेत्र से बाहर की वस्तु होने के कारण हमने इस रचना भण्डार का सम्यक् परीक्षण नही किया। इस विस्तृत भण्डार मे से केवल सक्षिप्त उद्धरण देकर सेवापथी साहित्य का पूर्ण-चित्र उपस्थित करने का प्रयास भर किया है।

सेवापथ

सेवापथ के आदि सचालक भाई कन्हैयाजी हैं। भाई कन्हैया जी गुरु तेगबहादुर और गुरु गोविन्दसिंह के प्रमुख सेवको मे से एक थे। ये वे ही भाई कन्हैया हैं जो आनन्दपुर के युद्ध मे जल पिलाने की सेवा पर नियुक्त थे और घायल सिक्ख सेनानियो के साथ घायल मुस्लिम सैनिको को भी पानी पिलाया करते थे।[1]

गुरु तेगबहादुर जी ने इनकी एकनिष्ठ सेवा से प्रसन्न होकर इन्हे कहा, "तुम्हें गुरु-गृह से प्रसाद मिला है, इसे बाँट कर खाओ और सर्व जीवो को सुख दो"।[2] इसी आज्ञा को पालने के लिये आपने पश्चिम पजाब के क्षेत्र को चुना। लाहौर और पिशावर के बीच 'कवाह' नामक नगर मे आपने धर्मशाला स्थापित की और नि स्वार्थ सेवा का यज्ञ आरम्भ किया। प्यासे व्यक्तियो को जल पिलाने एव मरुभूमि मे कुएँ खुदवाने मे आपकी विशेष रुचि थी।

गुरु गोविन्दसिंह जब सिक्खो को सिंह(खालसा)बना रहे थे तो उन्होंने निर्मला साधुओ को युद्ध कर्म की अपेक्षा अध्ययन एव अध्यापनकार्य की ओर ध्यान देने का आदेश दिया था। उन्होने भाई कन्हैया जी को भी युद्ध कर्म से रोका, उन्हे पहनी हुई कृपाण उतार देने की आज्ञा दी। ऐसा प्रतीत होता है कि गुरु जी सकटकालीन आवश्यकताओ के लिये सिक्खमत की स्वस्थ, शान्तिप्रिय परम्पराओ का त्याग उचित न समझते थे। भाई कन्हैया जी आनन्दपुर से पुन 'कवाह' पहुँचे और सेवा-कार्य मे व्यस्त हो गये। तदुपरान्त सेवापथी सिक्ख साधारणत तत्कालीन विप्लव एव विरोध आन्दोलन से अलग ही रहे। तत्कालीन शासक भी उनके प्रति अनुदार नहीं रहे। किसी सेवापथी साधु पर अत्याचार का कोई उदाहरण प्राप्त नही होता।

भाई कन्हैया की शिष्य परम्परा मे सेवाराम(अथवा सेवादास)एव अड्डण शाह के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये दोनो करनी वाले सेवाप्रिय सत थे। इन्ही दोनो महानुभावो के नाम पर भाई कन्हैया द्वारा सचालित सम्प्रदाय सेवापथ अथवा अड्डणशाही सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[3] इनका कार्यक्षेत्र पजाब ही था।

---

१. गुरु शब्द रत्नाकर, पृ० ८७६।

२. 'तुम को गुरु के घर ते कृपा मिल्या है, तां ते तुम भी वण्ड के अचवहु। अब जावो सरब जीवहु को सुख देवो'
सत लाल चद कृत श्री सत रत्नमाल, १६२४, पृ० ६।

३ गुरु शब्द रत्नाकर पृ० १५०, सत रत्नमाल पृ० ५०४।

इसी सम्प्रदाय के एक और साधु भाई बुड्ढ जी ने भक्ति और सेवा का संदेश सिन्ध प्रदेश मे प्रचारित किया। उस प्रदेश मे यह सम्प्रदाय 'जिज्ञासू' नाम से प्रसिद्ध हुआ।[1]

सिद्धान्त, भेष, रीति आदि—उदासी पथ एव निर्मल पथ के समान ही सेवा पथ भी सिक्ख धर्म का ही एक सम्प्रदाय है और इसकी कोई अलग सैद्धांतिक परम्परा नही है। सेवापथी आदिग्रन्थ को ही अपना धार्मिक ग्रन्थ मानते हैं। ईश, जीव, गुरु, सृष्टि सम्बन्धी इनकी मान्यतायें वे ही हैं जिनका निर्देश आदि ग्रथ मे है। दश गुरुओ के अतिरिक्त ये किसी अन्य व्यक्ति को अपना गुरु स्वीकार नहीं करते। सेवापथी साधु अथवा महन्त 'भाई' की उपाधि धारण करते हैं।

सिक्ख मत सम्बन्धी हर सप्रदाय आदिग्रथीय निर्देशो को स्वीकार करता हुआ भी कुछ बातो पर अन्य सप्रदायो की अपेक्षा अधिक बल देता है। सेवापथी सप्रदाय का बल सेवा, श्रम ('किरत'), अपरिग्रह, अहिंसा एव अविवाह पर है। केशधारी एव सहजधारी (केश-रहित) समान रूप से सेवक बनने के अधिकारी हैं। प्रो० प्रीतमसिंह ने सेवापथियों के अपरिग्रह एव अहिंसापरक व्यवहार के कारण उन्हें बौद्ध एव जैन मतावलबियो का उत्तराधिकारी कहा है।[2] सेवापथ की सेवा-प्रियता के कारण वे उसे सर्वेंट्स आव दी पीपल सोसायटी तथा रैड क्रास सोसाइटी के समानान्तर एक लोक सेवक सभा का अभिधान देते हैं। कुल मिला कर वे सिक्ख मतावलबियो का अति उदार एव सहिष्णु अग कहे जाने के अधिकारी हैं।

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक किसी प्रकार के भेष का विधान न करना चाहते थे। किन्तु कई बार तत्कालीन शासन कर्मचारी अन्य हिन्दुओ के समान इन से भी बेगार लेते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन शासक इन उदार-चित्त साधुओ के प्रति अनुदारता न दिखाना चाहते थे किन्तु भेषरहित सेवापथी साधु साधु ही दिखाई न देता था। अत अपने सेवको के आग्रह पर अड्डणशाह ने सेवापथी साधुओं को सफेद टोपी पहनने का आदेश दिया। सफेद टोपी अथवा सफेद पगडी, सफेद धोती अथवा सफेद काछ, यही इनका भेष है। महन्तोत्सव पर नये महन्त को झाड़ू और कटोरा भेंट किया जाता है। ये दोनो सेवा के उपयुक्त प्रतीक हैं।

साहित्य-रचना—सेवापथी महात्माओ द्वारा कुछ साहित्य की रचना भी हुई है।[3] इसमें मौलिक, अनूदित, मुक्तक, प्रबन्धात्मक, गद्य-पद्य एव मिश्रित सभी प्रकार की रचनाएँ पाई जाती हैं। यह काव्य-भण्डार इतना विशाल तो नही किन्तु सेवापथ के सम्पूर्ण स्वरूप का दिग्दर्शन कराने के लिए अपर्याप्त नही है। हमारी कालावधि मे पडने वाले ग्रन्थो के नाम इस प्रकार हैं—

---

१. इन पंक्तियों के लेखक को यह सामग्री सेवा पथी सन्त नारायण सिंह (अमृतसर) से प्राप्त हुई।

२. पारस भाग, पृष्ठ ३५ (भूमिका)।

३. पारस भाग, पृष्ठ ३७ (भूमिका)।

१. गद्य (मौलिक)
परचियाँ भाई कन्हैया
साखियाँ अड्डुण जी कियाँ, विवेक-सार

२ गद्य (अनूदित)
पारस भाग, योग वसिष्ठ

३. पद्य (प्रबन्ध)
परचियाँ भाई सेवाराम
परचियाँ भाई अड्डुण जी कियाँ

४. गद्य-पद्य मिश्रित
आसावरियाँ

गुरुवाणी की उदार परम्पराओ का अनुसरण करते हुए सेवापथी महात्माओं ने पजाबी और हिन्दी दोनो भाषाओ को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। इस निबन्ध के आरम्भ मे ही हम भाषा शैलियो के ध्रुवीकरण का उल्लेख कर चुके हैं। तत्कालीन धर्माश्रित राजनीतिक सघर्ष भाषा शैलियो मे प्रतिबिम्बित हो रहा था। तत्कालीन हिन्दू-सिक्ख लेखक साधारणत ब्रजभाषा को (कविता के लिये) एव खडी बोली को (गद्य के लिये) अपना रहे थे तथा मुसलमान लेखक पजाबी भाषा को। विषयवस्तु मे हिन्दू और मुसलमान लेखको का स्वर असमान है। जहाँ हिन्दू लेखको का प्रधान स्वर है पुनर्जागरण, वहाँ मुसलमान लेखकों का प्रधान स्वर है प्रेम। उदारचित्त सेवापथियो ने न केवल सेवाकार्य मे हिन्दू-मुस्लिम के अन्तर को अस्वीकार किया बल्कि काव्य-रचना मे भाषा शैलियो के चयन मे साम्प्रदायिक आग्रह से ऊपर उठने का यत्न किया। गद्य और पद्य दोनो प्रकार की रचनायें उन्होने पजाबी और हिन्दी भाषाओ मे की। सेवापथियो के उदार दृष्टिकोण का समर्थन इस बात से भी होता है कि उन्होने अनुवाद करने के लिये फारसी कृतियो को भी चुना और सस्कृत कृतियों को भी। जहाँ पारस भाग इमाम गज्जाली कृत कीमिया इ-सआदत का भाषानुवाद है वहाँ योगवसिष्ठ इसी नाम की प्रसिद्ध सस्कृत रचना का भाषा-रूप है। सेवापथी साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि सेवापथ एक असाम्प्रदायिक सम्प्रदाय है।

हमारी कालावधि मे पडने वाले अधिकाश सेवापथी ग्रथ गद्य मे हैं। वस्तुत सेवापथी महात्माओं की महत्त्वपूर्ण देन हिन्दी गद्य को ही है। सेवापथी मे कथा एव प्रवचन का बडा रिवाज है। ग्रन्थ रचना कथा-प्रवचन के उद्देश्य से ही की गई है। अत इस काल के लोकप्रिय ग्रन्थ या तो विशुद्ध गद्य मे हैं या पद्य मिश्रित गद्य मे। हिन्दी विद्वानो का ध्यान अठारहवी शताब्दी के उत्तरार्ध की इन (खडी बोली की ओर झुकती हुई) गद्य-रचनाओ की ओर नही गया। किन्तु गद्य-रचनाओं का विवेचन हमारे विषय की परिधि से बाहर है। तो भी इस उपेक्षित शोध-क्षेत्र ओर इगित भर करने के लिये इन बडी-बडी रचनाओ से अत्यत सक्षिप्त परिशिष्ट मे दिए गये हैं।

सहजराम

सेवापथी सम्प्रदाय के महत्त्वपूर्ण कवि महात्मा सहजराम हैं। आपका जन्म सवत् १७३० मे पश्चिम पजाब के नूरपुरथल नामक स्थान मे हुआ। इसी स्थान पर आपकी भेंट सेवापथी साधु भाई सेवाराम से हुई। इन्ही से दीक्षित होकर उन्होने सारा जीवन धर्म-प्रचार एव दीन-दुखियो की सेवा-शुश्रूषा मे व्यतीत किया। महात्मा सेवाराम जी की मृत्यु के उपरात आपका जीवन अपने गुरु भाई श्री अड्डण शाह जी की सगति म बीता। आपकी मृत्यु सवत् १८२५ (सन् १७६८ ई०) मे हुई।

रचनाएँ —आपके नाम से दो रचनाएँ प्रसिद्ध है आसावरियाँ एव परचियाँ। आसावरियाँ धर्मोपदेश-सम्बन्धी पुस्तक है। इसमे सच्चरित्र सम्बन्धी अनेक विषयो पर सक्षिप्त प्रवचन दिये गए हैं और बीच बीच मे उपदेश दृढ करने के लिये मुक्तक पदो, आदि की सहायता ली गई है। इन पदो मे अधिकाश पद अन्य सेवापथी अथवा अपर-पथी भक्त कवियो के है। सहजराम जी की अपनी आसावरियाँ एव पद भी इसमे समाविष्ट हैं।

सहजराम ने किसी स्थान पर भी ग्रथ के कर्तृत्व के विषय मे कोई वक्तव्य नही दिया। पदो आदि मे भी अपना नाम न देकर अपने दीक्षा-गुरु भाई सेवाराम का ही दिया। किन्तु सेवापथी गुरुद्वारो मे प्रचलित जनश्रुति के अनुसार यह ग्रथ सेवाराम द्वारा रचित न होकर भाई सहजराम द्वारा ही रचित माना जाना चाहिये। सेवापथी अड्डण शाही सभा के सत्प्रयास से प्रकाशित एव प्रमाणित प्रति मे भी सहजराम जी को ही इस ग्रन्थ का कर्ता माना गया है। सेवक अपनी रचनाएँ अपने गुरु के नाम समर्पित कर देते थे। स्वय प्रामाणिक गुरु परम्परा मे भी द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पचम एव नवम गुरु ने अपनी-अपनी वाणी मे नानक-नाम का ही प्रयोग किया है। सहजराम ने भी इस परम्परा का पालन करते हुए अपनी समस्त वाणी को अपने दीक्षा-गुरु सेवाराम (सेवादास) के नाम से मुद्राकित किया है। कई स्थानो पर उन्होने किसी नाम अथवा उपनाम का प्रयोग नही किया।

इस ग्रथ मे कुल ३१६ पृष्ठ हैं। इसका प्रमुख भाग तो गद्य मे ही है किन्तु पद्य भाग भी सर्वथा नगण्य नही। स्फुट आसावरियो, दोहो, कवित्तो, पदो आदि की सख्या ८०० से कदाचित् ही कम हो। प्रथम सौ पृष्ठो मे स्फुट छन्दो की सख्या २६० है। इन छन्दो मे सहजराम के (सेवादास के नाम से सम्बन्धित अथवा बे-नाम) अपने छन्द हैं और तुलसी, सूर, कबीर आदि हिन्दी भक्त कवियो के एव ननुआ आदि सोलह सेवापथी एव अपरपथी अप्रसिद्ध हिन्दी कवियो की रचनाएँ भी हैं। इन रचनाओ का प्रमुख भाग पजाबी भाषा मे है। किन्तु हिन्दी रचनाओ की सख्या एव सौ स्फुट छन्दो एव पदो से कम नही। कबीर, नानक, तुलसी, सूर आदि प्रसिद्ध कवियों के अतिरिक्त जिन कवियो की रचनाएँ इस ग्रथ मे पाई जाती हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—लालदास, ननुआ, काहा, सुन्दर, बनवारी, रामदयाल, वली, शाह शरफ, केशवदास, प्रहलाद, छज्जू, साहिब, भगवान, रामराय, गुनकारी एव दर्शन राम।

यह ग्रन्थ तत्कालीन पंजाब में हिन्दी रचनाओं की लोकप्रियता का ज्वलंत प्रमाण है। कबीर, तुलसी, सूर आदि के पदों के अनेक उद्धरण इस बात का अकाट्य प्रमाण हैं कि उनकी रचनाएँ पंजाब-निवासी भक्त-कवियों को प्रभावित कर रही थीं। तुलसी, सूर आदि को समर्पित पदों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन कवियों की रचनाएँ पंजाब-निवासी कवियों के लिये प्रेरणा-स्रोत का काम दे रही थीं। जिन सोलह अप्रसिद्ध कवियों के नाम ऊपर दिये गये हैं उनमें से अधिकांश सेवापंथी महात्मा ही रहे हों, तो आश्चर्य की बात नहीं।

दूसरी पुस्तक 'परचिया' में भाई सहजराम जी ने अपने दीक्षा-गुरु भाई सेवाराम जी की जीवन-कथा दोहा-चौपाइयों में कही है। इस पर अपेक्षाकृत विस्तृत टिप्पणी हम ऐतिहासिक प्रबन्धों के प्रसंग में दे रहे हैं।

सिद्धांत, साधना आदि—सहजराम गुरुवाणी की सैद्धान्तिक मान्यताओं के प्रति दृढ़ आस्था रखते हैं। उन्होंने अपनी ओर से कोई नवीन सिद्धान्त प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं समझी। वस्तुतः उनका ध्यान जितना साधना-पक्ष पर रहा है उतना सिद्धान्त-पक्ष पर नहीं। तो भी, उनकी वाणी में इधर-उधर ऐसे संकेत मिल ही जाते हैं जिनसे उनकी सैद्धान्तिक मान्यताओं के विषय में किसी प्रकार का कोई संदेह नहीं बना रहता।

सहजराम, एक साधारण सिक्ख के समान, निर्गुण ब्रह्म के ही उपासक हैं।[1] जीव और ब्रह्म की तात्विक एकता भी उन्हें पूर्ण रूप से स्वीकार्य है।[2] जीव और ब्रह्म के बीच विछोह का मूल कारण वे माया को ही मानते हैं।[3] माया के आवरण को हटा कर, आत्म-ज्ञान[4] द्वारा ब्रह्म रूप हो जाना ही जीव का ध्येय है। संक्षिप्ततः, उन्हें अद्वैतवादी कहना अनुपयुक्त न होगा।

सिक्ख सिद्धान्त में माया अथवा अहं के नाश के लिये गुरु कृपा को सर्वोपरि माना गया है। सेवापंथी सहजराम ने गुरु कृपा को अनावश्यक तो नहीं ठहराया, हाँ,

---

१. तेरी अलख बात क्या कोई जानै
जो जानै सो होइ रह्यो हैरानै
—आसावरियाँ, पृष्ठ २६६

२. अचरज कोऊ अचरजिया पेखै, हैराने को हैराने
भेख भरम सभ करते रहि गए, भगवान मिले भगवानै
—आसावरियाँ, पृष्ठ २६७

३. पसरी अनेक भांत सुन्दर दिखाय मात,
मन को बिगारि पाछै छार मुख देत है।
बाहज दिखाय मीत करती मोहि तोहि प्रीत,
रद मों अनात शुद्ध ज्ञान हर लेत है।
—आसावरियाँ, पृष्ठ ७५

४. हेर हेर आवत न हेरे हरि पावत
अपने हिराये बिन हेरे हेरि हेरो है।
—आसावरियाँ, पृष्ठ १६१

गुरु महत्त्व पर उस आग्रह से बल नही दिया जिसके दर्शन हमे गुरुवाणी मे होते हैं। गुरु महत्त्व के उत्तरोत्तर क्षीण हो जाने के क्या कारण थे, इसका विवेचन हम 'गुरु-वाणी' नामक अध्याय मे कर चुके हैं। उन कारणो के अतिरिक्त एक और कारण यह भी था कि सहजराम के समय मे कोई सिक्ख गुरु-व्यक्ति विद्यमान न था। गुरु महत्त्व पर विशेष बल न देते हुए भी सहजराम ने इसी के समकक्ष कृपा (अथवा 'प्रसादि') और प्रेम के सिद्धान्त को पूर्णत स्वीकार किया है। माया अथवा अह से मुक्ति कृपा द्वारा ही प्राप्त होती है और कृपा प्राप्त करने के लिये सर्वोपरि साधन है प्रेम अथवा भक्ति।[1]

सहजराम ने अपने पदों मे, मुख्यत प्रभु प्रेम का ही गायन किया है। उनकी वाणी का मुख्य प्रतिपाद्य इसे ही माना जाना चाहिये। हरि भक्ति के बिना वे जन्म को निष्फल[2] एव हरि भजन के बिना जीवन को मृतवत् समझते हैं।[3]

गुरुवाणी मे मधुर, सख्य, दास्य सभी प्रकार की भक्ति के उदाहरण मिलते हैं। सहजराम के पदो में मधुर एव सख्य भाव लगभग उपेक्षित हैं, वे सदा दास्य भाव से ही प्रेरित हैं। उन्होंने भगवान् को दाता रूप मे ग्रहण किया है, प्रेम अथवा भक्ति उस दाता के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करने का साधन है।[4] सक्षेप मे, उन्हें भक्ति की प्रेरणा कृतज्ञता नामक भाव से ही प्राप्त होती है। उनकी यह रुचि भी सिक्ख-सिद्धान्त के सर्वथा अनुकूल ही है। दाता एव दयालु भगवान् तथा पतित जीव का एक उदाहरण यहाँ अनुपयुक्त न होगा—

मोहि कपटी लपटी बिखै, लपटी दुतिया सधि ।
तुम नायक धायक अघन, दायक हरि दृग अघ ।।
अवकरमी भरमी महा, नरमी रिदे न रच ।
तुम सतार करतार प्रभ, तार पतति परपच ।।
मन दोखी पापी मनी, सती चलो न चाल ।
तू दाता जाता सभी, दाता पतित उधार ।।
पतितन तै पतिता पतित, तिह पतितन तै वृद्ध ।
धीरज धर रिद नाथ हरि, पावन पतित प्रसिद्ध ।।

निवृत्ति—सेवापथ, मूलतः एक निवृत्ति-मार्गी पथ है, अतः सेवापथी सहज-राम जी की रचना में निवृत्ति की प्रशसा और उपदेश स्वाभाविक ही है। आसावरिया के गद्य और पद्य दोनो भागो मे कनक-कामिनी के त्याग,[1] गरीबी के ग्रहण आदि[2] पर अत्यधिक बल दिया गया है। इनके अनुकरणीय साधु-चरित हैं शुकदेव जी जिन्होंने जन्म से पूर्व ही निवृत्ति ग्रहण कर ली थी :—

गरभ जोनी वाल जती, वेद व्यास पूत तपी।
जनमत वन सिधार्‌यौ अद्‌भुत लिव लाई है॥
इन्द्र ने यह खवर सुनी, तप अरम्यो सुकदेव मुनी
रभा को बुलाइ कह्यो सुकदेव छलो जाई है
मृदग और नगारे लिये, मुश्क वहु सींगार किये
वसत रुत अपच्छरा भेजी तासो खातर न आइ है।
मान को निवार, गये जनक द्वार
ऐसी भगत करो जैसी सुक जू कमाई है।[3]

सेवापथी साहित्य का अध्ययन करते समय स० प्रीतमसिंह की दृष्टि उनकी निवृत्ति मूलक-प्रवृत्ति पर भी गई है। उनके कथनानुसार यह प्रवृत्ति कई बार 'मानसिक रोग' का रूप धारण कर लेती है।[4] सन्त रत्नमारा से कुछ उद्धरण देकर उन्होने अपने मत का सम्यक् समर्थन भी किया है। सहजराम मे ऐसा असतुलन कही दृष्टिगत नही होता। उन्होंने कतिपय प्रसगो मे नारी को साधना-मार्ग की बाधा के रूप मे उपस्थित किया है किन्तु उसका प्रवल विरोध अथवा आत्यन्तिक निंदा उन्हें रुचिकर नही। उनकी 'आसावरियाँ' से पाठक के मन पर जो स्पष्ट प्रभाव पडता है वह इतना ही है कि सहजराम जी नारी-त्याग की अनुमति देते है, नारी-निन्दा की नही।

---

१. कनक कामनी हेत त्यागे, हरि का होया प्यासी
सतहु की सगत मिलि बैसे, जग स्यो रहै उदासी
विन भगवान आन जो दीसै, सभ स्यों होइ निरासी
अतीत दुर्लभ जग 'सेवा', भाया प्रभ अविनासी
—आसावरियाँ, पृ० ६४

२. ग्यान हूँ की रानी सभ जानन में अधिकानी
जगत वखानी मत उत्तम परवान की।
सभ गुण इसही में आइ के निवास करैं,
सभ था आदर सु देत है महान की।
जाके किये सिद्ध साध जेते भये अत आदि,
हारे वादी वाद वुध जीती मतवान की।
आज कुल तारिन निवारिन अनेक दुद,
कहिवे को गरीवी है सु वी वीहै जहान है।
—आसावरियाँ, पृष्ठ ६७

३. आसावरिया, पृ० २३३।
४. पारस भाग, पृ० ४२ (भूमिका)।

वस्तुतः नानक मार्ग का अनुसरण करने वाला कोई भी साधु नारी-सम्बन्धी प्रति-वादी दृष्टिकोण अपनाने मे सकोच करेगा।[१]

माया-त्याग पर बल देने वाला सेवा-पंथ संसार-त्याग की अनुमति कदाचित् नही देता। वस्तुतः सेवापंथी साधु की परम अभिलाषा सांसारिक बधन से ऊपर उठ कर संसार से पलायन करने की नही, संसार की सेवा करने की है। अतः वे संन्यासी साधुओं का विरोध न करते हुए भी सन्यास को गृहस्थ से उत्कृष्ट नहीं मानते। गोपाल के भक्त के लिए गृह और बन की दुविधा नही :

> वन वासी वन महि वसहि, ग्रेही वसहि गृह माहि।
> जो जन भगत गोपाल के, तिन के इह भ्रम नाहि॥
> जो गृह वसहि तौ अत भला, जो वन जाहि तौ जाहि।
> हौमे ममता छाड के, जहां कहां सुख पाहि॥

पुन:

> मनुआ जब जीत्यो बब सगल जग जीत्यो जान,
> द्वन्द भाव मिट्यो तांते भयो वेपरवाहु है।
> जैसो गृह तैसो वन, तू सदा ही अनन्द घन,
> इह भी वाहु वाहु अर ओह भी वाहु वाहु है।[२]

रस, छन्द, भाषा आदि :—गुरु तेग़ बहादुर से प्रेरणा ग्रहण करने वाले सेवा-पंथी महात्माओं की वाणी गुरु तेगबहादुर की वाणी के समान ही संयत और संतुलित है। महात्मा सहजराम की वाणी का वैशिष्ट्य भी उसके संयम मे ही है। उनकी वाणी में किसी प्रकार के अतिशय अथवा अतिरेक का प्रयोग नहीं हुआ।

भावातिरेक ही नही, सहजराम की वाणी मे भाव-प्रसार के भी दर्शन नहीं होते। राग-द्वेष के प्रति उदासीन, इस महात्मा की वाणी मे शृंगार, करुण, रौद्र, वीर आदि रसों के लिये स्थान नही। सर्वत्र कृतज्ञता की भावना से प्रेरित उनकी भक्ति केवल शान्त रस के मर्यादित माध्यम से ही अभिव्यक्त हो पाई है। कहीं-कहीं वे नश्वरता की भावना से भी प्रेरित हैं, किन्तु उनका मूल भाव कृतज्ञता ही है। उनके अनेक पदों मे से यहाँ एक उदाहरण पर्याप्त होगा :

> खाइवे को देत तन लाइवे को देत नित्त
> ताहू की न चिंता आन चिंता करें घर की।
> मानस को देह दियो जानन प्रवीन कियो
> आसो को निवास छाड आसा करे नर की।
> सुख को निधान, तन, मै न ताहू पछान्यो
> मन मै आन माने लोकन के डर की।

---

१. इस तथ्य की सम्यक् विवेचना इसी निबन्ध के द्वितीय खण्ड के उपाख्यान नामक अध्याय में की गई है।

२. आसावरियां पृ० २६९।

हौं न चितारौ निस दिन चितारे मोहि
हमारी कमजाती पै सजाती देखो हरि की ॥[1]

छन्द और भाषा की दृष्टि से सहजराम हिन्दू और मुसलमान दोनो काव्य-परपराओ के प्रति सहिष्णु दिखाई देते है। उन्होने हिन्दी, पजाबी और मिश्रित तीनो प्रकार की भाषा शैलियो म रचना की है। स्मरण रह सहजराम के समकालीन (अठारहवी शताब्दी का अन्त) हिन्दू सिक्ख कवि अधिकतर हिन्दी को ही अपनी अभिव्यक्ति का साधन बना रह थे। सेवापथी सहजराम ने पजाबी म भी रचना की, इससे प्रमाणित होता है कि सेवापथी साधुओ की ओर मुस्लिम शासन अपेक्षाकृत सहिष्णु था और उनकी बात सुनने को तैयार था।

सहजराम जी की हिन्दी कविता मे भी मुस्लिम प्रभाव विद्यमान हैं। उनके द्वारा फारसी शब्दावली[2] और फारसी बहरो[3] का प्रयोग इस प्रभाव को प्रकट करता है। पजाबी शब्दावली और छन्दो का प्रयोग भी उन्होने किया है। साधारणत उन्होने 'आसावरियाँ' नामक मुक्तक पजाबी भाषा में लिखे हैं और उनके लिये पजाबी छन्द, 'दवैया' का प्रयोग किया है। कही-कही उन्होने हिन्दी भाषा (थोडी मिश्रित) मे आसावरियाँ लिखी हैं। इन आसावरियो म छन्द तो पजाबी है ही, शब्दावली मे भी पजाबी का क्षीण पुट विद्यमान है। ऐसी अनेक असावरियो में से यहाँ एक दो उदाहरण दिये जाते हैं —

(क) एक न भूला दोइ न भूले, भूला सगल ससारा।
कोइ न अपना बेडा बाध्या, भउजल सुण कर मारा।
बिन सतसग बिना हरि सिमरन, पावत दूख अपारा।
सेवा दास हरि भगति न करदे, महा मूढ मन कारा।[4]

(ख) भली गरीबी सता वाली, सुख देवै ओह मन को।
जगत जजाल जगत को मीठे, राख लिये प्रभ जन को।
मुस्टी चने खाइ हरि भजिये, सतसग वसाइये तन को।
निरीकार सत सगत करिये, नगर होइ भावै बन को।[5]

उपसहार —सेवापन्थी साधु तत्कालीन विद्रोह-आन्दोलन से तटस्थ निःस्वार्थ सेवा मे सलग्न रहे। इन्होने पजाबी और हिन्दी दोनो भाषाओ में रचना की तथा फारसी और सस्कृत ग्रथो का अनुवाद किया। इनकी रचना मुस्लिम और हिन्दू रचना शैलियो के बीच एक समझौता-सा प्रस्तुत करती है।

---

१ आसावरियाँ, पृ० ८५।
२ रहु खुशहाल दिलगीरी ना कर शोक रिंदे क्या धरना है!
हाल मस्त जजाल चि कुनद माल मुलक क्या करना है।
—आसावरिया पृ० ३०३।
३ सहजराम जी रचित रेखते फारसी गजल की बहर में ही लिखे गये हैं।
४. आसावरियाँ, पृ० ११४।
५ आसावरियाँ, पृ० ११८।

षष्ठ अध्याय

निर्मल वाणी

प्राप्य सामग्री—निर्मल पथ एव उसके साहित्य के सम्बन्ध मे विशुद्ध शोध एव विवेचन का कार्य अब तक नही हो पाया। सिक्ख इतिहासो मे निर्मल पथ सम्बन्धी सक्षिप्त सकेत अवश्य मिलते हैं। किन्तु वे निर्मल पथ के विकास, उसकी मान्यताओ एव रीति-नीति के सम्बन्ध मे विश्वसनीय परिचय दे सकने मे असमर्थ हैं। यह काम इतिहास के अनुसन्धाताओ का है।

इस सम्बन्ध मे निर्मल पथियों द्वारा लिखित तीन पुस्तकें मिलती हैं :

१. ज्ञानी ज्ञानसिंह लिखित 'निर्मल पथ प्रदीपिका'।

२. महन्त गणेशसिंह लिखित 'निर्मल भूषण'।

३. महन्त दयालसिंह लिखित 'निर्मल पथदर्पण'।

इन पुस्तको मे निर्मल पथ की उत्पत्ति विषयक कुछ तथ्य दिये गये हैं किन्तु इनका ध्येय निर्मल पथ की उत्पत्ति और विकास का विषय मूल विवरण देना नहीं है। अधिकतर वे साम्प्रदायिक पूर्वग्रह से परिचालित होकर एक ही मत की पुनरावृत्ति करते रहे हैं। हमने प्रस्तुत निबन्ध मे निर्मल-पथ पर परिचयात्मक टिप्पणी तैयार करते समय इन ग्रन्थो से लाभ उठाया है। इनसे सामग्री ग्रहण करते समय इनके योग्य लेखको के मताग्रह से बचने का प्रयास किया है। निर्मल साधु दयालसिंह के सुयोग्य शिष्य राजेन्द्रसिंह शास्त्री, एम० ए० से व्यक्तिगत सम्पर्क द्वारा निर्मल रीति-नीति का प्रामाणिक परिचय प्राप्त करने का भी यत्न किया गया है।

हमारी कालावधि मे पडने वाले निर्मल कवि गुलाबसिंह के जीवन-चरित सम्बन्धी सकेत उनकी रचनाओ मे, एव गुरु शब्द रत्नाकर मे मिलते हैं। मुद्रित भावरसामृत के विद्वान् सपादक, ज्ञानी विशनसिंह ने भी उनका जीवन-चरित पुस्तकारम्भ मे दिया है।

कवि गुलाबसिंह की रचनाओ का पठन-पाठन निर्मल साधुओ तक ही सीमित रहा है। पंजाबी जनसाधारण एव विद्वानो ने गुलाबसिंह रचित ग्रथो के अध्ययन मे विशेष रुचि नही दिखाई। केवल डा० मोहनसिंह ने अग्रेजी भाषा मे लिखित अपनी एक पुस्तक मे उनकी रचनाओ का उल्लेख किया है। डा० महोदय का गुलाबसिंह विषयक अध्ययन भी चलता-सा प्रतीत होता है। उन्होंने उनकी अनूदित पुस्तकों को भी मौलिक मान लिया है। सक्षेप मे, गुलाबसिंह की रचनाओ का व्यवस्थित अध्ययन अब तक नहीं हो पाया है।

निर्मल पंथ

'निर्मल' फारसी शब्द 'खालिस' का संस्कृत पर्याय है। इस दृष्टि से निर्मल पंथ खालसा पंथ से भिन्न नहीं है। सभी निर्मल-पंथी लेखक अपने आपको खालसा पंथ का अभिन्न अंग मानते रहे हैं। इस सम्बन्ध में प्राचीनतम उपलब्ध साक्ष्य श्री गुलाबसिंह निर्मला का है। अपने ग्रंथ मोख-पंथ में वे इस प्रकार लिखते हैं :

स्री गोविंद जु सिंह है पूरण हरि अवतार।
रच्यो पंथ भव मैं प्रगट दो विधि को विस्तार।
एकन के कर खडग दै भुज बल बहु विस्तार।
पालन भूमी को कर्यो दुष्टन मूल उखार।
औरन की पिख विमल मति दीने परम विवेक।
निरमल भाखे जगत तिन हेरे ब्रह्म सु एक।[1]

तदुपरांत ज्ञानी ज्ञानसिंह (निर्मल पंथ प्रदीपिका), महन्त गणेशासिंह (निर्मल भूषण) और महन्त दयाल सिंह (निर्मल पथ दर्शन), सभी इसी मत का समर्थन करते हैं।

जिस प्रकार सिक्ख विद्वान् गुरु गोविन्दसिंह द्वारा प्रवर्तित खालसा पंथ को सिक्खमत से अभिन्न मानते हैं, इसी प्रकार निर्मला-पंथी विद्वान् भी। वस्तुतः वे गुरुवाणी, गुरदास वाणी तथा अन्य सिक्ख प्रबन्धों से अनेक उदाहरण देकर सिद्ध करने का यत्न करते रहे हैं कि खालसा पथ के सृजन से पूर्व नानक-पंथी सिक्खमत का नाम निर्मल पंथ ही था। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :

आदि ग्रन्थ—

निरमल भेख अपार तास बिन अवर न कोई।[2]

भाई गुरुदास

मार्‌या सिक्का जगत विच नानक निर्मल पंथ चलाया।*

भाई भागीरथी

बाबा वेई न्हाइ कै सचु खंण्ड विच पहुता जाई
निर्मल पंथ चलाइयो इक विवेक-मग दृढ़ाई।*

गोष्ट मक्का

कलियुग नानक निर्मला पंथ चलायो आए।*

गुरु विलास छेवीं (छठी) पातशाही

गुर अर्जुन जहि बैठ कर, बांधी बीड सुग्रंथ
जहि प्रसाद सभ जगत में, चलि है निर्मल पंथ।*

---

१. गुलाबसिंह रचित मोख पंथ, संवत् १६६८, पृ० २२३
२. निर्मल पंथ दर्शन, पृ० १०६-११० से उद्धृत
* निर्मल पंथ दर्शन, पृ० १०६-११० से उद्धृत

सतोखसिह

योग भोग सो दोनो रीता, दई पथ निर्मल को चीता ।[१]

उपर्युक्त उद्धरणो मे निर्मल शब्द सामान्य अर्थों मे प्रयुक्त है या विशिष्ट अर्थों मे, यहना कठिन है। निर्मल के साथ 'भेख' और 'पथ' शब्दो का प्रयोग भ्रम उत्पन्न करता है कि सिक्खमत का नाम निर्मल पथ ही रहा होगा। जब तक इस मत के समर्थन मे कोई स्वतन्त्र ऐतिहासिक प्रमाण न मिले, इसे स्वीकार करना कठिन है। तो भी, इससे इतना तो सिद्ध है कि निर्मल-पथी विद्वान् अपने पथ का आरम्भ गुरु नानक से मानते हैं, तथा अन्य खालसा मतावलम्बियो के समान वे दशों गुरुओ मे विश्वास रखते हैं।

निर्मल साधुसमाज खालसापथ का विद्वान् एव अध्यापक वर्ग है। गुरु गोविन्दसिह से पहले सिक्खो मे देश भाषा के लिये जितना प्रेम था उतना सस्कृत के लिये नही। इस सम्बन्ध मे गुरु हरिगोविन्द के समकालीन मुस्लिम इतिहासवेत्ता मुसहिन फानी, का कथन इस प्रकार है :

"गुरु नानक जी की वाणी अर्थात उनके पद पूर्णत ईश-स्तुति मे और उपदेश की शैली मे हैं। उनकी अधिकाश वाणी ईश-महिमा और उसकी पवित्रता के सम्बन्ध मे है। वह सारी (वाणी) पजाब के जाटो की भाषा मे है। पजाबी कोष के अनुसार जाट कृषक और ग्रामीण होते हैं। उनके शिष्य सस्कृत भाषा से कोई सम्बन्ध नहीं रखते और उनके (शिष्यो) का सस्कृत भाषा से, जो हिन्दुओ के अनुसार देव-भाषा है, कोई सम्बन्ध नही है।[२]"

गुरु गोविन्दसिह ने अपने विद्रोह आन्दोलन के सास्कृतिक आधार को परिपुष्ट करने के लिये सस्कृत के महत्त्व को पहचाना। इस आधार के बिना कोई भी आन्दोलन देश-व्यापी रूप धारण न कर सकता था। सस्कृत-प्रेम को वे सामयिक आवश्यकता के रूप मे नही बल्कि स्थायी आधार के रूप मे ग्रहण करना चाहते थे। इसी अभिप्राय से उन्होंने अपने कुछ सिक्खो को सस्कृत ग्रन्थों की शिक्षा देनी चाही। इसके लिये एक विद्वान् पडित से विनय की गई किन्तु उन्होने शूद्र-वर्ग को देव-भाषा पढाने से इन्कार कर दिया। तदुपरान्त गुरु जी ने पाँच चुने हुए सिक्खो को सस्कृत भाषा

१. निर्मल पथ दर्शन, पृष्ठ ११० से उद्धृत

२. وبانی نانک یعنی اشعار اُو سراسر مناجات و انداز و موعظت ست و بیشتر سخنش در بزرگی باری و تقدیسِ اُوست و آں ہمہ بزبانِ جٹانِ پنجاب ست و جٹ بلغتِ پنجاب دہقانے درستائے باشند و مریدان او را بزبان سنسکرت سرے نباشد۔

दबिस्तानि मजाहिब, १३११ हिजरी, पृ० २२४

و ایشان را بزبانِ سنسکرت کہ ہنود بر زبان فرشتگان ست سرے نباشد

दबिस्तानि मजाहिब, १३११ हिजरी, पृ० २२३

सीखने के लिए काशी भेजा।[1] यही पांच सिक्ख काशी निवासी पंडित सदानंद से संस्कृत विद्या प्राप्त करके खालसा धर्म के प्रथम प्रामाणिक प्रचारक,[2] एवं अध्यापक बने। इन्हीं के द्वारा दीक्षित शिष्य-वर्ग से निर्मल महात्माओं की पद्धति चली।

सिद्धान्त, मान्यतायें आदि

निर्मल पंथ, खालसा पंथ का अभिन्न अंग होने के कारण किन्ही भिन्न सिद्धान्तों अथवा मान्यताओं मे विश्वास नही रखता, किन्तु निर्मल पंथ को कतिपय विशिष्ट कर्त्तव्य सौंपे गये थे, अतः अपनी रीति-नीति मे ये साधारण सिक्ख जनता से कुछ विशिष्ट ही प्रतीत होते हैं।

निर्मल महात्माओं को सौंपे गये कर्त्तव्य एवं उसके निर्वाह के सम्बन्ध में निर्मल महात्मा गणेशसिंह इस प्रकार लिखते हैं :—

"हमारा (गुरु गोविन्दसिंह का) अन्तिम आदेश यह है कि संस्कृत विद्या पढ़ कर शीघ्र ही प्रचार में प्रवृत्त हो जाओ क्योंकि पंथ का गुरुकुल भी तुम्हें ही होना है।"[3]

"पण्डित सदानंद से संस्कृत विद्या पढ़ी, योग्य पंडित हुए अरु श्री गुरु जी के पास लौट कर दरबार में महाभारत, शुक्रनीति तथा उपनिषदों की कथा करते रहे। और भविष्य-पुराण, मारकण्डेय पुराण, देवी भागवत पुराण, शुक्रनीति, चाणक्य-नीति अरु महाभारत आदि का भाषानुवाद भी किया।"[4]

संस्कृत विद्या का अध्ययन एवं संस्कृत धर्मग्रन्थों का अनुवाद एक विशिष्ट दिशान्तरण के द्योतक हैं। संस्कृत के अध्यापकों के एक स्थायी वर्ग की स्थापना किसी सामयिक आग्रह के पृष्ठ-पोषण की ओर संकेत नहीं करती। ऐसा प्रतीत होता है कि गुरु गोविन्दसिंह एक स्थायी गुरुकुल की स्थापना का बीजारोपण करके संस्कृत-प्रेम को खालसा रीति-नीति का स्थायी अंग बना देना चाहते थे। निर्मल संत इस विशिष्टता का निर्वाह वर्तमान काल तक करते चले आ रहे हैं।

संस्कृत ग्रन्थों के अध्ययन के कारण ही निर्मल संतों के चिन्तन एवं उपासना पद्धति में कुछ ऐसी विशिष्टता आ गई है कि वे सहज ही अन्य सिक्ख जनता से अलग पहचाने जा सकते हैं। निम्नलिखित विशिष्टतायें विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं :

---

१. इन पांच सिक्खों के नाम इस प्रकार थे: कर्मसिंह, गंडा सिंह, वीरसिंह, रामसिंह, सैणा सिंह।

ज्ञानी ज्ञानसिंह और महन्त गणेशासिंह ने यही पांच नाम गिनवाये हैं, महन्त दयालसिंह ने एक और नाम 'शोभासिंह' भी गिनवाया

२. The nucleus of those baptized missionaries was formed from those who had received a Sanskrit education at Benaras and who by living among Pandits had acquired the name Nirmala which is a Sanskrit Synonym for Khalas, both meaning the 'purified one'—*Teja Singh, Sikhism, Its Ideals and Institutions*, P. 68.

३. निर्मल भूषण, पृ० ४३

४. निर्मल भूषण, पृ० ४७

१. ये गुरुवाणी की व्याख्या वेदान्तानुसार करते हैं।[१]

२. रामकृष्ण आदि अवतारों को पूज्य मानते हैं।[२]

३. प्रात और सध्या समय धूप, दीप आदि से गुरु जी की पूजा और आरती करते हैं। गुरुद्वारे, देहुरे (देवालय) एव पूज्य सतो महात्माओ की समाधि पर धूप, दीप करना और फूल चढ़ाना उचित समझते हैं।[३]

४. गुरु ग्रन्थ का महत्त्व सर्वोपरि मानते हुए भी पुराण आदि शास्त्रो का नियमित पारायण करते हैं।[४]

कुछ और रीति-व्यवहार जो इन्हें साधारण सिक्ख श्रद्धालुओ से पृथक् करते हैं, इस प्रकार हैं

१. निर्मला साधुओ के लिये विवाह का निषेध है। ये भगवे अथवा श्वेत वस्त्र धारण करते हैं।

२. पूज्य महात्माओ का चरणामृत ग्रहण करना अथवा योग्य व्यक्ति के चरणों में प्रणाम करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

सक्षेप मे, निर्मल साधु अन्य खालसा मतावलबियो के समान अमृत पान भी करते हैं और सनातनधर्म की वेद-पुराण-सम्मत रीति-नीति का त्याग भी नहीं करते।[५] सत्रहवी और अठारहवी शताब्दी की ऐतिहासिक परिस्थितियो ने जिस समन्वयात्मक प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया था उसका निर्वाह वर्तमान काल मे भी निर्मल साधुओ द्वारा होता चला आ रहा है।

नामधारी, सिहसभा और अकाली आन्दोलनो के कारण सिक्ख मत उत्तरोत्तर अपनी विशिष्ट इयत्ता पर बल देता आया है। इसीलिए सस्कृत-साहित्य के महत्त्व के प्रति सिक्ख आज विशेष जागरूक नही। परिणामस्वरूप वेदान्त, वैष्णव भक्ति और सिक्ख भक्ति के समन्वय के प्रतिनिधि निर्मला साधुओ की वाणी उत्तरोत्तर कम लोकप्रिय होती जा रही है। प्रारम्भ मे तो इनका विरोध बलपूर्वक भी हुआ।[६]

"नामधारी सिक्खो ने देखा कि "निर्मल वेदान्त अध्ययन करते, वेदान्त का मनन करते और वेदान्त के ग्रहण पर बहुत बल देते।"[७] निर्मल साधुओ से वार्तालाप के

---

१. The sect mostly turned out scholars of Sanskrit who like Sankaracharya rooted themselves in Vedanta, but unlike him followed in Sikh Bhakti
—*Philosophy of Sikhism* P. 4

२. निर्मल पथ दर्शन, पृ० २५१

३ निर्मल पथ दर्शन, पृ० २६६

४. निर्मल पथ दर्शन, पृ० २५०

५. But However we may credit the Guru for revolting against the Vaisanava tradition there is much of Vaisanavism which continues in Sikhism. The Nirmalas and the Namdharis are Vaisanavites in many practices
—*Philosophy of Sikhism*, P 9

६. नामधारी इतिहास, पृ० १५७-५२

७ नामधारी इतिहास, पृ० १५१

उपरान्त नामधारी गुरु रामसिंह ने कहा : "निर्मले पापी हैं जो जीवों को गुरुवाणी की ओर से हटा कर वेद की ओर लगाते हैं।"[१] निर्मलो के साथ नामधारी सिक्खों की लठ भी चली।[२] यह घटना संवत् १६१८ की है।

आज निर्मलों के प्रति ऐसे उग्र विरोध का प्रदर्शन तो नही होता किन्तु सिंह-सभा और अकाली आन्दोलन के उपरान्त साधारण सिक्ख जनता उनकी ओर से उदासीन है। सिक्ख विद्वानो द्वारा उनकी गुरुवाणी-व्याख्या प्रामाणिक नहीं मानी जाती।[3] फिर भी वे अपनी रीति-नीति को त्याग नहीं सके, और न वे सिक्खों के गुरुकुल होने का दावा ही छोड सके हैं।

साहित्य—निर्मल-पथ का आरम्भ अध्ययन-अध्यापन और ग्रथ-सृजन के अभिप्राय से हुआ था। अत निर्मल साधुओ द्वारा स्थान-स्थान पर डेरे अथवा मठ स्थापित हुए। ये मठ सस्कृत विद्या के अध्ययन एव अध्यापन के केन्द्र थे। इन्ही मठों के वातावरण से प्रेरणा पाकर कुछ ग्रथो का सृजन हुआ। इन ग्रन्थो मे मौलिक (हिन्दी एव सस्कृत) तथा अनूदित सभी प्रकार के ग्रन्थों की रचना हुई। सस्कृत ग्रथों मे गुरु कौमुदी (ले० पडित कौरसिंह), गुरु सिद्धान्त पारिजात (पडित हरा सिंह), टीका जपुजी सस्कृत (पडित निहाल सिंह) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी पुस्तको मे भी एक बडी सख्या सस्कृत ग्रथों के भाषानुवाद की है। निर्मल साधुओं का ग्रथ-सृजन कार्य उनके अध्यापन कार्य का सहयोगी है। यह अध्यापन कार्य औपचारिक भी था और अनौपचारिक भी। औपचारिक अध्यापन सस्कृत ग्रथो एव गुरुवाणी का होता था। अनौपचारिक अध्यापन का सम्बन्ध कथा-वार्ता एव धर्म-प्रचार से था। अत यह स्वाभाविक ही है कि निर्मल साधुओ द्वारा ऐसे ग्रथो की रचना हो जो या तो सस्कृत ग्रन्थों का भाषानुवाद प्रस्तुत करें अथवा 'गुरुवाणी' की शास्त्र-सम्मत टीका उपस्थित करें। एक निर्मल पडित ने गुरुवाणी (जपुजी) की सस्कृत भाषा मे भी टीका की है।

इस अध्यापक-वर्ग द्वारा कुछ मौलिक ग्रथो की रचना भी हुई। मौलिक लेखको मे गुलाबसिंह और ज्ञानी ज्ञानसिंह के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पडित गुलाब-सिंह का भावरसामृत और ज्ञानी ज्ञानसिंह का पथप्रकाश उच्च कोटि के काव्य ग्रथ हैं। निर्मल महन्त दयालसिंह ने भाई सुक्खासिंह और भाई सतोखसिंह को भी निर्मल सतो में गिना है। इन दोनो की रचनायें गुरु-विलास और गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रथ प्रथम कोटि के प्रबन्ध काव्य हैं। निश्चित प्रमाण के अभाव मे हम इन्हे निर्मलपथी साधुओं मे स्थान नही दे पाये। तो भी निर्मलपथी साधुओ की काव्य-रचना नगण्य नही।

---

१. नामधारी इतिहास, पृ० १५२

२. नामधारी इतिहास, पृ० १५२

३. Immerged in classical learning they could not produce unadulterately Sikhism in thought. —*Philosophy of* ‘

हिन्दी प्रेम—निर्मल सतों का हिन्दी-प्रेम तो विख्यात है। कुछ एक सस्कृत ग्रंथो को छोड कर इनकी अधिकाश रचनायें हिन्दी (सरल ब्रज) मे हैं। गुलाबसिंह (अठारहवी शती) से लेकर ज्ञानी ज्ञानसिंह (बीसवी शती) तक इन्होंने अपनी काव्य कृतियो का माध्यम हिन्दी को ही बनाये रखा। उन्नीसवी शती के अन्तिम और बीसवी शती के प्रथम चरण मे जबकि सिहसभा के प्रचार से सिक्ख लेखक और जनसाधारण पजाबी की ओर प्रवृत्त हो रहे थे, निर्मल सत हिन्दी के प्रति निष्ठावान रहे। निर्मल सतो की एक भी उल्लेखनीय कृति पजाबी भाषा मे उपलब्ध नहीं होती।

निर्मल साहित्य से यहाँ दो उद्धरण (एक पद्य, एक गद्य) दिये जा रहे हैं जिससे अनुमान लगाया जा सकेगा कि इस सक्राति युग मे निर्मल सतो ने हिन्दी से अपना सम्बन्ध टूटने नही दिया। प्रथम उद्धरण ज्ञानी ज्ञानसिंह लिखित पथ प्रकाश से है। पथ प्रकाश गुरुमुखी लिपि मे हिन्दी काव्य का अन्तिम उपलब्ध प्रबन्ध है :

गुरु गोविंदसिंह का विवाहोत्सव

> हाव विभाव अदाव रही कर चाव सुभाव मजाख अलावें।
> नैन मचाइ बनाइ सु अचल चचल चातुरता दिखरावें।
> इक तैं इक अग्गर होइ कहैं सजनी कगना हमहू खिलवावें।
> इस भाति अनेक सुबात बनाइ छुहैं गुर गात सुसाति उपावें।
> इक तालि बजावत गावत गीत सप्रीति दिसा दुलहो पिख है।
> परबीन तिया दुलहीन तईं रसभीनि खिलावत दें सिख हैं।
> इक काम भरी मदमान खरी गुर मूरति को उर मैं लिख हैं।
> वहि भाग भरी सब ज्ञान हरी जु रमा हरीदपति कौ दिख हैं।[1]

दूसरा उद्धरण 'निर्मल पत्र' के सम्पादकीय से है। उन्नीसवी शती के अन्तिम चरण मे पजाबी पत्र-पत्रिकाओ का श्रीगणेश हुआ। बीसवी शती के प्रथम चरण तक अनेक पंजाबी पत्रिकायें प्रकाशित हो चुकी थीं। इन्ही दिनो की निर्मला पत्रिका (गुरुमुखी लिपि) की भाषा देखिये :—

"कई अज्ञान जीव ईश्वर रचित वेद विद्या को स्त्री, सुदर, सकर, सकीरण और ईसाई यवन सब के लिये साझी को अपने लिये ही मान बैठे हैं। हालाकि वेदों मे गारगी, मैत्रेयी आदि सुशीला इस्त्रियो के सवाद भी हैं। और पुराणो मे चुडाला, मदालसा आदि स्त्रियो के उत्तम रीति से इतिहास भी प्रसिद्ध हैं। फिर निषादों के चौधरी को मीमासा मे यग्ग लाइक वेद पढना जैमनी ऋषी ने साफ माना है। इसतें भिन्न वरण-सकर विदर भगत ने धृतराष्टर को मौरव पर्यन्त चारो पदार्थों का उपदेश किया है। ये कथा महाभारत के उद्योग पर्व मे प्रसिद्ध है।"[2]

कहने का तात्पर्य यह है कि खालसा पथ के इस अध्यापक-वर्ग का हिन्दी-प्रेम इनके सृजन-काल से लेकर बीसवी शताब्दी के आरम्भ तक अक्षुण्ण बना रहा।

---

१ पथ प्रकाश, पृ० १७७-१७८

२ निर्मल पत्र (१ मई, सन् १९०८ ई०) का सम्पादकीय।

कवि गुलाबसिंह

कवि का जीवन चरित—कवि गुलाबसिंह का जन्म संवत् १७८६ वि० में चब्बे जाति के कृषक परिवार मे हुआ।[१] उनकी माता का नाम गौरी,[२] पिता का नाम रया[३] और ग्राम का नाम सेखव[४] (जिला लाहोर) था। गुलाबसिंह ने अपने प्रत्येक ग्रंथ मे अपने माता, पिता और जन्म स्थान का स्मरण किया।

उनके दीक्षा-गुरु महात्मा मानसिंह थे। प्रत्येक ग्रथ के प्रारम्भ और अन्त में उन्होंने मानसिंह का स्मरण अत्यन्त कृतज्ञ भाव से किया है।

काशी में रहकर उन्होंने कई वर्षों तक संस्कृत भाषा और साहित्य का ज्ञान प्राप्त किया। तदुपरान्त उन्होंने अनेक संस्कृत ग्रंथों का हिन्दी (ब्रज) मे पद्यानुवाद किया। गोस्वामी तुलसीदास के समान गुलाबसिंह भी विद्याभिमानी तथा ईर्ष्यालु पण्डितों के कोप-भाजन हुए। परिणामतः उनकी रचित अनेक छोटी बड़ी पुस्तकें नष्ट हुईं।[५]

रचनाएँ—गुलाबसिंह रचित चार पुस्तकें उपलब्ध हैं :

भाव रसामृत
मोख पंथ[६]
अध्यात्म रामायण[७]
प्रबोध चन्द्रोदय[८]

---

१. गुरुशब्दरत्नाकर, पृ० १२६५

२. गौरी थी शुभ मात पिता जग राया नामा
गुलाब सिंह मतिमान भयो सुत ताके धामा
—अध्यात्म रामायण, पृ० ४३६

गौरी जननी लोक मै राया जनक महान
गुलाबसिंह सुत ताहिके नाटक कीन बखान
—प्रबोध चन्द्रोदय, पृ० ५४६

३. गौरी राया मात पित सेखव नगर उदार।१२५।
—भावरसामृत, पृ० ६४

पुर सेखव कुर खेत्र वास सुभ सत मनाए
—अध्यात्म रामायण, पृ० ४३८

४. जिह अज्ञान निवार्यो दीनी मोख अपार
मानसिंह गुरु चरण को वन्दौं वारवार
—प्रबोध चन्द्रोदय, पृ० ५५०

५. गुरुशब्दरत्नाकर, पृ० १२६५

६. सत अष्ट दस सुभ संवत मै पुन त्रिस पाच भये अधिकाई
—संवत् १८३५ (सन् १७७८ ई०) —मोख पंथ, पृ० २२३

७. अद अगनी वसु चंद पुनि सम्मत आनन्द धार
दसम कातका सुदी सुभ सुरापीस गुरु बार
—सम्वत् १८३६ (सन् १७८२ ई०)—अध्यात्म रामायण, पृ० ४३६

८. रस वेद और वसु चंद सम्मत लोक भीतर जान
नभ मास भृगु पुनि वासरे दसमी वदी पहिचान
—संवत् १८४६ (सन् १७९२)

प्रत्येक ग्रन्थ का रचनाकाल ग्रथ-समाप्ति पर दिया गया है। ये सभी ग्रथ ईसा की अठारहवी शताब्दी के अन्तिम चरण मे रचित हैं। इन ग्रन्थो के अतिरिक्त कर्म विपाक और स्वप्नाध्यायी नामक दो और ग्रथो के नाम का परिचय भी मिलता है।[1]

गुलाबसिंह से पूर्व किसी निर्मल सत द्वारा रचित कोई ग्रन्थ उपलब्ध नही। प्राप्त ग्रंथो के आधार पर निर्मल साहित्य का आरम्भ गुलाबसिंह द्वारा ही होता है।

मोख पथ, अध्यातम रामायण और प्रबोध चन्द्रोदय अनूदित ग्रथ हैं। उपलब्ध ग्रथो मे केवल भाव रसामृत ही मौलिक है।

भावरसामृत एक सौ तीस फुटकर छन्दों का सग्रह है। कवि के अपने कथनानुसार यह ग्रथ स० १८३४ वि० (सन् १७७७ ई०) मे समाप्त हुआ।[2]

भावरसामृत ग्रथ भगवान के प्रति अपनी भक्ति भावना को अभिव्यक्त करने तथा भक्त-जनो को उपदेश देने के उद्देश्य से लिखा गया है। कवि के कथनानुसार इस अमृत का आचमन करने से दुख का नाश होगा, कुबुद्धि एव जरा का पलायन होगा तथा देवपुरी मे रहने का अधिकार प्राप्त होगा।[3]

इन फुटकर छन्दो के विषय हैं—विनय, भक्ति-याचना, नश्वरता, परमार्थ, सुवृत, परमात्मा की अज्ञेयता, उसे प्राप्त करने के साधन—भगवदनुग्रह, शील-सदाचार, गृह-त्याग आदि।

इन निबन्धो मे गुलाबसिंह की ईश भावना का अध्ययन प्रस्तुत करने के लिए मुख्यत इसी ग्रन्थ को ही आधार बनाया गया है।

प्रतिपाद्य

ईश—भावरसामृत के इष्टदेव दाशरथी राम हैं। मगलाचरण मे सर्वप्रथम सिय सहित एक आसन पर विराजमान राम का ही स्तवन किया गया है।[4] तत्पश्चात्

---

१. निर्मल भूषण, पृ० ७६
   निर्मल पथ दर्शन, पृ० २७८

२. सत अस्टदसा सुभ समत थो पुन त्रिसत चार भये अधिकाई।
   घन पूर रहे दिस चार घने पुन मद समीर सुगंद सुहाई।
   ससि पूरणमा रविवासर थो सुभ हाड़ समापत की तिथि पाई।
   दिन ताहि समापत ग्रथ भयो हरि के पद पकज भेंट चढाई ॥१३०॥

३. (क) कण्ठ अचे नहि दुख मिटे पावे सुख ऊदार।
   भावरसामृत ग्रथ यह भाखो हरि उर धार ॥५॥

   (ख) यह भाव रसामृत कण्ठ धरे कुबुद्धि जरा सम आइ पलाई।
   सुखदेव पुरी सुरमेर दई उर साति सुराग न मोद बढाई।
   अमरातम देव भयो जगने उर काल की चित मिटाई।
   बहु औरन के दुख करै पद सेवहि तीन लुकाई ॥१२४॥

४. सीय समेत नमो तिनको इक आसन बैठ सदा हरिखाये ॥१॥

भी 'ओघ विलासी',[1] 'कानन-वासी',[2] 'जानकी नाथ',[3] 'रावणारि',[4] रूप में ही भगवान की आराधना का निर्देश है। बहुत से सवैयों में कवि ने राम का जय-जयकार करते हुए उनके जीवन-चरित्र की कतिपय घटनाओं की ओर संकेत किया है।[5] इस प्रकार उन्होंने अपने आराध्य के सगुण रूप के विषय में किसी प्रकार का संदेह बना नहीं रहने दिया। वे ऐतिहासिक राम के चरित पर ही नहीं रीझे हैं, राम के गुण और शील ही उनकी श्रद्धा का विषय नहीं, उनके रूप पर भी कवि रीझे हैं—

> किंचित है अलिका स्रुति ऊपर कुंडल हैं सुभ कानन माही।
> कुंडल के कच मैं चकमैं लसकैं ताड़िता घन मेचक माही।
> बोल समै छवि पुंज तरंग कपोलन-सागर ते निकसाही।
> नैन हरे मद कंजन के सम आनन के ससि कोटिक नाही।१०२
> भृकुटी कुटिला सुभ भाल विसाल सुकुंकम की युग रेख सुहाई।
> युग कांचन के सर लै रतिनाहि मनो मणि को सुकमान चढ़ाई।
> कच घुंघरवंत सुमंद समीर फुरे तिन की छवि यौ मन आई।
> सुमनो मुख कंज अमोद गहे भ्रमनावल का भ्रम है बिगसाई।१०३

सारांश यह है कि वे दाशरथी राम के रूप, चरित्र और चरित् सभी पर रीझे हैं। उनकी ईश-भावना राम-मार्गी भक्तों की ईश भावना से किसी प्रकार भी भिन्न नहीं।

उन्होंने गुरु नानक और गुरु गोविन्दसिंह की भी वन्दना की है। इनके वंदन में भी अवतारवादी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। गुरु नानक "कलि के सब दुख निवारन को भव तारन को जग भीतर आए"[6] हैं और गुरु गोविंदसिंह ने "हित मानव देह धरी जग मे"[7]। किन्तु यह वन्दन मंगलाचरण और उपसंहार की परिपाटी के निर्वाह के लिए ही हुआ प्रतीत होता है। ग्रंथ के मूल भाग मे कहीं भी गुरुद्वय का उल्लेख नहीं; उनके चरित अथवा चरित्र से प्रेरणा ग्रहण करने का आग्रह

---

१. औघ विलासी सुने परकाशी ज्ञान निशर्मी दान रते।५।
२. करवूर विनासी, मूल फलासी, लंक निनासी वाक कते।६।
३. यौ विधि याहि मई तु कहा जब जानकी नाथ के रंग न माने।१३।
४. रिखि नारि उधारी, सबरी तारी, रावण आरी देवनने।
   शिव चाप विदारी सागर तारी रण अरि मारी सील रते।
   शुभ कुण्डल धारी अलकैं कारी उत्तम न्यारो रूप अते।
   जय जय रघुनायक जन सुखदायक अरि दल धायक भूमपते।७।
५. तात की आयस मान चले जिनके पद पंकज पूजत लोई।
   राज विभूति तजी छिन मै बन को निकसे जननी बहु रोई।
   तौ न फिरे पुरको हरि जू जब भ्रात गहे कर मै पद दोई।
   धरम बराबर राज नहीं इह सूचक राम सनातन जोई।६०।
६. भावरसामृत, छन्द २
७. भावरसामृत, छन्द ३

नहीं; गुरु नानक द्वारा प्रचारित "अकाल मूर्ति', 'अयोनि' ब्रह्म को पूज्य रूप में अपनाने की प्रवृत्ति नहीं। अतः यह कहना समीचीन प्रतीत होता है कि निर्मला गुलाबसिंह की भक्ति भावना सिक्ख गुरुओं की भक्ति भावना से प्रभावित न होकर रामभक्ति द्वारा ही प्रभावित है।

ईश प्राप्ति के साधन

(क) अनुग्रह—ईश प्राप्ति के साधनों में भी उनका दृष्टिकोण सिक्ख गुरुओं से भिन्न है। सिक्ख गुरुओं ने भगवद् प्राप्ति को सद्गुरु के प्रसाद का फल कहा है। वस्तुतः गुरुकृपा सिक्ख-सिद्धान्त का सबसे महत्त्वपूर्ण अंश है। भावरसामृत का कर्ता गुरु को विशेष महत्त्व देता प्रतीत नहीं होता। निर्मला गुलाबसिंह राम की कृपा की ही याचना करते हैं। अपने और अपने अन्तिम प्राप्तव्य के बीच किसी मध्यस्थ की आवश्यकता उसने नहीं समझी।[1] वे तो थोड़े ही गुणों पर रीझने वाले; गज, गणिका, अजामिल जैसे पापियों का उद्धार करने वाले, बिना किसी लोभ के दूसरों का काम करने वाले राम पर ही भरोसा किये हैं। भगवान की शरण मे जाते हुए, उन्हें उनके 'बिरद' का स्मरण दिलाते हुए, और अपने उद्धार के लिये विनती करते हुए उन्होंने सगुण-भक्तों के उराहने के स्वर को ही अपनाया है—

(क) सैल कपीसर पार परे इह भाँति सुन्यो हर जी बल तोरा।
है मन चंचल बानर सों अर सैल समान सु चीत कठोरा।
नाहि करी तपसा तुमरे बल और न बैन सुनो प्रभ मोरा।
नाथ भले बलवान हुते मम दास की बेर भयो बल थोरा ॥८६॥

(ख) जाति विहीन सु भील तरे अरु सील विहीन तरी गनका।
रूप-विहीन तरी कुबजा हरिणाछल रूप तरे बनका।
पापि अजामल पार परे रघुनायक बैन सुनो जन का।
वै गुण नेम तजे हम नाथ कि आप हि त्याग करयो प्रन का॥८८॥

राम के इस रूप में भी कृपा अथवा प्रसाद का अंश विद्यमान है। भक्त उसे तप, दान, योग आदि साधनों से नहीं, बल्कि उसके अनुग्रह द्वारा प्राप्त करना चाहता है। वस्तुतः अनुग्रह या कृपा का भाव सभी भक्ति-मार्गों में समान रूप से अपनाया गया है। कृष्ण भक्ति मे वह पुष्टि के रूप मे और नानकमार्ग मे 'प्रसादि' के रूप में विद्यमान है। नानक मार्ग की 'प्रसादि'—सिद्धान्त राम भक्ति या कृष्ण भक्ति के अनुग्रह अथवा पुष्टि से अपेक्षाकृत जटिल है। राम भक्त और कृष्ण भक्त अपने अन्तिम प्राप्तव्य के अनुग्रह की ही याचना करता है, सिक्ख के लिये अन्तिम प्राप्तव्य और मध्यस्थ दोनों का अनुग्रह अपेक्षित है। भगवान की कृपा के बिना सद्-गुरु की

---

१. नहि दान दिये द्विज मंडल को अरु दिव्व धुनी तन नाहि पखारे।
नहि मात सुतात की सेव करी नहि देवन के कुलपूज सवारे।
लरकापन से तरुणापन मै बठरापन मै नहि राम चितारे।
अब और न ओठ निहारत हों सरणागति हो जलभूधर तारे ॥५५॥

प्राप्ति नही होती और गुरु के 'प्रसादि' के बिना भगवान नही मिलता। स्पष्टतः निर्मला गुलाबसिंह ने कही भी मध्यस्थ की कृपा की याचना नही की।

(ख) कर्मकाण्ड, शील, सदाचार आदि—अनुग्रह की अन्तिम, निर्णायक शक्ति मे विश्वास रखते हुए भी सभी मार्ग सद्गति के इच्छुक भक्त को शुभ-कर्मों का उपदेश देते हैं। निर्मला गुलाबसिंह की रचना मे भी कुछ शुभ-कर्मों का उल्लेख किया गया है। वे भी भगवान् के अनुग्रह से उतर कर शुभ कर्मों को ही महत्त्व देते हैं। उनका कहना है कि शुभ कार्य किये बिना सुधा-सुख की प्राप्ति नही हो सकती।[1]

शुभ कर्मों मे उन्होने गुरु-सेवा, विप्रपद प्रक्षालन, देवपूजा, तीर्थ-सेवन, तपस्या, यज्ञ आदि का उल्लेख भी किया है और दान, नि स्वार्थता, कटुवचनो का त्याग, परस्त्री की ओर न निहारना आदि का भी। दूसरे वर्ग मे पडने वाले गुणो को शील अथवा सदाचार की कोटि मे रखा जा सकता है। प्राय सभी धर्म इनके पालन का उपदेश देते है। प्रथम कोटि के शुभ कार्य (गुरु-सेवा, द्विज-पूजा, देव-पूजा, तीर्थ-सेवन, तपस्या, यज्ञ) आदि कर्मकाण्ड से सम्बन्ध रखते हैं और उनकी स्वीकृति सार्वभौम न होकर साम्प्रदायिक ही है। गुलाबसिंह द्वारा द्विजपूजा, देव-पूजा, तीर्थ यज्ञ आदि पर बल उन्हे सिक्ख-मार्ग से और भी दूर ले जाता है।

उदाहरण के लिये उनका गगा प्रेम लीजिये। यह सिक्ख-सिद्धान्त के सर्वथा प्रतिकूल है। गगा तट पर किसी शिला के नीचे बैठ कर पूर्व दिशा की ओर मुख करके राम रमापति का जप करने की उन्हे उत्कट इच्छा है। वे चाहते हैं कि इसी समाधिस्थ अवस्था मे उनके प्राण छूटें और माता समान गगा उन्हें अपनी पुण्य भुजाओ मे सँभाल ले। यह वही गगा है जिसे ब्रह्मा, विष्णु, शकर, भगीरथ आदि के सुस्पर्श के कारण अद्वितीय पवित्रता प्राप्त हुई है। उसका पावन जल पीने, देखने और छूने मे ही वे अपने भाग्य की उत्तमता मानते हैं। उनके गगा के प्रति इस मोह का कोई सौन्दर्यपरक कारण भी है। इसका पक्का पता उनकी रचनाओं में नही मिलता इस मोह का स्पष्ट कारण उनकी परम्परा-विशेष (तीर्थ सेवन) के प्रति श्रद्धा ही है। उन्होने अपने गगा प्रेम को निम्नलिखित रूप मे अभिव्यक्त किया है—

(१) कवि आवहिंगे मम ऊपर ते दिन देह रहे मम गग किनारे।
सभ ही जग ते पुन सांति लहैं मुख नाम सुसील गगोदक धारे।
पुनि बैठि शिला तल मैं हरि की पदवी दृग मेल कै नोत चितारे।
हरि ध्यान समे तन मोहि गिरै जल मात समान सु गग सभारे।६६।

(२) प्रात समे पिख पावन नीर सुपान करे मुख गग उचारे।
पूरव ओर करे मुख को हरि पादहि नीर सरीर पखारे।
बैठ सिला तल नैन मिलाइ सुराम रमापति मैं उर धारे।
नाम इहै मुख मांहि रटे हरि दीनदयाल मुकन्द मुरारे।।६६।।

---

१. जग मे शुभ काज बिनासत हो विधि कौन सुधा सुख पाउ मुरारे।।४३।।

(३) जा जल को विधि पाल कर्यो पुन पावन बावन पाद पखारे।
संकर पावन हेर उरे पुन सीस निरंतर सो जल धारे।
भूप भगीरथ के तपसा पुन जा जल सों कुल भूपति तारे।
सो जल पावन मैं परसो सु पिखों उर मैं वड भाग हमारे ॥१००॥

(ग) गृहत्याग—भगवद्-प्राप्ति के लिये उन्होने वर्ण और आश्रम धर्म के पालन पर भी बल दिया है। ब्राह्मणो की सेवा का निर्देश उनके कई सवैयो मे पाया जाता है।[1] किन्तु ब्राह्मण सेवा से भी अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व उन्होंने आश्रम धर्म के एक पक्ष के पालन पर दिया है। उन्होने वाणप्रस्थ आश्रम का पालन सबके लिये आवश्यक ठहराया है। वे कहते हैं कि पचास वर्ष होने पर तो सभी गृह-त्याग कर देते हैं, वैसे वानप्रस्थ ग्रहण करने का अधिकार बालक, वृद्ध, युवा और धनी सब ही को है।[2] यही वे रामभक्ति की सर्व-स्वीकृत पद्धति से भिन्न मार्ग अपनाते दिखाई देते हैं। निर्मल मार्ग सन्यास-मार्ग ही है। निर्मल-वर्ग वस्तुतः सिक्ख धर्म का पण्डित-वर्ग है। विद्या पढना और पढाना इनका मुख्य कर्तव्य है। विवाह का इनके लिए निषेध है। निर्मल मार्ग और सतमार्ग मे यहाँ ऊपरी-सी समानता दिखाई देती है। किन्तु संत मार्ग त्याग का उपदेश ही नही देता, भोग, नारी (अतः गृहस्थी) की निन्दा भी करता है। निर्मल मार्ग नारी अथवा भोग की निन्दा नही करता।[3] स्वयं गुलाब सिंह की वाणी इस कथन की साक्षी है। वे भगवान से योग अथवा भोग मे किसी एक की याचना करते हैं[4]—

कंज प्रभा दृग, चन्द्र मुखी, गजगामनि नारि दिजे घरमाँही।
नातर शांति वधू अति सुन्दर राम दिजै हमरे घर माँही।
कै घर मोहि सुभूत दिजै कि बिभूत दिजै जु मलो तन माही।
कै घर माहि निवास करों कि फिरों जगदेव नदी तट माही ॥१०॥
कै खडगागर दल दलों कट, कै वट वास दया उर माही।
कै मणिमाल दिजे उर मे नहि राम दिजै जपना कर माहीं।
कै जग भीख अहार करो कि दिवों जन वाछत ही छिन माहीं।
कै जस सौ सम भूमि मरों नहि जाइ बसो हरि ते पुर माहीं ॥११॥

---

१. धन ईस दयो जग भीतर जो बिन वुद्ध गए न कछु फल पाए।
शुभ सतन की नहि सेव करी अरु बिप्रन ते नही यग्य कराए ॥२०॥
नहिं पूजन देवन को करयो अरु बिप्पन के नहि पाद पखारे।
....
जग में सुभ काज बिसारत हौ विधि कौन सुधा सुख पाऊँ बुरारे ॥४५॥

२. बालक वृद्ध जुवा धनी है सबको अधिकार।
अरु फुन बरख पचास ते तजे सकल ससार।

३. गुलाबसिंह कहते हैं कि साधु स्वय विभूति न चाहे, परन्तु अन्य जनों (सम्बन्धी) का मन दुखी न करे—
नहि आपन मान सुभूत चहे, पुन औरन को न करे मन भंगा ॥१०५॥

४. "योग अथवा भोग" सिक्ख-सिद्धान्त के अनुकूल नहीं। सिक्ख सिद्धान्त भोग में योग का उपदेश देता है।

उनकी अपनी रुचि शांति वधु, वटवास और विभूत के लिये ही है। उन्होंने स्थान-स्थान पर ऐसे मानवो का भाग्य सराहा है जो सासारिक सम्पत्ति का त्याग करके वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करते हैं।[१] गृह-त्याग के पक्ष मे वे बार-बार राम का उदाहरण देते हैं। राज्य-विभूति को त्याग कर, माता को रोता छोड कर वन को चले जाने वाले एव भाई के आग्रह पर भी नगर को न लौटने वाले राम उनके आदर्श हैं।[२] निश्चय ही उन्होने अपने पक्ष को पुष्ट करने के लिए रामचरित को अपूर्ण रूप से ग्रहण किया है। जब रामचन्द्र ने विभूति का त्याग कर दिया तो औरो की तो बात ही क्या, ऐसा तर्क वे पुनर्वार देते हैं —

> घर मानव देह सुभारथ खडहि का हित भोगन मैं ललचाही।
> जग दूर तजो गज बाज रथादिक माहि विभूति कछू सुख नाही।
> इह लोक प्रलोक सुसग चलै इक धरम कु सच धरो उरमाही।
> अब औरन बात कहा कहिये रघुबीर विभूत तजी छिन माही॥६१॥

सक्षेप में हम कह सकते हैं कि निर्मला गुलाब सिंह के इष्टदेव दाशरथी राम हैं। राम का रूप, चरित्र और चरित्र का जो वर्णन भाव रसामृत मे हुआ है वह तुलसी आदि रामभक्तों की कृतियो के सर्वथा अनुकूल है। ईश प्राप्ति के साधन में उन्होने प्रभु के अनुग्रह, सदाचार, तीर्थ-सेवन, देव द्विज पूजा, यज्ञ एव ससार-त्याग को महत्त्वपूर्ण माना है। ससार त्याग पर विशेष बल उन्हे रामभक्ति की परम्परा से थोडा दूर करता है। ईश भावना और साधना की दृष्टि से उनकी धारणाएँ स्वीकृत सिक्ख सिद्धान्त के सर्वथा प्रतिकूल हैं।

रामभक्ति और पजाब

पजाब मे रचित जितना भक्ति साहित्य अब तक है, उसके आधार पर यही कहना पडता है कि अवतार पुरुषो की भक्ति की कोई पुष्ट-परम्परा यहाँ पनप नहीं सकी। सिक्ख गुरुओ से पूर्व नाथ पथियो, एव फरीद आदि मुसलमान सूफियों के प्रचार के परिणामस्वरूप और तदुपरात सिक्ख गुरुओ के सुसगठित प्रयास से पजाब मे अवतारवादी विचार जड न पकड सके। कम-से-कम, इतना तो निर्विवाद रूप से सत्य है कि निर्गुण भक्ति की जैसी अपनी निजी परम्परा पजाब मे है, वैसी सगुण भक्ति की नही।

तो भी सगुण भक्ति पजाब मे सर्वथा बहिष्कृत नही रही। कच्ची वाणी के प्रसग मे हरियाजी की वाणी का अध्ययन करते हुए हम देख चुके हैं कि हिन्दी-भाषी क्षेत्र के सगुण-भक्ति-विषयक विचार पजाब में भी प्रविष्ट हो रहे थे और कतिपय भक्तो द्वारा अपनाये जा रहे थे। हरिया जी के ग्रथ मे अवतार पुरुष राम (एव कृष्ण) की भक्ति के पद मिलते हैं।

---

१ धन्न वही भव भीतर ते तन धार महा तपसा निरवाही ॥६४॥
२. ६०वाँ सवैया।

हरिया जी के आसपास ही संवत् १६८० वि० में हनुमन्नाटक की रचना कवि हृदयराम द्वारा हुई। जहाँगीर काल में लिखा हुआ यह ग्रंथ तुलसी-साहित्य के प्रभाव को कहाँ तक ग्रहण करता है, इसका सम्यक् विवेचन तो इस *निबन्ध* के द्वितीय खण्ड में होगा। यहाँ इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि इस रचना में राम का चित्रण अवतार-पुरुष के रूप में हुआ है। कवि हृदय राम की निजी भक्ति भावना के परिचायक यहाँ कुछ एक छंदों को उद्धृत करना अनुपयुक्त न होगा।

श्यामघन देह सो मैं चातक ज्यो नेह बाँध्यो
देह (दे) प्रेम बूँद हौ जपैया ताही नाम को।
चरण सरोज रस भरे ताको भयो अलि
जा दिन पराग पाऊँ ताही छिन काम को।
राम मुख धुन सुन भयो मृग ताही छिन
रूप सिंधु मीन डर है न कालधाम को।
वै उदार राय है मैं भक्ति भीख माँगों
वे तो रामचन्द्र चन्द्रमा चकोर मन राम को ॥१॥३॥
कौसल तनैया तनु कुशलनिधान प्रभु
कलिमल मथन सुसाधुन के प्राण हैं।
करुणाकी खान पहचान जाकी दीनन सों
मान लेत जी की सब ही के सावधान हैं।
देवन के देव रीझै नेक किये सेव
हिये परपीर जानवे को चतुर सुजान हैं।
वारिद से श्याम अभिराम काम हू के राम
ऐसे राम राम के हिये विराजमान हैं ॥१॥५॥

स्वयं सिक्ख गुरुओं के दीवान (अथवा दरबार) में अवतारवादी भावना समादृत होने लगी थी। गुरु दरबार में गुरु महिमा गाने वाले अनेक कवियों को प्रश्रय मिलने लगा था। ये कवि पंजाबेतर क्षेत्र के निवासी थे। ये पंजाब से बाहर की भक्तिभावना भी अपने साथ लाये। उन्होंने गुरु महिमा का गायन अवतारवादी ढंग से किया। उन्होंने गुरु नानक को रघुवंशी राम का अवतार तथा गुरु अंगद को राजा जनक का अवतार कहा :—

(क) त्रेतै तैं माणिओ राम रघुवंस कहाइओ[1]

(ख) तू ताँ जनिक राजा अवतारु सबदु संसारि सरु रहहिं[2]

सिक्ख गुरुओं द्वारा इन अवतारवादी विचारों का आदर कहाँ तक हुआ इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि भाट कवियों की वाणी को आदि ग्रंथ में स्थान मिला है। साधारणतः आदि ग्रंथ में उन्हीं भक्त-कवियों की वाणी स्वीकृत हुई है जिनकी भक्तिभावना गुरुवाणी के अनुकूल थी।

---

१. आदि ग्रन्थ, पृ० १३८०
२. [illegible]

दशम गुरु के दरबार में भी कई कवियों को आश्रय मिला। यों तो गुरु जी का स्पष्ट निर्देश था कि उन्हें परमेश्वर अथवा उसका अवतार न समझा जाये।[1] किन्तु अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा करने में अभ्यस्त ये दरबारी कवि अपने साहित्यिक अस्त्र-शस्त्रों का त्याग सहज में करने वाले न थे। विशेषतः जब गुरु-व्यक्तियों का अवतार-रूप में वर्णन करने का दृष्टांत पहले से ही स्थापित हो चुका था। उन्होंने गुरु गोविंदसिंह को विष्णु के अन्य अवतारों से अभिन्न पाया :—

(क) रावन ने छीनि दई बख्श बिभीखण को,
वावन ह्वै बांध्यो बलि जब तुम चाही है।
कबि चार मुख रच्यो थम्भ बीच नरसिंह
प्रहिलाद जू की पैंज पूरन निबाही है।
गुरु जी गुबिंद राय चाहो तुम सोई करो,
बूझि देखो बेद इस बात की उगाही है।
और पातसाही सभि लोगनि को पातशाहु।
पातशाहों पर साची तेरी पातशाही है।[2]

(ख) सति जुग प्रबल प्रकट परसराम ह्वै के
छेक छाडे छत्री अरु काहू अन्न ना धरयो।
त्रेते रघुनाथ ह्वै के रावन सनाथ कीनो
गीधन खवायो मास लंकपति जो लरयो।
द्वापर कन्हाई बनि बांसरी बजाई सुनि
सुरि मुनि नर काहू धरि न तबै करयो
कलिजुग तारिबे को साधन को पारिबे को
सुंदर सरूप गुरु गोबिंद ह्वै अवतरयो।[3]

गुरुओं का अवतार-रूप में महिमा-गायन केवल दरबारी कवियों तक ही सीमित नहीं। इन कवियों के पश्चात् गुरविलास के रचयिता सुक्खासिंह में भी अवतार-भावना के असन्दिग्ध संकेत मिलते हैं :—

स्री असपान को आदि सिंहासन रोसन है मधि दीप सुसत्ता।
बीर सुधीर अभीर पृथादिक पावत भे करकै तपु अत्ता।[4]

---

१. जै हमको परमेसर उचरिहैं।
ते सम नरकि कुंड महि परिहैं।
मोको दास तवन का जानो।
या मै भेदु न रंच पछानो।

—दशम ग्रन्थ पृ० ५७

२. गुरु प्रताप सूर्य ग्रन्थ, पृ० ५७२७
३. गुरु प्रताप सूर्य ग्रन्थ, पृ० ५७३०
४. गुरु विलास, पृष्ठ ६६।

रामभिराम, सुकान्ह वली जिह वैसत भयो घर कै जुग सत्ता।
तौन सिंहासन के तुम मालक रारि करैं तुमसौ चव गत्ता।[१]

स्वय गुरुओ की वाणी मे भी यत्र-तत्र दाशरथी राम की महिमा परोक्ष रूप मे स्वीकृत है। गुरु गोविन्दसिंह ने राम-कथा का गायन किया और एक स्थान पर, विष्णुभक्ति को आधि-व्याधि का नाशक ठहराया। समस्त गुरुओ की वाणी मे पौराणिक प्रसगो के समावेश ने भी परोक्ष रूप से अवतारवादी भावना का पोषण किया। पौराणिक कथाओ के प्रचलन के साथ-साथ सहज रूप मे पौराणिक भक्ति-भावना का प्रचलन भी स्वाभाविक ही था।

निर्मला गुलाबसिंह की वाणी मे दाशरथी राम की भक्ति का जो आग्रह पाया जाता है उसके व्यक्तिगत कारण भी रहे होगे। वे वर्षों विद्यार्जन हित राम भक्ति-क्षेत्र (काशी) मे रहे। सभव है उन्होने अवधी रामभक्ति साहित्य का अवगाहन भी किया हो। इतना तो निर्विवाद है कि राम-भक्ति क्षेत्र मे रहते सहज रूप से कुछ प्रभाव उन्होने ग्रहण किये हैं।

यहां तक तो हुई व्यक्तिगत कारणो की सभावना। यहाँ विशेष रूप से द्रष्टव्य यह है कि स्वय सिक्ख-क्षेत्र मे भी अवतार भावना का समावेश सहज रूप मे हो रहा है। गुरु वाणी, कच्ची वाणी, पौराणिक प्रबन्धो, दरबारी काव्य, एव सिक्ख कवियो के काव्य ने अपने ढग से इस भावना का पोषण किया। अत निर्मला गुलाबसिंह द्वारा ईश की रामरूप मे भक्ति पजाब वासियो को बहुत नवीन नही प्रतीत हुई होगी।[२]

गुलाबसिंह की दृष्टि सामान्यतः व्यक्तिगत जीवन पर रही है। पुण्य, दान, त्याग एव भक्ति द्वारा व्यक्ति किस प्रकार परम-सुख को प्राप्त कर सकता है, भावरसामृत मे बार-बार इसी का उल्लेख हुआ है। त्याग का उपदेश देने वाले सन्यासी गुलाबसिंह की दृष्टि समाज की समस्याओ की ओर बहुत कम गई है। कम-से-कम भावरसामृत मे उनकी सामाजिक सजगता का विशेष परिचय नही मिलता। हम निर्मला जी की सन्यास प्रवृत्ति के प्रसग मे देख चुके हैं कि उनकी वाणी हिन्दी रामभक्तिधारा के मुख्य प्रवाह से बाहर पडती है। इसी सन्यास-प्रवृत्ति के परिणाम-स्वरूप उनकी वाणी मे लोकरजन का वह स्वर सुनाई नही देता जो रामभक्तिधारा का प्रमुख वैशिष्ट्य है। वस्तुत, कई एक स्थानो पर उनका सन्यास-व्रत भी ऐश्वर्य-प्राप्ति

---

१ गुरु विलास, पृ० ६६

२. गुरुओ का विष्णु अवतार रूप में वर्णन बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक चलता रहा। भाई संतोख की रचना का एक कवित्त इस कथन का साक्षी है—

सतजुग बावन सरूप हैं न उपजते, वलि कर जग्य सुरपुरि दैत वासते।
भनत संतोखसिंह त्रैते जो न रामचन्द, रावण को रहे कोऊ न दिनासते।
द्वापुरि में स्याम धन होवे न करित कौन, दोऊीन को दुख सुख सतन के वासते।
तैसे कलीकाल माहि गुरु रूप होवति न, कौन हिंदवानो राखि धम को प्रकाशते।

गुरु-प्रताप-सूर्य ग्रंथ, पृ० ५७३१

के असामर्थ्य का परिणाम प्रतीत होता है। याचना करते समय वे प्राथमिकता तो ऐश्वर्य एवं सुख-साधनों को ही देते हैं, संन्यास तो उसके प्राप्त न होने की अवस्था में ही स्वीकार्य है—

(क) कै महिमण्डल राज दिजै नहिं एक कमण्डल ही कर माही।
कै तन माहि पटंबर दैनहि एक मृगोबर ही जग माही ॥८॥

(ख) भौन रंगीन के द्वार विसे भट गाय कवित्त कि मोहि जगाही।
नातर परण कुटी तट पादप वोल सिखी मुहि को जग माही ॥६॥

(ग) दासन के गन मोहि दिजै नहिं आपन दास किजै वन माही
कै मणि हेम विमान दिजे नहिं नाम दिजे हमरे मन माही ॥१२॥

उन्हीं ने संसार-संघर्ष में जूझने वाले शूर-वीरों का महत्त्व स्वीकार किया है,[1] वीर पुत्र की जननी का भाग्य सराहा है[2] और स्वयं भी शूर-वीर का सा जीवन व्यतीत करने की इच्छा प्रकट की है।[3] अरि सेना का नाश किये बिना यौवन काल को गँवा बैठने वालों के जीवन को व्यर्थ ही समझा है।[4] धन, मान, यौवन और बन्धुओं की हानि उठाये हुए व्यक्तियों को गृह-त्याग की एवं भूधर-कुंज दरी का आश्रय लेने की अनुमति दी है।[5] इस प्रकार उनके काव्य मे (रीतिकालीन) साधनहीन, शक्तिहीन हिन्दूजाति की तत्कालीन मनःस्थिति ही प्रतिबिम्बित हुई है। इस सम्बन्ध मे इतना विशेष स्मरणीय है कि उनके काव्य में संन्यास संघर्ष से पलायन के रूप में ग्राह्य नहीं है, यदि पलायन है तो रीतिकालीन विलास-प्रवृत्ति से—

(क) वैठ वधू कुच कुंकम के सर तीखन सों जु करे जग हाते।
... ...
यौ विधि याहि भई तु कहां जब जानकी नाथ के रंग न राते ॥१६॥

(ख) तन धार कि ना उपकार करें, कर राग परांगन रूप निहारे।
... ...

---

१. संघर माहि करै मुज को वल प्राण तजै रुचि है जग माही
मानव माहि महातम के मत धन्न वही जिंयरे जग माही ॥७६॥

२. अथवा जननी सुत सोई जने रण भीतर जो अरि के दल धाए।
सिरलो धन दान करे जग मैं सुभ कै जननी सुत जो निपजाए ॥११८॥

३. कै खड्गागर दंत दलों कट, कै वट वाम दया उर माही ॥११॥

४. जोबन में रसभोग करे, न दली अरि की धुजणी रण-पीनी।
....
फांग पुंज अधार सुमानव देह, भई तिनकी सु पुंज बिहीनी ॥४६॥

५. जिनका जग भीतर मान घटे सुनि राम रटे अरथी निज द्वारे
निज मंदर ते धन छीण भए परलोक गए निज बन्धु प्यारे
तन मंडल जोबन पीठ दई इह लोक तजे परलोक सँवारे
नग पावन भूधर कुंज दरी नर जाइ वसै बहु गंग किनारे ॥६८॥

जग मैं सुभ काज निहारत हो विधि कौन सुधासुख पाउँ मुरारे।४३।
(ग) घर मानव देह सु भारथ खडहि का हित भोगन मैं ललचाही ।६१।

उन्होने ससार का उल्लेख सामान्यत व्यक्तिगत निन्दा, गुणग्राहकता के अभाव और मूर्ख-दाता आदि के सम्बन्ध मे ही किया है। विलासी, निन्दक, नाकद्रदान और मूर्खों व इस ससार को त्याग देन की अनुमति ही उन्होने दी है, इनसे जूझन, और इनका सुधार करने की नही।

निर्मला गुलाबसिंह त्यागी है किन्तु मानवीय सवेदना से रहित नही। उनका काव्य न कोरा उपदेश है, न हृदयहीन सिद्धान्त निरूपण। उनके छन्दो की विशुद्ध प्रगीत सज्ञा तो नही हो सकती, किन्तु प्रगीतात्मकता का एक प्रमुख तत्त्व गुण आत्माभिव्यक्ति, इनमे स्पष्ट रूप से विद्यमान है। इसी गुण के कारण उनका काव्य हमारे मर्म के छूने अथवा हमारे स्थायी भावो—विशेषत रति और निर्वेद—को उदबुद्ध करने की शक्ति रखता है।

भाव-तत्त्व

प्रेम—कवि के प्रिय पुराण-पुरुष श्री राम हैं। अत उनके व्यक्तित्व—उनके रूप, गुण और शील—की झाँकी उपस्थित करने में उन्हे विशेष सुविधा है। अपनी रति के आलम्बन का अभिवन्दन करत हुए वे उनकी मुखाकृति के मृदु मगल चित्र भी अकित करते हैं, उनके चरित की घटनाओ का स्मरण भी करते हैं और उनके 'विरद' का बखान भी करत है। सक्षप मे, वे अपने राम को सौन्दर्य-मूर्त्ति और प्रेम मूर्ति उभय रूपो में अकित करत है जिससे वे प्रेम करने योग्य एव उनके प्रति प्रदर्शित प्रेम को पुरस्कृत करने योग्य प्रतीत होते हैं। परिणामत उनसे सम्बन्धित प्रेम आरम्भ म भले ही विषम कोटि का हो, किन्तु उसके सम होने की सभावना निर्विवाद है।

निर्मला जी ने केवल अपनी रति के आलम्बन का ही भरपूर चित्र उपस्थित नही किया है, बल्कि समागम स्थान गगा-तट आदि का वर्णन भी उसी तन्मयता से किया है। परिणामत उनकी सम्पूर्ण कृति भगवद् प्रेम को जगाने एव उद्दीप्त करने में सम्यक रूप से समर्थ है। उनकी ईश-भावना का विवेचन करने समय सौंदर्य-मूर्ति राम के कई चित्र उदाहरण रूप मे उद्धत किये जा चुके हैं, यहाँ केवल एक चित्र देना ही पर्याप्त होगा।

अभिवदन ते हरि पादन को जग माहि पिखे सु उदार उदारी।
ससि मडल मैं बहुकाति हुती पिख आनन ते सुलगे अब खारी।
दृगभजन ते सु उदार सिरे लटकी अलकै सुति ऊपर कारी।
सुभ कुण्डल छाय कपाल रहे कर माहि लटे उर हार अपारी ॥६२॥

शात रस—शात रस तो सभी भक्त-कवियो का प्रिय रहा है। निर्वेद नामक स्थायी भाव को उदबुद्ध करन के लिये वे सासारिक पदार्थों की अस्थिरता एव नश्वरता के प्रति हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। हर्ष विषाद का असमान वितरण भी हमारे मन (निर्वेद) का स्पर्श करता है। निर्मला जी मे शात रस के प्रति भी उतनी रुचि है जितनी 'प्रेम' के प्रति। वस्तुत उनका शात उनके प्रेम का अभिन्न

सहचर है। प्रेम के लिये जिस अनन्यता, एकनिष्ठता तथा एकाग्रता की अपेक्षा है, वह सासारिक पदार्थों से मन हटाये बिना प्राप्त नही होती। वे प्रेम के लिये भी एकान्त भूधर-कुंज-दरी अथवा गगा-तीर को आवश्यक समझते हैं, इसका उल्लेख पहले हो चुका है। यहाँ सासारिक पदार्थों एवं जीवो की नश्वरता, शारीरिक अवस्था की अस्थिरता अथवा परिवर्तनशीलता तथा दु.ख-सुख के असमान वितरण का एक-एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा—

१. जिनके रथ नेम दरारन ते सत सागर है अब लौं जग माही।
जिन चापन गोदान के वल ते सब सैल वटोर धरे घर माही।
सुर राज भजे जिनके वल ते यमराज जिते जिहने जग माही।
मन ते जग भीतर नाहि रहे अब और रहे कछु को जग माही ॥१७॥

२. तन के वल ने अब पीठ दई अर हार परे दृग बाल संगाती।
तज के इह लोक विखे हमको चल आप गए सुर लोक सजाती।
जग मीत सखा मुख फेर गये अब सेवक हूँ न पुछे मम वाती।
मम आहि पलागम(पा लागों)हे तृस्ने, इक तूं मम संग रही दिन राती।५१॥

३. कहि वीनन तांल मृदंगन की धुनि गावत है मनगंद वडाई।
कहि रोवत है नर नारि महा घर लेतट है उर मैं दुख पाई।
कहि चंदन नीर गुलाब घसैं सुसंधूरहि की सिर मांग बणाई।
कहि हाथन से सु उपार सिरोरहि माँग जहा तहि भूमि रुलाई ॥७२॥

कला—

अलंकार, भाषा आदि—विषय और अभिव्यक्ति दोनों ही दृष्टियों से गुलाबसिंह का काव्य सम-सामयिक काव्य-प्रवृत्ति का अनुसरण नही करता। उसका काव्य न केवल तत्कालीन विलासिता से अस्पृष्ट रहा है बल्कि उसके अनिवार्य सहचर चमत्कारवाद से भी। वर्ण्य-विषय की अपेक्षा उसके समानान्तर अप्राकृत उपमानों को ढूंढ-ढूंढ कर सजाने की रुचि उनके काव्य में लक्षित नही होती।

तो भी उनकी कृति में चित्रात्मकता की अवहेलना नहीं है। उन्होंने अपने आराध्य राम के रूप-वर्णन मे, इस नाना रूपा संसार की नश्वरता के प्रसंग मे सामान्यतः चित्रण-कला के प्रति उदासीनता नही दिखाई। उन्होंने चित्रों का अर्जन या तो पौराणिक-स्रोत से किया है, अथवा वर्ण्य-विषय मे से ही उनका सृजन किया है। पौराणिक कथायें तो हमारे निबन्ध मे पड़ने वाले लगभग सभी कवियों का प्रिय कला-स्रोत रही हैं। उन्होने इन कथाओ को अपना वर्ण्य-विषय भी बनाया है और उनका प्रयोग सदर्भों के रूप मे भी किया है। गुलाबसिंह भारतीय पुराण से भली प्रकार परिचित थे। भावरसामृत मे उन्होंने रामायण मे पड़ने वाले अनेक सदर्भों के प्रतिरिक्त पाडु, दुर्योधन, नल, हरिश्चन्द्र (३२), नृपति, हरिनात वसुदेव (३३), अजामिल (५६), मुचकद (५९), दिलीप (६२), चतुरानन के सुत चार (६५), शंकर, बलि, वामन (८१), सुदामा, गजग्राह, कुब्जा (८७), गणिका, मारीच (८९),

भागीरथ (१००) आदि का उल्लेख किया है। इन कथाओं का अपना कलात्मक महत्व है। ये सीधी-सादी कविता को भी चाक्षुप-सौंदर्य प्रदान करने की क्षमता रखती हैं।

जहाँ इनका एवं औपचारिक अलंकारों का प्रयोग नहीं, वहाँ कवि ने वर्ण्य-विषय के वर्णन में से ही अपने काव्य को बिम्बाधार का प्रयास किया है। यहाँ कुछ उदाहरण अनुपयुक्त न होंगे—

(क) दृग जोत घटी कटि है लटकी पलटी सभ देह न राम सँभारे।
कर में लकुटी न उठे करते घर माहि लटी सु महा अब हारे ॥५३॥

(ख) हेम गले अरु सीस उतस उठाय सुपार महा हिननाते ॥१३॥

(ग) सुभ कुण्डल धारी अलकैं कारी आभ न्यारी रूप अतें ॥७॥

(घ) भौन रगीन के द्वार पिखे भट गाइ कवित्त कि मोहि जगाही।
नातर पर्ण कुटी तट पादप बोल सिखी मुहि को बन माही ॥६॥

(ङ) गज दंत पलंघ सु मंदर मैं बहु विजन और पतंवर माही ॥६३॥

(च) कहि चंदन नीर गुलाव घसै सु संधूर हि की सिर मांग बनाई।
कहि हाथन से सु उपार सिरोरहि माँग जहा तहि भूम रुलाई ॥७२॥

(छ) नवनूतन नीर भरे मदरालट भूम विखै जलधार बहावैं ॥१११॥

(ज) तृन कोमल बीन विछाइ भले दृग नीर भरे घर माहि सुई जैं ॥१२१॥

सामान्यतः कवि गुलाबसिंह अलंकारों के मोह मे नही फँसे हैं। कोपहुतासन (४४), मात समान सुगंग (६६), त्याग चले तृण ज्यो (१८), निस पेखन डोलहि तार समं (३४), कृत पुण्य फले द्रुम ज्यों ऋतु माही (२५) आदि अलकृत प्रयोग सहजभाव से हो गये हैं। वस्तुतः उनका विषय भी अलंकार-बहुला भाषा की अनुमति नहीं देता। केवल कुछ स्थानों पर अलंकारो का विरल प्रयोग यदाकदा हमे आश्वस्त कर देता है कि अलकार-विद्या कवि की शक्ति से बाहर नही थी। भावरसामृत में प्रयुक्त कुछ अलंकारों के उदाहरण इस प्रकार हैं—

उपमा—

कोट तुरंग कुरंग से कूदत (१४)
कुंडल के कच मेचक में लसकै तड़िता घन मेचक माही ॥१०२॥

रूपक—

कुच-कुंकम के सर वीखव (१६)

सांगरूपक—

(क) जग सूरज-आतप दूख मिटे फलसूख सु निश्चित है जगमाही।
पिक वाक रटे सुभ बैठ जहाँ निज बोल सु सौरभ है जग माही।
सुभ साधन-पल्लव छाजत है जल सांति भरे अलवालन माही।
चल रे मन ढील करो न अबै सुभ सत रसालन के बन माही ॥१०८

(ख) बोल सभै छवि पुंज तरंग कपोलन सागर ते निकसाही ॥१०२॥

उत्प्रेक्षा—

भृकुटी कुटिला सुभ भाल विसाल सुकुंकम की युग रेख सुहाई।
युग कांचन के सर लै रतिनाहि मनो मणि की सुकमान चढ़ाई।
कच घुंघरवंत सुमंद समीर फुरे तिनकी छवि यौ मन आई।
सुमनो मुख कंज अमोद गहे भ्रमरावल का भ्रम है विगसाई ॥१०३॥

ात्युक्ति—

जिनके रथ नेम दरारन ते, सत सागर है अवलौ जगमाही।
जिन चापन गोशन के बल तें सब सैल बटोर धरे धर माही ॥१७॥

एक स्थान पर कवि ने अपने चित्रालंकार-सम्बन्धी कौशल का भी परिचय ःया है जिसके कारण सम्पूर्ण सवैया सर्वथा दुर्जेय बन कर रह गया है :

मो मद काछर लोह दगा भल सम कभी उर माहि न धारो
राह अवो सखि दे मरियंधम भाव सदा उर ते नहि टारो
सांगु भवे सुस पंच इनी तर जो दन दाथल नेत सँभारो
जो इन ते हरि नाहि मिले तब जामन सिंह गुलाब तिहारो ॥१२९॥

यह सवैया चित्र-रूप मे लिखने से ही समझ मे आ सकता है :

प्रथम पंक्ति

मो	म	द	का	छ	र	लो	कभी उर माहि
ह	द	गा	म	ल	सं	म	न धारो

दूसरी पंक्ति

रा	ह	अ	वो	स	खि	दे	सदा उर ते
म	रि	यं	ध	म	भा	व	नही टारो

तीसरी पंक्ति

सां	गु	भ	वे	सु	स	पं	च	इ	नी	सँभारो
त	र	जो	द	न	दा	थ	ल	ने	त	
ाति और गुरु ाजो			सदा वेद सुनो			(सत) पंथ पर चल		इन्हें नित्य		

चित्रालंकार सम्बन्धी व्यायाम गुरु गोविन्दसिंह के दरबारी कवि अमृतराय ने भी किया था। कदाचित उनके चित्र-विलास से निर्मला जी परिचित थे। सौभाग्य है इस प्रवृत्ति का कोई व्यापक प्रभाव इन्होने स्वीकार नहीं किया। उनकी अन्य कृतियों प्रबोधचन्द्रोदय, अध्यात्म रामायण, एव मोक्ष-पथ—मे ऐसी कलाबाजी के दर्शन नहीं होते। कुल मिलाकर निर्मला गुलाबसिंह की वाणी सहज सारल्य का प्रभाव डालती है, सायास चमत्कार का नही।

निर्मला जी की पक्तियो मे पर्याप्त घनत्व एव कसावट है। वे एक ही पक्ति मे इतिहास की कई घटनायें कह जाने अथवा बाह्य-रूप की सपूर्ण एव सश्लिष्ट झाँकी उपस्थित कर जाने का कौशल रखते हैं। सम्पूर्णता के लिये उनकी किसी एक पक्ति का भाव दूसरी पक्ति की अपेक्षा नही रखता। सम्पूर्णता एव सहज अविरलता उनकी पक्ति का विशिष्ट गुण है। यहाँ 'सहज' शब्द विशेष रूप से द्रष्टव्य है। उनकी अविरलता कही भी परिश्रम साध्य प्रतीत नही होती। एक ही पक्ति मे सम्पूर्ण एव अविरल कथन, अथवा वर्णन के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

१. सुभ कुडल धारी, अलकै कारी, आभा न्यारी रूप अतं ॥७॥
२. कज प्रभा दृग, चद्रमुखी, गजगामनि नारि दिजे घर माही ॥१०॥
३. जानु भुजा, कटि केहरि के सम, कज प्रभा दृग है मदमाते ॥१३॥
४ हेम गलै अरु सीस उतस, उठाइ सु पाद महा हिननाते ॥१४॥
५ गढ काचन, सागर की परिखा, तहा रावण के दस मूड कटाए ॥३३॥
६. दृग जोत घटी, कटि है लटकी, पलटी सब देह, न राम सँभारे ॥५२॥
७ राज विभूति तजी छिन मैं बन को निकसे जननी बहु रोई ॥६०॥
८. ऊखर देस कु नीर पिवे, पुन मूढ सुधारस सो पग धोवै ॥७७॥
९. विपने सुरणै भव सत्र गिने जल औ पुन मदर आग लगाये ॥७८॥
१०. भृ ग वली पिख क ज प्रभा उर लोभ लगे तिहि माहि बँधाये ॥३८॥

भाषा में उनकी प्रवृत्ति सरलता एव सुगमता की ओर है। विशुद्ध सुगमता की दृष्टि से इनकी (एव सतरेण जी की) वाणी पजाब मे रचित भक्तिसाहित्य में अत्युतम स्थान की अधिकारिणी है। इनकी सरलता का रहस्य यह है कि उन्होंने सामान्य प्रयोग की भाषा को ग्रहण किया है। उन्होने यथासम्भव अपनी रचना को न केवल पजाबी भाषा के मिश्रण से ही बचाया है बल्कि अवधी के ऐसे शब्दों के 'मिश्रण' से भी, जिनकी सुबोधता एक विशेष क्षेत्र तक ही सीमित है। उन्होंने तत्सम के बहुत निकट के तद्भव अथवा बहुत सरल तत्सम शब्दो का प्रयोग किया है। परिणामत न तो उनके तद्भव गँवारू अथवा प्रान्तीय प्रतीत होते हैं और न उनके तत्समो पर पाडित्यप्रदर्शन का दोषारोपण किया जा सकता है। इनकी भाषा तो खडी बोली मिश्रित व्रज है।

छन्द—भावरसामृत के मुख्य छन्द सवैया और दोहरा (दोहा) हैं। एक स्थान पर दीर्घ त्रिभगी एव 'मदरा' (सवैया का ही एक रूप) का भी प्रयोग हुआ है। छन्दो की दृष्टि से गुलाबसिह भाई गुरुदास के सहचर हैं। इन दोनो कवियो की वाणी मे शब्द (अथवा विष्णुपद) का निराकरण विशेष रूप से द्रष्टव्य है। सवैया अथवा कवित्त पजाब का अपना छन्द नही। यह पजाबेतर क्षेत्र के प्रभाव का सूचक है। इसका सर्वप्रथम प्रयोग गुरु-दरबार मे पजाबेतर क्षेत्र से आए भट्टो द्वारा हुआ। तत्पश्चात् पजाबेतर क्षेत्र मे धर्मप्रचारार्थ निवसित भाई गुरुदास द्वारा और फिर हिन्दी-भाषी क्षेत्र मे पालित तथा इतर प्रभाव ग्रहण करने मे परम उदार गुरु गोविन्द सिह द्वारा हुआ। निर्मला गुलाबसिह ने इसी ग्राहक प्रवृत्ति का अनुसरण किया।

भावरसामृत का छन्द-विधान मात्राओ के परिगणन की दृष्टि से प्राय अदोष है। कुछ एक स्थानो पर गुरु अक्षर को लघु-वत् उच्चारण करने की प्रवृत्ति अवश्य विद्यमान है। भावरसामृत के छन्द का बडा दोष उसकी तुकात-विधि मे है। तुकात और अतिरिक्त तुकान्त (काफिया और रदीफ) के अन्तर से सुपरिचित नही। वे एक ही 'शब्द' की तुकान्त के रूप मे आवृत्ति करते हैं किन्तु उसके आवश्यक सहचर 'अक्षर'—के तुकान्त की अवहेलना कर जाते हैं। परिणामत उनके छन्दो मे 'कर माही, जग माही, वन माही, पकज माही, जग माही, पुर माही, वन माही, घर माही, उर माही, तन माही, तट माही'[१] जैसे सदोष तुकान्त दृष्टिगोचर होते हैं। किन्तु यह दोष थोडे से ऐसे छन्दो मे है जहाँ कवि ने अतिरिक्त तुकान्त (रदीफ) का प्रयोग किया है। अन्यथा उनका छन्द प्राय दोषरहित है।

---

१. भाव-रसामृत सवैया १०, ११ और १२

द्वितीय खण्ड

प्रथम अध्याय

पौराणिक प्रबन्ध

पंजाब में पौराणिक प्रबन्धों की परम्परा

पजाव के हिन्दी-गुरुमुखी साहित्य में पौराणिक कथाओ का सन्निवेश गुरु नानक से ही आरम्भ होता है। गुरु-वाणी का विवेचन करते समय हम देख चुके हैं कि सभी गुरुओ ने पौराणिकता का प्रयोग एक विशेष सामाजिक प्रयोजन के लिये किया। किन्तु गुरुवाणी पौराणिक कथाओ का प्रयोग सन्दर्भ रूप मे ही करती है।

पजाव मे सर्वप्रथम पौराणिक कथाएँ लिखने का श्रेय भाई गुरुदास और कच्ची वाणी के रचयिताओ—हरिया जी और हरि जी—को है। प्रामाणिक गुरु-सस्था के अनुयायी गुरुदास और अप्रामाणिक गुरु हरि जी एव उनके अनुयायी हरिया जी द्वारा पौराणिक कथाओ का सृजन इस वात का स्पष्ट प्रमाण है कि पौराणिकता उस युग की अत्यन्त व्यापक प्रवृत्ति थी। ये कथायें पजावी (गुरुदास और हरिया) और हिन्दी (हरि जी) दोनो भाषा-शैलियो मे, गद्य (हरि जी) और पद्य (गुरुदास और हरिया) मे, मुक्तक कथा-गीतो (गुरुदास), और प्रवन्ध कथाओं (हरि जी) के रूप मे लिखी गईं।

भाई गुरुदास ने अपनी पजावी वारो मे एक नवीन कला-रूप का आविष्कार किया। इसे कथा-गीत का नाम दिया जा सकता है। वे नौ पक्तियों के गीत मे किसी एक पौराणिक कथा का सक्षिप्त किन्तु सम्पूर्ण वर्णन करते हैं। उनकी दशम वार मे ध्रुव, प्रह्लाद, बलि, अम्बरीष, जनक, सत्यवादी हरिश्चन्द्र, विदुर और दुर्योधन, द्रौपदी, सुदामा, अहल्या, वाल्मीकि, पूतनी, बधिक (जिसके बाण से कृष्ण का वध हुआ) की कथायें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। गुरुदास ने पुराण-कथाओ के प्रति पूर्ण निष्ठा का परिचय दिया है। वे नृसिंह, राम, कृष्ण के अवतारत्व के प्रति थोडा सा भी सदेह नही करते। उनके नाम से सम्बन्धित अनेक चमत्कारो को भी वे स्वीकार करते है। कुछ उदाहरण निम्नाकित हैं।

१. हिरण्यकश्यप ने खड्ग निकाल कर (प्रह्लाद से) पूछा—तेरा अध्यापक कौन है? अनादि भगवान् अद्वितीय रूप वाले नृसिंह के रूप मे प्रकट हुआ और उसने नास्तिक को पकड कर पछाड दिया।[1]

२. पुरोहित शुक्र ने कहा—तुम्हें अछल (वावन) छलने के लिए आया है।[2]

---

१. भाई गुरुदास की वार, १०।२

२. वही, १०।३

बाबो जन्म साखी, महिमा प्रकाश (सरूपचन्द भल्ला), साखियाँ नानक शाह की (सन्तदास छिब्बर), गुरु शोभा (सेनापति), गुरु विलास (सुक्खासिंह) और नानक विजय (संतरेण) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अंतिम ग्रन्थ नानक विजय तो नव-पुराण कहलाने का अधिकारी है। पौराणिकता की यह परम्परा उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण तक अक्षुण्ण बनी रहती है।

संक्षेप में, हमारा मत है कि पौराणिकता सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी के पंजाब की अत्यन्त व्यापक प्रवृत्ति है। सभी युगों के सभी अवतारों की कथायें तो इस युग में कही गई हैं ही, ऐतिहासिक पात्रों की कथायें भी पुराणवत् कहने का आग्रह इस युग में है।

इस युग में पौराणिक प्रबन्धों (मौलिक) की रचना निम्नलिखित कवियों द्वारा हुई :—

(१) हृदयराम भल्ला।
(२) गुरु गोविन्दसिंह।

हनूमान नाटक के रचयिता हृदयराम भल्ला

कवि का परिचय और रचना काल—हनूमान नाटक अथवा राम गीत की रचना कवि हृदयराम द्वारा जहाँगीर काल में संवत् १६८० वि० में हुई। हृदयराम ने अपने पिता का नाम कृष्णदास बताया है और अपने आप को (पंजाब के) दक्षिण देश का निवासी कहा है। परिचयात्मक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

सम्मत विक्रम नृपति सहस खट सत असीह वर।
चैत्र चांदनी दूज छत्र जहँगीर सुभट पर।
सुभ लच्छन दच्छन सुदेस कवि राम बिच्छन।
क्रिस्न दास तनु कुल प्रकास जस दीपक रच्छन।
रघुपति चरित्र तिन जथामति प्रगट कह्यो सुभ लगन गण।
दै भगति दान निर्भय करहु जै रघुपति रघुवंस मणि।[1]

हृदयराम भल्ला क्षत्रिय कुल से सम्बन्धित माने जाते हैं। इस विश्वास का कोई सुपुष्ट आधार हमें प्राप्त नहीं हो सका। अपनी काव्य-कृति में हृदयराम ने इस प्रकार का कोई संकेत नहीं दिया। हृदयराम की रचना हनूमान नाटक के नाम से प्रसिद्ध है। स्वयं हृदयराम ने इसे 'राम गीत' तथा 'रामचंद गीत' का अभिधान भी दिया है।

प्रति—'हनूमान नाटक' की हस्तलिखित प्रतियाँ भी प्राप्त हैं और मुद्रित संस्करण भी। इसका एक संस्करण देवनागरी में भी मुद्रित हुआ है। हमने अपने अध्ययन के लिये एक हस्तलिखित प्रति और दो मुद्रित संस्करणों को आधार बनाया

---

१. हनूमान नाटक, १४।१४३

३. भयानक सुदर्शन चक्र ने कालरूप होकर दुर्वासा का गर्व-भंजन किया। ब्राह्मण दुर्वासा अपनी जान लेकर भागा। इन्द्रलोक, शिवलोक, ब्रह्मलोक, वैकुण्ठ सबसे वह (निराश) लौटा। देवताओं और भगवान् ने उसे शिक्षा दी······।[1]

४. द्रौपदी ने नयन मूँद कर ध्यानमग्न होकर हा कृष्ण, हा कृष्ण, ऐसा क्रन्दन किया। वस्त्रों के दुर्गाकार ढेर लग गये······।[2]

५. रघुपति के चरणों के स्पर्श से (अहल्या) विमानारूढ होकर स्वर्ग को चल दी।[3]

भाई गुरदास सिक्ख धर्म के अत्यन्त प्रामाणिक प्रचारक हैं। उनकी वाणी से स्पष्ट है कि सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ मे सिक्ख धर्म निस्संकोच भाव से पौराणिकता को अपना रहा था। हरिया जी की रामायण और हरि जी का सुखमनी सहस्रनाम भी (जिसमे चौबीस अवतारो की कथायें हैं) सत्रहवीं शताब्दी की रचनायें हैं। इन सभी रचनाओं मे पौराणिकता का व्यापक प्रभाव परिलक्षित है।

सर्वप्रथम पौराणिक प्रबन्ध लिखने का श्रेय हृदय राम भल्ला को है। उन्होंने सवत् १६८० वि० मे 'हनूमान नाटक' की रचना की। इस ग्रन्थ के लिये उन्होने इस नाम की (हनुमन्नाटक) सस्कृत रचना को आधार बनाया, किन्तु प्रतिपादन शैली की दृष्टि से यह सर्वथा मौलिक रचना है।

तदुपरान्त गुरु गोविन्दसिंह द्वारा बचित्र नाटक की रचना हुई। बचित्र नाटक अपने आकार और विषयवस्तु की दृष्टि से एक नव-पुराण प्रतीत होता है। कुछ सिक्ख विद्वानो के अनुसार यदि आदिग्रन्थ को सिक्ख मत की श्रुति माना जाए तो दशम ग्रंथ को (बचित्र नाटक इसी ग्रथ का एक भाग है) सिक्ख मत का पुराण माना जाना चाहिये। बचित्र नाटक मे चौबीस मुख्य अवतारो के अतिरिक्त रुद्र एवं ब्रह्मा के अवतारों की कथायें वहीं गई हैं। इसके अतिरिक्त ४०५ उपाख्यान अलग से सकलित किये गये हैं। इन उपाख्यानो मे से कुछ उपाख्यान तो पुराणों मे से ही लिये गये हैं, कुछ उपाख्यान सर्वथा नवीन हैं। दूसरे शब्दो मे बचित्र नाटक के 'उपाख्यान' कथा-भाण्डार के रूप में भी महत्त्वपूर्ण हैं एव कथा-शैली की दृष्टि से भी।

इन मौलिक ग्रन्थों के अतिरिक्त अनेक अनूदित ग्रन्थो की रचना भी हुई। तत्कालीन 'धर्म-युद्ध' के वातावरण मे 'महाभारत' अनुवादको का अत्यन्त प्रिय ग्रथ रहा। आनन्दपुरीय कवियों के अतिरिक्त कृपाराम एव कृष्णलाल ने भी महाभारत का भाषानुवाद किया। गुलाबसिंह द्वारा अध्यात्म-रामायण का अनुवाद भी उल्लेखनीय है। पौराणिक प्रभाव मौलिक एव अनूदित पौराणिक प्रबन्धो तक ही सीमित नही रहा। सिक्ख गुरुओ को भी पौराणिक अवतारो के रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयास हुआ। इस दिशा मे जन्मसाखी (मिहरबान), पुरातन जन्मसाखी, भाई बाले

१. भाई गुरदास की वार, १०।४
२. वही, १०।८
३. वही, १०।१८

साखी जन्म साखी, महिमा प्रकाश (सरूपचन्द भल्ला), साखियाँ नानक शाह की (सन्तदास छिब्बर), गुरु शोभा (सेनापति), गुरु विलास (सुक्खासिंह) और नानक बिजय (संतरेण) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अंतिम ग्रन्थ नानक विजय तो नव-पुराण कहलाने का अधिकारी है। पौराणिकता की यह परम्परा उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम चरण तक अक्षुण्ण बनी रहती है।

संक्षेप में, हमारा मत है कि पौराणिकता सत्रहवी-अठारहवी शताब्दी के पंजाब की अत्यन्त व्यापक प्रवृत्ति है। सभी युगो के सभी अवतारो की कथायें तो इस युग मे कही गई हैं ही, ऐतिहासिक पात्रो की कथायें भी पुराणवत् कहने का आग्रह इस युग में है।

इस युग मे पौराणिक प्रबन्धों (मौलिक) की रचना निम्नलिखित कवियों द्वारा हुई :—

(१) हृदयराम भल्ला।
(२) गुरु गोविन्दसिंह।

हनूमान नाटक के रचयिता हृदयराम भल्ला

कवि का परिचय और रचना काल—हनूमान नाटक अथवा राम गीत की रचना कवि हृदयराम द्वारा जहाँगीर काल मे संवत् १६८० वि० में हुई। हृदयराम ने अपने पिता का नाम कृष्णदास बताया है और अपने आप को (पंजाब के) दक्षिण देश का निवासी कहा है। परिचयात्मक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

सम्मत विक्रम नृपति सहस खट सत असीह वर।
चैत्र चादनी दूज छत्र जहँगीर सुभट पर।
सुभ लच्छन दच्छन सुदेस कवि राम बिच्छन।
क्रिस्न दास तनु कुल प्रकास जस दीपक रच्छन।
रघुपति चरित्र तिन जथामति प्रगट कह्यो सुभ लगन गण।
दै भगति दान निर्भय करहु जै रघुपति रघुवंस मणि।[१]

हृदयराम भल्ला क्षत्रिय कुल से सम्बन्धित माने जाते हैं। इस विश्वास का कोई सुपुष्ट आधार हमे प्राप्त नही हो सका। अपनी काव्य-कृति मे हृदयराम ने इस प्रकार का कोई संकेत नही दिया। हृदयराम की रचना हनूमान नाटक के नाम से प्रसिद्ध है। स्वयं हृदयराम ने इसे 'राम गीत' तथा 'रामचंद गीत' का अभिधान भी दिया है।

प्रति—'हनूमान नाटक' की हस्तलिखित प्रतियाँ भी प्राप्त हैं और मुद्रित संस्करण भी। इसका एक संस्करण देवनागरी मे भी मुद्रित हुआ है। हमने अपने अध्ययन के लिये एक हस्तलिखित प्रति और दो मुद्रित संस्करणो को आधार बनाया

१. हनूमान नाटक, १४।१४३

है। इनकी पृष्ठसंख्या अलग होने के कारण हमने उद्धरणो मे अध्याय और छन्द संख्या का ही निर्देश किया है।

आधार ग्रन्थ—हृदयराम द्वारा लिखित हनूमान नाटक न तो सर्वथा मौलिक रचना है और न इसी नाम की सस्कृत रचना का अक्षरश अनुवाद ही है। सम्पूर्ण रचना पढ कर पाठक के मन मे कोई सदेह नही रहता कि इस भाषा कृति की रचना करते समय कवि के सामने सस्कृत हनुमन्नाटक अवश्य रहा होगा। इस रचना की कथा-योजना, घटनाओ का क्रम, उनका ब्योरा अपने सस्कृत प्रतिरूप के ही अनुसार है। अध्यायो के विभाजन मे भी सस्कृत हनुमन्नाटक का ही अनुसरण किया गया है।

भाषा हनूमान नाटक पर सस्कृत हनुमन्नाटक का ऋण आँकने के लिये हमे इनका तुलनात्मक अध्ययन इन दोनो कृतियो के छन्दो एव घटनाओ के ग्रहण और त्याग (साम्य एव वैषम्य) तथा लेखक-द्वय की नजी भावना के साम्य और वैषम्य के आधार पर करना होगा।

छन्दो का ग्रहण और त्याग—किसी काव्य-कृति का अनुवाद मूल ग्रथ के काव्य-सौदर्य से यथावत् हम तक पहुँचाने का यत्न करता है। किसी अनुवादकर्त्ता की सफलता का निश्चय इस बात से होगा कि वह कहाँ तक मूल ग्रथ के विषयगत एव शैलीगत वैशिष्ट्य से हमे अवगत कराता है। इस रचना मे कुछ एक स्थल ऐसे भी हैं जो सस्कृत-कृति के कतिपय छन्दो के मर्म की सुदर व्यंजना करते हैं। यहाँ दो उदाहरण उपयुक्त होगे।

(क) सद्यः पुरीपरिसरेपि शिरोष मृद्वी।
गत्वा जवान्नि चतुराणि पदानि सीता।
गन्तव्यमस्ति कियदित्यसकृद् ब्रुवाणा।
रामाश्रुण कृतवती प्रथमावतारम् ॥३॥१२॥

ए बनवास चले दोऊ सुंदर कौतुक को सिय सग जुटी है।
पाइछ साथ चली इनमैं रनवासहु की नहि सीम छुटी है।
हाथ धरे कटि बूझत रामहि नाथ कहो कहाँ कुज कुटी है।
रोवत राघव जोवत सी-मुख मानहु मोतिन माल टुटी है ॥२॥७८॥

उपरिलिखित दोनो छन्दो के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि विषय-वस्तु का सफल प्रेषण करते हुए भी अनुवाद-कर्ता ने अपनी रुच्यनुसार शैलीगत ब्यौरे मे परिवर्तन किया है। उसने मूल रचना के 'शिरीष मृद्वी' तथा 'प्रथमावतारम्' का निराकरण किया है एव 'हाथ धरे कटि' तथा 'मानहु मोतिन माल टुटी है' द्वारा सर्वथा नवीन विवरण का समावेश कर दिया है। वस्तुत. मौलिकता का सम्बन्ध इतना विषयवस्तु मे नही जितना अभिव्यक्ति से। विषयवस्तु के ग्रहण की दृष्टि से तो तुलसीदास पर भी अनेक अन्य सस्कृत ग्रथो के अतिरिक्त हनुमन्नाटक का अपार ऋण है। किन्तु उनकी अभिव्यक्ति सर्वथा मौलिक है।

उपर्युक्त संस्कृत छन्द का अनुवाद उन्होंने 'पुर ते निकसी रघुवीर वधू' नामक सवैया में किया है। हृदयराम के 'हाथ धरे कटि' के समान उन्होंने 'झलकी भरि भाल कणी जलकी पुट सूखि गये मधुराधर द्वै' इस पंक्ति द्वारा सीता का स्थिति-विशेष मे चित्र उपस्थित किया है। हृदयराम के छन्द में भी इतनी ही मौलिकता है जितनी तुलसी के छन्द मे है।

(ख) संस्कृत

मुद्रे सन्ति सलक्ष्मणाः कुशलिनः श्रीराम पादाः सुखं।
सन्ति स्वामिनि मा विधेहि विधुरं चैतोऽनया चिन्तया॥
एनां व्याहर मैथिलाधिपसुते नामान्तरेणाधुना।
रामस्त्वद्विरहेण कंकणपदं ह्यस्यै चिरं दत्तवान् ॥६॥१६

भाषा

बूझत है ताही सो संदेसो सिय बार बार
मेरे प्रभु प्राणनाथ सुख सों रहत हैं।
लछमन नीके कहाँ छाड़ कहा कह्यो तोसों
मेरी सुधि लेबै को कबहूं उमहत है।
किधौं मेरे औगुण विचारे हूं बिसार दीन्ही
किधौ मेरे नाम लै उसासन भरत है।
बोले हनुमान ऐसे मुँदरी न कहे मात
तेरे पाछे या सौं राम कंकन कहत है। ६।४४

इस छन्द में भाषा कवि ने संस्कृत-कवि के अलंकार 'मुद्रिका कंकन हो गई' का यथावत् प्रेषण किया है। 'प्राण नाथ सुख सौं रहत हैं' द्वारा सीता की पति की कुशलता के लिये चिन्ता को भी मूल ग्रथ के समान ही हम तक पहुँचाया है। किन्तु 'किधौं मेरे श्रौगुण बिचारे हैं बिसार दीन्ही, किधौं मेरे नाम लैं उसासन भरत हैं।' में जो दैन्य, उद्विग्नता एवं पति से पत्नी-विरह मे सतप्त होने की आशा, व्यजित हुई है, उसका परिचय मूल कृति मे नहीं मिलता।

संक्षेप मे हम कह सकते है कि हृदयराम ने संस्कृत कृति के छन्दो का भाषानुवाद करते समय (मौलिक कवि के) ग्रहण और त्याग विषयक अधिकार का निर्बाध प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त बीच बीच मे नये विवरण के सृजन द्वारा उन छन्दो में मौलिक अभिवृद्धि भी की है। अतः यह निष्कर्ष अनुपयुक्त प्रतीत नही होता है कि अनुवाद करते समय भी उनकी मौलिक प्रतिभा बहुत दृढता से अपने अस्तित्व को व्यक्त करती रही है। इसी प्रसंग मे यह भी स्मरणीय है कि हृदयराम के हनुमान नाटक में ऐसे छन्दो की सख्या बहुत अधिक नही। सम्पूर्ण ग्रंथ (१४४० छन्दो) मे ऐसे छन्दों की सख्या एक सौ से अधिक नही होगी। शेष छन्दो पर मूल ग्रथ का ऋण इतना ही है कि उसने भाषा कवि को घटनाओ अथवा घटना-क्रम का

क्षीण सा आधार दिया है। केवल इसी आधार पर किसी काव्य कृति की मौलिकता को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता।

घटनाओं का ग्रहण और त्याग—ऊपर कहा जा चुका है कि इस भाषा-कृति की कथा योजना, घटना-क्रम एवं घटनाओं का अध्यायों में विभाजन संस्कृत ग्रंथ के अनुसार ही है। तो भी कवि की अपनी निजी भक्ति-भावना के अनुसार कतिपय घटनाओं का त्याग भी हुआ है। परित्यक्त घटनाओं में राम जानकी विलास नामक घटना विशेष रूप से उल्लेखनीय है। संस्कृत ग्रंथ के द्वितीय अंक में वर्णित प्रौढ़ रात्रि प्रसंग कवि की भक्ति भावना के अनुकूल नहीं था। इस अंक में वर्णित घटना की ओर संकेत तक हमारे कवि ने नहीं किया। तुलसी के समान ही हृदयराम ने भी राम-सीता के ऐन्द्रिय रति-सम्बन्ध का गोपन ही उचित समझा है। इन दोनों का रामगाथा के प्रति दृष्टिकोण विशुद्ध साहित्यिक न हो कर भक्ति-परक है। इसी के परिणामस्वरूप उन्होंने न केवल कुछ घटनाओं का परित्याग किया है बल्कि कुछ गृहीत घटनाओं के विवरण को भी काट-छांट दिया है। उदाहरण के लिये राम के विरह-वर्णन में संस्कृत ग्रंथकार ने रति-प्रसंग की स्मृतियों का भी उल्लेख किया है।[१] कवि हृदयराम ने इनका सर्वथा बहिष्कार किया है। परिणामतः तुलसी के समान ही उनकी कृति हनुमन्नाटक (संस्कृत) की अपेक्षा अधिक संयत है।

कवि हृदयराम ने न केवल घटनाओं के विवरण का अपनी भावनानुसार निराकरण किया है, बल्कि अपनी रुच्यनुसार उसमें अभिवृद्धि भी की है। विशेषतः मार्मिक स्थलों का वर्णन उन्होंने समुचित विस्तार से किया है।[२] साराश यह है कि उन्होंने मूल ग्रंथ से साधारणतः घटनाओं की रूपरेखा ग्रहण की है—[illegible] वर्णन उन्होंने अपनी भावना एवं रुचि के अनुरूप कहीं अपेक्षाकृत विस्तृत [illegible] क्षिप्त रूप से किया है, जिससे वे मौलिक प्रतीत होती हैं।

मार्मिक स्थल

---

१ आलिंगतात्र सरसीरुहकोरकाची
पीताधरेति मधुरे विधुमण्डलास्या
रंगावतारमकरन्दविमर्दितानि
पुष्पाण्यमूनि दयिते क्व गतेत्यरोदीत् ॥५॥५॥

२. उदाहरणों के लिये देखिए इसी अध्याय में 'मार्मिक

सीता पर रखा जाता है। बस राम वनवास का वर माँग लिया जाता है। दशरथ भी वरदान मे विलम्ब नहीं करते और राम माता कौशल्या अथवा माता सुमित्रा से मिले बिना, नगर निवासियो के चित्त क्षोभ को जाने बिना, लक्ष्मण के आग्रह के बिना ही लक्ष्मण सहित वन को जाते दिखाई देते है। अयोध्यावासियो के हृदय मे मानवीय सवेदना कही विद्यमान है, इसका कुछ परिचय इस कृति मे नही मिलता। 'कुलक्षणा' सीता के कारण ही राम को वनवास मिल रहा है, क्या सीता ग्लानि और कृतज्ञता के भाव से दब न गई होगी ? सस्कृत हनुमन्नाटक मे इस प्रश्न का उत्तर नहीं। मानवीय संवेदन का कोई चिन्ह दिखाई देता है तो मार्ग की ग्राम-वधुओ मे।

हृदयराम ने राम-वनगमन का वर्णन इसके महत्त्व के अनुरूप ही किया है। उसने कैकेयी, दशरथ, कौशल्या, सुमित्रा, लक्ष्मण, सीता, भरत सभी के मन की झाँकी उपस्थित की है जिसके परिणामस्वरूप इस स्थिति का भावगत सौन्दर्य भली भान्ति उभर आया है। उसने स्थान-स्थान पर इस घटना के पात्रो के विषय मे अपने निजी भाव भी व्यक्त किये हैं। यहाँ इस घटना के केवल एक पात्र (दशरथ) से सम्बन्धित कुछ पक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—

(१) मीन चले रवि ज्यों जलमे नृप कैकेयी के वर यो तरफायो।२।२१

(२) री सुन कैकयि, हे सुन पापिनि, हे सुन चण्ड, डस्यो मुख भारी,
बोलत बोल न बोल थक्यो मुख फाट हियो नहि जात तिहारी।
खाय तवार परो धर, हा ! रवि, हा ! ससि, हा ! सिव, हा ! मुख चारी।
फेर सो काहे को प्राण निकारतु सूधे हो जी किन लेत हमारी।२।२०

(३) लीजिये समाज सब देशन को राज आज,
हौं भिखारि भयौ अब राम भीख हौं लहौं।
जो कहो तिहारे गाँव भीख माँग माँग खाऊँ,
जो पै राम सग तो अनेक दुख मैं सहौं ॥२॥२२

(४) जा दिन राम चले वन ता दिन मोहि कहूं सुपनेहु न पैहै,
तेरोई पूत सुने यह बात पिशाचिनी गाउ मैं पाउ न देहै।२।२४

(५) खाय तवार गिरो धर भूपति बोल थक्यो बहु भाति पुकारे।
और न राम लियो तब बार दुतीनक नैन उघारे।
प्राण छुटेहु न राम छुटयो अरु सी न सके घट ते कर न्यारे।
ज्यो नभ ते ग्रह टूट परे क्षिति ज्योति कछूक रहे भिनसारे।२।८७

---

१. श्रवणमुनिपितुः शाप ला। शापकाम् । ।३। ।१।

२. रामुत्पातानवेदय चितिमथ दशरस्यन्दन क्रन्दयन्तो
लोकान् शोरा लौदै शिव शिव रमा नम्मनाकुर्वाण।
कैकेयी वारमूचे निरिलनिना कुलनिरमूँच सनात
शान्ये पुनस्य राज्य भरतु वनगर्भिप्रेष्यनेप राम ॥३। ३॥

क्षीण सा आधार दिया है। केवल इसी आधार पर किसी काव्य कृति की मौलिकता को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता।

घटनाओं का ग्रहण और त्याग—ऊपर कहा जा चुका है कि इस भाषा-कृति की कथा योजना, घटना-क्रम एवं घटनाओं का अध्यायों में विभाजन संस्कृत ग्रंथ के अनुसार ही है। तो भी कवि की अपनी निजी भक्ति-भावना के अनुसार कतिपय घटनाओं का त्याग भी हुआ है। परित्यक्त घटनाओं में राम जानकी विलास नामक घटना विशेष रूप से उल्लेखनीय है। संस्कृत ग्रंथ के द्वितीय अंक में वर्णित प्रौढ रात्रि प्रसंग कवि की भक्ति भावना के अनुकूल नहीं था। इस अंक में वर्णित घटना की ओर संकेत तक हमारे कवि ने नहीं किया। तुलसी के समान ही हृदयराम ने भी राम-सीता के ऐन्द्रिय रति-सम्बन्ध का गोपन ही उचित समझा है। इन दोनों का रामगाथा के प्रति दृष्टिकोण विशुद्ध साहित्यिक न हो कर भक्ति-परक है। इसी के परिणामस्वरूप उन्होंने न केवल कुछ घटनाओं का परित्याग किया है बल्कि कुछ गृहीत घटनाओं के विवरण को भी काट-छाँट दिया है। उदाहरण के लिये राम के विरह वर्णन में संस्कृत ग्रंथकार ने रति प्रसंग की स्मृतियों का भी उल्लेख किया है।[१] कवि हृदयराम ने इनका सर्वथा बहिष्कार किया है। परिणामत तुलसी के समान ही उनकी कृति हनुमन्नाटक (संस्कृत) की अपेक्षा अधिक संयत है।

कवि हृदयराम ने न केवल घटनाओं के विवरण का अपनी भावनानुसार निराकरण किया है, बल्कि अपनी रुच्यनुसार उसमें अभिवृद्धि भी की है। विशेषत मार्मिक स्थलों का वर्णन उन्होंने समुचित विस्तार से किया है।[२] साराश यह है कि उन्होंने मूल ग्रंथ से साधारणत घटनाओं की रूपरेखा ग्रहण की है—उसका वर्णन उन्होंने अपनी भावना एवं रुचि के अनुरूप कहीं अपेक्षाकृत विस्तृत और कहीं संक्षिप्त रूप से किया है, जिससे वे मौलिक प्रतीत होती हैं।

मार्मिक स्थल

(क) वनगमन—हृदयराम ने राम के वनगमन का वर्णन उचित विस्तार से किया है। इस विषय में उनका आदर्श हनुमन्नाटक न हो कर, कदाचित्, रामचरित मानस है। हनुमन्नाटक में इस घटना का वर्णन इतना संक्षिप्त एवं आकस्मिक-सा है कि वह इसके महत्त्व के प्रति न्याय नहीं कर पाया। संस्कृत हनुमन्नाटक में राम वनवास के न तो वास्तविक कारणों का ही पता चलता है और न इससे उत्पन्न होने वाले चित्त क्षोभ अथवा मनोवेगों के जटिल व्यापार की ही अवगति होती है। पूर्व-अभिशाप के परिणाम-स्वरूप प्राकृतिक उत्पात होते हैं जिनका दायित्व कैकेयी द्वारा

---

१ आलिंगतान्न सरसीरुहकोरकाची
पीताधरेति मधुरे विधुमण्डलास्या
रंगावतारमकर दविमर्दितानि
पुष्पान्यमूनि दयिते क्व गतेत्यरोदीत् ॥५॥५॥

२ उदाहरणों के लिये देखिए इसी अध्याय में 'मार्मिक स्थल'।

सीता पर रखा जाता है। बस राम वनवास का वर माँग लिया जाता है। दशरथ भी वरदान में विलम्ब नहीं करते और राम माता कौशल्या अथवा माता सुमित्रा से मिले बिना, नगर निवासियों के चित्त क्षोभ को जाने बिना, लक्ष्मण के आग्रह के बिना ही लक्ष्मण सहित वन को जाते दिखाई देते हैं। अयोध्यावासियों के हृदय में मानवीय संवेदना कहीं विद्यमान है, इसका कुछ परिचय इस कृति में नहीं मिलता। 'कुलक्षणा' सीता के कारण ही राम को वनवास मिल रहा है; क्या सीता ग्लानि और कृतघ्नता के भाव से दब न गई होगी? संस्कृत हनुमन्नाटक में इस प्रश्न का उत्तर नहीं। मानवीय संवेदन का कोई चिन्ह दिखाई देता है तो मार्ग की ग्राम-वधुओं में।

हृदयराम ने राम-वनगमन का वर्णन इसके महत्त्व के अनुरूप ही किया है। उसने कैकेयी, दशरथ, कौशल्या, सुमित्रा, लक्ष्मण, सीता, भरत सभी के मन की झाँकी उपस्थित की है जिसके परिणामस्वरूप इस स्थिति का भावगत सौन्दर्य भली भान्ति उभर आया है। उसने स्थान-स्थान पर इस घटना के पात्रों के विषय में अपने निजी भाव भी व्यक्त किये हैं। यहाँ इस घटना के केवल एक पात्र (दशरथ) से सम्बन्धित कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—

(१) पौन चले रवि ज्यों जलमे नृप कैकेयी के वर यों तरफायो।२।२१

(२) री सुन कैकयि, हे सुन पापिनि, हे सुन चण्ड, डस्यो सुख भारी,
बोलत बोल न बोल थक्यो मुख फाट हियो नहिं जात तिहारी।
खाय तंवार परो धर, हा! रवि, हा! ससि, हा! सिव, हा!
मुख चारी।
फेर सों काहे को प्राण निकारतु सूधे हो जी किन लेत हमारी।
२।२०

(३) लीजिये समाज सब देशन को राज आज,
हौं भिखारि भयौ अब राम भीख हौं लहौं।
जो कहो तिहारे गाँव भीख माँग माँग खाऊँ,
जो पै राम संग तो अनेक दुख मैं सहौं।।२।।२२

(४) जा दिन राम चले वन ता दिन मोहिं कहूं सुपनेहु न पैहै,
तेरोई पूत सुने यह बात पिशाचिनी गांउ मैं पाउ न देहै।२।२४

(५) खाय तवार गिरो धर भूपति बोल थक्यो बहु भांति पुकारे।
और न राम लियो तब बार दुतीनक नैन उघारे।
प्राण छुटेहु न राम छुट्यो अरु सी न सके घट ते कर न्यारे।
ज्यों नभ ते ग्रह टूट परे क्षिति ज्योति कछूक रहे भिनसारे।२।८७

---

१. ...श्रवणमुनिपितुः प्राप हा! शापकालम्।।३।।२।

२. तानुत्पातानवेक्ष्य चिन्तितमथ दशस्यन्दन क्रन्दयन्ती
लोकान् शोकानलौधैः शिव शिव करुणा भस्मसात्कुर्वतीव।
कैकेयी वाचमूचे निरिन्ननिज कुलागरमूर्त्तिः ससीतः
शान्त्यै पुनरस्त्र राज्यं भवतु वनमभिप्रेष्यतामेप रामः।।३। ३।।

इस प्रकार दूसरे पात्रों के चित्त क्षोभ को उनके महत्त्व के अनुरूप ही चित्रित किया गया है। यह क्षोभ वनप्रस्थान के पश्चात् भी बना रहता है और इसकी बड़ी सरस अभिव्यक्ति माता कौशल्या की आशंका में, अयोध्यावासियों के मूक विरोध में एवं भरत की आत्मग्लानि में हुई है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार की अभिव्यक्ति का आदर्श तुलसी साहित्य में स्थापित हो चुका था।

(ख) विरह-वर्णन—हृदयराम ने राम के विरह का वर्णन भी विशेष तन्मयता और उपयुक्त संयम से किया है। विरह-वर्णन में उनका आदर्श न तो तुलसी-साहित्य है और न हनुमन्नाटक। जहाँ हनुमन्नाटक का अत्यन्त ऐन्द्रिय विरह वर्णन अविवेक और असंयम की सीमा का स्पर्श करता हुआ दिखाई देता है, वहाँ तुलसीदास ने नैसर्गिक ऐन्द्रियता पर भी प्रतिबन्ध लगा रखा है। उन्होंने शृंगार के किसी पक्ष का वर्णन करते समय अपने ऊपर कड़ा प्रतिबन्ध लगा रखा है। वे राम के विरह को 'कामिन्ह की दीनता' दिखाने और 'धीरन के मन विरति' दृढ़ करने के लिये अभिनीत एक नाटक से अधिक नहीं समझते। अभिनय भी जितनी निर्बन्ध आत्माभिव्यक्ति की आज्ञा देता है, उतनी भी रामचरितमानस में नहीं हो पाई। आत्माभिव्यक्ति पर उपदेशात्मक उद्देश्य ने प्रतिबन्ध सा लगा रखा है।[1]

हृदयराम ने मध्यपथ का आश्रय लिया है। समग्र विरह-वर्णन में उन्होंने एक बार भी पाठक को राम के अवतारत्व का स्मरण नहीं कराया।

राम स्वर्ण मृग को मार कर पर्णशाला को लौटते हैं और—

जानकी न पाई रोइ उठे रघुराई
कहि बीरहि सुनाई आई बात प्राण अंत की।
खाय के तवार सुकुमार कहे बार बार
फूली बेल कोऊ गज लै गयो बसंत की ॥५॥६

विरह वर्णन करते समय कवि ने राम की शारीरिक दशा, एवं मानसिक संताप दोनों पर ध्यान दिया है। विरही राम की शारीरिक दशा के चित्रण के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

१. श्री रघुबीर अधीर तिया बिन नीर भरैं अंजुरी भर रोवैं ।५।१०
२. जानकी हाथ न लागत राम कै हाथ सो हाथ मरोरत कैसो ॥५॥१२

---

१. गुनातीत सचराचर स्वामी। राम उमा सब अन्तरजामी ॥
कामिन्ह कै दीनता देखाई। धीरन्ह के मन विरति दृढ़ाई ।१।
क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटहि सकल राम की दाया ॥
सो नर इन्द्र जाल नहि भूला। जा पर होइ सो नट अनुकूला ।२।३६।
—रामचरितमानस, अरण्य काण्ड, पृष्ठ ६४४

२. घन घमण्ड नभ गरजत घोरा। प्रियाहीन डरपत मन मोरा ॥
दामिनी दमक रही घन माहीं। खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं ॥१॥१४॥
—रामचरितमानस, किष्किन्धा काण्ड, पृष्ठ ६६७

३. विरही विहाल मन जनक सुता के दुख
तन को न नींद परे जागे चारों जाम के
भोजन विसार जिय जप्यो करे नाम सिय
डार रहे देह मानो दुखो बड़े घाम के ॥५॥१५॥

४. लोचन चुचात नाही, सुधा न अधर माही,
अगना विहीन ऐसे अग रघुवीर के ॥५॥८॥

५. जानको नाम पुकारत आरत,
वोल थके सुनिये न कहे ते ॥५॥१८॥

कवि हृदयराम ने दैहिक सताप का न तो स्वतन्त्र और न विस्तृत वर्णन किया है।[1] दैहिक सताप सदा मानसिक सताप के सहचर के रूप—अनुभाव के रूप—मे ही चित्रित हुआ है। दैहिक वर्णन के अतिरेक से उत्पन्न भावावेश इसमे दिखाई नही देता।

मानसिक सताप की अभिव्यक्ति चिन्ता, स्मृति और अविवेक के रूप मे हुई है। राम सीता के रूप का स्मरण करते हैं और उसकी मृत्यु की आशका से अधीर हो जाते हैं। कवि ने अपनी कल्पना के कौशल से चिन्ता और स्मृति की सयुक्त अभिव्यजना इस प्रकार की है—

बेनी शेप नाग मुख रोहनी सुहाग
दोऊ लोचन कुरग भौंह भृ ग दुख दै गए।
कोकिला सो वैन चले चाल गजराज,
मृगराज कटि अज कर कजन मैं रँ गए।
कदली सु जघ अग जोत को अनग,
हस पाइन को पाइ मेरे पाछे कर जै गए।
कहै रघुराई छवि जानकी चुराई,
सोई जानकी की मार भाई तेई वाट लै गए ॥५॥७॥

उन्माद[2] और प्रलाप दशाओ का चित्रण अन्य दशाओ की अपेक्षा विस्तार से हुआ है। अभिव्यक्ति के साधन चिरपरिचित एव रूढ हैं। जड-चेतन का ज्ञान भूले हुए राम 'चकवा, चकोर, कुरग, सिंह, मोर[3] व्याल,[4] भृँग, कोकिल,[5] से अपनी सीता का समाचार पूछते हैं। मानवेतर चेतन-सृष्टि के अतिरिक्त वे चपक, चन्दन, ताल, तमाल, कु जर, कज, कदब, गिरि, कूप, सर, बावरी आदि जड प्रकृति

---

१. दैहिक सताप के विस्तृत वर्णन के लिये इस निवन्ध में राजा राम दुग्गल द्वारा लिखित सूर रामावत (द्वितीय खण्ड, तृतीय अध्याय) देखिए।

२. देख मृग कहै मृगनैनी सिया कहा चन्द-मुखा चन्द देख कहै मानो मति बावरी ॥५॥१३॥

३. सवैया ८, अध्याय ५

४. सवैया १२, अध्याय ५

५. सवैया १२, अध्याय ५

को भी सबोधित करते हैं। इनके अतिरिक्त 'धूप, छाह' जैसे प्राकृतिक अस्तित्व से भी बात करते हैं।[1] इस भावावेश की अवस्था मे वे अपने विरह-पूर्व अविवेक का स्मरण ग्लानि से करते हैं—

कचन को मृग वेद पुरान लिख्यो न कहू न विरच सवार्‌यो ।
ताही के हेत चल्यो तज नारि सु मैं मतिहीन कछू न विचार्‌यो[2]
५।१६

उन्माद को अभिव्यक्त करने का एक और रूढ साधन चन्द्र, चन्दन आदि के प्रति विरति भी है।[3] हमारे कवि ने भी इस साधन का प्रयोग किया है। चन्द्रादि सुन्दर और शीतल पदार्थों की भर्त्सना करने के लिये उन्होंने अधिकतर चिर-परिचित कारणो का ही पुनरुल्लेख किया है। बीच-बीच मे कभी कोई मौलिक उद्‌भावना भी दृष्टिगत होती है .—

दाह करै नभ मो प्रजरे न टरै जिय सोच कही मुख देखे ।
और चकोर अगार चुगे जिय सीतल जान सु कौन के लेखे ।
मानहु भोर पिया विख कजन बूडत है जल माहि परेखे ।
नाउ सुधाकर लोग कहैं कवि राम कहे तुम कौन के पेखे ।५।२५

कवि ने प्रकृति का सर्वोत्कृष्ट प्रयोग वातावरण के सृजन मे (उद्दीपन विभाव के रूप मे) किया है। सध्या और रात्रि राम के विरह से प्रभावित भी दिखाई देती हैं और उसे प्रगाढ़तर करती हुई भी—

अलि कोस गए अथए दिननाथ नई छवि तौ नलनी दल की ।
मनो सोई वियोग पडे मुरझाय डलो मुख मेल हलाहल की । ५।।१६
दीप बिहीन परे दुख-सेज, कुहूकन सीत घना घन कारो
देह छुटे नहि नीद जुटे, न फुटे निसई अस गाढ अधारो ।
नारि बियोग तहा तम रूपक ऐसे मे डारत काम तवारो ।
मूदे ई लोचन जानकी को मुख दीसत मोह मयक उजारो ।।५।।१७।।

हिन्दी-साहित्य के अधिकाश विरह-वर्णनो की एक समानता उनकी मुखरता है। इसका एक स्पष्ट कारण तो यह है कि अधिकाश कवियो ने विरह-वर्णन विरही के मुख से कराने की पद्धति को अपनाया है। जायसी, सूर, तुलसी सभी के विरह-वर्णन मे यह वैशिष्ट्य समान रूप से विद्यमान है। विरह-वर्णन की यह परिपाटी सस्कृत साहित्य की बपौती प्रतीत होती है। हृदयराम का विरह-वर्णन इसका अपवाद नही। हनुमन्नाटक और रामचरित मानस के समान उनका विरह वर्णन

१. गाढे बन गौन कर धूप छाह पौन पूछ
धाय धाय पूछैं गिर कूप सर वानरा ।५।१३।
२. इस छन्द के लिये हृदयराम हनुमन्नाटक के ऋणी है—
युक्तमेन हि कैकेय्या यदह प्रेषितो वनम्
'ईदृशो यस्य मे बुद्धिर्हेमग' क्वापि हिरण्मय ।५।।४।।
३. [illegible]

राम के मुख से ही हुआ है। अत. उसमे विरहोद्गार की अभिव्यक्ति सामान्यतः आत्मकथन के रूप मे हुई है। कही-कहीं कवि वर्णन का सूत्र नायक के हाथ में न देकर अपने हाथ मे ले लेता है। ऐसे स्थलो पर चिर-प्रतीक्षित मौन बहु-भाषिता की एकस्वरता को ईषत् विरल करता है। प्रकृति के मौन चित्रण के अतिरिक्त कई बार नायक को मौन अथवा मौनप्राय दिखाकर भी वह इस उद्देश्य को प्राप्त करता है—

१. लोचन चुचात नाही सुधा न अधर माही
   अगना विहीन ऐसे अग रघुवीर के ॥५॥८॥
२. भोजन विसार जिय जप्यो करै नाम सिय
   डार रहे देह मानो दुखी वडे घाम के ॥५॥१५॥
३. जानकी नाम पुकारत आरत
   बोल थके सुनिये न कहे ते ॥५॥१८॥

विरह-वर्णन मे प्रकृति का प्रयोग एक और रीति से भी होता है जो 'ऊहा' के नाम से विख्यात है। इस प्रणाली के अन्तर्गत साधारणत विरह का कथन नही, वर्णन होता है। ऐसे वर्णन मे अति अथवा अतिशय का विशेष योग रहता है। हमारे कवि ने साधारणतः ऊहा के कलास्त्र का प्रयोग नही किया। केवल दो स्थानो पर इसका प्रयोग है—

१. जाहि निजकात सोऊ रूख पात जात वर
   वात कहै कौन ऐसे हाथ लागे काम के।
   देखत वटाऊ आप रोवत रुआऊ।
   तहाँ जरै घास झाऊ जहाँ परै पाय राम के।५।१५
२. छुए जलजात जलजात न्हात नीर, गात
   लागे वात जैसे ताते रेत कन नीर के।५।८।

साराश यह है कि हृदयराम ने राम के विरह का भरपूर एव सश्लिष्ट चित्र उपस्थित किया है। उसने विरह की अभिव्यक्ति के लिए कथन और वर्णन, दोनो रीतियो का उपयोग किया है। पात्र, प्रकृति और कवि सभी इस अभिव्यक्ति के माध्यम बने हैं। इसमे मौलिक उद्भावना के दर्शन भी होते हैं, और चिर-परिचित रूढ-रीतियों के भी। इसे हिन्दी के अत्युत्तम विरह-वर्णनो मे तो स्थान नही दिया जा सकता;[१] किन्तु विरह-वर्णन की अत्युत्तम कला-रीतियो को अपनाने का आग्रह इसमे अवश्य है।

लंका-दहन—लका-दहन का वर्णन हृदयराम ने समुचित विस्तार से किया है। इस वर्णन मे उनका आदर्श हनुमन्नाटक (सस्कृत) न होकर तुलसी की कवितावली है।

हनुमन्नाटक मे अग्निशिखाओं का वर्णन अलकार-सृष्टि के माध्यम से हुआ है। कवितावली मे तुलसी ने इस कला-साधन के प्रति अरुचि नहीं दिखाई। उन्होंने

१. पजाब में रचित तीनों रामकथाओं के विरह-वर्णनों मे यह विरह-वर्णन सर्वोत्तम स्थान का अधिकारी है।

कवितावली के कई छन्दो मे अग्नि-शिखाओ के वर्णन मे सुन्दर समानान्तरों की बौछार सी लगा दी है। इस शैली से कवि के कला-कौशल का अकाट्य प्रमाण तो मिलता है, वास्तविक घटना की भरपूर झाँकी नही मिलती। ऐसा वर्णन अपेक्षाकृत स्थिर होता है और वह वस्तु-स्थिति का उपयुक्त गतिशीलता से वर्णन नही कर पाता। पाठक का ध्यान अग्नि-शिखाओ अथवा तदनुरूप उपमानो मे ही उलझा रहता है। अग्निकाण्ड से पीडित एव विस्थापित प्राणियो के कार्यकलाप एव मानसिक व्यापार तक इस उत्प्रेक्षाशैली की गति नही।

हृदयराम ने इस शैली के प्रति विशेष मोह नही दिखाया। केवल एक कवित्त में हनुमन्नाटक (सस्कृत) के एक छन्द का भाषान्तर प्रस्तुत कर दिया है। अन्यथा उन्होने अग्नि शिखाओं मे जलते-भुलसते राक्षस-समूह, रक्षार्थ-कृत कार्यकलाप एव तात्कालिक मनोद्गारों को अकित करने मे भी अपनी कला का साफल्य माना है। तुलसी का अनुसरण उन्होने लका काण्ड के मानवोन्मुख चित्रण मे ही किया है, उत्प्रेक्षा-प्रधान चित्रण मे नही। यहाँ दो ऐसे कवित्त उद्धृत किये जाते हैं जिनसे अग्नि में जलते हुए घर, बाजार, राक्षस समूह एव मानवेतर प्राणियो की झाँकी भी उपस्थित होगी तथा रक्षा निमित्त अनेक उपायो मे सलग्न प्राणियो की विभिन्न (व्यक्तिगत स्थिति के अनुसार, अत परस्पर-विरोधी) मानसिक प्रतिक्रियाओं का भी परिचय मिलेगा—

(१) छाड छाड छोहरन मोहरन सौज डार,
छप जज जौहर (जोहड) हुतासन के त्रास ते।
जानत बुझाई छिन छिन ही सवाई,
लाई, हनुमान की बुझे न पूस पास ते।
सोने की अटारी चित्रसारी मार जारी,
जैसे घास की अटारी जर गई फिर घासते।
दाँतन चबाई हाइ पकर्‌यो न जाइ कपि,
भाज गई रानी सब रावण के पास ते ॥६॥६५॥

(२) खासी चित्रसारी चित्र 'हीरन सवारी,
धाय तेई तो जराई जरँ गई लेत सास ते।
लोक भागे जात पाछे ओढना जरत जात,
कैसे सुख पैये विना लकापती नास ते।
चौहरा बाजार जरे वीथी चटसार जरे,
धोरा हथ्यार जरे कपि के विलास ते।
जारी हनूमान पर जारी सीता हूं के सत।
छार ह्वै न गई सु विभीखन के वासते ॥६॥६६

अग्नि-काण्ड, लका-निवासियों मे अपनी स्मृति चिरकाल के लिए छोड जाता है। जब लंका निवासी अगद को देखते हैं तो उसे हनुमान ही समझ कर त्रस्त हो उठते हैं—

(१) छाड गढ चले एक कहे भाग भले नाही,
देश नाश ह्वै है भाई रावण के दोष सो।
एक जे सयाने भर माटी जल आने,
लै चढाए धाम-धाम फेंट बाध ठाढे चोख सो ॥८॥३२॥

(२) कजन के धाम किह् काम जहाँ ए उपाधि,
रामराज भल्यो जहाँ सोवे साय लोविया ॥८।३३॥

(३) एक हो जु आयो तिन पूछ सो जरायो गाउ,
लै कटक धायो जिन सिंधु नीर पक की।
कहवै को बीस पै न सूझत है एक आँख,
देखत हैं आँखे कोऊ कुल के कलक की ।८।३४

इन पक्तियो मे भी त्रास, तत्परता, विरति एव प्रजा का लकापति मे विश्वासाभाव—इन मानसिक प्रतिक्रियाओ का ही परिचय मिलता है। लकादाहोत्तर दृश्य धूम्र-रजित भग्नावशेषो का नही, भग्न नैतिक अवस्था का है। साराश यह कि हृदयराम ने लकादाह का चित्रण करते समय अपनी दृष्टि मुख्यत मानवीय प्रतिक्रियाओ पर ही रखी है।

प्रकृति-चित्रण—हनुमन्नाटक के कुछ मार्मिक स्थलो का अध्ययन करते हुए हम देख चुके हैं कि यह रचना मुख्यत. मानवीय सवेदना के ताने-बाने से निर्मित है। हमारे कवि की दृष्टि जितनी मानवीय प्रकृति पर रही है उतनी मानवेतर प्रकृति पर नही। परिणामतः प्रकृति का स्वतन्त्र, आलम्बन रूप मे चित्रण हमारे कवि का अभीष्ट नहीं, उसका उपयोग मानवीय कार्यकलाप के लिए उपयुक्त वातावरण के सृजन मे ही हुआ है।

विरह-वर्णन प्रसग मे प्रकृति राम-विरह के उद्दीपनार्थ करुण-वातावरण का सृजन करती है एव राम-विरह से प्रभावित होती है—इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। वनागमन के अवसर पर भी प्रकृति के भीम-रूप ने स्थिति को अधिक कारुणिक बनाने मे सहायता दी है। जहाँ न सूर्य की किरणें प्रवेश पाती है न चन्द्र की रश्मियाँ, ऐसे 'अहि देश' जैसे वनप्रदेश से राम गुजर रहे हैं।[1] यहाँ दिन मे भी ऐसा अन्धकार रहता है कि सूर्योदय के स्वागत मे हल्की-सी मुस्कान नही खिलती।[2] मार्ग मे सिहादि हिंस्र जन्तुओ के भोज्य पशुओ के अध-खाये अग बिखरे हुए है। ऐसे भयावह वनप्रदेश के प्रथम-परिचय से त्रस्त सीता आँखें मूँद कर राम की कटि से लिपट जाती है और स्वभावत धैर्यवान राम का धैर्य भी विचलित-सा दिखाई देता है[3]—

---

१. मानो अहि-देस किधौं कुहू कारे भेस ढोले मृग को न ज्योति कहाँ चाँदनी न चद की ३।५०

२. तीनो बैठ जात जहाँ गोखरू गड़ात मुसकान न जनात समाचार सुनो प्रात के ।३।५५

३. जानकी निहार भर स्वास मन मार कैसी कुशलात हमैं दुख लागे तात के ।३।५५

(क) उवटन गैल सदा सिहन की सैल,
बनजारे के से बैल मानो बोले डकरात से।
और मो करी कुरग गाधे अग परे कहू,
है सुरग भूमि कहूँ देखे बिललात से।
मोरन को शोर सुन फणि मणि डार, मु ड,
दिया सो बुझाय बचे है अँधेरी रात से।
गीधन की माल कहूँ जबुक कराल,
कहूँ नाचत बिताल लै कपाल जलजात से।३।५२

(ख) कहूँ वन कोल कहूँ रोझन के टोल कहूँ,
कहू भीलन के बोल तहा बात न अनन्द की।
मानस के नाते बनमानस हजूर कहू,
बानर लगूरन उचाई गिरि मद की।
कहूँ चाचाक कहूँ भूतन डरात कहूँ,
कारे काक मानो सूर कहूँ पूत बद की।
जानकी डरात बीच बीच चली जात,
तऊ नैन मूँद लिये कटि गहे राम चद की।३।५४

उपरिलिखित उद्धरणों की शैली विशेष रूप से द्रष्टव्य है। यहाँ वर्णन अपने विशुद्ध रूप में है एव भाव की अभिव्यक्ति सीधे अवक्र रूप में हुई है। वर्णन को सजीवता अथवा भाव की तीव्रता के लिये अलकार-सृष्टि का मुखापेक्षी नहीं होना पड़ा। जहाँ भी प्रकृति का उद्दीपन रूप अनिश्चित अथवा दुर्बल है, वहीं कवि ने परिगणन अथवा अलकरण का आश्रय लिया है। परिणामत न तो प्रकृति के चित्रण में यथेष्ट सजीवता है और न ही तज्जन्य भाव की रूपरेखा स्पष्ट है। उदाहरण के लिये अशोक वन का वर्णन लीजिये—

श्री रघुबीर को सीस नवाय गयो कपिराय जहाँ सुध पाई।
चपक मौलसिरी वट ताल लवग लता करनाल सुहाई।
वाज कदव जुही कदली सुर दाडिम वेरि इला अमराई।
केतकी हार शृगार गुलाल सरोवर कप महा सुखदाई।६।३३

अथवा सूर्योदय का एक दृश्य लीजिये। इसमे विवरण अपेक्षाकृत विश्वसनीय है और सामूहिक चित्र अपेक्षाकृत अधूमिल, किन्तु विवरण का चयन प्रभावैक्य के उद्देश्य से नहीं हुआ—

चिरई चुहचुहानी प्राची पियरानी अति,
आध बाट चकवा औ चकवी मिलात है।
अमल अकास भयो कमल फुलन लागे,
जुमल भवर रस माते अकुलात है।

तमीपति जोति कुमलानी तम चोर बोले,
चोर बाट भागे सख सबद सुहात है।
जागे राम काम की कमान टूटी छूट्यौ बल,
लटी सी तरैया बीच तेऊ छपि जात है।७।२६

साराश यह है कि प्रकृति-चित्रण मे हमारे कवि की विशेष रुचि नही है। इस ग्रथ मे प्रकृति चित्रण बहुत विरल है। आलम्बन रूप मे प्रकृति के चित्रण का जहाँ भी प्रयास है, वहाँ कवि रूढ-परिगणन मे उलझ गया है और किसी निश्चित प्रभाव का सृजन नही कर सका। हमारे कवि की रुचि मुख्यत मानवीय सवेदना के चित्रण मे है। अत. जहाँ उन्होने मानवीय कार्यकलाप के लिए उपयुक्त वातावरण उपस्थित करने के लिए प्रकृति का प्रयोग किया है, वहाँ उन्हे पर्याप्त सफलता मिली है।

ऐतिहासिक महत्त्व—हृदयराम कृत हनुमान नाटक अथवा रामगीत पजाब मे रचित प्रथम हिन्दी प्रबन्ध है। हृदयराम के समकालीन मीना गुरु मिहरवान के प्रश्रय मे रामायण और महाभारत की कथायें सरल किन्तु काव्य गुण सम्पन्न गद्य मे लिखी जा रही थी।[1] इससे यह अनुमान असगत न होगा कि सत्रहवी शताब्दी के प्रथम चरण मे सगुण-भक्ति पजाब मे जड पकड रही थी।

'हनुमान नाटक' बडे ऐतिहासिक महत्त्व का ग्रथ है। विषय-वस्तु (रामकथा), दृष्टिकोण (सगुण भक्ति), काव्यरूप (प्रबन्ध), भाषा (परिनिष्ठित व्रज), छन्द (कवित्त-सवैया) आदि मे यह दशम ग्रथ का अग्रणी है। आधुनिक विद्वानो द्वारा इस ग्रथ का सम्यक् अध्ययन न होने के कारण दशम ग्रथ के उपयुक्त मूल्याकन मे भी चूक हुई है। गत वर्ष प्रकाशित "दशम ग्रथ का कवित्व", शोध-प्रबन्ध के लेखक ने दशम ग्रथ को एक असपृक्त घटना के रूप मे चित्रित किया है। हमारा विनम्र निवेदन है कि ऐसी धारणा निर्मूल है। दशम ग्रथ से पूर्व उसकी विषयवस्तु और शैली सम्बन्धित परम्परा की स्थापना हो चुकी थी।[2] हनुमान नाटक उसका प्रमाण है।

बचित्र नाटक के रचयिता गुरु गोविंदसिंह

बचित्र नाटक—दशम ग्रथ मे सकलित रचनाओ मे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण रचना है बचित्र नाटक। इस ग्रथ मे निम्नलिखित रचनायें सम्मिलित हैं :

(१) अपनी कथा—कवि का विस्तृत आत्मकथात्मक परिचय
(२) चण्डी चरित्र (उक्ति विलास)।
(३) चण्डी चरित्र (द्वितीय)।
(४) चौबीस अवतार वर्णन जिसमे मच्छ, कच्छ, नर, नारायण, मोहिनी, वराह, नृसिह, बावन, परशुराम, ब्रह्मा, रुद्र, जालन्धर, विष्णु, दुर्गा,[3]

१. देखिये हरि जी कृत सुखमना सहस्रनाम (हस्तलिखित)।

२. भाषा के सम्बन्ध में भाई गुरुदास के कवित्त-सवैये, और विषयवस्तु की दृष्टि से सुखमना सहस्रनाम और हरिया जी का ग्रन्थ भी उल्लेखनीय है।

३. अवतार का नाम नहीं दिया गया, केवल मधु-कैटभ के वध की ओर संकेत किया गया है।

अर्हन्त देव, मनु, धन्वन्तरि, सूर्य, चन्द्र, राम, कृष्ण, नर, बौद्ध और निहकलकी (कल्कि) अवतारो की कथायें दी गई हैं।

(५) ब्रह्मावतार (७)।
(६) रुद्रावतार (२४)।
(७) पारसनाथ रुद्रावतार।
(८) चरित्रोपाख्यान।

सक्षेप मे बचित्र नाटक मे सभी युगो की अवतार-कथायें दी गई हैं। ब्रह्मावतार की कथा एक कल्प के व्यतीत हो जाने के बाद की है। बचित्र नाटक से गुरु गोविन्दसिंह का अभिप्राय उस विचित्र घटना-प्रवाह से है जो एक कल्पारम्भ से कल्प-समाप्ति तक एव तदुपरान्त भी चलता रहता है।

पौराणिकता

अवतारवाद—अवतारवाद पौराणिक-भावना का मेरुदण्ड है। गुरु जी ने अवतारवाद को स्पष्ट रूप मे स्वीकार किया है। जिस विचित्र घटना-प्रवाह का उल्लेख ऊपर किया गया है, उसका एक अनिवार्य अग है दैवी और आसुरी शक्तियो का द्वन्द्व। कालपुरुष इसी द्वन्द्व मे हस्तक्षेप करने के लिए अवतार धारण करते हैं। प्रायः सभी अवतार-कथाओ मे इस तथ्य की ओर निर्भ्रान्त सकेत किया गया है।[1] आसुरी शक्तियो से त्रस्त देवता क्षीर सागर मे पहुँचते हैं और भगवान् उनके परित्राण के निमित्त अवतार धारण करना स्वीकार करते हैं।[2]

कथा के प्रवाह से स्पष्ट हो जाता है कि बचित्र नाटक का उद्देश्य आसुरी शक्तियो के द्वन्द्व, आसुरी शक्तियो के अभ्युदय, भगवान् के हस्तक्षेप और आसुरी शक्तियो के नाश के चित्र उपस्थित करना ही है। बचित्र नाटक के आरम्भ मे कवि अपना परिचय देते हुए स्पष्ट कर देते हैं कि दो विरोधी शक्तियो का द्वन्द्व तो आदि-काल से चला आया है। यह द्वन्द्व किसी न किसी रूप मे सदैव चलता रहता है। अतः पुराण-कथाओं का सामयिक महत्त्व भी निर्विवाद है। गुरु जी स्वय इसी "बचित्र नाटक" अथवा 'तमाशा" मे भाग लेने के लिए भगवान् द्वारा भेजे गये हैं।[3] उनके

---

१. जब जब होत अरिस्ट अपारा। तब तब देह धरत अवतारा।
—दशम ग्रथ (मत्स्य अवतार), पृ० १५५

२. ब्याकल सकल देवता भये। मिलि कर सभ वासव पै गये।
सभ देवत मिलि करयो विचारा। छीर समुद्र कहु चले सुधारा।
काल पुरुष की करी बडाई। इम आग्या तह ते तिन आई।
दिज दस दसन जगत मो सोहत। नित उठ करत अघन ओघन हत।
तह तुम धरो बिसन अवतारा। हनहु सत्रु के मत्र सुधारा।
—दशम ग्रथ (परसराम अवतार), पृ० १६६

३. मैं हों परम पुरख को दासा। देखन आयो जगत तमासा।
हम इह काज जगत मो आए। धर्म हेत गुर देव पठाए।
जहा तहां तुम धर्म बिथारो। दुस्ट दोखियन पकरि पछारो।
—दशम ग्रथ, पृ० ५७

"जग-प्रवेश" का उद्देश्य भी वही है जो पूर्ववर्ती अवतारों का था। बचित्र-नाटक की समाप्ति पर भी कालपुरुष और पठानों का युद्ध दिखाकर अवतारवाद के सामयिक महत्त्व का ही प्रतिपादन किया गया है। संक्षेप में, हमारा मत है कि बचित्र-नाटक अवतारवाद के सिद्धान्त को स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है और यह स्वीकृति सामयिक आवश्यकता के अनुसार है।

साम्प्रदायिकता—पुराणों की द्वितीय विशिष्टता उनकी साम्प्रदायिकता है। 'पंचलक्षण सब पुराणों का मुख्य उद्देश्य होने पर भी एक-एक पुराण में एक-एक विषय का विस्तार सहित वर्णन करना ही सब पुराणो का उद्देश्य है। इतना ही नहीं वरन् विभिन्न पुराणो में विभिन्न उपास्य सम्प्रदायों का प्रभाव भी लक्षित होता है, किस-किस सम्प्रदाय के उद्देश्य-साधन के लिए कौन-कौन-सा पुराण रचा गया है, बहुधा पुराण के नाम-मात्र से ही इसका यथेष्ट प्रमाण मिलता जाता है।[1] "बचित्र-नाटक" में भी एक नवीन सम्प्रदाय (पथ) की घोषणा है :

मैं अपना सुत तोहि निवाजा। पंथ प्रचुर करबे कहु साजा।
जाहि तहां ते धरम चलाई। कबुधि करन ते लोक हटाई।
कवि बाच(दोहरा)—ठाढ़ भयो मैं जोरि करि वचन कहा सिर न्याइ।
पंथ चलै तब जगत मै जब तुम करहु सहाइ।[2]

यह सम्प्रदाय अथवा पथ पूर्वकालीन वैष्णव, शैव एवं शाक्त मतों से भिन्न है, एवं इस्लाम से भी भिन्न है, इसका स्पष्ट निर्देश "बचित्र-नाटक" के आरम्भ ('जग-प्रवेश' करन नामक अध्याय) मे दे दिया गया है। यह नवीन सम्प्रदाय पुरातन सम्प्रदायों से सम्बद्ध भी है, एवं उनसे विलक्षण भी। इस सम्प्रदाय के दृष्टिकोण से ही "बचित्र नाटक" की रचना हुई है। बचित्र नाटक के प्रथम प्रबन्ध (चण्डी चरित्र उक्ति विलास) के आरम्भ से पूर्व ही कवि सूचना दे देते हैं कि जिस कालपुरुष ने उन्हें नव-पन्थ-सृजन का आदेश दिया है, वही कालपुरुष उन्हें पूर्व युगो की कथा कहने की प्रेरणा दे रहा है :

सरब काल करुणा तब भरे। सेवक जानि दया रस ढरे।
जो जो जन्म पूरबलो भयो। सो सो सभ सिमरण कर दयो।
मो को इती हुती कह सुद्धं। जस प्रभ दई कृपा करि बुद्धं।[3]

महाकाल—इस नवीन सम्प्रदाय का उपास्य है कालपुरुष। इसे उन्होने महाकाल, सर्वकाल, सर्वलोह, कलि, कल आदि नामों से भी स्मरण किया है। सारी सृष्टि का संचालन इसी कालपुरुष द्वारा होता है। सभी अवतार महाकाल की आज्ञा द्वारा शासित हैं। कोटि-कोटि ब्रह्मा, विष्णु और महेश इसी कालपुरुष की "देहि" से

---

१. अष्टादश पुराण दर्पण, पृ० ३०।
२. दशम ग्रंथ, पृ० ५७।
३. वही, पृ० ५३

जन्म लेते है।[1] कई स्थानो पर कहा गया है कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी काल-पुरुष को समझने मे असमर्थ हैं।[2] सभी अवतार उसी के भेजे हुए हैं।

गुरु जी ने महाकाल को भी विष्णु के समान क्षीर सागर का निवासी बताया हैं। उन्होंने उसे "सेप साई" के नाम से भी अभिहित किया है।[3] लक्ष्मी इसी महाकाल की दासी है। विपत्ति पडने पर देवता क्षीर सागर मे इसी महाकाल के पास जाते हैं और वह विष्णु को अवतार लेने की आज्ञा देता है।

> असुर लगे बहु करन विपादा। किनहू न तिनै तनक नै साधा।
> सकल देव इकठे तब भये। छीर समुद्र जह थो तह गये।
> वहु निर बसत भये तिह ठामा। बिसन सहित ब्रह्मा जिह नामा।
> बारबार ही दुसत पुकारत। कान परी कल के धुनि आरत।

> तोटक छन्द—बिसनादक देव लखे बिमन।
> मृद हास करी कर काल धुन।
> अवतार धरो रघुनाथ हर।
> चिर राज करो सुख सो अवध।[4]

महाकालेतर देवताओ मे भगवती चण्डी पर आपका विशेष मोह है। ऐसा प्रतीत होता है "धर्म-युद्ध के चाव" की भावना से ग्रन्थ-सृजन[5] करने वाले गुरु गोविन्दसिंह ने भगवती चण्डिका को युद्ध की अधिष्ठात्री देवी के रूप मे स्वीकार किया है। "मैं न गनेसहि प्रथम मनाऊँ"[6] कहने वाले लेखक ने कई रचनाओ के आरम्भ मे भगवती चण्डी का स्मरण किया है। 'चौबीस अवतार वर्णन" मे अनेक अवतार-कथाओ का आरम्भ "श्री भगवती जी सहाय" इन शब्दो से हुआ है। भगवती से हर प्रकार का वरदान प्राप्त होता है। गोपियाँ कृष्ण को पति रूप मे प्राप्त करने के लिए भगवती की अभ्यर्थना करती है,[7] शूरवीर युद्ध मे जय प्राप्त करने के लिए भगवती की वन्दना करते हैं। भगवती चण्डी के उपासक स्वय शिव और कृष्ण से भी पराजित नही होते।[8] गुरु गोविन्दसिंह ने युद्ध-कार्य के लिए तो भगवती चण्डी का

---

१. काल पुरख की देह मो कोटिक बिसन महेस।
कोटि इन्द्र ब्रह्मा किते रव ससि कोटि जलेस।
—दशम ग्रथ (चौबीस अवतार), पृ० १८२

२. जो चौबीस अवतार कहाए। तिन भी तुम प्रभ तनक न पाए।
—दशम ग्रथ (चौबीस अवतार), पृ० १५६

३. सेप नाग पर सोवो करै। जग तिह सेप साइ उचरै।
—दशम ग्रथ (अपनी कथा), पृ० ४७

४. दशम ग्रथ (राम अवतार), पृ० १८८

५. दसम कथा भागोत की भाखा करी बनाइ।
अवर वासना नाहि प्रभ धरम जुद्ध के चाइ। —दशम ग्रन्थ, पृ० ५७०

६. दशम ग्रन्थ, पृ० ३१०

७. वही, पृ० २८४

८. वही, पृ० ४५२

आवाहन किया ही है, ग्रंथ-रचना के लिए भी उन्होंने भगवती चण्डी की ही वन्दना की है। देवी सरस्वती को साधारणत उन्होने स्मरण ही नही किया, जहाँ किया है वहाँ भगवती चण्डिका के पश्चात। कृष्णावतार का आरम्भ इस प्रकार हुआ है

विनु चण्ड कृपा तुमरी हम पै मुख तै नही अच्छर हौ करिहौं।
तुमरो कर नामु किधो तुलहा जिम वाक समुद्र बिखै तरिहौं।
दोहरा—रे मन भज तू सारदा अनगन गुन है जाहि।
रचौ ग्रन्थ इह भागवत जो वै कृपा कराहि।[1]

स्वय कृष्ण के मुख से भगवती चण्डिका का स्तवन करा के गुरुजी ने भगवती को सर्वोपरि माना है। वस्तुत बचित्र नाटक म भगवती चण्डिका महाकाल के निकटतम देव के रूप म स्वीकृत हैं। 'राम और कृष्ण मेरे उपास्य नही' ऐसा बचित्र नाटक मे कई बार कहा गया किन्तु भगवती के विषय मे ऐसे वचन एक बार भी नही कहे गये। कई स्थानो पर भगवती को उपास्य शक्ति के रूप मे भी ग्रहण किया गया है।

समन्वय—पौराणिक साम्प्रदायिकता का अभिन्न-प्राय अग है—समन्वय-भाव। पुराणो मे जहाँ सम्प्रदाय-विशेष के उपास्य को सर्वोत्कृष्ट देव सिद्ध करने का आग्रह है वहाँ अन्य देवताओ के वहिष्कार का आग्रह नही है। पुराण देवता विशेष का सम्बन्ध अन्य देवताओ से स्थापित करने का यत्न करते हैं। समस्त देव-मडली पुराणो मे स्वीकृत है।

बचित्र नाटक मे भी यही समन्वय की भावना पाई जाती है। इस नव पुराण मे महाकाल उपास्य देव के रूप मे स्वीकृत हैं, अन्य देव उपास्य नही हैं, इसकी ओर स्पष्ट सकेत बचित्र नाटक मे कई स्थानो पर मिलते हैं। इन देवताओ की अवमानना का भाव बचित्र नाटक मे नही है। उन्हें आदरणीय, एव उनके सत्कर्मों को अनुकरणीय माना गया है। ब्रह्मा[2] और रुद्र[3] को वे विष्णु का ही अवतार मानते हैं, और विष्णु-कथा (रामकथा) एव विष्णु-भक्ति के विषय मे उनकी भावना इस प्रकार हैं:

जो यह कथा (रामकथा) सुनै अरु गावै
दूख पाप तिह निकट न आवै
बिसन भगत की ए फल होई
आधि व्याधि छ्वै सकै न कोई।[4]

---

१ दशम ग्रन्थ, पृ० २५५

२ जब जब बेद नाम होए जाही। तब तब पुन ब्रह्मा प्रगटाही।
ताते बिसन ब्रह्म बपु धरा। चतुरानन कर जगत उचरा। —दशम ग्रन्थ, पृ० १७२

३ महाकाल ने विष्णु को आज्ञा दी तुम रुद्र स्वरूप को धारण करो।
—दशम ग्रन्थ, पृ० १७३

४ दशम ग्रन्थ, पृ० २५४
इसी प्रकार भगवती चण्डिका की वन्दना का महत्त्व भी उन्हें स्वीकार्य है
जे जे तुमरे ध्यान को नित उठि ध्यैहैं सन्त,
अन्त लहैंगे मुकतफल पावहिंगे भगवन्त। —दशम ग्रन्थ, पृ० ११६

महाकालेतर देवताओ से वे बार-बार वर-याचना भी करते हैं :

भगवती चण्डिका से

देह सिवा बर मोहि इहै सुभ करमन ते कबहू न टरो ।[१]

कृष्ण से

अब रीझ के देहु वहै हम को जोऊ हौं बिनती कर जोर करो
जब आउ की औध निदान बने अति ही रन मे तब जूझ मरो ।[२]

१. तह हम (गुरु गोबिन्दसिंह) अधिक तपस्या साधी ।
महाकाल कालका अराधी ।[३]

२. सरबकाल है पिता हमारा,
देवि कालका मात हमारा ।[४]

भगवती चण्डिका अन्य अवतारो से भिन्न नहीं है ऐसा कह कर उनको आराधना मे अन्य सभी देवो के आराध्य-स्वरूप को प्रकारान्तर से ग्रहण किया गया गया है । उदाहरण के लिये वैष्णव, शैव और शाक्त मतो के समन्वय की द्योतक निम्नाकित पक्तियाँ प्रस्तुत हैं :

तुही ब्राहमी, बैस्नवी स्त्री भवानी ।
तुही बासवी, ईस्वरी कातंक्यानी ।
तुही अम्बका दुस्टहा मुण्डमाली ।
तुही कस्ट हन्ती कृपा कै कृपाली ।
तुही ब्राहणी ह्वै हिरन्नाछ मार्‍यो ।
हरन्नाकस सिहणी ह्वै पछार्‍यो ।
तुही बावनी ह्वै तिनो लोग मापे ।
तुमी देव दाना किये जच्छ थापे ।
तुमी राम ह्वै कै दसाग्रीव खण्ड्यो ।
तुमी कृस्न ह्वै कस केसी विहण्ड्यो ।[५]

सक्षेप मे, हमारा मत है कि दशम ग्रन्थ मे पूर्ववर्ती पौराणिक देवताओ एवं सम्प्रदायों की एकता एव समन्वय की भावना पूर्ण रूप से स्वीकृत है ।

वर्णाश्रम—पुराण वर्णाश्रम धर्म को स्वीकार ही नहीं करते, उसे पुष्ट भी करते हैं । कई विद्वानो का मत है कि पुराण ब्राह्मण दृष्टिकोण से लिखे गये हैं । बचित्र नाटक वर्णाश्रम धर्म को स्वीकार करता है । ब्राह्मण वर्ग की परम्परागत

१. दशम ग्रन्थ, पृ० ६६ ।
२. वही, पृ० ५७०
३. वही, पृ० ५५
४. वही, पृ० ७३
५. वही, पृ० ३०६

उच्चता पर बचित्र नाटक मे थोडा सा भी सदेह नही किया गया, किन्तु कुल मिलाकर बचित्र नाटक की रचना क्षत्रिय-दृष्टिकोण से हुई है।

पचलक्षण—पौराणिकता की द्योतक इन प्रवृत्तियो के अतिरिक्त दशम ग्रथ मे पचलक्षण के निर्वाह का आग्रह भी दिखाई देता है। यह तो सर्वविदित है कि सभी पुराणो मे पचलक्षणो का निर्वाह नहीं हो पाया। दशम ग्रथ मे सर्ग, वश और वशानुचरित का तो स्पष्ट उल्लेख है। बचित्र नाटक का आरम्भ ही सृष्टि की उत्पत्ति (सर्ग) से होता है। नव-सम्प्रदाय का ग्रन्थ होने के कारण इसमे गुरु-वश की ही नामावली दी गई है (वश)। इसी वश से सम्बन्धित कुलद्वय बेदी-कुल और सोढी-कुल का चरित्र-वर्णन भी विस्तार से हुआ है (वंशानुचरित)। प्रतिसर्ग और मन्वन्तर का औपचारिक वर्णन कही नही हुआ। किन्तु कतिपय अवतार-कथाओ मे प्रलय का सक्षिप्त वर्णन है। चारो युगो की कथायें कहने के पश्चात् कृतयुग की कथा फिर से कही गई है। कल्प भर की कथा में मन्वन्तर का समावेश भी प्रकारान्तर से होता है। सक्षेप मे, बचित्र नाटक पचलक्षणो की शर्त शत-प्रतिशत रूप से तो पूरी नही करता, किन्तु इसमे पचलक्षणो को ग्रहण करने का आग्रह अवश्य है।

उपर्युक्त तथ्यो के आधार पर बचित्र नाटक को नव पुराण कहना अनुपयुक्त न होगा।

वर्गीकरण—बचित्र नाटक मे सकलित पौराणिक प्रबन्धो को आकार एव प्रतिपादन शैली की दृष्टि से तीन वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है :

(१) महाकाव्य।
(२) खण्ड काव्य।
(३) कथा सग्रह।

महाकाव्य (रामावतार)

महाकाव्य कोटि की केवल दो रचनायें बचित्र नाटक मे सम्मिलित हैं—रामावतार और कृष्णावतार। रामावतार ८६४ छन्दो मे और कृष्णावतार २४६२ छन्दो मे समाप्त हुई हैं। गुरु जी के अपने विशिष्ट शब्दो मे रामावतार को बीन कथा (सक्षिप्त) और कृष्णावतार को छोर कथा (विस्तृत) का अभिधान दिया जा सकता है। दोनो कृतियो मे चरितनायकों की सम्पूर्ण कथा देने का प्रयास किया गया है। रामावतार मे राम-जन्म से पूर्व रघुकुल की सक्षिप्त कथा, राजा दशरथ के विवाह, कैकेयी को वरदान, श्रवण की मृत्यु आदि घटनाओं को पूर्वपीठिका के रूप मे दिया गया है। अन्त मे जानकी को वनवास, लव-कुश-युद्ध के पश्चात् राम-लक्ष्मण सहित सभी अयोध्यावासियो के स्वर्गारोहण की कथा कही गई है। बीच-बीच में 'बीन कथा' के आग्रह ने कतिपय घटनाओ का वर्णन पर्याप्त विस्तार से नही होने दिया। किन्तु कुल मिला कर कथा अत्यन्त लाघव और सघनता से कही गई है।

कतिपय मार्मिक स्थलो का वर्णन अत्यन्त तन्मयता से किया गया है। राम का वनगमन और सीताहरण पर राम का विरह ऐसे ही दो स्थल हैं। इनका अपेक्षाकृत विस्तृत परिचय यहाँ अनुपयुक्त न होगा।

वनगमन—गुरु गोविन्दसिंह ने राम के वनगमन प्रसंग का वर्णन विशेष तन्मयता एवं मार्मिकता से किया है। तुलसीदास तथा हृदयराम के समान उन्होंने वनमार्ग की वधूटियों के उद्गार तो प्रस्तुत नहीं किये किन्तु अयोध्या के प्रजाजनों एवं राम के सभी परिजनों के चित्त-क्षोभ का चित्र विशेष कौशल से अंकित किया है। कैकेयी और दशरथ के वार्तालाप को उन्होंने सर्वथा मौलिक ढंग से प्रस्तुत किया है। कैकेयी की आकस्मिक वर-याचना, इस अप्रत्याशित विश्वासघात पर दशरथ की प्रचण्ड प्रतिक्रिया, दशरथ की द्विधा—उसका मौन, सोन्माद क्रोध, एवं दया याचना, वरदान की कैकेयी एवं दशरथ द्वारा एक ही समय भिन्न व्याख्या आदि का वर्णन बहुत नाटकीय ढंग से हुआ है। लघु-छन्दों के माध्यम से कवि ने दशरथ की उद्विग्न मानसिक अवस्था एवं स्खलित स्वर की बड़ी सशक्त अभिव्यक्ति की है। कुल मिला कर, इस दृश्य का प्रभाव किसी 'आधुनिक नाटक' के दृश्य का-सा है। उस दृश्य का एक उद्धरण यहाँ प्रस्तुत है—

(केकई इम ज्यों सुनी भई दुखता सर्बंग
झूम झूम गिरी मृगी जिम लाग बाण भुजंग
जात ही अवधेस कउ इह भांति बोली बैन)

कैकेयी : दीजिये वर भूप मो कउ जो कहे दुइ दैन ॥२००॥
राम को वन दीजिये मम पूत को निज राज ॥२०१॥

दशरथ : पापनी बन राम को पैहै। कहा जस काढ ?
(भस्म आनन ते गई कहि कैस के असि बाढ।
कोप भूप कुवड लै) तुहि काटिये इह काल
नास तोर न कीजिये (शस्त्र फेंक कर) तक छाडिये तुहि बाल

(स्वर-परिवर्तन)

नर देव देव राम हैं। अभेव धर्म धाम है।

(सक्रोध)

अबुद्ध नारि तैं मनै। विसुद्ध बात को भनै।
(दशरथ सहसा मौन हैं)

कैकेयी : वर नरेस दीजिये। कहे सु पूर कीजिये।
न सक राज धारिये। न बोल बोल हारिये।
न लाजिये।
(राजा यहाँ से भाग जाना चाहते हैं)
न भागिये।
रघु एस को। बनेस को।
बिदा करो। धरादरो।
(राजा भाग जाने का फिर प्रयत्न करते हैं)

न नाजियें। विराजियें।
वसिस्ट को। द्विजिस्ट को।
बुलाइये। पठाइये।
नरेस जी?

(उमेस ली।
घुमे घिरे। धरा गिरे।
गुचेत भे। अचेत भे।
उसास ले। उदास ह्वै।
स बार नैनं। उदास बैन।)

दशरथ: (कह्यो) कुनारी। कुवृत्त कारी।
कलंक रूपा। कुवृत्त कूपा।
निलज्ज नैणी। कुवाक बैनी।
कलक करणी। समृद्ध हरणी।
अवृत्त कर्मा। निलज्ज धर्मा।...............

कैकेयी: (अनसुनी करती हुई)
नरेस मानो। कह्यो पछानो।
वयो सु देह। वर दु मोह।
चितार लीजें। कह्यो सु दीजे।
विलम न कीजें। सु मान लीजे।
रिसेस रामं। निकार धामं।

दशरथ: रहे न इमानी। भई दिवानी।
चुपं न बौरी। वकंत डौरी।

कैकेयी: निकार रामं। अधार धामं।
(बहु विधि पर पाइन रहे मोरे वचन अनेक।
गहि अउहठि अबला रही मान्यो वचन न एक।
तरफरात पृथ्वी पर्‌यो सुनि वन राम उचार।
पलक प्रान त्यागे तजत मद्धि सफरि सर बार।
राम नाम स्रवनन सुणयो, उठि थिर भये अचेत।
जनु रण सुभट गिर्‌यो उठ्यो गहि असि निडर सुचेत।)

(वसिष्ठ के प्रवेश पर कैकेयी और दशरथ एक ही साथ बोलते हैं)

कैकेयी: राम पयानो वन करें भरत करें ठकुराय।
दशरथ: बरस चतर दस के विते फिरि राजा रघुराय।[1]

कैकेयी एवं दशरथ के समान ही सीता की पतिपरायणता, लक्ष्मण के क्रोध एव दैन्य, कौसल्या, सुमित्रा एव प्रजाजनों की वेदना का बड़ा ही उपयुक्त चित्रण

---

१. दशम ग्रन्थ, पृ० २०३-२०६

कवि द्वारा हुआ है। एक-एक छन्द उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है—

सीता : सूल सहो तन सूक रहौ पर सी न कहो सिर सूल सहोगी।
बाध बुकार फनीन फुकार सुसीस गिरो पर सी न कहोगी।
बास कहा, बनबास भलो, नही पास तजो पिय पाय गहोगी।
हास कहा इह उदास समै गृह गास रहो पर मै न रहोगी।[१]

कौशल्या : मात सुनी इह बात जबै तब रोवत ही सुत के उर लागी।
हा रघुबीर सिरोमणि राम चले बन को मुहि कउ कत त्यागी।
नीर बिना जिम मीन दसा तिम भूख प्यास गई सब भागी।
झूम झराक झरो झट बाल बिसाल दवा उनके उए लागी।[२]

प्रजाजन : कारे कारे करि बेस, राजा जू को छोरि देस,
तापसी को कै कै भेस, साथि ही सिधारि हौ।
कुल ही की कानि छोरो राजसो कै साज तारो,
संगि ते न मोरो मुख, ऐसे कै बिचारि हौं।
मुद्रा कान धारो सारै मुख पै बिभूति डारो,
हठि कै न हारो पूत राज साज जारि हौ।
जुगियो को कीनो बेस, कौसल को छोर नेस,
राजा राम चन्द जू के, संगि ही सिधारि हौ।[३]

विरह-वर्णन—रामावतार के विरह-वर्णन का वैशिष्ट्य इसके सक्षेप मे है। यों तो सभी प्रकार की घटनाओ एव मन स्थितियो के वर्णन मे सक्षेप स्पृहणीय है, करुण-प्रसग मे इसका महत्त्व और भी बढ जाता है। करुणातिरेक पाठक के मन मे बडी प्रतिकूल प्रतिक्रिया उत्पन्न कर सकने की सम्भावना रखता है और कई बार साधारणीकरण मे बाधा उपस्थित करता है। हमारे कवि ने सक्षेप के महत्त्व को पहचानते हुए किसी स्थान पर भी करुणा की मात्रा औचित्य की सीमा से बढने नही दी। राम-वन गमन पर माता कौशल्या की वेदना, सीता-हरण पर राम-विरह एव रावण की मृत्यु पर मन्दोदरी की उद्विग्नता आदि का बडा ही नियन्त्रित चित्रण हुआ है।

हृदयराम के विरह-वर्णन की समीक्षा करते हुए हमने हिन्दी के अधिकाश विरह-वर्णनो की बहु-भाषिता की ओर सकेत किया था। रामावतार का विरह-वर्णन उस प्रवृत्ति का अपवाद है। सीता हरण पर राम इतने बेसुध है कि हृदयोद्गारो को वाणी देने की शक्ति भी उनमे नही। कवि ने विरह-दुख की अभिव्यक्ति के लिए दैहिक-व्यापार को ही माध्यम बनाया है, वाणी-व्यापार को नहीं—

---

१. दशम ग्रन्थ, पृ० २०७
२. वही, पृ० २०८
३. वही, पृ० २०६

उठ ठाढि भये फिरि भूमि गिरे।
पहरेकक लौं फिर प्रान फिरे।
तन चेत सुचेत उठे हरि यो।
रण मडल मद्धि गिर्यो भट ज्यो ॥३८५॥[1]

रावण की मृत्यु पर मन्दोदरी आदि रानियो का तीव्र मानसिक क्लेश मुख्यत आगिक-व्यापार मे ही व्यक्त हुआ है । श्रवणकुमार की मृत्यु पर राजा दशरथ के मौन अश्रु जो प्रभाव डालते हैं, वह उसका आत्मग्लानिपूर्ण प्रलाप कदापि ही डाल सकता—

नृप दियो पान तिह पान जाय।
चकि रहे अध तिह कर छुहाय।
कर कोप कह्यो तू आहि कोय।
इम सुनत वचन नृप दियो रोय ।३०।[2]

हिन्दी विरह-वर्णन परम्परा से इस विरह-वर्णन का सम्बन्ध ऊहा के माध्यम से है। ऊहा का प्रयोग पजाब के प्रथम रामकथाकार हृदयराम ने भी किया था। हिन्दी के सर्वोत्कृष्ट विरह वर्णनो—उदाहरणार्थ नागमती का विरह-वर्णन—मे ऊहा का महत्व स्वीकृत है। हमारी धारणा है कि ऊहा न तो विरही के उद्गारो की आत्माभिव्यक्ति का बहुत सफल माध्यम है और न उसके दैहिक-ताप को मापने का मापक-यन्त्र है, किन्तु पर-विरह दुख को (कवि द्वारा) सामूहिक एव सजीव रूप मे ग्रहण एव अभिव्यक्त करने मे यह बडा सशक्त कला-साधन है। ऊहा का सम्बन्ध उस अतिशय से है, जो किसी-न-किसी मात्रा मे प्रत्येक अलकार मे विद्यमान रहता है।

हमारे कवि ने ऊहा का आश्रय लेते समय कुछ बडे ही उपयुक्त अलकारो का भी प्रयोग किया है जिससे विरह-स्थिति की उग्रता एव तीव्रता, दोनो एक ही समय अभिव्यक्त हो पाई हैं—

उठकं पुन प्रात इस्नान गये।
जल जन्त सबै जरि छार भये ।३५९।
विरही जिह ओर सु दिस्ट धरै।
फल-फूल पलास अकास जरै।
कर सो धर जौन छुअत भई।
कच बासन ज्यो पक फूट गई ।३६०।

---

१. दशम ग्रथ, पृ० २१७

२. वही, पृ० १६०

चटपट लोटे अट पट धरणी।
कसि कसि रोवै नरवर बरणी।
पट पट डारैं अट पट वेस।
बट हरि कूकै नट बट भेस ।६२६ —दशम ग्रथ, पृ० २३६

जिह भूमथली पर राम फिरे।
दव ज्यो जल पात पलास गिरे।
टुट आसू आरण नैन झरी।
मनो तात तवा पर बूंद परी।३६१।'

सक्षेप मे, वीन-कथा रामावतार मे गुरु जी ने कथा-निर्वाह पर्याप्त सक्षेप एव सघनता से किया है। तो भी मार्मिक स्थलों पर उन्होंने इस प्रवृत्ति के प्रति आग्रह नही रखा है। सक्षेप के कारण कहीं-कही घटनाओ का अपर्याप्त वर्णन तो हुआ है, रसहीन वर्णन नही।

कृष्णावतार—जहाँ रामावतार मे कवि की रुचि सक्षेप की ओर है वहाँ कृष्णावतार मे विस्तार की ओर। गुरु गोविन्दसिंह से पूर्व जहाँ हिन्दी साहित्य में विस्तृत रामकथा—राम चरित मानस—का सृजन हो चुका था, वहाँ सर्वांग—सतुलित एव विस्तृत कृष्ण कथा का सृजन न हो पाया था। क्या गुरु जी की दृष्टि हिन्दी साहित्य-प्रवाह पर थी ? क्या वे उस अभाव की पूर्ति का प्रयास कर रहे थे—इसका उत्तर अनुमान से ही दिया जा सकता है। जो हो, बचित्र नाटक मे सकलित *कृष्णावतार हिन्दी साहित्य का प्रथम विस्तृत एव सतुलित कृष्ण प्रबन्ध है।*

यह महाकाव्य चार भागो मे विभक्त है—

बाल लीला
रास मडल
गोपी-विरह
युद्ध-प्रबन्ध

प्रत्येक भाग छोटे-छोटे परिच्छेदो मे विभक्त है। जहाँ रामावतार मे कवि की प्रवृत्ति कथा कहने की थी, वहाँ कृष्णावतार मे कवि कथा कहने के साथ-साथ दृश्य चित्रण एव मानसिक क्रिया-प्रतिक्रिया के आख्यान पर भी बल देता है। कृष्णावतार मे कथा की हानि किये बिना प्रगीतात्मक तत्त्व का निर्वाह भी किया गया है। कस वध के पश्चात् कृष्ण के अनेकानेक युद्धो की कथा गुरु गोविन्दसिंह के समय तक तो सर्वथा उपेक्षित ही थी। गुरु जी ने सर्वप्रथम कृष्ण के योद्धा-रूप का उद्‌घाटन पर्याप्त विस्तार से किया। यही कृष्णावतार का वैशिष्ट्य है।

बचित्र नाटक मे सकलित प्रबन्धो मे कृष्णावतार का विशिष्ट स्थान है। गुरु जी ने शेष सभी प्रबन्धो का आख्यान एक योद्धा के दृष्टिकोण से किया है। फलत उन प्रबन्धो मे वीर-रस का ही प्राधान्य है। कृष्णावतार ही एक ऐसा प्रबन्ध है जिसमे वात्सल्य और शृगार को भी महत्त्वपूर्ण स्थान मिल पाया है। कृष्णावतार के प्रथम तीन खण्डो (बाल-लीला, रास-मडल, गोपी-विरह) का अगी रस क्रमश. वात्सल्य सयोग शृगार और विप्रलम्भ शृगार है।

---

१. दशम ग्रथ, पृ० २१७

वात्सल्यः

पुत्र भयो सुनिकै व्रज भामन श्रौढ के लाल चली चुनिया है।
ज्यो मिलकै घन के दिन मे उडके सुचली जुमनो मुनिया[1] है।[2]
बालक रूप घरे हरि जी पलना पर झूलत है तब कैसे।
मात लडावत है तिह को श्रौ डुलावत है करि मौहित कैसे।
ता छवि की उपमा अति ही कवि स्याम कहो मुखते फुनि कैसे।
भूमि दुखी मन मैं अति ही जनु पालत है रिप-दैतन जैसे।[3]
कान्ह चले घुटुवा घरि भीतर मात करे उपमा तिह चगो।[4]
गोपन सौ मिलके हरि जी जमना तट खेल मचावत हैं।
जिम बोलत है खग, बोलत है, जिम धावत है तिम धावत है।[5]
खेलन के मिस पै हरि जी घरि भीतर बैठ के माखन खावे।
वाकी बच्यो अपने करि लेकर वानर के मुख भीतर पावे।[6]
सैन बनाइ भलौ हरि जी बसुधा दध को मिल लूटन लाए।
हाथन सौ गहि के सब बासन के बल को चहुँ ओर बगाए।
फूट गए वह फैल गयो दध भाव इहै कवि के मन आए।
कंस को मोभ निकारन को अगुवा जन आगम कान्ह जनाए।
फोर दिये तिन जो सब बासन क्रोध भरी जसुधा तब धाई।
फाध चढे कपि रूखन रूखन ग्वारन ग्वारन सैन भगाई।[7]

कृष्णावतार का वात्सल्य-वर्णं बहुत उच्च-कोटि का नही है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, गुरुजी मुख्यत वीर रस के कवि है। कृष्ण की विशुद्ध बाल-लीलाओ मे उनकी विशेष रुचि नही है, बकासुर, तृणावर्त आदि दैत्यो से बाल-कृष्ण के द्वद्व के चित्र उन्होंने विशेष कौशल एव तन्मयता से प्रस्तुत किये है .

तृणावर्त

रुण्ड गिर्‌यो जन पेडि गिर्‌यो इम मुण्ड पर्‌यो जन डार ते खट्टा।[8]

बकासुर

खेलबे के काज बन बीच गये बारक ज्यो लै कै कर मद्धि चीर डारं
लाबे घास को।[9]

---

१. मुनिया—लाल पक्षी
२. दशम ग्रथ, पृ० २६२
३. वही, पृ० २६५
४. वही, पृ० २६६
५. वही, पृ० २६७
६. वही, पृ० २६८
७. वही, पृ० २७०
८. वही, पृ० २६६
९. वही, पृ० २७३

अघासुर

गूद-पर्‌यो तिह को इम ज्यों सवदागर को टुट ग्यो मट घी को ।[1]

कालिया नाग

कान्ह लपेट वडो वह पन्नग फूकत है कर क्रुद्धहि कैसे ।
ज्यो धन पात्र गये धन ते अति झूरत लेत उसासन तैसे ।
बोलत ज्यो घमिया हरि मै सुर के मधि स्वास भरे वह ऐसे ।
भूभर बीच परे जल ज्यों तिह ते फुनि होत महा धुन जैसे ।[2]

शृगार (संयोग)—कृष्णावतार के रासमण्डल नामक खण्ड मे कृष्ण और गोपियो की रास-लीला का वर्णन है । तीन सौ सौलह (३१६) कवित्त-सवयो की इस रचना मे कृष्ण और गोपियो के यमुना-विहार का अत्यन्त विस्तृत वर्णन हुआ है । रात्रि के समय गोपियाँ कृष्ण की मुरली-ध्वनि सुन कर विवश एव विह्वल हो कर यमुना तट की ओर दौडती हैं । तदुपरान्त नृत्य, गान, जल-विहार आदि के अत्यन्त ऐन्द्रिय चित्र उपस्थित किये गये हैं। प्रसगानुसार अभिसार, मान, दूती आदि का भी वर्णन है ।

रूप-वर्णन—कृष्णावतार के नायक कृष्ण हैं । सम्पूर्ण प्रबन्ध मे कई स्थानों पर कृष्ण के रूप का वर्णन हुआ है । रास-मण्डल नामक खण्ड मे विशेष रूप से कृष्ण के शारीरिक सौन्दर्य को चित्रित करने का आग्रह है । इस प्रबन्ध मे आदि से अन्त तक चलने वाली कोई नायिका नही है । केवल रास-मण्डल और गोपी-विरह नामक खण्डो मे राधिका नायिका के रूप मे प्रस्तुत होती हैं । नायिका के रूप-वर्णन में गुरु-कवि की विशेष रुचि नही रही । नारी-सौंदर्य के अत्यंत सक्षिप्त चित्र कहीं-कही मिलते हैं । कुल मिला कर गुरुजी की दृष्टि नायक के 'तिय-मोहन' रूप पर ही रही है ।

रूप-वर्णन साधारणतः रूढ उपमाओ की सहायता से किया गया है। गुरु जी मौलिक उपमाओ के सृजन मे बडे कुशल हैं । रूप-वर्णन मे उस कौशल के अभाव से यह निष्कर्ष निकालना अस्वाभाविक न होगा कि रूप-वर्णन मे उनकी विशेष रुचि नही है । कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

आनन जाहि निसापति सो दृग कोमल है कमलादल कैसे ।
हैं भरवे धनु से, बरनी सर, दूर करै सत्त के दुखरै से ।
काम की सान के साथ घसे दुख साधन के कटवे कहु तैसे ।
कउल के पत्र किधौ ससि साथ लगे कवि सुन्दर स्याम अरै से ।[3]
केहरि सी जिनकी कट है, सुकपोत सो कण्ठ, सुकोकिल बैना ।[4]
कीर से नाक, कुरग सै नैन, डोलत है सोऊ बीच क्रिया में ।[5]

---

१. दशम ग्रंथ, पृ० २७४
२. वही, पृ० २७१
३. वही, पृ० ३१०
४. वही, पृ० ३३२
५. वही, पृ० ३३२

गुरु जी ने रूप का सीधा वर्णन करने के साथ-साथ रूप के प्रभाव का वर्णन भी किया है जो कई एक स्थानों पर बहुत सुन्दर बन पड़ा है :

मुख को पिख रूप के वस्य भई मत ह्वै अति ही कहि कान्ह बकी।
इक झूम परी इक गाइ उठी तनमैं इक ह्वै रहिगी सु जकी।[1]
चीर परे गिरकै तन भूखन टूट गई तिन हाथन बंगा[2]।[3]
गोपिन को मन यौं चुर ग्यौ जिम खोरर पाथर पर चरनाठी[4]।[5]
लोचन कान्ह निहार त्रिया-दिज रूप कै पान महामत हूई।
होई गई तन्मैं गृह की सुधि यौं उडगी जिमु पौन सों रूई।
स्याम कहै तिनको बिरहागनि यौं भरकी जिमु तेल सों धूई।
ज्यों टुकरा पिख चुम्भक डोलत बीच मनो जल लोह की सूई।[6]

कृष्णावतार और रामावतार में रूप-वर्णन की अपेक्षा प्रभाव-वर्णन के उदाहरण ही अधिक मिलते हैं।

वातावरण—आलम्बन के रूप-वर्णन के अतिरिक्त गुरुजी ने शृंगार के लिये उपयुक्त वातावरण की प्रस्तुति अथवा उद्दीपन के चित्रण पर भी ध्यान दिया है। सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी में प्रकृति-चित्रण के उदाहरण अत्यंत विरल हैं। दशम ग्रंथ में भी प्रकृति-चित्रण बहुत ही कम हुआ है।

जहां चंद की चांदनी छाजत है जहँ पात चमेली के सेज डही है।
सेत जहां गुल राजत है जिह के जमुना ढिग आइ बही है।[7]
जिह घोर घटा घन आए घने चहुँ ओरन ते जहाँ मोर पुकारे।[8]

वातावरण के सृजन के लिये कवि ने कृष्ण की मुरली का बड़ा विस्तृत वर्णन किया है। सम्पूर्ण रास-मण्डल पर मुरली का स्वर व्याप्त रहता है। मुरली का प्रभाव सम्पूर्ण जड़-चेतन सृष्टि पर है। उससे गोपियाँ भी प्रभावित हैं और वन-खण्ड भी—

रीझ रही बृज की सभ भामन जउ मुरली नंदलाल बजाई।
रीझ रहे बन के खग औ मृग रीझ रहे धुन जा सुन पाई।
चित्र की होइ गई प्रितमा सभ स्याम की ओर रही लिव लाई।
नीर बहै नहीं कान्ह-त्रिया सुनकै तहि पौन रह्यौ उरझाई।[9]

---

१. दशम ग्रंथ, पृ० ३११
२. बंगा—कंगन
३. दशम ग्रंथ, पृ० ३१२
४. चरनाठी—चंदन की लकड़ी
५. दशम ग्रंथ, पृ० ३१३
६. वही, पृ० २०४
७. वही, पृ० ३४२
८. वही, पृ० ३४५
९. वही, पृ० ३३७

रूखन ते रस चूवन लाग झरैं झरना गिर ते सुखदाई।
घास चुगै न मृगा बन के खग रीझ र धुन जा सुन पाई।[1]

ऐसे रूपवन्त नायक और ऐसे सेन्द्रिय वातावरण मे नृत्य, गान, जल-विहार आदि का वर्णन पर्याप्त विस्तार से हुआ है। गोपियो के हाव-भाव का चित्रण भी हुआ है और उनकी परिवर्तनशील मनःस्थिति का भी। गर्व, लज्जा, ईर्ष्या, जडता, मान आदि लगभग सभी सचारियो के उदाहरण इस रासलीला मे मिलेंगे। कुल मिला कर रास-मण्डल का शृगार वर्णन बहुत प्रभावशाली है।

कथा मे कौतूहल बनाये रखने के लिये कवि ने कहीं-कहीं नाटकीय घटनाओ का सृजन भी किया है। जल-बिहार मे कृष्ण का सहसा लुप्त हो जाना एक ऐसी ही घटना है। कृष्ण के लुप्त हो जाने पर केलि-क्रीडा का नैरन्तर्य टूट जाता है। कुछ देर के लिये सयोग मे भी वियोग का-सा वातावरण उत्पन्न हो जाता है। मान और दूती का परस्पर सवाद भी सयोग के प्राचुर्य को विरल करता एव कथा को नाटकीयता प्रदान करता है। कृष्ण के लुप्त हो जाने पर गोपियो की विह्वलता का चित्र अत्यन्त मार्मिकता से प्रस्तुत किया गया है। उदाहरण निम्नाकित है

गोपिन को तन की छुटगी सुधि डोलत है बन में जन बौरी।
एक उठै इक झूम गिरे बृज की महरो इक आवत दौरी॥
आतुर ह्वै अति ढू ढत है तिनके सिर की गिर गी सु पिछौरी।
कान्ह को ध्यान बस्यौ मन मै सोऊ जान गहै फुन रूखन कौरी॥[2]

कान्ह बियोग को मान बधू बृज डोलत है बन वीच दिवानी।
कू जन ज्यो कुरलात फिरै, तिह जा, जिह जा, कछु खान न पानी।
एक गिरै मुरझाइ धरा पर एक उठै कहिके इह बानी॥
नेह बढाइ महा हम सो कत जात भयो भगवान गुमानी।[3]

शृगार (वियोग)—वियोग शृगार का सक्षिप्त उल्लेख तो रास-मण्डल मे ही हो चुका था, तथापि कवि ने गोपी-बिरह अथवा विरह-नाटक में गोपियो की विरहावस्था का वर्णन पर्याप्त विस्तार से किया है। इस विरह-नाटक का घटना-क्रम चिर परिचित ही है। कृष्ण का मथुरा-गमन, नन्द आदि व्रजवासियो का कृष्ण के बिना मथुरा लौटना, गोपी-विलाप, उद्धव की व्रज-यात्रा, उद्धव-गोपी-सवाद और विरहिणी गोपियो के सदेश आदि घटनाओं का वर्णन विरह-नाटक में हुआ है।

रास-मण्डल के पश्चात् गोपी-विरह नामक खण्ड मे प्रवेश करते ही वातावरण बदल जाता है। करुण घटनाओ के चित्रण मे गुरु गोविन्दसिंह की रुचि नहीं रही। अपने आत्म-परिचय मे उन्होंने अपने पिता के निधन का उल्लेख अत्यन्त

---

१. दशम ग्रथ, पृ० ३३१।

२. वही पृ० ३१६

३. वही पृ०३१६

सक्षेप मे (चार पक्तियो मे) किया है।[1] रामावतार मे राम-विरह का वर्णन भी अत्यन्त सक्षेप मे हुआ है। सम्पूर्ण दशम ग्रथ मे गोपी विरह ही ऐसा रचना-खण्ड है जिसमे एक 'करुण' घटना का वर्णन अपेक्षाकृत विस्तार से हुआ है। किन्तु रास-मण्डल की अपेक्षा गोपी विरह निश्चय ही सक्षिप्त रचना है।

रास-मण्डल की अपेक्षा गोपी विरह का वातावरण अत्यन्त गम्भीर है। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। किन्तु यहाँ ज्ञातव्य यह है कि वातावरण के इस परिवर्तन की रचना-शैली पर भी प्रभाव पडा है। रासमण्डल की रचना शैली नागरिक वातावरण के उपयुक्त अलकार प्रधान शैली है। गोपी विरह मे अलकारो का प्रयोग न्यूनातिन्यून है। सम्पूर्ण वातावरण मे ग्राम्य जीवन की सरल सदाशयता परिव्याप्त है। विरहवर्णन मे कृत्रिमता लेश मात्र भी नही है। यही इस विरह कथा का वैशिष्ट्य है।

उक्ति-विलास के स्थान पर गोपी-विरह मे उक्ति सारल्य के दर्शन होते हैं

१ स्याम सुने ते प्रसन्न भई नहि आय सुने फिरि भी दुखदाई। (३७४)
२ त्याग गए तुम हो हमको हमरो तुमरे रस मै मनु भीनो। (३७४)
३ आप गए मथुरा पुर मैं जदुराइ न जानत पीर पराई। (३६०)
४ तौन समै सुखदायक थी रित स्याम बिना अब भी दुखदाई। (३७७)
५ ऐसे समय तजि क्यौ हम को टसक्यो न हियो कसक्यो न कसाई। (३७७)
६ मैं तुमरे सग मान कर्यो तुम हूँ हमरे सग मान कर्यो है। (३८०)
७ प्रीत निवाहियै तउ करियै पर यो नही काहू सो प्रीत करैये। (३७६)
८ ताते तजो मथुरा फिर आवहु है सम गऊअनि को रखवारे। (३८१)

सम्पूर्ण दशम ग्रथ मे गोपी-विरह ही ऐसा रचना-खण्ड है जिसमें लोक-काव्य के एक रूप बारहमासा का प्रयोग हुआ है। इसका कारण यही है कि दशम ग्रथ मे गोपी-विरह ही ऐसी रचना है जिसका वातावरण ग्रामीण है। इस रचना मे दो बारहमासे हैं जिनमे सरल, सयत, एव अतिशयोक्ति-रहित ढग से विरहिणी की मनोदशा चित्रित की गई है। प्रत्येक बारहमासे से उदाहरण प्रस्तुत हैं

(१) भादो

मेघ परै कबहू उघरै सखी छाय लगै द्रुम की सुखदाई।
स्याम के सग फिरै सजनी रग फूलन के हम बस्त्र बनाई।
खेलत क्रीड करै रस की इह अउसर को बरन्यो नही जाई।
स्याम समै सुखदायक थी रित स्याम बिना अति भी दुखदाई।[2]

---

१. देखिये 'ऐतिहासिक प्रबन्ध' नामक खण्ड में 'अपनी कथा' नामक अध्याय।
२ दशम ग्रथ, पृ० ३७०

(२) पोष

भूम अकास अवास सु-बासु उदास, बढी अति सीतलताई।
कूल दुकूल ते सूल उठै सभ तेल तमोल लगै दुखदाई।
पोष सतोष न होत कछू तन सोखत ज्यो कुमदी मुरझाई।
लोभ रह्यो उन प्रम गह्यो टसक्यो न हियो कसक्यो न कसाई।[1]

इस विरह-वर्णन की एक विशिष्टता यह भी है कि कवि ने इसे विशुद्ध भाव के स्तर पर रखा है, भक्ति और ज्ञान आदि का साम्प्रदायिक अथवा दार्शनिक विवाद उठाने का यत्न इसम नही किया गया। परिणामत इस रचना की गोपिकायें वाक्पटु एव उपहास-प्रिय महिलायें नही हैं जो अपनी वाकपटुता से उद्धव जैसे विद्या-विशारद को भी निरस्त कर दें। विरह ने उन्हें अत्यन्त सयत बना दिया है । सारल्य, सयम एव सदाशयता इस विरह-वर्णन के विशिष्ट गुण हे।

चरित्र-चित्रण—चौबीस अवतार के अन्तर्गत आने वाली इन दोनो रचनाओं के नायक राम और कृष्ण विष्णु के अवतार-रूप मे ही चित्रित हुए हैं। गुरु तो ब्रह्मा और रुद्र को भी विष्णु का ही अवतार मानते हैं, राम और कृष्ण में वे किसी प्रकार का अन्तर स्वीकार करते ही नही—

पूतना सहारी तृणावर्त की बिदारी देह
दैत अघासुर हू की सिरी जाह फारी है।
सिला जाहि तारी बक हू की चोच चीर डारी,
ऐसे भूम पारी जैसे आरी चीर डारी है।
राम ह्वै के दैतन की सैना जिन मारी,
अरु आपनो बभीछन को दीनी लक सारी है।
ऐसी भात दिजन की पत्नी उधारी,
अवतार लैके साध जसे पृथमी उधारी है।[2]

राम और कृष्ण विष्णु के अन्य अवतारो से भिन्न नही, ऐसे सकेत भी 'कृष्णावतार' मे अनेक स्थानो पर मिलते हैं

दैत सखासुर के भरबे कहु रूपु धर्यो जल मैं जिन मच्छा।
सिंध मथ्यो जबही असुरासुर मेर तरै भयो कच्छप हच्छा।
सो अब कान्ह भयो इह ठउर चरावत है बृज के सभ बच्छा।
खेल दिखावत है जग को इह है कर्ता सभ जीवन रच्छा।[3]
जिह को गज-वाहन लोक कहै जिन पव्वन के पर कोप कटे।
तुम हो कर्ता सभ ही जग के तुम ही सिर रावन काट सटे।[4]

---

१. दशम ग्रंथ, पृ० ३७७
२ वही, पृ० २६५
३ वही, पृ० २६६
४ वही, पृ० ३००

कृष्णावतार मे स्थान-स्थान पर पाठक को स्मरण कराया गया है कि मानवोचित कर्म करने वाला कृष्ण वास्तव मे भगवान् का ही अवतार है। जो पात्र कृष्ण के सम्पर्क मे आए हैं उनके भाग्य की सराहना भी इसी दृष्टि से हुई है।

भाग बडे दुर्बुद्धन (पूतना) के भगवानहि को जिन अस्थन (स्तन) दीनो।[1]

राम और कृष्ण को विष्णु का रूप मानते हुए, गुरु जी ने उनके इहलौकिक जीवन की कथा मानवीय स्तर पर ही कही है। कृष्ण के अवतारत्व का उल्लेख बाललीला, रास-मण्डल, गोपी-विरह आदि प्रसगो मे अनेक बार हुआ है, युद्ध-प्रबन्ध मे ऐसे सकेत अत्यन्त विरल हैं। रामावतार के युद्ध वर्णन मे ऐसे सकेत सर्वथा अप्राप्य हैं। राम और कृष्ण सामान्य वीरो के समान प्रहार सहते एव मूर्च्छित होते हैं। इस तथ्य का अपेक्षाकृत विस्तृत विवेचन हमने इसी अध्याय मे युद्ध-वर्णन शीर्षक के अन्तर्गत किया है। सक्षेप मे, हमारा मत है कि दशम ग्रन्थ के महाकाव्यो के नायको के चरित्र मे अवतारत्व और मानवत्व का समन्वय पाया जाता है।

शैली

अलकार—रामावतार और कृष्णावतार दो भिन्न शैलियो मे लिखे गये महाकाव्य है। रामावतार मे बल कथा पर है और कृष्णावतार मे कथा के प्रगीतात्मक महत्त्व पर। रामावतार मे कवि की रुचि सक्षेप की ओर है, फलत राम-कथा की घटनाओ मे प्राय व्यापकता नही है। कृष्णावतार मे कवि की रुचि कृष्ण लीला के भरपूर चित्रण की ओर है, फलत उनके चरित्रगत वैशिष्ट्य को प्रकट करने वाली वास्तविक अथवा कल्पित घटनाओ का वर्णन पर्याप्त विस्तार से हुआ है। कवि के अपने शब्दो मे रामावतार 'थोर-कथा' है और कृष्णावतार 'छोर-कथा'।

कथा और प्रगीत के अन्तर के कारण रामावतार और कृष्णावतार की प्रतिपादन-शैली मे भी अन्तर है। जहाँ एक की शैली प्रकृत प्रधान है वहाँ दूसरे की अप्रकृत-प्रधान। रामावतार मे भी कही-कही सुन्दर अलकार-विधान के दर्शन होते हैं, किन्तु साधारणत राम-कथा सीधी, सरल, अलकार-रहित भाषा मे कही गई है। इसके विपरीत कृष्णावतार मे स्थान-स्थान पर मौलिक अलकार-सृष्टि के दर्शन होते हैं। कवि ने अधिकतर उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा अलकारो का ही प्रयोग किया है। विशुद्ध चमत्कार-मूलक शब्दालकारो और वैषम्यमूलक अर्थालकारो का प्रयोग उन्होंने नही किया। कुछ अलकारो के उदाहरण निम्नाकित हैं :

१. मैन उठ्यो जगि कै तिन कै तन लेत है पेच मनो अहि तोरी। (२८२)

(उनके शरीर में कामदेव जाग कर इस प्रकार अगडाई ले रहा है मानो घायल सर्प ले रहा हो।)

२. मुख कान्ह गुलाब को फूल भयो इह (मुरली) नाल गुलाब चुआत मनो (२८३)

---

१. दशम ग्रथ, पृ० ३६३

३. जीव इकत्र रहै तिनको इम टूट गए ज्यो मृनाल की तारा (२६१)
४. भौनन ते सन इउ निकरी जिम मन पढ़ै निकरै बहु नागन (२६४)
५. सुध यौ उडगी जिमु पौन सो रूई। (२६४)
६-७. स्याम कहै तिन को बिरहागनि यौ भरकी जिमु तेल सो धूई।
ज्यो टुरु रा पिख चुम्भक डोलत बीच मनो जल लोह की सूई।
(२६४)
८. सउनन मै सुनल्यो इह बात चुबुद्धगी छूट चिरी जिम फाधी।
(२६८)
९. पछुताय गयो पत लोकन (लोकपति) को जिम लूट लए अहि सर्प मनी (३०४)
१०. कौल के पत्र किधौ ससि साथ लगे कवि सुन्दर स्याम अरै से (३१०)
११. गोपन को मन यौ चुर ग्यो जिम खोरर पाथर पै चरनाठी। (३१३)
(गोपियो का मन ऐसे चुराया गया जैसे पत्थर पर चन्दन की लकड़ी घिस जाती है)
१२. (कृष्ण के लुप्त होने पर)
ज्यो संग मीनन के लरकै तिन त्याग गयो मनो बारध रैया (३१६)
१३. (कृष्ण के प्रकट होन पर)
चौक परी तब ही इह (गोपी) इउ जस चौक परै तम मै डरि खुआबी
(३१८)
१४. यौ तजि गे जिम राह मुसाफिर 'स्याम' कह्यो तुम नाहि नये थे।
(३१९)
१५ ग्वारन के घन बीच बिराजति राधिका मानहु बिज्ज छटा है।
(३२४)
१६. ग्वारनिया हरि को सुन बात गई तज लाज कवी जस ठानी।
रात बिखै तज झीलहि को नभ बीच चल्यो जिम जात टनानो
(जुगनू)। (३३४)
१७ जोबन को जु गुमान करै तिह जोवन की सु दसा इह होगी।
तो तजि कै सोऊ यो रमि है जिम कथ पै डार बघबर जोगी।
(३४७)
१८. कुचरी ज्यो अहिराज तजै तिह भाँत तजी बृजराज मुरारी। (३८१)
१९. गोपिन नैनन की सुननो पहरी भगवान सुकजन माला। (३३२)
२०. ध्यान लगै दृग मूँद रहै उघरैं निकटै तिह जात उताइल।

छन्द—छन्दो की दृष्टि से भी रामावतार और कृष्णावतार मे वैभिन्य है। रामावतार मे पचास से अधिक छन्दो का प्रयोग हुआ है—चौपई (चौपाई), पाधडी, नाराच, अर्ध-नाराच, अनूप नाराच, रसावल, भुजग प्रयात, सुन्दरी, मधुर-धुन, सवैया, कवित्त, दोधक, समानका, सारस्वती, नगसरूपी, अर्ध नगसरूपी, उगाथा, दोहरा (दोहा), सोरठा, सवैया (तीन प्रकार के), अपूरब, कुसम वचित्र, कण्ठ आभूषण, झूला, झूलना, सुखदा, तारका, तोटक, गीता मालती, छप्पय, उटजण, सगीत छन्द (अनेक प्रकार के), विराज, तिलकडियाँ, सिरखिण्डी (पजाबी छन्द), बैत (पजाबी छन्द), अजबा, होहा, त्रिगता, बहडा, कलस, त्रिभगी, चौबोला, अलत्रा, मकरा (फारसी रेखता), मृतगत, अनका, चाचरी, अड्हा, अकरा, बडोहा, तिलका, अरूप। इन छन्दो में हिन्दी मात्रिक छन्दों एव वर्ण-वृत्तो के अतिरिक्त फारसी और पजाबी छन्द भी सम्मिलित हैं। कुछ छन्द सर्वथा मौलिक हैं। किसी छन्द विशेष का निर्वाह ही नही, सम्पूर्ण छन्द योजना का निर्वाह बहुत कौशल से हुआ है। छन्द परिवर्तन घटना अथवा घटना खण्डो की आवश्यकता के अनुसार हुआ है। युद्ध-घटनाओ की गति को अनेक छोटे-बडे छन्दो के द्वारा और युद्ध ध्वनियो को संगीत छन्दो द्वारा यथावत् ग्रहण करने का प्रयास किया गया है। प्रगीतात्मक कृष्णावतार मे मन.-स्थिति को लम्बे समय के लिए एकस्वर रखने के अभिप्राय से छन्द वैविध्य को उचित नही समझा गया। कृष्णावतार का प्रमुख छन्द एक ही है—सवैया। बीच-बीच मे कवित्त, चौपई, दोहा आदि का प्रयोग है।

गुरु गोविन्दसिह ने छन्द और अलकार के विषय मे एक निश्चित नियम अपनाने का यत्न किया है। जहाँ छन्द वैविध्य है (चण्डी चरित्र द्वितीय और रामावतार) वहाँ अलकारो का प्रयोग अपेक्षाकृत विरल है; जहाँ अलकारो का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है (चण्डी चरित्र उक्ति विलास और कृष्णावतार), वहाँ छन्द-वैविध्य दृष्टिगत नही होता। वस्तुत: गुरु जी ने क्रमश वीरगाथाकालीन पद्धटिका शैली और रीतिकालीन कवित्त-सवैया शैली का अनुसरण करते हुए उनके अलकार-सम्बन्धी वैशिष्ट्य को भी यथावत् ग्रहण करने का प्रयास किया है। सक्षेप मे, वे हिन्दी काव्य-शैलियों से भली भाँति परिचित हैं और उनका अनुसरण करने मे समर्थ हैं।

युग-प्रभाव—अब यह देखना समीचीन होगा कि दशम ग्रथ के शृंगार-चित्र अपने युग की प्रवृत्तियो से कहाँ तक प्रभावित हैं? शृगारिकता तत्कालीन पजाब और हिन्दी-भाषी क्षेत्र की अत्यन्त व्यापक प्रवृत्ति थी। पजाबी किस्सा-लेखको और हिन्दी मुक्तक-काव्य-रचयिताओ का प्रिय रस शृंगार ही था। अन्तर केवल इतना ही था कि जहाँ हिन्दी कवियो की दृष्टि सामान्यत नारी के बाह्य रूप तक ही सीमित थी, वहाँ पजाबी किस्सा-लेखक नारी की स्वतन्त्र इच्छा शक्ति को भी मान्यता दे रहे थे।

गुरु गोविन्दसिह का प्रादुर्भाव ऐसे समय मे हुआ जबकि पजाबी-हिन्दी-काव्य का प्रधान स्वर स्त्रैण था। गुरु गोविन्दसिह का स्वर इससे सर्वथा विलक्षण है। उनका प्रिय रस वीर है और उनके काव्य का स्वर पौरुषेय है। उनकी विशाल

काव्य रचना मे केवल कृष्णावतार ही ऐसी रचना है जिसमे शृ गार को भी स्थान मिल पाया है। किन्तु इस रचना म भी मुख्य रस वीर ही है । उन्होने तियमोहन कृष्ण और राम का वर्णन करते हुए भी अधिक विस्तृत वर्णन उनके शत्रु-हन्ता रूप का ही किया है।

इस सम्बन्ध मे दूसरी ज्ञातव्य बात यह है कि उन्होने पुरुष के रूप का ही चित्रण किया है, नारी के रूप का नही। नारी का रूप कही-कही सक्षिप्त एव परोक्ष रूप मे ही चित्रित हुआ है। नायिका-भेद एव नखशिख वर्णन के उदाहरण दशम ग्रन्थ मे सर्वथा अप्राप्य हैं।

रीतिकाल अपनी औपचारिक रीति-प्रियता के लिये प्रसिद्ध है। दशम ग्रथ मे ऐसी औपचारिकता का मोह कही नही है। नायिका-भेद एव नखशिख के समान ही गुरु जी ने रसो एव अलकारो के औपचारिक उदाहरण प्रस्तुत करने का प्रयास भी नही किया। तथापि अलकार उनकी शक्ति से बाहर नही थे। कवित्त-सवैयो मे रचित 'उक्ति विलास' सुन्दर एव मौलिक उपमाओ के लिये प्रसिद्ध है। कृष्णावतार के रास-मण्डल मे भी वैसे ही उक्ति-विलास अथवा उक्ति-प्रेम के दर्शन होते हैं, किन्तु दशम ग्रन्थ म उक्ति प्रेम उक्ति प्रदर्शन मे परिणत नही हुआ। गुरु सर्वत्र काव्य-रचना मे सलग्न हैं, मात्र काव्य क्षमता का प्रदर्शन उन्हें अभीष्ट नही। अत वे अपनी रुचि एव आवश्यकता के अनुसार उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि थोडे से अलकारो का ही बार-बार प्रयोग करते है। अलकारो के प्रयोग मे उनकी दृष्टि प्रभविष्णुता पर रही है, वैविध्य पर नही।

सक्षप मे यह कहा जा सकता है कि उन्होने अपने युग की प्रवृत्तियो से यथा-सम्भव बचने का प्रयास किया है। कही-कही अभिसार, मान, दूती आदि के वर्णन मे ही रीतिकालीन प्रभाव को पहचाना जा सकता है, अन्यथा वे रीतिवादी कवि नही हैं।

खण्डकाव्य

दशम-ग्रथ म निम्नलिखित खण्डकाव्य सगृहीत हैं

१. चण्डी-चरित्र उक्ति-विलास
२ चण्डी चरित्र द्वितीय
३ कल्कि अवतार
४. पारस नाथ रुद्रावतार

इनमे प्रथम दो रचनाओ मे भगवती चण्डिका और मधु, कैटभ, महिष, धूम्रनयन, चण्ड, मुण्ड, रक्तबीज, निसुम्भ, सुम्भ आदि असुरो के युद्धो का वर्णन हुआ है। कल्कि अवतार मे कल्कि और कलि के सघर्ष का तथा पारसनाथ रुद्रावतार मे पारसनाथ और सन्यासियो के युद्ध का वर्णन है।

कथा—इन सभी रचनाओ मे कथा का अश अत्यन्त न्यून है। कथा युद्ध के कारण एव युद्धो के क्रम की ओर सकेत कर देती है। युद्ध-वर्णन अथवा युद्ध-चित्रण ही इन कथाओ का प्रमुख तत्त्व है।

पात्र—इन सभी रचनाओं के मुख्य पात्र अवतार हैं। शाक्त, वैष्णव और शैव तीनों सम्प्रदायों के अवतार आसुरी शक्तियों के विनाशार्थ इस धरती पर प्रकट होते हैं और युद्ध करते हैं। सभी कथाओं में लगभग एक जैसा ही द्वन्द्व है।

उद्देश्य—दैवी शक्तियों की आसुरी शक्तियों पर विजय दिखाना ही इन काव्य-कृतियों का उद्देश्य है।

रस—वीर

अलंकार और छन्द—अलंकार और छन्द की दृष्टि से ये कृतियाँ परस्पर समान नहीं है। 'चण्डी चरित्र उक्ति विलास' कवित्त-सवैया छन्दों में लिखी गई अलंकार-प्रधान रचना है। अन्य किसी रचना में न अलंकार-विधान पर विशेष बल दिया गया है और न ही कवित्त-सवैया छन्द शैली को अपनाया गया है। चण्डी-चरित्र और कल्कि अवतार पद्धटिका शैली में लिखे गए हैं और पारसनाथ रुद्रावतार में युद्ध-वर्णन के लिये गेय पद शैली का प्रयोग हुआ है। गुरु जी कितनी विभिन्न काव्य-शैलियों पर अधिकार रखते थे, इसका कुछ अनुमान इन खण्ड काव्यों से लगाया जा सकता है। एक ही रस से सम्बन्ध रखने वाली इन रचनाओं में भी अलंकार और छन्द शैलियों के वैभिन्न्य के कारण पर्याप्त वैविध्य दिखाई देता है।

प्रत्येक रचना में से एक-एक प्रतिनिधि उदाहरण प्रस्तुत है—

१. चण्डी चरित्र उक्ति बिलास

लै कर मैं असि दारुन काम करै रन मैं अर (अरि) सो अरणी (अरिणी) है।
सूर हने बलि के बलवानु सु स्रउन चल्यौ बहि बैतरनी है।
बाह कटी अधबीच ते सुण्ड सी सो उपमा कवि ने बरनी है।
आपसि मैं लर कै सुमनो गिर ते गिरी सर्प की दुइ धरनी है।[1]

२. चण्डी चरित्र (द्वितीय)

बहे सस्त्र अस्त्र कटे चर्म वर्म।
भले कै निवाह्यो भटे स्वाम कर्म धर्म।
उठी कूह जूह गिरे चउर बीर।
रुले तच्छ मुच्छ परी गच्छ तीर।१६०।
गिरे अकुस बारुण बीर खेत।
नचे कन्ध हीण कबन्ध अचेत।
उडे गृद्ध बृद्ध रडे केक बैक।
भका भुंक भेरी डहा डूह डक।१६१।
टका टुक्क टोप ढका ढुक्क ढाल।
तछा भुच्छ तेग बके बिक्कराल।
हला चाल बीर धमा धम्मि साग।
परी हाल हूल सुण्यो लोग नाग।१६२।[2]

१. दशम ग्रंथ, पृ० ८८
२. वही, पृ० १११

३ कल्कि अवतार

(सगीत छन्द)

छुटत दूककत तीर। बवक्कत वीर।
ढलक्कत ढाल। उठक्कत ताल।
खिमक्कत खग्ग। धधक्कत धग्ग।
छुटक्कत नाल। उठक्कत ढाल।[1]
भजन्त आसुरी सुत उठन्त भैंकरी धुण।
चलन्त तीछणो सर सिलेण उज्जलो कृत।
नचन्त रग जोगण चचक्कि चउदणो दिस।
कपन्त कुदनो गिर त्रिसन्त सर्वतो दिस।[2]
नागड दग नाचे रागड दग रुद्र।
भागड दग भाजे छागड दग छुद्र।
जागड दग जुज्झे वागड दग वीर।
लागड दग लागै तागड दग तीर।[3]

४ पारसनाथ रुद्रावतार

काफी

चहु दिसि मारू सबद बजे
गहि गहि गदा गुरज गाजी सब हठ रण आन गजे।
बान कमान कृपान सैहथी बाण प्रयोग चलाए।
जानुक महामेघ बूँदन ज्यो बिसिख ब्यूह बरसाए।
चटपट चर्म वर्म सब बेधे सटपट पार पराने
खटपट सब भूमि के वेधे नागन लोग सिधाने।
झमक्त खड्ग काढ नाना विधि सैथी सुभट चलावत,
जानुक प्रगट बाट सुरपुर की नीके हृदे दिखावत।[4]

कथा-सग्रह—विचित्र नाटक मे तीन पौराणिक कथा-सग्रह सकलित हैं

१ विष्णु के चौबीस अवतार।
२ ब्रह्मा के सात अवतार।
३ रुद्र के चौबीस अवतार।

जैसा कि इनके नाम से ही प्रकट है, ये कथा सग्रह प्रसिद्ध त्रिदेवो से सम्बन्धित हैं। विष्णु के चौबीस अवतारो मे दो महाकाव्य (रामावतार और कृष्णावतार) और एक खण्डकाव्य (कल्कि अवतार) भी सम्मिलित हैं। शेष इक्कीस लघु कथायें हैं। ब्रह्मा और रुद्र के विभिन्न अवतारो का यश भी लघु कथाओं के रूप में

---

१ दशम ग्रथ, पृ० ५८५
२ वही, पृ० ५८६
३ वही, पृ० ५६४
४ वही, पृ० ६८१

गाया गया है। इस प्रकार कुल मिला कर बावन (५२) अवतार-कथायें बचित्र नाटक मे सगृहीत हैं।

खण्डकाव्यो की भांति इन लघु-कथाओ के नायक भी अवतार-पुरुष हैं जो भूभार उतारने के लिये मर्त्यलोक मे अवतरित हुए हैं। इन कथाओ मे से अधिकाश युद्ध-कथायें है और इनमे वीर रस का ही परिपाक हुआ है। ब्रह्मावतार की कथायें अपवाद हैं। यहाँ अवतार पुरुष अज्ञान और अविद्या का नाश करने के लिये भूलोक मे अवतरित होते हैं। वाल्मीकि, व्यास, षड्-शास्त्रो के रचयिता षड् ऋषि और कविवर कालिदास को भी उन्होने ब्रह्मा के अवतार माना है, ऐसा प्रतीत होता है कि अवतार-वाद का बहिष्कार करने के स्थान पर उन्होने उसकी सीमा का विस्तार किया है। कालिदास को अवतार-पुरुषो मे स्थान दे कर उन्होने सामान्य मानव की असामान्य शक्ति के प्रति श्रद्धाजलि अर्पित की है। स्पष्टत यह अवतारवाद का अधिक तर्क सम्मत रूप है।

रूप-विधान की दृष्टि से इन कथाओ को दो वर्गों मे बांटा जा सकता है·

(१) लघु कथा,

(२) साराश-कथा।

अधिकाश कथाओ मे लघु कथा की शिल्प-सम्बन्धी आवश्यकताओ को ध्यान मे रखा गया है। पात्रो का चरित्रगत वैशिष्ट्य घटना-स्थिति मे ही प्रकट होता है। उद्देश्य समस्त घटना क्रम मे व्याप्त है। कुछ कथायें ऐसी भी हैं जहाँ घटनाओ का आख्यान न होकर, उनके साराश का कथन-मात्र हुआ है। ऐसी कथाओ के लिये साराश-कथा का अभिधान अनुपयुक्त प्रतीत नही होता। उदाहरण के लिये विष्णु के चौबीस अवतारो मे बाईसवें नरावतार अर्जुन की कथा सात चौपाइयो मे कही गई है। अर्जुन और महादेव के युद्ध और महाभारत-युद्ध को एक-एक अर्धाली मे कह दिया गया है—

बहुरो जुद्ध रुद्र तन कीआ। रीझे भूतिराट बरु दीआ
बहुर द्रुजोधन कह मुक्तायो। गध्रबराज विमुख फिर आयो।[१]

इन कथाओ मे केवल वर्णनात्मकता नहीं है, बीच-बीच मे अत्यन्त रस-सिक्त पंक्तियाँ भी मिलती हैं। वीर-रस के उदाहरण तो इन अवतार-कथाओं मे स्थान-स्थान पर विकीर्ण हैं। इन युद्ध-प्रसगो से कुछ उपमाओ के उदाहरण प्रस्तुत हैं

गिरें सज पुज सिर बाहु वीर।
सुभेमान ज्यो खेत पुहप करीर।[२]
करें दंत आघात मुस्टे प्रहार
मनो चोट बाहै घरियारी घरियार।[३]
जु गए समुहै छित तें पट के
रण मै रणधीर बटा नर के।[४]

---

१. दशम ग्रंथ, पृ० ५७०
२. वही, पृ० १६२
३ दशम ग्रंथ, पृ० १६३
४. वही, पृ० १६५

विचल्यो पग द्वैक फिर्यो पुन ज्यो
कर पुँछ लगे अहि क्रुद्धत ज्यो ।[1]
पुनर नार सिंह धरा ताहि मार्यो ।
पुरानो पलासी मनो वाइ डार्यो ।[2]
केतक गिरे धरन विकरारा
जन सरता के गिरे करारा ।[3]
गिर्यो जान कूट स्थली वृच्छ मूल
गिर्यो दच्छ तैसे कट्यो सीस मूल ।[4]
अगनि सोमे घाय प्रभा अत ही बढे
हो वस्त्र मनो छिटकाय जनैती से चढ ।[5]
भयो दुद जुद्ध रण सख मच्छ
मनो दो गिर जुद्ध जुट्टे सपच्छ ।[6]

युद्ध-वर्णन—गुरु जी के सभी पौराणिक प्रबन्धो का सामान्य विषय युद्ध-वर्णन और उनका सामान्य रस वीर है। उनके युद्ध-वर्णन का परिचय नीचे दिया जा रहा है।

युद्ध-वर्णन की दो शैलियाँ—गुरु गोविन्दसिंह ने युद्ध-चित्रण के लिए दो प्रकार की शैलियो का आश्रय लिया है—प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष। 'अपनी कथा' और 'चण्डी चरित्र (द्वितीय)' की शैली प्रकृत-प्रधान है। प्रत्यक्ष शैली से अभिप्राय ऐसी शैली का है जिसमें प्रकृत विषय का सीधा चित्रण किया गया है और इसके लिये अलंकारों—अप्रकृत उपमानो—की सहायता प्राय नही ली गई। अलकारो का प्रयोग भी कही-कही हुआ है, किन्तु इनका स्थान गौण ही रहा है। अलकार प्रमुखत. दृश्य-चित्र प्रस्तुत करने का साधन हैं। पहले प्रकार के युद्ध वर्णन मे दृश्य-चित्र साधारणत उतने ही आए हैं जितने विषय के सीधे, अलकार-रहित, वर्णन मे आ सकते हैं, सादृश्यमूलक अलकारो की सहायता से इन चित्रो के समानान्तर चित्र देने का प्रयास इस प्रकार के युद्ध-वर्णन मे नहीं हुआ (अथवा बहुत कम हुआ) है। इस प्रकार के वर्णन मे दृश्य-चित्रो की अपेक्षा श्रवण-चित्रो को कही अधिक महत्त्व मिला है।

दूसरी प्रकार की शैली—अप्रत्यक्ष—का मुख्य साधन अप्रकृत सामग्री, अलकार—तत्रापि सादृश्यमूलक अलकार, विशेषत उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा हैं। इसमे श्रवण चित्र बहिष्कृत नही हैं, न विषय का सीधा, इकहरा वर्णन ही वर्जित है? किन्तु जो महत्त्व अलकार की सहायता से अकित समानान्तर चित्रो को मिल पाया है, वह इन्हे नहीं।

१. दशम ग्रन्थ, पृ० १६५।
२. वही, पृ० १६७।
३ वही, पृ० १७७।
४. वही, पृ० १७६।
५. वही, पृ० १८६।
६. वही, पृ० १५६।

चण्डी चरित्र (द्वितीय), रामावतार और कल्कि अवतार में प्रथम प्रकार की शैली का प्रयोग हुआ है। ये सभी रचनायें युद्ध के गतिशील एवं सध्वनि चित्र उपस्थित करती हैं। युद्ध की द्रुत, अति द्रुत, अल्प द्रुत आदि गतियों को प्रस्तुत करने के लिए गुरु जी ने छन्द-वैविध्य और शीघ्र छन्द-परिवर्तन का आश्रय लिया है। उदाहरणार्थ चण्डी चरित्र (द्वितीय) के पन्द्रह-पृष्ठीय युद्ध-वर्णन में सत्रह छन्दों[1] का प्रयोग हुआ है और सतावन बार छन्द-परिवर्तन किया गया है। इस रचना मे एक भी स्थिर अथवा मौन चित्र ढूँढ निकालना अत्यन्त दुष्कर कार्य है।

'चण्डी चरित्र उक्ति बिलास' दूसरे प्रकार की शैली का आदर्श उदाहरण है। इसमें कुल मिलाकर २३३ छन्द हैं। इस शैली के अप्रकृत-बहुला होने का कुछ अनुमान कदाचित् इस तथ्य से हो सके कि २३३ छन्दों की इस रचना में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों की संख्या १७०-१८० के लगभग है। सवैया इस रचना का प्रधान छन्द है। कवि ने साधारणतः सवैये की प्रथम तीन पंक्तियों में एक दृश्य चित्रित किया है और चतुर्थ पंक्ति में सादृश्यमूलक अलंकार की सहायता से एक समानान्तर दृश्य उपस्थित करके भाव को तीव्र किया है और भावना की दिशा भी निर्धारित की है।[2] कई एक छन्दों में एक से अधिक अलंकारों का प्रयोग भी हुआ है, परन्तु साधारणतः 'एक सवैया—एक अलंकार' नियम का ही निर्वाह हुआ है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

सिंघहि प्रेर के आगे भई कर मैं अस(असि) लै वर चंड संभार्यौ।
मारि के धूरि किये चकचूर गिरे अरि पूर महां रन पार्यौ।
फेरि के घेरि लयौ रन माहि सुमुंड को मुंड जुदा करि मार्यौ।
ऐसे पर्यो धरि ऊपर जाय ज्यौ बेलहि ते कदुवा कटि डार्यौ ॥११४॥
दशम ग्रन्थ, पृ० ८५

युद्ध-वर्णन की प्रकृत-शैली—युद्ध के इकहरे, प्रकृत-चित्रण का वैशिष्ट्य उसके श्रवण-चित्रों—अथवा ध्वनि-चित्रों—मे है। कवि ध्वनि सृजन करने के लिये चार प्रकार के साधनों[3] का प्रयोग करता है :—

१. अनुप्रास।
२. अनुकरणात्मक शब्द।
३. लघु छन्द—जिनमे तुकांत अथवा आतरिक तुक इतने कम अंतर पर आते हैं कि उनकी श्रृंखला अटूट-सी रहती है।
४. अनियमित अनुनासिक।

१. नाराच, रसावल, दोहा, भुजंगप्रयात, तोटक, चौपई, मधुभार, रुआमल, कुलक, सोरठा, बिजेछन्द (सवैया), मनोहर छन्द (सवैया), संगीत भुजंग प्रयात, बेली बिन्द्रम, वृद्ध नाराच, संगीत मधुभार, संगीत नाराच

२. इस विषय को स्पष्ट करने का अवसर भी इसी प्रसंग में आगे आएगा।

३. इन सब के उदाहरण 'अपनी कथा' के युद्ध वर्णन का विवेचन करते समय प्रस्तुत किए गए हैं।

५. कहीं-कहीं कवि ने एक और साधन का भी प्रयोग किया है। उन्होंने कुछ ऐसे ध्वनि शब्दों अथवा संगीत शब्दों का आविष्कार किया है जो अर्थ का नहीं अनुभव का प्रेषण करते हैं। इस विशिष्ट शब्द-सृष्टि में अनुप्रास, अनुकरण, आन्तरिक तुक और अनुनासिक, सभी का योग है। एक उदाहरण इस प्रकार है—

कागड दग काती कटारी कड़ाकं।
तागड दग तीर तुपक तड़ाक।
झागड दग नागड दग बागड दग बाजे।
गागड दग गाजी महा गज गाजे ॥११२॥
तागड दग तीर बागड दग बाण।
कागड दग काती कटारी कृपाण।
नागड दग नाद बागड दग बाजे।
सागड दग सूर रागड दग राजे ॥११७॥ —पृष्ठ १०८

इन शब्दों की संगीत संज्ञा सर्वथा उपयुक्त ही है। संगीत के समान ये विशुद्ध भाव अथवा भावना का प्रेषण करते हैं। इनके द्वारा हम युद्ध-स्थिति का बड़ा स्पष्ट संस्पर्श प्राप्त होता है।

संगीत छन्दों के प्रति गुरु गोविन्दसिंह को विशेष मोह है। उन्होंने 'अपनी कथा' और 'उक्ति-विलास' को छोड़ कर लगभग सभी युद्ध प्रसंगों में संगीत छन्दों का प्रयोग किया है। उन्होंने संगीत-ध्वनियों को भी सूक्ष्म व्यक्तित्व देने का यत्न किया है, कहीं वे युद्ध-स्थिति के अनुसार तीव्र अथवा मन्द है, कहीं विभिन्न शस्त्र प्रहारों के अनुरूप भारी अथवा हल्की हैं। नीचे दो एक उदाहरण देना समीचीन प्रतीत होता है।

(१) टुट तत खोल। ढमकत ढोल।
टुटतत ताल। नचतत बाल ॥१६३
गिरतत अंग। कटतत जंत।
चलतत तोर। भटकत भीर ॥१६४॥
जुझैतत वीर। भजैतत भीर।
करैतत कोह। भरैतत रोह ॥१६५॥
तुटैतत चरम। कटैतत बरम।
गिरैतत भूमी। उठैतत घूमी ॥२१२॥
रटैतत पान। कटैतत ज्वान ॥२१३॥

कवि ने इस छन्द का नाम भड़थुआ छन्द रखा है। 'भड़थू' का अर्थ है प्रति-रिक्त एकता।

(२) भ्रिडडिड ताजी। भ्रिडडिड बाजी।
ह्रिडडिड हाथी। भ्रिडडिड साथी ॥४११॥
व्रिडडिड बाण। च्रिडडिड ज्वान।

छिड़ड़िड़ छोरें । चिड़ड़िड़ जोरें ॥४१२॥
खरड़ड़ खेतं । पड़रड़ प्रेतं ।
झड़ड़ड़ नाचें । रंग झड़ि राचें ॥४१३॥[1]

इस छन्द का नाम है त्रिड़का छन्द । 'तिड़कने' का अर्थ है कांच में बाल पड़ना । युद्ध के कुछ प्रतिनिधि चित्र प्रस्तुत करने के लिए भी कवि ने प्रकृत-प्रधान शैली का ही आश्रय लिया है । रक्त रंजित धरती, कटे हुए धड़, फटे हुए सिर, युद्ध-नृत्य में मस्त अर्थात अन्ध-कवन्ध, फटे हुए सिर से उठते हुए रुधिर के छींटे, कटी हुई परन्तु फड़कती हुई भुजायें, फिसे हुए शिरस्त्राण, घायल हाथी, योद्धा-रहित घोड़े, शस्त्रों से उठता हुआ अग्नि-पुंज, ढाल पर तड़पती हुई चिनगारियां, मांस, मज्जा और रुधिर पर लपकते हुए स्यार, चीत्कार करती हुई डाकिनियाँ, इन सब के बड़े स्पष्ट-सजीव चित्र कवि ने उपस्थित किये हैं । गोविन्दसिंह के युद्ध वर्णन की प्रमुख विशिष्टता यह है कि उनके चित्र सर्वदा गति और ध्वनि लिए हुए हैं । थका हुआ शरीर, खून के छींटे, शरीर पर घाव, शून्यपीठ घोड़ा आदि के चित्र भी ध्वनि के संयोग से रहित नहीं हैं :—

थका हुआ शरीर

तन झज्झर ह्वै रणभूम गिरे ॥१६॥ —पृ० १०१

घाव

बबकन्त भाए । भभकन्त घाय ॥३१॥ —पृष्ठ १०१
भभके रुण्ड मुण्ड विकरारा ॥३७॥ —पृष्ठ ११३

शून्य पीठ घोड़ा

पील राज फिरैं कहूं रण सुच्छ छुच्छ किकाण । —पृ० १०२

खून के छींटे

उठी छिच्छ इच्छं । —पृष्ठ १०७

दशम ग्रन्थ के युद्ध-वर्णन की कहीं से कोई पंक्ति भी पढ़ें तो चित्र, ध्वनि, गति और भावातिरेक का सुन्दर संयोग दृष्टिगोचर होगा ।

अप्रकृत-शैली—जब बिना अलंकार-विधान के ही इतना चित्र-प्राचुर्य है तो अलंकारों का प्रयोग क्यों ? अलंकारों का प्रयोग साधारणतः चित्र को स्पष्ट करने के लिए और भाव को तीव्र करने के लिए किया जाता है । निश्चय ही दशम ग्रंथ के अलंकार भाव को तीव्र करते हैं, किन्तु चित्र को स्पष्ट करने के लिये अथवा अगोचर विचार को बिम्ब-रूप देने के लिये हमारे कवि को अलंकार के सहयोग की विशेष अपेक्षा नहीं है । उनके चित्र स्वतः अति स्पष्ट हैं; और, अगोचर विचार उनकी रचना—जपु और अकाल उस्तति को छोड़ कर—का विषय नहीं बन सके । तो दशम ग्रंथ मे अलंकार की सार्थकता क्या है ? भाव को तीव्रता प्रदान करने के अतिरिक्त दशम ग्रंथ में अलकारों का प्रयोग इस दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है—

---

१. दशम ग्रंथ, पृ० ५६६ ।

(क) १. वे हमारी दृष्टि को युद्ध के वीभत्स एवं विकराल दृश्यो से सुन्दर और सुखद दृश्यो की ओर मोड़ते हैं।
२. वे युद्ध के प्रति हमारी भावना की दिशा का निर्देश करते हैं।

(ख) १. पौराणिक प्रसगो से हमारा परिचय अधिक पुष्ट करते हैं।
२. अद्विज जातियो का युद्ध-चित्रण से सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

(क) दशम ग्रथ का एक तिहाई से अधिक भाग विकराल युद्ध-वर्णन से भरा हुआ है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है इन युद्ध-दृश्यो मे मुख्यतः सघर्ष और उसके परिणामो का ही चित्रण है। भयावह, वीभत्स युद्ध-दृश्य और उनसे भी अधिक भयोत्पादक समानान्तर-चित्र दशम ग्रथ मे स्थान-स्थान पर मिलते हैं। कवि ने युद्ध जैसे क्रूर कर्म का सादृश्य टकराते हुए पर्वतो, फुंकारते हुए सर्पो, अमावस्या में जलते हुए मसानो, ढहते हुए कगारो, महाज्वाल मे भस्मीभूत होते हुए तृण-कुशों, उच्छृंखल जलनिधि आदि से दिखाया है—

१. लैकरि बियाल सौ बियाल बजावत सो उपमा कवि यो मन धारे।
मानो महा प्रलये बहे पौन सो आपसि मैं भिरहैं गिर भारे।—पृ० ८८

२. गिरे धरं धुरन्धुर धराधर धर जिव। —पृ० २४६

३. वाह कटी अध बीच ते मुंड सी सो उपमा कवि ने बरनी है।
आपसि मैं लरकै सुमनो गिर तैं गिरी सरप की दुई धरनी है।

४. टूट पर्‌यो सिर वा धर तैं जसु या छबि को कवि के मन आयो।
ऊच धराधर ऊर्परि ते गिर्‌यो काक कराल भुजगम खायो।—पृ० ९५

५. उठे अग्गि नालं खहै खोल खग्ग।
निसा मावसी जाणु मासाण जग्गं। —पृ० १४४

६. कैतक गिरे धरण विकरारा।
जन सरता के गिरे करारा। —पृ० १७७

७. अस पान धरे रन बीच दुहूँ तिह आपस मै बहु जुद्ध कर्‌यो।
मन यो उपजी उपमा बन मै गज सो मद को गज आन अर्‌यो।—४०९

८. (बरछी) लाग गई तिहके मुख मै बहि स्रोन चल्यो उपमा ठहराई।
कोप की आग महाँ बढिकै डढकै हिय को मनो बाहर आई।—पृ० ४०९

९. अग्नस्त्र छुट्‌यो नृप के करते जरगे मनो पावक बीच तुसा।
कटि अग परै वहु जोधनके मनो जग्ग के मडल मद्धि कुसा।—पृ० ४०८

विकराल, भयावह और वीभत्स युद्ध-दृश्यो की यह प्रचुरता साधारणतः न सुरुचि के लिये लाभप्रद है और न मानसिक सतुलन के लिये। ये दृश्य युद्ध की क्रूर-करालता का प्रतिनिधित्व तो अवश्य करते हैं; युद्ध के लिये आकर्षण उत्पन्न करने की इनकी सामर्थ्य सर्वथा असदिग्ध नही। अत. कवि कई बार अपने पाठको की दृष्टि युद्धेतर (निस्सन्देह युद्ध दृश्यो के समानान्तर) विषयो की ओर खीच देता है। युद्ध के निविड़ अन्धकार मे सैंकडो जुगनुओ के समान ये अलकार जगमगा उठते हैं जिनके

संयोग से सघन अन्धकार भी बहुत भयावह प्रतीत नहीं होता। कवि युद्ध की विकरालता से हमारी दृष्टि हटा कर उसे कभी शिशु मुख, कभी सुकोमल सिंहलराजकुमारी, कभी शीत बयार, कभी मृदुल पुष्प दल की ओर खींच देता है। भयावह, विकराल, वीभत्स युद्ध-दृश्यों के लिये सुखद, सुकोमल, सुन्दर सादृश्य जुटाने में कवि का मन बहुत रमा है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

(क) मास निहार के गृज्झ रड़ैं चट सार पड़ै (पढ़ै) जिम बारक संथा ॥१८॥ —पृ० ७५

(ख) शिशु सत्रनि के पर चक्र पर्यो छुट ऐसो बह्यो करिके बरका।
जनु खेलन को सरता तट जाय चलावत है छिछली लड़का ॥१३॥
—पृष्ठ ७८

भूमि गिर पर्यो ह्वै दूटूक महामुखि वाको।
ताकी छवि कहिवे को भयो मन दास को।
खेलवे के काज वन बीच गये बालक ज्यों।
लैंके कर मद्धि चीर डारैं लावे घास को। —पृष्ठ २७३

(ग) चक्र चलाय दयो करि ते सिर सत्र को मार जुदा करि दीनो
स्रोनत धार चली नभ को जनु सूर को राम जलांजल दीनो ॥४६॥
—पृष्ठ ७८

(घ) सक्र कमान कै बान लगे सर फोक लगे अरि के उर कैसे।
मानो पहार करार मैं चोंच पसार रहे सिसु सारक जैसे ॥६६॥
—पृष्ठ ८०

(ङ) तब लैंके कृपान जु काट दये अर (अरि) फूल गुलाब की ज्यों पतियाँ ॥१६४॥ पृष्ठ ६०

गिरे संज पुंजं सरं बाहु बीरं
सुभे बान ज्यों चैत पुहपं करीरं। —पृष्ठ १६२

(च) (बरछी) जाय लगे तिह के मुख मैं वहि स्रोन पर्यो अति ही छबि कीनी ॥
मानहु सिंगल दीप की नार गरैं मै तंबोर को पीक नवीनी ॥१६४॥
—पृ० ६४

(छ) घायल कै तन केहर तै बहि स्रउन समूह धरान पर्यो है।
गेरू नगं पर के बरखा धरनी परि मानहु रंग ढर्यो है ॥१५६॥
—पृ० ८८

(ज) अंगनि सोभैं छाय प्रभा अत ही बढ़े।
हो बस्त्र मनो छिटकाय जनेती से चढ़े।
जनेती=बराती

(झ) बाज गजी रथ राज रथी रणभूमि गिरे इह भांति सहारे।
जानो बसन्त के अन्त समैं कदली दल पौन प्रचंड उखारे।
—पृ०

(ञ) ढाल के फूल पै धार (कृपाण की) वही चिनगार उठी कवि
यो गुन गायो।
मानहु पावस की निस मैं बिजुरी दुति तारन को प्रगटायो॥
—पृ० ४०६

(ट) घायल गिरे सु मानो महा मतवारे ह्वै के
सोए रूमी तले लाल डार कै अतलसैं —पृ० ४२४

(ठ) सूरज की, सस की, जम की, हरि की वहु सैन गिराय दई है
मानहु फागन मासकै भीतर पौन बह्यौ पतिभार भई है। पृ० ४५५

(ड) रिप कौन गनौ जु हनै तिह ठा मुरझाय गिरे सिर छत्रन के
रन मानो सरोवर आँधी वहै तुट फूल परे सत पत्रन के। पृ० ४७५

(ढ) सीस कटे भट ठाढे रहे, इव स्रोण उठ्यो छवि स्याम उचारे।
बीरन को मनो बाग विखै जन छूटत है सु अनेक फुहारे॥
—पृ० ५४५

उपमा-उत्प्रेक्षा का यह कुशल प्रयोग युद्ध-भूमि को क्रीडास्थल बना देता है। साग रूपक के प्रयोग से गुरु गोविंदसिंह ने युद्ध को फाग, वर्षा, सरिता, सागर, नृत्यालय, मदिरालय, भोजनालय आदि के रूप में चित्रित किया है, जिनसे युद्ध-स्थल आकर्षक वस्तु प्रतीत होने लगता है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

युद्ध फाग के रूप मे

१. वान चले तेई कुंकम मानहु मूठ गुलाल की साग प्रहारी।
ढाल मनो डफ माल बनी हथनाल वदूक छुटे पिचकारी।
स्रौन भरे पट बीरन के उपमा जन घोर कै केसर डारी।
खेलत फाग कि वीर लरै नवला सी लिये करवार कटारी।
—पृ० ४३५

युद्ध नृत्य के रूप मे

मार ही मार अलाप उचारत दुंदभ ढोल मृदंग अपारा।
सत्रन के सिर अत्र (अस्त्र) तराक लगैं तिहि तालन को ठनकारा।
जूझि गिरे वरि रीझ कै देत है प्रानन दान वड रिझवारा।
निरत करै नट, कोप लरै भट, जुद्ध की ठौर कि निरत अखारा।
—पृ० ४३६

युद्ध मदिरालय के रूप मे

जंग भयौ जिहि ठौर निसंग सु छूटत भे दुहु ओर ते भाले।
घायन लाग भजे भट यौ मनो खाय चले गृह के सु निवाले।
वीर फिरे अति घूमत हो सु मनो अति ही मदिरा मतवाले।
वासन ते घन और निषंग फिरे रन बीच खतंग प्याले।
—पृ० ५४४

खिलवाड के प्रभाव को और पुष्ट करने के लिए गुरु ने कुछ ऐसे विनोदपूर्ण सादृश्य भी जुटाये हैं जिन्हे देखकर युद्ध जैसा विकट कर्म भी योद्धाओ के सरल निरायास नैपुण्य का साक्षी बन कर रह जाता है। युद्ध न भयप्रद प्रतीत होता है, न घृणास्पद, वह हमारे मनोरजन का साधन प्रतीत होने लगता है—

१. फेरि कै घेरि लयो रन माहि सुमुंड को मुंड जुदा करि मार्यो।
ऐसे पर्यो धरि ऊपर जाय ज्यो बेलहि ते कदुआ कटि डार्यो।
—पृ० ८५

२. (कृपाण) स्रौन भरी निकसी कर दैत कै को उपमा कवि और बिचारे।
पान गुमान सो खाय अघाय मनो जमु आपनी जीभ निहारे।—पृ० ८४

३. चड के खग्ग गदा लग दानव रचक रचक हुई तन आये।
मूंगर लाय हुलाय मनो तरा काछी ने पेड़ ते तूत गिराय। —पृ० ९५

४. चड लई करवार सभार हकार कै सीस दई बलु धारे।
जाय पर्यो सिर दूर पराय ज्यो टूटत अम्ब बयार के मारे।—पृ० ९५

(ख) युद्ध-दृश्यो का चित्रण करने के लिए गुरु गोविंदसिंह ने गोचर और अगोचर, दोनो प्रकार के उपमानों का प्रयोग किया है। अगोचर उपमानो का प्रयोग बहुत कम हुआ है। गोचर उपमानो का चयन उन्होने अधिकतर मनुष्येतर प्रकृति से किया है। इसमे सर, सरिता, सागर, वृक्ष, पाषाण, पर्वत, मेघ, वर्षा, बयार, पुष्प, फल, आदि जड पदार्थ भी आते हैं एव सिंह, चीता, गर्ज, सर्प आदि हिंस्र जन्तु भी। मनुष्येतर प्रकृति-खण्ड से लिए गये उपमानो का प्रयोग अधिकतर भाव को तीव्र करने (भयावह दृश्यो के लिए भयावह समानान्तर प्रस्तुत करके) अथवा भावना की दिशा निर्धारित करने (भयावह दृश्यो के लिए सुखद चित्ताकर्षक सादृश्य जुटाकर) के लिए किया गया है। गोविन्दसिंह ने कुछ उपमान दैवी और मानवीय सृष्टि से भी लिये हैं। गुरु नानक के काव्य का सक्षिप्त विवेचन करते समय हमने देखा था कि उन्होने पौराणिक प्रसगो का प्रयोग इस्लाम के सास्कृतिक आक्रमण का मुकाबला करने के लिए किया था। नानकोत्तर गुरुओ ने भी अपनी रचनाओ मे पौराणिक प्रसगो का प्रयोग जारी रखा। पचम गुरु के समकालीन भाई गुरुदास के काव्य मे भी इस प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। गुरु गोविंदसिंह, जिन्हे न केवल इस्लामी सास्कृतिक आक्रमण को रोकना था, बल्कि प्रत्याक्रमण करना था, भारत की समय-समादृत गौरवमयी गाथाओ के प्रभाव के प्रति उदासीन न थे। उनकी अपनी रचना 'बचित्र नाटक' हिन्दी भाषा मे लिखा गया कदाचित् प्रथम पुराण है। पुराण के पच लक्षणों मे सर्ग, उपसर्ग, वश, वशानुचरित आदि चार लक्षण तो इसमे प्रत्यक्ष विद्यमान हैं, पचम लक्षण मन्वन्तर भी परोक्ष रूप से विद्यमान है। सृष्टि के आरम्भ से लेकर कलियुग तक का पुराण-इतिहास देने का प्रयास 'बचित्र नाटक' मे किया गया है। यहां प्रकृत इतना है कि न केवल प्राचीन पौराणिक कथाओ का उल्लेख बचित्र नाटक मे किया गया है बल्कि प्रत्येक कथा मे अन्य कथाओ के प्रसगो का उल्लेख अलकार रूप मे

हुआ है। इस प्रकार जो प्रसग कथा रूप मे नही आ सके, वे अलकार रूप मे आ गये हैं। दशम ग्रथ आद्योपान्त पौराणिक प्रसगो और पात्रों के उल्लेख से भरा हुआ है। कहने की आवश्यकता नहीं कि धर्म-युद्ध का भाव उत्पन्न करने के उद्देश्य से लिखे गये दशम ग्रथ मे पौराणिक कथाओं का उल्लेख सोद्देश्य है।

गुरु गोविन्दसिंह केवल प्राचीन जातीय परम्पराओ की रक्षा ही नही कर रहे थे, बल्कि नवीन सास्कृतिक मूल्यो का सृजन भी उनके द्वारा हो रहा था। उनके द्वारा परिचालित धर्म युद्ध म उनकी सबसे अधिक सहायता शूद्र जातियो द्वारा हुई। उनके स्रोत ग्रन्थो—मारकण्डेय पुराण, देवी भागवत, रामायण महाभारत आदि—में शूद्र जातियो का युद्ध से कुछ भी सम्बन्ध नही दिखाया गया। गुरु गोविन्दसिंह ने बहुत से उपमान शूद्र वृत्ति से लिए। बचित्र नाटक, रामावतार और कृष्णावतार मे अद्विज जातियो के कार्य कलाप से सम्बन्धित उपमान इतनी प्रचुरता से मिलते हैं कि यह निष्कर्ष निकालना अनुचित न होगा कि गोविंदसिंह इनका प्रयोग युद्ध से अद्विज जातियो का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए ही कर रहे थे। यहां कुछ उदाहरण देने उपयुक्त होगे—

१. चण्ड के बानन तेज प्रभाव ते दैंत जरें जैसे ईंट अवा पैं[1]। —पृ०६१

२ चण्ड के खग्ग गदा लग दानव रचक-रचक हुइ तन आए।
मू गर लाय हुलाय मनो तरु काछी ने पेड ते तूत गिराए। —पृ०६५
काछी=माली

३ चण्ड प्रचण्ड कुवड सभार सभैं रन मद्धि दुटूक करे है।
मानो महावन में वर वृच्छन काटि कै बाढी जु दे कैं धरे है।—पृ०६४
बाढी=बढई

४. करैं दैंत आघात मुस्ट प्रहार।
मनो चोट बाहै घरियारी घरियार। —पृ० १६३
घरियारी=घड़ियाल बजाने वाला

५ थिर नाहि रहै नृप को रथ भूम मनो नटुआ वर नृत्त करे।—पृ० ४०६
नटुआ=नट

चण्डी की कृपाण निसुम्भासुर को इस प्रकार चीर जाती है—

६. मानहु सार की तार लै हाथ चलाई है साबन को सुबनीगर।—पृ०६५
सुबनीगर=साबुन बनाने वाला

७ मूसल चक्र गदा गहि कै सु हतै हरि कोप उठे चिनगारें।
मानो लुहार लिये घन हाथन लोह करेरे को कामु सवारें —पृ०४७२
लुहार=लोहार

८ लागत सीस कट्यो तिह को गिर भूमि पर्यो जसु स्याम उचार्यो
तार कु मार लै हाथ बिखै मनो चाक ते कुम्भ तुरत उतार्यो—४८०
कुभार=कुम्हार

१—ईंट पकाने वाले।

९. (क) सूरन के प्रत अंग गिरे मानो बीज बुयो छित माहि कृसानो ।
—पृ० ४६१

कृसानो=किसान

(ख) कान्ह हली बलि कै तब ही चतुरंग दसो दिस बीज बगाई ।
लै किरसान मनो तंगुली खल दानन ज्यों नभ लीचि उडाई ।—पृ०२७८

१०. हीन भई बल ते भुज (सुम्भासुर की) कांपत, सो उपमा कवि ऐसे उचारी
मानहु गारडू के बल ते लटो पंचमुखो जुग सापन कारी । —पृ० ९७

गारडू=सँपेरा

११. गूद सने सित लोहू मैं लाल कराल परे रन मैं गज कारे ।
ज्यों दरजी जम मृत कै सीत मैं बागे अनेक कता कर डारे । —पृ०७५

दरजी=दर्जी

१२. चंड संभार तबै बलु धारि लयो गहि नारि धरा पर मार्‌यो ।
ज्यों धुबिया सरता तट जायकै लै पट को पट साथ पछार्‌यो—पृ० ७७

धुबिया=धोबी

१३. खैंच कै मूंड दई करवार की एक को मार किये तब दोऊ ।
सुंभ दुटूक ह्वै भूमि पर्‌यो तन ज्यो कलवत्र सो चरीत कोऊ ।

कलवत्र सो चरीत=आराकश

१४. (शस्त्र प्रहार की ध्वनि का चित्रण)
ठंठागड़दी ठाठ ठट्ट कर मनो ।
ठागड़दी ठणक ठठियर गढ़ै ।

ठठागड़दी=ठठियार

मन, युद्धक्षेत्र के रूप में—गुरु जी की भक्ति भावना उनके युद्ध प्रेम से कहाँ तक प्रभावित है, इसका उल्लेख हम उनके भक्ति-काव्य का अध्ययन करते समय कर चुके हैं । उन्होने काम, क्रोधादि मानसिक विकारो की कल्पना भी दुर्जेय शत्रुओं के रूप मे की है जिन पर विजय प्राप्त करने के लिये शील, संतोष, धैर्य, विवेक आदि शूरवीरों की सेना संघटित करनी पडती है । गुरु जी ने इन शूरवीरो के डील-डौल, वाहन, एवं भिड़न्त का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है। कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे—

क्रोध

कड़क क्रोध कर चड़ग भड़कि भा दवि ज्यों गज्जत ।
सड़क तेग दामन तड़क्क तड़ भड़ रण सज्जत ।
लड़क लुत्थ बित्थुरग सेल सामुहि ह्वै घल्लत ।
जदिन रोस रावरा रणहि दूसर को झल्लत ॥[1]

भ्रम—

धूम्र वरण सारथी धूम्र बाजीरथ छाजत।

---

१. दशम ग्रंथ, पृ० ६६१

धूम्र वरण आभरण निरख सुर नर मुन लाजत।
धूम्र नैन धूमरो गात धूमर तिह भूखन।
धूम्र वदन ते वमत सरब सत्रू कुल दूखन।
अस भरम मदन चतुरथ सुवन जदिन रोस करि धाइ है।
दल लूट कूट तुमरो नृपत सुसरब छिनक मह जाइ है।[1]

हुलास—

कऊवत दामन सघन सघन घोरत चहु दिस घन।
मोहित भामन सघन डरत विरहनि प्रिय लोचन।
बोलत दादर मोर सुघन झिल्ली झिकारत।
देखत दृगन प्रभाव अमित मुन मन वृत हारत।
इह विध हुलास मदनज दूसर जदिन पटक दै सटक है।
बिनु इक बिबेक सुनहो नृपत और दूसर को हटक है॥[2]

भिड़न्त के समय 'पापास्त्र', 'धरमास्त्र', 'परमास्त्र', 'दैतास्त्र', कामास्त्र', 'चरितास्त्र आदि का प्रयोग होता है। विवेक और अविवेक के युद्ध की प्रेरणा गुरु जी को कदाचित् 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक से मिली है।

वीरेतर रसों में वीर—गुरु जी के युद्ध-वर्णन का प्रभाव उनकी समस्त रचना पर परिव्याप्त है। कतिपय ऐसे प्रसगो मे भी युद्ध का वातावरण ले आते हैं जिनका युद्ध से दूर का सम्बन्ध भी नही होता। परिणामतः शृंगार, वात्सल्य, करुणा आदि रसो से सम्बन्धित रचना मे भी युद्ध प्रसग अप्रवृत्त विधान के रूप मे उपस्थित रहता है। यहाँ कुछ उदाहरण उपस्थित हैं :

शृंगार संयोग—

सिया देख राम। बिधी बाण कामं।
गिरी भूमि भूम। मदी जाण घूमं।
उठी चेत ऐसे। महाबीर जैसे।
रही नैन जोरी। ससं ज्यो चकोरी।
रहे मोह दोनो। टरे नाहि कोनो।
रहै ठाढ ऐसे। रणं बीर जैसे। —द० ग्रं०, पृ० १९६

विप्रलम्भ—

उठ ठाढि भये फिरि भूम गिरे।
पहरेकक लउ फिर प्रान फिरे॥
तन चैत सुचेत उठे हरि यों।
रण मण्डल मद्धि गिर्‍यो भट ज्यों॥ —द० ग्रं०, पृ० २१७

१. दशम ग्रथ, पृ० ६९०
२. वही, पृ० ६८९-९०

करुण—

होर रहे जन कोर कई मिलि जोर रहे कर एक न मानी।
लच्छन मात के धाम विदा कहु जात भये जीग्र मो इह ठानी।
सो सुनि बात पपात धरा पर घात भली इह बात बखानी।
जानुक सेल सुमार लगे छित सोवत सूर बडो अभिमानी।

—द० ग्र०, पृ० २०८

तरफरात पृथ्वी पर्‌यो सुनि बन राम उचार।
पलक प्राण त्यागे तजत मद्धि सफरि सर बार ॥२३८
राम नाम स्रवनन सुणयो उठि थिर भये अचेत।
रण सुभट गिर्‌यो उठ्यो गहि असि निडर सुचेत ॥२३९

—द० ग्र०, पृ० २०६

वात्सल्य—

(शिशु पारसनाथ का रूप वर्णन)
मोहन जाल सभन सिर डारा।
चेटक बान चक्रित ह्वै मारा।
जह तह मोह सकल नरि गिरे।
जान सुभट सामुहि रण भिरे॥

—दशम ग्रन्थ, पृ० ६७०

शूरवीरों का व्यक्तित्व—युद्ध-वर्णन मे दशम ग्रथ के लेखक का ध्यान शूरवीरो के व्यक्तित्व पर भी गया है। जैसे युद्ध-प्रसग मे उनकी दृष्टि युद्ध के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग भिडन्त पर रही है, वैसे ही शूरवीरो का व्यक्तित्व अकित करते समय उनका ध्यान शूरवीरो की मुखाकृति, डील-डौल पर न रह कर[1] उनके मानस पर ही रहा है। इस सम्बन्ध मे दूसरी ज्ञातव्य बात यह भी है कि उन्होने शूरवीरो का वर्णन स्वतन्त्र, कथा-निरपेक्ष रूप मे नहीं किया, उन्होने शौर्य-कर्म मे व्यस्त शूरवीरो के ही चित्र उपस्थित किये हैं। सक्षेप मे, शूर वर्णन युद्ध वर्णन का ही एक अग है।

दशम ग्रथ शूर और कायर के बीच तो अन्तर करता है, शूर और शूर के बीच कोई अन्तर नही करता। शूर कर्म में व्यस्त स्वपक्षी और परपक्षी सभी शूर, वीर हैं। राम और कृष्ण को अवतार पुरुष मानते हुए भी वे युद्ध वर्णन मे उन्हें विशेष व्यवहार का अधिकारी नही समझते। वे युद्ध भूमि मे मूर्च्छित, पराजित और लज्जित होते हैं। और कृष्ण ही नही महादेव और गणेश को भी सामान्य शूरवीरो से पराजय होती है।

राम-मूर्च्छा

रघुराज आदि मोहे सुवीर। दल सहित भूम डिग्गे अधीर।

---

१. ऐसे चित्र अपवाद रूप में ही दृष्टिगत होते हैं।

तब कही दूत रावणहि जाइ। कपि कटक आजु जीत्यो बनाइ।
सिय भजहु आज ह्वै क निचोत। सघरे राम रण इन्द्रजीत।[१]

शिव मूर्च्छा

बरछी तब भूप चलाइ दई।
सिव के उर में लग आन्त भई।
उपमा कवि ने इह भांत कही।
रवि की मिन कज पै मड रही।
हर मोहि रह्यो गिर भूम पर्‍यो।
मनो वज्र पर्‍यो गिर सृ ग झर्‍यो ।।२।।

शिव पराजय

रुद्र के आनन को अविलोक कै यो कहि के नृप बात चलाई।
का भयो जो जुगिया कर लै कर डिम्भ के कारण नाद बजाई।
तदुल मागन है तुय कारज मैं न डरो तुहि चांप चढाई।
जूझवो काम है छत्रन को कछु जोगन को नहि काम लराई।।
यो कहि कै बतिया सिव सो नृप पान बिखै रिस खडग बडो लै।
मारत भे हर के तन मै कवि स्याम कहै जिय कोप महा कै।
घाउ कै सभु के गात बिखै इम बोलि उठ्यो हँसि सिंध जरा जै।
रुद्र गिर्‍यो सिरमाल कहू कहू बैल गिर्‍यो गिर्‍यो सूल कहूँ ह्वै।
जब सिव जू कछु सज्ञा पाई।
भाजि गयो तज दई लराई।[३]

कृष्ण-पराजय—

जा प्रभ को नित ब्रह्म सची पति सो सनकादिक हू जपु कीनो।
सूर ससी सुर दारद सारद ताही के ध्यान बिखै मनु दीनो।
खोजत है जिह सिद्ध महामुन व्यास परासुर भेद न चीनो।
सो खडगेस अयोधन मै कर मोहित केसन ते गहि लीनो।

× × ×

रन मै खडगेस बली बलु कै अपनो कर कै हरि छाड दयो।[४]

कृष्ण की आत्म-ग्लानि—

श्री जदुबीर के भाजत ही छुट धीर गयो बर बीरन को।
लखि ब्याकुल बुद्ध निराकुल ह्वै लख लागे है घाइ सरीरन को।
सुधबाइ के स्यदन भाज चले डर मान घनो अरि तीरन को।
मन आपने को समझावत स्याम तैं कीनो हैं काम अहीरन को।[५]

---

१. दशम ग्रथ, पृ० २२७
२ वही, पृ० ४४६
३. वही, पृ० ४५१
४. वही, पृ० ४५२
५. वही, पृ० ४४२

संक्षेप मे, दशम ग्रंथ युद्ध को मानवोचित कर्म के रूप मे प्रस्तुत करता है। युद्ध में विजय मानवोत्तर चमत्कारो की अपेक्षा नहीं रखती। यहाँ राम, कृष्ण और शिव भी अपराजेय नही। कई स्थानो पर मानव-शौर्य को अवतार पुरुषो के शौर्य से उत्कृष्ट बताकर दशम ग्रंथ के लेखक ने मानव शक्ति को श्रद्धांजलि अर्पित की है।

शूरवीरो के व्यक्तित्व का प्रमुख तत्त्व है युद्धोल्लास। कुछ स्थानो पर वे स्वामि-भक्ति अथवा धर्म-भावना से प्रेरित हो कर युद्ध करते दिखाई देते हैं। किन्तु उनका प्रमुख प्रेरणा-स्रोत आन्तरिक उल्लास ही है। युद्ध के बिना जैसे उनका मन नही लगता। एक अत्यन्त शक्ति-सम्पन्न शूरवीर समर्थ प्रतिद्वंद्वी न पा कर अपने आराध्य रुद्र से इस प्रकार वर माँगता है :

सीस निवाइ कै प्रम बढाइ कै यो नृप रुद्र सो बैन सुनावै।
जात हो हउ जिह सत्र पै रुद्र जू कोऊ न आगे ते हाथ उठावै।
ताते अयोधन कउ हमरो कवि स्याम कहै मनुआ ललचावै।
चाहत हौ तुम ते वरु आज कोऊ हमरे संग जूझ मचावै ॥[1]

इसी उल्लास के कारण उन्हें युद्ध के मारू बाजे भी सुहावने[2] लगते हैं और शत्रु का शौर्य प्रशस्य प्रतीत होता है। दशम ग्रंथ मे शत्रु के महत्त्व का अवमूल्यन कही भी नही हुआ। इसका कारण कलापरक भी हो सकता है और वस्तुस्थिति-परक भी। कला की दृष्टि से दोनो पक्षो के संतुलित वर्णन का बड़ा लाभ है। इससे युद्ध खिलवाड़ अथवा एकपक्षीय शौर्य-प्रदर्शन नही रह जाता। वस्तुस्थिति की दृष्टि से भी इस प्रकार का संतुलन अत्यन्त स्वाभाविक है। पौराणिक प्रबन्धो की रचना वे सामयिक उद्देश्य के लिये कर रहे थे। अतः पौराणिक युद्धो का वर्णन करते समय उनके मन पार्श्व मे समसामयिक युद्धों का वातावरण अवश्य विद्यमान था। इन युद्धो मे परपक्ष का बल वैभव प्रत्यक्षतः इतना उत्कृष्ट था कि उसका अवमूल्यन सम्भव न था।

केवल कवि ही पक्षद्वय की संतुलित प्रशंसा करता हुआ प्रकारान्तर से शत्रु-पक्ष की प्रशंसा नही करता, प्रबन्धो के पात्र युद्धनायक भी शत्रु पक्ष की प्रशंसा करते हैं :

पारथ आन कमान गही तिह भूपति को इक बान लगायो।
लागत ही अवसान गुमान गयो खड़गेस महा दुखु पायो।
पौरख पेख के जी हरिख्यो बल टेर नरेस सु ऐसे सुनायो।
धन्न पिता धन्न वे जननी जुधनजै नामु जिनो सुत जायो।[3]

---

१. दशम ग्रंथ, पृ० ५३१

२. मारू सबद सुहावन बाजे
जे जे हुते सुभट रण सुन्दर गहि गहि आयुध गाजे। —दशम ग्रंथ, पृ० ६८०
दै रै दै रै दीह दमामा
कर हीं रुण्ड मुण्ड बसुधा पर लखत स्वर्ग की बामा। —दशम ग्रंथ, पृ० ६८०

३. दशम ग्रंथ, पृ० ४६१

बात केवल मौखिक प्रशंसा पर ही समाप्त नहीं होती। अदम्य युद्धोल्लास से प्रेरित शूरवीर समान बल वाले शत्रु को मूर्च्छित होने पर जल पिलाते, और पराजित होने पर क्षमादान देते हैं ताकि उनसे पुनः युद्ध करने का अवसर मिले।—

(१) अस्ट दिवस अस्टे निस जुद्धा।
कीनो दुहू भटन-मिलि क्रुद्धा।
बहुरो असुर किछुकु मुरझाना।
गिर्‍यो भूम जन बृच्छ पुराना।
सीच बार पुन ताहि जगायो।
जगे मूर्छना पुन जिय आयो।
बहुरो भिरे सूर दोई क्रुद्धा।
भड्यो बहुर आप महि जुद्धा।[1]

(२) चित करो चित मैं तिह भूपत जो इह कउ अब हउ बधकै हौं।
सैन सभै भज है जब ही तब का सग जाइकै जुद्ध मचै हो।
हउ किह पै करिहो बहु घाइन का के हउ घाइ सनम्मुख खैहो।
छाड दयो कह्यो जाहु चले हरि तो सम सूर कहू नही पैहो।[2]

युद्धोल्लास का अत्यन्त सजीव चित्रण वहाँ है जहाँ योद्धा मृत्यु पर्यन्त लड़ना चाहता है। विच्छिन्न मुण्डों और अन्ध-कबन्धों में भी शत्रु पर प्रहार करने का उत्साह बना रहता है। वीरगति प्राप्त शूरवीर विमानारूढ होने का विरोध करते हैं। उन्हें स्वर्ग-प्रयाण करने की अपेक्षा रणभूमि में निरन्तर युद्ध करना अधिक रुचिकर है —

(क) कटा मुण्ड

जदिपि सीस कट्‌यो न हट्‌यो गहि केसनि ते हरि ओर चलायो।
मानहु प्रान चल्यो दिव आनन काज बिदा बृजराज पै आयो।
सो सिर लाग गयो हरि के उर मूरछ ह्वै पगु ना ठहरायो।
देखहु पौरख भूप के मुण्ड को स्यदन ते प्रभ भूम गिरायो।[3]

(ख) अन्ध-कबन्ध

मुण्ड बिना तब रुण्ड सु भूपति को चित मै अति कोप बढायो।
द्वादस भान जु ठाढे हुते कबि स्याम कहै तिह ऊपर धायो।
भाज गये कर त्रास सोऊ सिव ठाढो रह्यो तिहि ऊपरि आयो।
सो नृप बीर महा रनधीर चटाक चपेट दै भूम गिरायो।[4]

१. दशम ग्रंथ, पृ० १६७
२. वही, पृ० ४५२
३. वही, पृ० ४७१
४. वही, पृ० ४७१

(ग) वीरगति प्राप्त शूरवीर :

देव वधू मिलिकै सबहू इह भूप कवन्ध विवान चढायो।
कूद पर्यो न विवान चढ्यो पुनि सस्त्र लिये रनभू मधि आयो।[1]

संक्षेप मे हम कह सकते हैं कि दशम ग्रंथ का शूरवीर विशुद्ध उल्लास से प्रेरित है।

गर्व—दशम ग्रंथ के शूरवीर वाचाल नही हैं। साधारणतया वे अपने विषय मे मौन हैं। कही-कही वे कुछ कहते हैं तो पता चलता है कि वे शौर्य-कर्म पर उपयुक्त गर्व का अनुभव कर रहे हैं। दशम ग्रंथ मे गर्वोक्तियों की संख्या बहुत कम है; किन्तु ऐसी उक्तियाँ शूरवीरो के गर्व एवं आत्माभिमान को व्यक्त करने मे अत्यन्त समर्थ हैं। दो गर्वोक्तियाँ उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत हैं :—

पसचम सूर चढै कबहू, अरु गंग बही उलटो जिय आवै।
जेठ के मास तुखार परे बन, और बसंत समीर जरावै।
लोक हलै ध्रू अ्र को, जल को थल हुइ, थल को कबहू जलु जावै।
कंचन को नगु पंखन धारि उडै खड़गेस न पीठ दिखावै।[2]
काहु को जूझ करै सुन रे नृप तोहू को जीवत जान न दैहै।
दीरघ देह सलोनी सी मूरति सो सम भच्छ कहाँ हम पैहै।
तू नही जानत है सुन रे सठ तो कहु दाँतन साथ चबैहैं।
तोही के मास के खण्डन खण्ड कै पावक बान मे भूंज कै खैहै।[3]

कुछ स्थूल विशिष्टतायें—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है दशम ग्रंथ मे शूरवीर के आन्तरिक पक्ष का चित्रण ही कवि को रुचिकर रहा है। कही-कही उसके चरित्र की बाह्य, स्थूल विशिष्टताओ का उल्लेख भी कवि ने किया है। विख्यात शूरों द्वारा मदिरापान का वर्णन तो अनेक स्थानो पर हुआ है। परकीया-सेवन का उल्लेख भी कई स्थानो पर हुआ है। किन्तु, ये व्यसन कृष्ण, हलधर, अर्जुन आदि विख्यात शूरो के लिए ही सुरक्षित हैं।[4] सामान्य योद्धाओ के विषय मे ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता। व्यसन-प्रेमी शूरवीरो की एक और विशिष्टता है वाणी-वैदग्ध्य का अभाव। उनकी वाणी सर्वत्र अकुण्ठित है और कही-कही अमर्यादित, कदाचित् अशिष्ट। कृष्ण अपने आतिथेय अयोध्या-नरेश से उसकी कन्या की याचना किस नि.संकोच भाव से करते हैं :

---

१. दशम ग्रंथ, पृ० ४७२
२. वही, पृ० ४६१
३. वही, पृ० ४४५
४. तिन की बहु सग पदारथ लै हरि भोजन की भूख मै पग धार्यो।
पोसत भाग अफीम मंगाइ पियो मद सोक बिदा करि डार्यो।
मत्त है चारोई कैफन सो सुत इन्द्र कै सो इम स्याम उचार्यो।
काम कियो मद्य घट क्यों मदिरा को न आठवो सिंघ सवार्यो।
दशम ग्रन्थ पृ० ५१२

देखकै प्रीत नृपोत्तम की हँसिकै तिह सो इम स्याम उचारो ।
हौ तुम राघव के कुल ते जिन रावन सो रिस ध्रन उतारो ।
मांगवो छत्रन को न कह्यो तऊ मांगत है नहि सक बिचारो ।
आपनी दै दुहता हम को तिह को चित चाहत है सु हमारो ।[1]

किन्तु ऐसे उदाहरण अत्यन्त विरल हैं और वे युद्ध-वर्णन के आवश्यक अग नहीं हैं।

छन्द प्रबन्ध—छन्द प्रबन्ध की दृष्टि से हम दसम ग्रन्थ के युद्ध-वर्णन को तीन शैलियो मे विभक्त कर सकते हैं

१. कवित्त-सवैया शैली,
२. पद्धटिका शैली,
३. विष्णु-पद शैली ।

प्रत्येक शैली का अपना विशिष्ट प्रवाह और प्रभाव है । कवित्त सवैया शैली का प्रयोग सालकार चित्रण के लिए हुआ है। ऐसा चित्रण मुख्यत चाक्षुष सौंदर्य का सृजन करता है। पद्धटिका शैली का प्रयोग अलकारहीन, प्रकृत चित्रण के लिए हुआ है। पद्धटिका शैली का वैशिष्ट्य युद्ध की गति और ध्वनि को अकित करने मे है। ऐसे अकन से मुख्यत कर्णेन्द्रियों की सतुष्टि होती है। युद्ध-वर्णन के लिए विष्णु-पद शैली का प्रयोग बहुत कम देखने मे आता है। वीरगाथा काल के कवियो अथवा रीतिकालीन कवि भूषण मे यह प्रवृत्ति नही पाई जाती। गुरु गोविन्दसिंह ने पारस-नाथ रुद्रावतार मे इस शैली का प्रयोग युद्ध को अत्यत कोमल कर्म के रूप मे प्रस्तुत करने के लिए किया है। पद अथवा गीत का प्रयोग अधिकतर प्रणय-निवेदन के लिए ही होता रहा है। गीतो म चित्रित युद्ध दृश्यो को पढकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे युद्ध-सुन्दरी कवि की अपनी प्रेयसी है। युद्ध के लिए ऐसे आत्मीय अनुराग के दर्शन अन्यत्र सर्वथा अलभ्य हैं।

गीति शैली मे वर्णित युद्ध-दृश्यो का प्रमुख वैशिष्ट्य यह है कि वे शूरवीरो के व्यक्तित्व के कोमल पक्ष को उदघाटित करने मे समर्थ हुए हैं। कवित्त-सवैया शैली मे विकराल युद्ध-कर्म के कोमल समानान्तर प्रस्तुत करने का यत्न हुआ है। किन्तु वे युद्ध-कर्म की कोमलता को प्रकट करते हैं, योद्धाओ की चरित्रगत कोमलता को नही। युद्ध-गीतों मे योद्धाओ और उनके वरण के लिये उत्सुक अप्सराओ के मानस की मृदुता के दर्शन होते हैं।

१ दे रे दे रे दोह दमामा
करि हौ रुण्ड मुण्ड बसुधा पर लखत स्वर्ग को बामा।[2]

---

१ दसम ग्र०, पृ० ५२० ।
२. वही, पृ० ६८०

२. सुरपुर नारि बधावा माना
वारि है आज महा सुभटन को समर सुयंवर जाना।
... ...
चंदन चारि चित्र चंदन के चचल अंग चढाऊ
जा दिन समर सुअंवर कर कै परम पिअरवहि पाऊ।[1]

युद्ध-वर्णन मे अतिरिक्त मार्दव का संचार करने के लिए कवि कभी अप्सराओं की रूपराशि के चित्र उपस्थित करता है और कभी युद्ध को उत्सव (वसंत अथवा होली) के रूप में ग्रहण करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि इन युद्ध-गीतों के सौजन्य से 'वीर' 'शृंगार' से भिन्न प्रतीत नही होता। यहां दो पद उदाहरणार्थ उद्धृत करने अनुपयुक्त न होंगे :

चुपरे चिकने केस।
आन आन फिरी चहूँ दिस नार नागर भेस
चिवक चार सुधार बेसर डार काजर नैन।
जीव जतन का चली चित लेत चोर सुमैन।
देख री सुकुमार सुन्दर आजु वर है वीर।
बीन बीन धरो सवंगन सुद्ध केसर चीर।
चीन चीन वरिहै सुवाह सुमद्ध जुद्ध उछाह।
तेग तीरन बान बरछन जीत करिहै ब्याह।[2]

इह विध फाग कृपानन खेले।
सोभत ढाल भाल डफ भाले मूठ गुलालन सेले।
जान तुफंग भरत पिचकारी सूरन अंग लगावत।
निकसत स्रोण अधिक छवि उपजत केसर जानु सुहावत।
स्रोणत भरी जटा अति सोभत छबहि न जात कह्यो।
मानहु परम प्रेम सो डार्यो ईंगर लागि रह्यो।
जह तहं गिरत भये नाना बिधि सांगन सत्र परोये।
जानुक खेल धमार पसार कै अधिक स्रमित ह्वै सोये।[3]

संक्षेप मे गुरु गोविन्दसिंह छन्द के बाह्य आकार के निर्वाह में ही निपुण नहीं, वे उसकी 'आत्मा' को भी पहचानते हैं। युद्ध से सम्बन्धित विविध व्यापारों, मनःस्थितियो और आवेगो के उपयुक्त चित्रण के लिये वे अत्यन्त समर्थ छन्द का चयन कर लेते हैं।

उपसंहार—पंजाब के हिन्दी-गुरुमुखी साहित्य मे पौराणिक कथाओं का सन्निवेश गुरु नानक से ही आरम्भ हुआ। गुरु-काव्य और गुरुदास-काव्य में इसके

१. दशम ग्रंथ, पृ० ६८१
२. वही, पृ० ६८२
३. वही, पृ० ६८३

पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं। गुरुदास ने पौराणिक कथाम्रों को ग्रपने पंजाबी कथा-गीतों का विषय बनाया है। ग्रप्रामाणिक गुरुग्रों (मिहरवानु, हरि जी ग्रादि) ने पौराणिक ग्रवतारो की कथायें सुन्दर काव्यमय गद्य में लिखी। तदुपरान्त पौराणिक काव्य-रचना से सम्बन्धित दो प्रकार की रचनायें देखने मे ग्राती हैं। प्राचीन पौराणिक नायकों की कथायें भी कही गई ग्रौर ऐतिहासिक नायको का पौराणिक शैली पर चरित-लेखन भी हुग्रा।

हमारी कालावधि में दोनों प्रकार की रचनायें हुई। प्रथम प्रकार की रचना करने का श्रेय हृदय राम भल्ला ग्रौर गुरु गोविन्दसिंह को है। इन दोनो ने प्राचीन संस्कृत साहित्य का ग्रत्यन्त क्षीण-सा ग्राधार लेकर सर्वथा मौलिक प्रबन्धों की रचना की। इन दोनो लेखको ने तीन महाकाव्यो, चार खण्डकाव्यो ग्रौर बावन लघु कथाग्रों का सृजन किया। इस काल में महाभारत के ग्रनेक भावानुवाद भी हुए। एक ग्रनुवाद ग्रध्यात्म रामायण का हुग्रा। इस काल के मौलिक ग्रथो की ग्रन्य विशिष्टतायें इस प्रकार हैं :

रस—महाकाव्यों (हनुमान नाटक, रामावतार, कृष्णावतार) में सभी रसों के उदाहरण मिलते हैं। खंडकाव्यो ग्रौर लघुकाव्यों का मुख्य रस वीर है।

छन्द—इन रचनाग्रो मे प्रयुक्त छन्दों की संख्या सत्तर के लगभग है। निम्नलिखित छन्द-शैलियों का प्रयोग इन रचनाग्रों में हुग्रा है :

१. पद्धटिका शैली;
२. कवित्त-सवैया शैली;
३. दोहा-चौपाई शैली;
४. गेय पद शैली।

भाषा—इनकी भाषा ब्रज है। हनुमान नाटक की भाषा तो प्रान्तीय प्रयोगों से सर्वथा मुक्त है। गुरु गोविन्दसिंह की रचनाग्रो में कहीं-कही पंजाबी, पूरबी एवं फारसी पुट भी मिलता है।

द्वितीय अध्याय

ऐतिहासिक प्रबन्ध

सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में पंजाब प्रदेश में निम्नांकित ऐतिहासिक प्रबन्धों की रचना हुई :—

१. अपनी कथा (गुरु गोविंदसिंह)
२. गुरु शोभा (सेनापति)
३. जंगनामा आनन्दपुर (अणीराय)
४. गुरु विलास (सुक्खासिंह)
५. महिमा प्रकाश (सरूपचन्द भल्ला)
६. जन्म साखी नानक शाह की (सन्तदास छिब्बर)
७. नानक विजय (संत रेण)
८. अमर सिंह की वार (केशवदास)
९. परचियाँ भाई सेवाराम जी (सहजराम)

इनके अतिरिक्त दो रचनायें ऐसी भी हैं जिनका रचनाकाल संदिग्ध है। प्राप्त पाण्डुलिपियों मे अंकित रचना-काल उन्हें अठारहवी शताब्दी से सम्बन्धित करता है किन्तु कतिपय परिस्थितियाँ (जिनका उल्लेख इसी अध्ययन के अन्त मे हुआ है) इस रचना-काल को स्वीकार करने मे बाधक हैं। इन रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं :

१. गुरु विलास (कुहरसिंह कलाल)
२. गुरु विलास छेवी (छठी) पातशाही (अमरसिंह)

इन प्रबन्धों की प्रथम सामान्य विशेषता यह है कि ये सारी रचनायें सिक्ख गुरुओं अथवा उनके सिक्खो से सम्बन्धित हैं। ऐतिहासिक प्रबन्धों के नायक बनने का श्रेय इतिहास के निर्माताओ को ही हो सकता है। सत्रहवी और अठारहवीं शती का पजाब प्रदेश का इतिहास सिक्ख गुरुओ द्वारा प्रेरित और सचालित विद्रोह आन्दोलन का ही इतिहास है। अतः यह स्वाभाविक ही है कि तत्कालीन इतिहास को अपनी रचनाओ का विषय बनाने वालो की दृष्टि इस विद्रोह के नायकों की ओर जाती। उपर्युक्त प्रबन्धों मे से प्रथम चार के नायक गुरु गोविन्दसिंह जी हैं और उनकी प्रमुख प्रवृत्ति मुगलो के विरुद्ध संचालित सशस्त्र आन्दोलन की घटनाओं को चित्रित करने की है। पचम, षष्ठ एवं सप्तम रचना के नायक गुरु नानकदेव हैं। नायक का व्यक्तित्व शातिप्रिय होने पर भी विद्रोह का प्रतीक बना रहता है।

अठारहवी शती के अन्तिम चरण मे रचित 'नानक विजय' का अभिधान तत्कालीन हिन्दू मनोवृत्ति का प्रतिनिधित्व करता है। गुरु नानक का धर्म-प्रचार मुस्लिम सस्कृति और धर्म के वर्धमान प्रभाव को पराजित करने का ही प्रयास है, ऐसा 'नानक विजय' के लेखक का मत प्रतीत होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल के लेखक समूचे सिक्ख आन्दोलन की गाथा कहने के लिये उत्सुक हैं। सास्कृतिक अस्त्रो एव लौहास्त्रो से लडे जाने वाले युद्ध एक ही जनजागरण की अभिव्यक्ति प्रतीत होते हैं। 'अमरसिंह की वार' तक पहुँचते हुए हम देखते हैं कि यह जनजागरण वाछित सफलता प्राप्त कर चुका है। मुस्लिम सत्ता का प्रभुत्व मिट चुका है और अब उसके बचे खुचे प्रभाव को नष्ट करने का प्रयास हो चुका था। उपरि-परिगणित सभी रचनाओ मे केवल 'परचियाँ' नामक रचना ही ऐसा है जिसमे तत्कालीन युग का महत्त्व प्रत्यक्ष रूप से प्रतिबिम्बित नही हो पाया। सेवा-पथी सम्प्रदाय का परिचय देते हुए हम देख चुके हैं कि यह सम्प्रदाय तत्कालीन द्वन्द्व से प्रायः तटस्थ रहा। ये महात्मा निरपेक्ष शान्ति और सेवा के प्रचारक थे। अत उनकी रचना मे ऐसी तटस्थता का होना स्वाभाविक ही है। इस एक अपवाद के अतिरिक्त अन्य समस्त रचनायें युग-सत्य को सम्यक् रूप से प्रतिबिम्बित करती हैं।

इन प्रबन्धो की दूसरी सामान्य विशेषता यह है कि केवल इनके नायक ही गुरु (प्रथम सात) अथवा गुरु सिक्ख (अन्तिम दो) नही बल्कि इनके रचयिता भी गुरु एव गुरु सिक्ख हैं अथवा उनके द्वारा आश्रित कवि। इतिहास एवं साहित्य का निर्माण एक ही जन-समुदाय द्वारा हो रहा था। प्रथम रचना—अपनी कथा—गुरु गोविन्दसिंह द्वारा लिखित आत्मकथा (अथवा आत्म-परिचय) है। गुरु शोभा (२) गुरु विलास (४), महिमा प्रकाश (५), जन्म साखी (६), के रचयिता केशधारी और सहज-धारी दोनो प्रकार के सिक्ख हैं। नानक विजय (७) के लेखक उदासी महात्मा एव 'परचियाँ' के लेखक सेवापथी महात्मा भी प्रामाणिक गुरु-सस्था के प्रति श्रद्धा रखने वाले सिक्ख है। अन्य दो रचनायें गुरु दरबार एव फूल दरबार द्वारा आश्रित कवियो की देन है। यहाँ एक बात विशेष रूप से द्रष्टव्य है कि अप्रामाणिक गुरुओ अथवा उनके सेवको का इन प्रबन्धो से दूर का भी सम्बन्ध नही। ये प्रबन्ध सिक्ख गुरुओ के अधिनायकत्व मे होने वाले आन्दोलन की ही कथा कहते हैं।

इन प्रबन्धो की तीसरी सामान्य विशेषता है इनकी पौराणिक भावना। गुरुओं और गुरु-सिक्खो द्वारा पौराणिक देवताओ के सम्बन्ध मे जो प्रबन्ध रचना हुई, इसका उल्लेख गत अध्याय मे हो चुका है। जहाँ पौराणिक प्रबन्धो में पौराणिक पात्रो की यश-कथायें कही गईं वहाँ इन ऐतिहासिक प्रबन्धो मे ऐतिहासिक पात्रो को भी पौराणिक व्यक्तित्व प्रदान करने का यत्न किया गया है। ये प्रबन्ध सिक्ख गुरुओं को अवतार पुरुष के रूप मे चित्रित करते हैं। पौराणिक प्रवृत्ति की पराकोटि के दर्शन 'नानक विजय' मे होते हैं, इसी प्रवृत्ति के अतिरेक के कारण ऐतिहासिक व्यक्ति का चरित्र कहने वाला यह प्रबन्ध ऐतिहासिक से अधिक पौराणिक प्रबन्धो में स्थान

पाने का अधिकारी है। सक्षेप में ये ऐतिहासिक प्रबन्ध अपने समसामयिक पौराणिक प्रबन्धों के पूरक-से प्रतीत होते है। दोनो में एक ही मनोवृत्ति की अभिव्यक्ति है।

इन प्रबन्धो की अन्तिम सामान्य विशेषता है इनकी भाषा। ये सभी ग्रथ सरल ब्रजभाषा मे लिखे गये हैं, बीच-बीच में पजाबी का पुट है। स्मरण रहे कि इन दो शताब्दियो मे पजाब के विद्रोह आन्दोलन की एक भी कथा पजाबी भाषा मे नहीं कही गई। पजाबी भाषा मे भी प्रबन्ध लिखे गये किन्तु विद्रोह-प्रबन्ध नहीं, प्रेम-प्रबन्ध। इन प्रेम-प्रबन्धो के लेखक, कुछ एक अपवादो के अतिरिक्त, मुसलमान थे। इससे हमारी पूर्व कथित धारणा और भी पुष्ट होती है कि इन दो शताब्दियो मे पजाब प्रदेश मे जनजागरण का माध्यम हिन्दी भाषा ही थी। ये सभी प्रबन्ध निरपवाद रूप से गुरुमुखी में लिपिबद्ध हुए है।

प्राप्य सामग्री आदि—इन नौ प्रबन्धो मे से हम ने तीन प्रबन्धो 'गुरु शोभा', 'जगनामा आनन्दपुर' और 'अमरसिह की वार' का विवेचन इस निबन्ध के तृतीय खड मे, दरबारी काव्य के प्रसग मे किया है। इनमे से प्रथम दो के रचयिता आनन्द-पुरीय गुरु दरबार के और तृतीय फूलवशीय राज दरबार के आश्रित कवि थे। शेष छह कृतियो का परिचय और विवेचन इस अध्याय मे प्रस्तुत है। इसके अतिरिक्त गुर विलास (कुहर सिह कलाल) एव गुरु विलास छठी पातशाही (भगतसिह) पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ दी गई हैं।

इन प्रबन्धो पर परिचयात्मक अथवा आलोचनात्मक सामग्री सर्वथा अलभ्य है। इन मे से पाँच ग्रथ—'महिमा प्रकाश', 'जन्म-साखी नानक शाह की', 'नानक विजय', 'परचियाँ सेवाराम', 'गुर विलास' (कुहरसिह) तो अभी पाण्डुलिपियो के रूप मे ही उपलब्ध हैं और इनके प्रकाशन की कोई सम्भावना निकट भविष्य मे नहीं। 'गुर शोभा', 'गुर विलास' (सुक्खासिह), 'गुर विलास' (भगतसिह) का प्रकाशन हुए बहुत समय हो चुका है और अब इन की प्रकाशित प्रतियाँ दुष्प्राप्य हैं। 'अपनी कथा', 'जगनामा आनन्दपुर', 'अमरसिह की वार' के प्रकाशित एव प्राप्य संस्करण विद्यमान हैं। अन्तिम तीन ग्रथो पर सामान्य टिप्पणियाँ डा० धर्मपाल अष्टा द्वारा लिखित दशमग्रन्थ का कवित्व और सरदार शमशेर सिह अशोक द्वारा सपादित 'प्राचीन जगनामे' मे मिलती हैं। इनके ऐतिहासिक अथवा साहित्यिक महत्व का विश्लेषण अभी तक नहीं हुआ।

गुरु गोविंदसिंह से सम्बन्धित ऐतिहासिक प्रबन्ध

१. अपनी कथा (लेखक गुरु गोविन्दसिंह)
२. गुरु शोभा (गुरु दरबारी कवि सेनापति)
३. जंग नामा (गुरु दरबारी कवि अणी राय)
४. गुरु विलास (सुक्खासिंह)

बचित्र नाटक (अपनी कथा)

नाम—बचित्र नाटक दशम ग्रथ की प्रमुख रचना है। इसके नाम से प्रतीत होता है कि यह नाटक है। वस्तुतः यह ग्रथ कई पद्य-प्रबन्धो एव पद्य-कथाओ का सग्रह है। इनमे ऐतिहासिक, पौराणिक एव काल्पनिक सभी प्रकार के प्रबन्ध और कथायें सम्मिलित हैं। तो भी सारे ग्रथ मे प्रभाव की एकता अवश्य विद्यमान है। इस एकता का मुख्य आधार ग्रन्थ-कर्त्ता के अपने दृष्टिकोण की स्थिरता है।

बचित्र नाटक के सर्वप्रथम प्रबन्ध मे लेखक ने अपनी और अपने वश की सक्षिप्त कथा कही है। लेखक ने इस प्रबन्ध का कोई विशिष्ट नाम तो नही रखा, सुविधा के लिए हम उन्ही की एक पक्ति के आधार पर इसे 'अपनी कथा' का अभिधान दे सकते हैं।[1]

इसी रचना से हमे पता चलता है कि 'नाटक' शब्द से उनका क्या अभिप्राय है। नाटक शब्द का प्रयोग इस रचना मे क्रीडा-खेल, तमाशा आदि के लिये किया गया है।[2] वे कहते हैं कि मैं परम पुरुष का दास हूँ और 'जगत-तमासा' देखने के लिए इस ससार मे आया हूँ।[3] अपनी कथा कह चुकने के पश्चात् वे सम्पूर्ण ग्रन्थ की योजना का उद्घाटन करते हुए कहते हैं कि अपने पूर्व जन्म मे जो जो 'तमासा' मैंने देखे थे, उन्हें ग्रन्थरूप मे अर्पण कर रहा हूँ।[4] इससे स्पष्ट है कि बचित्र नाटक से उनका अभिप्राय उन विचित्र घटनाओ से है जो जगत की उत्पत्ति से लेकर उनके समय तक इस धरती के रगमच पर घटित होती रही हैं।

अपनी कथा (विषय)—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि गुरुजी ने बचित्र-नाटक के इस भाग का कोई अलग नाम नही रखा है। बचित्र नाटक को समग्र रूप से देखें तो यह उचित ही प्रतीत होता है। गुरु ने सस्कृत ग्रन्थो की प्रथा का पालन करते हुए, अग्राग्र-भाग मे वदना, सृष्टि की उत्पत्ति (सर्ग), वश, वशानुचरित आदि

---

१. अब मैं अपनी कथा बखानो —दशम ग्रथ, पृ० ५४
२ नाटक चेटक किए कुकाजा
प्रभ लोगन कह आवत लाजा —दशम ग्रथ, पृ० ५४
३ मैं हो परम पुरख को दासा
देखनि आयो जगत तमासा —दशम ग्रथ, पृ० ५७
४. अब जो जो मैं लखे तमासा
मो सो करो तुमै अरदासा —दशम ग्रन्थ, पृ० ७३

का उल्लेख किया है। बचित्र-नाटक के आरम्भ मे दी हुई इस आत्मकथा को ग्रंथकार के परिचय[1] के रूप मे ही समझना चाहिए। अपने आकार और विस्तार के कारण ही बचित्र-नाटक के इस अग्र भाग से स्वतन्त्र रचना का आभास होता है।

इस आत्मकथा के चौदह अध्याय हैं। इनमे क्रमश श्री काल की स्तुति, वंश-वर्णन, लव और कुश की संतान मे युद्ध, बेदी कुल द्वारा राज्य प्राप्ति, नव गुरु वर्णन, दशम गुरु का पूर्व जन्म सम्बन्धी वृत्तान्त, जन्म, भगानी युद्ध, नादौन युद्ध, खानज़ादे का आक्रमण, हुसैनी युद्ध, शहजादे आगमन और सर्वकाल विनय का उल्लेख है। संक्षेप मे हम आत्मकथा की विषय-वस्तु को निम्नलिखित तीन भागो मे विभक्त कर सकते हैं

(क) वन्दना-स्तुति,
(ख) वंश-वर्णन आदि (पुराण और कल्पना),
(ग) युद्ध वर्णन आदि (इतिहास)।

इस अध्याय मे हमारा सम्बंध मुख्यत तृतीय भाग से ही है।[2] शेष भागो मे से केवल उन्ही अंशो का उल्लेख होगा जो आत्मकथा के नायक के चरित अथवा चरित्र पर प्रकाश डालती हैं।

प्रबन्ध निर्वाह—इस ग्रन्थारम्भ मे, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, गुरु गोविन्दसिंह के पूर्व जन्म एव इहलौकिक जीवन की कुछ घटनायें दी गई हैं। वे घटनायें संक्षेप म इस प्रकार है :

गुरु गोविन्दसिंह ने हेमकुण्ट पर्वत पर महाकाल-कालिका की अनवरत आराधना की और अन्ततोगत्वा परमपुरुष के साथ एकात्म प्राप्त किया। तब परम पुरुष ने उन्हे इस संसार मे भेजा। अकाल पुरुष ने उन्हें बताया कि संसार मे धर्म की हानि हो रही है। अब तक जितने अवतार भेजे गए हैं सभी ने अपना अपना मत चलाया है। गुरुजी धर्म प्रचारार्थ एव दुष्ट-विनाशार्थ भेजे जा रहे हैं। गुरुजी कहते हैं कि मुझे परमेश्वर न समझा जाये। मैं तो उसका एक दास हूँ।

गुरु गोविन्दसिंह का जन्म पटना नामक नगर म हुआ। वहाँ से वे मद्र देश (पंजाब) म आये। तिलक और उपवीत की रक्षा करते हुए जब उनके पिता दिवंगत हुये तो वे राज साज (गुरु गद्दी) के अधिकारी बने। थोडी देर बाद उन्हें अपना नगर छोड कर पांवटा नामक नगर मे जाना पडा। वहाँ फतेह शाह नामक राजा से आपका अकारण युद्ध हुआ। इस युद्ध म उनको जीत हुई। फिर काहलूर राज्य मे आपने आनंदपुर नामक नगर बसाया। तदुपरात नादौन राज्य के राजा भीमचन्द पर अलफ खाँ नामक मुगल अधिकारी ने आक्रमण किया। इस युद्ध मे गुरु गोविन्दसिंहजी ने अपने सिक्खो समेत भीमचन्द की सहायतार्थ भाग लिया। अलफ खाँ

१. संस्कृत ग्रन्थों—विशेषत नाटकों—के आरम्भ में ग्रन्थकार के परिचय देने की प्रथा है।

२ प्रथम भाग का विवेचन प्रथम खण्ड (भक्ति काव्य) में किया जा चुका है, भाग का उल्लेख इस खण्ड में पौराणिक प्रबन्ध नामक अध्याय में किया गया है।

की पराजय हुई। कुछ वर्ष उपरान्त एक और मुगल कर्मचारी दिलावर खाँ ने गुरुजी पर रात के समय आक्रमण किया। इसमे भी उसकी हार हुई। तत्पश्चात् दिलावरखाँ ने अपने गुलाम हुसैनी को भेजा। उसने पहाडी ग्रामों मे खूब लूट मार की। कुछ पहाडी राजाओ ने उससे मैत्री कर ली। जिनसे मैत्री नही सकी, उनसे युद्ध हुआ। युद्ध म हुसैनी मारा गया और उसकी सेनायें आनन्दपुर मे पहुँचे बिना ही लौट गई। इस युद्ध के पश्चात एक और युद्ध मुगल सेना, उसके मित्र पहाडी राजाओ एव दूसरे पहाडी राजाओ के बीच हुआ। इसमे जुझारसिंह नामक राजपूत योद्धा बडी वीरता से लडा और वीरगति को प्राप्त हुआ। ये सब समाचार औरगजेब तक पहुँच रहे थे। उसने अपने पुत्र को सेना सहित भेजा। उसके पुत्र के आगमन के समाचार सुन-सुन कर लोग डरने लगे। बहुत से लोग गुरु से विमुख होकर आनन्दपुर छोड गये। इनम बहुत से लोग इसी सेना द्वारा अपहृत हुए।

बस यही यह आत्मकथात्मक घटनाक्रम अकस्मात् समाप्त होता है।

कथा अपूर्ण है—आत्मकथा और प्रबन्ध दोनो दृष्टियो से यह घटना-समूह अपूर्णता का प्रभाव डाल कर रह जाता है। जीवन के मध्याह्न मे लिखी हुई इस रचना से समग्र जीवन का चित्र प्रस्तुत करने की आशा नही की जा सकती। इस ग्रन्थ मे उनके जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनायें—खालसा का जन्म, आनन्दपुर और चमकौर के युद्ध, माछीवाडा यात्रा आदि—नही आ सकी हैं। उनके गुरुपद ग्रहण करने के कुछ ही वर्ष बाद की घटनाएँ इसमे समाविष्ट हो सकी हैं। अत गुरु गोविन्दसिंह के सम्प्र जीवन-चरित अथवा उसके महत्त्वपूर्ण अश से परिचय कराने की सामर्थ्य इस रचना मे नही।

गुरु गोविन्दसिंह ने इस ग्रथ मे अपने अवतार का जो उद्देश्य बताया है, कथा की अपूर्णता के कारण वह भी पूर्ण रूप से अभिव्यजित नही हो सका। औरगजेब के पुत्रो के ससैन्य आगमन से घटनावली एक विशिष्ट दिशा मे अग्रसर होती प्रतीत होती है किन्तु उसकी रूपरेखा अधिक स्पष्ट नही है। अत उद्देश्य के कथन और उसकी प्राप्ति म एक अन्तराल रह गया है। घटनावली की अपूर्णता नायक की चारित्रिक विशिष्टताओ की एक भरपूर झाँकी उपस्थित करने में भी बाधक है।

घटनावली की अपूर्णता का उत्तरदायित्व लेखक पर नही डाला जा सकता। किन्तु जो घटनायें इस प्रबन्ध मे स्थान पा सकी हैं, वे भी अपूर्णता के दोष से सर्वथा मुक्त नही। गुरु गोविन्दसिंह किसी एक घटना का समग्र चित्रण न करके उसके किसी एक अश पर ही बल देते हैं जिससे कई बार उनके चरित्र के प्रति अन्याय हो जाता है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा। काहलूर-पति भीमचद की सहायता करने के उपरान्त वे आनन्दपुर को लौटते हैं और मार्ग मे आलसून नगर को लूट लेते हैं। इस लूटमार के कुछ ऐतिहासिक कारण भी थे। किन्तु घटना का कोई पूर्वापर विवरण न दिये जाने के कारण यह लूटमार अकारण और अक्षम्य प्रतीत होती है। इस अपूर्णता का स्पष्ट और सम्पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर ही रहेगा।

प्रबन्ध के मार्मिक स्थलो को पहचानना और उनका वर्णन अपेक्षाकृत विस्तार से करना प्रबन्ध की सफलता के लिये आवश्यक है। गुरु जी ने जिन घटनाओ का अपेक्षाकृत विस्तार से वर्णन किया है, वे हैं—लव कुश-सन्तान युद्ध, जग प्रवेश करण, भगाणी युद्ध, नादौन युद्ध, हुसैनी युद्ध। इन घटनाओ मे 'जग प्रवेश करण' नामक घटना को छोड कर शेष सभी घटनायें युद्ध की हैं। स्पष्ट है कि गुरु जी का मन युद्ध घटनाओ के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार की घटना मे नही रमा है। युद्ध के प्रति ऐकान्तिक प्रेम हमारे लेखक की प्रमुख विशिष्टता है। इसी के कारण प्रबन्ध के मार्मिक स्थलो के प्रति न्याय नही हो सका।

ऐसी ही एक घटना है गुरु तेग बहादुर का 'प्रभुपुर पयान'। यह घटना कितनी मार्मिक और हमारे चरित-नायक के जीवन से कितनी सम्बद्ध है। गुरुजी के धर्म-युद्धो की पृष्ठभूमि इस घटना को समझे बिना अधूरी ही रहेगी। किन्तु गुरु जी इसे दो चौपाइयो और दो दोहो मे कह गये हैं। इसके किसी एक अंश का नाटकीय चित्रण उन्होने नही किया।

जहाँ प्रबन्ध की दृष्टि से आवश्यक घटनाओ का उनके महत्व के अनुरूप चित्रण नही हुआ, वहा कुछ एक कम आवश्यक (प्रबन्ध की दृष्टि से) घटनाओ का विस्तृत वर्णन भी इस ग्रंथ मे समाविष्ट हो गया है। हुसैनी युद्ध ऐसी ही घटना है। यह युद्ध हुसैनी और पहाडी राजाओ के बीच हुआ। गुरु गोविन्दसिंह ने स्वय इस युद्ध मे भाग नही लिया। युद्ध की समाप्ति पर वे भगवान के प्रति धन्यवाद प्रकट करते हैं कि यह लोह-घटा उन पर बरसने के स्थान पर अन्यत्र बरस गई है।[1] किन्तु इसी युद्ध का वर्णन सर्वाधिक विस्तार से हुआ है। साराश यह है कि—

(क) प्रबन्ध-दृष्टि से बचित्र नाटक का 'अपनी कथा' नामक अश अपूर्ण प्रतीत होता है। इसमे हमारे नायक के जीवन की सभी घटनायें तो समाविष्ट हो ही नही सकती थी, जिन घटनाओ को इस ग्रन्थ मे स्थान दिया गया, उनका पूर्वापर क्रम भी नही दिया गया। अतः घटनायें स्वतन्त्र अथवा सामूहिक रूप से वाछित प्रभाव डालने मे असमर्थ रही हैं।

(ख) कतिपय मार्मिक स्थलो का सक्षिप्त कथन और कतिपय (प्रबन्ध दृष्टि से) महत्त्वहीन घटनाओ का विस्तृत चित्रण इस रचना की प्रबन्ध-व्यवस्था को असंतुलित कर देता है।

किन्तु, हम पहले कह चुके है कि 'अपनी कथा' एक स्वतन्त्र प्रबन्ध नही। यह तो एक प्रबन्ध सग्रह का प्रवेश मात्र है और यहाँ लेखक अपने विषय मे जो कुछ कह गये हैं वह सक्षिप्त परिचय के रूप मे है। ऐसे परिचय मे अपूर्णता की प्रतीति स्वाभाविक ही है और जब कवि स्वय अपना परिचय दे रहा हो तो उसे अपने जीवन की करुण घटनाओ का विस्तृत वर्णन करने मे स्वाभाविक सकोच होता

---

१. राखि लियो हम को जगराई।
लोह घटा अनते बरसाई॥ —दशम ग्रन्थ, पृ० ६६-७०।

है। अतः अपूर्णता का उत्तरदायित्व मुख्यत इस रचना के रूप पर है। यह न विशुद्ध प्रबन्ध है न आत्मकथा। यह तो आत्म-परिचय मात्र है।

इस दृष्टि से युद्धों के विस्तृत वर्णन का दोष ही शेष रह जाता है। आत्म-परिचय की दृष्टि से यह विस्तृत वर्णन बहुत आवश्यक नहीं। किन्तु, यहाँ यह भी स्मरणीय है कि युद्ध वर्णन ही इस आत्म-परिचयात्मक काव्य-खण्ड का सबसे रोचक एव रसमय अश है। इनके बिना यह कृति काव्य की दृष्टि से सर्वथा महत्त्वहीन होती।

इतिहास अथवा काव्य—हम देख चुके हैं कि इस आत्म-परिचय का मुख्य भाग ऐतिहासिक है। इस रचना मे जिन घटनाओ का उल्लेख है उनकी ऐतिहासिक प्रामाणिकता असन्दिग्ध है। घटनाओं के नाम, धाम, उनका ब्यौरा और क्रम सब ऐतिहासिक इतिवृत्त की दृष्टि से अदोष हैं। सभी उत्तरकालीन इतिहासज्ञों एव प्रबन्धकारो की कृतियो मे यही ब्यौरा और क्रम मिलता है। प्रबन्धकारों मे गुरु शोभा के लेखक सेनापति और गुरु बिलास के लेखक सुक्खासिंह का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

किन्तु, क्या गुरु गोविन्दसिंह का दृष्टिकोण इतिहास लेखक का है ? इतिहासकार घटना का समग्र और विषयगत वर्णन करता है। हम देख चुके हैं कि आत्म-परिचय की घटनायें अपूर्ण हैं—कई बार इतनी अपूर्ण कि वे किसी महत्त्व की सृष्टि करने मे असमर्थ हैं। घटनाओ की अपूर्णता स्थिति-विशेष मे कवि का दोष हो सकता है किन्तु यह कवि के अधिकार-क्षेत्र से सर्वथा बाहर की बात नहीं। घटनाओ एव उनके ब्यौरे के चयन और निराकरण का निर्बाध अधिकार कवि को है। प्राप्त घटनाओ के आधार पर वह सर्वथा मौलिक घटना, काल्पनिक चरित्र एव नवीन महत्त्व का सृजन भी कर सकता है। इतिहासकार को निराकरण एव नव सृजन का अधिकार कदापि नही। वह किसी भी घटना के समग्र ब्यौरे का पता लगाता तथा उसके आधार पर अपना मत स्थिर करता है। जिस पूर्वापर क्रम का अभाव इस आत्म-परिचय में मिलता है, वह इतिहासज्ञ के लिय सर्वथा अक्षम्य है।

घटनाओ के चयन एव उनके ब्यौरे के सकोच-विस्तार से रुचि विशेष एव पूर्वग्रह का प्रश्न उठता है। कवि के प्रसग म जो रुचि विशेष है, इतिहासज्ञ के प्रसग मे वही पूर्वग्रह है। गुरुजी का दृष्टिकोण एक सीमा तक विषयगत है। अपने युद्ध-वर्णनो मे वे दोनो पक्षो क योद्धाओ की बडी सतुलित प्रशसा करते हैं। गुरु तेग बहादुर के प्राणोत्सर्ग प्रसग म भी प्रतिपक्षी की क्रूरता का अतिशयात्मक चित्रण उन्होने नही किया। किन्तु युद्ध-प्रसगो के लिए विशेष मोह (अथवा विशेष रुचि) और उनका विस्तृत एव भावमय चित्रण उन्हें इतिहासज्ञ नही, कवि ही प्रमाणित करता है। इन युद्ध-वर्णनो मे पक्ष विशेष के लिए उनकी सहानुभूति भी स्पष्ट है। इतिहासज्ञ अपने कर्त्तव्य से च्युत हुए बिना सघर्ष के एक ही पक्ष से सहानुभूति नहीं रख सकता।

सक्षेप मे हम कह सकते हैं आत्म-परिचय मे दी हुई घटनायें, घटना स्थल एव पात्र ऐतिहासिक सत्य की दृष्टि से अदोष है। किसी अनैतिहासिक घटना, किसी काल्पनिक घटना-स्थल एव पात्र का सृजन कवि द्वारा नहीं हुआ है। किन्तु घटनाओ का भावमय चित्रण, विवरण का मनमाना सकोच-विस्तार, विशेष प्रकार की घटनाओ के लिये मोह, एव पक्ष विशेष के पात्रों के प्रति सहानुभूति उनकी रचना को इतिहास की अपेक्षा काव्य के निकट की वस्तु प्रमाणित करती हैं।

चरित्र-चित्रण—अपनी कथा के नायक स्वय गुरु गोविन्दसिंह हैं। इस सक्षिप्त आत्म-परिचय मे, स्वाभाविक रूप से, केवल उन्ही के चरित्र—तत्रापि उसकी प्रमुखतम विशिष्टताओ—का ही चित्रण हो सका है।

योद्धा और भक्त—युद्ध भक्ति के रूप मे—अपनी कथा मे वे भक्त और योद्धा के रूप मे चित्रित हैं। व्यक्तित्व का यह विभाजन केवल सुविधा के लिए है। वस्तुत उनका युद्ध-कर्म उनके भक्ति-कर्म का ही एक अग है। युद्ध-कर्म वे भगवान् की आज्ञा पालन के रूप मे ही कर रहे हैं। युद्ध मे जब कभी वे शस्त्र प्रहार करते हैं, वे परमात्मा की आज्ञा का स्मरण करते हुए हमे सचेत कर देते हैं कि युद्ध उसी के निमित्त किया जा रहा है।[1] उनकी भक्ति के आलबन[2] महाकाल और कालिका रणक्षेत्र मे भी उपस्थित रहते हैं।[3] सक्षेप मे उनके चरित्र-चित्रण मे सदा सश्लेषण की भावना उपस्थित रहती है।

योद्धा के रूप मे उनका युद्ध के लिये अदम्य प्रेम, निज-पक्ष एव पर-पक्ष के सभी शूरवीरों के लिये प्रशसा एव कायरो के लिये घृणा, इस रचना मे भली प्रकार प्रदर्शित हैं। इस विषय का विस्तृत उल्लेख करने का अवसर युद्ध वर्णन प्रसग में आया है।

उनके चरित्र-चित्रण की एक विशिष्टता यह है कि वह उनके व्यक्तित्व के केवल उसी पक्ष का उदघाटन करती है जिसका कुछ सामाजिक महत्त्व है। विशुद्ध वैयक्तिक अथवा पारिवारिक घटनाओ एव तज्जनित चारित्रिक विशिष्टताओ को यथासम्भव दूर ही रखा गया है।[4]

सक्षेप मे, 'अपनी कथा' का चरित्र-चित्रण सश्लिष्ट, सतुलित, एव सामाजिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

---

१ (क) लखे साह सग्राम जुज्झे जुझाह
तव कीट बाण कमाण सभार —दशम ग्रन्थ, पृ० ६१

(ख) तव कीट तौलो तुफग सभारो हदे एक रावत के तकिक मारो—वही, पृ० ६३

२. महाकाल कालका अराधी —वही, पृ० ५५

३. कृपासिंधु काली गरज्जी कृपान —वही, पृ० ६५
कालि तिनूके घर बिखै डारी कलह बनाय —वही, पृ० ६५

४. धरा एव वशानुचरित का जो वर्णन 'अपनी कथा' में हुआ है उसका महत्त्व भी अधिकांशत सामाजिक ही है।

युद्ध-वर्णन—'अपनी कथा' के छह अध्यायो मे रण-चित्र उपस्थित किये गये हैं :—

(क) लव-कुश सतान युद्ध,

(ख) भगाणी युद्ध,

(ग) नादौन युद्ध,

(घ) खानज़ादे से युद्ध;

(ङ) हुसैनी युद्ध,

(च) जुझारसिंह का युद्ध,

इनमे से प्रथम युद्ध विशुद्ध काल्पनिक घटना है। द्वितीय और तृतीय युद्ध में गुरुजी ने स्वय भाग लिया। चतुर्थ युद्ध मे एक छोटे से शबखून का उल्लेख मात्र है। अन्तिम दो युद्ध मुगल सेना और पहाडी राजाओं के बीच हुए।

प्रबन्धात्मक दृष्टि से कदाचित उन्हीं दो युद्धो को इस आत्मकथा मे स्थान मिलना चाहिए था जिन मे गुरुजी ने स्वय भाग लिया। किन्तु गुरुजी अपना व्यक्तिगत परिचय न देकर कदाचित् उस वातावरण का परिचय दे रहे हैं जिसमे गुरुजी को अपने अवतरण-उद्देश्य की प्राप्ति के लिए रहना पडा। इस वातावरण में तीन शक्तियाँ सघर्ष करती दृष्टिगत होती हैं—शासन शक्ति, विद्रोह शक्ति और इन दोनो के बीच द्विधा मे पडी हुई पहाडी राजाओं की शक्ति। शासन और विद्रोह इन दोनों की कार्य-दिशा निश्चित है, इनके उद्देश्य स्पष्ट हैं। इनके बीच पहाडी राजा हैं जिन्हें न किसी उद्देश्य की प्रेरणा है, न जिनकी सहानुभूति स्पष्ट है और न, परिणामत जिनकी कार्य दिशा सुनिश्चित है। वे कभी गुरुजी से लडते हैं (भगाणी युद्ध), कभी मुगल शासन से जूझते हैं (नादौन युद्ध), कभो मुगल शासन द्वारा प्रोत्साहित गृह-कलह (हुसैनी युद्ध) मे उलझते हैं।

गुरुजी के युद्ध वर्णन विशुद्ध प्रहार-वर्णन हैं। युद्ध-कथा कहने की प्रवृत्ति गुरु जी में नहीं है। गुरुजी के युद्ध-वर्णन पढ कर ऐसा प्रतीत होता है कि लौह-वर्णन के लिये कारण अपेक्षित नही। योद्धा युद्ध के लिये इतने तत्पर हैं कि वे कारण की प्रतीक्षा नही कर सकते। उदाहरण क लिये युद्धारम्भ के निम्नलिखित उद्धरण पर्याप्त होंगे —

(क) रचा बैर वाद बिधाते अपार।
जिसैं साधि साक्यो न कोई सुधार।
बलो कामराय महा लोभ मोह।
गयो कौन बीर सुमाते अलोह।
तहा वीर बके बके आप मद्ध।
उठे सस्त्र लै लै महा जुद्ध सुद्ध।
—(लव कुश-सतान युद्ध)।[१]

---

१. दशम ग्रन्थ, पृ० ४६।

(ख) फतेह साह कोपा तबि राजा ।
लोह परा हमसो विनु काजा ।
तहा साह स्री साह सग्राम कोपे ।
पचो वीर वके पृथी पाइ रोपे—(भगाणी युद्ध) ।[१]

(ग) बहुत काल इह भाति बितायो ।
मिया खान जम्मू कह आयो ।
अलफ खान नादौन पठावा ।
भीम चन्द तन बैर बढावा ।
जुद्ध काज नृप हमैं बुलायो ।
आपि तवन को ओर सिघायो—(नादौन युद्ध)[२]

(घ) बहुत बरख इह भाँति बिताए ।
चुनि चुनि चोर सबै गहि घाए ।
केतकि भाजि सहिर[३] ते गए ।
भूख मरत फिरि आवत भए ।
तवलौ खान दिलावर आए ।
पूत आपन हम ओर पठाए ।
द्वैक घरी बीती निसि जबै ।
चडत करी खानन मिलि तबै—।(खान दिलावर का युद्ध)[४]

गुरु गोविन्दसिंह ने कही भी शूरवीर को व्यूह रचना मे, छावनी मे, मार्ग मे डेरा डाले अथवा युद्ध के लिये प्रयाण करते अथवा विश्राम करते नही दिखाया है। यहाँ तक कि युद्ध कर्म मे व्यस्त वीरो को गर्वोक्ति के लिये भी अवकाश नही।[५] युद्ध उनके लिये अनवरत लोह-वर्षण के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। उनका युद्ध वर्णन आदि से अन्त तक प्रहार और प्रति-प्रहार से ही भरा हुआ है।

गति और ध्वनि—गुरु गोविन्दसिंह के युद्ध वर्णन की दो प्रमुख विशेषतायें हैं—गति और ध्वनि।

(क) उनके युद्ध वर्णन की गति विषय मे भी है एव अभिव्यक्ति में भी। जिस प्रकार वे योद्धाओ का युद्धेतर क्षेत्र मे वर्णन नहीं करते, इसी प्रकार वे उनके शस्त्रों का भी स्थिर अवस्था में वर्णन नही करते। म्यान मे बन्द, शूरवीर की कमर मे लटकती कृपाण, तूणीर में विश्राम करते बाण अथवा शूरवीर के हाथ मे स्थिर नेजा, बरछी आदि के चित्र इन युद्धो मे नही मिलेंगे। योद्धा और उनके अस्त्र-

---

१. दशम ग्रन्थ, पृ० ६०।
२. ,, ,, पृ० ६२।
३. आनन्दपुर
४. दशम ग्रथ, पृष्ठ ७४।
५. उनके पौराणिक-प्रबन्धों में इस क्षति की पूर्ति हुई है।

शस्त्र अनवरत अविश्राम की अवस्था में दिखाई देते हैं। यहाँ केवल एक उदाहरण देना ही पर्याप्त होगा —

तवै कोपिय कांगडेस कटोच । मुख रक्त नैन तजे सरब सोच ।
उते उट्टिय खान खेत खतग । मनो बिहचरे मास हेत पिलंग ।
बजी भेर भुंकार तीर तडक्के । मिले हत्थि बत्थ कृपाण कडक्के ।
बजे जंग नीसाण कत्थे कथीर । फिरे रुण्ड मुण्ड तनं तच्छ तीर ।
उठं टोप टूक गुरजं प्रहारे । रुले लुत्थ जुत्थ गिरे बीर मारे ।
छके छोभ छत्री तजे बाणराजी । बहे जाहि खाली फिरें छूछ्ताजी ।
जुटे आप मैं बीर बीर जुझारे । मनों गज्ज जुट्टे दतारे दतारे ।
किधों सिंह सों सारदूल अरुज्झे । तिसी भांति किरपाल गोपाल रुज्झे॥

—(हुसैनी युद्ध से)[1]

अभिव्यक्ति-विषयक गति का सम्बन्ध द्रुत गति वाले लघु छन्दों, प्रवाहमयी शब्दावली और अनुप्रास के प्रयोग से है। गुरुजी का छन्द चयन विषय के सर्वथा अनुरूप है। भुजंग प्रयात, रसावल, मधुभार और नाराच छन्दों के प्रयोग द्वारा उन्होंने पहाड़ी नदियों का सा वेग उत्पन्न करने का सफल प्रयास किया है। अपेक्षाकृत दीर्घ छन्दों में आन्तरिक तुक द्वारा पंक्ति को लघु खण्डों में विभक्त करके तीव्र गति का प्रभाव कायम रखा है :

कुपियो कृपाल, सज्जि मराल, बाह बिसाल, धरि ढाल ।
धाए सब सूर, रूप करूर, चमकत नूर, मुख लाल ।
लै लै सु कृपाण, बाण कमाण, सजे जुआन, तन तत्त ।
रणि रंग कलोल, मार ही बोल, जन गज डोल, बन मत्त ॥

—(हुसैनी युद्ध से)[2]

ध्वनि—गति की अभिन्न सहचरी है—ध्वनि। युद्ध कर्म का सम्पूर्ण और सजीव दृश्य दृष्टि और श्रवण दोनों की अपेक्षा रखता है। गुरु गोविन्दसिंह ने भी अपने युद्ध चित्रों में ध्वनियों की अनवरत बौछार-सी लगा दी है ये ध्वनियाँ शूर वीरों के गर्जन[3] और, गति[4], अस्त्र-शस्त्र के प्रहार,[5] रण वाद्यों[6] एवं डाकिनी भैरव

१. दशम ग्रंथ—पृ० ६७
२. वही—पृ० ६७
३. दुहूँ ओर से मार मारै पुकारे । —दशम ग्रंथ पृ० ६
  बके मार मार । —वही, पृ० ५
४. भटाक भट बाहिय । सुबीर सैन गाहिय । —वही, पृ० ५
  धका धक धकक । गिरे हक्क हक्क । —वही, पृ० ५
५. तुपक तड़ाक । कैबर कड़ाक । सैहथी सड़ाक । छोही छड़ाक —वही, पृ० ६
  उठे नद नाद कृपाणं कड़क्के । —वही, पृ० ६
  कड़क्के कमाण । भभक्के कृपाण । कड़क्कार छुट्टे । भभाकार उट्टे । —वही, पृ० ६
६. बजे ढक डौरू उठा नद सद्द । —वही, पृ० ५

आदि के चीत्कार[1] से सम्बन्ध रखती हैं। युद्ध-वर्णन का कहीं से कोई स्थल भी लीजिये, ध्वनियाँ युद्ध के वातावरण को ज्यों-का-त्यों हम तक पहुँचाती हुई प्रतीत होती हैं। एक उदाहरण अनुपयुक्त न होगा—

मचे वीर वीर अभूत मयाण ॥
वजी भेर भुंकार धुक्के निसाण ॥
नव नद्द नीसाण गज्जे गहीर ॥
फिरे रुण्ड मुण्ड तन तच्छ तीर ॥
वहे खग्ग खेत स्याल खतग ॥
रुले तुच्छ मुच्छं महा जोध जग ॥
वधे वीर वाना वडे ऐंठिवारे ॥
घुमे लौह घुट्टं मनो मत्तवारे ॥
उठी कूह जूह समर सार वज्जिय ॥
किधो अत के काल को मेघ गज्जिय ॥
भई तीर भीर कमाण कडक्किय ॥
वजे लोह क्रोह महा जगि मच्चिय ॥[2]

युद्ध वातावरण को पाठको एव श्रोताओ तक पहुँचाने के लिये गुरुजी ने अनुकरण मूलक शब्दो,[3] सयुक्ताक्षरो एव अनुप्रासो का प्रयोग किया है। सयुक्ताक्षरो और अनुप्रास के बाहुल्य का कुछ अनुमान उपरिलिखित उद्धरण से लगाया जा सकता है। युद्ध वर्णन मे अनुप्रास का प्रयोग तो साधारणत हर कवि करता ही है। यहाँ कुछ उदाहरण ऐसे स्थलो से देने अनुपयुक्त न होंगे जहाँ प्रकृत विषय मूक होने पर भी कवि ने अनुप्रास द्वारा उसे उपयुक्त ध्वनि से सयुक्त कर दिया है :—

(क) महा दाढ गाढ[4]
(ख) दिड ढाढ कराल द्वै सेत उध[5]
(ग) भभकत धाय[6]

---

१. चवी चावडीं अ विलकार कैक —दशम ग्रथ—पृ० ४६
कहू डाक डौरू डहूक विताल —वही पृ० ४६
कहू भैरवी भूत भैरों बकारे — ,, पृ० ४६

२. दशम ग्रन्थ, पृ० ५१।

३. हा हा हूह हामं —वही पृ० ४०।
डमा डम्म डौरू —वही पृ० ४०।
घन घु घर घट घुर घमक —वही पृ० ४३।
तड़ तड़ तड़ाय हरने गमान —वही पृ० ६८।
टक टुक टोप ढका ढक ढाल —वही पृ० ६८।
भवकंत बीर भभकत धाय —वही पृ० ५२।

४. दशम ग्रथ, पृ० ४०।

५. ,, ,, पृ० ४२।

६. ,, ,, पृ० ५२।

(घ) चुभी चिच चरमं[1]
(ङ) उठी छिच्छि इच्छं[2]

कवि ने कही-कही ध्वनियो को दृश्य रूप मे ग्रहण करने का भी यत्न किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे ध्वनि को श्रवण के अतिरिक्त दृष्टि का विषय भी समझते हैं—

(क) महा घोर सबद बजे संख ऐसे।
प्रलैकाल के काल की ज्वाल जैसे ॥[3]
(ख) भयो सद्द एव। हड़ियो नीरधेव ॥[4]

चाक्षुष और श्रावणिक चित्रो का ऐसा सयोजन किसी सिद्ध-कवि के लिये ही सम्भव है।

गुरुजी की दृष्टि योद्धाओ के युद्ध कर्म पर इतनी रही है कि युद्ध सम्बन्धी दूसरी बातो की अवहेलना हो गई है। पूर्वापर घटनाक्रम की अवहेलना का उल्लेख पहले हो चुका है। युद्ध विशेष की देशकाल सम्बन्धी विशिष्टताओ, युद्ध भूमि की स्थिति विशेष आदि का कुछ परिचय इन युद्धों मे नही मिलता। युगो का अन्तर भी युद्ध-कला मे विशेष अन्तर नही ला सका। लव कुश की सतान और गुरु जी के सम सामयिक योद्धा लगभग एक जैसे अस्त्र-शस्त्रो का प्रयोग करते दिखाई देते हैं। परिणामतः उनके विभिन्न युद्धो मे समानता और उनके वर्णन मे एकस्वरता की प्रतीति होती है।

गुरुजी के समसामयिक युद्धो की जिन विशिष्टताओ की ओर आकस्मिक सकेत 'अपनी कथा' मे हो गए हैं वे इस प्रकार हैं —

पहाडी राजा काठ के किले बना कर आक्रमणकारी से लडते थे।[5] युद्ध-शस्त्रों मे 'तोप' का बडा महत्त्व था।[6] शत्रु कई बार रात के समय आकस्मिक आक्रमण भी करते थे।[7] युद्ध के समय मार्ग मे पडने वाले ग्रामो की दशा बडी शोचनीय होती थी, उन्हें लूट कर लूट का धन सैनिको मे बाँट दिया जाया था।[8]

---

१. दशम ग्रन्थ पृ० ३२।
२. ,, , पृ० ६०।
३ ,, , पृ० ४०।
४. ,, , पृ० ४०।
५. तिन (नादौन के राजा) कठ गढ़ नव रस पर बाँधो। —दशम ग्रथ पृ० ६२।
६. कृपा सिंधु काली (तोप) गरज्जी कराल वही, पृ० ६५।
७. द्वै क घड़ी बीतत भी जबै। चड़न करी खानन मिलि तबै।
जब दल पार नदी के आये। आन आलमै हमैं जगायो।
सोर परा सब ही नर जागे। गहि गहि सस्त्र बीर रस पागे। —दशम ग्रथ, पृ० ६४।
८. प्रथम कूटि कै लूट लीनो अवानं। पुनरि डड द्वालं कियो जीति जेरं।
पुनरि दून को लूट लीनो सुबार। कोई सामुहे ह्वै सक्यो न गवार।
लियो छीन अन्न दल बाँटि दीयं। महामूढियँ कुरसं काँज कीयं।
—दशम ग्रन्थ, पृ० ६९

गुरु जी की दृष्टि योद्धाओ के शौर्य पर, उनके युद्धोत्साह की तत्परता पर जितनी रही है, उतनी उनके आन्तरिक व्यक्तित्व पर नही। उनके व्यक्तित्व के बाह्य रूप, उनकी मुखाकृति, परिधान आदि का वर्णन भी गुरु जी की रचना मे नही मिलता। युद्ध करते समय स्थिति विशेष के अनुसार उनका दांत पीसना,[1] उनकी मुखाकृति का आरक्त हो जाना[2] आदि भी अपवाद रूप मे ही कही-कहीं अकित हो गये हैं।

व्यक्तित्व का आन्तरिक पक्ष तो सर्वथा उपेक्षित रहा है। युद्ध के प्रति उनकी निजी भावना क्या है ? अपने शत्रुओ के प्रति उनके विचार क्या हैं ? क्या गुरु जी के योद्धा भी उसी उच्च आदर्श द्वारा सचालित हैं जिसका उल्लेख गुरुजी ने 'जग प्रवेश करण' प्रसग मे किया है। 'अपनी कथा' के युद्ध वर्णन मे इन प्रश्नो का उत्तर नहीं मिलता। कभी-कभी यह पता चलता है कि सभी शूरवीर स्वामि-भक्ति की भावना से प्रेरित हैं।[3] दूसरे शब्दो मे दोनो पक्षो के शूरवीरों के युद्ध-उद्देश्य समान हैं।

योद्धाओ के सम्बन्ध में लेखक ने कही-कही अपने विचार अवश्य व्यक्त किए हैं। साधारणत. निजपक्ष और परपक्ष के योद्धाओ के शौर्य कर्म के प्रति उनकी प्रशसा समान है[4]। साधारणत: उन्होने योद्धाओ के वैयक्तिक शौर्य का वर्णन नही किया, किन्तु जिन थोडे से व्यक्तियो का विशेष वर्णन हुआ है उनमे दोनो पक्षो के योद्धा हैं। उदाहरण के लिए, जुझारसिंह और हुसैनी के युद्ध का वर्णन लीजिए :

जुझार सिंह :

उतै जुझारसिंह भयो आडा।
जिम रन खम्भ भूमि रनि गाडा।
गाडा चलै न हाडा चलि है।
सामुहि सेल समर मो झलि है।[5]

हुसैनी :

तहाँ खाँ हुसैनी रह्यो एक ठाढं।
मनो जुद्ध खम्भं रण भूम गाढं।
जिसै काप कै कै हठी बाणि मार्यो।
तिसै छेद कै पैल पारे पधार्यो।
सहे बाण सूर समै आणि ढूकै।
चहूँ ओर ते मार ही मार कूकै।

---

१. खरे दांत पीसै छयै छत्रधारी। —दशम ग्रन्थ, पृ० ६३।
२. मुखं रक्त नैन तजे सरब सोचं। —दशम ग्रन्थ, पृ० ६७।
३. सबै स्वाम धरमं सु बीर सभारे। —दशम ग्रन्थ, पृ० ६२।
४. बजी भेर भु कार धुक्के नगारे।
दुहू ओर ते बीर बंके बकारे। —दशम ग्रंथ, पृ० ६१।
५. दशम ग्रंथ, पृ० ७०।

भली भांति सो अस्त्र औ शस्त्र झारे।
गिरे भिस्त को खाँ हुसैनी सिधारे।[1]

कायरों की निन्दा करते समय भी गुरुजी ने पक्षपात से काम नहीं लिया। दोनों पक्ष के कायर और भगौडो पर आप समान रूप से वरसे हैं :—

निज पक्ष :

तब औरंग मन माहि रिसावा। मद्र देस को पूत पठावा।
तिह आवत सभ लोक डराने। बडे-बडे गिर हेर लुकाने।
हमहूँ लोगन अधिक डरायो। काल कर्म को मर्म न पायो।
कितक लोग तजि सग सिधारे। जाय वसे गिरवर जह भारे।
कबहूँ रण जूझ्यो नही, कछु दै जसु नही लीन।
गाँव बसति जान्यो नही, जम सो किन कहि दीन।[2]

पर पक्ष :

इते बीर गज्जे भये नाद भारे। भजे खान खूनी विना सस्त्र झारे।
निलज्ज खार भज्ज्यो। किसी न सस्त्र सज्ज्यो।
चले तुरे तुराइ कै। सकै न सस्त्र उठाइ कै।
न लै हथ्यार गज्जही। निहारि नारि लज्जही।[3]

दशम ग्रंथ के लेखक का सम्पूर्ण दृष्टिकोण क्षत्रियत्व की चेतना और अभिमान द्वारा सचालित है। यह अभिमान उन्हें अपने कर्त्तव्य की पूर्ति मे विशेष सहायता देता है। यही अभिमान उन्होने अपने अनुयायियो में उद्बुद्ध करने का यत्न किया है। अत. अपने योद्धाओ के शौर्य की सराहना करते हुए वे उनके वश की ओर सकेत अवश्य करते हैं।[4]

महत्त्व—पजाब मे लिखे गये हिन्दी ग्रन्थो में यह पहली रचना है जिसमे एक ऐतिहासिक व्यक्ति की जीवन कथा कहने का प्रयास किया गया है। शैली की दृष्टि से समूचे हिन्दी-साहित्य मे यह सर्वप्रथम आत्मकथा अथवा आत्म परिचय है।

उत्तरकालीन इतिहास-वेत्ताओ के लिए यह रचना ऐतिहासिक स्रोत के रूप मे विशेष महत्त्व रखती है। गुरु गोविन्दसिंह के जीवन की जिन घटनाओं का

१. दशम ग्रंथ, पृ० ६८।
२. „ „ पृ० ७२।
३. „ „ पृ० ६५।
४. (क) तहा नद चद कियो कोप भारो।
लगाई बरच्छी कृपाण सभारो।
तुटी तेग त्रिख्खी कढे जम दड्ढ।
हठी राखिय लज्ज बंसं सनड्ढ—दशम ग्रन्थ पृ० ६०।
(ख) छक्यो छोभ छत्री करयो जुद्ध सुद्धं। —दशम ग्रन्थ, पृ० ६०
(ग) चल्यो सस्त्र बाही। रजौती निबाही —दशम ग्रंथ, पृ० ६१।
(घ) गाढा चलै न हाढा चलि है —दशम ग्रंथ, पृ० ७०।

उल्लेख इतिहास मे हुआ है, उनका सर्वप्रथम अभिलेखन इसी रचना में हुआ। घटनायें कालक्रमानुसार एवं उपयुक्त तटस्थता से अभिलिखित हैं।

. उत्तरकालीन कवि भी इस रचना द्वारा लाभान्वित हुए हैं। गुरु शोभा के लेखक सेनापति पर इस रचना का ऋण अपार है। उन्होंने न केवल इस रचना में दी गई घटनाओं का ब्योरा, उनकी अपूर्णता एवं उनका क्रम ही अपनाया है, उसने घटना-वर्णन की शैली, युद्ध-वर्णन पर बल एवं उसका शैली-वैशिष्ट्य भी अपनाया है। गुरु विलास के लेखक सुक्खासिंह की शैली पर भी इसका प्रभाव है। उनका छन्द-चयन और उनकी शब्दावली स्पष्ट रूप से इस रचना द्वारा प्रभावित है।

दशम ग्रन्थ के कर्तृत्व का निर्णय करने मे भी इस ग्रन्थ का महत्त्व निर्विवाद है। इस ग्रन्थ की प्रमुख रचना 'बचित्र नाटक' का अग्र-भाग होने के नाते सम्पूर्ण रचना (बचित्र नाटक) की योजना का उद्घाटन इसी कृति मे हुआ है। सौभाग्य से यह कृति आत्मकथात्मक शैली मे लिखी गई है। इस कृति मे दी गई घटनाओ की ऐतिहासिक प्रामाणिकता के कारण ही सम्पूर्ण 'बचित्र नाटक' के कर्तृत्व का विवाद सुलझाया जा सका है। 'बचित्र नाटक, के कर्तत्व पर सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचना 'शब्द मूरति' मे इस कृति की महत्ता स्वीकार की गई है।

एक काव्य-कृति के नाते इसका स्वतन्त्र महत्त्व भी कुछ कम नहीं। इसका युद्ध वर्णन रासो-ग्रंथो की टक्कर का है। युद्ध वर्णन मे कोई समसामयिक अथवा उत्तरकालीन रचना इसकी तुलना मे नही ठहर सकती।

गुरु शोभा और जंगनामा

गुरु शोभा और जंगनामा गुरु गोविन्दसिंह के आनन्दपुरीय दरबार के दो कवियों सेनापति और अणीराय द्वारा लिखित रचनायें हैं। गुरु शोभा मे गुरु गोविन्दसिंह का प्रथम जीवन-चरित देने का प्रयास है और जगनामा मे गुरु गोविन्दसिंह द्वारा मुगल सत्ता के विरुद्ध लड़े गए एक युद्ध का दृश्य उपस्थित किया गया है। इन दोनों रचनाओ के सृजनकर्ता कवियो ने अपने नायक को निकट से देखा था; जिन युद्धों का वर्णन अथवा चित्रण इन कृतियो मे हुआ है, वे उन्होंने अपनी आँखों देखे थे। अतः इन काव्यो-कृतियो मे अंकित ऐतिहासिक तथ्यो की प्रामाणिकता सर्वथा असंदिग्ध है।

इन दोनों कृतियों का विस्तृत अध्ययन तो इस निबन्ध के तृतीय खण्ड में दरबारी काव्य के अन्तर्गत किया जा रहा है। यहाँ इनकी सामान्य विशेषताओ का संक्षिप्त परिचय ही पर्याप्त होगा।

(१) गुरु शोभा गुरु गोविन्दसिंह का प्रथम पद्यबद्ध जीवन-चरित है और जंगनामा उनके द्वारा लड़े गए युद्धों का प्रथम सर्वांगीण वर्णन। इनके लेखक न केवल

गुरु के व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धा रखते हैं बल्कि उनके काव्य के प्रति भी। दोनो का ही आदर्श-ग्रथ गुरु गोविन्दसिंह का आत्म-परिचय है। गुरु शोभा मे युद्ध वर्णन के लिए आत्यतिक मोह, युद्धेतर घटनाओ का निराकरण, युद्ध का मोहक रूप मे चित्रण स्पष्टत 'अपनी कथा' की रचना शैली के प्रभाव को लक्षित करते हैं। जगनामा तो है ही मात्र युद्ध चित्रण। गुरु शोभा की युद्ध वर्णन शैली भी गुरु गोविन्दसिंह की शैली से प्रभावित है। अणीराय मे प्रभाव-ग्रहण अपेक्षाकृत कम प्रत्यक्ष है।

(२) ये दोनो लेखक गुरु गोविन्दसिंह के प्रति अपार श्रद्धा रखते हुए भी उन्हें अवतार पुरुष की अपेक्षा महामानव के रूप मे ही चित्रित करते हैं। उन्हें भगवान् का अवतार मानने मे लेखक-द्वय को सकोच नही, किन्तु उनका मन गुरु गोविन्दसिंह के मानवत्व मे ही अधिक रमा है। उनके असाधारण बल-वैभव का वर्णन तो इन रचनाओ मे मिलेगा, किन्तु उनके सम्बन्ध मे किसी अलौकिक, अमानवीय घटना का सृजन अथवा ग्रहण इन रचनाओ मे नही हुआ। इन रचनाओ में समाविष्ट चमत्कार विशुद्ध मानवीय चमत्कार है। ये दोनो रचनायें गुरु गोविन्द सिंह के जीवन से सम्बन्धित अत्यन्त मानवीय एव बुद्धिग्राह्य रचनायें हैं।

(३) अपने विवेकसम्मत दृष्टिकोण के कारण ही इन रचनाओ मे पौराणिक प्रभाव को भी अत्यन्त न्यून मात्रा मे ग्रहण किया गया है।

(४) काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से ये दोनो रचनायें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। कदाचित् गुरु गोविन्दसिंह के जीवन से सम्बन्धित इतनी निपुण रचना और कोई नही, हमारी कालावधि मे तो निश्चय ही नही। दरबारी परम्परा का अनुसरण करते समय इन्होने बडे विवेक से काम लिया है। अत्युक्तिपूर्ण प्रशसा, चमत्कार-प्रदर्शन आदि दरबारी प्रवृत्तियो को उन्होने ग्रहण करने में सकोच किया है, किन्तु रस, अलकार, छन्द सम्बन्धी नैपुण्य उन्हें सफल दरबारी कवि प्रमाणित करता है।

गुरु विलास*

(सुक्खासिंह)

रचना काल—कवि सुक्खासिंह ने ग्रन्थ के नाम, रचना-स्थान और रचनाकाल के विषय में पर्याप्त सूचना दी है। वे कहते हैं कि गुरु गोविन्दसिंह के लीला-स्थान केशगढ (पजाब) मे ग्रथी का काम करते हुए उन्होने इस ग्रथ की रचना की[1] और

---

* गुरु विलास और गुर विलास पजाब में ये दोनों रूप प्रचलित हैं।

१. पग पकज गढ केस के बड चौकी सुथान।
तिन महि किंकर जत इह सुक्खासिंह पछान।६६।
गुर बिलास की इह कथा बरनी हित चित लाइ।
मूल भेद लहि सुमति चित छिमा करो अधिकाइ।१००।३०।६०५॥

सज्जन-मंडली के आदेश पर उन्होंने इसका नाम गुरु विलास रखा।[1] उनके अपने साक्ष्यानुसार इस ग्रंथ की रचना संवत् १८५४ वि० (सन् १७९७ ई०) में हुई।[2]

ग्रंथ परिचय—

प्रतियां, संस्करण आदि—भाई सुक्खासिंह रचित गुरु विलास सिक्ख श्रद्धालुओं का बहुत लोकप्रिय ग्रंथ रहा है। इसकी कई हस्तलिखित प्रतियाँ पंजाब के पुस्तकालयों में विद्यमान हैं। इसके मुद्रित संस्करण भी निकल चुके हैं किन्तु वे आजकल सुप्राप्य नहीं। हमने अपने अध्ययन के लिये सिक्ख रैफ़ैंस पुस्तकालय, अमृतसर में सुरक्षित तीन हस्तलिखित प्रतियों (१८।७४३; ५०।१११२; ६६।१५५७) तथा संवत् १९६९ वि० के मुद्रित संस्करण (प्रकाशक लाला रामचंद मानकटाहला, लाहौरी दरवाजा, लाहौर) से लाभ उठाया है। उद्धरण मुद्रित संस्करण से, हस्तलिखित प्रतियों से तुलना के पश्चात् दिये हैं।

आकार—यह ग्रंथ तीस अध्यायों में विभाजित है और इसकी छन्द संख्या ४६५१ है। हमारी कालावधि में पड़ने वाले ग्रंथों में इसका आकार दशम ग्रंथ और नानक विजय के अतिरिक्त सबसे बड़ा है।

ख्याति—सिंह सभा आन्दोलन से पूर्व यह ग्रंथ सिक्ख जनता में अत्यन्त विख्यात था किन्तु इस आन्दोलन के पश्चात् ज्यों-ज्यों सिक्ख मार्ग पौराणिकता का त्याग करता गया, इसका पठन-पाठन उत्तरोत्तर कम होता गया। आज इसका महत्त्व केवल ऐतिहासिक है।

प्राप्त सामग्री—इस ग्रंथ पर विशुद्ध शोधात्मक अथवा विवेचनात्मक सामग्री का सर्वथा अभाव है। केवल गुरु शब्द रत्नाकर के लेखक ने चार पंक्तियों की परिचयात्मक टिप्पणी इस पर लिखी है। अन्यथा पंजाबी विद्वानों द्वारा यह सर्वथा उपेक्षित ही रहा है।

---

१. भई गाथ पूरी जबै जौन कालं।
गयो लै सु ताको जहां संत थालं।
करी जाद सेवं कहे बैन नीकै।
धरो नाम या को गोऊ मद्धि नी के।।१०३।
तिनै देख पोथी कह्यो यौ प्रकासं।
कृपा सिंध जू जी करै ए विलासं।
धरो नाम या को इहै गुर बिलासं।
पढे जो सुनै को पुरै ताहि आसं।।१०४।३०।६०५।।

२. संवत् सहस पुरान कहत सब।
अर्ध सहस पुन चार गनत सब।
कुआर बदी पंचम रवि वारा।
गुर बिलास लीनो अवतारा।।४७।१६।।

कर्ता—गुरु विलास के कर्ता कवि सुक्खासिंह का जन्म सवत् १८२५ (सन् १७६८ ई०) मे हुआ।[1] गुरु विलास मे कवि ने अपने जीवन सम्बन्धी जो सूचना दी है उससे पता चलता है कि बाल्यावस्था मे ही इनके माता-पिता चल बसे। शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध बडे भाई द्वारा हुआ।[2] उनकी सगति मे उन्होंने हिन्दी प्रदेश की यात्रा की और वहाँ नानक मता[3], पटना[4] आदि गुरु धामो के दर्शन किये। गुरु विलास मे आपने हिन्दी प्रदेश मे स्थित तीर्थ-स्थानो का वर्णन पर्याप्त विस्तार एव तन्मयता से किया है जिससे आपके विस्तृत देशाटन का परिचय मिलता है। यात्रा के बीच ही आपके अग्रज भी स्वर्ग सिधार गये। तदुपरात आप आनन्दपुर के पास श्री केशगढ[5] मे ग्रथी रूप म काम करते रहे। यही आपने गुरु विलास नामक काव्य-ग्रथ की रचना की। आपका देहान्त सवत १८६५ म हुआ।[6]

कथा—गुरु विलास का कथा-विधान तीन प्रकार की सामग्री से निर्मित हुआ है :

१. इतिहास,
२. पुराण,
३. जन-श्रुति।

गुरु विलास गुरु गोविन्दसिंह का पद्य-बद्ध जीवन चरित है। इस ग्रथ मे प्रथम बार गुरुजी के जीवन चरित का सम्पूर्ण एव सर्वागीण चित्र उपस्थित करने का प्रयास किया गया है। इससे पूर्व अपनी कथा और गुरु शोभा मे गुरु गोविन्दसिंह की जीवन-कथा कहने का प्रयास हुआ था किन्तु ये दोनो रचनायें सर्वांगपूर्ण न बन सकी। इन दोनों रचनाओं का रचनाकाल इनके नायक के जीवनकाल के बहुत निकट था। इनमें से प्रथम ग्रथ की रचना गुरु गोविन्दसिंह के जीवन काल में और द्वितीय ग्रथ की रचना उनके स्वर्गारोहण के कुछ ही काल उपरान्त हुई। एक सफल चरित-काव्य के लिये चरित-नायक के सम्बन्ध मे जैसी जनश्रुति की नितान्त अपेक्षा रहती है गुरु गोविन्दसिंह के सम्बन्ध में वैसी जनश्रुति का विकास गुरु शोभा की रचना तक न हुआ था। गुरु विलास की रचना गोविन्दसिंह के महानिर्वाण (सन् १७०८ ई०) के नब्बे वर्ष बाद हो रही थी। इस बीच उनके अनुयायियो को अनवरत विद्रोह का

१. गुरु शब्द रत्नाकर, पृष्ठ ६२७।

२. तात मात प्रभ पुर गये बारक बैस मझार।
बडे भ्रात प्रतपारयो लिखन पढ़न दै प्यार। —गुरु विलास, पृ० ४।

३. लै भ्राता पूरब कियो दरसन काज पयान।
नानक मते सु आइ कर तिनहू तजे परान। —गुरु विलास, पृ० ४।

४. श्री पटणे तब आयो कीनो आन दीदार। —गुरु विलास, पृ० ४।

५. पग पकज गढ कैस के बड चौकी सुथान।
तिन महि 'कार अत इह सुक्खासिंह पहचान। —गुरु विलास, पृ० ६०५।

६. गुरु शब्द रत्नाकर, पृ० ६२७।

जीवन व्यतीत करना पड़ा था। इन्ही विकट परिस्थितियो के बीच गुरु गोविन्दसिंह के सम्बन्ध मे एक समृद्ध कल्पनात्मक धारणा का विकास हुआ। गुरु गोविन्दसिंह का यही कल्पनात्मक व्यक्तित्व इन विद्रोहियो के अवचेतन का स्थायी और सहज अंग बन चुका था। अब परिस्थितियां एक ऐसे चरित-काव्य के लिये अनुकूल थी जो विषयगत यथार्थ और भावगत सत्य का सामंजस्य उपस्थित कर सके।

इतिहास—ऐतिहासिक सत्य के प्रति कवि भली-भांति सजग हैं। चामत्कारिक घटनाओ को छोड गुरु विलास की कोई भी कथा ऐतिहासिक दृष्टि से विवाद का विषय नही है। इस सम्बन्ध मे उन्होने 'अपनी कथा' और 'गुरु शोभा' से लाभ उठाया है। उनका घटना-क्रम भी ऐतिहासिक दृष्टि से अदोष है। कथा-प्रवाह मे कई स्थानो पर उन्होने घटनाओ की तिथियां भी दी हैं जिनसे पता चलता है कि वे ऐतिहासिकता के आग्रह को स्वीकार करते हैं। तिथि-सूचना के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :

(क) सतह सै त्रियतीस मैं भाखत सुमत सुजान।
राज साज प्रभ धार्‌यो इह पुर अधिक प्रमान ॥[1]

(ख) सतह सहस छितालस मद्धि।
भयो पावटे प्रिथम सुजुद्धि ॥[2]

(ग) सम्मत सतह सहस सु मद्धि।
माघ इकाहठ (इकसठ) भयो सुजुद्ध।
तब करुनानिध कियो पयाना।
सुक्खा सिंह सुन्यो इम काना ॥[3]

इस सुदृढ ऐतिहासिक आधार से चरित-कथा को बहुत लाभ हुआ है। इस आधार के कारण इसे ऐसी विश्वसनीयता प्राप्त हुई है कि इसमे समाविष्ट अनैतिहासिक जन-श्रुतियो एवं पौराणिक कथाओ को इतिहासवत् स्वीकार कर लेने मे सुविधा हो गई है।

इस सम्बन्ध मे एक और बात ध्यान रखने योग्य है। प्रत्येक पीढ़ी अपनी आवश्यकताओ एवं मान्यताओ के अनुसार पुराने इतिहास की नव-व्याख्या अथवा उसका नव-निर्माण करती है। वर्तमान घटनाओ का प्रभाव वर्तमान एवं भविष्य पर ही नहीं भूतकाल पर भी रहता हैं। सुक्खासिंह अठारहवी शताब्दी के अन्तिम चरण के लेखक हैं और वे इसी चरण की मान्यताओ के अनुसार इतिहास की नव-व्याख्या कर रहे हैं। फलतः उनकी वाणी मे मुस्लिम-विरोधी स्वर जितना प्रबल और स्पष्ट है इतना गुरु गोविन्दसिंह की अपनी रचना 'अपनी कथा' तथा उनके समकालीन कवि सेनापति की रचना 'गुरु शोभा' मे नही। इसी प्रकार पौराणिक प्रभाव को स्वीकार

---

१. गुरु विलास, पृ० १०१।
२. वही, पृ० १६१।
३. वही, पृ० ४११।

-कर लेने का आग्रह भी उनकी वाणी मे अत्यन्त प्रबल है। हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि सुक्खासिंह प्राचीन इतिहास को अपने युग की दृष्टि से देख रहे हैं। वे इतिहासज्ञ नही जिन्हें प्राचीन इतिहास का विषयमूलक विवेचन प्रिय हो, वे कवि हैं जिन्हें अपने युग की भावना को अभिव्यक्ति देनी अभीष्ट थी।

इसी अभिप्राय से उन्होने कुछ ऐतिहासिक तथ्यो मे भी सशोधन किया है। उदाहरण के लिये, गुरु गोविंदसिंह के दो पुत्रो की सिरहिन्द मे मृत्यु की जो कथा सुक्खासिंह ने कही है वह पूर्ववर्ती प्रबन्धो (जफर नामा, गुरु शोभा, महिमा प्रकाश) की कथा से भिन्न है किन्तु वह मुस्लिम शासन की धर्मान्ध बर्बरता को जिस निरावृत रूप मे प्रस्तुत करती है वह सर्वथा अपूर्व है।

सक्षेप मे सुक्खासिंह की काव्य-कथा एक सुदृढ ऐतिहासिक भित्ति पर निर्मित्त है किन्तु इस निर्मिति मे विशुद्ध, अमिश्रित ऐतिहासिक सामग्री का ही प्रयोग नही हुआ। कवि ने अपनी आवश्यकता के अनुसार इस सामग्री मे परिवर्तन किया है और सर्वथा नये तथ्यो का सृजन भी किया है।

पुराण—सुक्खासिंह पर भारतीय पुराणो का बडा आभार है। उन्होने कई पौराणिक कथाओ को अपने प्रबन्ध मे गौण कथा के रूप मे समाविष्ट किया है और अनेक पौराणिक कथाओ का प्रयोग सक्षिप्त संदर्भों के रूप मे किया है। किन्तु भारतीय पुराण कथा-सग्रह मात्र ही नहीं हैं, वे एक विशिष्ट दृष्टिकोण के परिचायक भी हैं। सक्षेप मे यह दृष्टिकोण इस प्रकार है: 'जब कभी धरती पापाचार से आक्रान्त होती है, भगवान उसके परित्राण के निमित्त अलौकिक शक्ति सम्पन्न अवतार पुरुष के रूप में पधारते हैं।' कोई प्रबन्धकार इस दृष्टिकोण को अपना ले तो उसके आख्यान मे एक विशिष्ट वक्रता का समावेश हो जाता है। इसी दृष्टिकोण के कारण से गुरु विलास जैसे ऐतिहासिक प्रबन्ध मे भी एक इतिहासोत्तर विलक्षणता आ गई है।

गुरु विलास की कथा का आरम्भ पौराणिक सरणी पर हुआ है। भाराक्रान्त धरती महाकाल के दरबार मे अपना दुःख कहने के लिये उपस्थित होती है और महाकाल सतावतार के रूप मे धरती पर पधारने का वचन देते हैं।[1] यहाँ, सुक्खा

---

१. नात अनीत निहार मलेच्छन दुखत भई धरनी सब सारी।
लोप भये सभ धरन के गुण जग्ग सुपुन्न सुदान अपारी।
ईद चली बकरीद निवाज सुगोवध होत सभै घर भारी।
कोट कटे इह दूख सबै घर दीन दयाल बिना असिधारी।

—गुरु विलास, पृ० ४१।

दुखत भई धरनी जब ही जगनायक पै इह भान्ति पुकारी।
आकुल व्याकुल है निज भीतर रोवत भी बहु पाप निहारी।
काल सुदेव प्रसन्न भयो निज या विधि सो बचु सुद्ध उचारी।
होहु न आतुर धीर धरो निज भारत सत अनतावतारी।

— [illegible] पृ० ४२।

सिंह दशम ग्रंथ के 'चौबीस अवतार' की कथा-शैली का अनुसरण कर रहे हैं। 'चौबीस अवतार' की प्रत्येक कथा मे पृथ्वी दु ख-निवेदन के लिये महाकाल के दरबार मे उपस्थित होती है।

कथारम्भ के इस आग्रह का निर्वाह सम्पूर्ण कथा मे हुआ है। स्थान-स्थान पर चरित-नायक के अवतार-रूप का स्मरण कर लेखक ने कथा के उद्देश्योन्मुख-स्वरूप को निरतर सामने रखा है। कथा निरन्तर अपने उद्देश्य की ओर अग्रसर रहती है। प्रत्येक घटना इस निकष पर परखी जाती है कि वह उद्देश्य की प्राप्ति में साधक है या बाधक। यहाँ एक उदाहरण उपयुक्त होगा। गुरमाता गुरु को योद्धाओ के समान नगारा पीटने से रोकती है। गुरु का उत्तर इस प्रकार है -

यह तो बात छपन की नाही। ह्वै है प्रगट भवन सब माही।
हम तो छपे रहत सब काला। छपन न देत सु दीन दयाला।
कुटिया बाध गिरस अस्थाना। करते भजन स्त्री असिपाना।
पुन ताके मन मैं यौ आयो। निज लै तख्त मुझे बैठायो॥[1]

सक्षेप मे, हमारे कहने का अभिप्राय है कि इस कथा का वैशिष्ट्य इसकी उद्देश्योन्मुखता मे है।

इसी सम्बन्ध मे एक और ज्ञातव्य बात है कथा-प्रवाह मे चमत्कारपूर्ण घटनाओं का समावेश। देवी आगम प्रमुख चमत्कारी घटना है। इसके अतिरिक्त और भी कई ऐसी घटनाये हैं जहाँ चरित-नायक की अलौकिक, मानवोत्तर शक्ति का परिचय मिलता है। गुरुजी उपहार मे प्राप्त स्पर्शमणि सतलुज मे फेंक देते हैं। श्रद्धालु सिक्ख द्वारा चिन्ता प्रकट करने पर वे उसे कई स्पर्शमणियाँ नदी मे दिखला कर चिंता-मुक्त करते हैं।[2] मृगया मे मरे पक्षियो को पुन जीवित करने की कथा भी इस प्रबन्ध मे है।[3] चमत्कार पौराणिक कथाओ का सहज-स्वीकृत अग है। गुरु विलास चमत्कार को 'सिद्धान्त' रूप मे स्वीकार करता है, किन्तु वह चमत्कार

---

१. गुरु विलास, पृ० १०३-१०४।

२. पारस गज अमित्त लखै तिन एक अनेक परे गृह पूरे।
लाल मनी नग हीर जवाहर सेत असेत परे पित भूरे।
कोट अनेकन खान लखी तिन लागत है जन सुन्दर रूरे।
आन पर्‌यो गुर के पग पकज त्याग दयो तिन सभ्रम दूरे।

—गुरु विलास, पृ० ४०६

३. इन अनिक भाँति बन के मृगान। तह गनै कौन बकै सुजान।
इम कही बिप्र सुनियै निधान। इह अनिक जीव किम हने जान।
इम सुनत बैन बिध कर सुजान। पसु पच्छ छोड दाने महान।
इक उडत चढ़े नभचर अकाम। इक चले भूम भाजत निराम।

—गुरु विलास, पृ० १ ८-१८६

को उद्देश्य-प्राप्ति का माध्यम नही मानता। चमत्कार पाठक को चरित-नायक की असाधारण शक्ति के विषय मे आश्वस्त किए रखता है, इससे अधिक उसकी कोई उपादेयता नही। उद्देश्य की प्राप्ति के लिये असाधारण किन्तु मानवीय शक्ति का ही प्रयोग हुआ है। सक्षेप मे चमत्कारो ने घटना-प्रवाह मे कोई महत्त्वपूर्ण योग नहीं दिया।

गौण कथाओ मे पौराणिक भावना के समावेश का अवसर अधिक रहा है। गौण कथाओ मे प्राचीन चिर-परिचित कथाओ का पुन कथन भी हुआ है और पौराणिक शैली पर सर्वथा मौलिक कथाओ का सृजन भी। यहाँ दोनो प्रकार की कथाओं का एक एक उदाहरण प्रस्तुत करना अनुचित न होगा। सुक्खासिह ने गुरु गोविन्दसिह के जन्म-स्थान पटना और उनके लीला-स्थल आनन्दपुर का महत्त्व प्रतिपादित करने के लिये दो कथायें कही हैं। पटना नगर का सम्बन्ध सत्यवादी हरिश्चन्द्र से स्थापित करते हुए उसकी कथा विस्तार से कह दी है। यहाँ विशेष ज्ञातव्य यह है कि उन्होंने यह कथा गुरु तेग बहादुर के मुख से कहलाई है। एक सिक्ख विनती करता है कि वे उन्हें पटने की पूर्ण कथा सुनायें।[1] गुरु इस प्रकार कथा आरम्भ करते हैं .

> श्रीमुख कही , सुनहु वर वीर।
> हरी चन्द नरपति रन धीर॥
> पृथमै इह पुर ताहि बसायो॥[2]

इस पौराणिक कथा के बीच अनेक कथा-बाह्य पौराणिक सदर्भों का समावेश हुआ है।[3] इस कथा का अन्त बहुत महत्त्वपूर्ण है। कथा के वक्ता न केवल अपने कथा क स्रोत (मारकाण्डेय पुराण) का परिचय देते हैं बल्कि अपने श्रोताओ को कथा-

---

१. तवन समै इक सिक्ख सुजान।
इह विध अरजी बदन बखान।
पटना की पूरन अब काथा।
नख सिख नाथ सुनावहु जथा। —गुरु विलास, पृ० २७

२. गुरु विलास, पृ० २७।

३ एक उदाहरण प्रस्तुत है

सीस दियौ कट कै मधुकैटभ बोल नहीं अपनो तिन छोरा
बावन कै बल देख दयो सुरराक दधीच नहीं मुख मोरा।
सूरज के सुत करन सुन्यो कविलोक बखानत है सभ भोरा।
ए जब धर्म न त्यागत मे तब मैं हूँ करयो निज धर्मह थोरा।

—गुरु विलास, पृ० ३२१।

माहात्म्य भी बताते हैं। गुरु तेग बहादुर अपने सिक्खों को पुराण मे आस्था रखने का उपदेश इस प्रकार देते हैं :

मारकडे के मद्ध पुरान।
इह बिध कथा सुलिखी रिखान।
थोरक सी इत तुच्छ समान।
तुम कहँ कही सुनहु सुर ज्ञान।
पढै सुनै जो सरधा लाय।
सदा धरमु तह करै सहाय।
इह विधि कृपा सिंध करतार।
निज सगति महि कियो उचार।[1]

आनन्दपुर के विषय मे भी एक पौराणिक-कथा का आख्यान हुआ है। आनन्दपुर के साथ सतलुज नामक नदी बहती है। हमारे कवि इस नदी के विषय में निम्नलिखित कथा कहते हैं :

गाध राव पूरब इक भयो। विस्वामित्र पूत तिह जयो।
तपु बल करि कै वह नरराई। मुनी भयो पूरब अधिकाई।
सस्त्रन साथ तवन को प्यारा। निस दिन राखै कमर सुधारा।
आयुध अपने अग सजावै। तबही अग्र बसिस्ट सिधावै।
यौ बसिस्ट ताको लखि पाई। भाखै आउ तबै रिखराई।
सुनि तिह अधिक कोप जिय आवै। आवत एक पूत तिह घाव।
सकल पूत ताके जब मारे। तभी मुनी जू भये दुखारे।
महा मोह पूतन जिय धारी। बूडन गयो सु नदी मझारी।
तब ताको जल मे नही बोरा। मुनी जान कीनो जल थोरा।
सौ नारी करकै लघु धाई। सतह गामनी तदन कहाई।[2]

इस कथा के अत मे भी फल-वर्णन[2] करके इसके पठन-श्रवण के लिए प्रोत्साहन दिया गया है। सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि गुरु विलास की मूल कथा एव गौण कथाओ मे अनेक पौराणिक सदर्भों का समावेश हुआ है। ये सदर्भ किसी कला सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति के लिये ही प्रयुक्त नही। हमारा कवि अपने पाठक के मन मे पौराणिकता के प्रति आस्था जागृत करना चाहता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसने परोक्ष सकेत भी किये हैं और फल-वर्णन के रूप मे स्पष्ट निर्देश भी दिये हैं।[3]

जनश्रुति—किसी भी लोकनायक से सम्बन्धित अनेक प्रकार की जनश्रुतियों का विकास स्वाभाविक ही है। वस्तुत. जनश्रुति किसी भी लोकनायक की लोकप्रियता

१. गुरु विलास, पृ० ३८।
२. गुरु विलास, पृ० ७७।
३. जो इह कथा पढै, सुनि, गावै।
जननी जठर बहुर नहीं आवै। —गुरु विलास, पृ० ७७।

भापने का विश्वसनीय साधन है। अठारहवीं शताब्दी में गुरुगोविन्दसिंह की स्मृति विद्रोहियों के लिये प्रेरणा एवं शासन द्वारा उत्पीडित प्रजा वर्ग के लिये सम्बल बन रही थी। ऐसे समय में उनसे सम्बन्धित अनेक प्रकार की लघु कथाओं का प्रचलन स्वाभाविक ही था। भाई सुक्खासिंह ने इन लघु गाथाओं का प्रयोग भी अपने प्रबन्ध में किया है।

ये जनश्रुतियाँ गुरु गोविन्दसिंह के असाधारण बल-विक्रम, पर-दुःख निवारण, क्षमा, अलोभ आदि से सम्बन्धित हैं। उदाहरणार्थ हम केवल अलोभ आदि से सम्बन्धित कथाओं की ही सूचना देते हैं :—

(क) एक सिक्ख ने गुरुजी को जडाऊ कगन उपहार मे दिये। उन्होंने एक कगन यमुना मे फेंक दिया। माता के पूछने पर कि कगन कहाँ फेंका है, उन्होंने दूसरा कगन भी फेंक कर कहा, 'यहाँ फेंका है।'

(ख) आनन्दपुर के युद्ध मे अन्नाभाव क कारण बडी विकट परिस्थिति उपस्थित थी। एक श्रद्धालु ने गुरुजी को पारस पत्थर भेंट किया ताकि वे इससे अन्न खरीद सकें। गुरुजी ने इसे सतलुज मे फेंक कर कहा, 'पारस तो हमारे शरीर मे विद्यमान है।'

(ग) आनन्दपुर के अन्न सकट पर गुरुजी ने पूजा मे प्राप्त अन्न अपने सिक्खों को नही दिया। गुरुमाता द्वारा अभ्यर्थना करने पर गुरु जी ने कहा, 'मैंने अपने सिक्खों को अमृत पिलाया है, अब अपने हाथो उन्हे विष कैसे पिला दूँ।'

(घ) आनन्दपुर छोडते समय गुरुजी ने अतुलित धन राशि सतलुज मे बहा दी।

इन कथाओं से पता चलता है कि विद्रोह आन्दोलन मे व्यस्त शूरवीर अपने आदर्श नायक के विषय मे किस प्रकार की धारणा रखते थे। ये जनश्रुतियाँ गुरु गोविन्दसिंह के चरित्र पर तो प्रकाश डालती हैं ही, उनके अनुयायियो के अवचेतन का कुछ परिचय भी इनसे प्राप्त होता है। ये कथायें उस भाव-सौंदर्य की प्रतिनिधि हैं जो प्रतिदिन के जीवन मे समाविष्ट रहता है।

सक्षेप मे, गुरु विलास की कथा इतिहास, पुराण और जनश्रुति के सामजस्य के कारण बडी समृद्ध बन गयी है। इतिहास इस कथा को सुदृढ़ भौतिक आधार और पुराण इसे लोक ग्राह्य दृष्टिकोण प्रदान करता है। पुराण, इतिहास और जनश्रुति द्वारा क्रमश: पूर्वकालीन, समकालीन और परकालीन वातावरण का समावेश करके कवि ने अपने श्रद्धा पात्र के चरित को एक विकासोन्मुख कथा के रूप मे प्रस्तुत किया है।

चरित्र-चित्रण—गुरु विलास के मुख्य पात्र गुरु गोविन्दसिंह हैं। कवि ने उन्ही के चरित्र-चित्रण पर विशेष ध्यान दिया है।

भारतीय काव्य-परम्परा के अनुसार गुरु गोविन्दसिंह एक धीरोदात्त नायक हैं। विनय, त्याग, दक्षता, शुचिता, स्थिरता आदि सभी वाछनीय गुणों

की पराकाष्ठा उनके चरित्र में मिलती है। वे उच्च कुलोद्भव हैं। उनका चित्रण एक सिंहासनासीन 'पातशाह' के समान हुआ है। उनका चरित्र सदा एक निश्चित उद्देश्य से परिचालित है। अतः उसमे पर्याप्त औदात्य है। गुरु गोविन्दसिंह के चरित्र के आधार पर ऐसा अनुमान असगत न होगा कि इसे चित्रित करने वाले सुक्खासिंह को भारतीय काव्य शास्त्र की परम्परा का विश्वसनीय परिचय था।

सुक्खासिंह के चरित्र-चित्रण की उत्कृष्टता उनकी सतुलित वर्तुलता में है। सुक्खासिंह अनेक विरोधी तत्त्वों में सामजस्य स्थापित करने की कला जानते हैं। परिणामत उनके नायक मे अवतारत्व और मानवत्व के अत्यन्त सुखद समन्वय के दर्शन होते हैं। गुरु गोविन्दसिंह अवतार पुरुष हैं जो एक विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त अवतरित हुए हैं। नायक[1], उनके शत्रु,[2] मित्र[3] और अन्य कवि[4] उनके अवतारत्व के प्रति पूर्णत आश्वस्त हैं। वे अलौकिक शक्तियो के स्वामी हैं। किन्तु जिस उद्देश्य की पूर्ति-निमित्त उनका जन्म हुआ है उसे वे मानवीय शक्ति एव भौतिक साधनो द्वारा ही प्राप्त करना चाहते हैं। जन्मसाखियो मे चित्रित गुरु नानक देव की अन्तिम विजय जैसे पूर्व निश्चित रहती है, वैसी गुरु विलास के नायक की नही। उन्हें सघर्षशील नायक के समान विकट परिस्थितियो से जूझना पडता है। शत्रु-शक्ति के प्राबल्य के कारण किला छोडकर भागना पडता है, अमित्र वन प्रदेश मे छिपकर रहना पडता है, शत्रुओ के घेरे से वेष बदल कर निकलना पडता है। इन प्रतिकूल परिस्थितियो मे उनका सम्बल उनकी असाधारण मानवीय-क्षमता ही थी, अलौकिक शक्ति नहीं। कुल मिला कर सुक्खासिंह का नायक ऐसा अवतार पुरुष नही जो जन-दुःख-हरण के निमित्त धरती पर अवतरित हुआ है, वह ऐसा मानव है जो उत्पीडक शक्तियो से लोहा लेता हुआ, अपनी असाधारण मानवता के कारण, अवतार-पद का अधिकारी बनता प्रतीत होता है।

निश्चय ही हमारा नायक एक महान् उद्देश्य से परिचालित है। वह तुर्कों की 'सफ़ उठा' देना चाहता है। इसके लिये उसे प्रतिपल व्यस्त रहना पडता है। सेना-सगठन, शस्त्र-शिक्षा, युद्ध-सचालन, धर्म-प्रचार आदि अनेक कर्त्तव्य उन्हे घेरे रहते

---

१. पुन असिधुज के यौ मन आयो। निज लै ठौर मुझे बैठायो। —गुरु विलास, पृ० १०४
जुद्ध करन जग मै हम आए। खड्ग केतु गुर देव ,पठाए। —गुरु विलास, पृ० १२३

२. जब मत्री ऐसे सुन पायो। धर्म पछान साफ़ चित गायो।
खान सलामत जगत पनाहा। सत्ति बात हमरे सुन पाहा।
मानुख नाहि गुरू कह लहियै। अच्युत नाथ अगाध सु कहियै।—गुरु विलास, पृ० २८०
सरब जनन वल्लभ सुखदाई। अच्युत अलख जगत के राई। —गुरु विलास, पृ० २८५

३. आदि अकाल दयाल असधर पूर रही जग मै जिह सत्ता।
कस्यप अद्य सुरिन्द फरे बिसनायक जू जिह के रस रत्ता।
सेस जलेस महेस पृथीपति सेवत हैं जिह की वर लत्ता।
ता गुर को तुम पूत सिरोमणि रारि करै तुम सो चकगत्ता। —गुरु विलास, पृ० १८

४. स्री असिधुज कलिकाल दयाला। सद सतन अग सग कृपाला।
परम जोति साहिब अवतारी। सरब कला कलि मै जिह भारी।—गुरु विलास, पृ०

हैं, किन्तु उनके व्यक्तित्व की कल्पना चिर-गम्भीर, केलचक, लौह-पुरुष के रूप में करना उचित न होगा। वे बड़े विनोदी व्यक्ति हैं। उन्हें धर्म युद्ध के लिए दृढ़व्रत, स्थिर-चित्त शूरवीरों की आवश्यकता है तो वे नाटक खेलते हैं। भरी दीवान में नगी तलवार दिखाकर वे अपने सेवकों से शीश-दान मांगते हैं। एक सेवक ने शीश भेंट किया, तो उसे पर्दे में ले जाकर ऐसा स्वांग भरते हैं, मानो सचमुच ही उसकी बली दे दी हो। एक बार शत्रु चाहते थे कि गुरु आनन्दपुर छोड़ जायें तो युद्ध समाप्त कर दिया जाये। उन्होंने वचन दिया कि गढ़ छोड़ कर जा रही सिक्ख-सेना पर आक्रमण न किया जाएगा। गुरु ने कुछ घोड़ों पर फटे-पुराने जूते लाद कर कुछ सेवकों के दुर्ग त्याग देने का स्वांग भरा। शत्रुओं ने वचन भंग करके इन घोड़ों पर लदे 'माल' को लूट लिया और लज्जित हुए। इस प्रकार की अनेक हल्की एवं नाटकीय घटनायें उनके गम्भीर चरित्र को एकस्वर नहीं होने देतीं।

अपने उद्देश्य की प्राप्ति में असाधारण क्षमता एवं तन्मयता का परिचय देने वाले वीर-नायक सदा उस बोझ के नीचे दबे नहीं रहते। उनके चरित्र के हल्के पक्ष की ओर भी प्रस्तुत कवि का ध्यान गया है। युद्ध से निवृत्त हो कर वे साधारण शूरवीर के समान नशा [1] करते हैं। अवकाश के समय कभी बन्दरों का तमाशा,[2] कभी हाथियों की भिड़न्त देखते हैं।[3] अभिप्राय कहने का यह है कि गाम्भीर्य और विनोद दोनों एक दूसरे को संतुलित करते एवं एकस्वरता को भंग करते दिखाई देते हैं।

मर्यादा और अवज्ञा, नेतृत्व और अनुयायित्व, विद्रोह और क्षमा, कठोरता और करुणा, शस्त्र और शास्त्र, कृपाण और काव्य आदि अनेक विरोधी तत्त्वों के संतुलित सम्मिश्रण से ही हमारे चरित नायक के व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि सुक्खासिंह मानव-चरित्र की सम्भावनाओं से भली भांति परिचित थे। सुक्खा सिंह भारतीय काव्य-शास्त्र के नियमों का पालन तो कर ही रहे हैं, वे नवीन मनोवैज्ञानिक कसौटी पर भी खरे उतरते हैं।

---

१. विजया घर घृत अमल मगावै।
आप अचै पुन अवर दियावै —गुरु विलास, पृ० १६६-२०० ।

२. ताही समै तट डेर कर बनचर जुरे अपार।
एक सिक्ख की ढाल को लै द्रुम चरयो सुधार।
कृपासिंधु ता को लखि पाई। बिगसत भयो गन्यो नहि जाई।
आछो भोजन मिस्ट मगाइ। कपि कुल को डारत करि चाइ।
दिना चतुर केरक अचराये। बह ढाढे निज घर पर आई।

३. नो आज्ञा सतिगुर के पाऊँ। कर मुजरा गज को सु दिखाऊँ।
आयस भई करो तिन करा। अनिक भाति गज सो गज लरा।
सु डिया सो सु डिया गहि लेहा। पायन सो पायन मथि देही।
एक भजै इक पाछै धाय। चिघारत चीम्त इक जाय। —गुरु विलास, पृ० ५४५।
लै लै मोज कादि रदनच्छद। कूदत है बनचर के गच्छद।
—गुरु विलास, पृ० ५३४।

युद्ध वर्णन :—

आधार ग्रन्थों से तुलना :—सुक्खासिंह के सम्मुख तीन आधार ग्रंथ थे—'अपनी कथा', 'गुरु शोभा' और 'जगनामा'। इनमें से प्रथम दो ग्रंथों से लाभान्वित होने के निश्चित प्रमाण 'गुरु विलास' की विषय-वस्तु (घटना-क्रम आदि) और रचना शैली में विद्यमान हैं। इन दोनों ग्रंथों के युद्ध वर्णन का विवेचन करते हुए इनकी अपूर्णता और एकांगिता की ओर संकेत कर चुके हैं। सुक्खासिंह का युद्ध-वर्णन इनकी अपेक्षा पूर्ण और सर्वांगीण है।

इस अन्तर का कारण रुचि-जन्य ही नहीं, स्थिति-जन्य भी है। अपनी कथा और गुरु शोभा के लेखक अपने प्रतिपाद्य के बहुत निकट थे, सुक्खासिंह उनसे पर्याप्त अन्तर पर थे। सुक्खासिंह तक पहुँचते-पहुँचते इन युद्धों के ऐतिहासिक महत्त्व का निर्णय ही नहीं वरन् इन से सम्बन्धित अनेक जनश्रुतियों का विकास भी हो चुका था। अतः सुक्खासिंह इन युद्धों का अपेक्षाकृत सम्पूर्ण वर्णन एवं आख्यान करने की स्थिति में थे। यहाँ हम सुक्खासिंह द्वारा चित्रित एक युद्ध (आनन्दपुर) का ही उल्लेख करेंगे।

पूर्व पीठिका आदि :—सुक्खासिंह युद्ध-वर्णन का आरम्भ युद्ध के कारणों से करते हैं। आनंदपुर के समीपवर्ती पहाड़ी राजा गुरु गोविन्द के अभ्युदय से त्रस्त हैं। भय और ईर्ष्या के कारण वे दिल्लीपति औरंगजेब के पास सहायता प्राप्त करने के लिए जाते हैं। औरंगजेब क्रोध में आ कर सेना-प्रस्थान की आज्ञा देते हैं। इस घटना का नाटकीय चित्रण इस प्रकार हुआ है :

> निरख शाह चहूँ ओर मैं ऐसे कह्यो हंकार।
> मैं अब ताकी देखिहूँ दिस कैसी तरवार।
> वीर अमीर वडे उमराव सु सैयद सेख जहाँ अधिकाई।
> खान पठान महीप वडे जिह आठ दिशा खरे हाथ मिलाई।
> यौं चहूँ ओर निहार दिलीसर वीरन को विध या फुरमाई।
> कौन बली इह बीच सभा जोऊ पान चबाइ गुरु पर जाई।
> खान लहौर पती वरनायक ठाढो हुतो तबही तह ठाऊँ।
> जोर सु हाथ करी सिजदा तिन शाह सलामत जौ मम जाऊँ।
> आइस होय तुमार डरो नहि आप हजूर सु बाँध ल्याऊँ।
> केतक गोबिन्दसिंह बली मम रूम सयाम को धूर मिलाऊँ।[1]

तदुपरान्त शत्रु सेना के प्रस्थान का विस्तृत वर्णन हुआ है। शत्रु के बल-विक्रम आदि का अवमूल्यन हमारे कवि को रुचिकर नहीं :

> कोप मलेच्छ चढे अगनै इम दुदभ ढोल सुबोल बजाई।
> मारग जोनन गौन करै जल कूप नदी सर सूखत जाई।
> काँपत सकल धरन भी भारा।
> सूरज गगन न जात निहारा।

१. गुरु विलास, पृ० २६६।

निरख लोग उचरत नर नारी।
कांपर कुप्यो शहनशाह भारी।[1]

मुगलों से चिरकाल तक युद्ध करने के पश्चात् विद्रोही सिक्खों ने अपने अनौपचारिक गुप्तचरों एवं गुप्त-भाषा का भी विकास कर लिया होगा। सुक्खासिंह इस भाषा का प्रयोग आनन्दपुरीय युद्ध के प्रसंग में करते हैं। मुगल-सेना को आनन्दपुर की ओर प्रस्थान करते देखकर गुरु के हितैषी उन्हें गुप्त-भाषा में पत्र भेजते हैं। 'एक सौदागर आप पर हर्षित होकर, आपके दर्शनार्थ आ रहा है। उसके साथ अनेक गुलाम हैं, सकटनाल, भुजनाल, शुतरनाल, गजनाल आदि आदि लोहास्त्र उसके पास हैं, और—

सौदा सार[2] करन के काजा।
आयो इहै गरीब निवाजा।
तुम या को आदर शुभ करियै।
लोहा भेंट अधिक तिह करियै।
टांडा है प्रभ या संग भारो।
तुम अपनो निज विरद सभारो।'[3]

युद्ध की गतिविधि का ब्योरा प्रस्तुत करना भी सुक्खासिंह नहीं भूले हैं। ऐसा ब्योरा इससे पहले किसी प्रबन्धकार ने नहीं दिया है। युद्ध कितने दिन हुआ, दो दिन के युद्ध के बीच सैनिक कैसी बातें करते हैं, प्रत्येक दिन के युद्ध में किस कौशल-विशेष से काम लिया जा रहा है, पराजित सेना के शिविर में वैमनस्य और ग्लानि तथा विजयी सेना के गढ़ में उल्लास एवं क्षमा की अभिव्यक्ति किस प्रकार होती है, इसका विस्तृत वर्णन सुक्खासिंह ने किया है। सुक्खासिंह योद्धा नहीं, कथाकार हैं। एक कुशल कथाकार के समान उन्होंने युद्ध-कथा में कोई रिक्त-स्थान नहीं रहने दिया। ब्योरे के विस्तार के कारण युद्ध एक गतिशील, क्रमबद्ध कथा के रूप में उभरता है। जय-पराजय पक्ष-द्वय के बीच झूले के समान झूलती हुई प्रतीत होती है और पाठक फलागम तक कौतूहल की अवस्था में रहता है। यहाँ इस युद्ध विशेष के ब्योरे से अति संक्षिप्त उद्धरण प्रस्तुत किये जाते हैं

प्रथम दिवस का युद्ध :

परयो सार भारा। कथै कौन सारा।
भये रुण्ड मुण्डा। मनो जुद्ध चण्डा।[4]
जोगन भूत पिशाच परा कल नारद आन तहीं सुनच्यो।
बीर बुभ्रज सुवाकन डाकन गीधन यो चित चाउ रच्यो।

१. गुरु विलास, पृ० २७० ।
२. सार=लोहा ।
३. गुरु विलास, पृ० २७१ ।
४ वही, पृ० २७४ ।

रण्ड सु मुण्ड विथार घने पिख्यो कवि नागर भाव खच्चो।
मानहु काल प्रलै जनु स्याम त्रिया सु त्याग इतै सुनच्यो।[१]

तोप से युद्ध :

(मुगल-सेना की तोप)

गरजत भई सु तोप अपारा। पुहमी गगन न जात निहारा।
अध-धध उतही ह्वै गयो। हाथ पसार दृस्ट न अयो।[२]

(सिक्ख सेना की जबर जंग)

आज्ञा जब पाई, तब दासन बनाई,
डार दारू और गोरन को मान सिसताई है।
लायो तब तोरा, भयो सबद सु घोरा,
चले रिपु चतरोरा तहाँ कौन ठहराई है।
कितक उडाने नद-धार मे बहाने कित,
तलेहू दुराने तहाँ निरख न पाई है।
अहै दरम्यानी निज गुनन निनानी,
जाकी सुनकर बानी अरि दलन सराही है।[३]

प्रथम और द्वितीय दिन के युद्ध के बीच सूर्यास्त और सूर्योदय का संक्षिप्त वर्णन

(सूर्यास्त)

सूरज छप्यो भई जब रैना। ओह दिस अढ्यो नृपत वर गैना।
बैठ तखति तिन छत्र फिरायो। खल दल जीत विजै निध पायो।
कुमदी कोक उडग विगसाने। निज नायक की जीत पछाने।
कुलटा तसकर तिमर उलूका। विगसत भये अधिक कर सूखा।

(सूर्योदय)

दिस पूरब जान प्रकास भयो। कुलटा कुमदी चुर नास गयो।
उड अध गयौ निज आलह को। लखि तेज किधौं मुन वालह को।
रात वितीत निचीत स्यौ उदयो उते दिन राय।
खल दल सकल सहार के तख्त विराज्यो आय।[४]

(द्वितीय दिवस)

इस दिन युद्ध नहीं हुआ। गुरु ने अपने ज्येष्ठ पुत्र रणजीतसिंह को मोर्चों की देखभाल का काम सौंपा।

तीन दिवस बीत्यो सुख संगा।
निस आगम हत भयौ पतंगा।[५]

---

१. गुरु विलास, पृ० २७५।
२. वही, पृ० २७६।
३. वही, पृ० २७८-२७९।
४. वही, पृ० २९०।
५. वही, पृ० २९४।

(तृतीय दिवस)

इस दिन भी तोप द्वारा युद्ध हुआ।

निरख मिदान सुनदी किनारा।
गरजत अधिक अनल की धारा।
अश्व गयन्द अग्र जो आवै।
जीवत कोऊ जान नहि पावै।[१]

(इसके पश्चात् पुनः सूर्यास्त का संक्षिप्त वर्णन है)

रात्रि के समय युद्ध।

जाम जामिनी चतुरथो वाकी रही निहार।
भयो सुचेत तव खालसा वाहर गयो सुधार।[२]

मुंडिया नांग तुरक वहु जाही। अलह खुदाई कितक वकाही।
कई हजार दुष्ट गहि मारे। खंड खंड करि विविध संहारे।
घटका अरध तेग तह वही। इह विध विजै खालसे लही।
तोप वदूक निखंग तमाचे। अनिक भांति सो लूटे साचे।
रौर परी लसकर सब माही। काहू रही सुद्ध कछू नाही।
जब वे वार मिसालन धाये। तब ए गढ़ महि आन समाये।[३]

(चतुर्थ दिवस)

इस पराजय पर मुगल सेनापति और पहाड़ी राजाओं में वैमनस्य उत्पन्न हुआ।

कोप तुरक तव बचन उचारो। रक्त नेत्र कर ऊच पुकारो।
तुम्हे हमरी सेन मराई। द्यो तुपखाना खास लुटाई।
जव मैं स्री हजरत पै जैहूँ। कवन बदन कहु जाइ दिखैहूँ।[४]

इस पराजय का वदला लेने के लिए निर्णय हुआ कि मस्त हाथी गढ़-द्वार पर चढ़ाया जाए।

(पंचम दिन)

मस्त हाथी से विचित्रसिंह का युद्ध :

घेर दसो दिसते गढ दारन फेर अनयो गजराज वनाई।
आवत है जन पब्ब सपच्छ भयानक सो तिह रूप लखाई।

× × ×

भाल सुबीच हन्यो बरछा गज दै कर जोर रकाब निधानी।[५]

---

१. गुरु बिलास, पृ० २९५।
२. वही, पृ० २९६।
३. वही, पृ० २९६-२९७।
४. वही, पृ० २९९।
५. वही, पृ० ३१२।

स्रोनत धार चली पथ ऊरध सो उपमा बरनी नहि जाई।
काट सु कालका सीस मखासुर ज्यौ धर स्रोन की धार बहाई।[1]

घायल हाथी द्वारा शत्रु सेना का नाश :

जौन दिसा वह नाग सिधारत होत सथार अगै दल जाई।
वारन वाज न राज विचारत पैदल सैन गिरै बहु भाई ।
काल समान सु क्रीड़त है गज कौन सकै तिह की छत्र गाई।
पौन समान फिर्‌यो हित वारन अभ्र किधों अर सेन पलाई।[2]

शत्रु सेना का प्रति-प्रस्थान :

यो लखि कै सुचढ्‌यो वह सूवा। लज्जा के सागर महि डूवा।[3]

दान :

वित्त अमित्त सुधित्त निहारि कै कौन सकै कवि चित्त गनाई।
सावन के घन ज्यों वरख्यो धन-धार हजार लयो सब आई।
दीनन को जन रूख भयो सुर बाँटत देख गिरीस डराई।
दारद के तन छेद परे निज सूमन देह दरेरन छाई।[4]

गुरु गोविन्दसिंह किन विकट परिस्थितियों में युद्ध लड़ रहे थे, सुक्खासिंह का ध्यान इस ओर भी गया है। उन्होंने इतिहास के समान इन परिस्थितियों का परिगणन तो नहीं किया परन्तु एक कुशल कलाकार के समान उन्हें अपनी काव्य-कृति में अवश्य गूँथ दिया है। उनसे पूर्व तीनों प्रबन्धकरों ने इनकी अवहेलना की थी। गुरु गोविन्दसिंह मुट्ठी भर मनचले शूरवीरों को लेकर मुगल शासन और पहाडी राजाओं की सम्मिलित सेना से असमान युद्ध में उलझे हुए थे। दूसरे वे गढ़ में घिरे हुए थे और शत्रु खुले मैदान में था। सुक्खासिंह इन मूल परिस्थितियों से उत्पन्न होने वाली विकटता का चित्रण करता है।

शत्रु उन तक रसद पहुँचने के मार्ग रोक लेते हैं तथा जल-स्रोत भी बन्द कर देते हैं। आनन्दपुर के अन्न संकट का अति कारुणिक चित्र वे इस प्रकार उपस्थित करते हैं :

केतक मास बीत कर गये। घेरा दसौ दिसन तिन पए।
आवन रसत भनै उर कई। मारंग रोक सभै दिस लई।
ऊपर ते आवत खड जला। बंद कर्‌यो गिरियन मिल खला।
नारा नदी निकट नहि कोई। जल लै अचै बीर बर सोई।[5]
मास देह ते उडि गयो रहे हाड अरु स्वास।
आज काल इह जात है भोजन हीन गिरास।

---

१. गुरु बिलास पृ० २३२।
२. वही, पृ० ३१३।
३. वही, पृ० ३१४।
४. वही, पृ० ३१६।
५. वही, पृ० ३६६।

कै हम को सन्तोख दै तोखन करो दयार।
कै भोजन हम दीजिये अबही करुणा धार।[1]
हाड मास तन महि रहि गये। पिंजर से सभ ही तन भए।
घास बूट जड़ तर नर खावै। अनिक जतन कर प्रान ठरावै।
केतक रूख छाल छल खाही। अनिक जतन कर प्रान ठराही।[2]

ऐसी विकट स्थिति मे सिक्ख लूट-मार की शरण लेते हैं, गुरु के समक्ष अन्न के लिए घिघियाते भी हैं। कुछ सिक्ख आनन्द गढ छोड देने की अनुमति लेते हैं और कुछ गुरु को छोड़ भी जाते हैं। सुक्खासिंह ने विषम स्थिति का ही नही बल्कि तज्जन्य मन.स्थिति का भी चित्रण किया है।

सेनानी—'अपनी कथा' और 'गुरु शोभा' में शूरवीरो की गर्वोक्तियों अथवा युद्धनायकों के प्रबोध आदि का सर्वथा अभाव रहा है। शूरवीरो की मनःस्थिति के चित्रण पर इन रचनाओं मे विशेष ध्यान नही दिया गया। सुक्खासिंह ने इस ओर भी ध्यान दिया है। गुरु गोविंदसिंह अपने शूरवीरो में युद्धोत्साह का संचार करने के लिये इस प्रकार कहते हैं :

तुम चिन्ता मन मैं जिन करो। सामुहि जुद्ध खलन सो लरो।
जो जितहै जस ह्वै जग माही। जूझै श्री हरि पुर को जाही।
इन सम अवर बात नहि काई। दीन मजब का जुद्ध सो भाई।
निरभै ह्वै कर बाहो अस। ईत ऊत होसी जग जस।
छत्री को दुर्लभ जग आहि। जुद्ध समान अवर पुन नाहि।
जेतक पग सम्मुख ह्वै लरही। तेतक बरख स्वर्ग फिर फिरही॥[3]

शत्रु सेना द्वारा तोप का प्रयोग किये जाने पर गुरु अपने शरीर की चिंता छोड़ कर युद्ध संचालन कर रहे हैं। सिक्खो के चिंता प्रकट करने पर वे कहते हैं :

हमको सरब लोह की रच्छा। खड्ग केत हमरो सद पच्छा।
सरब काल हमरो चहु ओरा। मेट न सकत जासु को गोरा।
काल कवच हमने गर डार्यों। त्रेई ताप जिह मार विदार्यो।
ब्रह्म कवच डार्यो मम रिदा। सार न सकत जास कह भिदा॥[4]

केवल शूर-वीरो के उद्‌गार ही नहीं, युद्ध क्षेत्र मे घिरे हुए कायरों की मनःस्थिति का वर्णन भी 'गुरु विलास' मे हुआ है। एक ऐसा ही कायर दुनीचन्द नामक 'मसन्द' था। गुरु-सेना को खबर मिली कि कल शत्रु एक मस्त हाथी गढ़-द्वार पर चढ़ाने वाले हैं। गुरुजी ने खालसा-सेना को आश्वस्त करने के लिये कहा

१. गुरु विलास, पृ० ४०२।
२. वही, पृ० ४०८।
३. वही, पृ० २७३।
४. वही, पृ० २७७।

कि इस हाथी को तो दुनीचद जैसा 'बहादुर' भी पछाड सकता है ।[1] यह सुन कर मसन्द दुनीचन्द भय से व्याकुल होकर गुरु को भला-बुरा कहता है। वह गुरु द्वारा विद्रोह आन्दोलन के सचालन को अनधिकार चेष्टा मानता हुआ इस प्रकार अनर्गल प्रवाद करता है :

जेतक गुरु होत जग आए। किन तुर्कन सो खड् बजाए।
घर महि बैठ भगत निज करही। राम नाम निस दिन उर धरही।
और जुद्ध जु बनत सु आई। लुक छप लेते प्रान बचाई।
मत्त दुरद आगे तव धरि है। टूक टूक मेरे वह करि है।[2]
लोक बेद गुर इन मति डारी। अवरे रीत जगत विस्थारी।
बादशाह के सग सुभाई। किन आगे कछु तेग बगाई।[3]

ऐसे कायर के साथ-साथ स्वामिभक्त एव गुरुभक्त शूरवीरो की मन स्थिति का चित्रण भी सुक्खासिंह ने किया है। उनकी अनुपम निष्ठा और आत्म-समर्पण के अनेक उदाहरण इस ग्रंथ मे मिलते हैं। इस युद्ध-विशेष (आनन्दपुर) में भी सिक्ख विकट परिस्थिति मे सौंपे गए काम अडिग निष्ठा और आत्म-समर्पण के भाव से करते हैं। मत्त गज से जूझने की आज्ञा पाने वाले शूरवीर के भाव इस प्रकार हैं :

सुनत वचन गुरु देव के परो चरन मध धाय।
हाथ जोर सिर नाइ कै उचरत भयो बनाय॥
जीत हार जानो नही दयाला। हुकम मान सिर धरे उताला।
सेवक चल्यो ओर तिस जै है। जह दिस दयासिंध फुरमैहै।
वह बारन अति बल मदमत्ता। मै तव दास तनक बल रत्ता।
मो तन की कछु चित न करियै। आप जुद्ध की लाज सँभरियै॥
संधजरा जिम घात समै हन स्री जदुनदन ब्योत बनाई।
पौन सुपूत जु हार गयो बलु और दयो जगुनायक राई।
धीरज दै निज पौरख संजुत सत्र जित्यो जग पैज बढाई।
त्यो प्रभजू यह कारज आपन आप करे सग होइ सहाई॥[4]

सेनानियो की उपक्रम-क्षमता का वर्णन भी सुक्खासिंह ने किया है। सिक्ख-सैनिक रात्रि के समय शत्रु-सेना को असावधान देखते हैं। इस समय शबखून मारा जाय, तो शत्रु सेना की अत्यन्त हानि हो सकती है। किन्तु बिना आज्ञा के यह कैसे हो। गुरु आनन्दगढ मे सो रहे हैं आज्ञा पाने तक तो शत्रु सावधान हो जायेगा। अत. सैनिक स्वतत्र निर्णय करते हैं :—

---

१. सुनत वचन तब दूत के था सुख घन ज्यो गाइ।
दुनी चद मम मत्त गज लरिहै ता सग जाइ।
चीटी ज्यो गज राज को छिन महि देत बिडार।
दुनी छपाकर अरन को भारत मेघ निहार। —गुरु विलास, पृ० ३०१

२. गुरु विलास, पृ० ३०१।

३. वही, पृ० ३०२।

४. वही, पृ० ३०१।

श्री नाहर मृगपति यौ भाख्यो। आयस बिन जिय मैं डर राख्यो।
कृपासिंध पूछे बिन भाई। भली न करियं जाइ लुटाई।
दुतं बीर यो वचन उचारी। सुन प्यारे तू बात हमारी।
राजनीत निस्चय इह आही। समा निहार चूकियँ नाही॥
कृपासिंध निज सदन मे ह्वै गे अनद मझार।
अबै जगावन आपकै भली न बात विचार।
ए सुचेत ह्वै जाहु गे हमैं लगे गी देर।
आछ नीक वर बात है जहो हाथ शमशेर॥'[1]

सक्षेप मे कहा जा सकता है कि सुक्खासिंह ने युद्ध वर्णन करते समय सेनानियों के व्यक्तित्व पर भी ध्यान रखा है। परिणामत. युद्ध मे अस्त्र-शस्त्रगत यान्त्रिक नैपुण्य को ऐकातिक महत्त्व नही मिला। मानव स्वभाव गत सौंदर्य का समावेश भी इसमे हो गया है।

प्रकृति-चित्रण

इस काल के पजाबी कवियो को प्रकृति-चित्रण मे विशेष रुचि नही। 'ससार को बादल की छाइं' समझने वाले भक्त-कवि अथवा राजाओ के यश-वर्णन मे व्यस्त दरबारी-कवियो की दृष्टि प्राकृतिक सौंदर्य की ओर आकृष्ट न हो, यह स्वाभाविक ही है। प्रबन्ध रचनाओ मे कही-कहीं प्रकृति-चित्रण हुआ है किन्तु बँधी-सी लीक पर कवियो के मौलिक प्रकृति-निरीक्षण का परिचय इन रचनाओ मे नही मिलता। वस्तुत प्रकृति निरीक्षण एव प्रकृति-चित्रण सौंदर्योन्मुख दृष्टि का परिचायक है। सत्रहवी-अठारहवी शतो का विद्रोहोन्मुख पजाबी जीवन ऐसी दृष्टि के पनपने मे सहायक न हो सकता था। इस काल का समस्त साहित्य उद्देश्योन्मुख है, सौंदर्योन्मुख नही। प्रबन्ध रचनाओ मे उपलब्ध प्रकृति-चित्रण के सम्बन्ध मे निम्न-लिखित तथ्य उल्लेखनीय हैं :

(१) विरलता—बहुत कम कवियो ने प्रकृति-चित्रण को अपनी रचनाओ मे स्थान दिया है। गुरु गोविंदसिंह और सुक्खासिंह के अतिरिक्त किसी अन्य कवि की रचना मे कोई उल्लेखनीय उदाहरण नही मिलता। इन कवियो की रचना मे भी प्रकृति-चित्रण अति विरल एव सक्षिप्त है।

(२) आलम्बन रूप मे नहीं—इस विरलातिविरल प्रकृति-चित्रण मे भी प्रकृति कही आलम्बन रूप मे चित्रित नहीं हुई। प्रकृति के दर्शन अधिकाशत. अलकार-विधान मे ही होते हैं।

(३) मौलिकता का अभाव—कवियो के मौलिक प्रकृति-निरीक्षण का परिचय इन रचनाओ मे नही मिलता।

---

१. गुरु विलास, पृ० २१६।

सुक्खासिंह का प्रकृति-वर्णन भी विरल, संक्षिप्त एवं रूढ़ है। दूसरे कवियों की अपेक्षा इनका वैशिष्ट्य इतना है कि वे कहीं-कहीं प्रकृति का चित्रण आलम्बन रूप में भी करते हैं। उनके प्रकृति-चित्रण से कुछ उदाहरण निम्नांकित हैं :—

सूर्योदय :

प्राची पिरान चिरई चुहान। मुन सेख वेद धुनि करत ग्रान।[1]
दिस पूरब जान प्रकास भयो। कुलटा कुमदी चुर नास भयो।
उड़ अंध गयो निज आलह का। लख तेज किधौ मुनि बालह का।
रात वितीत निचोत स्यों उद्यो उत दिन राय।
खल दल सकल संहार कै तख्त विराज्यो आय।
चकई जलज अनंदत भये। जानुक नये जन्म इन लये॥[2]

नदी वर्णन (संगम) :

एक दिसा नदि गंग विराजित दूज दिपे जदुनाथ की धारा।
सारस्वती तिनके मद्धि भागह लाल असेत चले सित धारा।
मीन सु कच्छप चक्र फिरैं जल कौतक होत अनेक प्रकारा।
देखनहार कहै नर नारि सु तीरथराज कि पापहि आरा।[3]

नगर-वर्णन :

(आनन्दपुर)

झरना झरे नीर सुखदाई। मोर चकोर विविध झड़ लाई।
बाग तड़ाग कूप फुलवारी। सोभत वाइ सलल कर चारी।
अधम जीव दरसन जोऊ आई। सीतल होत दरस कहि पाई।
ज्ञान छत्र उगवत तिह उरा। जो दरसत आनन्द चलि पुरा।
कोकिल कीर कपोत सिखि विचरत नागर शेर।
विन आयस गुर देव के सकत न किस ही छेर॥[4]
सुन्दर देस अधिक बर सोहै। देखनहारन को मन मोहै।
सुक पिक अधिक सारका बोलैं। पच्छ, पसू अनगनतन डोलैं।
सीतल नीर समीर जु बहै। बारह मास एकसा अहै।
बादर चरत गिरन पर चारा। इह प्रभ जू हम चरित निहारा।
सीतल धार झरैं गिर झरना। एक बदन कर जात न बरना।
तरैं नदी पावन सुखदाई। सेत बार जनु छीर सुहाई॥[5]

---

१. गुरु विलास, पृ० १६०।
२. वही, पृ० २६०।
३. वही, पृ० २५।
४. वही, पृ० ५।
५. वही, पृ० ७६।

वर्षा-ऋतु :

हंस पयान सु दादर औ बक मोरन हूं घनघोर लगाई ।
बोल रहे चतुरो दिस चात्रिक बिज्ज घने उत घोष सुनाई ।
नील घटा नभ नीर भरी, तिन मैं मघवा धन यों छबि छाई ।
स्याम घनैं जन मद्ध तनैं यह पीत दुकूल दिपै अधिकाई ॥[1]
मूसल धार सु नीर परैं नभ है अवनी सगरी जल छाई ।
केतकी कंज कदंब प्रफुल्लत नीर भरी सरता जल आई ।
राग मलार अलापत हैं नर नारि सुनैं मन आनन्द पाई ।
या विध सो बरसात सु काटत दीन दयाल प्रभू सुखदाई ॥[2]

सुक्खासिंह की दृष्टि मानवेतर जीव-जन्तुओं पर भी गई है और उसने यथास्थान मोर, मराल, सर्प, गज आदि का संक्षिप्त वर्णन किया है। यहाँ एक उदाहरण पर्याप्त होगा :

आवत है जनु ऊंच गिरीवर कैं तम पुंज निसा धर धानी ।
केतु किधो जलरास प्रकाशत स्याम घटा जनु सींचत पानी ।
गच्छत है गतिमंद बुलिन्द सु चंचल चारु दिपै सुख दानी ।
यों उपमा गजराज की राजत कौन कहै इह की घन सानी ।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि सुक्खासिंह ने प्रकृति का संक्षिप्त एवं रूढ़ वर्णन किया है। सुक्खासिंह का वैशिष्ट्य यह है कि उसने अपने काव्य-ग्रंथ में प्रकृति चित्रण को उस समय स्थान दिया जब प्रकृति काव्य-क्षेत्र से बहिष्कृत-सी थी। कुल मिलाकर गुरु विलास का स्वर उद्देश्योन्मुख ही रहा, प्रकृति के ये विरल चित्र हमें स्थान-स्थान पर आश्वस्त करते रहते हैं कि गुर विलास के कर्ता में प्रकृति का स्वतन्त्र आस्वादन करने की अभिलाषा एवं क्षमता भी विद्यमान थी।

गुरु विलास की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

देवी पूजा—जब गुरु गोविन्दसिंह ने मुगल शासन के सबल विरोध के लिये खालसा-सृजन का संकल्प किया, तो सबसे पहले भगवती चंडिका का आह्वान करना उपयुक्त समझा। गुरु गोविन्दसिंह का विश्वास था कि 'खल दल हनन' में सदा तत्पर देवी 'दुष्ट तुरकान हानि' के कार्य में अवश्य सहायक होगी।[3] देवी चंडिका को

---

१. गुरु विलास, पृ० ७६।

२. गुर विलास, पृष्ठ ५।

३. इह बडी चाह मन मद्धि धार। कर देव पूज को सरबमार।६०।
पुन करो खालसा खग निधान। जो करे दुष्ट तुरकान हान।
लेउ आदि शक्त माता मनाय। जिन अधिक पंथ महि है सहाय।६१।
वह आदि अंत देवी दयाल। जिन हने दुष्ट दोखी कराल।
जिह भगत आप लीने बचाय। खल दलन हनन जा को सुभाय। ६२। पृ० १७१।

प्रत्यक्ष करने के लिये उज्जैन-निवासी दत्तानन्द नामक ब्राह्मण की देख-रेख में महायज्ञ का आयोजन किया गया। गुरुजी ने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति—नौ लाख रुपया—इस पुण्य कार्य के लिये अर्पित कर दी। कालिपूजन की सामग्री (वेद-विहित) एकत्रित हुई[1] और शतद्रु नदी के रमणीय तट पर यज्ञ आरम्भ हुआ। वेदपाठी ब्राह्मण अग्निहोत्र में सलग्न थे और गुरुजी देवी पाठ में।[2] यह क्रम लगभग दो वर्ष तक चलता रहा किन्तु देवी ने दर्शन न दिये। ब्राह्मणों के निर्देश के अनुसार गुरु एकांत पर्वतश्रृंग पर तपस्या करते रहे। इस प्रकार अढाई वर्ष व्यतीत हो गये। ज्यों-ज्यों समय अधिक व्यतीत होता गया, त्यों-त्यों सुरेश, जलेश, धनेश आदि देवता चिन्तित होने लगे। उन्हें भय था कि गुरु कहीं उन्हें ही पदच्युत न कर दें। किन्तु इन देवताओं को क्या मालूम कि गुरु स्वर्गादि तुच्छ वस्तुओं पर लुब्ध होने वाले नहीं। कोटि स्वर्ग और सहस्र सिंहासन गुरु-चरणों में निवास करते हैं। देवी पूजन का यह कौतुक तो माता काली और पिता महाकाल (अथवा खड्गकेतु) को रिझाने के लिए है ताकि खालसा जैसा बलवान पुत्र उत्पन्न हो।[3] ज्यों-ज्यों काली के प्रत्यक्ष होने का समय निकट आता गया, दिव्य रूप धारी देवताओं, ऋद्धियों, सिद्धियों आदि द्वारा गुरु को कभी

---

१. (क) स्री जग मात की पूज करी बर बेदन के जिम मद्धि बखानी।
अच्छत, धूप, पचामृत चन्दन कुंकम और घनसार बखानी।—पृ० १८४।

(ख) घृत धूप अजा महर्षि सुजान। बल देत चटका लै महान।
महि दत धूप उपजत सुवास। जनु सरब गध को है निवास।

२. जपै सुद्ध सिद्ध सदा मन कालो। नमो घोर रूप नमो बिस्व पाली।
नमो चंड मुंडी सदा अष्ट बाहा। सुधं सुद्ध सिद्ध अभूत अथाहा।
नमो चद्र भाल अकाल कराली। नमो सैल पुत्री सुयका सिपाली।
नमो देव पार अर दैंत घारी। नमो तीर तोप गदा चक्र धारी।
नमो सुंभ हती अगता अकाल। नमो बिस्व माता सदा जै ज्वाल। —पृ० १९९

३. कोट सुरग औ तख्त हजारा। इन चरनन मैं प्रगट निहारा।
देवी देव कितक को ध्याही। पद पंकज गुर मद्धि समाही।
इह भी इह कौतक को काजा। करत चरित्र गरीब निवाजा।।४६।।
माता के चित्त मद्दि मन मानियो। पिता खड्ग ध्वज और न जानियो।
मात पिता बिन पूत न होई। ताको सब निंदत है लोई।।४७।।
ताते इह गुर दोऊ मनाए। तौ अस पूत खालसा पाए।
या ते करी सकत की पूजा। पित अस धुन मान्यो नहीं दूजा। —पृ० २०१

प्रलुब्ध और कभी त्रस्त करने के यत्न भी बढने लगे।[1] अप्सरायें भी सोलह शृ गार धारण करके पहुँची और अपनी मोहिनी शक्ति की परीक्षा लेने लगी। गुरु गोविन्दसिंह अविचल बैठे माता चडिका की आराधना करते रहे, स्तोत्र, कवचादि का पाठ अखड, निर्विघ्न रूप से चलता रहा। अब देवी-आगमन का शुभ मुहूर्त बहुत निकट था। विघ्नराज ने आकर सिंह-वाहिनी देवी के रूप का फिर बखान किया और वहाँ से चल दिया। अन्त में देवी प्रकट हुई। पहले भूत, पिशाच, गण आदि नृत्य करते दिखाई दिये; फिर काकपु ज की कराल ध्वनि सुनाई दी। पवन प्रचड गति से चलने लगी, घनघोर घटा घिर आई। समुद्र, पर्वत, धरती, आकाश थर्राने लगे[2] और फिर देवी ने प्रत्यक्ष दर्शन दिये—

मु ड की माल बमै मुख ज्वाल विसाल कराल महाछवि छाई।
छूटे है वाल व्याल लए कर स्याम सरूप लख्यो नही जाई॥
वाम कृपान महान दिपै वर जा तन सु भ की सैन खपाइ।
जै जग मात प्रतच्छ भई इम श्री मुख लै वरदान सुनाई।[3]

देवी ने गुरु गोविन्दसिंह से वर माँगने को कहा। गुरु ने उसके दाहिने हाथ की कृपाण माँगी, असुरो एव म्लेच्छो की पराजय माँगी और याचना की कि मैं खड्गपाणि महाकाल की नित्य आराधना करूँ एव तुम्हारा पुण्य चरित्र दिन रात

---

१. (क) सुर नर देव भुजग गन किन्नर जच्छ अपार।
जोगन भूत पिसाच निस निरखे कई हजार ॥८७॥
मैं सब सिद्धन की सरदार सिरोमणि मो सम सिद्ध नहीं है।
जान जिती महिमा अणमादिक सो पद पकज लाग रहा है।
बासव से मुझको नहीं पावत जान लिजै मुहि साच सही है।
तो कह होय दयाल कहा मुझ माँगहु जोगन इच्छ अदा है।—पृ० २०५-२०६

(ख) अहे तेजभारा। सकै को निहारा।
बना विकराला। गर मु ड माला।
कर नाग धारे। बमै ज्वाल मारे।
छुटे केस सेस। भुज भीम देस।
दिसा चीर जाही। बनी मार आही।
असौ जू निहारी। डरोगे सुभारी। —पृ० २०६

२ निरतत है चहू ओर पिसाच सु भूत सिवा बहु भाति पुकारै।
डोलत है गणपु ज सु जोगत काक कराल करे ध्वनि सारै। —पृ० २१२
पौन प्रचड चल्यो प्रिथमै धरि घोर घटा, चहूँ ओर घुराई।
नीरद सिंध सु बिन्द गिरीवर भूम अकाश महा थहराई।
सेस सुरेश महेश पिथीपति कापत है मन शोक बढाई।
या बिध आगम काल निहार कै चौदह लोकन चाल जनाई। —पृ० २१६

३. गुरु विलास, पृ० २१३।

गाऊँ।[1] एवमस्तु कहकर देवी लोप हो गई। अब गुरु गोविन्दसिंह के मुख पर एक अद्वितीय ज्योति झलक रही थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो उनकी सारी देह कचन, शशि, रवि, केसर आदि के अभूतपूर्व ज्योति-मिश्रण से रग दी गई है।[2]

सिक्ख साहित्य मे देवी पूजन की कथा इतने विस्तार से सर्वप्रथम कहने का श्रेय कवि सुक्खासिंह को ही देना चाहिए। देवी पूजा की यह कथा कहने की प्रेरणा तो उन्हे 'दशम ग्रथ' से ही प्राप्त हुई होगी जिसमे तीन बार देवी चरित्र गायन किया गया है। इसके अतिरिक्त कृष्णावतार आदि कथाओं में भी देवी पूजन का निर्देश है। कवि सुक्खासिंह के समय तक 'दशम ग्रथ' के कर्तृत्व के विषय मे विवाद न उठा था और उसके गुरु गोविन्दसिंह द्वारा लिखे जाने का विश्वास सिक्ख-विद्वानो और जनता मे समान रूप से सुदृढ था। अत सुक्खासिंह के मन मे गुरु गोविन्दसिंह द्वारा काली पूजन किये जाने के विषय मे कोई सदेह नही था। इस दृढ विश्वास के आधार पर ही उन्होंने 'गुरु विलास' मे यह कथा इतने विस्तार से लिखी। जिस प्रकार गुरु गोविन्दसिंह ने दुर्गा-सप्तशती के आधार पर की गई अपनी रचना, चण्डी-चरित्र उक्ति-विलास, का प्रेरणा-स्रोत श्रद्धा को न मानकर 'कौतुक' को माना है, इसी प्रकार सुक्खासिंह ने भी देवी पूजन को गुरुजी का कौतुक (लीला) ही कहा है। तो भी दोनो कथाओ को पढकर ऐसी प्रतीति नही होती कि वे ऊपरी मन से, किसी ऐसी परम्परा के पृष्ठपोषण के लिये जिनमे उनका पुष्ट विश्वास नही, इनकी रचना कर रहे हैं। दोनो रचनाएँ आत्मविभोर होकर, साम्प्रदायिक तर्क-वितर्क से ऊपर उठ कर, लिखी गई है।

सुक्खासिंह ने केवल खालसा-सृजन के प्रसग मे ही काली-पूजा का वर्णन नही किया है। सुक्खासिंह की भगवती चडी के प्रति श्रद्धा इससे कही गहरी है, जिसके प्रमाण सम्पूर्ण 'गुरु विलास' मे यत्र-तत्र उपलब्ध हैं। युद्ध प्रसग तो जैसे चडिका की अदृश्य किन्तु निश्चित उपस्थिति की अपेक्षा रखते हैं। खालसा-सृजन के पश्चात् खालसा-सेना और मुगल एव पहाडी राजाओ की सम्मिलित सेना के बीच हुए युद्धो में सुक्खासिंह स्थान-स्थान पर भगवती काली को गुरु गोविन्दसिंह की सहायता करते

---

१ मैया इह किरपा अब कीजै। खड्ग पान दाहन मुह दीजै।
निस दिन विजै होय जग मेरी। असुर मलेछ मारि कर ढेरी।
खड्गपान कह निस दिन ध्याऊँ। तोर चरित्र रैन दिन गाऊँ।
सन अनत सु अनिक प्रकारा। सुखी बसै आनम इह सारा। —पृ० २१३

२ आनन्द पुज भयो मन मै वड ता सुख को प्रभ आप ही जानै।
रूप अनूप दिदार दिपै बर का उपमा तिह की कवि ठानै।
कचन बार ससी रव केसर या तन जोत अभूत बखानै।
लाल गुलाल सरूप भयो गुर यो बर पाय सु देव निधानै। —पृ० २१४

हुआ दिखाते हैं। भगवती कभी तोप के रूप मे शत्रु-सेना का नाश करती[१], कभी शत्रुओ द्वारा भेजे हुए मस्त गज का महिषासुर के समान मर्दन करती[२] और कभी धर्म-युद्ध से भागे हुए किसी भगोडे को दण्डित करती हुई[३] दृष्टिगोचर होती हैं। आनन्दपुर मे तो युद्धोत्तरकाल मे भी युद्ध का-सा ही वातावरण बना रहता था क्योकि वहाँ शातिकाल, वस्तुत, नए युद्ध की प्रतीक्षा मे ही व्यतीत होता था। अत भगवती काली तो खालसा-सैनिको की चिर-सगिनी हो गई थी। आनन्दपुर मे विजय दशमी का पर्व शस्त्र-पूजा से मनाया जाता है।[४] शस्त्र पूजा वास्तव में चडी पूजा ही है; गुरु गोविन्दसिंह शस्त्रो को जगमाता ही समझते हैं।[५] सब सिक्ख-सैनिक गुरु की आज्ञा से धूप, दीप, नैवेद्य से देवी पूजा करते,[६] कवच आदि

---

१. (क) एक रूप धारो ठाडी महाकाल द्वारे,
दुतै सागर मझारे विश्व नाथनी बखानियै।
अैतै सुमरानी भई सारदा भवानी,
पुन बेदन निधानी कवि-चंद गुन गानियै।
महिषेस अरु मारि धूमराक्षहि सघार,
चण्ड मुण्ड काटि डार जित कित ठानियै।
अब दीन बन्धु द्वारे निज भगत विचारे,
आई तोपन धारे जाको अमित कहानियै। —पृ० २७८

(ख) किधौं निज काली दीन दयाली ज्वाली नाली।
रूप धार जग अवथ बडाई वरदाई है। —पृ० २७८

२. भाल सु बीच हनयो बरदा गज दैकर जोर रवावनि धाई।२१०॥
कोप भयो अनु पच्छहि पै हरि मार धराधर दीस फिराई।
कै बनिता सुन को डर कै इह नाग धस्यो गिर भीतर जाई।
स्रोन्त धार चली पथ ऊरध सो उपमा बरनी नहीं जाई।
काट सु कालका सीस मखासुर ज्यो धर स्रोन की धार बहाई। —पृ० ३१२-१३

३. भाज चल्यो तिन बिलम न करे। गिरि ते फिसल टाग टुट गई।
निरखहु श्री कालका बिलासा। कहा दुनो सग भयो मकासा। —पृ० ३०५

४. दशमी विजय निकट जब आई। करहे पूजा खडग बनाई। —पृ० ३२७

५. अस कारज करियै नहीं आरे। श्री जग मात लेहु सिर धारे।
भूल न या पर पाव धरीजे। नित दिन याकी पूज करीजे।
है ए श्री असधुज के प्रानं। जितक हथ्यार जगत बिच नानं। —पृ० ३२८

६. सरब खालसै आयस पाई। सबही पल महि सौज मंगाई।
ज्यो निज हुकम करयो गुर दयाला। सरब त्यारी करी बिसाला॥११८॥
जितक रान लेकर सन जागे। काली की पूजा मध लागे।
धूप दीप नैवेद कराही। आछे अच्छत पुष्प मँगाही।
ऊच कुर्सियन पर हथ्यारा। चौर छत्र ले करे सु धारा।
देव चरित्र श्री मुख भाखे। उपमा अधिक चण्ड की राखे। —पृ० ३२९-३३०

का श्रद्धापूर्वक पाठ करते,[1] देवी का चरणामृत ग्रहण करते तथा भेंट अर्पण करते हैं।[2] सुक्खासिह आनन्दपुर मे जिस उत्साहवर्धक वातावरण की रचना मे सफल हुए हैं, वह भगवती चण्डी के सहयोग के बिना सम्भव न होता।

सुक्खासिह के चण्डी वर्णन को पढ कर एक प्रभाव तो निर्भ्रान्ति रूप से पडता है कि उनके समय तक हिन्दू धर्म की सुविशाल सास्कृतिक परम्परा को निस्सकोच भाव से अपनाने की प्रवृत्ति सिक्ख विद्वानो मे विद्यमान थी। सुक्खासिह ने वैष्णव, शैव एव शाक्त परम्पराओ की सास्कृतिक सम्पन्नता से अपने काव्य ग्रन्थ को यथास्थान समृद्ध किया है। काली वर्णन शैवो और शाक्तो के लोकप्रिय विश्वासो को आत्मसात् करने का ही एक प्रयास है।

तीर्थ यात्रा :

तीर्थों के प्रति सुक्खासिह को विशेष मोह है। ग्रथ के आरम्भ मे उन्होने बडे भाई की संगति मे नानक मते आदि की यात्रा की ओर सकेत किया है। गुरुधाम पटना के दर्शन उन्होने बचपन मे ही किये थे। ऐसा प्रतीत होता है कि पटना से आनन्दपुर लौटते समय पूर्व देश के सभी तीर्थ-स्थानो के दर्शन उन्होने किये थे। अतः ग्रन्थ की मूल-कथा लिखते हुए जब कभी भी तीर्थ-वर्णन का अवसर आपको मिला, उन्होंने पुनरावृत्ति-दोष की चिन्ता न करते हुये, उसका लाभ उठाया।

गुरु विलास मे दो यात्राओ—गुरु तेगबहादुर की पूर्व-यात्रा और गुरु गोविन्दसिह का पजाब-आगमन—का वर्णन तो स्पष्टतः तीर्थ-वर्णन ही है। सिक्ख धर्म मे तीर्थ यात्रा को विशेष महत्त्व न दिये जाने पर भी वे साधारण सिक्ख जनता द्वारा त्यागे न जा सके। गुरु गोविन्दसिह के समय तक स्वय सिक्खों के अनेक गुरुधाम तीर्थों के रूप मे मान्य हो चुके थे। अतः दशमग्रन्थ के अन्तर्गत तीर्थों का महत्त्व स्वीकृत-सा है। 'अपनी कथा' नामक प्रसंग मे गुरु तेगबहादुर द्वारा तीर्थ यात्रा के उद्देश्य से पूर्वदेश का भ्रमण करने का उल्लेख है। गुरु के निकटवर्ती कवियो द्वारा भी सिक्खेतर तीर्थों का महत्त्व स्वीकृत हो रहा था। तदुपरात किसी सिक्ख कवि द्वारा तीर्थ-निन्दा का कोई प्रयास कही दिखाई नहीं देता। सुक्खासिह का सिक्खेतर तीर्थों का श्रद्धापूर्वक उल्लेख इस बात का साक्षी है कि सिक्ख धीरे-धीरे ब्राह्मण धर्म की रीति-विधि को अपना रहे थे।

गुरु तेगबहादुर कुरुक्षेत्र, यमुना (कदाचित मथुरा), नानक मते, नीमखार, प्रयाग होते हुए पटना पहुँचे। इनमे प्रयाग का वर्णन सुक्खासिह ने श्रद्धालु तीर्थ-सेवी के समान किया है। त्रिवेणी की लहरें आपको पाप को काटने वाले आरे के समान दिखाई देती हैं—

---

१. धरा सु व्योम कारनी। पतित लोक तारनी।
पिगाक्ष धूम्र लोचन। अघं क्लेस मोचन।
रक्त बीज खंडनी। सुदैतराज दडनी।...... आदि आदि—पृ० ३३०।

२. मदरा विजया खाड मिलाई। कर चरणामृत गागर पाई।
ले निज भेट कालका दीने। जै भवानि उचरत परवीने। —पृ० ३३१।

एक दिसा नदि गग बिराजित दूज दिपे जदुनाथ की दारा ।
सारस्वती तिनके मद्धि भागह लाल असेत चले सित वारा ।
मीन सु कच्छप चक्र फिरै जल कौतक होत अनेक प्रकारा ।
देखनहार कहै नर नारि सु तीरथराज कि पापहि आरा ।
—पृ० २५

गुरु तेगबहादुर भी तीर्थों पर श्रद्धालु, तीर्थ सेवी हिन्दू के समान विचरते है। याचको को दान देते हैं।[1] (जजिये के कारण) हतप्रभ तीर्थों को देखकर आपका मन गौ साधु के दुख से भर जाता है और आप सोचते हैं कि इसका अन्त तो असिध्वज के आवाहन से ही होगा।[2]

गुरु गोविन्द जब पटने से आनन्दपुर (पजाब) मे आये तो भी इन्ही तीर्थ-स्थानो से होकर। उनके तीर्थाटन का वर्णन अधिक विस्तार से हुआ है। पटना से चल कर गुरु बनारस मे डेरा डालते हैं। सुक्खासिह ने गुरु के बनारस-निवास का वर्णन एक पूर्ण अध्याय मे किया है। काशी को शशिभाल पुरी[3] तथा रुद्र पुरी[4] कह कर, प्राचीन परम्परा से अपनी सहमति प्रकट की है। काशी को अनेक जन्मो के किल्विष हरण करने वाली[5] कह कर और काशी वासियो को देव-सभा के सदस्य[6] कह कर काशी के प्रति अपनी श्रद्धा का परिचय दिया है। काशी से अयोध्या पहुँचे। अयोध्या को सुक्खासिह ने 'सरजू तट पावन' पर बसी 'श्री अवधेस का देस' तथा 'श्री अजनन्दन की नगरी' कह कर इस नगर और राजा राम दोनों को ही श्रद्धाजलि अर्पित की है। नगर के 'बाग, सु कूप तडाग, सरोवर' आदि के सौंदर्य का वर्णन करते हुए 'वेद और पुराण पढे गुण पुजाव' कहना नहीं भूले हैं। अवध वर्णन मे वानर-सेना की ओर भी दृष्टि गई है। काशी वर्णन मे उन्होने वेद-पुराण मार्ग मे जो आस्था प्रकट की थी, वह अयोध्या वर्णन मे और भी पुष्ट हो गई है। इसके

---

१. जाचक गुनी विमल मति धीरा। मिले आन सतिगुर बर तीरा।
जिन जैसी मनसा जिय कीनी। करुणा सिध वहै तिन दीनी।
मागन जो तह टरर सु आयो'। बहुरि न अनतै लैन सिधायो। —पृ० २५

२. धरनी दुरी निरख इह सारी। गो साधू जन दूख निहारी।
रहैं उदास रैन दिन नाना। नाना विघन कथत गुरु ग्याना।
निज घट मैं असधुज को ध्यावै। ता विन अवरु न मन मै ल्यावै। —पृ० २६।

३. कैतक काल पुरी ससिभाल दयाल बसे मन आनन्द पाई। —पृ० ६६।

४. यौ कहि रुद्रपुरी मै लोगा। —पृ० ६२।

५. कासीपुरी अधिक बर सोहै। तवन समान पुरी नहीं कोहै।
वाराणसी नाम वह कहै। अनक जनम के किल्विष हरै। —पृ० ६४।

६. सुन्दर धाम अनूप विचच्छन लच्छन के धुज धाम सुहासी।
उच्च अवास निवास गुनी जन बेद पढ़ै दुति आनन्द भासी।
गूढ़ गिरा जु सुरा जिम बोलत देख जिनै छवि पुज प्रकासी।
देस महा नगरो मुखुदा नर नार सबै जन देव समासी। —पृ० ६५।

पश्चात् 'मायापुरी' हरिद्वार का वर्णन है। हरिद्वार को आपने शेष, सुरेश और धनेश-पुरी कह कर स्मरण किया है। इसके क्षीर समान जल के स्पर्श मे ही पापनाशक गुण की अवस्थिति मानी है। और तीर्थों पर तो गुरुजी ने स्नान ही किया था, हरिद्वार पर तो शीश झुकाने का भी उल्लेख है।[1]

गुरु धाम नानकमता और आनन्दपुर का वर्णन भी कवि ने ऐसे ही शब्दों में किया है। 'आनन्दपुर के दर्शन द्वारा प्रथम पुरुष को भी शांति मिलती है।' सुक्खासिंह सिक्ख तीर्थ और सिक्खेतर तीर्थों मे किसी प्रकार का अन्तर नही करते। वस्तुतः सिक्खेतर तीर्थों का वर्णन—उनके दीर्घकालीन महत्त्व के कारण—अधिक विस्तार से किया गया है।

तीर्थ-वर्णन के साथ-साथ दान, विप्र-वन्दना, वेद-पुराण में आस्था के संकेत भी मिलते हैं जिनका ऊपर यथास्थान संकेत कर दिया गया है। यहाँ उस अन्तर्विरोध का वर्णन कर देना भी उचित होगा जिसका सामना दशम ग्रंथ के लेखक और उनके पश्चात् दूसरे सिक्ख कवियों को करना पड़ा। हिन्दू धर्म की विशाल, समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा का आकर्षण शक्तिशाली चुम्बक के समान इन्हें अपनी ओर खींचता था और अपना वैशिष्ट्य बनाये रखने का मोह भी कम न था। गुरु गोविन्दसिंह को चण्डी चरित्र जैसी अनुपम रचना के अन्त में यह कहना पड़ा—'कौतुक हेत रची कवि ने सत सैं की कथा सु पूरी भई है।' रामायण और कृष्णावतार जैसी रससिक्त रचनाओं के अन्त में उन्होने कहा :—

१. राम रहीम पुरान कुरान अनेक कहै मत एक न मान्यो।
२. किसन बिसन किनहू न ध्याऊँ। •

सुक्खासिंह भी गौ, द्विज, तीर्थ, वेद, पुराण में आस्था दिखाते हुए, गुरु माहात्म्य के प्रति जागरूक हैं। अतः वे बीच-बीच मे ऐसे संकेत देते रहते हैं कि उनकी वास्तविक निष्ठा गुरु के प्रति है। उनके अनुसार गुरु तेगबहादुर ने तीर्थ यात्रा (आत्मोद्धार के अभिप्राय से नही) जगदुद्धार के लक्ष्य से की थी।[2] कोटि तीर्थ तो उनके चरणों में निवास करते हैं।[3] गुरु गोविन्दसिंह की तीर्थ यात्रा के समय भी तीर्थ और गुरु गोविन्दसिंह की पापनाशक शक्ति एक दूसरे से होड लेती प्रतीत होती है। किल्मिष-हरण काशी और नरावतार गोविन्द का बखान लगभग एक ही समय में हुआ है। काशी निवासी उनका स्तवन इन शब्दो में करते हैं :—

---

१. केतक काल दयाल प्रभू हरिद्वार पुरी निज भीतर आये।
रूप अनूप पुरी सु विलोकत धन्न श्री मुख तीरथ गाये।
छीर समान चले गंग ओदक जो परसै तिह पाप निसाये। —पृ० ७०।

२. दीन दन्ध दयाल साहिब खग बहादुर राय।
तारने संसार सागर किया ऐस उपाय।
नाम लेकर तीरथन को चले पूरब धाम। —पृ० २३।

३. कोट तीरथ पुन पदारथ देव देवी आदि।
धूर वांछत संत की मन चित्त कै वर चाहि ॥
चौपाई—तीरथ बसत कोट जिह चरना। चल्यो प्रभु सो तीरथ करना —पृ० २३।

पूजन जोग सु कला तिहारी। जामहि तुमसे नर अवतारी।
बडे बडे साधू अवतारी। भये हस के वसु मझारी।
ते सब ही तारा कहवाये। जो कह देस सूर बिगसाये।
जो वालक तुमको कर जानत। तुच्छ वृद्ध नही भेद प्रमानत।

—पृ० ६४

इस प्रकार गुरु विलास ने अपनी द्विमुखी निष्ठा के प्रति न्याय करने का प्रयास किया है—तो भी कुल मिलाकर पलडा ब्राह्मण परम्परा की ओर ही झुका है। काशी और गोविन्दसिंह की एक साथ प्रशंसा रामचरितमानस मे भरद्वाज ऋषि द्वारा प्रयाग और राम की एक साथ प्रशसा से बहुत भिन्न प्रतीत नही होती।

यहाँ एक और प्रवृत्ति जिसका उल्लेख समीचीन प्रतीत होता है, वह है सिक्ख तीर्थ-स्थानो का सम्बन्ध ब्राह्मण परम्परा म पूज्य व्यक्तियो से जोडना। पटना और आनन्दपुर दो ऐसे ही तीर्थ हैं। पटना नगर गुरु गोविन्दसिंह के जन्म-स्थान के रूप मे विख्यात है। इसका सम्बन्ध कवि ने सत्यवादी हरिश्चन्द्र से जोडा है। आनन्दपुर शतद्रु नदी के तट पर बसा नगर है। इसे गुरुजी ने स्वय बसाया था। यहाँ शतद्रु नदी के पवित्रीकरण के लिए इसका सम्बन्ध विश्वामित्र और वसिष्ठजी की एक कथा से जोडा गया है। इन कथाओ को पढ कर कोई सदेह नही रहता कि सुक्खासिंह सिक्ख धर्म-स्थानो को हिन्दू जन-मान के लिये पूज्य और सेव्य दिखाने के लिये कृत-प्रयास हैं।

वर्णाश्रम धर्म—सिक्ख धम ने वर्ण भेद को कभी स्वीकार नही किया। गुरु नानक के समय से ही ऊँच-नीच वाली अध-परम्परा सिक्ख धर्म में अमान्य रही है। नानकोत्तर सिक्ख गुरुओ के प्रचार से भी वर्ण-बधन उत्तरोत्तर ढीले पडते गये। सिक्ख गुरु स्वय क्षत्रिय कुलोद्भव थे। अत उनकी वाणी मे कबीर-सरीखा उग्र वर्ण-विरोध नही, इसकी अवहेलना का स्वर ही मुख्य है। गुरु गोविन्दसिंह द्वारा खालसा सृजन के समय यह अवहेलना विरोध का रूप धारण करती दिखाई देती है। पच प्यारे जिन्हें गुरु गोविन्दसिंह ने सर्वप्रथम अमृत पान कराया और सिक्ख से सिंह अभिधान दिया, वर्ण-विरोध का ज्वलत उदाहरण हैं। इन पच प्यारो मे क्षत्रिय, छीपा, नाई, जाट, धीवर—तथाकथित उच्च और नीच दोनो वर्णों के लोग थे। इन्हे गुरु ने एक ही पात्र से अमृत पिलाया और कडाह-प्रसाद 'छकाया'। स्वय इनके हाथ से अमृत पान किया। पहाडी राजाओ द्वारा सिक्ख धर्म को ग्रहण न करने का एक कारण उनका वर्ण-मोह ही था।[1] सुक्खासिंह ने इस बात का उल्लेख कई स्थानो पर किया है।

गुरु नानक के समय से ही मुस्लिम सास्कृतिक आक्रमण का विरोध करने के लिये प्राचीन भारतीय सस्कृति की स्वस्थ परम्पराओ के पुनरुद्धार के यत्न आरम्भ हो चुके थे। इसका कुछ उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। गुरु और उनके पश्चात् गुरु कवियों ने अपनी वाणी द्वारा भारतीय इतिहास और पुराण की स्मृति जन-जीवन में बनाये रक्खी। वेदादि को अपने धर्म मे अन्तिम, निर्णायक प्रमाण न मानने पर

१. कठन रहत हमने नहा होई। चार बरन सी करैं रसोई।
हम राने गिरपति अभिमानी। कुला कर्म क्यों तजै जहानी। —पृ० २४७।

भी गुरुग्रो ने इनके प्रति जन-साधारण का सत्कार बनाये रखा। इस प्रकार मुस्लिम संस्कृति के आक्रमण को रोकने के लिये मोरचे तैयार हुए। गुरु गोविन्दसिंह ने इस सास्कृतिक पुनर्जागरण के कार्य को और पुष्ट किया। उन्होने अपने अनुयायियो को सस्कृत पढ़ने के लिये काशी भेजा; महाभारतादि सस्कृत ग्रथो का अनुवाद भाषा-मे कराया। स्वय प्राचीन सस्कृत ग्रथो के आधार पर चण्डीचरित्र, रामावतार, कृष्णावतार आदि मौलिक काव्य-ग्रन्थो की रचना की। आनन्दपुर मुस्लिम-सत्ता का सैन्य-विरोध करने का ही शक्ति-केन्द्र न था, अपितु मुस्लिम सस्कृति के प्रसार का विरोध सास्कृतिक अस्त्रो से करने का विद्या केन्द्र भी था।

महाभारत, रामावतार, कृष्णावतारादि की रचना मे जहाँ अन्यान्य सास्कृतिक मूल्यो को स्वीकार किया गया, वहाँ वर्णाश्रम धर्म को भी कुछ पुष्टि मिली। स्वयं दशम ग्रथ से कई ऐसे उद्धरण उपस्थित किये जा सकते है जो वर्णाश्रम धर्म का सत्कार करते हुए प्रतीत होते हैं। कल्कि अवतार की कथा मे वर्ण-सकर पर पुनर्वार खेद प्रकट किया गया। नया वर्ण-सकर हिन्दू और मुसलमानो के मेल से उपस्थित हो रहा था। स्वय हिन्दू समाज मे वर्ण-भेद का विरोधी गुरु गोविन्दसिंह इस वर्ण-सकर का भी विरोधी था। इस विरोध से ही वर्ण-धर्म का अनचाहा उपकार गुरु गोविन्दसिंह द्वारा हुआ। गुरु गोविन्दसिंह अपने अवतरण का मुख्य कारण वर्ण सकर विरोध को ही मानते हैं :

जब जब होत अरिष्ट अपारा।
तब तब देह धरत अवतारा।
दुष्ट अरिष्ट सु प्रलय कराई।
पुन भगतन उर रहत समाई।
कलजुग घोर अगम जब भयो।
सकर वरण जगत ह्वै गयो।
तुरक मलेछ वस भयो भारी।
करी भ्रष्ट तिन सब ससारी।
हिन्दक धर्म-रहन नही दयो।
सरब मलेछ-वस ह्वै गयो।
सत गऊ कह इनै दुखाइस।
भई दुरमती कलजुग आइस।
धौल धरम नही सका ठहराई।
आकुल विकल धरन है आई।
महाकाल को धर कर ध्याना।
रोवत भई धरन विध नाना।
ताके दुख हरबे को काजा।
सेवक पठ्यो गरीब निवाजा।

मैं वहु भांत विनै तह करी ।
करुना सिंध मुझे यौ ररी ।
तुरकन की जर मैं अब मारी ।
करी खालसा पथ सुधारो ।।[१]

इस प्रकार उस खालसा पथ का जन्म हुआ जो वर्ण और वर्ण-सकर दोनों का विरोधी है । स्वय गुरु गोविन्दसिंह की रचनाओ मे दोनो प्रकार के विरोधों के पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं ।

मुस्लिम शासन और सस्कृति के सबल विरोध के लिये जो सैन्य-सस्थापन गुरु गोविंदसिंह द्वारा हो रहा था उसे हिन्दू सास्कृतिक मूल्यो मे क्षात्र-धर्म का पुनरुद्धार कह सकते हैं । दशम ग्रथ इसी क्षात्र-धर्म का पोषक है । वस्तुत, सत मार्ग द्वारा भी क्षत्रिय-विरोध नही हुआ । विरोध का सारा भार ब्राह्मण देवता को ही वहन करना पडा । दशम ग्रथ जहाँ क्षत्रिय-वर्ण का वर्णन बडे आदर भाव से करता है, वहाँ ब्राह्मण पर यदा-कदा फबती कसने से नही चूका है । इस क्षात्र-धर्म-पोषक परम्परा का पालन ही सुक्खासिंह द्वारा हुआ है ।

वशाभिमान, कदाचित्, क्षात्र-धर्म का अत्याज्य अग रहा है । गुरु गोविन्दसिंह के सोढी वश का सम्बन्ध सूर्य वश से जोडने के प्रयास का श्रीगणेश तो स्वय उनके द्वारा ही हुआ था । उन्होने बचित्र नाटक के अन्तर्गत 'अपनी कथा' नामक प्रसग मे अपने कुल से सम्बद्ध एक कथा का सृजन किया है । सुक्खासिंह ने उसी कथा का आश्रय ले कर गुरु गोविन्दसिंह को हस-वस-अवतार कहा है । वाराणसी के ब्राह्मणो द्वारा इस उच्च कुल का बखान पुनर्वार हुआ है ।[२] एक स्थान पर गुरु गोविन्दसिंह को 'कृष्णावतार' भी कहा गया है ।[३]

क्षात्र-धर्म का विधिपूर्वक पालन ब्राह्मण की अपेक्षा रखता है । दान-धर्म का पालन ब्राह्मण के बिना कैसे हो ? यह ठीक है कि गुरु गोविन्दसिंह ने दान का सच्चा अधिकारी धर्म-योद्धा खालसा को ही बताया है,[४] किन्तु ब्राह्मण को दान देने का

---

१. गुरु विलास, पृ० २४०-४१.

२. (क) (सूर्य) देह धरै दिस जावँत पच्छम वस कहो कह लोग सिधारी —पृ० ६७
(ख) सूरज ते रघुवस भयो पुन राम लव तांहि की कुल माही।
राय भयो नर काल तिही कुल सोढी लखो तिह ते पर पाही ।
तौन सुवस्र वतस भयो रामदास गुरू पुन अर्जन आही।
तासज स्री हरि गोबिंद जू तिह पौत्र लखो मिसचे सु इनाहीं —पृ० ६७
(ग) जा कुल के तुम दीप सिरोमण ता कुल के हम हैं सु भिखारी।
पूरब सत अनन्त अवतार जु होत भये यह बस मझारी ।
पूजत भे सवही हम कौ सुनिये करुणा निधि लाय प्यारी ।
ताते विचार सनो जग भूखय देहु कछु हम मिच्छ सुधारी । —पृ० ६१

३. कृष्णावतार । तज कै अजार ।
पुर आनन्द जान । बैठे निधान ।

४. दान दियो इन को ही भलो, और को दान लागत नीको । —दशम ग्रन्थ, पृ० ७१

विरोध कभी भी सबल रूप नही धारण कर सका । इसका कारण ब्राह्मणों की दीन-हीन अवस्था ही थी । सुक्खासिंह भी ब्राह्मण को उसके परम्परागत अधिकार से वंचित नहीं करना चाहते। गुरु गोविन्दसिंह के जन्म पर ब्राह्मण से लग्न पूछा जाता है,[१] गुरु तेग बहादुर के दाह-संस्कार के समय ब्राह्मण का नाम तो नही लिया गया किन्तु पुराणादि के पाठ से ऐसा अनुमान लगाना अनुचित न होगा कि यह काम भी परम्परागत रीति के अनुसार विप्र-वृन्द द्वारा ही सम्पन्न हुआ होगा ।[२] गुरु विलास मे तो गुरु गोविन्दसिंह द्वारा उपवीत धारण करने का भी उल्लेख है। गुरु उपवीत धारण नही करना चाहते । ब्राह्मण के उपदेश का उन पर कोई प्रभाव नही होता । गुरु कहते हैं कि मैं तो खालसा धर्म का सृजन करने के लिये ससार मे आया हूँ। अन्त मे माता के कहने पर वे खालसा सृजन से पूर्वकाल के लिए उपवीत धारण कर लेते हैं।[३] यह कथा सुक्खासिंह की अपनी कल्पना का चमत्कार है जिससे पता चलता है कि उनका ब्राह्मण परम्परा की ओर कितना स्पष्ट झुकाव था।

ब्राह्मणो को दान-दक्षिणा देने का उल्लेख तो गुरु विलास मे शत बार हुआ है। तीर्थराज प्रयाग पर गुरु तेग बहादुर ने ब्राह्मणो को सर्वस्व दान कर दिया था।[४] सावन के घन के समान दान वर्षा गोविन्दसिंह ने अनेक बार की थी। एक बार गुरु गोविन्दसिंह का क्षात्र-धर्म दान के कारण ही आपत्ति में पड गया था। गोविन्दसिंह दान देते ही नही थे, दान लेते भी थे। प्रतिदिन अनेक श्रद्धालु गुरु जी को भेंट चढाते थे। बनारस के चतुर ब्राह्मणो ने आपत्ति की कि आप हस-बस-अवतार होकर पूजा ग्रहण करने का अक्षनियोचित कर्म क्यो करते हैं।[५] यह कथा भी सुक्खासिंह का

---

१. तबही विप्प विचार सुनायो । घरी मुहूरत जोग मिलायो ।
कहा बिप्प ने गुर अवतारी । या पग लाग तरग ससारी ।
पुन दिज कहा दान जो होइ । दीनन वेग दिवावो सोई ॥ —पृ० ४७

२. चदन अधक मगाय कै कर सब कुल की रीत ।
निज हाथ महाराज जू सब कारज इह कीत ।
पोथी ग्रन्थन को निज पाठा । पाछे श्री मुख लायो ठाठा ।
पुन्न पुरान सु श्राद्ध बिचारी । जह तह लगे पड़त मत सारी ॥ —पृ० ९१-९२

३. माता ओर निरख दिजराई । भाखत भयी अनीति चलाइ ।
माता ता कहु दुखत निहारी । हाथ जोर इह बात उचारी ।
जब तुम पथ खालसा कीजै । सब को तोर जनेऊ दीजै ।
अमृत जब लग छको न घाला । तब लग मान लेहु दर हाला ।
हाथ जोर जब वचन सुनायो । पाहुल लग तब कण्ठ लगायो ।
तौ दिज मन मै भयो प्रसन्न । भाखत भयो वचन धन्न धन्न । —पृ० ९७

४. तब तिन को सर्वस दिय जगत पूज अवतार ।
मुदित भये दिजराज सब जै जै कीन सुधार ।
जो डेरा को सरब समाजा । अस्व पालकी रथ गज साजा ।
तम्बू पलग कनात सु भाडे । कर सकल्प दीन दिज पाडे । —पृ० ६१

५. तुम तो हंस-बंस अवतारी । दीन-बंध सतन हितकारी ।
पूजा कर हित लेत दयाला । धर्मी को नहीं धरम निराला ॥ —पृ० ६३

अपना आविष्कार है। वस्तुतः इस कथा द्वारा उन्होंने अपने मन में उठ रही शंका के समाधान का सुअवसर जुटाया था। यह शंका भी वर्णाश्रम धर्म के प्रति उनकी गहरी आस्था की ही प्रतीक है।

ब्राह्मणों की रक्षा भी क्षात्र-धर्म की इतनी अत्याज्य विशिष्टता है जितनी कुलाभिमान अथवा दान दक्षिणा। वस्तुतः ब्राह्मण-रक्षा उन दिनों युग-धर्म का प्रतीक थी। मुस्लिम शासन इस्लाम प्रचार के लिये बलप्रयोग करना अनुचित न समझता था। इस बलप्रयोग का भार अधिकांशतः उच्चजातीय हिन्दुओं, विशेषतः ब्राह्मणों, को ही वहन करना पड़ता था। तिलक, उपवीत हिन्दुत्व के प्रति प्रत्यक्ष चिन्ह थे। कदाचित् हिन्दुत्व की इतनी प्रत्यक्ष घोषणा शासक वर्ग को चिढ़ा देती थी। अतः मुस्लिम-प्रचार का एक साधन तिलक चाटना और उपवीत तोड़ना भी था। ब्राह्मणों की तथाकथित उच्चता को स्वीकार न करते हुए भी तिलक-उपवीत की रक्षा न करना स्वयं हिन्दुत्व को मिटते हुए देखकर मौन रहना था। ब्राह्मणत्व और हिन्दुत्व इस प्रकार पर्यायवाची बन गये थे। यही कारण है कि हिन्दुत्व की रक्षा के लिए कटिबद्ध सिक्खों द्वारा, वर्णाश्रम धर्म का समर्थक न होते हुए भी, वर्णाश्रम धर्म का उपकार हुआ। गुरु गोविन्दसिंह ने अपने पिता गुरु तेग बहादुर के बलिदान का उद्देश्य तिलक और उपवीत की रक्षा ही माना है। वस्तुतः वे इन दोनों की रक्षा को धर्म की रक्षा से अभिन्न मानते हैं।[1]

सुक्खासिंह भी गो-ब्राह्मण की रक्षा की बात यथा-स्थान बार-बार कहते हैं। 'ब्राह्मण रक्षणीय हैं', यह भाव गुरु विलास में सर्वत्र स्वीकृत-सा है। सुक्खासिंह ने होशियारपुर के एक ब्राह्मण की कथा प्रस्तुत की है जिसकी स्त्री एक पठान ने बलात् छीन ली थी। गुरु ने अपने पुत्र अजीतसिंह को भेज कर उस स्त्री को मुक्त कराया और पठान को उबलते हुए तेल में डाल कर मार दिया था।[2]

ब्राह्मण के समान गौ भी गुरु जी के लिये रक्षणीय है। वस्तुतः उन्हें गो-ब्राह्मण के प्रेम ने ही कई बार आपत्ति में डाला था। एक बार तो स्वयं हिन्दु राजाओं ने उनके इस प्रेम का अनुचित लाभ उठाया। वे आटे की गौ बना कर आनन्दपुर में छोड़ गये। यह पुराने वैमनस्य को मिटाने की सौगन्ध थी। गुरु जी कुछ दिनों के लिये आनन्दपुर को छोड़ निर्मोह नामक स्थान में चले गए। राजाओं ने यह समय युद्ध की तैयारियों में व्यय किया।

वैरी अधिक होय निज दुखी।
गऊ आदि सहुँ देवे मुसी॥

---

१. तिलक जंजू राखा प्रभू ताका।
कीनो बडो कलू महि साका॥ —दशम ग्रंथ, पृ० ५४

२. तपत तेल सिर डार कर तीरन छेद कराय।
सरब जगत के निरखते मारयो नीच बनाय।
त्रिया दई द्विज तवन को दुष्ट हन्यो इत आय।
गुर पूरन को जगत मैं रह्यो अधिक जस छाय। —पृ० ३८७)

जो तिह नह मानैं घर छत्री ।
और कौन मानैं विन अत्री ॥ —पृ० ३६१

ब्राह्मण पूज्य थे,[1] सेव्य थे और रक्षणीय थे किन्तु आलोचना से मुक्त न थे। उनके चरित्र का निरीक्षण होने लगा था । सुक्खासिंह ब्राह्मण को वन्द्य, प्रणम्य मानते हुए भी उसे परम्परागत अनुशासन की कसौटी पर कसना चाहते हैं। इसके लिये उन्होंने एक बहुत रोचक कथा दी है। दुर्गा-यज्ञ के समय बहुत से ब्राह्मण आनन्दपुर पहुँचे । उनमें कच्चा, पक्का, निरामिष, भोजन पाने वाले सभी प्रकार के ब्राह्मण थे । गुरु जी ने घोषणा की जो मास-मदिरा का भोजन करेंगे उन्हें पाँच अशरफी दक्षिणा मिलेगी, जो हलुआ-पूई खायेगा उसे एक टका दक्षिणा मिलेगी । निरामिषाहारियों की संख्या घटने लगी :

यो भये गरक लोभादि मद्ध ।
इक नाम मात्र रहिगे जु सुद्ध ॥ —पृ० १७४

इन पाखण्डी ब्राह्मणों का निरादर करते हुए भी गुरु को सकोच नहीं हुआ :

मुखारविन्द श्री यों उचार ।
यह है न विप्प लूचे गवार ॥
इन करन हुती आछी सजाय ।
पर दूर देहु इन को उठाय ॥ —पृ० १७४

तीर्थ, ब्राह्मण पूजा, वेद पुराण पाठ, उपवीत आदि के अतिरिक्त ब्राह्मण धर्म की अनेक अन्य विशिष्टतायें भी गुरु विलास में पाई जाती हैं। गुरु गोविन्दसिंह ने अपने पूर्व जन्म की कथा विचित्र नाटक में कही है। उन्होंने पूर्वजन्म में हेमकुण्ट पर्वत पर बैठकर महाकाल की भक्ति की थी। यहीं से भगवान् महाकाल ने उन्हें म्लेच्छ-मर्दन के लिये भारत भूमि पर भेजा था । सुक्खासिंह ने हेमकुण्ट पर्वत का वर्णन अपेक्षाकृत विस्तार से किया है। हेमकुण्ट पर्वत पर हठयोग[2] और अग्नि-होत्र दोनों

---

1. गुरु गोविन्दसिंह की माता के साथ तो ब्राह्मण देवता छाया के समान संलग्न प्रतीत होता है। गुरु गोविन्दसिंह द्वारा बचपन में एक पठान कन्या को घायल करने पर द्विज देवता ही माता की उलझन सुलझाते हैं। गुरु गोविन्दसिंह के घोड़े से गिर जाने पर ब्राह्मण देवता पूजा पाने के लिये पास ही दिखाई देते हैं। ब्राह्मणों पर इस आस्था का परिणाम बहुत अच्छा नहीं निकला। आनन्दपुर को छोड़ते समय भी माताजी के साथ ब्राह्मण देवता थे। इन्हीं विप्रवर ने माता और उसके दो पोतों को लोभवश मुसलमान शासकों के सुपुर्द कर दिया था।

2. ध्यान अखण्ड आप मधि धार्‌यो । नत्र अह जीन दमम वर तार्‌यो ।
अनहद घोष सुन्न मठ लीना । परम जोति आतम मधि चीना ।
—पृ० ४१

साथ-साथ निर्द्वन्द्व रूप से चल रहे हैं। इस स्थान पर दैत्य पिशाच का भय नहीं है।[1] वहाँ निरकार कृष्ण-वपु मे दिखाई देता है।[2]

गुरु विलास ब्राह्मण विश्वासों, कर्मकाण्ड आदि का केवल उल्लेख ही नही करता; उन्हें अपनाता भी है। स्वयं सिक्ख कर्मकाण्ड उनसे प्रभावित होते हैं। यहाँ एक उदाहरण अनुपयुक्त न होगा। गुरु गोविन्दसिंह पटना से प्रस्थान किया चाहते हैं। पटने के श्रद्धालु (सगत) उनसे उनका 'पालना' माँग लेते हैं। बाद मे धूप, दीप, नैवेद्य द्वारा यही पालना पूजा का विषय बन जाता है।[3] संक्षेप मे सुक्खासिंह ब्राह्मण प्रभाव को ग्रहण करने मे उदार हैं। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि सुक्खा-सिंह स्वय आनन्दपुर के ग्रथी थे। सम्भव है, ये प्रभाव सिक्ख जनसाधारण द्वारा स्वीकृत हो चुके हो और सिक्ख धर्मशालाओ और गुरुधामो मे ऐसे कर्म क्रिया रूप मे प्रचलित हो रहे हो।

गुरु विलास जहाँ हिन्दू धर्म के प्रति उदार है, वहाँ उसी अनुपात से मुसल-मानो के प्रति अनुदार भी। इस्लाम धर्म पर आक्षेप करना उसने उचित नही समझा। केवल एक स्थान पर बचित्र नाटक का अनुसरण करते हुए 'सुन्नत' रीति पर खेद प्रकट किया है।[4] अन्यथा उन्होने इस धर्म के अनुयायियों को ही भर्त्सना का विषय बनाया है। सुक्खासिंह के हिन्दुत्व-प्रेम का दूसरा छोर इस्लाम-निन्दा नही, म्लेच्छ-निन्दा है।

सिक्ख गुरुओ और मुस्लिम शासन मे परस्पर वैमनस्य का बीजारोपण तो गुरु अर्जुन के समय से ही हो गया था। गुरु अर्जुन के पश्चात् गुरु हरिगोविन्द को मुगल बन्दीगृह मे कई वर्ष रहना पडा। गुरु तेग बहादुर को भी मुगलो की धार्मिक असह-हिष्णुता के लिये ही बलिदान देना पडा। सुक्खासिंह ने इस वैमनस्य की ओर भी थोडा सकेत किया है। आठवें गुरु बालकपन मे ही मुगल सम्राट् का निमन्त्रण स्वीकार

---

१. दैत पैशाच का खेद तिह है नही, इच्छ सु मुनी मन नाम भाखे।
होम घृत धूम सो जुरे मुन देखियत घोप बेदान धुन गनत काखे॥
—पृ० ४४

२ शांति सतोप स्यों जुरे मुनि नायक किमब वपु निरखिये निरकारी।
—पृ० ४४

३. सीस निवाय सुभाखत सगत ए बतियाँ प्रभ जू सुनि लीजै।
बासी किधौ तुमरी पटणापुर जा उपमा अमरापुर दीजै।
ता पुर को हम सगत पु गव मागत है करुना अब कीजै।
चित्र पवित्र बचित्र सु सुन्दर दै पलना जसु अमृत पीजै।
यौ संगत बर बचन उचारे। करुणा सिन्ध कान निज धारे।
अधिक पंघूड़ा सुन्दर जोई। ति को दीन दयानिधि सोई।
लै तिन हरिमंदर महि धरा। धूप दीप नैबेदी करा।
राजत आज लगे तिह ठौरा। पूजत ऊच नीच सिरमौरा॥
—पृ० ५७

४. कर्‌यो माह दीनं। भयो मत्ति हीनं।
कटे लिग डारी। कुमत्तं बिथारी।
—पृ० ४५

नहीं करते । वे म्लेच्छ-दर्शन भी गर्हणीय समझते हैं ।[1] सुखासिंह ने इस वैमनस्य के व्यक्तिगत पक्ष पर अधिक बल नहीं दिया । वस्तुतः, उनके बीच वैमनस्य व्यक्तिगत कारणों से न था । सिक्ख-गुरु और मुगल-शासन दो संस्कृतियों के प्रचारक के रूप मे उलझ रहे थे । गुरु अर्जुन के बलिदान पर जहाँगीर का संस्मरण इसी मत की पुष्टि करता है । यही कारण है कि इस ऐतिहासिक प्रबन्धकार ने मुगल शासन के प्रति असहिष्णु दृष्टिकोण को हिन्दुत्व-प्रेम के पूरक के रूप में ही अपनाया है ।

गुरु गोविन्दसिंह की अवतरण-कथा का आरम्भ भी म्लेच्छो के अत्याचार से होता है । म्लेच्छों की अनीति से ग्रस्त धरती महाकाल के दरबार मे उपस्थित होती है । क्षात्र धर्म, यज्ञ, पुण्य, दान के लोप एवं ईद, बकरीद, नमाज और गोवध के प्रसार की कथा उन्हें सुनाती है ।[2] तब महाकाल दशम गुरु को मर्त्यलोक जाने का आदेश देते हैं ।[3] उनके अवतरण पर साधु, योगी, वीर, योद्धा और भारत भूमि उन्हें अपनी-अपनी भावना के अनुरूप अवतार, योगीश्वर, वर वीर, क्षत्रिय और कर-भूषण के रूप में देखते हैं और तुर्क 'अरि-कुल-दुखन' के रूप मे ।[4] तत्पश्चात् गुरु तेग बहादुर की बलिदान-कथा मुस्लिम शासन के अत्याचार की कथा से भिन्न नही है । कश्मीरी संगति भी धर्म-परिवर्तन, उपवीत-कर्त्तन तथा तीर्थों की भ्रष्टि की कथा सुनाते हैं ।[5] गुरु तेग बहादुर क्षात्र धर्म के लोप पर दुखी हैं ।

गुरु गोविन्दसिंह द्वारा गुरु-पद ग्रहण करने से पूर्व उनकी कार्य-विधि और कार्य-दिशा निश्चित हो चुकी थी । गुरु गद्दी समारोह पर एकत्रित सभी कवि जन निरपवाद रूप से चवगत्ता (मुगल शासक) से होने वाली 'रार' की ओर संकेत करते

---

१. संगति कही गरीब निवाजा । बादिसाह किछु पूछन काजा ।
तुम कह वो इह ठोर बुलावा । तुम ता कह नहीं दरस दिखावा ।
श्रीमुख बचन कहे इह भाय । हम नहीं मस्तक लगना जाय ।
ना मलेच्छ को दर्शन देना । आप जाय ताको नहीं लेना ।
—पृ० ८

२. नीत अनीत निहार मलेछन दुखत भई धरनी सब सारी ।
लोप भये सब छत्रन के गुण जग्ग सु पुन्न जु दान अपारी ।
ईद चली बकरीद निवाज सु गोबध होत सबै घर भारी ।
कौन कटै इह दूख सबै घर दीन दयाल बिना असधारी । —पृ० ४१

३. यौ निज रिदै बिचार कै दीन बन्ध करतार ।
दसमो श्री गुर बर पठयो मात लोक निरधार । —पृ० ४२

४. साधु कहत साध अवतारी । जोगी कहत जुगीसर भारी ।
बीरन लख्यो वीर वर अन्नी । जो धन जोध रूप भर छत्री ।
भारत खण्ड लख्यो कर भूषण । तुरकन लखा अरह कुल दूखन । —पृ० ५०

५. तुरकन अधिक अनीत उठाई । हिन्दू किय सब तुरक बनाई ।
एक दिवस ओढु ठौर मंझारा । तग्ग सवा मन प्रगट उतारा ।
... ...
तुरकन मार दुखत भई लोई । छत्री जगत न दिखियत कोई ।
जो निज अपनो सीस चढावै । निहरत धरनी भार हटावै । —पृ० ८९

हैं।[1] गुरु गोविन्द दुर्गा से म्लेच्छ-मर्दन का वर माँगते हैं;[2] पहाडी राजा भी औरंगजेब को उकसाने के लिए इसी वर-प्राप्ति की कथा उसे सुनाते हैं।[3] इसके पश्चात् युद्ध वर्णन है। सुक्खासिंह की सहानुभूति—महानुभूति ही नहीं श्रद्धा भी—स्पष्टतः गुरु पक्ष में है, अतः यदाकदा मुस्लिम विरोधी शब्दों का प्रयोग वह करता ही है। वह इस युद्ध को 'दीन मजब' का युद्ध (धर्म-युद्ध) कहता है :

इह सम बात अवर नह काई।
दीन मजब का युद्ध सो भाई।

अलंकार—गुरु विलास अलंकृत भाषा में लिखी हुई रचना नहीं। उसके आधार ग्रंथों में बहुत सुन्दर अलंकारों के उदाहरण मिलते हैं जिनकी ओर हम यथा-स्थान निर्देश कर चुके हैं। दशम ग्रंथ का अध्ययन उन्होंने किया है, ऐसा संकेत उन्होंने कई स्थानों पर किया है। किन्तु, दशम ग्रंथ के अलंकार-विधान से आप विशेष लाभान्वित नहीं हुए।

गुरु विलास में अलंकारों का प्रयोग अति विरल है। छः सौ पृष्ठों से ऊपर मुद्रित संस्करण में अलंकारों की संख्या एक सौ से अधिक नहीं। जो अलंकार मिलते हैं, उनके विषय में तीन बातें विशेष रूप से ज्ञातव्य हैं :

१. सुक्खासिंह ने केवल सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग किया है, तत्रापि उपमा अलंकार का। कहीं-कहीं रूपक, उत्प्रेक्षा के भी दर्शन होते हैं। एक स्थान पर संदेह का भी प्रयोग हुआ है। कुल मिला कर उनका अलंकार-विधान बहुत सीमित-से क्षेत्र का परिचय देता है।

२. इस सीमित-से क्षेत्र में, उन्होंने उपमान-चयन में मौलिकता का विशेष परिचय नहीं दिया। उनके उपमानों के अध्ययन से उनकी रुचि-विशेष, अथवा उनके निजी अध्ययन एवं निरीक्षण के वैशिष्ट्य का पता नहीं मिलता। अधिकांश उपमान चिर-परिचित हैं।

३. प्रत्येक अलंकार सामयिक आवश्यकता की पूर्ति करता है, उनकी अलंकार-सृष्टि किसी एक सामूहिक प्रभाव का सृजन करती प्रतीत नहीं होती।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि वे अलंकार-सृजन में विशेष रुचि नहीं रखते। इस सम्बन्ध में वे न अपने आधार-ग्रंथों से लाभान्वित हुए हैं न तत्कालीन व्यापक अलंकार-प्रवृत्ति से प्रभावित।

---

१. 'रार करै तुम सो चवगत्ता' इस समस्या की पूर्ति ५ सवैयों में हुई, उनमें से एक सवैया इस प्रकार है :

संत अनंत कवी जन पंडित गावत है जिह को कर मत्ता।
किन्नर जच्छ भुजंग सुरोगण बाछत है जिह की मित गत्ता।
ता प्रभ पूरन राजर जोग को रीझ धरयो तुमरे सिर छत्ता।
नीच मलेच्छ गवार कहाँ इह रार करै तुम सो चवगत्ता। —पृ० ९८

२. निस दिन विजय होय जग मेरी। असुर मलेछ मारि कर ढेरी। —पृ० ११३

३. खड्गकेत अरु कालका मेरे भई सहाय।
मैं अब सभ मलेछ की देहों अबै उठाय। —पृ० २६८

उनकी रचना से कुछ अलंकारों के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

१. तिन को भई चिन्त इम आई।
थोरे ज्यों मछली जल माहि। —पृ० ५१७

२. जिह विध नाव नदी की धारा।
वही जात नहि को रखवारा।
अनिक ठवर इह भांति लुटानो।
राज विराजी सभ जग जानी। —पृ० ५१७

३. कहू तीर तेगं परी है कटारी।
चुभें वीर सोभैं जिमं मच्छ जारी। —पृ० ४२८

४. धरा पर्यो सभन को आई।
सागर ज्यों दल चहुँ दिस छाई। —पृ० ४२६

५. कीट बूँद आहन अनुमानो।
खल दल उमड़े अधिक प्रमानो।
गगन उडग वन अखिल जु पत्त (पत्र) —पृ० ४२५

६. (शत्रु) नील घटा उमड़े जनु आई। —पृ० ४२३

७. थाम्ब रख्यो इम दूतन को दल,
ज्यो सरिता तट सेत बँधानी। —पृ० ४२०

८. जिह ओर बली बरु धावत है।
दल सत्रन पत्र उडावत है। —पृ० ४२१

९. काल जमन तैं ज्यों घन स्याम पै।
त्यों इन नीचन कीन अगत्ते। —पृ० ३६१

१०. प्रभ को जस लखि अनल समाना।
जह तह जरत राव अरु राना। —पृ० ३८८

११. रैन दिना वढ़तो जिम एकम को
वर चन्द • निहारी। —पृ० ३८८

१२. हीरा जैसे मलिन पट माही।
त्यों राजत रानी वह ठाही। —पृ० ८

१३. सफरी जल सम बिरही सारे।
पलक न जीवत करत किनारे। —पृ० ५९

१४. आज समान न सूख किधौ,
हम लोक चतुर दस बीच सुनाही।
राजिव वंस ज्यों हंसु निहार कै,
होत खुसी मन मै बिगसाही। —पृ० ७६

१५. (अश्व) धीमे धीमे चलत है जनक सिंध को नीर॥
—पृ० ६१

१६. स्त्री मुख घन ज्यो गरज उचारो। —पृ० १३६
१७. राजन की उमडी उत सैना।
पावस जलद धुरत उत गैना। —पृ० १४५
१८. दल दूतन के इह भाति हता,
जिम मारुत मेघ करै सु कता। —पृ० १५५

छन्द—सुक्खासिंह ने छन्द-प्रबन्ध मे दशम ग्रथ का ही अनुसरण किया है। उन्होने किसी भी ऐसे छन्द का प्रयोग नही किया जो दशम ग्रथ मे प्रयुक्त न हो।

उनके मुख्य छन्द दोहा और चौपाई हैं। पजाब मे चौपई अभिधान चौपाई और चौपई दोनो के लिये प्रयोग मे आता रहा है। कई बार सोलह मात्रा के ऐसे छन्दों को भी चौपई कहा गया जो चौपाई की सभी शर्तों को पूरा नही करते। यह बात सुक्खासिंह और उनके पूर्ववर्ती कवियो (गुरु गोविन्दसिंह, अणीराय, सेनापति) के विषय मे समान रूप से सत्य है।

इन दो छन्दो के अतिरिक्त जिन और छन्दो का प्रयोग सुक्खासिंह द्वारा हुआ है, वे हैं, सवैया, कवित्त, अडिल, पाधडी (पद्धटिका), भूलना, भुजगप्रयात, रुग्राल, रसावल, सक नारी, मधु भार, बिजै, नाराच, तोटक, सोरठा, तिलक। सक्षेप मे उन्होने मात्रिक छन्दो का प्रयोग किया है और वर्ण-वृत्तो मे, कवित्त आदि दीर्घ छन्दो का प्रयोग किया है तो मधुभार, नाराच आदि लघु छन्दो का भी। छन्द-परिवर्तन में उन्होने पर्याप्त सयम से काम लिया है। गुरु विलास मे छन्द वैविध्य के कारण कथा मे एकस्वरता नही आने पाई, किन्तु छन्द परिवर्तन इतनी द्रुत गति से भी नही हुआ कि सामूहिक प्रभाव का सृजन ही न हो सके।

सुक्खासिंह का छन्द-प्रबन्ध दोष-रहित रहने पर भी निपुण नही। सफल छन्द निर्वाह के लिए मात्राओ एव वर्णों की नियमित सख्या को लय मे बाँध देना ही पर्याप्त नही। इसके लिये अपेक्षित है भाषा-विषयक अनिवार्यता। प्रत्येक शब्द अपने स्थान पर अनिवार्य-सा लगे तथा पाद-पूर्ति के लिये महत्त्वहीन वर्णों अथवा शब्दो की भरती न करनी पडे। सुक्खासिंह का हिन्दी भाषा पर अधिकार विश्वसनीय होने पर भी इतना पूर्ण नही कि उन्हें छन्द निर्वाह के लिये महत्त्वहीन वर्णों का प्रयोग न करना पडे। 'सु', 'आन' आदि का ऐसा ही प्रयोग उनके छन्द-नैपुण्य को सदेहास्पद बना देता है।

गुरु नानक से संबन्धित ऐतिहासिक प्रबंध

१. महिमा प्रकाश (लेखक सरूप चन्द भल्ला)
२. जन्म साखी नानक पातशाह की (लेखक संत दास छिब्बर)
३. नानक विजय (लेखक संत रेण)

महिमा प्रकाश

प्राप्य सामग्री—महिमा प्रकाश पर किसी प्रकार की कोई सामग्री किसी हिन्दी अथवा गुरुमुखी ग्रन्थ में प्राप्त नहीं। केवल गुरु-शब्द-रत्नाकर में इस पर सात पंक्ति की टिप्पणी विद्यमान है।

महिमा प्रकाश—महिमा प्रकाश दश-गुरुओं का जीवन-चरित उपस्थित करने का प्रथम प्रयास है। इसका बहुत बड़ा भाग पद्य में है, शेष थोड़ा-सा भाग गद्य में भी है।

इसके लेखक हैं श्री सरूप चन्द भल्ला। उनका सम्बन्ध तृतीय गुरु अमरदासजी के पुत्र श्री मोहरीजी के परिवार से है।[1] सरूपचन्दजी के अनुसार इस ग्रंथ की रचना सन् १७७६ ई० (संवत् १८३३) में हुई।[2] इस ग्रंथ की बहुत-सी हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं। एक प्रति महाराजा रणजीतसिंह के दरबारी कवि बुधसिंह लाहौरी द्वारा लिखित है।[3] इसका लिपिकाल संवत् १८९७ है। इन पंक्तियों के लेखक ने इसी प्रति के माध्यम से इस ग्रन्थ का अध्ययन किया है।

विषय-वस्तु—महिमा प्रकाश में दस सिक्ख गुरुओं एवं बाबा बंदा के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का संक्षिप्त वर्णन हुआ है। मुख्यतः गुरु नानक की साखियाँ (घटनायें) सरल पद्य में कही गई हैं। बीच-बीच मे गुरु नानक की वाणी की व्याख्या सरल गद्य में की गई है। संक्षेप मे, इसका महत्त्व गुरु नानक सम्बन्धी प्रथम पद्य बद्ध कथा के रूप में ही है।

---

१. तब स्री गुरु अमरदास कुलचारि।
मोहरी सुत सनमुख परवारि।
दसौ सरूप की महिमा कीना।
सरूप चन्द गुर चरन अधीना। —पाण्डुलिपि (११५१), पृ० ७२

२. दस अस्ट सहस संमत विक्रम,
अवर अधिक तेतीस।
सरूप दास सतिगुरु करी,
महिमा प्रकास बखसीस। —गुरु शब्द रत्नाकर, पृ० २८०३

३. ७ ९ ८ १
बार नाथ घस सोम पुन संवत् विक्रम राय।
दसमी विजे प्रसिद्ध दिन भौमवार सुख दाय।
दसो महल की जो कथा साखी कही बखान।
लेखक ससज भुगंद है भूल चूक बखसान। —पाण्डुलिपि (११५१), पृ० ७७८।

आदर्श ग्रन्थ—लेखक के सामने किसी पूर्वकालीन प्रबन्ध लेखक का आदर्श नही था। इनसे पहले जिन चरित-प्रबन्धो की रचना पजाब मे हुई, वे गुरु गोविन्दसिह के जीवन से सम्बन्धित थे। स्पष्ट है कि वीर-नायक गुरु गोविन्दसिह की चरित-कथा शांति-पुंज गुरु नानक देव के चरित-प्रबन्ध के लिए उचित आदर्श प्रस्तुत नही कर सकती थी। अत सरूपचन्द अपने पूर्वकालीन चरित प्रबन्धो—बचित्र नाटक (अपनी कथा), एव गुर शोभा—से चरित्र आदर्श अथवा रचना-शैली से विशेष लाभ नही उठा सके। केवल युद्ध-प्रसगो मे कही-कही बचित्र नाटक की प्रतिध्वनि सुनाई देती है।

आधार ग्रन्थ—महिमा प्रकाश के सामने प्राचीन जन्म-साखी एवं भाई बाले की जन्म-साखी अवश्य थी। ये दोनो ही गद्य-रचनायें हैं, और इन मे गुरु नानक देवजी के जीवन की घटनायें—'साखियाँ'—सगृहीत हैं। ये 'साखियाँ' सर्वथा स्वतत्र हैं और *किसी प्रबध-नियम द्वारा शासित नही। श्री सरूप चन्दजी ने जन्म-साखियों के* ऋण को स्वीकार किया है। इनके अतिरिक्त गुरु नानक देव के जीवन सम्बन्धी अनेक कथायें मौखिक रूप मे भी प्रचलित थी। सरूप चन्दजी मौखिक स्रोत से भी लाभान्वित हुए हैं। गुरुकुल के सदस्य होने के कारण उन्हें गुरुजी के जीवन से सम्बन्धित अनेक कथाओ को जानने की विशेष सुविधा थी।[1]

दस गुरुओ की महिमा का गायन श्रद्धालु सिक्खो के लाभार्थ ही किया गया प्रतीत होता है। ग्रथ-समाप्ति पर लेखक कहते हैं : इह पोथी गुरु बाबे की महिमा की है। जनम साखी आदि ते ले के जो दसो महला किसे विलास हुए हैं सो इस ऊपर लिखे हैं। इसके पडने (पढने) से सिक्ख को गुरु की महिमा मलूम होवेगी।[2]

लेखक ने न तो साखियो का विस्तृत वर्णन किया है और न ही उनकी भावगत मार्मिकता को प्रकट करने का यत्न किया है। उन्हें गुरुजी की जीवन-कथा की अपेक्षा गुरु-वाणी से अधिक प्रीति है। कौन-सी वाणी किस विशेष परिस्थिति मे उच्चारित हुई, यही दिखाने के उद्देश्य से उसने गुरुजी के जीवन से सम्बन्धित घटनाओ का वर्णन किया है। अधिकतर ऐसी घटनाओं का ही उल्लेख हुआ है जो गुरु वाणी के किसी खण्ड अथवा किसी शब्द (पद) पर प्रकाश डालती हैं। इन शब्दो की व्याख्या उन्होने सरल खडी बोली गद्य मे की है।

साराश यह है कि इस ग्रथ के पारायण से न तो हमें गुरुजी के जीवन के किसी नये तथ्य का पता चलता है, न ही किसी घटना का मार्मिक चित्रण हमारे

---

१. जनम साखी ते आद जो साखी।
गुर मुख सिक्खन जो मुख भाखी।
गुरकुल पुरखन जो मुख कही।
तामो रतन चुनि हिरदे गही।
गुर आग्या पाय तब भाखा कीनी।
लिखी सक्षेप रतन जो चीनी। —रेफ़ेंस लाइब्रेरी; ह० लि० ११५१; प० ७२

२. रेफ़ेंस लाइब्रेरी, ह० लि० न० ११५१; प० ७७५।

कवि का अभीष्ट है। गुरु-वाणी की व्याख्या एवं उच्चारण-परिस्थितियों का परिचय देना ही कवि का अभिप्रेत है।

चरित एवं चरित्र—सरूप चन्द ने गुरु नानक को अवतार-पुरुष के रूप में ही चित्रित किया है। पौराणिक भावना से वे पूर्णतः प्रभावित हैं। कथा आरम्भ नारद और ब्रह्मा के संवाद से होता है :

> एक समै स्री नारद ब्रह्मा पै गए।
> संत सभा सुभ निरख चित्त रिख थिर थए।
> प्रभ भरत खंड कलधोर जीव कैसे तरें।[१]

ब्रह्मा नारद को आश्वस्त करते हैं :

> अब या मैं संसा नहीं हरि धरे संत वपु जाइ।[२]

उनके अवतरण के समय ससार भर में जय-ध्वनि होती है और त्रिलोक में मंगल गाया जाता है।[३] नौ नाथ, छः जती, बावन पीर, किन्नर, जच्छ, गंधर्व द्वार पर आ कर गीत गाते हैं, अप्सरायें और देव कन्याएँ नृत्य करती हैं। सब उन्हें जगदुद्धार की आशीष देते हैं। बालक-नानक अभी सोलह दिन के है कि गोरखजी आगन में आते हैं। शिशु-नानक उससे वाद-विवाद करते हैं :

> स्री गोरख आंगन मो आये।
> जागे अलख मुख सबदि सुनाये।
> दिया उत्र दयाल ग्यान रस पागे।
> अलख कवी सोवैं नहीं जागे।[४]

गोरखनाथ ने उन्हें अवतार-रूप में पहचाना। तत्पश्चात् उनके बाल-जीवन की घटनाओं का उल्लेख है। हर घटना में लेखक की दृष्टि उनके अवतारत्व पर रही है। वे उसे अवतार, पीर, फकीर, वली, सच्चिदानन्द आदि विशेषणों से विभूषित करते हैं।[५] विवाह-वर्णन मे वे दूल्हा-दुल्हन को कृष्ण, रुक्मिणी एवं राम-सीता के

---

१. रेफ़ेंस लाइब्रेरी, इ० लि० पाण्डुलिपि (११५१), प० ७०।
२. वही पाण्डुलिपि (११५१), प० ७०।
३. मुन जन रिखीसु आए।
   मंगल सु चार गाए।
   सब सिद्ध जोग रूपं जै जै सबद उचारा। —वही; प० ७१
४. वही, पृ० ७४।
५. (क) सब लोक कहै इह बड़ा कोई **अवतार** है।
   मस्तक जगमग जोत कुल को निस्तार है। —वही, प० ८०।
   (ख) पुनि कालू सो कहा पुन राइ तुहि **पीर** है।
   दिन दिन प्रगटे कला इह **वली फकीर** है। —वही, प० ८१।
   (ग) **सतचिदानन्द** घन दिन दिन करत प्रकास।
   बावन चंदन होता जह प्रगटत बास सुवास। —वही, प० ६५।

रूप में देखते हैं।[1] इसके पश्चात् गुरुजी के जीवन की अनेक घटनाओं का क्रम आरम्भ होता है और गुरुदेव जगदुद्धार के उद्देश्य से देश, परदेश में विचरते हुए दृष्टिगत होते हैं।

सरूपचन्दजी ने चरित-वर्णन एव चरित्र-चित्रण मे पुरानी परिपाटी का ही अनुसरण किया है। कथाओ के ब्योरे अथवा उनकी व्याख्या मे कोई मौलिक अभिवृद्धि उन्होने नही की। कथा मे उपदेशात्मक तत्त्व एव चरित्र मे अवतारत्व की एक-स्वर प्रधानता है।

शैली—ऊपर कहा जा चुका है कि उनका आधार-ग्रंथ जन्म-साखी है। उन्होंने न केवल विषय-वस्तु के लिये बल्कि शैली के लिये भी उस ग्रंथ को ही आदर्श माना है। परिणामत महिमा-प्रकाश भी कथा-सग्रह की कोटि मे ही आता है। गुरु-जीवन की प्रत्येक कथा कितनी स्वतत्र एवं स्वत निरपेक्ष है इसका कुछ अनुमान उनके कथारम्भ एव कथा समाप्ति से ही लगाया जा सकता है। प्रत्येक का आरम्भ इस प्रकार होता है *'श्री वाहिगुरु सुख करो उचार। होइ दयाल कर लेइ उधार। आगे साखी बाबे* जी की परम उदासी की निरूपन होयगी'। और, प्रत्येक कथा 'साखी पूरन होई' इन शब्दो से समाप्त होती है।

साराश यह है कि प्रबन्ध ग्रन्थ के रूप मे इस रचना का विशेष महत्त्व नहीं।

छन्द एव अलकार की दृष्टि से भी यह रचना किसी उल्लेखनीय नैपुण्य का परिचय नही देती। अलकारो का प्रयोग विरलातिविरल है और छन्द-निर्वाह अति सदोष है। यो तो कवि ने दोहा, सोरठा, अडिल्ल, चौपई, मकरा, तोमर, त्रिभगी, बैत, रसावल आदि छन्दो के प्रयोग से रचना को छन्द-वविध्य प्रदान किया है, किन्तु छन्दों की मात्राओ को अपने सुविधानुसार बढ़ाया-घटाया है। उदाहरणार्थ उनका सत्ताईस मात्राओ का दोहा देखिये—

मरदाने को पूछा प्रभू, तुहि लागी भूख प्यास	=२७ मात्राएँ
तू अन्तरजामी है प्रभू कया मैं कहू अरदास।[2]	=२७ मात्रायें

एक ही छन्द की दो पक्तियो मे मात्राओ की असमानता का एक उदाहरण निम्नलिखित है :

ऐसी उजाड कबहू नही देखा।	=१६ मात्रायें
ईहा नही जल अन्न न आदम भेखा॥	=२१ मात्रायें

इस प्रकार के परिवर्तन मे किसी नियम का परिचय नही मिलता। कुल मिला कर सरूपचन्द जी का काव्य-प्रयास सौंदर्यविहीन एव कई स्थानों पर अनिपुण प्रतीत होता है।

१. दुलदा दुलद्दन अनूप। सग किसन चकमत रूप
—रेफ्रेंस लाइब्रेरी, ह० लि० न० ११५१, पृ० ८२
भया कालू घर आनन्द धाम। जिस दसरथ गृह सोभित सिया राम —वही, पृ० ८१

२ वही, पृ० १०२

उनकी भाषा सरल खड़ी बोली है। इनसे पूर्व चरित काव्य व्रजभाषा में लिखे गये थे। पौराणिक प्रबन्धों के लिये तो समान रूप से ब्रजभाषा का ही प्रयोग हो रहा था। प्रेम-प्रबन्धों में खड़ी बोली को भी स्थान प्राप्त था, किन्तु उनकी भाषा में व्रज-प्रयोगों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक थी। सरूपचन्द व्रज प्रयोगों का सर्वथा त्याग तो नहीं कर सके किन्तु उनकी रचना में खड़ी बोली की मात्रा पूर्ववर्ती प्रबन्धों की अपेक्षा अधिक है। एक उदाहरण लीजिये :

कर रीत दान दीना।
पुन थाल भजन कीना।
सिर पाग वस्त्र धारा भूखन सभी पहराया।
करतार मुकुट धारा।
तिलक उनमनी सुधारा।
जस राम नाम कुंकम घसि राम रंगि बनाया।
छिटकाय सरब वस्त्र।
कर ज्ञान खडग सस्त्र।
सेहरा सहंस्र नामं प्रभ मुकुट सों लगाया॥

दीना, कीना, छिटकाय, सों आदि संज्ञा रूप एवं योजक व्रज की विशेषता है और पहराया, बनाया, लगाया, आदि संज्ञा रूप खड़ी बोली की। उकारान्त शब्दों का अभाव भी व्रजभाषा की घटती हुई मात्रा की ओर ही सकेत करता है।

संक्षेप में, इतिहास अथवा काव्य की दृष्टि से इस ग्रंथ का विशेष महत्त्व नहा। इस पुस्तक का ऐतिहासिक महत्त्व भी केवल इतना ही है कि यह गुरु नानक की जीवनकथा को पद्यबद्ध रूप में प्रस्तुत करने का प्रथम प्रयास है।

जन्म-साखी नानक शाह की

प्राप्य सामग्री :—इस जन्म-साखी पर विशुद्ध अनुसन्धानात्मक अथवा विवेचनात्मक, किसी प्रकार की सामग्री प्राप्त नहीं। गुरु शब्द रत्नाकर मे भी इस पर टिप्पणी विद्यमान नहीं।

लेखक :—'जन्म-साखी सतिगुर नानक शाह जी की' की रचना भाई संतदास छिब्बर द्वारा हुई है। गुरु हरि राय के समय से छिब्बर-परिवार का सम्बन्ध गुरु-गृह की दीवानी (वजीरी) से रहा है। दीवान दगाहा मल आठवें गुरु जी के दीवान थे और गुरु तेग बहादुर के नवम गुरु होने की घोषणा उन्होंने ही की थी। भाई संतदास का सम्बन्ध इसी छिब्बर-परिवार से है।[1]

---

१. भाई रणधीरसिंह द्वारा लिखित सिक्ख रेफ्रेंस लाइब्रेरी की पाण्डुलिपि (अंक १९७३) पर टिप्पणी।

भाई संतदास ने इस ग्रंथ की रचना काश्मीर प्रदेश में की। हो सकता है उनका परिवार उन दिनों काश्मीर में ही बसा हो। भाई संतदास बड़ी उदार प्रवृत्ति के व्यक्ति प्रतीत होते हैं। सिक्ख गुरुओं के प्रति अति श्रद्धालु होते हुए भी उन्होंने भगवती दुर्गा का स्मरण समान श्रद्धा से किया है।[1]

रचना एवं रचना-काल :—भाई संतदास छिब्बर की केवल एक रचना 'जन्म-साखी सतिगुरु नानक शाह जी की' प्राप्त हुई है। इसकी दो प्रतियाँ सिक्ख रेफ़ेंस सोसाइटी लाइब्रेरी में विद्यमान हैं। इनके एक्सैशन नम्बर ६१।१६७३ तथा २७८।५०७५ हैं।

ग्रन्थ समाप्ति पर रचना-काल का निर्देश है जिससे पता चलता है कि इस ग्रंथ की रचना संवत् १८३४ (सन् १७७७ ई०) में हुई '—

> चेत सुदिन थित सप्तमी पुसत्र ससवार।
> सन्त दास छिब्बर लिखी पोथी सुधा सवार।
> सम्वत अठदस सै चउतीस।
> साका लिखते बिक्रमजीत।[2]

आधार ग्रन्थ '—छिब्बर जी से पहले गुरु नानक की जन्म-साखियाँ गद्य में लिखी जा चुकी थीं। छिब्बरजी इन में से एक (भाई बाले द्वारा रचित) जन्म साखी से प्रभावित हैं। वही इस कृति का आधार-ग्रंथ है। उसी जन्म-साखी का अनुसरण करते हुए वे सारी कथा 'बाले' के मुख से कहलाते हैं।[3] उक्त जन्म-साखी के समान इस कृति में भी गुरु अगद को कथा का श्रोता माना गया है।

छिब्बर जी से लगभग एक वर्ष पूर्व श्री सरूपदास भल्ला द्वारा महिमा प्रकाश (रचना काल संवत् १८३३ वि०) की रचना हो चुकी थी। छिब्बर जी इस रचना से प्रभावित प्रतीत नहीं होते।

कथा —भाई सन्तदास छिब्बर द्वारा लिखित जन्म-साखी गुरु नानक के जीवन-चरित को पद्यबद्ध रूप में प्रस्तुत करने का दूसरा प्रयास है। इससे पहले

---

१. कासमीर सुभदेस सुहायो।
कसप रिखीसर के मन भायो।
तहा सुदेवी का असथान।
अस्ट दस भुजा साखा जानी। —पाण्डुलिपि (अंक १६७३), पृ० २२७

२. पाण्डुलिपि (अंक ६१।१६७३), पृ० २२७

३. बाला और अगद का वक्ता-श्रोता रूप में उल्लेख कई स्थानों पर हुआ है। केवल एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है :

> तीनों दैत निकट जब आए। अध भए कछु दस्ट न पाए।
> बाला गुर अंगद पै कहे। तिन दैतन हम निकट न पए।
>
> —पाण्डुलिपि (अंक ६१।१६७३), पृ० ११६

'महिमा प्रकाश' में नानक-कथा का गायन हो चुका था, किन्तु वह प्रयास दो दृष्टियों से असफल रहा। प्रथम, महिमा प्रकाश का बल जीवन-चरित पर न हो कर वाणी की व्याख्या पर है। द्वितीय, काव्य दृष्टि से महिमा प्रकाश अत्यन्त नैपुण्यहीन रचना है। संतदास द्वारा रचित जन्म-साखी कथा और काव्य की दृष्टि से गुरु नानक का प्रथम सफल जीवन-चरित है।

भाई सन्तदास छिब्बर के लिए आदर्श-ग्रन्थ भाई बाले की जन्म-साखी है। उन्होंने न तो कोई सर्वथा नवीन कथा ही हमें दी है और न किसी कथा की नवीन व्याख्या ही प्रस्तुत की है।

वे गुरु नानक के जीवन सम्बन्धी एक के पश्चात् दूसरी कथा कहते जाते हैं। इन कथाओं में परस्पर कार्य-कारण-सम्बन्ध नहीं। प्रत्येक घटना साधारणतः अपने आप में स्वतन्त्र, निरपेक्ष है। अधिकांश घटनाओं का क्रम-शृंखला में स्थान बदल दिया जाये तो किसी एक घटना अथवा सम्पूर्ण प्रबन्ध के प्रभाव में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। संक्षेप में, यह जन्म-साखी, अन्य जन्म-साखियों के समान, अनेक स्वतंत्र एवं विशृंखल घटनाओं का संग्रह है।

तो भी इन विशृंखल घटनाओं में प्रभाव की एकता है, इसका कारण है नायक का चरित्रगत स्वैर्य और लेखक की दृष्टिकोणगत सुव्यवस्था। किसी साखी में नायक का चरित्रगत वैशिष्ट्य बिगड़ने नहीं पाता। नायक कहीं चरित्र विरोधी अथवा उद्देश्य विरोधी प्रसंग में नहीं उलझता। प्रत्येक साखी का प्रभाव स्वतंत्र होता हुआ भी पूर्वार्जित प्रभाव को पुष्ट करता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि जन्म-साखी की कथागत एकता घटनाओं के तर्कसंगत क्रम पर अवलंबित न होकर उनकी प्रभावगत समानता पर अवलम्बित है।

चरित्र-चित्रण—इस जन्म-साखी में निरंकार गुरु नानक अवतार-रूप में चित्रित हुए हैं। इस तथ्य की सम्यक् विवेचना पौराणिकता शीर्षक के अधीन की गई है। चरित्र-चित्रण का प्रमुख साधन 'चमत्कार' और उससे प्राप्त प्रमुख रस अद्भुत है। चमत्कार के कारण ही गुरु नानक का पथ सदा बाधा-विहीन है। यात्राओं में पड़ने वाली विपदाओं पर विजय पाने के लिये उन्हें विशेष संघर्ष नहीं करना पड़ता। नभ में उड़ सकना,[1] जल पर थल के समान चल सकना,[2] अदृश्य हो जाना[3] आदि अलौकिक व्यापार उनके लिये साधारण एवं सुकर हैं। मानव, अमानव सभी उनके अवतार-रूप से परिचित हैं और उन्हें स्थान-स्थान पर श्रद्धांजलि अर्पित करते

१. गुरु नानक तन लीन उडारी। जा कैलास दीख सुखकारी। —जन्म-साखी, पृ० १५१
२. प्रभ जी जल ऊपरि चलि जाइ। मरदाने मन अचरजु आई। —जन्म-साखी, पृ० १०४
३. देव तीन अब हसटी परे। मरदाने के सुख मुक गए।
तीनो दैत निकट जब आए। अंध भए कछु दृस्ट न पाए।
—जन्म-साखी, पृ० ११६

हैं। उनके अलौकिक चरित्र को चित्रित करने वाला एक चित्र यहाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जाता है :

सगला दीप चलै गुर देव। सागर पत्थर मे नही भेव।
ज्यो सुध धरती परि चल जाए। पग न भिजै त्यो सतिगुर धाए।
जित चित होइत वैठे रहै। ध्यान खुलै आगे कोच लै।
इक दिन जलचर दरसन आए। गुर नानक के दरसन पाए।
एक-एक की देह अपार। इक ते इक को वडो विथार।
मकर नकर नाना भष व्याला। सौ जोजन तन परे विसाला।
ऐसे एक तिनो जो खाही। एकन के डरते पिडराही (?)।
गुरु विलोक टरत नही टारे। मन हर्षत सभ भए खुसाले।
तिन की ओट न देखिये वारी। मगन भए गुर रूप निहारी।
बहुत काल गुर दरसन कीना। प्रेम मयी चित चरनन दीना।
भूरत धर वारीस सुआए। प्रभ जी के चरनन लपटाए।
उस्तत करि फुनि सीस निवाए। चले धाम को कीरति गाए'[1]

गुरु नानक के अतिरिक्त अनेक ऐसे पात्र हैं जो मानवीय विशिष्टताओ का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन पात्रो मे मरदाने का चरित्र विशेष रूप से स्मरणीय है। मरदाना असाधारण निष्ठा और मत्री का प्रतीक भी है और साधारण क्षुधा पिपासा का भी। मानवीय शक्ति और दौर्बल्य उसमे भली भाँति चित्रित हैं। मरदाना के सदा-सर्वदा साथ रहने के कारण गुरु नानक के अलौकिक कार्य-कलाप के साथ लौकिकता का सम्बन्ध बना रहता है। लौकिक और अलौकिक, मानवीय और दैवी का समन्वय जन्म साखी के चरित्र-चित्रण की विलक्षण विशिष्टता है।

उद्देश्य और वातावरण

पौराणिकता—इस जन्म-साखी मे गुरु नानक अवतार पुरुष के रूप मे ही चित्रित हैं। यहाँ सतदास ने पुराण परम्परा का अनुसरण करते हुए भगवान को क्षीर-सागर मे स्थित नही दिखाया, बल्कि, गुरु वाणी मे हो पौराणिकता का समावेश करने का यत्न किया है। गुरु नानक को एक पक्ति है 'सचिखण्ड वसे निरकार' अर्थात् निरकार सत्यलोक मे निवास करता है। इसी एक पक्ति से सकेत पाकर कवि ने हिमालय, कैलाश आदि से परे ध्रुव मण्डल एव शून्यमण्डल से ऊपर सचखण्ड अथवा सत्यलोक की कल्पना की है। यही वे निरकार के मुख से नानक के अवतार होने की घोषणा करते है

१. जन्म-साखी, प० ११३।

फुन प्रवल जोत में प्रापति भये । अति सुजोत गुन कित मुख कहे ।
जत कत जोत-जोत ह्वो रही । प्रिथम रूप निर्गुन को सही ।
भगत पंथ स्रो सतिगुर लयो । साच खण्ड में प्रापति भयो ।
तब प्रसन्न होए निरंकार । नानक निज हमरा औतार ।
भगत तुमारी पाइ थाइ । हम तुम बीचे अन्तर नाहि ।

गुरु नानक को निर्गुण निरंकार का अवतार बताते हुए वे उन्हें वैष्णव परंपरा से सम्बद्ध रखना चाहते है। सचखण्ड की यात्रा में गुरु दत्तात्रेय और प्रह्लाद से मिलते हैं। दोनो उनकी मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा करते हैं।[1] यद्यपि उन्हें विदेह जनक से दीक्षित मानते हैं।[2] मार्ग मे पड़ने वाले पड़ावों का परिचय भी पुराणों के माध्यम से देते हैं। यहाँ एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा। कैलाश पर्वत पर गुरु नानक अपने सहचर बाला और मरदाना सहित खड़े हैं। उनका परस्पर संवाद यहाँ उद्धृत है :—

मरदाना देखै नैन पसार। इह पर्वत है अपर अपार।
तारे भी अब नीचे रहे। चंद सूर अब दृस्ट न लहे।
फुन गुर तिन सो बचन बखाना। हे प्रभ जी इह अति अस्थाना।
इस गिर का कह दीजै नाम। इह सुमेर है सुण अभिराम।
हे गुर इत प्रकार किस आहि। चंद सूर किछु दृस्ट न पाहि।
गुर कहि ध्रू के मण्डल जान। जो प्यारा है स्री भगवान।
मरदाना बाला इत कहै। इस गिर की गति कछू न लहै।
नीचे तुच्छ ऊपर विस्थार। इस गिर का अतभुत है ख्याल।
गुरु नानक कहि सुन मरदाना। तो हित कथा पुरान बखाना ॥[3]

---

१. दत्तात्रेयोवाच :

देखी सकत तुमारी नानक जो बोले सो साची।
अब परतीत भई है मो को हिरदै अन्तर राची।
धन्न सो गुरू तुमरा कहियै जिन तुम देख दिखाया।
ऐसा आगै और न साधू जो नानक तपा बणाया। —जन्म-साखी, पृ० १४६

प्रह्लाद उवच :

प्रहलाद कहे सुण नानक भाई। कल मैं तुहि बड पदवी पाई।
तुहि सग बहुते जी निस्तरे। नाम सिमर भव सागर तरे।
आगे एक कबीरा आयो। भगत बड़ा तिन राम ध्यायो।
—जन्म-साखी, पृ० १५६

२. आपी कहैं तू नानक आहि।
जनक बिदेही का सेवकाहि।
अहो अपा मैं नानक तपा।
जनक प्रसादि नाम है जपा।
—जन्म-साखी, पृ० १६२

३. जन्म-साखी, पृ० १५१।

जन्म-साखी में इस प्रकार के अन्य स्थलों के अध्ययन से यह बात उत्तरोत्तर स्पष्ट होती जाती है कि यह कवि निर्गुण के उपासक सिक्ख और वैष्णव भक्तों में समन्वय स्थापित करने का इच्छुक था। इस समन्वयवादी प्रवृत्ति के लिये उस पर तुलसी का आभार है, इसके स्पष्ट प्रमाण यत्र-तत्र विकीर्ण हैं। यहाँ केवल एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। संतदास गुरु नानक देव की रामेश्वरम् यात्रा का वर्णन करते समय श्री राम की रामेश्वरम् यात्रा का स्मरण करना नही भूलते। तुलसीदास द्वारा कही हुई कथा वे नानक मुख से कहलाते हैं। जिस प्रकार तुलसी दास ने राम के मुख से शिव की स्तुति करवाकर वैष्णव और शैव सम्प्रदायों मे समन्वय स्थापित करने का यत्न किया था, उसी प्रकार संतदास गुरु नानक के मुख से राम की स्तुति करवा कर पंजाब मे सिक्ख-प्रसिद्ध हिन्दुओ मे समन्वय स्थापित करने के अभिलाषी प्रतीत होते हैं। इसके लिये उन्होंने अपनी रचना में मानस की कुछ पंक्तियो को उद्धृत करना अनुचित नहीं समझा :

श्री गुरू नानक जी वाच।
सुन बाले इहु ईसर थानु। प्रीत सहित इत थाप्यो राम।
सो सब कथा सुणावो तोहि। तू अत प्यारा प्रीतमु मोहि।
राम अवतार त्रेता में भये। ते कछु चरित्र दिखावत नये।
सो पित आज्ञा बन को गये। संग त्रिया लघु भाई लये।
फुन लीना प्रभ कप दल संग। सेत बांध्यो पुरख अभंग।
सैल बिसाल आन कप देही। कुंदक जिउ नल नील ति लेही।
देख सेत अति सुंदर रचना। विहस कृपानिध बोलै बचना।
परम रम्य उत्तम इह धरनी। महिमा अमित जाइ नही बरनी।
करिहों इहाँ संभु की थपना। मोर हृदे इह परम कल्पना।
सुन कपीस बहु दूत पठाए। मुनवर सकल बोल ले आए।
लिंगु थाप विधवत कर पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा।
सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सुपने मोह न पावा॥
श्री रघुपति परताप ते सिंध तरै पाखान।
बाले ते मतिमंद है प्रभ तजु भजे जुआन।[१]

ऊपर उद्धृत पद्यखण्ड की अन्तिम नौ पंक्तियाँ तुलसी की पंक्तियों का ईषत् परिवर्तित रूप हैं।[२] इस उदाहरण से स्पष्ट है कि संतदास के मनःसंस्कार किस प्रकार के अध्ययन से बने थे।

---

१. जन्म-साखी, पृ० १६५।
२. राम चरित मानस (गीता प्रेस, संवत् २०१०) सटीक, मझला, पृ० ७४१—४३।

हमारे कालखण्ड के अन्तर्गत आने वाले सभी प्रबन्ध नवीन जन-जागरण से प्रेरणा ग्रहण कर रहे थे। यह बात पिछले पृष्ठो मे स्पष्ट कर चुके हैं। पौराणिकता इस जन-जागरण का साधन है और साध्य है इस्लामी प्रभाव का निराकरण। पौराणिक मूल्यो की स्वीकृति के साथ इस्लामी प्रभाव के निराकरण का आग्रह, हमारे ऐतिहासिक प्रबन्धो का वैशिष्ट्य है।

ये सभी ऐतिहासिक प्रबन्ध, एक प्रकार से इस जन-जागरण के नेताओ को अर्पित की गई श्रद्धांजलि मात्र हैं। सतदास भी इस जागरण के प्रति जागरूक हैं। गुरु नानक को वे इस्लामी प्रभाव के विरुद्ध शांति-अस्त्रो से लडते हुए योद्धा के समान ही चित्रित करते हैं। यहाँ दो उदाहरण पर्याप्त होगे।

(क) अपनी मक्का यात्रा मे गुरु नानक अपने मुसलमान सहचर मरदाना को कहते हैं कि मक्का भगवान् शम्भु का स्थान है।[१] अपनी अलौकिक शक्ति से वे मरदाना को दिखा देते हैं कि मक्का मे अब तक भी शिव-लिंग स्थापित है .

वचन पाइ बहुरो सो गया। भीतरि गया दृस्ट न पया।
सभै मुजावर जानो अधे। मरदानै सभ देखे धधे।
क्या देखा तब भीतर जाइ। एक सिला देखी तित थाइ।[१]
ताहि तफाफ करै फिरि आवै। वडे-वडे जो हाजी जावैं।
मरदाना बाहरि फिरि आया। गुर को सभु कछु आनि सुनाया।
गुर कह्या आजु काबा देखा। हाँ जी इक पत्थर वड पेखा।
बाला कहै लिग है सिव का। अति प्रताप जान महादेव का।[२]

(ख) मुसलमानो को गुरु 'असुर' समझते हैं। बाला द्वारा आशका करने पर कि उनका सहचर मरदाना मुसलमान क्यो है,[३] (राजा जनक के अवतार) गुरु इस प्रकार उत्तर देते है

मरदाना तब ढाढी आहि। जनक राय इस सुर को चाहि।
इक दिन सुरा पान करि आयो। राजा को आ सीस निवायो।
राजा जी इसको यो कह्यो। असर पान इह कत ते लह्यो।
साध बाक सो मिटता नाहि। इत कारन जन्म्यो इत आइ।[४]

---

१ गुर कहि देख लेहु मरदाना।
इह मक्का है सभू थाना —जन्म-साखी, पृ० १२०

२. जन्म-साखी, प १२०

३ बाला कहै गुर सका मोहि। इह भ्रम मेरा दीजै खोइ।
इस सम मेल पुरब ते भयो। मरदाना तुरक कहो कत भयो।—जन्म-साखी, पृ० १२६

४. जन्म-साखी, पृ० १२६ ;

स्थान-स्थान पर ऐसे संकेत मिलते हैं जिन से पता चलता है कि वे इस्लाम के मुकाबिले मे हिन्दू धर्म को उत्तम मानते हैं और उसकी रक्षा उन्हें प्रिय है। मुस्लिम शासन से भी वे त्रस्त हैं। इसका प्रत्यक्ष विरोध तो वे नही करते किन्तु तुलसीदास के राम राज्य के समान ही एक आदर्श राज्य की कल्पना उन्होने भी की है। यह कल्पना समसामयिक राज्य-व्यवस्था के प्रति उनके असतोष की ही प्रतीक है।

जत कत दीसै हेम अपारा। कौन विधी होता व्योहारा।
सुनो साध इत धरमै चाला। ईहां कुदरति का सभ ख्याला।
अन्न आदर सभ आपैं होइ। ना को वाहै ना को बोइ।
जिस भावै सो लुण लै आइ। खाइ पकाइ औरनि मुख पाइ।
राजा की आज्ञा है एइ। इक चाहै सो दूसर देह।
मीस पकावन को है कामा। नही मोल का ईहाँ नामा।
कारीगर ही करते कामा। सो भी लेहि न किस ते दामा।
पहिले लोभी ईहाँ न कोइ। सभे सुखी इस पुर मैं जोइ।
भोग मिथन ईहां नहीं होइ। दृस्टि भोग ते उतपति होइ।[1]
इह तो धर्मपुरी है साधा। ईहाँ कदी न कोई बिआधा।
एक बरन हैं सभ ही लोक।[2] सदा हर्ष है कदी न सोक।
राजा इत का परम सज्ञान। जा के मन लो भर नही मान।
दृष्टि-दृष्टि स्यो मैथन धरै। इस्त्री पुरख भोग नही करै।[3]

अन्त मे हमारा मत है कि इस कृति का वातावरण पौराणिक और इसका उद्देश्य मुस्लिम प्रभाव की रोक-थाम है।

नानक विजय

प्राप्य सामग्री—सत रेणाश्रम, भूदन, मालेरकोटला मे संत रेण द्वारा रचित पाँच ग्रन्थो मे से चार ग्रन्थो की पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं। अभी विद्वानो का इस ओर विशेष ध्यान नही गया, अतः इन पर किसी प्रकार की शोधात्मक अथवा आलोचनात्मक सामग्री उपलब्ध नही।

सन् १९५३ ई० मे इन ग्रंथों को प्रकाशित करने की योजना बनाई गई थी जिसके फलस्वरूप 'श्री सत रेण ग्रथावली' का प्रथम भाग प्रकाशित हुआ। इस भाग मे संत रेण की दो रचनायें—'मन प्रबोध' और 'अनभै अमृत सागर'—सकलित हैं।

---

१. जन्म-साखी, प० १२५।

२. यहाँ 'एक वर्ण' शब्द विशेष रूप से द्रष्टव्य है। स्पष्ट है कि सतदास सभी पौराणिक मूल्यों को स्वीकार नहीं करते। संत रेण तक पहुँचते-पहुँचते इन अस्वीकृत मूल्यों को भी स्वीकृति मिल जाती है।

३. जन्म-साखी, प० १२६।

दो रचनायें—'उदासी बोध' और 'नानक विजय'—अभी पाण्डुलिपि के रूप मे ही हैं और उनके निकट भविष्य मे प्रकाशित होने की कोई आशा नही है। पाँचवी रचना 'नानक बोध' अप्राप्य है।

हमने अपने अध्ययन का आधार सत रेणाश्रम, भूदन (जिला सगरूर) वाली मूल प्रति को बनाया है। इस प्रति के आकार आदि का विवरण यथास्थान दे दिया गया है। मूल प्रति के अतिरिक्त इसकी दो और प्रतियाँ भी प्राप्य हैं। उनमे से एक उदासी आश्रम, लेलो, सुनाम मे, तथा दूसरी बालापुर पीठ, जिला अकोला, मध्य प्रदेश मे है। विभाजन से पूर्व इसकी एक प्रति साधु बेला, सक्खर, सिंध मे विद्यमान थी। अभी-अभी इसकी एक फोटोस्टैट प्रति पजाब सरकार ने कराई है।

जीवन-चरित—सत रेणजी ने अपनी रचनाओ मे अपने जीवन के सम्बन्ध मे कोई सूचना नही दी। सौभाग्य से मलेरकोटला (पजाब) से पांच मील की दूरी पर 'भूदन' नामक गाँव मे उनके स्मृति-चिन्ह के रूप मे सत रेणाश्रम अब तक बना हुआ है। वहाँ उनके ग्रन्थो की मूल पाण्डुलिपियो के अतिरिक्त उनके कुछ और पत्र अब तक सुरक्षित हैं। उनके सम्बन्ध मे प्रचलित दन्तकथायें एव आश्रम की गद्दी-परम्परा भी उनके जीवन सम्बन्धी सामग्री बटोरने मे कुछ सहायता देती है।

इन सब स्रोतो से इतना ज्ञात होता है कि सत रेण का जन्म संवत् १७६८ (सन् १७४१ ई०) मे श्रीनगर (काश्मीर) मे हुआ।[1] आपके पिता का नाम हरिवल्लभ और माता का नाम सावित्री देवी था। आप जाति के गौड ब्राह्मण थे।[2] बचपन मे आप ने पर्याप्त विद्या अर्जित की। श्री साहिब दास नानक किसी उदासी महात्मा की सगति से आपने उदासी मत ग्रहण किया।[3] गृह-त्याग के उपरान्त आप बहुत दिनो तक लाहौर और अमृतसर के निकट रहे।[3] तदुपरात श्री बालापुर पीठ, जिला अकोला मे उदासी साधुओं के डेरे मे रहे।[3] मद्रास, नैपाल, उत्तर प्रदेश, सिन्ध और बलोचिस्तान का भ्रमण भी आपने किया था।[4] मलेरकोटला रियासत के 'भूदन' गाँव मे आपने अपना डेरा स्थापित किया। यहीं इनका देहान्त सवत् १९२८ (सन् १८७१ मे हुआ)।[5]

रचनाएं—सत रेणजी ने पांच ग्रन्थो की रचना की—मन प्रबोध, गुरु नानक विजय, नानक बोध, बचन सग्रह और उदासी बोध। अपने अन्तिम ग्रथ उदासी बोध मे सत रेणजी ने इन्ही पांच ग्रथो का उल्लेख इसी क्रम से किया है। इस ग्रथ के अतिरिक्त 'पच परमेश्वर स्तोत्र' नामक एक और छोटी-सी कृति की रचना भी सतजी

---

१. सत रेण ग्रन्थावली (सपादक महन्त मुक्त राम), पृ० १।
२. सत, पृ० 'अ' (=अ)
३. वही पृ० 'इ', (=इ)
४. वही, पृ० १।
५. वही, पृ० ३।

के द्वारा हुई। कदाचित् अपने लघु-आकार और फुटकर-रूप के कारण ही संत जी ने इसकी गणना अपने 'ग्रथो' मे नही की।

संतजी ने केवल उदासी बोध के रचना-काल का उल्लेख इस ग्रन्थ के अन्त में किया है।[१] इस ग्रंथ की रचना संवत् १६१६ (सन् १८३९ ई०) मे हुई। महन्त मुक्त राम के अनुसार, पंच परमेश्वर स्तोत्र की रचना संवत् १८३६ वि० (सन् १७७९ ई०) में हुई। इन्हीं दो रचनाओं का रचना-काल ज्ञात होने के कारण, हम इनके बीच के समय (सन् १७७९ ई० से सन् १८३९ ई० तक) को उनके सृजन-कार्य का समय मान सकते हैं।

रचना-काल—संत रेणजी ने अपने ग्रंथ मे किसी स्थान पर भी रचना-काल के विषय में कोई सकेत नहीं किया। संत रेण आश्रम के वर्तमान महन्त भी इस विषय मे कोई निश्चित सूचना दे सकने मे असमर्थ हैं। उनसे केवल इतना ही ज्ञात हो पाया है कि सत रेण द्वारा उनकी फुटकर कृति 'पंच परमेश्वर स्तोत्र' की रचना सन् १७७९ ई० मे प्रयाग कुम्भ के अवसर पर हुई।[२] उनके उदासी बोध की रचना सन् १८५६ ई० मे हुई।[३] *अतः यह अनुमान बहुत अनुचित प्रतीत नही होता है कि* 'नानक विजय' की रचना सन् १७७९ ई० और सन् १८३९ ई० के बीच के समय में हुई।

नानक विजय एक विशालकाय ग्रन्थ है और इसकी रचना के लिए कई वर्षों का श्रम अपेक्षित है। उनके प्रथम ग्रंथ मन प्रबोध में भी इस ग्रंथ की ओर संकेत है जिससे प्रतीत होता है कि अपने प्रथम ग्रंथ की रचना के समय ही नानक विजय की

---

१. दोहरा —पाच गरंथ करायं गुर, हम ते आप सुजान।
जीवन की कल्याण हित, सतिगुर आप सुभान ॥८१॥
अड़िल —मन प्रबोध ग्रन्थ सो पृथम जानिये।
दुतिये नानक बिजै, ग्रंथ पहिचानिये।
तृतिये नानक बोध, ग्रंथ सो जान रे।
हो, बचन सग्रह ग्रन्थ सु चतुरथ मान रे ॥८२॥
पंचम इहो उदासी बोध महानियै।
जीवन तरन उपाय, सुखातर जानियै।
और परोजन नाहि करन का आन रे।
हो, जीवन की कल्यान सुखातर जान रे ॥८३॥
—संत रेण ग्रन्थावली, पृ० 'ग'

'संमत उन्नी सै सोला, पुनि बरस पछानो'—संत रेण ग्रन्थावली, पृ० 'च' (च)

२. श्री संत रेण ग्रन्थावली, पृ० ४।

३. वही, पृ० 'च'

रूप-रेखा उनके मस्तिष्क मे स्थिर हो रही थी ।[1] यदि उनके प्रथम ग्रथ को 'पच परमेश्वर स्तोत्र' के निकट-काल की रचना मानें तो नानक विजय की रचना अठा-रहवी शताब्दी के अन्तिम दो दशको मे होने की सम्भावना प्रतीत होती है ।

आकार—नानक विजय १८६० पन्नो (३७२० पृष्ठो) का विशालकाय ग्रन्थ है । पन्ने का आकार ७¾"×१२" है । हर पृष्ठ पर लगभग चौबीस पक्तियाँ हैं और प्रत्येक पक्ति में लगभग बीस शब्द । इस गणना के अनुसार इस ग्रथ में अनुमानत सवह लाख से भी अधिक शब्द हैं । पजाब मे आदि ग्रथ के अतिरिक्त इतने दीर्घकाय ग्रथ की रचना इससे पूर्व न हुई थी ।

यह ग्रन्थ बीस खण्डो मे विभक्त है । प्रत्येक खण्ड अध्यायो मे विभक्त है । विषय-वस्तु का यह विभाजन पौराणिक रचनाओ के अनुसरण पर है । ऐसा प्रतीत होता है जैसे सत रेण जी उदासी मार्ग अथवा सिक्ख-मार्ग के लिये एक पुराण की ही रचना कर रहे थे । ग्रन्थ के आरम्भ मे खण्डो (स्कन्धो), अध्यायो एव छन्दो का विवरण दे दिया गया है जिससे पता चलता है कि इस रचना के कुल खण्ड (स्कन्ध अथवा अश) २०, कुल अध्याय ३२४ और कुल छन्द सख्या २४३८२ है । आकार की दृष्टि से नानक विजय ग्रन्थ एक नव पुराण कहलाने का अधिकारी है ।

यहाँ इसकी प्रामाणिकता पर विचार कर लेना भी असगत नही होगा । सत-रेणाश्रम मे उपलब्ध पाण्डुलिपि स्वय सतरेण द्वारा ही लिखी गई—ऐसा विश्वास भूदन गाँव मे पाया जाता है । अक्षरो की बनावट से इतना तो स्पष्ट है कि इसका एक बहुत बडा भाग एक ही हाथ का लिखा हुआ है । बीच-बीच मे कही-कहीं दूसरे हाथ की लिखाई भी दृष्टिगत होती है । किन्तु कथावस्तु का खण्डो, अध्यायो मे विभाजन, छन्द सख्या की क्रमवार गणना और कथा की अटूट धारा किसी क्षेपक के लिये कोई गु जाइश नही रहने देती । अत हमारा मत है कि यह दीर्घकाय रचना आज भी अपने अपरिवर्तित एव अपरिवर्धित रूप मे विद्यमान है ।

ग्रन्थ महत्व—सत रेण जी कहते हैं कि उन्होंने यह ग्रन्थ दैवी प्रेरणा के कारण लिखा । गुरु नानक की वाणी 'जपुजी' का नित्य पाठ करने के फलस्वरूप उन्हें ऋषि वाल्मीकि के दर्शन हुए जिनसे उन्हें राम नाम की दीक्षा मिली । इसी अवसर पर

---

१. श्री सत रेण ग्रन्थावली, पृ० ५६ :

नानक बिजै गरथ अब बरनौ भली प्रकार ।
जिसको पढ सुणि समझ करि, सभि का होय उधार ॥१६५॥
नानक बिजै गरथ का, वार पार नहि कोइ ।
सत रेण चहो मैं कह्यो, हरि गुर करै जु होइ ॥१६६॥

आकाशवाणी द्वारा उन्हे ग्रंथ रचना का आदेश हुआ। इसी आदेश को शिरोधार्य करके उन्होने नानक विजय ग्रथ की रचना प्रारम्भ की।[1]

सत रेण बडे विनम्र एव निरभिमान महापुरुष थे। उन्होने अपने किसी भी ग्रंथ मे अपने विषय मे एक पक्ति तक लिखनी उचित नही समझी। किन्तु, नानक विजय ग्रंथ के महत्त्व को प्रतिपादित करते समय उन्होने अपने स्वाभाविक सकोच का त्याग अनुचित नही समझा। वे कहते हैं :—

१. (नभवाणी)—

नानक विजै ग्रंथ को पढै सुणंगे जोइ।
हरि गुर मम परसादि ते ताहि परम गति होइ॥

२. (धर्मराज यम से)—

नानक वाणी, ग्रथ (नानक विजय) और रामायण जोऊ।
इनको पढ़ै जु सुणै नर तिनके निकट न जाइऊ।१।११।३६।६१।

स्पष्ट है कि वे अपने ग्रथ को वाल्मीकि रामायण से कम महत्त्वपूर्ण ग्रथ नहीं समझते। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें ग्रथ रचना करते समय पूर्ण विश्वास था कि वे एक नव पुराण की रचना कर रहे हैं। इस सम्बन्ध मे क्षीण-से सकेत भी कुछ स्थानों पर मिलते हैं।[2] वे चाहते थे कि उनके ग्रथ का आदर एव पूजन एक पौराणिक ग्रथ के समान ही किया जाए :—

पुस्तकि पर रामाल चढावै। कर परकरमा सीस निवावै।
अच्छत चन्दन फूल चढाइ। ताहि पुन्य सुरपुर सो जाइ॥
पर दारा पर धन अभिलाखी। झूठी भरै जु जग मै साखी।
इत्यादिक जो पाप अपारे। मिटे सरब ताहि लागे वारे॥
१।११।२१।५६

पजाब मे निर्मित पौराणिक प्रबन्धो की परम्परा मे नानक विजय का अपना विशिष्ट महत्त्व है। नानक विजय से पूर्व भी पौराणिक प्रबन्ध पजाब में लिखे जा रहे थे। इनमे कुछ ग्रथ अनूदित थे, कुछ मौलिक। मौलिक ग्रथो का वैशिष्ट्य उनकी

---

१ इहु जपु का परताप सभ, हमरा बल किछु नाहि।
जपु के पाठ प्रताप ते, गिरा भई नभ माहि।५०।
वाल्मीक मुनि मो मिल्यो, जपु जी के परताप।
राम नाम तिन मो दयो, सहज कृपा करि आप।५१।
जपु जी का करि पाठ मै, बहुरि कियो इस्नान।
लिखणे लाग्यो ग्रन्थ तब, ताहि से आयस मान।५२। १।४।५० ५२।२०

२. खत्री आइ ब्याहि मै जेते। पुनि तिन सरब बुलाइ सु तेते।
सभ के नाम जि करौ बखाना। लिखत लिखत तब बढ़े पुराना॥
४।१५।१५।५६५

शैली मे है और उनकी सशोधित पौराणिक भावना मे भी। किन्तु सभी ग्रन्थ (अनूदित अथवा मौलिक) समान रूप से चिर-परिचित पौराणिक व्यक्तियो के जीवन-चरित का ही गान करते है। उनके मुख्य पात्र राम, कृष्ण, दुर्गा, शिव, आदि ही हैं। नानक विजय की मौलिकता अथवा विशिष्टता भिन्न प्रकार की है। इस ग्रथ ने पुराण-पुरुषो की पक्ति मे एक नये पात्र को ला खडा किया है। गुरु नानक के चरित्र का एक पौराणिक व्यक्ति के रूप मे चित्रण अथवा उनकी जीवन-कथा का पुराण रूप मे कथन इससे पहले नही हुआ था। इस दृष्टि से यह ग्रथ अपने पूर्व-कालीन पौराणिक प्रबन्धो से सर्वथा विशिष्ट है। कदाचित् इसे पौराणिक प्रबन्ध न कह कर एक नव-पुराण कहना अधिक सगत होगा।

हमारे निबन्ध की कालावधि मे कुछ ऐतिहासिक प्रबन्धों की भी रचना हुई और इनमे गुरु-व्यक्तियो को पुराण व्यक्तियो के समान सिद्ध करने का यत्न भी हुआ है। किन्तु कुल मिलाकर इनमे गुरु ऐतिहासिक व्यक्तियो के समान ही चित्रित हुए है। उनके चारो ओर देव-परिवार का जमघट इकट्ठा करने का प्रयास कही नही हुआ। किन्तु नानक विजय इनसे भिन्न कोटि की रचना है। उसका वातावरण किस प्रकार पौराणिक देव-भावना से परिव्याप्त है, यह दिखाने का अवसर भी आयेगा। यहाँ इतना ही पर्याप्त है कि नानक विजय एक प्रबन्ध है जो समान रूप से ऐतिहासिक एव पौराणिक कहलाने का अधिकारी है।

यहाँ यह भी स्मरणीय है कि नानक विजय मे समाविष्ट पौराणिक भावना सिक्ख परम्परा के सर्वथा अनुकूल नही। गुरु नानक की जीवन-कथा पजाब मे सिक्ख-असिक्ख सभी प्रकार के सम्प्रदायो मे लोकप्रिय रही है, इसका उल्लेख पहले हो चुका है। इस ग्रथ को उदासी सम्प्रदाय मे प्रचलित गुरु नानक-सम्बन्धी दृष्टिकोण का ही प्रतिनिधि समझना चाहिये। तो भी, इस ग्रथ का पठन-पाठन केवल उदासी-सतो तक ही सीमित नही रहा। साधारण सिक्खो को इसके पठन एव श्रवण का अवसर मिलता रहा और सिक्ख जनता मे पौराणिक भावना प्रवेश पाती रही। यहाँ तक कि जब कुछ वर्ष उपरान्त स्वय स्वर्ण मन्दिर के पुजारी-परिवार के किसी सदस्य ने गुरु विलास (छठी पादशाही) की रचना की तो स्पष्ट पौराणिक सरणी पर। अत यह निष्कर्ष अनुचित प्रतीत नही होता कि पौराणिक भावना का प्रवेश सिक्ख-सिक्ख समस्त पजाबी हिन्दू जनसाधारण मे हो रहा था। वस्तुत नानक विजय मे समाविष्ट पौराणिक भावना को आदि ग्रथ मे रोपित एव दशम ग्रथ मे पोषित, पौराणिक भावना का ही चरम-विकास समझना चाहिए। यह वही पौराणिक भावना है जिसका प्रबल विरोध बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे सिंह सभा लहर द्वारा हुआ।

सक्षेप मे हम कह सकते हैं कि सत रेण ने सिक्ख धर्म के लिये एक पुराण की रचना की। गुरु नानक देव को पुराण-पुरुष के रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय इसी ग्रथ को है। पौराणिक भावना का यह उद्भव अप्रत्याशित एव अकस्मात् नहीं

है। इसका क्षीण-सा सकेत आदि ग्रथ मे, तदुपरान्त दशम ग्रथ एव पुरातन जन्म-साखी मे पाया जाता है।

नानक विजय एक पौराणिक रचना के रूप मे—नानक विजय का दीर्घाकार ही नही, इसकी विषय-वस्तु और शैली भी इसे एक पौराणिक रचना सिद्ध करते हैं। नानक विजय, जैसा कि इसके नाम से ही प्रकट है, गुरु नानक देव जी की जीवन-गाथा से सम्बन्धित रचना है। इस रचना से पहले भी गुरु नानक देव की जीवन-कथा लिखने के प्रयास हो चुके थे। इनमे से प्राचीनतम प्रयास पुरातन जन्म-साखी (गद्य), महिमा प्रकाश (पद्य) एव जन्म-साखी नानक शाह की (पद्य) हैं। गुरु नानक देव के जीवन के अन्तिम दिनो मे गुरु-परम्परा का सस्थापन हो चुका था। उनके पश्चात् आने वाले गुरुओ के मन मे तो गुरु नानक के प्रति अत्यधिक श्रद्धा थी ही, गुरु-परम्परा के प्रति आस्था न रखने वाले पजाबी हिन्दुओ के मन मे भी गुरु नानक के प्रति अपार श्रद्धा थी। उदासी सत, द्वितीय एव तृतीय गुरु के पुत्र एव उनके श्रद्धालु अनुयायी तथा अप्रामाणिक गुरु, सभी समान रूप से गुरु नानक के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हैं। अतः उनके निधनोपरान्त उनके जीवन से चमत्कारवादी घटनायें सम्बन्धित होने लगीं। फलतः उनकी प्राचीनतम जीवन कथा—पुरातन जन्म-साखी—मे कतिपय ऐसी घटनाओ का समावेश हो गया है जिनके कारण वे जितने ऐतिहासिक पुरुष प्रतीत होते है, उतने ही पुराण-पुरुष भी।

गुरु नानक के व्यक्तित्व का जो विकास, एव उनके जीवन-चरित की जो व्याख्या उनके निधनोपरान्त हुई, वह सदा उनकी वाणी अथवा उनके परवर्ती गुरुओं को वाणी में समाविष्ट भावना के अनुकूल नही है। इसका मुख्य कारण यही प्रतीत होता है कि उनका चरित-गायन सिक्ख-असिक्ख सभी प्रकार के श्रद्धालुओ द्वारा हुआ। स्वय पुरातन जन्म साखी मे अप्रामाणिक शब्दो का समावेश इस तथ्य की ओर इगित करता है। अत उनके चरित एव चरित्र की पौराणिक शैली पर की गई व्याख्या बहुत अस्वाभाविक प्रतीत नही होती। नानक विजय तक पहुँच कर गुरु नानक इतने ऐतिहासिक व्यक्ति नही रहते जितने पौराणिक व्यक्ति। जन्म साखी उन्हे "पारब्रह्म का निज भगतु" इस उपाधि से स्मरण करती है किन्तु नानक विजय उन्हें पारब्रह्म के रूप मे स्वीकार करता है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :

(क) आदि अचारज नानक देव निरजन अंजन जाहि विलासी।
जीवन तारन कारन आपन आइ मही सु विकुण्ठ निवासी

१।१।२०।३

(ख) वदों सकल विसन अवतारा।
जिन मै व्यापक गुरू हमारा। १।१।३७।४

(ग) इहु नानक आइ भयो बिसनू,
तिरता जुग मैं जिन रावन मारा। १।१०।१७।५२

इस प्रकार के सकेत नानक विजय मे अनेक स्थानों पर उपलब्ध हैं। ऐसे सकेत तो आदि ग्रथ मे भी—भट्टो के सवैयो—में मिलते हैं। किन्तु, नानक विजय की पौराणिक भावना आदि ग्रथीय भावना की अपेक्षा अधिक स्पष्ट है। नानक विजय मे गुरु नानक की जन्म-कथा भागवत की कृष्ण जन्म-कथा के अनुकरण पर है। एक बार राजा जनक ने सत्यखण्ड मे जाकर भगवान् विष्णु की स्तुति की। भगवान् ने प्रसन्न होकर पूछा कि तुम किस अभिप्राय से प्रशसा कर रहे हो। इस पर जनक ने कलियुग का बडा विस्तृत वर्णन किया और भगवान् से ससार मे पुनः अवतरित होने की विनती की। भगवान् ने कहा :

रवि-बस विखै खतरी कुलि मैं, मम नाम उतार मही धरि है।
तुम नाहि सु सोच करो मन मै, कलि का सगला बलि सो हरि है॥
मम नाम उतार सु जान बली, तिसते सु कली मन मैं डरि है।
मम नाम सु नानक ह्वै कलि मैं, उपदेस सु जीवन को करि है॥
२।१।३७।१०३

पुनः

राम कृष्ण आदिक अवतारी।
मेरे भयो अनत अपारी। २।२।१५।१०९
मेरे गुण अवतार का अत न पारावार।
नानक नाम उतार अब धरहो मही मझार। २।२।१६।१०९

इसी प्रकार की कथायें, नानक विजय मे और स्थानो पर भी कही गई हैं। एक कथा मे भारपीडिता धरती अपने उद्धारार्थ देव सभा मे उपस्थित होती है, सभी देवता ब्रह्मा सहित विष्णु लोक मे पहुँचते हैं और भगवान् का स्तवन करते हैं :

कमलोदभव करकै परणाम सुसादर यो तिन वाक् उचारे।
परमेस्वर तू, जगतेस्वर तू, अखलेस्वर तू जगनाथ मुरारे॥
जगतागर तू, गुनिसागर तू, सुख आगर तू, करतार हमारे।
भव भजन तू, मनरजन तू, अरगजन तू, हम दास तुमारे॥२।४।३५।१२३

विष्णु अपने पुराण-परिचित रूप मे प्रकट होते हैं :

कमलासन की बिनती सुनिकै प्रगटे भगवान सु दीन दयाला।
रवि कोटि समान सु तेज लसे सम नीलमणी तन रूप बिसाला।
करि माहि रथाग गदादर नीरज देखत नैन मिलै ततकाला।
मकराकृत कुडल कान लसै वखि भृगलता गल मै वनमाला।
२।४।३७।१२३

पदमाइति लोचन है करि ककन सुन्दर ताहि पितबर धारा।
भुज अगद हार मणी लसकै गलि कीट सिर रवि कोटि उजारा।
पदमा लखमी सहि मद हसै गरुडवर ऊपर है असवारा।
ढिग नंद सुनद खरै करि जोर दसो दिस का तम दूरि निवारा।
२।४।३८।१२३

और सब देवताओ की विनती सुन कर धरती पर अवतार लेने का वचन देते हैं —

> सभि की विनती सुनिकै भगवान कह्यो विध को पुनि आप उदारे।
> तुम जाइ उतार धरी धरनी हम आवहिगे धरि कै अवतारे।
> २।४।५३।१२५

इसी कथा की अतिरिक्त पुष्टि के लिए सत रेण जी ने स्वय भगवान विष्णु के मुख से दो कथायें कहलाई हैं। उन्होने कश्यप और अदिति को वरदान दिया था कि वे उनके यहाँ पुत्र रूप मे अवतरित होगे, और एक बार नारद को भी वचन दिया था कि वे उसके कल्याणार्थ धरती पर अवतार ग्रहण करेंगे।[1] कश्यप पिता कालू के रूप मे, अदिति माता तृप्ता के रूप मे, नारद सहचर मरदाना एव भगवान् विष्णु नानक के रूप मे अवतरित हुए।

उपर्युक्त कथाओ से स्पष्ट है कि नानक विजय ने गुरु नानक देव को ऐतिहासिक पुरुष के रूप म नही, पुराण पुरुष के रूप मे (भगवान् विष्णु के नामावतार के रूप मे) ही प्रस्तुत किया गया है। अवतार भावना का सम्बन्ध केवल गुरुजी की जन्म कथा से ही नही, यह भावना सम्पूर्ण ग्रथ मे समाविष्ट है। गुरु जी का सम्पूर्ण चरित्र इसी भावना के अनुरूप चित्रित हुआ है।

अवतार पुरुष—पुराण पुरुष—पजाब मे नानक विजय से पूर्व भी गुरुओ के जीवन से सम्बन्धित एक जन्म-साखी (पद्य) एव कुछ प्रबन्धो की रचना हो चुकी थी। जन्म साखी मे गुरु नानक को अलौकिक शक्ति सम्पन्न भक्त रूप में चित्रित किया गया है। प्रबन्धो मे गुरु-व्यक्तियो का अवतारत्व निर्विवाद रूप से स्वीकृत है। गुरु गोविन्दसिंह के जीवन से सम्बन्धित गुरु शोभा एव गुरु विलास मे गुरु की प्रशसा अवतार पुरुष के रूप मे हुई है। स्वय गुरु गोविंदसिंह ने अपने आत्मकथात्मक परिचय (अपनी कथा) मे अपने जग प्रवेश का एक अलौकिक कारण भी दिया है।

यहाँ यह तथ्य विशेष रूप से द्रष्टव्य है कि पूर्ववर्ती प्रबन्धो मे सिक्ख गुरुओं को अलौकिक व्यक्तियों अथवा अवतार पुरुषों के रूप मे ग्रहण करने का आग्रह तो है पुराण पुरुष के रूप मे चित्रित करने की रुचि कदापि नही। इन प्रबन्धो मे गुरुओ को न तो भगवान् विष्णु का अवतार सिद्ध करने की रुचि लक्षित होती है, न ही किसी गुरु की जीवन-कथा मे पौराणिक देवताओ के जमघट की प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। नानक विजय एकमात्र ऐसी कृति है जिसमे गुरु-व्यक्ति को अवतार पुरुष के रूप मे ही नही, पुराण पुरुष के रूप मे भी, स्वीकार करने की प्रवृत्ति स्पष्ट रूप मे दृष्टिगत होती है।

---

१. तव खातर मै नाम उतारा। धरिहौं आप तुमही मझारा।
नानक नाम हमारा जानो। मरदाना तुम्रा पुनि मानो। २।१२।७८।१७६।
मिलि करि जीवन की कल्याना। कलि मै करिहै दोऊ महाना। २।१२।७९।१७६।

पूर्ववर्ती प्रबन्धों से नानक विजय की विलक्षणता इस बात मे भी है कि इसमे केवल नायक के ही नही, बल्कि कतिपय अन्य पात्रों के अलौकिकत्व को भी स्वीकार किया गया है। उनके पिता (कश्यप), माता (अदिति), पत्नी (लक्ष्मी), मित्र (नारद) सभी देव-परिवार के सदस्यों के स्वरूप हैं। भगवान् विष्णु ने देवताओं की विनती स्वीकार करते समय उन्हे आदेश दिया था कि वे भी धरती पर अवतार धारण करें।[1]

परिणामत. नानक विजय के बहुत से पात्र नानक के अवतारत्व के विषय मे पूर्णतः आश्वस्त हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :

(ग) नानक के जन्म पर जननी का अभिवन्दन :
करुणा सुखसागर रूप धरे। अभिवदन तोर दयाल हरे।
तुम दीन दयाल कृपाल सदा। तव बारबार नमामि सदा।
२।१२।११।१८।२।४।५३।१२५

(ख) मत्स्येन्द्र नाथ
बिसनू के सभि चिन्य याहि तन जानियै।
तेज और परताप उही पहिचानियै।
बिसनू ही अवतार लयौ है आइ कै।
गौरख को माछिंदर कह्यौ सुनाइकै।२।६।३८।२४९

(ग) एक राक्षस।
(नानक के मिलने पर दुर्वासा शाप स्मरण करता है)
महा विसनु जब नाम उतारे।
धरि है याहि सु मही मझारे।
तिसका दरसन पाय महाना।
ह्वै है पुनि तुमरी कल्याना।२।२०।४१।३५४

साराश यह है कि नानक विजय मे केवल नायक को ही अवतार पुरुष के रूप मे चित्रित नही किया गया, वरन् इसका सम्पूर्ण वातावरण पौराणिक भावना से ओत-प्रोत है। इसके नायक तथा अनेक अन्य पात्र पौराणिक देव परिवार से सम्बन्धित हैं, इसकी अनेक कथाओं के छोर पुराण कथाओं से जा मिलते हैं।

कथा (ऐतिहासिकता)—नानक विजय एक ऐतिहासिक व्यक्ति का जीवन-चरित है। नायक के अतिरिक्त इसमे कई और पात्र भी ऐतिहासिक हैं। अधिकाश घटनायें एव घटना-स्थान भी ऐतिहासिक हैं। सक्षेप मे, ऐतिहासिकता का एक क्षीण आधार सम्पूर्ण ग्रन्थ मे वर्तमान है।

किन्तु गुरु नानक के जीवन-सम्बन्धी विशुद्ध ऐतिहासिक सत्य या परिचय प्राप्त करने की इच्छा से नानक विजय का परिशीलन लाभप्रद न होगा। ऐति-

---

१. सभि की बिनती सुनिकै भगवन कह्यो विध को पुनि श्राप उदारे।
तुम आइ उतार धरो धरनी इन आवहिगे धर कै अवतारे। २।४।५३।१२५

हासिकता की परिव्याप्ति किसी प्रबन्ध के पात्रो, घटनाओ एव घटना-स्थलो तक ही नही होती। ऐतिहासिकता एक दृष्टिकोण भी है जिसे ग्रहण करने पर लेखक घटनाओ एव पात्रो का वस्तुपरक चित्रण करता है । पात्र, घटनायें एव घटना-स्थल इतिहास का बाह्य परिधान हैं। ये सब मिलकर जिस वस्तुमूलक महत्त्व का सृजन करते हैं, वही, हमारे विचार मे, ऐतिहासिकता का विश्वसनीय निर्णायक है।

नानक विजय का बाह्य परिधान भी सम्पूर्णत ऐतिहासिक नही। इसके सभी पात्र, घटनायें तथा घटना-स्थल ऐतिहासिक नही। इसमे मानवीय एव दिव्य पात्र, प्राकृतिक एव अतिप्राकृत घटनायें, इहलौकिक एव पारलौकिक घटना-स्थल कुछ इस प्रकार घुल-मिल गये हैं कि उन्हें एक दूसरे से भिन्न करना सर्वथा असम्भव हो गया है। कुछ ऐसी घटनाओ का समावेश भी हो गया है जिनका उल्लेख गुरु नानक के किसी पूर्ववर्ती जीवन-चरित मे नही। अभिप्राय यह कि नानक विजय का बाह्य परिधान विशुद्ध ऐतिहासिक नहीं।

और, जब पात्रो के चरित्र, घटनाओ के वातावरण एव इनके सामूहिक प्रभाव पर दृष्टिपात करते हैं तो स्पष्ट हो जाता है कि लेखक का दृष्टिकोण भी ऐतिहासिक नही। वह गुरु नानक को विष्णु का अवतार मान कर चला है और उसने अपने इस विश्वास के अनुकूल या तो चिर-परिचित घटनाओ का नवाख्यान एव नवीन व्याख्या प्रस्तुत की है या फिर नये सिरे से नवीन घटनाओ का सृजन कर लिया है। घटनाओ का वस्तुपरक अथवा यथार्थवादी चित्रण कवि का अभीष्ट नही। साराश यह है कि नानक विजय की कथा का क्षीण-सा आधार तो ऐतिहासिक है किन्तु उसका विस्तार पौराणिक शैली पर हुआ है।

कथा निर्वाह—नानक विजय मे कथा का निर्वाह भी पौराणिक शैली पर हुआ है। जिस प्रकार एक कथा के अनेक वक्ताओ एव श्रोताओ की कल्पना पौराणिक कृतियो मे रहती है, उसी प्रकार की कल्पना नानक विजय मे भी विद्यमान है। इस ग्रन्थ मे निम्नलिखित तीन वक्ताओ एव श्रोताओ का उल्लेख स्पष्ट रूप से हुआ है

(क) वामदेव—गुरु अगद।[1]

(ख) वाल्मीकि—मैत्रेय[2]

(ग) सत रेगा—सज्जन मडली।

---

१. नानक विजय गरथ सुजान। ह्वै है आगे सोइ महान।
वामदेव मुनि जो सुखदाई। करिहै परगट सत्ति सुभाई। १।१६।२२।६२
मुनिवर ते सुनि इहु कथा अगद परम उदार।
पुनि मुनिवर ते बूझियो करो सु सरब उपार। २।८।६।१२७

२ मैत्रे सुनि बचन इहु जबै। वाल्मीक प्रति बूझयो तबै। ६।१।५५।८८४
मुनिवर कहो मोहि समझाइ। कैसे सतिगुर पहुँचे जाई। ६।१।५६।८८४

उपर्युक्त वक्ता-श्रोता व्यवस्था की अपनी शक्ति और सीमा है। गुरु नानक को पौराणिक पात्रो की पंक्ति मे अधिष्ठित करने का यह प्रथम प्रयास था। पूर्व-परम्परा के अभाव मे वामदेव द्वारा गुरुकथा सुनाना विचित्र-सा प्रतीत होता है। देश-काल की दृष्टि से भी यह व्यवस्था दोष-पूर्ण प्रतीत होती है। किन्तु यदि हम स्मरण रखे कि हमारे कवि एक पौराणिक प्रबन्ध अथवा नव-पुराण की रचना कर रहे हैं और वे सोलहवी शताब्दी का वातावरण चित्रित न करके धूमिल अतीत का वातावरण उपस्थित करना चाहते हैं तो उपर्युक्त व्यवस्था सर्वथा उचित प्रतीत होने लगती है।

पौराणिक कृतियो के समान नानक विजय मे एक मूल कथा और अनेक गौण कथायें हैं। गौण कथाओ मे से अधिकाश पौराणिक उपाख्यान हैं। वामदेव, वाल्मीकि का नाम हमे इन उपाख्यानो की प्रामाणिकता के सम्बन्ध मे आश्वस्त कर देता है। मुनि-वक्ता नानक-विजय मे समाविष्ट अनेक चमत्कारो की सभाव्यता का बोझ भी अपने कन्धो पर ले लेता है। कुल मिला कर यह वक्ता-श्रोता व्यवस्था नानक विजय के वातावरण के अनुकूल ही बैठती है।

उपाख्यान गुरु नानक के जीवन-चरित से सर्वथा असम्बद्ध होने पर भी कथा मे ऐसी कुशलता से पिरोये गये हैं कि वे मूलकथा का स्वाभाविक अग प्रतीत होते हैं। उदाहरण के लिये कश्यप और अदिति की तप साधना, भगवान विष्णु को नारद जी का अभिशाप, राजा जनक की परलोक-यात्रा, अम्बरीष और विष्णु सवाद आदि उपाख्यान गुरु नानक की जन्म-कथा मे बडी कलात्मकता से सयोजित कर दिये गये हैं। हम अनेकानेक पौराणिक कथाओ का अध्ययन इस प्रकार करते हैं जैसे वे गुरु नानक की जीवन कथा का अभिन्न अग हो। ये लघु आख्यान, सैकडो की सख्या मे होने पर भी मूल कथा मे बाधा उपस्थित नही करते।

कुछ एक स्थानो पर मूल कथा की गति धीमी पड गई है किन्तु उपाख्यानो के कारण नही, विस्तृत वर्णनो के कारण। कवि सत रेण को उपनयन, विवाहादि का विस्तृत ब्योरा उपस्थित करने की विशेष रुचि है जिसके कारण कही-कही कथा-प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है। किन्तु ऐसे स्थल बहुत कम हैं। साधारणत इस विशालकाय ग्रथ का कथा-निर्वाह पर्याप्त कौशल से हुआ है।

उद्देश्य—लगभग सभी पुराणो मे भगवान का अवतार साधुओं के परित्राण और दुर्जनो के विनाश के लिये ही हुआ है। भगवान के अवतरित होने से पूर्व भाराक्रान्त धरती गौ का रूप धारण करके ब्रह्मा के पास जाती है। ब्रह्मा सभी देवताओ के अग्रणी होकर विष्णु के पास जाते हैं और विष्णु भूभार हरण के उद्देश्य से धरती पर अवतार लेने का आश्वासन देते हैं।

नानक-विजय मे भी उपर्युक्त पौराणिक पद्धति का पालन हुआ है। 'दैवी शक्तियो की आसुरी शक्तियो पर विजय' यही नानक-विजय का उद्देश्य है। हमारे कवि ने अपने उद्देश्य के दोनो पक्षो 'उत्पीडन' और 'उत्पीडन का निराकरण' पर पर्याप्त ध्यान दिया है।

सत रैण जी ने उत्पीडन का सामान्य उल्लेख भी किया है और विशेष भी। दूसरे शब्दो मे सामान्य रूप से राजन्य वर्ग के अत्याचार का उल्लेख भी करते हैं और स्पष्ट रूप से मुसलमानी शासन के अत्याचार का भी। कुल मिला कर पाठक पर यह प्रभाव रहता है कि जहाँ नानक हर प्रकार की उत्पीडक शक्ति पर विजय प्राप्त करने के लिये अवतरित हुए हैं, वहाँ धर्मान्ध मुसलमानी शासन पर विष्णु-'नाम' की विजय ही उनका प्रमुख उद्देश्य है। जिन दुष्कृतो का विनाश उ हें अभीष्ट है, उनमे से कुछ निम्नांकित हैं

सामान्य

(क) पारिवारिक

परनारिन साथ परीत करै घर की 'घरनी घर मैं बिललावै।
परनिंदक लपट नारन मैं सुपनै सु नही हरि के गुनि गावै।
सुत मानत नाहिन मात पिता निज नारन साथ परीत बढावै।
पर के धन को नित चाहि करै परमारथ कारन जीव छपावै।
२।१।२०।१०१

(ख) सामाजिक

बरना सकर हुइ है बसा।
याहि बिखै कछु नाहिन ससा। —पृष्ठ ७२
बिप्पर के सति करम को सूदर करै सुजान।
सूदर के सभ करम सो बिप्पर करै महान। २।१।२७।१०२
द्विज का अपमान करै सगले।
कुटनी अबला घरि माहि सुआने। २।१।२६।१०१

(ग) राजनीतिक

परजा निज भूपति लूटत है दुगुणा तिगुणा सु लए प्रभ हाला।
१।१।२२।१०१
परजा लुट भूप जु पेट भरै पुनि नाहि न्याउ करै परजा के।
१।७।२४।२८

(घ) धार्मिक

हरि का भजन नाहि भूल न तीरथ जाहि
कैसे कल्याण ताहि जाइ सु अगति को। २।१।३०।१०२
नही देव पूजा। बढा भाव दूजा।
पढे मन्न जन। सिखे लोक तन्न। २।१।२४।११
सति ग्रथ पुराण न पाठ करै
अपने मति कै सभि ग्रथ बखानै। २।१।२६।१०१

विशेष

(मुस्लिम शासन द्वारा अत्याचार)

सुन्दर मानुख देहि अजावा। लिंग काटि तिन करी खरावा।
मानुख को तिन दाग लगायो। इह तिन अपना राहु चलायो।
२।२।१८।१०६

रोजे बाँग निवाजा साजी। पंडित ठौर करे तिन काजी।
वेदो की तिन करी कतेबा। इहु तो भली चलाई जेबा।
२।२।१६।१०६

फडै बिगार देइ सिर बोजे।
जोरावरी रखावै रोजे। २।४।३।११६
हिन्दू का कछु चलै न जोरा।
तुरकनि बहुति मचायो सोरा।
चारौ बरन दुखी अति भये।
कितक मुसलमान हुइ गये। २।४।५।११६
करी मसीता आपनी देव सथान गिराइ।
दूध पियै जिन गऊ का तिनही को फिर खाइ। २।४।२४।१२१

उपर्युक्त उद्धरणो से स्पष्ट है कि हमारे कवि जहाँ एक ओर परम्परागत मूल्यो की हानि पर चिंतित हैं, वहाँ उसके शत्रु-विशेष मुस्लिम-शासन के प्रति भी क्षुब्ध हैं। उन्होने परम्परागत मूल्यो के पुनर्स्थापन और मुस्लिम शासन द्वारा समर्थित आतक के निराकरण के उद्देश्य से ही नानक-विजय की रचना की है।

यहाँ कवि के दृष्टिकोण को समझ लेना भी उपयुक्त होगा। जहाँ उनके पूर्ववर्ती पौराणिक-प्रबन्धकार गुरु गोविन्दसिह ने राम-कृष्ण की लीलाओ का गायन क्षत्रिय दृष्टिकोण से किया है, वहाँ सत रेणजी ने गुरु नानक की लीलाओ का वर्णन ब्राह्मण दृष्टिकोण से ही किया है। पजाब मे बहुत देर तक धार्मिक नेतृत्व क्षत्रियो के ही हाथ मे रहा। उन्होने धार्मिक चिह्नो एव कर्मकाण्ड का कई बार विरोध किया। पुजारी-वर्ग के पाखण्ड का खण्डन भी क्षत्रिय गुरुओ द्वारा हुआ। कवि सत रेण ने गुरु का जीवन चरित लिखते समय सदा गुरु के दृष्टिकोण का अनुसरण नही किया। उनका दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से मर्यादानुसारी ब्राह्मण दृष्टिकोण है। वे कहते हैं :

सत बिपर गौ कारने नानक लयौ उतार। ४।२।७३।५२४

वर्णाश्रम धर्म—पौराणिक रचनाओ का एक सामान्य गुण उनका वर्णाश्रमानुकूल होना है। लगभग सभी पुराण ब्राह्मण-वर्ग का महत्त्व स्वीकार करते एव उनके आदर, पूजन का निर्देश करते हैं। पजाब मे जिन पौराणिक प्रबन्धो की रचना हुई, उनमे वर्णाश्रम धर्म को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप मे स्वीकार किया गया है।

गुरु गोविन्दसिंह द्वारा लिखे पौराणिक प्रबन्धो का दृष्टिकोण क्षात्र होने के कारण, उनमे मुख्यत क्षत्रिय धर्म का ही प्रतिपादन हुआ है। तो भी उसमे यथास्थान विप्र वर्ग की उत्कृष्टता की ओर स्पष्ट सकेत किये गये हैं। इसी से सकेत पा कर कतिपय ऐतिहासिक प्रबन्धो मे भी ब्राह्मण को उच्च एव पूज्य ठहराया गया है। कुल मिला कर हमारी कालावधि मे पडने वाले प्रबन्ध वर्णाश्रम धर्म के समर्थन, तथापि गो-ब्राह्मण के रक्षण पर बल देते हैं। इस तथ्य का पर्याप्त विवेचन इसी निबन्ध में यथास्थान किया गया है।

नानक-विजय इसी वर्णपोषक परम्परा का समर्थक है। सत रेण स्वय कुलीन ब्राह्मण थे और उन्होने गुरु नानक की जीवन गाथा का कथन विप्र-दृष्टिकोण से ही किया है। ऐसा करते समय वे गुरु नानक की उन खण्डनात्मक उक्तियो की अवहेलना कर गये हैं, जहाँ उन्होने पतनोन्मुख ब्राह्मण-वर्ग की बडी निर्मम आलोचना की है। सम्पूर्ण नानक-विजय मे ब्राह्मणत्व कुछ इस प्रकार परिव्याप्त है कि कई बार भ्रम होने लगता है जैसे ब्राह्मण-महत्त्व-प्रतिपादन ही इस ग्रथ का मुख्य उद्देश्य है।

गुरु नानक देव जी का जन्म द्विज रक्षार्थ हुआ है,[1] यह बात ग्रन्थ मे बार-बार कही गई है। जहाँ कही भी पूर्व-नानककालीन तथा नानककालीन स्थिति का चित्रण इस ग्रन्थ मे हुआ है, वहाँ द्विजोत्पीडन की ओर सकेत करना कवि नहीं भूले। यहाँ कुछ उदाहरण अनुपयुक्त न होंगे :

(क) द्विज का अपमान करे सगले, कुटनी अवला घरि माहि सु आने।
२।१।२४।१०१

(ख) मच्यो घोर देस के माहि। विप्पर सत दुखाए ताहि॥
७।१।२३।७२३

वर्णसकर का सर्वाधिक विरोधी ब्राह्मण वर्ग है। सत रेण को वर्ण सकर की भी शिकायत है, ब्राह्मण एव शूद्र के परम्परागत कर्तव्यो एव अधिकारो मे परिवर्तन भी उन्हें स्वीकार्य नही :

(क) बरना सकर हुइ है वसा।
याहि विखे कछु नाहिन ससा। १।१७।४८।७२

(ख) बिप्पर के सतिकर्म को सूदर करैं सुजान।
सूदर के सभ कर्म को बिप्पर करैं महान। २।१।२७।१०२
अपने-अपने कर्म ते सिद्ध लहैं सभि कोई।
गीता मे तुम जो कह्यो ताहि न मानैं सोई। २।१।२६।१०२

सत रेण ऐतिहासिक वातावरण के प्रति सजग न होने के कारण न वर्ण सकर और न इस्लाम के बढते हुए प्रभाव के कारणो को समझ सके हैं। उन्हें इन

---

[1] सत विपर गऊ कारने नानक लयो उतार।४।२।७३।५२४

मर्यादा :—वर्ण-धर्म वर्ग विभाजन-शैली का ही नाम नहीं, यह नित्य-जीवन की एक व्यावहारिक आचरण-रीति भी है। इस रीति को 'मर्यादा' का नाम भी दिया जा सकता है। भगवान् के अनेक अवतार मानव रूप मे मर्यादा का निर्वाह बड़ी सदाशयता से करते हैं। नानक विजय के अवतार-नायक भी मर्यादा को स्वीकार करते हैं। अपने चाचा का आदर वे इस प्रकार करते हैं :

उठ कै गुर नै परणाम करी जनक अनुजै लखि मान कियो है।
७।१।१६।७२३

मिरजादा सति गुर ने राखी। याहि विखै ससि सूरय साखी।
७।१।१७।७२३

वहु सनमान गुरू ने कीना। चरनि धोइ चरनामृत लीना।
७।१।१६।७२३

पुनि गुर ताकी पूजा कीनी। मानो सो गुर सिख्या दीनी।
७।१।२०।७२३

विवाहोत्सव पर भी आमन्त्रित अतिथियो के स्वागत सत्कार मे भी व्यावहारिक मर्यादा का पालन किया गया है :

वदन जोग ताहि मै जोइ। तिन के पग कालू[1] ने धोइ।
अपने सम जो आहि उदारे। लालू[2] तिनि के चरनि पखारे।
निज ते नून अहे पुनि जोइ। तिन के पगि भिरतनि नै धोइ।
४।३।४१।५३२

जो आचरण-रीति जन-समूह को वर्गों मे बांटती, एव व्यावहारिक जीवन मे उच्च, सम और न्यून का ध्यान रखती है, वह नारी-समूह का भी उनके सतीत्व की कोटि के अनुसार वर्गीकरण करती है। सत रेण जी ने भी विवाहिता नारियो की चार कोटियाँ स्वीकार की है। वे कोटियाँ इस प्रकार हैं :

उत्तम :

इक मम पति बिनु पुरख न जगत मै
जेती सम सूरति सो नार ही पछानिये। ४।१३।८४।५८७

मध्यम :

बाप सम भाई सम निज सुत नाती सम
देखै पर पुरख को मधम सो बखानियै। ४।१३।८८।५८७

कनिष्ठ :

पुनि निज कुल की काण सु डरति रहति है
है मन चचल ता पर बात न कहति है। ४।१३।६०।५८८

---

१. गुरु नानक के पिता
२. गुरु नानक के चाचा

अति कनिष्ठः

डरति ताहि सु सेवा करही।
काढ़ न देइ सु घरते डरही॥
पति का वचन श्रुति नहीं माने।
हूँ कहि कै फिर पाछै ठानै॥ ४।१३।६३।५८८

संक्षेप में, नानक विजय में वर्णाश्रम धर्म और इससे सम्बद्ध मर्यादा एवं अन्य बातों को स्वीकार किया गया है।

दूसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि उनका दृष्टिकोण वैष्णव है। संत रेण जी उदासी सम्प्रदाय से सम्बन्धित थे। उन्होने अपने सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्रीचन्द जी को नाथपंथी गोरख का अवतार बताया है। गुरु नानक देव जी ने अपने जीवन काल में नाथ-पंथी योगियो का घोर विरोध किया था। गोरख को नानक का पुत्र दिखा कर उन्होंने नाथ मत पर वैष्णव धर्म की विजय का भाव ही दर्शाया है। गोरख के गुरु मत्स्येंद्र नाथ भी बाल-नानक मे विष्णु के तेज और प्रताप के दर्शन करते हैं और उन्हें जगदुद्धारक के रूप में स्वीकार करते हैं:

बरन चिह्न सभ देखे ताहि सु जानियै।
करि पग मस्तक लउ आप महानियै।
चिह्न देख सभ ताहि सु आप विचार्यो।
जगति उधारन कारण इन वपु धार्यो। २।६।३८।२४८
विसनू के सभ चिन्य याहि तन जानियै।
तेज और परताप उही पहचानियै।
विसनू ही अवतार लयो है आइ कै।
गोरख को माछिंदर कह्यौ सुनाइ कै। २।६।३८।२४६

चरित्र-चित्रण—संत रेण जी ने अपने नायक को विष्णु के नामावतार के रूप मे चित्रित किया है, इसका उल्लेख पहले हो चुका है। नानक देव के जन्म से पूर्व स्वयं भगवान विष्णु इस तथ्य की सूचना पाठक को देते हैं।[1] धरती पर स्थित महापुरुष भी उनके अवतारत्व से परिचित हैं।[2] ज्योतिषी उनके जन्म पर उनके अलौकिक सामर्थ्य की भविष्यवाणी करते हैं।[3] उनके सम्पर्क मे आने वाले मानव, अमानव सभी प्राणी, जड पदार्थ और शक्तियां उनके अवतारत्व को स्वीकार करते

---

१. मम नाम उतार सुजान वली तिमने सु कली मन मैं डरि है।
मम नाम सु नानक ह्वै कलि मै उपदेसु सु जीवन को करि है।
२।१।३७।१०३

२. विसनू को अवतार लयो है आइ कै।
गोरख को माछिन्दर कह्यो सुनाइ कै। २।८।३८।२४६

३. धरनी पावक पवन समुन्दर जेता।
इमको मारग देहैं सभ ही तेता। २।१४।५६।६

दिखाई देते हैं। पग-पग पर विमानारूढ देवताओ द्वारा उन पर पुष्पवर्षा होती है। सारांश यह है कि नानक विजय का नायक अलौकिक शक्ति-सम्पन्न अवतार-पुरुष के रूप मे चित्रित हुआ है।

उसकी विजय सदा-सर्वदा पूर्व-निश्चित है। अन्तिम विजय ही नही, अन्तरिम विजय भी। किसी बाधा के निराकरणार्थ उन्हे मानवीय स्तर पर सघर्ष नही करना पडता। उनके असाधारण सामर्थ्य के समक्ष कोई परिस्थिति बलवती नही। सक्षेप मे, हमे नानक-विजय मे ऐसे नायक के दर्शन होते हैं जो प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझता हुआ अपने चरित्र की सम्भावनाओ का विस्तार करता है। परिणाम के पूर्व निश्चित होने का एक परिणाम यह भी है कि हमे नानक-विजय मे विकासोन्मुख पात्र नही मिलते।

नायक के अतिरिक्त अन्य पात्रो का चित्रण साधारणतया मानवीय स्तर पर हुआ है। इन सभी पात्रो के चरित्र पर दृष्टिपात करने से यह भली प्रकार पता चलता है कि सत रेण मे मानव चरित्र के अपार वैविध्य का चित्रण करने की पर्याप्त क्षमता है। भोगी और त्यागी, करुण और क्रूर, शूर और कायर, धर्मान्ध और सहिष्णु, शात और चचल, शठ और साधु सभी प्रकार के पात्र हमे नानक-विजय मे मिलते हैं। अत. नानक-विजय मे मानवीय दौर्बल्य और सामर्थ्य के पर्याप्त उदाहरण उपलब्ध हैं।

देश काल—हम देख चुके हैं कि नानक-विजय मे इतिहास का निश्चित आधार विद्यमान रहने पर भी कवि का दृष्टिकोण ऐतिहासिक नहीं है। वास्तविकता का वस्तु-परक चित्रण हमारे कवि का अभीष्ट नहीं। उसकी रुचि अतिशयमूलक वर्णन एव चित्रण मे है जिसके कारण वातावरण मे सर्वत्र पौराणिक प्राचुर्य है।

प्राचुर्य का प्रभाव डालने के लिये कवि ने जन्म, उपनयन, विवाह आदि सस्कारो के अति विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किये हैं। ऐतिहासिक एव पारिवारिक परि-स्थितिया इस अतिरेक का अनुमोदन नही करती। किन्तु पूर्ववर्ती पुराणो का आदर्श स्वीकार करते हुए कवि ने एक साधारण राज्य-कर्मचारी के पुत्र से सम्बन्धित सस्कारो का वर्णन राजन्यवर्गीय स्तर पर किया है। पौराणिक अवतार राम और कृष्ण राजकुमार थे और उसका अपना नायक नानकदेव साधारण पटवारी का पुत्र। उनकी आर्थिक सामर्थ्य मे कितना अन्तर है, हमारे कवि को उसकी कोई चिन्ता नही। हमारे कवि का आदर्श है पुराण, उनका नायक है विष्णु का अवतार, अत. उसके सस्कारो मे कार्पण्य, उन्हें उचित प्रतीत नही होता।

उन्होने नानक देव के पिता कालू राम को राजा[1] के रूप मे ही चित्रित

१. दुइ अजुलि भर दीनी मोहि।
राजा साच कही मै तोहि। २|१०|१०|७४

किया है। उसके घर मे निरन्तर साधु भजन करते है, नित्य पुराण की कथा होती है, निर्बाध सदाव्रत चलता है, दीवारो पर हेमाक्षरो में राम नाम लिखा है :

कालू का ग्रह हयै जे तो। सो तो सभि सतन का तेतो।
बारहि मास सत तहि रहई। उपमा तास जाइ नहि कहिई।
सतनि पात दलाननि माहि। लगी धूणियाँ भजन कराहि।
सदा वरति ताके ग्रहि माही। आइ सु विरथा जावै नाही।
सदा पुराण कथा नित होइ। सरवनि करैं सत नित सोइ।
राम नाम भीतन पर सारे। लिखा हेम कै अक सवारे।
४।२।३५-५०।५२७

सत रेण ने कई अवसरो पर कालू राम की आधिभौतिक समृद्धि के चित्र उपस्थित किये हैं। बाल नानक के वस्त्राभूषण अमूल्य रत्नों और मणियो से जडे हैं।[1] नानक देव के उपनयन और विवाह के उत्सवो मे इस समृद्धि का प्रदर्शन अति विस्तार से किया गया है। रत्न, मणि, जरी, गज, मोती, रत्नपीठिका, हेम जनेऊ, स्वर्ण-स्तम्भ, पद्मराग के पुष्प, गज, अश्व आदि कालू राम के घर मे साधारण वस्तुओ के समान विद्यमान है।[2] नानक देव की बारात मे कई भूपति भी सम्मिलित होते हैं।[3] सभी बारातियो ने हाथो मे मणि-जटित कगन पहन रखे हैं।[4] बारातियो के घोडो के गले सुन्दर मालाओ से सुसज्जित हैं।[5] उनके हाथियो पर मणि-मण्डित झालरें लटक रही हैं।[6] उनके मनोरजन के निमित्त गणिकायें और नर्तकियाँ

---

१. पट भूखणि सोभहि अग बिखै कट सुतरि अगद है भुज धारे।
भगुना मणि ताइ जरा लमकै नभ मै ससि ताहि लमै जिम तारे।
बरि कुडल कानन मै लसकै, तड़िता सम जोति सुताहि अपारे।
रतनागन ताहि अमोल लगे, इक तै इक सुन्दर ताहि सु सारे। ३।१।२५।२१६

२. कदलीबर के ठौर हेम के खब बनाए।
छाइ हरी बिचि मया हेम कछु नगर सु आए।
पदमराग के फूलि, परनि पन्ने के कीने।
मेल कुमेल मिलाइ साथ तिनि लाइ सु दीने। ४।३।६।५३०
मैलागिर के खम्भ और पुनि चार बनाए।
अनि सुगध तिनि माही चलै जब मारुत आए। ४।३।१०।५३०

३. भूपति मिले अनेक एक तै सुभारी एक
तिन के समान सम कौन का कहाजिये। ४।५।१।५३७

४. उभै उभै कडे लगे स एक एक दानि मै
मणी जरी सुनाहि मै अपार रूप भाति मै। ४।५।२५।५३६

५. गरेहि माल सुन्दर सुढुम्म ढुम्म हू चले। ४।६६।५४२

६. बरि कचन की रखि है निन ऊपर मोतिन झालर सुन्दर सारी,
असि नाग अनेक चले मधि मै तिनि बाजन ते सभि ताहि पिछारी।
४।३।६०।५३३

भी साथ हैं।[1] सारा मार्ग मशालो से जगमगा रहा है।[2] मार्ग मे पडने वाले सभी कुओ, सरोवरो और बावडियो मे शक्कर डाली गई है।[3] दान दहेज का ब्योरा पढ कर भी ऐसा प्रतीत होता है जैसे कालू राम और उसके समधी अनन्त वैभव के स्वामी हैं।

धन वैभव की यह वर्षा नानक देव के पिता और ससुर पर ही नही हुई। नानक-ग्राम का समस्त हिन्दू-वर्ग सम्पन्न दिखाई देता है। नानक के जन्म और उसके विवाह पर सभी घरों मे जो आनन्दोत्सव मनाये जाते हैं, उनसे जनसाधारण की सम्पन्नता का ही परिचय मिलता है। यहाँ एक उदाहरण दिया जाता है

घरि ही घरि तोरण तु ग ध्वजा घरि चदन के सगले लिपवाये।
घरि ही घरि नौबत भेर वजै अबला घरि ही घरि मगल गाये।
घरि ही घरि ब्राह्मण वेद पढै भट सु दर छद कवित्त अलाये।
सगले पुरि मैं उत्साहु कर्यो अतर इक फूल गुलाल उडाये॥
२।१५।१।१६३

हिन्दुओ के सामूहिक धार्मिक जीवन मे भी कही अभाव की प्रतीति नहीं होती। मन्दिरो के बाहरी और भीतरी भाग विजयी एव वैभव-सम्पन्न जाति की अतुल धनराशि को ही प्रतिबिम्बित करते हैं, अभावग्रस्त एव शासक वर्ग द्वारा त्रस्त जीवन की दयनीयता को नही। मन्दिर का एक दृश्य इस प्रकार है

चढाई देव मदर उत्तग हाटक बरे।
ध्वजा उत्तग सु दर पटबरन्न की करे।
किनार झालरा लगा करी मुतीन की सवै।
सुभाइमान दूर ते मन लगे सभै फबै॥ ४।२।३।५२४

चतुरि सुचितरकार बुलाइ। नाना भाँति कै रग बनाइ।
हाटक चाँदी माहि मिलाइ। अभिरकि केसर सुरमा पाइ।
रासमडल भीतन लिखवाइ। नाना भाँति अनूप बनाइ।
लछमणि राम सुकण्ठ समेता। चढै लक पर जिस छवि केता।
राम बिराति साज जिम साजा। मिथिलापुर गयु सहति समाजा।
राम बिवान लक ते आयो। सभि मदर पर सोइ लिखायो॥
४।२।२६।५२५

---

१. गनका निरत करैं बहु भाती। देखहि लोक सुमेल बराती। ४।४।२।५३४

२. मग माहि अनेक मशाल जरें पुनि फूल झरी मग माहि अपारी ४।३।५६।५३३

३. रस्ते माहि कूप सर जेते। पाउ बहारनि आदिक केते।
सक्करि डारी सभि कै माही। राखी एक छोड़यो नाही। ४।६।६।५४२

वैभव एव समृद्धि का यह प्रदर्शन ऐतिहासिक यथार्थ को आघात पहुँचाता है। हिन्दुओं की जिस दयनीय दशा की टेर सुन कर भगवान विष्णु द्रवित हुए और नानक रूप मे धरती पर अवतरित हुए उसका किंचित् मात्र आभास भी नानक-विजय में दृष्टिगोचर नही होता। इस ग्रथ के उद्देश्य का विवेचन करते समय हमने देखा था कि सत रेण तत्कालीन जीवन की शोचनीयता के प्रति जागरूक हैं। ग्रथ-सृजन करते समय यह शोचनीय अवस्था कवि के मन मे सदा बनी रही है। इसका निराकरण उन्हें प्रिय है। किन्तु उसने कथा-निर्वाह मे इसका अतिरजित वर्णन करने से सकोच किया है। निराशाजनक चित्रण उन्हें रुचिकर नही। हमे ऐतिहासिक यथार्थ के प्रति यह अवहेलना सकारण प्रतीत होती है। हमारे मतानुसार प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं :

(क) सत रेण हिन्दू जाति की जिजीविषा को उद्बुद्ध करना चाहते हैं, वे उसे दुर्जेय विरोधियो की उत्पीडक शक्ति के यथार्थ चित्रण द्वारा हतोत्साह नही करना चाहते। सत रेण ही नही सत्रहवी और अठारहवी शताब्दी के सभी लेखकों मे कही अपने शत्रु के बल विक्रम एव अपनी दयनीयता एव असहाय अवस्था के अतिरंजित चित्र अकित करने वाली रुग्ण प्रवृत्ति के दर्शन नही होते। सत्रहवी और अठारहवी शताब्दी मे हिन्दू जीवन जितना दुःसह्य होता गया, उसकी जिजीविषा उतनी ही बलवती होती गई। इस काल का सारा साहित्य एक नवोदित सामार्थ्य एव स्वास्थ्य से अनुप्राणित है जो विघ्न-बाधाओ की अवहेलना कर सकता है। इस काल के कवियो का बल उत्साह पर है करुणा पर नहीं।

गुरु गोविंदसिंह ने 'अपनी कथा' मे अपने पिता की निर्मम हत्या के करुण प्रसग का एक बार चार पक्तियों मे उल्लेख-मात्र करके फिर उसे भुला दिया था, इसका परिचय हम इसी अध्याय मे अपनी कथा का विवेचन करते हुए दे चुके हैं। तदुपरान्त सेनापति, अणी राय, सुक्खा सिंह का रुचिकर विषय विजयोन्मुख खालसा शक्ति ही रहा, उत्पीडक मुगल शक्ति नहीं। नानक-विजय भी इसी परम्परा से प्रभावित है। उनके ग्रथ के नामकरण मे भी यही भावना काम करती हुई प्रतीत होती है।

(ख) इस आशामय दृष्टि का एक अतिरिक्त कारण भी है। सत रेण के समय मुगल एव अबदालियों की सत्ता सदा के लिये परास्त हो चुकी थी। पजाब मे सिक्ख रियासतें स्थापित हो चुकी थी और एक बहुत बडे भाग का शासन सिक्ख मिसलो के हाथ में था। विजय अब आशा का ही विषय नही थी। हिन्दू सिक्ख जनसाधारण असह्य निकट-अतीत को भूल जाने की मन स्थिति मे था।

(ग) सत रेण न केवल परकालीन काव्य प्रवृत्ति से ही प्रभावित हैं, बल्कि अपने धूमिल अतीत से भी। उनके आदर्श पुराण हैं। वे भी एक नव-पुराण अथवा प्राय-पुराण की रचना कर रहे हैं। पौराणिक प्रवृत्ति का अनुसरण उन्हे अपनी विजय-कथा कहने की प्रेरणा देता है, अपने असहाय जीवन की करुण-कथा कहने की नहीं।

शैली (रस)

शृंगार :—नानक-विजय शृ गार रस प्रधान रचना नहीं है। इसका नायक धीर-प्रशान्त कोटि का है। किसी स्थान पर भी उसके मन मे रूप अथवा यौवन के प्रति आकर्षण नही दिखाया गया। वह तो विष्णु का नामावतार है जो भूभार उतारने के लिए मर्त्यलोक मे अवतरित हुआ है। अतः हमारे लेखक ने केवल उसके जगदुद्धारक रूप पर ही अधिक बल दिया है।

इस सम्बन्ध मे कवि के निजी स्वभाव एव रुचि पर ध्यान रखना भी उचित होगा। मत रेण जी उदासी सम्प्रदाय से सम्बन्धित महापुरुष थे और अपने नायक की प्रेम-कथा कहना उन्हे प्रिय न था। मगलाचरण मे वे गुरु नानक का स्तवन उदासी मत के प्रवर्तक-रूप मे ही करते है। अत यह निष्कर्ष अनुचित प्रतीत नही होता कि नानक विजय की रचना उदासी अथवा सन्यासी दृष्टिकोण से हुई है।

सम्पूर्ण नानक विजय मे विशुद्ध शृ गार के उदाहरण कम ही मिलते हैं। किन्तु, कहीं-कहीं वे ऐसे पौराणिक आख्यानों का कथन करते हैं जहाँ तपस्वी महापुरुषो को अप्सराओ के रूपाकर्षण पर विजय प्राप्त करनी पडी थी। ऐसे स्थलो पर वे उनके रूप एव हाव-भाव का सक्षिप्त एव सयत वर्णन अवश्य करते हैं। अतः नानक विजय मे शृ गार रस अधिकतर रूप वर्णन तक ही सीमित है। एक दो स्थानो पर रत्युद्दीपक वातावरण चित्रित करने का भी यत्न किया गया है। उदाहरण इस प्रकार है :

(क) वातावरण :

नाना विटप फूल फल भरे। मानो आप विधाता करे।
कोकिल कीर सिखी ध्वनि बोलहि। जह तह भवर सु पुसपनि डोलहि।४५।
त्रिविध पवन वहै सुखदाई। पुसप सुगध लपटि मिलि आई।
विटपनि फुल फल गिर गिर परै। मोर चकोर पपीहे ररै।४६।
वन बसत छव कही न जाई। भवर देख तह रहै लुभाई।४७।
२।१०।४५-४७।१६३

(ख) रूप वर्णन :

सुभ लक्खण की इक तह बाला। रूपवत गुणि तेज विसाला।१०।
उपमा कहो काइ मैं ताकी। जलज नैन भौहा अति बाकी॥
पूरणमा विधु रहित कलका। ऐसा ताहि सुमुख है वका।११।
दसन सु दारम बीच समाना। अधर बिंब फल सुधा समाना॥
सुर नर देखि ताहि छब मोहैं। ताहि समान जगत मैं दो हैं।१२।
एक उमा इक लछमी जानं। और नही को ताहि समान।१३।

हाव-भाव वर्णन[1]

हाव भाव करि मुनिहि दिखावें। मदन वाण बहु भाँति चलावें॥
भरि भरि नैनन मारहि बाणा। विरही जन कै काढहि प्राणा।५०।
कवि कवि तन के वसन उठावहि। निज तन कोमल ताहि दिखावहि।
बोलहि कोकलि मोर अपारा। भिंग पात बहु करहि गुंजारा।५१।
२।१०।५०-५१।१६४

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि रूप आदि का वर्णन केवल गौणाख्यानों मे ही हुआ है। मूल कथा मे, (एक अपवाद के अतिरिक्त) रत्युद्दीपक रूप वर्णन, हाव-वर्णन अथवा वातावरण वर्णन दृष्टिगत नही होता। अपवाद रूप मे केवल एक स्थान पर गुरु नानक की पत्नी, सुलक्षणी, का नख-शिख वर्णन कदाचित् परम्परा पालन की दृष्टि से हुआ है :

ससि के सम ताहि सही मुख है, पर जे ससि माहि न होइ स्याही।
अनहोति सु ताहि दई उपमा, पर है अन उच्चित उच्चित ताही।
मृगसावक लोचन है सुथरे (यदि) सरमं अरु लाज रहै तिन माही।
अलि सी भव विंग कमान समं रव ताहि सुने कलिकंठ लजाही।
४।११।७७।४७४

कदली सम जंघ मनोज प्रभा दुति देखत कोटिक दामनि लाजै।
करि है जलजात समान उभै·········उदार पना सु विराजै।
अलिकै अलि पांति मनो लटकै, मुख की दुति देख तमिस्सर भाजै।
गुजराज समान सु चाल चलै कट सिंह सम सखियाँ मधि छाजै।
४। ११।७८।४७४

---

१. जहाँ जहाँ भी अन्य स्थलों पर हाव भाव वर्णन की आवश्यकता हुई है, कवि ने लगभग इन्ही हावों की आवृत्ति कर दी है। उन्होंने गिने-चुने हावों की सीमा का उल्लघन करना उचित नहीं समझा। तुलना के लिए अन्य एक उद्धरण लीजिए :

मैनका सुरेसी उरवसी अगना महान,
राग तान भूप आगे लागी ताहि गावने।
त्रिविध पवन चले सीतल सुगंध मद,
बसन उठाय अग लागी सो दिखावने।
बसन उड़ावैं निज अग को दिखावै,
बहु सैननि चलावै हाव भाव मन भावने।
नाचति नाचति कबू भूप के समीप आवैं,
कोमल कोमल अग लागी सो लगावने।

४।६।४।५४७

इस रूढ से नखशिख वर्णन के पश्चात् कवि माता सुलक्षणी को सर्वथा भूल जाते हैं। गुरु नानक की विदेश यात्राओं के समय उनकी वियोगावस्था का वर्णन कवि ने नहीं किया। विप्रलभ के उदाहरण नानक-विजय मे लगभग नही के बराबर हैं।

सक्षेप मे, हम कह सकते हैं कि नानक-विजय की मूल कथा मे शृंगार के उदाहरण लगभग नही के बराबर हैं। गौण कथाओ मे रूप वर्णन के विरलातिविरल उदाहरण मिलते हैं। यहाँ भी विशुद्ध एव संश्लिष्ट शृंगार के उदाहरण नही मिलते। विप्रलभ के उदाहरण तो सर्वथा अलभ्य हैं। शृंगार के प्रति इस उदासीनता का कारण नानक-विजय के नायक की जीवन-कथा भी है और हमारे सन्यासी लेखक की अपनी निवृत्तिमूलक रुचि भी। विशुद्ध शृंगार के उदाहरण इस रचना मे जितने दुर्लभ हैं, देव-विषयक-रति को जागृत एव उद्दीप्त करने वाले पद्य-खण्ड उतने ही सुलभ हैं। यहाँ एक उदाहरण पर्याप्त होगा

जल बिनु मीन, पख बिनु पखी, पति बिनु सुन्दर नारी।
फुल बिनु तरुवर, जल बिनु सरवर, सो गति भई हमारी।
१।२६।३

जनु बिनु जोगी, वैद बिनु रोगी, मणि बिनु भोगी जैसे।
तनु बिनु प्राण, नर बिनु ज्ञान, तुम बिनु भये हम ऐसे।१।
पति बिनु तरवरु, हंस बिनु मानसर, हरि बिनु पाइ सुजानो।
लोनु बिना विजन सभ जैसे, दस भूप बिनु मानो।२।
राम नामु बिनु मानुख जैसे, तुम बिनु भए हम तैसे।
सत रेण मार गुर की चरनी, भूलैं भाग्यो ऐसे ।।३।।
५।६।२१।६५६

करुण—नानक विजय का वातावरण शृंगार की अपेक्षा करुण के लिये अधिक अनुकूल है। अत उसमे करुण रस के उदाहरणो का अपेक्षाकृत अधिक सख्या मे होना स्वाभाविक ही है। विष्णु के नामावतार इस ससार के कष्ट निवारण के लिये ही प्रकट हुए हैं। स्थान-स्थान पर कारुणिक परिस्थितियाँ दृष्टिगत होती है और कवि उनके अनुरूप घटनाओ का चित्रण करता है।

कवि के करुण चित्रण की प्रमुख विशेषता उसके सयम मे है। कवि ने कही भी विस्तृत, अति कारुणिक दृश्यो के चित्रण, अथवा वर्णन मे रुचि नही दिखाई। वह सक्षेप एव सयत चित्र उपस्थित करता है। वस्तुतः उसका बल इतना कष्ट एव करुणा की प्रबलता पर नही जितना अपने नायक की कष्ट-निवारक शक्ति पर है।

नानक विजय मे व्यक्तिगत करुणा के उदाहरण भी मिलते हैं और समूहगत करुणा के भी। प्रस्तुत कवि दोनो प्रकार के दृश्य चित्रित करने मे कुशल हैं। यहाँ दोनो का एक-एक उदाहरण देना उपयुक्त होगा :

(क) व्यक्तिगत करुणा—व्यक्तिगत करुणा के आलम्बन सदा नानक देव हैं और इसके आश्रय हैं नानक-परिवार के सदस्य एवं परिवारेतर व्यक्ति। संत रेण ने नानक देव का चरित्र इस प्रकार अंकित किया है कि उनके सम्पर्क मे आ कर कोई भी व्यक्ति उनका विछोह सहन नहीं कर सकता।

(पारिवारिक क्षेत्र मे)

इति माइ बिलाप करै घरि मै कह नानक आज गए मुहि डारी।
किस कारण छोड गए हमको कछु न अपराध कर्यो महितारी।
किसको अब गोद खिलाऊँ भले इम वाक कहै दृग जाइ सुवारी।
वहु हौल भयो तिसके उर मै मुख नानक नानक सोइ पुकारी।
३।२।२७।२२३

हम पूरब क्या कछु पाप कराये हरनी मम पाड़ बिछोड़ करायो।
जल पीवत गाय हनी पुनि कै पुनि कै मम साध सु कोइ दुखायो।
अथवा मम पंगति भेद कर्यो करता दिज भोजन मोहि उठायो।
इस ते विधनै दुख मोहि दयो अब तो हम ना कछु पाप कमायो।
३।२।२६।२२४

(परिवारेतर क्षेत्र में)

नानक के डूबने का समाचार सुन कर दौलत खाँ लोधी की दशा :

मुणि भूपति जाइ परो घरि मै।
सुधि भूलि गए तनु की सुधि नाही।४८।
हा गुर नानक ताहि कह्यो।
उठि नैननि तैं चल्यो जल जाई।४६।
न को पराध मै कयो, त्याग केहि तै दयो।
दयाल तू कहा गयो, कहै सु बार बार यों।
गुरु प्रेम जाहि को, परै न चैन ताहि को।
कहै न कोइ नाहि को, बिना मछी अबार ज्यों।५२।
५।२।४८।४६।५२।६३१

(ख) समूहगत करुणा—बाबर-सेना द्वारा सैदपुर की लूट और कत्लेआम के पश्चात् :

बाबर लूट्यो सैदि पुरि बन्ह लिये सभ लोक।
बोझ दिये तिन सिरन पर चल्यो अपने ओक।
७।६।७।७४

कहि लोप भयो छल होइ गयो कहि रोइ दयो तिन आप उदारे।
अब काइ करो कहि पाइ परो जलु बूड मरों बिन ताहि निहारे।
कहि जाऊँ अबै बतलाऊँ झबै नहि मोहु दबै करि सो करि भारे।
जल नैन बहै पुनि वाक कहै किम प्रान रहै नहि जात हमारे।
३।२।१५।२२२

सु बोझ भार कै दवै चले सु रोवते हुवै।
सुभाखि है चलो भवै किते कि भार है ठुने।
छुटी न आपणी हदे तिनै सु वेनती वदे।
चले न पाव सो कदे सुसीस आपने धुने। ७।६।२।७४४

वहु धाम गिराइ दये तिनके कतिलाम करे लरका नर नारे।
सभ नै अपने अपने धरि कै कतिलाम परे सभ जाइ निहारे।
पर कै इक के तरि एक दवै अपने अपने तिन ढूंढ निकारे।
कतिलाम परे इतिने घर मैं गणती करने कछु नाहि सुमारे।
७।७।२।७४६

इक दावे इक परे उघारे। ओहु ओहु करि रोवहि सारे।
तिनका दु:ख तेई ते जाणे। इक लागे पुनि धाम वणाने।
७।७।२।७४६

वीर—धीर प्रशांत नायक के जीवन-चरित मे दान-वीरता एव धर्म-वीरता के उदाहरण जितने अधिक मिलते हैं युद्ध-वीरता के उदाहरण उतने ही कम मिलते हैं। नानक विजय मे भी ऐसा होना स्वाभाविक है। गुरु नानक के साहस की अभिव्यक्ति सत्यद्रोही एव धर्मद्रोही व्यक्तियो के सामने नि:सकोच भाव से सत्य भाषण मे हुई है, युद्ध-क्षेत्र मे अस्त्र-शस्त्रो के निपुण प्रयोग मे नही। अत: नानक विजय की मूल कथा मे युद्ध वीरता का सर्वथा अभाव है।

गौण कथाओ मे कही-कही युद्ध वीरता के उदाहरण अवश्य मिलते हैं। एक ऐसी ही गौण, किन्तु मूल कथा से पूर्णत सम्बद्ध, कथा है बराबर और इब्राहीम लोधी का युद्ध। इस युद्ध का वर्णन हमारे कवि ने अद्भुत तन्मयता एव तटस्थता से किया है। वे युद्ध वर्णन में जितने तन्मय है, युद्ध के प्रतिद्वन्द्वियो के बीच उतने ही तटस्थ।

सत रेण जी का युद्ध वर्णन अति सक्षिप्त होने पर भी अपूर्ण नही। सम्पूर्ण कथा का निर्वाह इस प्रकार हुआ है कि युद्ध का महत्त्व सुस्पष्ट रूप से प्रकट हो जाता है। युद्ध से पहले इब्राहीम लोधी के कुशासन[1] के प्रति सकेत करके उन्होने युद्ध की अनिवार्यता और युद्ध के उपरान्त मुगल सेना के अत्याचार[2] की झाँकी उपस्थित कर युद्ध की निरर्थकता व्यजित कर दी है।

युद्ध का वर्णन करते समय भी उन्होने सेना-प्रस्थान, सैनिकों के डील-डौल, उत्साह, मारकाट, सामूहिक भिडत एव व्यक्तिगत पराक्रम, पक्षद्वय के बीच विजय देवी का चाचल्य, सभी का सानुपात एव सतुलित चित्रण किया है। उनकी दृष्टि[3]

१. मच्यो घोर देस के माहि। विप्पर संत दुखाए ताहि।
गऊ गरीन भये दुरयारे। केत्यो के तिन धरम विगारे।

२. देखिये शीर्षक करुण रस (उपशीर्षक सामूहिक करुणा)

३. (क) चढे डील, वडे छाते, राते नैन डोलई —।७।३।१६।७३२
(ख) भूधर के सम ताहि अकारे —७।३।४०।७३५

योद्धाओं के दीर्घाकार, आरक्त-नयन, एवं सिंह गर्जन[1] पर भी गई है और उनके उमड़ते युद्धोत्साह पर भी। ऐसा प्रतीत होता है जैसे वे युद्ध भूमि में मृत्यु वरण के लिये ही आये हैं :

अंगन संजोइ सजे दोहू ओर मारू वजे सिंघन ज्यो वीर गजे रजे नाहि लरते।
दुंघभी वजै अपार गनतो न वेसुमार काहू की न भई हार कट कट मरते।
आमिख की मची घान चल न सकै जवान लोथ पर लोथ पर भरी ताहि धरते।
लरैं वीर ह्वै अगारी, लरने का चाउ भारी, वांध वांध कंगने सो
आए वीर घर ते। ७।३।१७।७३२

युद्ध-क्षेत्र का वर्णन करते समय उन्होने सेनानियो के रक्त-रंजित अंग,[2] कटे हुए हाथ[3] फटे हुए पेट, गिरते हुए सिर[4] आमिष का कीचड,[5] तडपती हुई लोथों के ढेर[6], और अशीश कबन्धो[7] का विषयमूलक चित्रण भी किया है एवं जोगनी, बेताल, शेष, कश्यप, वराह, दिग्गज, विमानारूढ़ देवता, दैत्य, राम, दुर्योधन, भीम, काली आदि का प्रकृत एवं अप्रकृत रूप से वर्णन करते हुए पुराणानुकूल वातावरण उत्पन्न करने का यत्न किया है। इस युद्ध मे पक्षद्वय के सेनानी मुसलमान हैं किन्तु युद्ध का वातावरण नानक विजय के अपने अनुरूप है। नीचे इब्राहीम और वावर के वैयक्तिक पराक्रम की परिचायक कुछ पंक्तियाँ दी जाती हैं। इसमें समाविष्ट पौराणिक स्वर विशेष रूप से द्रष्टव्य है :

इब्राहीम लोधी

धरनी डम डोल उठी सगली जव वीर विराहम आप चढे सो।
अहि कासप और वराह दवे दिग्गज रहे डमडोल खड़े सो।
गिर सों गिर आप लगे भिरनै गिरने सुलगे धरि माहि जड़े सा।
चतुरं विधि सैनि मिलाइ भले भव वीर विराहम आइ लड़े सो।
७।३।२७।७३३।।

वावर

तव वावर वीर सु आप चढ्यो जिमं दैतनि ऊपर राम गुविंदे।
धवस्यो पर जीत सु चोव परे रथ पैदलि वाज सजे सु गजिंदे।।
७।३।३२।७३४

---

१. सिघन ज्यों वीर गजे। —७।३।१७।७३२
२. लाखों काट डारे लोहू अंगन चुवात है। —७।३।१५।७३२
३. एकन के हाथ कटे, एकन के पेट फटे,
लरते सो नाहि हटे, मची रन रोलई। —७।३।१६।७३२
४. सु पटापटि सीस लगे गिरने जिम पौन प्रचंड सिरी फलु भारे। —७।३।३०।७३४
५. आमिख की मची धान चल न सकै जवान। —७।३।१७।७३२
६. चढ़ि लोथन ऊपरि लोथ गई जिम गौन लगावति है वणजारे।
इक घाइल बीर पडे रण मै धरि लोटति है मछली बिन बारे। —७।३।२९।७३४
७. धरि सीम बिना सु फिरै रण मैं गिर भूधर के सम ताहि अकारे। —७।३।४०।७३४

युद्ध वर्णन मे हमारे कवि ने दृश्य, ध्वनि एव गति पर पर्याप्त ध्यान रखा है। यहाँ ध्वनि-चित्र का एक उदाहरण अनुपयुक्त न होगा

वर झूलत ताहि निसान चले असमान उडे तिनके फररे।
इक ते इक वीर चले वन कै तिनि तोफन माहि भरे छररे।
दननाइ उठी सगली धरनी जव तोफ लगी चलने घररे।
अरराइ परे अर के दल मै अपने दिल ताहि करे कररे॥
१७।३।३४।७३४

सरर सरर सर छोडति है सर फु कत है जिम काल भुजगे।
करर करर सुकमान करै सर मारहि वावर वीर निसगे॥
७।३।३६।७३४

अद्भुत—मानव नानक को विष्णु के अवतार रूप मे चित्रित करने वाली कृति मे अद्भुत रस का प्राधान्य स्वाभाविक ही है। जन्म से लेकर स्वर्गारोहण तक नानक देव द्वारा अनेक ऐसे कार्य हुए जिनका श्रवण श्रोता के विस्मय को जागृत अथवा उद्दीप्त करता है। जन्म के समय नानक चतुर्भुज रूप मे प्रकट होते हैं और फिर बालक-वपु धारण करके माता को विस्मित करते हैं।[1] कुछ देवता आकाश से पुष्प-वर्षा करते हैं, कुछ रूप बदल कर उनके दर्शनार्थ धरती पर आते हैं। जन्म के कुछ ही दिन बाद गोरख नाथ वहाँ पहुँचते हैं। शिशु नानक उनकी मुद्रा निगल जाते हैं। तदुपरात मुख खोल कर उन्हे अपने मुख मे स्थित अनन्त सृष्टि दिखाते हैं —

लाखो ब्रह्म विसन महेस। लाखो रवि ससि लाखो सेस।
लाखो इन्दर वरण कुबेर। लाखो सागर और सुमेर॥५०
लाखो स्वर्ग मृतक पाताला। लाखो सकती लाखो काला।
लाखो वेद पुराण कुराणा। लाखो पीर पकबरि सुजाणा॥५१
लाखो खाणी वाणी खडा। लाखो तिन देखे ब्रह्मण्डा।
देखत ताहि सुविसमै भयो। गोरख का अभिमान सु गयो॥५२
२।१५।५०-५२।१६८

तदनन्तर नानक देव के अनेक चमत्कार-पूर्ण कृत्यो का वर्णन है। एक बटमार उन्हें उठाकर ले जाना चाहता है, शिशु नानक अपनी देह का भार बढा कर उसे मृतप्राय कर देते हैं।[3] चरणामृत द्वारा एक कुष्टी का कुष्ट दूर करते हैं,[4] मृत

---

१ (क) प्रगटे गुपाल लाल चतुरि भुजा बिसाल मृगुलता बनमाल लागत सुहावनो
[—२।१३।८।१८०

(ख) बालक वप पुनि धारियो सुन्दर रूप अनूप।
विसमै भइ सु देख करि अदभुति ताहि सरूप। —२।१३।३०।१८०

२ पितर सुमहोरग देव वधू अपना अपना सव रूप बटाए। —२।१५।२२

३. भारी अपना देहि बनायो। देकर भार रुताहि दबायो। —३।१।३८।२१७

४. नानक विजय, पृ० २५१ तथा पृ० ६०१

हाथी को पुन: जीवनदान देते है[१] कुत्ते के सिर पर हाथ रख कर उससे हाफिजि-कुरान के समान कुरान पढवाते हैं।[२] श्रीफल को बालक (श्रीचन्द) बना देते हैं,[३] राम नाम के उच्चारण मात्र से क्षण भर मे सहस्र योजन की यात्रा तय कर लेते हैं।[४]

ये सब चमत्कार तो नानक देव (विष्णु के अवतार) के जीवन से सम्बद्ध हैं। कुछ चमत्कार अन्य पात्रों से भी सम्बन्धित हैं। एक योगी अकस्मात् रूप परि-वर्तन से अपने दर्शकों को विस्मित एव आतकित करते हैं :

खिन नाग वने खिन बाघ वने खिन आग वनै खिन मै हुइ पानी।
खिन व्यार वनै खिन स्यार वने खिन दार बनै गिन गाव वनानी।
तलवार वन्दूक अनेक चले पर होय नही इसकी कछु हानी।
इसिके परपच न जाइ लखे वहु रूप धरै खिन मैं अग्यानी॥
५।१२।४१।६७६

इस प्रकार के मानवाश्रित चमत्कारो के अतिरिक्त कुछ प्रकृत्याश्रित चमत्कारो का वर्णन भी नानक विजय मे हुआ है जो घटनाओ के लिये उपयुक्त वातावरण की सृष्टि करते हैं। मक्का-विजय की यात्रा के समय, गुरु नानक और उनके सहचरों के लिये शुभ शकुन दिखाई देते है, एव मक्का-निवासियो के लिये अपशकुन। मक्का मे होने वाले अपशकुनो का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

गार लगी वादल विन परने। परी बहुत कवि कहि लगि वरने।
वाइसि बोलै रैन' मझारा। दिन को स्यार सु करै पुकारा॥
आधी पवन चली वहु भारी। मानुख कोइ न देइ दिखारी।
वहु उत्पाति मके मे भयो। मजव अभाउ जनाइस दयो॥
६।१।४७।८८३

सक्षेप मे हम कह सकते है कि नानक विजय मे चमत्कार स्वाभाविक एव साधारण घटना के समान ही स्वीकृत है। वे अवताराश्रित हैं और प्रकृत्याश्रित भी। वे हमारे विस्मय को उद्बुद्ध तो करते ही हैं, यथाप्रसग हमे कभी आतकित और कभी आश्वस्त भी करते हैं।

शान्त—जिन दो रसो की अभिव्यक्ति नानक विजय मे सर्वाधिक हुई है वे है अद्भुत और शान्त। जहाँ अद्भुत का सम्बन्ध मुख्यत इसके कथा-निर्वाह और चरित्र-चित्रण से है, वहाँ शान्त का सम्बन्ध मुख्यत इसके उद्देश्य से है। उदासी सत रेण निवृत्तिमूलक प्रेम मे विश्वास रखते थे। दूसरे शब्दो मे उनके विश्वास के दो छोर थे—सासारिकता से विरक्ति और भगवान के प्रति आसक्ति। नानक विजय की प्रत्येक कथा मे इन दोनो छोरो मे कोई एक प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष (बहुधा अप्रत्यक्ष) रूप से सदा विद्यमान रहता है। सत रेण मे निवृत्ति अथवा प्रेम को सीधे,

१. नानक विजय पृ० ७३०।
२. वही, पृ० ६०४।
३. वही, पृ० ६११।
४. वही, पृ० ८८५।

कलारहित उपदेश का विषय बनाने की रुचि न्यूनातिन्यून है। शांत अधिकतर सूक्ष्म वातावरण के रूप में, नायक की चारित्रिक विशिष्टता के रूप में अथवा घटना-चक्र के प्रभाव-रूप में सम्पूर्ण रचना में व्याप्त है। शान्त रस के स्फुट, निरपेक्ष उदाहरण नानक विजय में बहुत कम मिलते हैं। प्राप्य उदाहरणों में से एक इस प्रकार है :

राज तजे गज बाज तजे सभि साज तजे सुख संपति सारी।
नौकरि चाकरि भोग बिलास तजे सगले तिन आप उदारी।
एण मृगान लए तनु ऊपरि पाट पटंबर ताहि सुडारी।
कंद फलादि अहार करै सिमरै निस बासरि राममुरारी॥
५।८।५०।६५६

अन्य रसो के उदाहरण

वीभत्स

कुसटी इक बनिया तह आयो। कुस्ट रोग तिनका तन खायो।
तन के माहि किरम परि गए। बालक ताहि सु बूझत भये॥
२।७।२।२५१

भयानक

(राक्षस का वर्णन)—

अति देह दीरघ ताहि को तन स्याम अरु बिकराल।
बहु रोम तनु के ऊपरे सघूरि अरचंति माल॥
२।२०।१५

रौद्र

अति प्रचण्ड क्रोध तहि भयो। जनु अगनी मैं दधि सुत दयो।
५।७।५३।६५२

संग लयो जयराम चली सो धायकै।
मानो देति जलाय सुचली रिसायकै॥ ५।७।५४।६५२

हमारे कवि ने प्रकृति चित्रण जिन दो रसो के प्रसंग में किया है, वे हैं—शृंगार और शान्त। शान्त रस के सम्बन्ध में उसने प्रकृति के सौम्य और विकराल दोनों रूपों का चित्रण किया है। उदाहरण इस प्रकार है :

प्रकृति का सौम्य रूप (तपोवन वर्णन) :

इति कोकिल कीर मयूर रटैं, उति एण फिरैं बन मैं मतवारे।
सुणि बेदन की ध्वनि होहि खुसी इति भौर गुंजार करैं बन सारे।
इति पावन गंग वहै निकट उति फूल फुले कछु नाहि सुमारे।
असि आस्रम आहि पुनीत जुऊ तप काज मुनी तहि आप पधारे।
२।५।२१।१२६

प्रकृति का विकरात रूप (तपः-प्रभाव-वर्णन)—

जिम सागर के मथते वसतं गिरराज हलै जल माहि उदारे।
तिम काप उठी वसुधा सगली खुरराट मच्यो गरवे गिर भारे।
गिर सो गिर आप लगे भिड़ने सरके सभि दिग्गज आप अगारे।
फण सेस पसार दये अपने डरते कमठं पर ताहि सुसारे॥
२।७।१६।१४०

पुनः

तब डोल उठी सगली धरनो तिम देखति सो भयभीत भई है।
गज के सुचढे जिम हलै सुइ हो उपमा कवि राम दई है।
२।७।१६।१४०

परचियाँ

(लेखक : सहज राम)

गत पृष्ठो मे जिन प्रबन्धात्मक रचनाओं का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, वे सभी गुरु-व्यक्तियों से सम्बन्धित हैं। इस काल की दो ऐसी रचानायें भी उपलब्ध हैं जिनके नायक गुरु न हो कर गुरु सिक्ख हैं। इन रचनाओ के नाम हैं :

(१) वार अमरसिंह की (लेखक : केशव दास)
(२) परचियाँ सेवा राम (लेखक : सहज राम)

इन दोनों कृतियों की रचना लगभग एक ही समय मे हुई। 'परचियाँ' की रचना स० १८३४ वि० (सन् १७७७ ई०) मे हुई। 'वार अमरसिंह की' रचना भी स०१८३१ वि० के कुछ ही काल पश्चात् हुई। किन्तु ये दोनों रचनायें दो विरोधी प्रवृत्तियो की परिचायक हैं। जहाँ पहली काव्य-रचना का सृजन एक राज्याश्रित कवि द्वारा एक राजा की प्रशसार्थ हुआ वहाँ दूसरी काव्य-रचना का सृजन एक आत्म-समर्पित व्यक्ति द्वारा एक महात्मा के कीर्तिगान के प्रयोजन से हुआ। एक कुछ दिन फूलवशी राज्यसभा मे सम्मानित एव पुरस्कृत हो कर विलीन हो गई, दूसरी सेवा पथी संत सभा मे आज तक सम्मान की पात्र बनी हुई है। पंजाब मे राज-दरबारी काव्य के श्री गणेश के समय ही 'परचियाँ' की रचना बडे महत्त्व की सूचक है। सत सभा मे सम्मानित यह कृति (और इसके पश्चात् आने वाली दूसरी कृतियाँ) राज दरबारी काव्य के प्रतिद्वद्वी के रूप मे प्रकट होती हैं। वस्तुतः पजाब मे रचा जाने वाला हिन्दी-काव्य लोक जीवन से कभी विच्छिन्न नही हुआ। इन दोनो पुस्तको के स्वर का अन्तर भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। जहाँ पहली कृति सद्यःसत्ता प्राप्त राजाओं के औद्धत्य की सूचक है वहाँ दूसरी कृति सद्यः स्वतन्त्रता प्राप्त पजाबी जन-साधारण की नम्रता की परिचायक है। कटु अतीत की स्मृति को जनसाधारण के

जीवन का स्थायी अंग नही बनना चाहिये, 'परचियाँ' इस स्वस्थ प्रवृत्ति की परिचायक है।

भाषा आदि की दृष्टि से भी ये दो विरोधी प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। 'वार' चमत्कारवादी प्रवृत्ति को अपनाती है, 'परचियाँ' जनवादी सारल्य को।

'वार महाराजा अमरसिंह' का आलोचनात्मक अध्ययन इस निबन्ध के तृतीय खण्ड (दरबारी काव्य) मे किया गया है। यहाँ केवल इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि इस वार मे पटियाला के द्वितीय नरेश महाराजा अमरसिंह की एक जय-कथा कही गई है।

इस अध्याय मे 'परचियाँ सेवा राम' का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

परचियाँ

'परचियाँ भाई सेवा राम जी की रचना है। इसमे प्रसिद्ध सेवा पंथी महात्माओ (भाई कन्हैया जी, भाई सेवा रामजी और भाई अड्डण जी) के जीवन से सम्बन्धित कथायें दी गई हैं। इन मे भाई कन्हैया जी और भाइ अड्डण जी से सम्बन्धित कथायें तो सरल गद्य मे हैं, भाई सेवा रामजी से सम्बन्धित कथायें पद्यबद्ध हैं। 'परची' शब्द 'परिचय' से बना है। हिन्दी क्षेत्रो मे इसी अर्थ के लिए 'परिचयी' शब्द का प्रयोग होता है। इन महात्माओ का परिचय देने के कारण ही यह कथासमूह परचियाँ (परची का बहुवचन) नाम से प्रसिद्ध है।

पाण्डुलिपि—'परचियाँ' सेवापंथी सम्प्रदाय का विख्यात ग्रन्थ है और इसकी कथा सेवापंथी डेरो मे प्राय होती है। इसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ विभिन्न सेवापंथी महात्माओ के पास हैं। सेवापंथी महात्मा अपने ग्रंथो को मुद्रित करवाने से संकोच करते रहे हैं।[१] 'परचियाँ' भी अभी तक हस्तलिखित रूप मे उपलब्ध है। इसके मुद्रित होने की निकट भविष्य मे कोई आशा नही। प्रस्तुत निबन्ध के लिये सं० १९३८ वि० मे लिपिबद्ध प्रति से लाभ उठाया गया है। उपर्युक्त प्रति महंत नारायणसिंह अमृतसर के सौजन्य से प्राप्त हुई।

कथा—भाई सेवा रामजी का जन्म सिंध प्रदेश मे संत पिता के घर हुआ। पिता के मन मे पुत्र को संत बनाने की इच्छा थी। बारह वर्ष की आयु मे ही उन्होंने गृह त्याग दिया और गुरु की खोज मे भटकने लगे। उनकी भेंट एक पाखण्डी उदासी संत से हुई। कुछ दिनो के पश्चात् आप उसे छोड कर भागे। फिर गुरु तेगबहादुर द्वारा दीक्षित भाई कन्हैया से आपकी भेंट हुई। उन से सेवा का उपदेश पाकर वे सेवा यात्रा पर निकलते हैं। उनकी प्रिय सेवा थी मरु प्रदेश मे कुएँ खुदवाना। सेवा-कुम्भ मे उन्हें कई आपदाओ का सामना करना पडा। इसके पश्चात् उनकी भेंट एक और महात्मा से हुई जिनका नाम था अड्डण शाह जिन्होंने इनसे दीक्षा ग्रहण की। इसके पश्चात् महात्मा सेवा राम के जीवन से सम्बन्धित सेवा-कथाओ की एक लम्बी शृंखला का आरम्भ होता है।

---

१ अब तक सेवापंथी भेष की केवल दो पुस्तकें ही प्रकाशित हुई हैं—'सत रत्न माला' और 'आसावरियाँ'।

'परचियाँ' सेवा राम के जीवन से सम्बन्धित अनेक स्फुट कथाओं का संग्रह है और यह जन्म-साखी की शैली पर लिखा गया है। जन्म-साखी के समान ही यह रचना भी घटना-क्रम पर बल न दे कर घटना-प्रभाव पर बल देती है।

चरित्र—'परचियाँ सेवा राम' के मुख्य पात्र महात्मा सेवा राम हैं। सहज राम स्थान-स्थान पर उन्हें व्यक्तिवाचक अभिधान से स्मरण न करके संत,[1] हरिजन[2] आदि गुण-सूचक अभिधानों से स्मरण करते हैं। वे संतों को ईश्वर का अवतार मानते हैं;[3] किन्तु उनकी अवतार भावना सुक्खासिंह, संत रेण आदि की अवतार भावना से सर्वथा भिन्न है। सहज राम ने अपने नायक को अलौकिक अथवा दिव्य शक्तियों से विभूषित नही किया। सारी कथा मे एक भी स्थल ऐसा नहीं जहाँ किसी विपदा के निवारणार्थ कोई अलौकिक घटना घटी हो। कथा प्रवाह में दैवी शक्तियों का हस्तक्षेप कही नही हुआ।

सहज रामजी ने 'परचियाँ' के आरम्भ में ही सेवा राम के चरित्र का परिचय इन शब्दों मे दिया है :

नीके मनि नीके वचन नीके सभ गुण अंग।
संत अउतार अउतार प्रभु जनमु लियो सरवग।

सेवा राम जी की 'परचिया' के आरम्भ में ही सेवा राम के चरित्र का सारांश इन शब्दो में प्रस्तुत किया है :

अब सुनहु संत सेवे की गाथा। ब्रह्म अनन्द भीना जिस माथा।
प्रभु को दृढ़ करि मनि महि गहा। आन धान सकली को दहा।
अपना आपु हरि अरपनु कीना। भ्रम भौ मेटि भये लिवलीना।
अतरि बाहरि प्रभू विराजे। सकली विध हरि हरि छाजे।
जैसे खाँड-पूतरा होई। सकले अंग खांड के सोई।
जिह जनि लच्छन प्रभु गहे सो जन प्रभू पछानु।
कहन सुनन को दोह है है एको भगवानु।[4]

'परचियाँ' बहुत मर्यादित स्वर में लिखी गई रचना है और इसमे न चारित्रिक अतिरेक दिखाने का प्रयास है और न चारित्रिक वैविध्य के प्रदर्शन का। किसी को बुरा न कहने की प्रवृत्ति के कारण हमारे कवि मानव-स्वभाव के बहुमुखी दृश्य

१. जबहि सत भयो बरख दुआदस। —परचियाँ, पृष्ठ ७२।
इक और पतिशाह संत दरसनि आया।
कारन संत कछु भेट ल्याया।
काढ़ि भेट संत आगे धरी।
मुख स्यो विनउ तिन एह उचरी। —परचियाँ, पृष्ठ १०१।

२. रग रग महि धाइ विस गई। हरिजन अधिक प्रसन्नता भई। —परचियाँ, पृ० ६१।

३. नीके मनि, नीके वचन, नीके सभ गुण अग।
संत अउतार अउतार प्रभु, जनमु लियो सरबंग। —परचियाँ, पृ० १।

४. परचियाँ, पृ० ७४।

चित्रित नही कर पाये। उनके नायक भी इतने विजितेन्द्रिय एव विजित-विकार हैं कि उनमे एक सीमित-सी एकाग्रता के लिए ही स्थान है। ये या तो भगवद्-स्मरण में व्यस्त दिखाई देते हैं या नि स्वार्थ सेवा मे। सर्वत्र सेवाप्रिय, श्रमप्रिय, दयालु चरित्र का ही प्रभाव दिखाई देता है।

बीच-बीच मे नायकेतर पात्रो के माध्यम मे कही-कही मानवीय दौर्बल्य के उदाहरण भी मिलते हैं। ऐसे स्थल पाठक को आश्वस्त कर देते हैं कि लेखक मे मानव-स्वभावगत दौर्बल्य एव द्वन्द्व चित्रित करने की पर्याप्त क्षमता है। किन्तु महात्मा नायक और महात्मा लेखक के दुहरे आग्रह के कारण ऐसे स्थलो की सख्या बहुत कम है। कुल मिला कर 'परचियाँ' के चरित्र-चित्रण मे जितनी एकाग्रता है उतनी विविधता नही।

आर्द्रता उनका प्रमुख गुण है। यह आर्द्रता दु खी प्रजा के दुखमोचन मे और दुष्टो को क्षमा दान मे अभिव्यक्त हुई है और भगवद्-विरह की अनुभूति मे भी। विरह प्रसग मे अभिव्यक्त आर्द्रता के कारण इस प्रबन्धात्मक ग्रथ मे भी कई स्थानों पर प्रगीतात्मक सौंदर्य का आभास होने लगता है।[1]

लोक-पक्ष—सेवापथी सम्प्रदाय का परिचय देते हुए हम कह चुके हैं कि केशधारी खालसा सिक्खो की अपेक्षा वे मुसलमान शासको को अधिक सह्य थे। वे मुसलमान शासन के विरुद्ध चल रहे विद्रोह आन्दोलन से सर्वथा अलग रहे। धर्म-जाति आदि के भेद भाव के बिना, सम्पूर्ण मानव जाति की सेवा इन महात्माओ को प्रिय रहा। वे सभी पर 'दया-मेघ' के समान बरसते रहे हैं।[2] सभी जीवो को राम की शैया समझ कर उन पर अपने आपको न्यौछावर करना सेवापथी महात्माओं का वैशिष्ट्य रहा है।[3]

साधारणत वे राजनीतिक विवादो मे उलझना नही चाहते थे। किन्तु इसका यह अभिप्राय नही है कि वे कुशासन के प्रति सहिष्णु थे। विद्रोह आन्दोलन में सक्रिय भाग न लेते हुए भी वे तत्कालीन कुशासन को अच्छा न समझते थे और यथा-समय, शासक के कोप-भाजन बने बिना अपना भाव भी व्यक्त कर देते थे। 'परचियाँ' मे ऐसे उदाहरण आते हैं जहाँ सेवा रामजी ने सत्य सुनने के अनभ्यस्त बादशाह को

---

१. खाना पीना नींद न भावै। हरि सिमरनि हिरदे हित आवै।
 सतिगुर करि हरि मेला होई। इउ जानत मनि अपने सोइ।
 इत करिकै सतिगुर को खोजे। पाइये कही सतिगुर की मौजे। —परचियाँ, पृ० ७७।
 लोचन सो अमुवा ढरकावै। मुख सा इह बानी ले गावै।
 जिय के दाने गोबिन्द प्यारे। मोहि तुमारे मिलन को चाउ मुरारे।
 —परचियाँ, पृ० ७६।

२. अपना जीउ सकल को दरसहु। दया मेघ सभहू पर बरसहु। —परचियाँ, पृ० ८५।

३. अरपनु करियै आपना सगल स्वामी जानि।
 सभ घटि सिइजा (सेजा) राम की फूल चढ़ाहु स्यानि। —परचियाँ, पृ० ७१।

मिलने से संकोच किया।[1] बादशाह से भेंट करते समय वे प्रजा पर हो रहे अत्याचार की बात कहने से भिझकते न थे। एक बार एक बादशाह उनसे मिलने के लिये आया। महात्मा सेवा राम ने उसकी भेंट स्वीकार न की। उन्होने कहा कि हमें प्रजा-सुख की भेंट दो। उन्होने बादशाह को बताया कि उसके कोतवाल प्रजा पर कितना अत्याचार कर रहे है :

कुटवाल न भौ भगवंत का करते। जिस किस खट कढि लेह न डरते।
जो पर सूत होइ परी नारी। खाटि खस लेह उन देहि उतारी।
दोनों ही ग्रोहु दुखिये होते। माता बारिक बुसि बुसि रोते।
दोनों के तन फूल न्याई। सीत घाम की ताव न ल्याई।[2]

सत दास छिब्बर (कर्त्ता जन्म-साखी) ने तुलसीदास का अनुसरण करते हुए आदर्श राज्य को कल्पना की थी। इसका उल्लेख इस अध्याय मे हो चुका है। सहज राम आदर्श राजा का चित्र इस प्रकार अंकित करते हैं।

एह भेट हमको भी भावै। न्याउ ढूँढ जो राज कमावै।
सुनि सुनि बात सुख मन मानो। न्याई बात भजन करि जानो।
बड भागी सो राजा भाई। न्याउ ढूँढ जो राज कमाई।
बलु अपना बलु प्रभु को जानै। आप स्यो घटि न कोऊ मानै।
दुखी दीन मसकीन जु आवै। कान देइ सभ बात चलावै।[3]

सक्षेप मे, हमारी धारणा है कि सहजराम लोक-कल्याण की ओर से उदासीन नही। सेवापथ का परम वैशिष्ट्य 'सब की सेवा' तो निश्चय ही लोक-कल्याण का ही दूसरा नाम है। राजनीतिक क्षेत्र मे चल रहे विद्रोह आन्दोलन के प्रति वे मौन हैं। किन्तु जिस कुशासन के उन्मूलन के लिये वह आन्दोलन चल रहा था, उस कुशासन के सम्बन्ध मे अपने विचार अभिव्यक्त करने मे उन्होने सकोच नही किया। उनकी परोक्ष सहानुभूति विद्रोहियो के पक्ष मे ही है।

सामाजिक कुरीतियो और धार्मिक दम्भ पर भी उनकी दृष्टि गई है। इन कुरीतियो का निराकरण हमारे कवि को अभीष्ट है, किन्तु वे इनका उग्र खण्डन करना उचित नही समझते। वस्तुत. सहज राम का बल निषेध पर न हो कर स्वीकृति पर ही रहा है। वे किसी स्वीकरणीय मूल्य का उल्लेख करते समय निराकरणीय रीति का उग्र विरोध नही करते। यहाँ दो उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं, जहाँ उन्होने वर्णाश्रम और तीर्थ-सेवन के विषय मे अपने मत व्यक्त किये हैं :

---

१. बादशाह के आगमन पर वे छिप जाते हैं। क्यों ?

हम बात जु करते साच की करते।
कूड (झूठ) न बोलत उन स्यों डरते।
सो उनको भावत था कूड़ा।
साच बात क्या जानत मूड़ा। —परचियाँ, १० १०८

२. वही, प० १०६।

३. वही, प० ११०।

वर्णाश्रम

जात पात प्रभ को सब कोई। उतपति सगल ब्रह्म ते होई।[१]

तीर्थ सेवन

जिन हिरदे नही कछु दया तिनके चित्त कठोर।
तीरथ गए न सिझही जो परसहि लाख करोरि।
किरपन को तीरथ कछु देवै। इन बिन और न तीरथ सेवै।
दान तीर्थ महि तिन निस्तारा। तीर्थ और न सिझै विचारा।[२]
कामी को तीरथ है जतु। राखै मन महि सजमु सतु।
इन तीरथ पर इन गति होई। तीरथ और न छूटै कोई।
लोभी को तीरथ सतोख। क्रोधी को तीरथ निरदोख।
भूपति तीरथ न्याउ है इन मे बर इसनान।
इन तज जावै तीर्थहि छूटै नाहि निदानि।[३]

'परचियाँ' मे वेद-पुराण पर भी मत व्यक्त हुए हैं।[४] वेद पुराण उनके प्रेरणा-स्रोत तो नही, किन्तु वे उनकी श्रद्धापूर्ण स्वीकृति का विषय अवश्य हैं। यही बात गुरु के लिये सत्य है। गुरु पर पूर्ण विश्वास रखने पर भी वे उस पर विशेष बल नही देते। सहज राम की मुक्त-कण्ठ प्रशंसा 'सतो' के लिये सुरक्षित है। इस सम्बन्ध मे उनपर तुलसी दास का बहुत आभार है जिसे उन्होंने तुलसी दास का एक सोरठा उद्धृत करके स्वीकार भी किया है। तुलसीदास का अनुकरण करते हुए उन्होंने ग्रथारम्भ मे सतो की महिमा इस प्रकार की है :

उस्तति सति सुनहु कछु मीता। पतति कोटि किये सति पुनीता।
पर उपकार समुन्द्र सुसता। परम उदार सुसील महता।
बचन यग्ग सभ जग महि करता। तृष्णा भूख सकल जन हरता।
जज्ञासी अहि पावन सता। लाइ अतंतिहु तपत मिटता।[५]
फूले फले नही बेंतु जो कर बरखै सुधा जलु।
मूरख होइ न सुचेत जो गुरु मिलहि बिरच सतु।[६]

'परचिया' की महत्त्वपूर्ण देन यह हैं कि यह लेखकों और पाठको का ध्यान गुरु से हटा कर गुरु सिक्ख की ओर केन्द्रित करती है। गुरुओ और महाबलियो के महान् कृत्यो के अतिरिक्त समाज सेवी व्यक्तियो के कुछ कम महान् कृत्य भी गेय हैं।

---

१. परचियाँ, पृ० ८५।
२. वही, पृ० १२१।
३. वही, पृ० १२२।
४. चार वेद षट सास्त्र माइ। अन गुन कथि मित ताहि न पाइ
सत बेद के कहे पर चालत ते भी सत।
जो इन वचा न मानते ते खल आतमहत। —परचियाँ, पृ० ८१
५. वही, पृ० ७४।
६. वही, पृ० ७५।

विजय गाथायें ही नहीं, सेवा गाथायें भी अभिलेखनीय हैं, यही इस रचना का प्रमुख उपदेश है। अवतार पुरुष-तुल्य गुरु तो जगदुद्धारक थे ही, उनके उपदेशों से प्रेरित गुरु-सिक्ख भी इस धरणी के दुःख-दारिद्रय को कम करने में सहायक हो सकते हैं, 'परचियाँ' का यह दृष्टिकोण अपेक्षाकृत आधुनिक प्रतीत होता है।

सहज राम की दृष्टि साधारण और समकालीन है, असाधारण और प्राचीन नहीं, इसका एक प्रमाण यह भी है कि उन्होंने पौराणिक प्रभाव को बहुत कम ग्रहण किया है। उन्होंने पुराण का खण्डन नहीं किया। उसकी श्रद्धापूर्ण स्वीकृति के संकेत भी 'परचियाँ' में मिल जाते हैं। किन्तु उन्होंने पुराण से प्रेरणा ग्रहण नहीं की। हमारे काल में पड़ने वाले सभी ऐतिहासिक प्रबन्धों में 'परचियाँ' पर पौराणिक प्रभाव न्यूनतम है।

शैली की दृष्टि से भी 'परचियाँ' की कतिपय कथाओं में आधुनिकता की प्रतीति होती है। कुछ कथाओं में आधुनिक लघुकथा का सा आनन्द मिलता है। ये सभी साधारण मानव की असाधारणता पर तो हमारा ध्यान केन्द्रित करती ही है, पर असाधारण, अथवा अतिमानव पात्रों एवं चमत्कारवादी कार्यकलाप का सर्वथा बहिष्कार इसके अधुनातन स्वरूप में कोई संदेह नहीं रहने देता। इसी रचना की समसामयिक रचना 'वार अमरसिंह की' चमत्कारों से मुक्त नहीं है। वहाँ राजा ने सूर्यास्त तक शत्रुओं पर विजय पा लेने की प्रतिज्ञा कर रखी थी। इस प्रतिज्ञा की लाज रखने के लिये सूर्य भगवान अपना अस्तकर्म स्थगित कर देते हैं।[1] सहज राम ने कल्पना से ऐसे असम्भव कर्म कराने से संकोच किया, 'परचियाँ' अपने सभी पूर्ववर्ती प्रबन्धों की अपेक्षा भौतिक यथार्थ के अधिक निकट है। कल्पना की हानि यथार्थ के लाभार्थ हुई है।

कतिपय घटनाओं में काव्य-न्याय का अभाव भी इसे मध्य-युगीन कथा शैली से अलग करता है। यहाँ न सज्जन अपनी सज्जनता के लिये सदा पुरस्कृत होते हैं, न शठ अपनी शठता के लिये दण्डित। उदाहरण रूप में जो कथा यहाँ उद्धृत की जा रही है उसमें भी शठ अपनी शठता का दण्ड नहीं भोगता। परन्तु इन कथाओं में उपदेशात्मक प्रवृत्ति का सर्वथा निराकरण भी नहीं हुआ जिससे प्रकट होता है कि उनमें आधुनिकता के प्रथम क्षीण चिह्न ही हैं, मध्ययुगीन प्रवृत्तियों से वे सर्वथा मुक्त नहीं हैं।

---

१ तिमर भये मट्टी दलन, चल आवैं चहुँ ओर।
विनय करी नृप देस ने, रवि की रुके सु तोर (गति)।
दिवस बढ्यो जानै जगन, कृपा करी वृजराय।
अमरसिंह महाराज के, सरन भयो सहाय।

—प्राचीन जगनामा, पृ० ५१

'परचियां' से एक कथा

चौ०—सत सभा इक वारक आवत। सो अति सुन्दर मन को भावत।
सत वचन रसु तिन को आवै। इत करि उह नित आवै जावै।
आगे सत सुभाव सु ऐसा। सभ को आदर आवै जैसा।
निरधन सरधन देवहि थोई। सुन्दर अनसुन्दर होइ ढोई।
चार वरन तुरक अरु हिंदू। पट दरसन जो मानस जिंदू।

दो०—सभ आदर हरिजन करै जो आवै सत पाहि।
कहे सत साक प्रभू का सभ सो हमरो आहि।१।

चौ०—सत पाहि जो जन था आवत। गुरमति बात जो सुनत सुनावत।
ता को सत न देवत विदा। जद तक जन का दरसहि रिदा।
आपहि जाइ त मनहि न करते। आए को कढ देह न धरते।
सो वारक भो आवै तहा। इक जनु उन पर माइल महा।
उन वारक सुन्दर को इउ जाने। इह हमरो सतिगुर भगवाने।१०९

दो०—कामो को गुरु इस्त्री लोभी का गुर दाम।
कबीरे के गुरु सत हहि सतन के गुरु राम।१।

चौ०—जिनका काहू स्यो है मोह। ओही उनका सभ कछु ओह।
प्रभू भि उनका ओही भाई। जिन स्यो है उन प्रीत लगाई।
सिमरन भी उनही का करे। जिन की प्रीत होत है उरे।
करम भी उही उह ले धारत। ज्यो प्रापति होत मनहि निहारत।
उन वारक सुन्दर स्यो जन प्रीत। बारक प्रीत हरजन की चीत।११०

दो०—हरजन सगति आइकै वारक रहै विहालु।
पाँच पुचार तन ना रखे जो जन द्रस होइ निहालु।१।

चौ०—कपडा मैला होइ त होवै। उद्दम करि तिन को नही धोवै।
अजिन विजन शस्त्र सुभाई। सगले दीने ताहि भुलाई।
जो जन महि लसौ तन दरसे। उनका चित्त मो स्यौ इह हसे।
कछु वारक चित भगवानी। ओहु उनका ना महरम प्रानी।
जन सग वारक करे न चोजा। उन अन खोज उन अन खोजा।१११

दो०—वारक जन आजोड अति दीरघ घन्यो ताहि।
जनि हरिजन पहि आइकै बात वखानी आहि।१।

चौ०—हे हरजन इह वारक जो है। तुमरी संगत महि नही सोहै।
तुम इन को निज ईहा काढो। यह हम को दूख वन्यो है डाढो।
तुमरी सगति करिकै मोता। इन ने गही सगल अनीता।
पटे चीरे कगण भाई। सगले दीने ताहि भुलाई।
अति कुचील कुहतरा रहे। हमरा देख जोअरा दहे।
ताते इन को ईहा टारो। हमरी विनउ रिदे तुम धारो।११२।

दो०—हम सो हास विलास जो करता होता नित्त ।
जब का संग तुमरे मिल्या तब का करे न मित्त ।

चौ०—संत कह्या सुन मीत हमारे । जो तुम साक हम ओहु न प्यारे ।
इन सुंदराई मै नही देखों । तुमरा साक इहै मै पेखों ।
गुरमति साक राखो मै मना । सुन्दर कोभा कोऊ होवै जना ।
जो आवै तिह काढ़ो नाही । नह आवै तिह सदन न जाही ।
तुम जो कहो इन ईहा काढ़ो । यह है अन विचार वहु डाढ़ो ।११३।

दो०—मन मतिये जन के कहे गुरमतिये देउ डारि ।
इउ तो मोहि न करत हो सुन हिरदे महि धारि ।

चौ०—नहि इन ने कछु जूआ खेला । नहि इन ने कछु पासा मेला ।
नहि इन ने पर नारि भुगानो । नहि कहूं निंद न उस्तति ठानी ।
नहि कहूं इन दरब चुराया । नहि काहूं स्यों वैर रचाया ।
गुरमति बात एहु है करे । तुम मनमति करि हियरा जरे ।
बिना दोस इन कढउ न घरते । मनमति तुमरी स्यो नहि डरते ।११४।

दो०—बाई नर के कहे ते स्याने करिये डंड ।
इह अन्याउ न मैं करो सुन मन महि मंड ।

चौ०—इहु जवाब जब तिन नर पाया । तब उन ले इहु कपट रचाया ।
कटोरा सरबत को भरि भाई । बीच आनि बिक्ख तिन पाई ।
मन महि तिन यहि सोची सोच । भास सुनाऊं उन चित की रोच ।
करि प्रसादि प्यावउ संत । सांत सरीर हो जावै अंत ।
तब मम मशूक जावैगा कहा । हम उइ मित्रल सदके कर लहा ।
तब बिख सरबत ले कपटी आया । आनि संत की भेट चढ़ाया ।
।।११५।।

दो०—सत पराछित सम दरस बिखु अमृत इक भाइ ।
देखि निरादर ना किया धरी भेटि ति नाहि ।१।

चौ०—मुख स्यो बात कपटी बतलाई । खोल सुनाउ तुम को हे भाई ।
हे हरजन हमरी रुचि आही । तुम पहि कबी प्रसादि ल्याई ।
आजु मोर मनु इउ ही मंगा । सरबत प्रसादु बनाया चगा ।
हम देखत तुम इन को पीवहु । तब मन जीअ खुसी बहुथीवहु ।
सो हरि जन सभ जानी जाना । नर बारिक बहु पिता सुजाना ।
बारक बात सभ पिता पछाने । बारिक बाति छपाई जाने ।११६।

दो०—संत जना बिख अचवी मनि महि एहु बिचारु ।
जो कछु सहजे आया भोगन बने है यार ।१।

चौ०—मनि महि एह चितबो हरि जने । अब विख को नही डारणु बने ।
लाख जना मोहि खण्ड खवाई । उनको पूरन कीनी चाही

बिख वारे की चाह भि मानउ। इउ ही पूरी मनि महि जानउ।
खड सकारथी होवै तब ही। बिख को मुख नही फेरउ जब ही।
खंड बिख जब समरस जानो। तब हर दरगहि होहु प्रवानो।
इह रिद धारि बिखख अचवानी। अचदत दुंद परी तनि ज्ञानी।
।११७।

दो०—ज्ञानी चित अडोल सद तन स्यो तत विरुद्ध।
ज्यो जल अगन अजोड़ है त्यो बिख तन को जुद्ध।

चौ०—रग रग महि धाइ बिख गई। हरिजन अधिक प्रसन्नता भई।
तन बिख दोनो ठटी लड़ाई। ज्यो सूरे स्यो सूर घुलाई।
सत पतिसाह वखि बैठा वेखे। दुहूँ तमासा रच्या पेखे।
मुख स्यो बचनु तालु इह लाया। भले भाई बात बताया।
पाँच घरी लो रग लगि रह्या। हरिजन फूल फूल बहु पया।११८।

दो०—तन की ओध कछु रहति थी सत चितारो बात।
मरच पीउ ले अचव्या तब होई कुसलात।१।

चौ०—संत जीअ महि एहो भेदा। बरन सुनावत चारो वेदा।
संतन बिख अमृत एकताई। जीअ को बिखु बिखु अमृत अमृताई।
संत न्यारे तन ते भाई। जीअ बुधि याहू महि रहे।
सुख दुख ते संत परे बसेरा। जीअ रहे सुख दुख महि घेरा।
सहज सेज पर संत बिराजे। जीअ उदमु करि कबहू न राज।११६।

दो०—एहु जरनि हरजन जरहि दुस्टि कह्या मनि लेइ।
दुस्टि करम से दुस्टि है हर जन आदरु देई।१।

चौ०—देव संजोग ते बारक सुनी। बिख पिवलाइ नर संत मुनी।
बारक कही पिता सो बाता। इह अनर्थ सुन्या मैं ताता।
मम प्रसादि सतन बिखु भोगी। इन कर मैं बहु हूआ सोगी।
बारकु पिता चौधरी भाई। जो किछु करै सु कीआ जाई।
सो बारक पिता हरिजन पै आया।।उन आइ संत पहि बचन बतलाया।
।१२०।

दो०—हे हरजन जब तुम कहो उनको सूली देऊ।
तुम कहो त तीरे लिख करो कहो तो धरनि गडेउ।

चौ०—जीव तही को धरनी गाडउ। कहो त बाधा कबह न छाडउ।

बदला नहीं चाहिए

दो०—मुख धोवत जो अगुरी लोचन महि धसि जाइ।
ता को काटि न डारिये सुन ले वहु मनु लाइ।६२।

चौ०—जरा मरा अरु सिरत तसु ताप। आवहु कोई न लगै सतापु।
तीर लगै जो मारे कोई। तीर सकति आपहि नहि होई।
दुस्ट डण्ड अरु बिसियर डगु। बिख को धावन सिह की जगु।
जल बूडनु अरु अगनी जरना। सपति विपति जीवन अरु मरना।
मुक्त बध राची अविनासी। आपहु परया निकस्या फासी।६३।

भाई मनी सिंह से सम्बन्धित गुर विलास

१. गुर विलास छेवी (छठी) पातशाही (भगत सिंह)
२. गुर विलास (कुइर सिंह कलाल)

भाई मनी सिंह के नाम से सम्बन्धित दो गुर विलास मिलते हैं। इनमे से एक गुर विलास में षष्ठ गुरु की जीवन-कथा कही गई है और दूसरे मे दशम गुरु की। इनमे से प्रथम गुर विलास तो मुद्रित हो चुका है और दूसरा अभी पाडुलिपि के रूप मे ही है। दूसरे ग्रथ की हस्तलिखित प्रतियाँ खालसा कालेज, पुस्तकालय, अमृतसर; सिक्ख रैफ्रेंस पुस्तकालय, अमृतसर, और मोती बाग, पुस्तकालय, पटियाला मे उपलब्ध है।

भाई मनी सिंह की जन्म तिथि एव जन्म-स्थान के सम्बन्ध मे कोई प्रामाणिक सूचना प्राप्य नही। इतना पता चलता है कि ये अभी पाँच ही वर्ष के थे जब इनके पिता ने इन्हें गुरु तेगबहादुर की सेवा मे भेंट किया। ये बचपन से ही गुरु गोविन्द सिंह की सेवा मे रहे। गुरु गोविन्द सिंह जी के स्वर्गारोहण के पश्चात् इन्हें गुरुपत्नी माता सु दरी ने सवत् १७७८ मे हरि मन्दिर का प्रथम ग्रथी नियत किया। इस पद पर रहते समय आपने कई ग्रथ लिखे और आदि ग्रथ की एक नई प्रति तैयार की जिसमे सम्पादन-योजना प्राचीन प्रति से भिन्न थी। यह प्रति अब गुरुद्वारा अविचल नगर, नादेड मे सुरक्षित है।

भाई मनी सिंह सवत् १७६४ में लाहौर के मुगल शासक द्वारा पकड लिए गये और अनेक यातनाओ के पश्चात् कत्ल कर दिये गये।[1]

भाई मनी सिंह द्वारा अनेक पुस्तको की रचना हुई, यह जनश्रुति बहुत प्रसिद्ध है। किन्तु, उसके नाम से सम्बन्धित किसी भी रचना की प्रामाणिकता सर्वथा असदिग्ध नही है। धर्मप्रचार के लिए नियुक्त ग्रथी मनी सिंह को धर्म कथाओ के व्यास रूप मे ग्रहण करने की प्रवृत्ति बहुत प्रबल रही है। हमारे काल मे पढने वाले दो गुर विलासो मे भी भाई मनी सिंह को व्यास रूप में ही ग्रहण किया गया है।[2]

---

१. गुरु शब्द रत्नाकर, पृष्ठ २८४६।
२. उदाहरण आगामी पृष्ठों पर दिये गये हैं।

इन ग्रन्थो पर दी गई तिथियो से इनका रचना-काल अठारहवी शती सिद्ध होता है। एक ग्रन्थ भाई मनी सिंह के जीवन काल मे (सवत् १७७५ वि०) और दूसरा उनके निधनोपरान्त (सवत् १८०८ वि०) मे लिखा गया। प्रथम ग्रन्थ के रचना काल पर प्रसिद्ध विद्वान् भाई कान्ह सिंह आपत्ति कर चुके है, दूसरे ग्रन्थ का सम्यक् अध्ययन अभी नही हो पाया। 'गुर बिलास सुक्खा सिंह' के साथ उसका तुलनात्मक अध्ययन करने पर वह सर्वथा अनुकरणात्मक रचना ठहरती है, उसका मौलिक अश सर्वथा नगण्य है।

हमारी धारणा है कि ये दोनो ग्रन्थ अठारहवी शती से बहुत पीछे की रचनाएँ हैं। केवल इन्हें भाई मनी सिंह से सम्बन्धित करने के उद्देश्य से ही इनका रचना काल अठारहवी शती बताया जाता है। आगामी पृष्ठो मे इन रचनाओ के रचना काल का परीक्षण किया गया है।

गुर बिलास छेवी (छठी) पातशाही

भाई मनी सिंह के नाम से सम्बन्धित पुस्तको मे दो गुर बिलास भी सम्मिलित हैं। इनमे से प्रथम का नाम है 'गुर बिलास छेवी (छठी) पातशाही।'

इस ग्रन्थ के कर्त्ता ने भाई मनी सिंह को कथा का प्रथम वक्ता माना है। यह कथा उन्होने श्री भगत सिंह नामक श्रद्धालु सिक्ख को नानक सर नामक गुरद्वारे मे सुनाई। वही से यह कथा ग्रथकर्त्ता के गुर धर्म सिंह को प्राप्त हुई। और ग्रथकर्त्ता ने इसे उनसे प्राप्त करके १७७५ वि० मे पद्यबद्ध किया।[1] ग्रथकर्त्ता ने अपने नाम को गुप्त रखकर सर्वत्र भाई मनी सिंह के नाम का ही प्रयोग किया है।[2]

भाई कान्ह सिंह कर्त्ता गुर शब्द रत्नाकर ने अपनी रचना गुरु मत सुधाकर मे इस तिथि को अस्वीकार करते हुए इस प्रकार लिखा है .

"वस्तुत इस ग्रथ के कर्त्ता भाई गुरुमुख सिंह अबाल बुंगिये और भाई दरबारा सिंह चौकी वाले अमृतसर है। यह ग्रन्थ १८६० वि० मे आरम्भ हो कर १६०० दिक्रमी मे समाप्त हुआ है।"[3]

भाई कान्ह सिंह जी ने अपने मत के समर्थन मे कोई प्रमाण अथवा युक्ति नहीं दी। अत उनके कथन को अन्तिम एव निर्णायक रूप मे स्वीकार करना सम्भव

---

१. सत्रा सै बीते तबै वरष पचत्र जान।
साबन मास इकीस दिन गयो सुघर पहचान।
सुक्ल पख दिन पचमी सी गुर को परसादि।
पाय भग गुर गाथ का कर मनिया अहलाद —पृ० ६७६

२. मनी सिंह बरनन करी जैस कथा सु समान।
सो प्रसंग बरनन करी सुनहु संत धर ध्यान —पृ० ८

३. गुरमत सुधाकर।

नही। इस विषय मे किसी और विद्वान् ने कोई शोध नही किया, अत इस ग्रन्थ के कर्त्ता और इसके रचना काल के समय मे सन्देह बना हुआ है।

इन पंक्तियो के लेखक को जिन पाण्डुलिपियो को देखने का अवसर मिला है उनमे से प्राचीनतम पाण्डुलिपि १८६६ वि० मे लिपिबद्ध हुई है।[1] इस ग्रन्थ से भाई कान्ह सिंह का यह मत कि इसकी रचना १६०० वि० मे हुई अमान्य ठहरता है। किन्तु, यह लिपिकाल भी बहुत प्राचीन नही। इस लिपिकाल से १६०० वि० वाला मत तो अमान्य ठहरता ही है, १७७५ वि० वाले मत का भी समर्थन नही होता।

जितनी हस्तलिपियाँ अथवा पत्थर की छपाई की पुस्तको की प्रतियाँ हमे प्राप्त हुई हैं उन सब पर स्पष्ट रूप से रचना काल (१७७५ वि०) का निर्देश है। इस ग्रन्थ के रचना काल के विषय मे सन्देह उठने का कारण क्या है?

इससे पहले जिन चरित-काव्यो की रचना हुई है उनकी सास्कृतिक पृष्ठभूमि पौराणिक भावना से कहाँ तक प्रभावित है, इसका पर्याप्त उल्लेख पिछले पृष्ठो मे हो चुका है। विचित्र नाटक के आत्म-परिचय और सुक्खा सिंह के गुर विलास मे पौराणिक भावना को अपनाने का आग्रह तो सर्वथा स्पष्ट है। गुर विलास छेवी पातशाही तक पौराणिक विचारो को अपनाने की प्रवृत्ति न केवल अक्षुण्ण बनी रही है बल्कि इसमे पर्याप्त अभिवृद्धि भी हुई है। पौराणिक-भावना प्राचीन गुर विलास तक पहुँचते-पहुँचते पुजारी-प्रवृत्ति मे परिवर्तित होती दृष्टिगत होती है। इसी प्रवृत्ति के कारण ही यह ग्रन्थ अठारहवी शताब्दी के बाद का रचित प्रतीत होता है।

अवतार भावना

गुरुओ को अवतार-रूप मे ग्रहण करने की प्रवृत्ति तो आदि-ग्रन्थ के सम्पादन (१६०४ वि०) से पूर्व ही जन्म पा चुकी थी। आदि ग्रथ मे भाट कवियो द्वारा गुरु-व्यक्तियो का स्तवन राम, कृष्ण एव अन्य पौराणिक देवताओ के अवतार-रूप मे किया है। गुरु गोविन्द सिंह ने अपने सम्बन्ध मे इस भावना का निराकरण करने का यत्न किया किन्तु उन्ही के दरबारी कवियों और तत्पश्चात् सेनापति, सुक्खा सिंह आदि प्रबन्धकारो की श्रद्धा ने उनके निर्देश को स्वीकार नहीं किया। तो भी किसी पूर्ववर्ती कवि ने गुरुओ के अवतारत्व का वर्णन करने के लिए क्षीर-सागर में एकत्रित देव-परिवार का अवलम्बन नही लिया। गुरु गोविन्द सिंह ने पौराणिक प्रबन्धो मे जिस देव-परिवार का उल्लेख किया था, प्राचीन गुर विलास उसी का उल्लेख ऐतिहासिक प्रबन्ध के लिए कर रहा है। पजाब मे रचित-प्रबन्धो की परम्परा मे यह प्रवृत्ति प्रथम बार प्रवेश पाती दिखाई है। उदाहरण इस प्रकार है·

---

१. सिक्ख रेफेन्स लाइब्रेरी एक्सैशन न० ११६४, इसके पत्र ५५४ पर इस प्रकार लिखा है:

समत् १८६६ विच लिखिआ स्री अमृतसर जी विचु
मिती कतक सुद त्रिउदसी वाले दिन सपूर होया ॥

छीर सिंध जावत भए कीनी विनै अपार।
महाराज रच्छा करो अपना विरद सभार।
जब जब हम दुख होत है तब तब करो सहाय।
ब्रह्म विसन सिव अस कहा हमं धेनं दुख जाय ॥[1]

पुनश्च—

ब्रह्मा की विनती सुन पाई। काल पुरख बोलै सुखदाई।
धर अवतार सु तुहि हित आए। तुमरे सत्रू देउ खपाए।
सुधा सरोवर निकट वडाली। धरो जन्म तिह ठा अरटाली।
गुर अर्जुन के धाम मझारे। धरो रूप तुम चिन्त निवारे।[2]

सम्पूर्ण कथा मे अवतार-भावना का एक सूक्ष्म किन्तु अविरल सूत्र अनुस्यूत है। गुर विलास के नायक हरिगोविन्द को भी कृष्ण के समान शैशव मे ही मार डालने के प्रयत्न होते हैं। धाय द्वारा विषाक्त स्तन-पान, सर्प-दश्न, सेवक द्वारा विषैला दही खिलाने के विफल प्रयास किये जाते हैं। इन कुप्रयासो के कर्ता पात्रो के पूर्वजन्म की कथायें अवतार-भावना का ही पोषण करती हैं। उदाहरण के लिये विषैला स्तन पिलाने वाली धाय एक गन्धर्वी थी जिसे बृहस्पति के अभिशाप के कारण मर्त्यलोक में आना पड़ा था। सर्प पूर्वजन्म मे विद्याभिमानी ब्राह्मण था जिसे नारद के अपमान के फलस्वरूप कुटिल योनि को प्राप्त होना पडा था। शिशु हरिगोविन्द की बाल-लीलाओं को देखकर जब कभी माता को उनमे पारब्रह्म का आभास होता है वे उन पर मोहमाया का आवरण डाल देते हैं।[3] पुन माता के सो जाने पर शिव, नारद, कल (कलह), योगिनियां, बावन वीर, यम, बाल हरिगोविन्द के पास आते हैं और अपनी चिर-क्षुधा का दुखडा सुनाते हैं। गुरु जी उनकी क्षुधा मिटाने के लिये शीघ्र ही युद्ध रचने का आश्वासन देते हैं। कलह और बावन वीरो को इस प्रकार आज्ञा होती है

कल को तब गुर आज्ञा करी धरो जन्म तुम नारि।
दिल्ली बीच सु आयकै, चदू गृह अवतार।[4]
बवज वीर को अस कहा धर तुम मानव देह।
मम सग हुइ बहु जुद्ध करो तुरक नास जस लेह ॥[5]

ऐतिहासिक प्रबन्धो मे ऐसे पौराणिक विवरणो का समावेश सर्वप्रथम इसी ग्रन्थ मे दृष्टिगत होता है। गुरु गोविन्द सिंह के पौराणिक प्रबन्धो के भागवतीय-

---

१. गुर विलास हस्तलिपि न० ११६४, पृ० ११
२ वही, पृ० १२
३. श्री गुरु समझ मात मन जाना। कौतक हम करने हैं नाना।
अस विचार मोह माया डारी। गग मात तब मुखो उचारी ॥
गुर विलास हस्तलिपि, न० ११६४, पृ० १८
४. वही, पृ० १६

भावना के परिचायक ऐसे विवरण बहुत विरल हैं। ऐतिहासिक-व्यक्ति के सम्बन्ध में उसके दिवगत होने के कुछ ही दशक उपरान्त ऐसी भावना का प्रचलन सर्वथा सदेहास्पद है। १७७५ वि० में रचे जाने का दावा करने वाली इस रचना से १८०८ मे कुइर सिंह (?) अथवा १८५४ मे सुक्खासिंह सर्वथा अप्रभावित रहते, यह भी विश्वसनीय प्रतीत नही होता। स्पष्ट है पौराणिक भावना का यह विस्तार सुक्खासिंह (१८५४ वि०) के बाद की वस्तु है। सुक्खासिंह इसका पूर्वाभास है, पर्यवसान नही।

पुजारी भावना—इस ग्रथ की पुजारी-भावना से हमारे इस कथन का और भी समर्थन होता है। बार-बार पूजा चढाने, मन्त्र पाठ, परिक्रमा आदि का वर्णन हुआ है। गुरु गोविन्द सिंह के जीवन-काव्य का विवेचन करते हुए हम उनको मसद-निन्दा से परिचय प्राप्त कर चुके हैं। गुरु गोविन्द सिंह के दिवगत होने के एक शतक उपरान्त ही सिक्ख धर्म मे मसन्दो की सी रीति-नीति का पुन. प्रचलन हो गया, यह सहज विश्वसनीय नही। पूजा, परिक्रमा, पाठ आदि मे तत्कालीन युग की विद्रोह भावना प्रतिबिम्बित नही होती। जब किसी धार्मिक सम्प्रदाय का पुजारी-वर्ग पूर्णतः प्रतिष्ठित हो जाए, तभी पूजा-परिक्रमा आदि का उत्कर्ष स्थापित करने वाले ग्रन्थो की रचना होती है। अमृतसर के प्रथम ग्रन्थी भाई मनी सिंह के जीवन-काल मे इस प्रवृत्ति की प्रतिष्ठा बहुत मान्य नही। अमृतसर पर उन दिनों मुगल शासको की कड़ी नजर थी। सिक्खो के सिर का मूल्य नियत था। सिक्ख अमृत सरोवर मे स्नानार्थ आते भी तो चोरी छिपे। ऐसी परिस्थिति मे पुजारी प्रवृत्ति का प्रचलन सम्भव नही था। अत भाई कान्ह सिंह का यह निष्कर्ष युक्ति-सगत प्रतीत होता है कि इस ग्रन्थ की रचना महन्त-परिवार के किसी सदस्य अथवा सेवक द्वारा हुई जो उन्नीसवीं शताब्दी मे ही सम्भव हो सकता है।

राजनीतिक भावना—न केवल इस ग्रथ की आत्यन्तिक पौराणिक भावना एवं पुजारी-भावना, बल्कि इसकी शासक-वर्ग सम्बन्धी भावना भी युग-चेतना के अनुकूल प्रतीत नही होती। इससे पहले गुरु गोविन्दसिंह ने अपने आत्म-परिचय मे, कृष्णावतार मे, एव चरित्रोपाख्यान मे अपने म्लेच्छ-मर्दन दृष्टिकोण के विषय मे किसी प्रकार का सदेह नही रहने दिया। उनके दरबारी कवि अपनी भावनाओं की अभि-व्यक्ति मे सदा इतने स्पष्ट नहीं, किन्तु मुगल-शासन के प्रति उदार दृष्टि उनकी कभी नही रही। भाई सुक्खासिंह ने सवत् १८५४ मे भी उसी दृष्टिकोण का अनुसरण किया। 'गुरविलास छेवीं पातशाही' मे भी गुरु जी के अवतरण का उद्देश्य म्लेच्छ-मर्दन ही कहा गया है।[1] किन्तु सारे गुर विलास में मुगल-शासन के विद्रोह का भाव कहीं भी प्रतिभासित नहीं होता।

गुरु हरिगोविन्द एव उनके पिता गुरु अर्जुन देव को मुगल शासक जहाँगीर का कोपभाजन होना पड़ा था। तोजकि जहाँगीरी मे जहागीर के अपने सस्मरण से

---

१. रुपे धके हम जैसम रोरे।
तुरक सीस तैसे बद तोरे। —गुर विलास, ह० लि० ११६४, पृ० ६

स्पष्ट प्रमाणित होता है कि उन्होने ही धार्मिक असहिष्णुता के कारण गुरु अर्जुन देव को मृत्यु-दण्ड दिया था। गुर विलास गुरु अर्जुन के प्राण-दण्ड का सारा दोष दीवान चन्दू के माथे मढ देता है। जहाँगीर को तो वह गुरु-गृह के श्रद्धालु के रूप मे प्रस्तुत करता है। गुरु-गद्दी से वंचित गुरु-भ्राता पृथीचन्द जब जहाँगीर से शिकायत करता है तो जहाँगीर श्रद्धा के कारण किसी प्रकार का हस्तक्षेप करने मे असमर्थता प्रकट करते हैं :

ताँ पर पृथिये अरज सुनाए। जहागीर बोल्यो इह भाए।
सतिगुर कं गृह रार सु परी। और तुच्छ नर क्या अब करी।
गुर नानक गृह के हम दासा। तुमरा न्याउ स्री गुर पासा।[1]

गुरु अर्जुन की मृत्यु का दोष चन्दू पर आरोपित करते हुए वे गुरु हरिगोविंद से क्षमा याचना करते हैं[2] और एक श्रद्धालु सिक्ख के समान गुरुद्वारो के पुण्य-दर्शन का वर माँगते हैं :

पृथमै भूल छिमापन कीजै। बहुरो पीर एह वर दीजै।
गोइंद वाल का दरसन पावो। बहुरो तारन तरन दिखावो।
बहुरो तुम सग सुधा सरोवर। दरस तख्त सुर देख तरोवर।[3]

इस ग्रथ मे न केवल पचम गुरु के मृत्यु-दाता का ही परिवर्तन हुआ है बल्कि मृत्यु के कारण भी बदल गये हैं। शासन वर्ग की धार्मिक असहिष्णुता के स्थान पर गुरु-गद्दी के लिये पारिवारिक-कलह, दीवान चन्दू राम का गुरु जी से वैयक्तिक रोष आदि गौण कारणो को ही मुख्य कारण मान लिया गया है। यह धारणा सवत् १७७५ की युग चेतना का प्रतिनिधित्व नही करती। उन दिनो पजाबवासी बदा बैरागी के नेतृत्व मे मुगल शासन से लोहा ले रहे थे। मुगल शासन के प्रति इस विद्रोह का बीजारोपण गुरु अर्जुन देव के प्राणोत्सर्ग से हुआ। इस घटना की ऐसी व्याख्या इन दिनो सम्भव न थी।

साराश यह है कि 'गुर विलास छेवी पातशाही' १७७५ वि० से बहुत बाद की रचना है। यह न तो तत्कालीन युग भावना के अनुकूल है और न ही इसमे अपने पूर्वकालीन चरित-प्रबन्धो की काव्यशैली का कोई चिन्ह मिलता है। यह रचना निश्चय ही उन दिनो की है जब कि सिक्ख धर्म मे पौराणिक प्रभाव बहुत बढ चुका था, गुरुद्वारो मे महन्त-परम्परा स्थिर हो चुकी थी और मुगल शासन के विरुद्ध किए गये सग्राम की स्मृति धूमिल पड चुकी थी तथा हिन्दु-मुस्लिम ऐक्य की आवश्यकता समाज मे स्वीकार की जा रही थी। ये सब तथ्य इसे सिक्ख राज्य के बाद एवं सिंह सभा आन्दोलन से पहले की रचना प्रमाणित करते हैं।

---

१. गुर विलास, ह० लि० ११६४, पृ० ३२।
२. सुनो पीर हम पाप न कीना। चन्दू गृह गुर वासा लीना।
चार घरी दरमल का चोरा। सुनो पीर मै जान न दोरा—गुर विलास, ह० लि० ११६४, पृ० १८३
३. वही, पृ० १८३

अत हमारी धारणा है कि भाई कान्ह सिंह द्वारा निर्धारित समय (१६०० वि०) के आस पास की ही रचना है, कदाचित् उससे कुछ ही वर्ष पूर्व की।

अभी अभी 'गुरविलास' मनी सिंह मत वख्यान नामक एक पुस्तक भी देखने मे आई है। इसकी एक-एक प्रति खालसा कालेज लायब्रेरी अमृतसर और मोती महल लायब्रेरी पटियाला मे विद्यमान है। इस पुस्तक का 'उद्धार' बर्मा निवासी सरदार गडा सिंह छज्जावालिया द्वारा हुआ। खालसा कालेज अमृतसर की प्रति और रेफ्रेन्स लायब्रेरी की प्रति मे विद्यमान उनकी टिप्पणी से प्रतीत होता है कि उन्हे यह प्रति २।१५ पी० रेजिमेंट के ग्रथी भाई सत सिंह से मिली। स्वय भाई सत सिंह को यह प्रति अपने पूर्वाधिकारी श्री साहिब सिंह से प्राप्त हुई। यह प्रति बहुत पुरानी नही। सरदार गडा सिंह के अनुसार श्री साहिब सिंह ने यह प्रतिलिपि सम्भवत १८६० अथवा १८६२ मे तैयार की। सरदार साहिब सिंह ने यह नकल किस ग्रथ से की— यह सर्वथा अन्धकार मे है।

भाई कान्ह सिंह द्वारा रचित गुरु शब्द रत्नाकर मे भाई मनी सिंह द्वारा रचित अथवा उनके नाम से सम्बद्ध किसी गुरु विलास का उल्लेख नहीं। अत यह अनुमान असगत न होगा कि गुरु शब्द रत्नाकर की रचना (१६३० ई०) तक यह ग्रथ सिक्ख विद्वानो की दृष्टि मे न आया था अथवा इसकी प्रामाणिकता सर्वथा असदिग्ध नही थी। गुरु शब्द रत्नाकर (पृष्ठ १२५८) मे केवल दो गुर विलासो— गुर विलास छठी पादशाही और सुक्खा सिंह—का ही उल्लेख है। इनसे पृथक् किसी गुर विलास का परिचय इस महत्कोप से नही मिलता।

इस पुस्तक के रचयिता ने अपना परिचय देते हुए कहा है कि भाई मनी सिंह १७६१ मे तुर्कों द्वारा पकड कर लाहौर निखासत-खाना मे रखे गये। वे वही अपने अन्य सिक्ख सहचरो सहित शहीद किये गये। अन्तिम समय तक वे गुरु गोविन्दसिंह की चरित-कथा अपने साथियो को सुनाते रहे। उनकी कथा एक सरलचित्त मुसलमान सेवक को भी सुनने का अवसर मिला। वह सेवक यह कथा लाहौर निवासी कुइर सिंह (ग्रथकर्त्ता) को सुनाता रहा। उसी कथा के आधार पर, कुइर सिंह कलाल ने सत्रह वर्ष पश्चात् (१८०८ वि० मे) इस ग्रथ की रचना की। उनके अपने शब्दो मे ग्रथकर्त्ता एव उसकी रचना तिथि का परिचय इस प्रकार है—

सवत् सत्रह सहस इकावन। मास असार सुकल बर पावन।
दहै बीच तुरकान को मेला। तबही मिरल गुरु सग चेला।
पचम थित भूमन सुभ वारी। लवपुर माहि देह विनसारी।
जाहि निखासत-खाना कह्यो। सादागर को थान सु लह्यो।
सीस देइ सिहन लियो थाना। बली सहीद भये तिह माना।
सरब अस्थान सिहना कह्यो। जोय नखासत-खाना लह्यो।
तिन की लिखी सु साखी होई। वदूग्रन बीच जात अति सोई।
करे टहल तिनकी वड माना। खिजमत खान वहादर जाना।
राखा तिन कर रहै अपारा। सरन न आयो खालसा मारा।

कुइर सिंह कलाल अति जोई। रहै कवीअन अगन सोई।
नाम मन्नो सिंह हीं भाई। पूरब खडे पाहल न खाई।
जब नौकरी ते भये बैरागी। सुनत साखियन मन अनुरागी।
मनी सिंह ए वचन अलाए। सुनो खालसा जो चित लाए।
इह धरमग्ग कथा मै भाखी। बड विस्थार सूखम कर भाखी।

—पन्ना २१९

जोवत मोख सुत नर राजत जाहि मन असकेत प्रकारी।
सम्मत अठ इकादस ताहि मे कुआर सुमास के दिनस मझारी।

दो०—अठ दस समत् प्रथम वर मास कुआर जो आहि।
पुस्तक भयो सपूरन चद तनज दिन माहि।
असूज बदी एकादसी बुधवार सवत १८०८। —पन्ना २१९

कुइर सिंह के उपर्युक्त ग्रन्थ-परिचय ने स्थिति को बहुत जटिल बना दिया है। यहाँ एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि गुर विलास की रचना सर्वप्रथम किस महानुभाव द्वारा हुई। यदि कुइर सिंह के वचन को सत्य मान लिया जाए तो उनका ग्रथ (१८०८ वि०) सुक्खा सिंह (१८५४ वि०) के ग्रथ से लगभग ४६ वर्ष पूर्व रचा गया। यदि यह निष्कर्ष निर्विवाद रूप से प्रमाणित हो जाए तो सुक्खा सिंह की साहित्यिक ख्याति नि शेष हो जाती है। क्योकि इन दोनो ग्रथो मे कथानक, एव कम से-कम दो तिहाई छन्द सर्वथा समान अथवा प्राय समान हैं। इन दोनो महानुभावो मे से किसी एक को साहित्यिक चोरी का लाछन अपने ऊपर लेना ही होगा।

मनी सिंह के नाम से एक और गुर विलास भी प्रसिद्ध है। सरदार भगत सिंह ने भी उस गुर विलास की कथा भाई मनी सिंह द्वारा सुनने का उल्लेख किया है। इस ग्रथ की रचना-तिथि उन्होने १७७५ दी है किन्तु भाई काह्न सिंह ने इस रचना-तिथि को सर्वथा अविश्वसनीय ठहराया है। वे इसे स० १६०० के लगभग की रचना मानते हैं। वस्तुत भाई मनी सिंह के नाम का मिथ्या उपयोग करने की प्रवृत्ति ने इन ग्रथो की तिथियो को सदिग्ध बना दिया है। तो भी किसी निश्चित प्रमाण के अभाव मे इन तिथियो की प्रामाणिकता के विषय म कोई अन्तिम मत स्थिर नही *किया जा सकता।*

मनी सिंह मत वख्यान नामक गुर विलास की प्रामाणिकता तब तक सदिग्ध रहेगी जब तक इसकी कोई प्राचीन प्रति प्राप्त नही होती अथवा किसी प्राचीन ग्रथ में इसका उल्लेख नही मिलता। प्राप्त प्रतियाँ तो पच्चीस-तीस वर्ष से अधिक पुरानी नहीं हैं। इनके आधार पर एक शताब्दी से ऊपर ख्याति प्राप्त रचना (गुर विलास सुक्खा सिंह) की प्रामाणिकता पर सन्देह नही किया जा सकता।

साहित्यिक चोरी—सुक्खा सिंह और कुइर सिंह कलाल के ग्रथो म परस्पर इतना अधिक साम्य है कि यह अनुमान सर्वथा मान्य प्रतीत होता है कि इनमे से किसी एक महानुभाव के सामने ग्रथ रचना करते समय दूसरे महानुभाव की रचना

अवश्य उपस्थित रही होगी। इन दोनो ग्रथो का साम्य मंगलाचरण से लेकर ग्रथ समाप्ति तक फैला हुआ है। घटना-क्रम, घटना विवरण एव चरित्र-चित्रण का साम्य तो क्षम्य है। एक ही चरितनायक से सम्बन्धित दो रचनाओ मे ऐसा साम्य असाधारण नही। किन्तु इन दोनो ग्रथो का साम्य तो गौण कथाओ तक व्याप्त है। उदाहरण के लिये आनन्दपुर का माहात्म्य स्थापित करने के लिये इसका सम्बन्ध 'विश्वामित्र' के जीवन की एक कथा से जोडा गया है। दोनो ग्रथों मे यह कथा समान रूप से दी गई है। यहाँ इतना और विशेष है कि यह कथा चरितनायक के जीवन का अनिवार्य अग नहीं और न ही इन दोनों ग्रथो को छोड कर किसी और गुरु-जीवन मे इसका उल्लेख है। अत निश्चय ही विशुद्ध कल्पना पर आधारित इस कथा को एक लेखक ने दूसरे से ग्रहण किया है।

किन्तु, कदाचित् यह इतना शकनीय कर्म नही जितना कि छन्द चोरी। यहाँ छन्द-छोरी के कुछ उदाहरण देना अनुपयुक्त न होगा—

(क) कुछ छन्द ऐसे हैं जो समग्रत एक ग्रथ से दूसरे ग्रथ मे स्थानान्तरित हुए हैं। निम्नलिखित पक्तियाँ समान रूप से दोनो ग्रथो मे पाई जाती हैं —

(१) हाथ जोडि तिन सीस निग्रायो।
सरब कथा गुर के मन भायो।
तुम दर्शन हित राजा आयो।
चाहत है वार दर्शन पायो।
सिक्खन कही भला चल आवै।
मनसा पूर अधिक बिगसावै।
इतने मे राजा तहि आयो।
सिक्खन तीर हजूर सुनायो। " आदि आदि
(कुइर सिंह कलाल, पृ० ४८)
(सुक्खा सिंह, पृ० १०५)

(२) एही बात मसदन सुनो।
माता तीर वेग जा भनो।
हे माता नाती समझावहु।
राजन सो मत रार बढावहु।
हम है जगत पूज निरवादी।
हमको बनत न ऐसी सादी।
राजा रात कलूर सो आयो।
ए सब भेवहि मैं सुन पायो।

वहि जो सुनि है बजत नगारा।
करे विना नहि रहिहै रारा।

(कुइर सिंह कलाल, पृ० ४२)
(सुक्खा सिंह, पृ० १०२)

(ख) कुछ ऐसी पंक्तियों का स्थानान्तरण हुआ है जिनमे छन्द एक-सा ही रहै। पंक्तियाँ प्रायः समान हैं; कहीं-कहीं शब्द-परिवर्तन हुआ है—

(१) मोर वचन सो करो प्यारा।	मोर वचन सो करो प्यारा।
सरब काल होइ रच्छ तुमारा।	सडग केत है रच्छक थारा।
झूठे सरब उपाव त्यागो।	झूठे सरब उपाव त्यागो।
श्री असधुज की चरनी लागो।	श्री असधुज की चरनी लागो।
(कुइर सिंह, पृ० ६५)	(सुक्खा सिंह, पृ० २३५)
(२) नानक की गद्दी वर जोई।	नानक की गद्दी पर जानहु।
सुनी होत हजरत तुम सोई।	सोढ़ी रामदास पहिचानो।
सोढ़ी रामदास को नाती।	ताको नाती प्रगट भणीजै।
गोविंद सिंह नाम सुखक्राती।	गोविंद सिंह सुनाम लहीजै।
पूरब ते प्रथमै वह आयो।	पूरब ते प्रिथमै वह आयो।
हमरे देसन माहि पठायो।	हमरे देसन मै ठहरायो।
स्रो नानक का धरम पछाना।	स्री नानक का धाम पछानी।
ता सो कछू न बैन बखाना।	हमने तां सो कछु न बखानी।
...आदि आदि	...आदि आदि
(कुइर सिंह, पृ० १०६)	(सुक्खा सिंह, पृ० २६७)

(३) तीसरे प्रकार के चोर-कर्म मे पक्तियों का स्थानान्तरण तो नही हुआ है, एक छन्द का समग्र विवरण अन्य प्रकार के छन्द मे समाविष्ट कर लिया है। एक उदाहरण इस प्रकार है—

छन्द चौपई—

भोर भये जमुना तट जावै।
अनिक चरित्र जा तहाँ करावै।
किसती अधिक बोल तट लेही।
अमित बखस ता कर धन देही।
तिन पर चढ़ जल बीच घुमावै।
सरब ओर नौका चढ़ि आवै।

लए सिक्स साहन के पूता।
जिन कह निरस लजत पुरहृता।
(सुक्खा सिंह, पृ० ५२-५३)

छन्द-दोहा और सवैया—

दोहा—लै किसती सरता मथे खेलै खेल अनन्त।
देत दान अनगन् तहां मालाहृन में भन्त।
सवैया—रैन सु ऐन मैं आवत है दिन दासन जाचक दान कराही।
संग भूपन के सुत खेलत है जिन पेख लजै सुर ईस मनाही।
(कुइर सिंह, पृ० १४)

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि इन दोनों ग्रंथों का साम्य इतना व्यापक है कि इनमें से किसी एक ग्रथ को दूसरे की ईषत् परिवर्तित प्रतिलिपि मान लेना बहुत असंगत नहीं समझा जायेगा।

तृतीय अध्याय

प्रेम प्रबन्ध

गुरुदास गुणी रचित 'कथा हीर रांझे की'

कवि का परिचय

'कथा हीर राझे की' के लेखक गुरुदास गुणी का नाम पजाब मे काफी प्रसिद्ध है । वे औरगजेब के सरकारी मुन्शियो मे से थे और उसी के राज्यकाल मे (सवत् १७६०) उन्होने 'कथा हीर राझे की' लिखी ।[1] इस कथा के अतिरिक्त उनकी कोई अन्य रचना प्राप्त नही हुई ।

अपने जीवन के विषय मे आपने कोई सूचना नही छोडी । भाषा के अध्ययन से इनके पजाबी होने का निर्भ्रान्त सकेत मिलता है । सरकारी कर्मचारी होने के कारण तत्कालीन राज्य-व्यवस्था के प्रति इनकी सहानुभूति स्पष्ट प्रतिलक्षित होती है ।[2] इसके अतिरिक्त आपके चरित और चरित्र के विषय मे कुछ ज्ञात नहीं ।

पंजाबी किस्सा-साहित्य और हिन्दी

पद्य मे कथा कहने की प्रवृत्ति पजाबी साहित्य मे, हिन्दी साहित्य के समान ही, आदिकाल से ही चली आ रही है । पजाबी भाषा की आदि अलभ्य रचनाओ (वारो) की जो थोडी सी बानगी प्राप्त हुई है, उनमे कथा का बडा महत्त्वपूर्ण स्थान है । इसके पश्चात् भक्तिकाल मे कथा-साहित्य को पनपने का विशेष अवसर नही मिला । पजाब मे सगुण भक्ति—जिससे कथा साहित्य को विशेष प्रोत्साहन मिलता है—का प्रचार बहुत कम हुआ । पजाब मे सूफी कवियो ने भी अपने उद्गारो को मुक्तक बैतो और गीतों मे अभिव्यक्ति दी । विशुद्ध सूफी परम्परा मे पडने वाले कवियो ने, हिन्दी सूफी कवियो के विपरीत, प्रबन्धशैली को कभी नही अपनाया ।

कथा-साहित्य का पुनरुद्धार करने का श्रेय भाई गुरुदास और दामोदर को है । दोनो का आविर्भाव अकबर के राज्यकाल मे हुआ । गुरुदास ने प्राचीन पौराणिक

---

१. चौ०—पातसाह के सम्न पचासे ।
इओ आयो हिरदै गुरदासे ।
दोहा—कथा हीर राझे की बरनो, निसचल चित्त लगाय ।
जो चाहे सति प्रीत को, बानी कहुँ सुनाय । —१७४

२. पातसाह के जस को बरनो ।
आँखियो देख्यो सुन्यो करनो ।
न्याय रीत ताकी अति अकरी ।
इकठे रहे बाघ अरु बकरी । —१७४

और ऐतिहासिक कथाओ के मुक्तक छन्दो मे सक्षिप्त सस्करण प्रस्तुत किये। दामोदर द्वारा किस्सा (आख्यान) परम्परा का सूत्रपात हुआ। भक्तो और सूफियो की मुक्तक रचनाओं के तीन शताब्दियो से भी अधिक[1] विस्तृत अखण्ड साम्राज्य के पश्चात् कथा-गीत और किस्सा (प्रेमाख्यान) बहुत लोकप्रिय हुए।[2] इनके पश्चात् तो पजाबी साहित्य मे कथा-काव्य की बाढ सी ही आ गई। इस प्रवृत्ति को सर्वाधिक प्रोत्साहन दशमग्रथ के लेखक द्वारा प्रदान किया गया।

भाई गुरुदास तो सस्कृत एव हिन्दी साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होने अमिश्रित ब्रजभाषा मे कवित्त सवैये भी लिखे। सिक्ख धर्म के प्रचारार्थ वर्षों तक हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र मे आ गए और बनारस मे आपका निवस रहा। इस क्षेत्र मे धर्म प्रचार का प्रमुख साधन कथा-काव्य था। अत यह निष्कर्ष अयुक्त न होगा कि कथा-मुक्तक लिखने की प्रेरणा आपको हिन्दी साहित्य के परिशीलन से ही प्राप्त हुई। उनके कथामुक्तक हिन्दी सगुण भक्तो की प्रबन्ध शैली और पजाबी सिक्ख गुरुओं की मुक्तक शैली के बीच समझौता है। दामोदर की रचना तो स्पष्टत हिन्दी सूफी काव्य परम्परा से प्रभावित है। लौकिक प्रेमकथा को आध्यात्मिक पुट देने की जिस परम्परा का पालन दामोदर करते दृष्टिगत होते हैं उसका कोई आभास पूर्ववर्ती पजाबी साहित्य मे नही मिलता। जैसे कि ऊपर कहा जा चुका है, पजाब के सूफी कवि कथा शैली की ओर से उदासीन रहे। प्रेम कथा को प्रथम बार अन्योक्ति शैली मे कहने वाले पजाबी कवि को हिन्दी सूफी काव्य परम्परा का आभारी मानना अनुपयुक्त न होगा। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि अकबर के समकालीन दामोदर से पूर्व सूफी काव्य परम्परा की अति पुष्ट रचना पद्मावत की रचना हो चुकी थी।

गुरुदास गुणी ने सरल ब्रज मे 'कथा हीर राँझे की' लिखते समय दामोदर के ही कथासूत्र एव काव्य-शैली का अनुसरण किया। इस कथा की रचना दोहे-चौपाइयो मे करते हुए उन्होंने हिन्दी प्रबन्धो के ही प्रिय छन्दो को अपनाया है। उनकी भाषा अवधी न होकर ब्रज है। हिन्दी प्रबन्धो से इस असमानता का कारण पजाब क्षेत्र का विशिष्ट आग्रह है। यह कथा पजाबी-पाठको के लिये लिखी जा रही थी। पजाब मे सिक्ख गुरुओ के प्रयास से ब्रज को ही अधिक प्रोत्साहन मिल रहा

---

१ शकरगञ्ज, ११७३ (जन्म)—गुरुदास १५५८ (जन्म)।

2. (i) The pre-occupations of a saint poet are responsible for a lot of tasteless or dying repetitions and for the de-conditioning of his followers against a sensible enjoyment of the poetry of wit, humour satire, fantasy, irony, of material satisfaction and secular beauty, of fancy, myth and and dramatizable history. Something like this has happened in the case of the followers of the Panjab Bhaktas and Sufis Dr M S.: *History of Panjabi Literature*; p. 44

(ii) It is conclusively shown by Gurdas Bhallas' vars (d 1637) Gurdas' Hir (1707), the Tiria Charittar of Ram and Shyam (1697) and Muqbil and Shah Hussain's poetry that whole stories of romantic, historical and hagialatrous tales had become fine common food for mass consumption and vital, welcome grist for the poetic mill Ibid p. 45

था। अवधी मे रचना करने से यह कथा पजाब मे लोकप्रिय न होती। अत यह कहना समीचीन प्रतीत होता है कि गुरुदास द्वारा लिखी 'कथा हीर राझे की' हिन्दी और पजाबी काव्य परम्पराओ के बीच समझौता है। यह समझौता विषय और शैली दोनो मे ही दिखाई देता है। विषय की दृष्टि से यह प्रेम-कथा सूफी सिद्धान्तो का अवलम्ब ग्रहण करती हुई भी पूर्णत सूफी अन्योक्ति—अथवा प्रतीक कथा—नही बन पाई। दामोदर और गुरदास गुणी दोनो ही सूफी नही थे। सूफी सिद्धान्तो का प्रचार उनका ध्येय नही था। कथा लौकिक स्तर पर ही रही है। शैली की दृष्टि से यह कथा हिन्दी प्रबन्धो के प्रिय छन्दो को तो अपनाती है, भाषा को नही।

पजाब मे बहुत-सी प्रेम कथायें प्रचलित है, किन्तु जो ख्याति हीर-राझे की प्रेम-कथा को प्राप्त हुई है, वह और किसी प्रेम-कथा को नही। डा० मोहनसिह के अनुसार हीर-राझे की कथा यदि काल्पनिक नही तो बहलोल लोधी के राज्यकाल से सबधित है।[1] गुरु शब्द रत्नाकर के कर्ता काह्नसिह ने भी इस मत का समर्थन किया है।[2] ऐसा प्रतीत होता है कि दामोदर द्वारा हीर-राझे की कथा लिखी जाने से पूर्व राझे की प्रेम-कथा बहुत लोकप्रिय हो चुकी थी। दामोदर के समकालीन गुरुदास[3] और शाह हुसैन[4] द्वारा उनके प्रेम की स्तुति इस विश्वास को और भी पुष्ट करती है।

दामोदर की रचना के पश्चात् यह कथा और भी प्रसिद्ध हुई और अनेक कवियो ने इसे अपने काव्य का विषय बनाया। अब तक लगभग तीस कवियो ने हीर-राझे के किस्से लिखे हैं। वारिसशाह के किस्से ने तो इस प्रेम-कथा को अमर कर दिया। हीर-राझे की प्रेम-कथा का गायक आधुनिक काल तक अक्षुण्ण बना हुआ है। आधुनिक कवियो ने हीर-राझे की प्रेम-कथायें भी लिखी हैं और इसके पात्रों का प्रयोग प्रतीक रूप मे भी किया है।

हीर-राँझे की ख्याति पजाबी साहित्य क्षेत्र को लाँघ कर हिन्दी क्षेत्र तक भी पहुँची। हिन्दी मे हीर-राँझे की कथा का गायन करने वाले गुरुदास के अतिरिक्त गुरु गोविन्द सिह और गग हैं।[5] गुरु गोविन्द सिह के समय तक हीर-

1. If at all, this couple lived under Bahlal Lodi, as I shewed in a series of lectures delivered in 1920 My theory has apparently found acceptance

Dr. Mohan Singh *History of Panjabi Literature*, pp. 48

२. गुरु शब्द रत्नाकर पृष्ठ ८२७ 'हीर का देहान्त सवत् १५१० में हुआ'। (बहलोल खाँ का राज्यकाल सवत् १५०८-१५४६)

३. 'रांझा हीर वखाणीऐ उह पिरम पराती'
(अर्थ रांझा और हीर की गणना सच्चे प्रेमियों में की जाती है) वार २७

४. राझण राझण फिरा ढुँढेंदी राझण मेरे नाल

—दर्दी, पजाबी साहित्य दा इतिहास, पृष्ठ १२६

४. देखिये गंग लिखित कवित्त राझन के, सि. रै. ला', हस्तलिखित २१२।४२६३।

५. रांझा भयो सुरेस तह भई मेनका हीर।

—दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ६४४

रांझा पजाब के हिन्दुओ द्वारा मेनका और इन्द्र के अवतार रूप मे स्वीकृत हो चुके थे।

कथासार

गुरुदास गुणी की रचनानुसार हीर-रांझे की प्रेम-कथा इस प्रकार है

चन्द्रावती नदी के तट पर सियाल नामक नगर मे चूचक नामक चौधरी के घर हीर का जन्म हुआ। अभी हीर बारह ही वर्ष की थी कि उसमे यौवन के चिह्न दिखाई देने लगे। वह सखियो सहित नदी पर बेले मे विचरण करती, झूला झूलती और नाव की सैर करती। अच्छा खाना, अच्छा पहनना, निश्चित होकर घूमना-खेलना—यही उसके नित्य के काम थे। बचपन मे ही उसने अपनी सखियो सहित नूरखां और उसके साथियो से लोहा लिया और उन्हें मार भगाया। अदम्य साहस था इन कन्याओ में।

चनाब दरिया के किनारे एक और नगर है—हजारा। नगर क्या है मानो दूसरी मथुरा है। यहां मौजम (मुअज्जम) चौधरी के यहां धीदो (दहीद) रांझे का जन्म हुआ। रांझा क्या था 'मानो मन्मथ आनि उतर्यो'। माता-पिता के देहान्त पर रांझे के भाई उसे मार कर पैतृक सपत्ति मे उसका भाग हथिया लेना चाहते थे। पहले उन्होने बँटवारा किया और बेला, कालर' जैसी निरुपजाऊ धरती धीदो को दे दी। धीदो उदास होकर पीरो के शुभ स्थान मुलतान की ओर प्रस्थान करता है। भावजें उसे रोकती हैं, परन्तु वह नही रुकता। मार्ग मे वह एक गांव की मस्जिद मे ठहरता है। उसी मस्जिद मे कुछ और जाट पथिक भी ठहरे हुए हैं। एक धीवरसुता वहां पानी भरने के लिए आती है। रांझे को देखा तो तन मन जल उठा। घर आई, गागर धरती पर गिर पडी। अपनी माँ से कहने लगी कि मेरा मन तो मस्जिद मे बैठे एक युवक पर आ गया। मां उसके निर्लज्ज प्रलाप को सुनकर मस्जिद मे गई। जाट पथिको ने उससे धोखा किया और कहा कि हम धीवर हैं, धीदो हमारा ही लडका है। धीवरसुता और रांझे मे विवाह पक्का हुआ। मां ने घर जा कर चावल मलीदा पकवाये। पकवान खाकर जाट रात्रि के अधकार मे खिसक गये। रांझा भी वहां से उठ भागा। एक और गांव मे पहुँचा। एक दयालु दम्पति ने उसे पुत्र बना कर पास रखने का प्रस्ताव किया किन्तु दूध का जला रांझा अब छाछ को भी फूंक-फूंक कर पीता था। वहां ठहरना भी उसने उचित नही समझा। वहां से चलकर वह सियाल नगर मे पहुँचा। यही उसे पच-पीरो के दर्शन हुए जिन्होने उसे काली कमली मुरली, असा, प्याला और हीर का दान दिया। इन्ही पीरो ने हीर को स्वप्न मे दर्शन देकर उसके मन मे रांझे के प्रेम का बीजारोपण किया। रांझे ने मुरली बजाई तो मच्छ, कच्छ और अन्य जलजन्तु मन्त्रमुग्ध होकर जल से बाहर निकल आये। चलते हुए मृग ठहर गये, सिंह प्रमुदित हुए। हीर के निजी नाविक लुड्ढन का मन भी ठगा गया और उसने उसे हीर की नाव मे सोने की आज्ञा दे दी।

हीर नदी तट पर अपनी सखियों के साथ झूला झूल रही थी कि उसने दूर अपनी नाव में किसी अज्ञात पुरुष को देखा। उसने झूले पर से, मृत्यु की परवाह न करते हुए नदी में छलांग लगाई। अन्य सखियों ने भी वृक्षों से सटियाँ तोड लीं। निश्चय हुआ कि ओलों की तरह उस अज्ञात पुरुष पर बरस पड़ें, किन्तु जब राँझे ने नयन खोले तो सटियाँ हाथ से गिर गईं, हृदय वश में न रहा। सब पुत्तलिका के समान निश्चल खडी रह गईं। राँझा उठ कर चलने लगा तो :

> उठी दौर तिहि पकरे पाए।
> कहै कहाँ जावै रे चोरा।
> मो सौ हम सौ आखनि जोरा।
> नैनि सैनि के हम तोहि मारे।
> घायल होई है हम सारे। पृ० २३७

हीर का घाव सब सखियों से गहरा था। राँझा चला जाये तो हीर जीवित नहीं रहती। सखियाँ चिन्तित हैं कि राँझे को कैसे रोका जाये। राँझे को वहीं चाक—भैंसों का चरवाहा—बन कर रहने के लिए रजामन्द कर लेती हैं। राँझा हीर के पिता चूचक के यहाँ नौकरी कर लेता है। भैंसों को बेले में चराता हुआ ऐसे दिखाई देता है जैसे वृन्दावन में गौएँ चराता हुआ कृष्ण। हीर उसे प्रतिदिन बेले में छिपकर मिलती है। उसके लिए चूरी कूट कर लाती है। किन्तु प्रेम छिपाये कहाँ तक छिपे। कहीं तिनकों में आग भी छिपाई जा सकती है। 'इश्क' और 'मुश्क' तो प्रकट होकर ही रहते हैं। बात चूचक तक पहुँची। उसने अपने लंगडे भाई कैदों को बेले में भेजा कि वह छिपकर पता लगाये कि यह बात कहाँ तक सच्ची है। कैदों वहाँ पहुँचा। देखा कि हीर उसके लिए चूरी लेकर आ रही है। राँझे ने उसे नदी से पानी लाने के लिए कहा। हीर पानी लेने के लिए दूर नदी तट पर गई तो कैदों फकीर ने प्रकट होकर राँझे से भिक्षा माँगी। राँझा कैदों को पहचानता न था। उसे थोडी चूरी भिक्षा में दे दी। हीर-राँझे के प्रेम का यह प्रमाण लेकर वह चूचक के पास पहुँचा। चौधरी बाप ने अपनी इज्जत बचाने के लिए हीर का शीघ्र विवाह कर देना ही उचित समझा। मान-मर्यादा पर मर मिटने वाले भाइयों ने राँझे को जान से मार डालना चाहा किन्तु पंच-पीरों ने उनके सब प्रयास विफल कर दिए। माँ ने विष देकर कुलच्छनी लडकी का अन्त करना चाहा, यहाँ भी पीरों ने सहायता की। हीर पर विष का कोई प्रभाव न पडा। हीर के विवाह का दिन आया। हीर ने पग-पग पर कडा विरोध किया। माँ ने उसे 'तेल चढाना' चाहा। हीर ने सारा तेल धरती पर बहा दिया। कहने लगी कि मेरा विवाह तो राँझे से हो चुका, मुझे यह कहने में लाज नहीं। बारात आई। खेडों की ओर से ब्राह्मण हीर को कंगन बाँधने आया। हीर कंगन नहीं बँधवाती। हीर की सहेली हस्सी एक युक्ति निकालती है—राँझे को कंगन बाँधने के लिए बुलाया जाये। राँझे को बुलाया जाता है। उसके रक्षक पंचपीर अदृश्य रूप से उसके साथ हैं। सारा घर

दिव्यालोक से जगमगा जाता है। च्चक ने हीर पर पहरेदार बैठा रखे थे। उनकी आँखें चुंधिया जाती हैं। सब सिर नीचा किये भूमि की ओर निहारने लगते हैं। हीर-रांझा प्रेम-क्रीडा मे मग्न हैं। निकाह के समय हीर मुल्ला से खूब तकरार करती है। कहती है कि मुझे खेडा कबूल नहीं। रांझा मेरा मुर्शिद है। पीरों ने मेरा विवाह उससे करवा दिया। रांझे के बिना किसी और को पति रूप में स्वीकार करना मुझ पर हराम है। हीर विरोध करती रही और निकाह पढा दिया गया है। सुहागरात को जब शहबाज खाँ हीर के पास जाता है तो हीर उसे वह पटखनी देती है कि उसके चार दाँत टूट जाते हैं। बेचारा वापस जाने का बहाना सोचने लगा। कहने लगा कि मैं तो यहाँ रांझे को देखने आया था। रांझे का नाम सुनकर हीर पसीज गई। कहने लगी—भैया, मेरी चपेट से तुम्हे चोट लगी होगी, मेरी भूल क्षमा करो। हीर के मुख से भैया का सम्बोधन सुनकर शहबाज तो जैसे धरती मे गड गया। वहाँ से भागा और मुँह लपेट कर बारातियो मे सो रहा। पालकी पर बैठते समय भी हीर ने विरोध किया। वह पालकी मे बैठती नही। यहाँ भी एक युक्ति से काम लिया जाता है। दहेज के साथ रांझे को भी भेजा जाता है। जब हीर सुनती है कि एक बडा नगारा उठाये रांझा बारात के साथ जा रहा है तो वह स्वय पालकी मे बैठ जाती है। हीर के साथ एक दाई—नाइन—भी है। मार्ग मे बारात के लिए मलीदा बनाया जाता है। हीर को भी दिया जाता है किन्तु वह तो रांझे की जूठन खायेगी। रांझे को जिमाये बिना कुछ भी खाना-पीना उसके लिए हराम है। मलीदा लेकर नाइन रांझे के पास गई। मार्ग मे ही उसने एक तिहाई मलीदा अलग कर लिया था। कहने लगी—हीर ने इसी प्याले मे खाना खाया है, तुम भी खालो। रांझे ने एक निवाला मुँह तक उठाया किन्तु उसने खाने से इन्कार कर दिया। उसे खाने में हीर की स्पर्श-सुगन्धि नही मिली। वही प्याला लेकर नाइन हीर के पास पहुँची किन्तु उसने भी खाने मे 'रांझे के मुख की बास न पाई।' वह भी भूखी रही।

रगपुर पहुँच कर भी हीर एक समस्या बनी रही। शहबाज खाँ को वह अपने निकट न आने देती थी। आखिर, उसे शहबाज खाँ की विधवा बहिन सहती के यहाँ रखना ही उचित समझा गया। शहबाज ने सब आपदाओ के मूल कारण रांझे को मार देने का निश्चय किया। रांझे को पता चल गया। वह एक भैंसे पर चढ कर वहाँ से भागा। रगपुर से दौड कर अपने गांव हजारे में पहुँचा। अभी उसने पाँव की धूली भी न झाडी थी कि भाइयो ने ताने कसने आरम्भ कर दिये। रांझे ने एक बार फिर गाँव से विदा ली। अब वह फकीर का भेष बना कर भ्रमण करने लगा।

इधर हीर 'झुरि झुरि पिंजर हो गई रही न देह सभाल'। वर्षा की बूँदें उसे जलाती है, मयूर वाणी उसे सुहाती नही। सहती, जो स्वय प्रेम की कसक से परिचित थी, हीर की ऐसी दशा देखकर दुखी होने लगी। हीर ने अपने मन की बात सहती पर प्रकट कर दी। सहती ने हीर का सदेश रांझे तक पहुँचाने के लिये अपने प्रेमी रामू ब्राह्मण को तैयार किया। सदेश भेजा गया—तुम्हारी आशा ही मुझे जीने

के लिये बाध्य कर रही है, अब जीने से तो 'घोर हलाहल' पीना ही भला है। एक बार आकर इस दासी की दशा निहारो। मेरे पास पख होते तो मैं स्वय उड़कर तुम्हें मिलती। तुम्हारे बिना असहाय समझ कर रात्रि को चाद मुझ पर बाण छोड़ता है, दिन को सूर्य मुझे जलाता है। मेघ की मोती-सदृश बूँदें भी अणी के समान मेरे चित्त को चीर जाती हैं। पपीहा, नदी, बेले, शीतल बयार सब मेरे शत्रु हो रहे हैं। तुम हो, कभी योगी का भेष बनाकर भी नहीं आते। मैं तुम्हारी दासी ही हूँ, मुझे कुछ और मत समझो। रामू ने राझे को ढूँढ निकाला। सदेश पा कर राझा फिर रगपुर की ओर चला। चिरविछोह के उपरान्त हीर और राझे का मिलन हुआ। किन्तु यह मिलन भी बहुत सतोषप्रद न था। हीर रगपुर मे न रहना चाहती थी। वह नही चाहती है खेडो से उसका किसी प्रकार का भी सम्बन्ध रहे। धूर्त सहती ने एक युक्ति सोच ही ली। हीर के पाँव मे सुई चुभो कर ऊपर हल्दी मल दी गई। सहती उच्च स्वर में रोने लगी कि हीर को साँप ने डस लिया। हीर का ससुर और पति भागते हुए वहाँ पहुँचे। सहती के कहने पर योगी वेषधारी राझे को मन्त्र फूँकने के लिये बुलाया गया। योगी ने दरवाजा बन्द करवा दिया और मन्त्र फूँकने लगा। चार सप्ताह तक वह बन्द कमरे मे हीर से केलि करता रहा। सहती चिन्तित ससुर और पति को योगी के मन्त्र बल के मनोरजक और मनघडत किस्से सुना कर आश्वस्त करती रही। योगी ने मन्त्रबल से अनेक सर्पों को वहाँ बुला दिया है परन्तु हीर को डसने वाला सर्प अभी नही पहुँचा। योगी एक टाँग पर खडा हो कर मन्त्र फूँक रहा है। आखिर एक दिन योगी हीर को लेकर चलता हुआ। खेडो ने अस्त्र-शस्त्र से उसका पीछा किया। मार्ग मे एक गाँव के लोगो ने हीर राझे को शरण दी और उनकी खातिर खेडों से लोहा भी लिया। अन्त मे बात कोट कबूल के काजी तक पहुँची। हीर खेडो को लौटा दी गई। राझे को चिलचिलाती धूप मे बिठा कर कोडे लगाये गये। उसी समय कोट कबूल मे आग लग गई। लाख यत्न करने पर भी वह शात न हुई। लोगो ने कहा कि सच्चे प्रेमियो से अन्याय होने के कारण ही नगर पर दैव का प्रकोप हुआ है। हीर को पुन कचहरी मे बुलवाया गया। राझे की प्रार्थना से अग्नि शात हुई। हीर राझे को दिलवा दी गई। दोनो को सच्चे प्रेमी समझ कर नगरनिवासियो और काजी ने प्रार्थना की कि आप कबूले मे ही रहें परन्तु वे बस्ती मे रहना नही चाहते। नगर छोड कर निर्जन मे घूमने लगते हैं। निर्जन मे पचपीरों के पुन दर्शन होते है। वे कहते हैं कि इतनी पीडा सहन करने से तुम्हारे मन का मैल जाता रहा है। वे हीर को आशीष देते है कि तुम्हारा सुहाग चिरकाल के लिये बना रहे। इसके पश्चात वे दोनो ही स्वर्ग मे उच्चस्थान प्राप्त करते हैं।

उद्देश्य—गुरुदास गुणी द्वारा लिखा हीर राझे का किस्सा निस्सदेह लौकिक प्रेम की कथा है। राझे की त्रासदी का मूल कारण आर्थिक विषमता एव अधमर्यादा है। राझे के बडे भाई उसकी जमीन हथिया लेने के लिये ही उसे घर से निकाल बाहर करते हैं और हीर का पिता चूचक एक निर्धन चाक राझे की अपेक्षा एक सम्पन्न परिवार के नवयुवक सहबाज खाँ खेडा से अपनी पुत्री का विवाह करना

उचित समझा है। तो भी तत्कालीन किस्सा-काव्य की परम्परा के अनुसार गुरदास गुणी ने इस लौकिक कथा को आध्यात्मिक पुट देना उपयुक्त समझा है। हिन्दी के सूफी कवियों के समान पंजाब के किस्सा कवियों में भी लौकिक प्रेम-कथाओं को आध्यात्मिक रंग देने की रुचि है। अन्तर केवल इतना है कि सूफी कवि इस दिशा में अधिक सचेष्ट प्रयास करते रहे हैं जिनके फलस्वरूप उनकी कृतियों में कई स्थानों पर कथा प्रवाह रुक जाता है और उसका स्थान सिद्धान्त-निरूपण ग्रहण कर लेता है। यह सिद्धान्त निरूपण अनिवार्यतः एक सम्प्रदाय विशेष से सम्बन्ध रखता है। परिणामतः कला—जो साधारणीकृत भाव पर पनपती है—हानि उठाती है। पंजाबी किस्सा कवियों में साधारणतः सचेष्ट प्रयास का आभास नहीं मिलता, प्रत्यक्ष सिद्धान्त निरूपण का अभाव है। किस्सा कृतियों में सिद्धान्त साधारणतः उसी सीमा तक आ सका है जहाँ तक कि वह पात्रों के जीवन का सहज अंग बन सके। अतः उसमें साम्प्रदायिक संकीर्णता न रह कर कलात्मक विशदता है।

गुरदास गुणी का आदर्श दामोदर था जिसने जहाँगीर के राज्यकाल में हीर-रांझे का किस्सा सर्वप्रथम पंजाबी भाषा में लिखा। यों तो दामोदर का दावा है कि उसने हीर-रांझे की यह कथा अपने चर्म-चक्षुओं से देखी, तो भी वह कथा में 'पंच पीर' आदि कुछ इस प्रकार के पात्र भी ले आया जिनका लौकिक अस्तित्व कोई नहीं। लौकिक प्रेम को मुर्शिद-मुरीद प्रेम कोटि का दिखाने की परम्परा का आरम्भ पंजाबी किस्सा काव्य में दामोदर से ही होता है। गुरुदास गुणी, जिसने अपने किस्से का कथासूत्र दामोदर से ग्रहण किया, कथा को आध्यात्मिक पुट देने की प्रवृत्ति के लिये भी दामोदर का ऋणी है।

इस किस्से का आरम्भ चनाब (चन्द्रावती) नदी के किनारे बसे सियाल नगर और उसमें उत्पन्न हीर के सौन्दर्य वर्णन से होता है। यह रूप वर्णन नितान्त लौकिक स्तर पर है। हीर के नखशिख वर्णन पर यदि किसी का प्रभाव है तो रीतिकालीन शृंगारी कवियों का। यह नखशिख वर्णन स्पष्टतः ऐन्द्रिय स्तर पर है, इसमें परोक्ष रूप से भी आध्यात्मिक पुट देने का प्रयास दृष्टिगोचर नहीं होता। सिर से पाँव तक छाये हुए केश नाग हैं जिन्हें गूँथते हुए हीर भय खाती है, माथा दीपक के समान जाज्वल्यमान और 'भौंहि इन्द्र धनुष ते नीकी' प्रतीत होती हैं। वक्ष स्थल पर बिखरे हुए केश कुच-कलशों से दूध ढूंढते हुए सर्प-द्वय के समान और कान 'जोबन-मन्दिर के दोऊ द्वारे' के सदृश हैं। एड़ी वर्णन तो स्पष्टतः बिहारी[1] के दोहे से प्रभावित है

---

१ पाय महावर देन को, नाइन बैठी आय।
फिरि फिरि जानि महावरी एडी मीड़त पाय ॥१०८॥
कौहर सी ऐड़ीन की, लाली निरखि सुभाय
पाय महावर देह को, आप भई बेपाय ॥११०॥

—बिहारी बोधिनी, पृष्ठ ४८-४६

रक्त बरन दोऊ ऐंडी सोहै।
निरख जीअ प्राण को मोहै।
जावक लावन को कोई नारी।
जब ते पकरी हाथ मंझारी।
दिख लाली चितवै मन माही।
जावक दियो अहै कि नाही।।

—पृ० १८४

माथे पर 'लिख्यो इस्क श्रंक' कहकर लेखक ने ही भावी प्रेमोन्मेष का संकेत दिया है।

रांझे के रूप का बखान कवि ने इतने विस्तार से नही किया। उसके रूप का वैशिष्ट्य उसकी नारी मोहिनी शक्ति मे है। जो उसे देखती है, मोही जाती है। जब वह घर छोड़कर चल देता है तो मार्ग मे एक धीवर-सुता उस पर मोहित हो जाती है। मोहित तो उसकी माता भी हो जाती है किन्तु वय मे अत्यन्त असमानता होने के कारण वह उससे अपनी दुहिता के पाणि-ग्रहण के लिये ही प्रस्ताव करती है। सियाल मे हीर और उसकी सखियाँ भी उसे देखकर ठगीसी रह जाती हैं। रांझा वहाँ से प्रस्थान करना चाहता है किन्तु सखियाँ उसके पाँव पकड़ लेती हैं:

सस मुख देख्यो मारग जाए। उठी दौर तिहि पकरे पाए।
कहै कहाँ जावै रे चोरा। मोसो हमसो आखनि जोरा।
नैन सैनि के हम तोहि मारै। घायल होई है हम सारे।।—२३७

हीर अन्य सब सखियों से कही अधिक विह्वल है:

जो यहि जावै हीर न जीवै।
मीच हलाहल अब ही पीवै।।—२३६

हीर का यहाँ तक का प्रेम नितान्त लौकिक है, उसे चिन्ता भी है कि रांझा उसे छोड़कर कही चला न जाय और नारीसुलभ ईर्ष्या भी कि इसका मन किसी और सखी पर न आ जाये:

जावै मति कहूँ अवर दिसा को।
कै चित आने आनि सखा को।।—२४५

इसके पश्चात् वही कठिनाइयाँ हैं जो लौकिक प्रेमियों के सामने उपस्थित होती हैं। प्रेम छिपाये नही छिपता। कही तृण राशि मे आग भी छिपती है।[1] सामाजिक मान-मर्यादा से शासित और अपनी सन्तान के भौतिक सुखसाधनों के लिये चिन्तित माता-पिता उसका विवाह एक सम्पन्न घराने मे करने का निश्चय करते हैं। किशोरावस्था की सम्पूर्ण एकनिष्ठता से अनुप्राणित हीर इस विवाह का सशक्त

१. छपी बात प्रगटन पर आई
काखनि आग न रहै छपाई—२६३
काख, कक्ष (संस्कृत)=घास-फूँस

किन्तु असफल विरोध करती है। अपनी ससुराल पहुँचने पर भी भाग्य से समझौता करना स्वीकार नहीं करती और अन्त में सहती की सहायता से राझे के साथ चल देती है।

लौकिक प्रेम-कथाओ के सामने एक बहुत बडी समस्या रहती है प्रेम की पवित्रता की। विशुद्ध लौकिक प्रेम की कथायें—ससी-पुन्नू, सोहणी-महीवाल, शीरी-फरहाद आदि—प्रेम की तीव्रता, तन्मयता और निष्ठा पर जितना बल देती हैं, उतना ही प्रेम की पवित्रता पर। लौकिक प्रेमियो के प्रति पाठक की सहानुभूति बनाये रखने के लिये उसके प्रेम को पवित्र दिखाना, उसे कामुकता के स्तर पर न उतरने देना नितान्त आवश्यक है। थोडी सी ढील छोडने पर प्रेम सम्बन्ध के काम सम्बन्ध मे तथा प्रेमकथा के कुरुचिपूर्ण कामकथा मे परिवर्तित होने की आशका रहती है। अतिरिक्त कठोरता रखने पर प्रेम सम्बन्ध के कोरे अध्यात्म सम्बन्ध म परिवर्तित हो जाने की भी सम्भावना है। पजाबी किस्साकारो ने साधारणतः अपनी रचनाओ को दोनो प्रकार की क्षति से बचाने का प्रयास किया है। उन्होने न तो अपनी कथा को कुरुचिपूर्ण कामकथा बनने दिया है और न रूखी अध्यात्म कथा। हाँ, उनमे लौकिक प्रेम को आध्यात्मिक प्रेम-सा पवित्र दिखाने का आग्रह अवश्य है।

दामोदर ने हीर-राझे के प्रेम को पवित्र रखने के लिये पच पीरो की कल्पना की है। गुरुदास गुणी ने दामोदर का अनुसरण करते हुए राझे को पचपीरो के दर्शन कराये हैं और उनसे काली कमली, मुरली, असा, प्याला और हीर का वरदान दिलवाया है। इन्ही पाँचो पीरो के दर्शन हीर को भी होते हैं। हीर को वे राझे का वर प्रदान करते हैं। अत हीर-राझे का प्रथम दर्शन प्रेम केवल रूपाकर्षण ही नही, बल्कि दैव द्वारा पूर्व-निर्णीत तथ्य है। यही पचपीर हीर-राझे को कई प्रकार की विपदाओ से बचाते हैं। हीर की माता जब कुल-कलकिनी बेटी को विष देना चाहती है तो पचपीरा की अदृश्य शक्ति के कारण हीर पर विष का कोई प्रभाव नही होता। हीर के भाई राझे को मारने के लिये बेले (नदी तट पर सघन वन) मे जाते हैं तो वहाँ काले वस्त्रो वाले सवार उसकी रक्षा करते दिखाई देते है। विवाहोत्सव पर कगन-बधन के समय भी पचपीर अदृश्य रूप से उपस्थित रहते हैं। हीर खेडो का भेजा हुआ कगन ग्रहण नही करती, तो हीर की माता राझे के हाथ से कगन बँधवाना चाहती है। राझा आता है, पचपीर अदृश्य रूप से उसकी रक्षा करते हुए उसके साथ है। उनकी उपस्थिति से सारा घर जगमगा उठता है। उपर्युक्त चमत्कार इस किस्से के अलौकिक अश हैं किन्तु इनका कथासूत्र पर प्रभाव सर्वथा नगण्य है। हीर और राझे के मार्ग में आई बाधाओ का निराकरण करने के लिये पचपीरो ने कहीं भी अपनी असाधारण, अलौकिक शक्ति का प्रयोग नही किया। पचपीरो के आशीर्वाद के बावजूद हीर-राझे को लौकिक विघ्न बाधाओ मे से गुज़रना पडता है। पीर तो विवाह नही रोकते। पुनर्मिलन के लिये भी हीर-राझे को लौकिक बुद्धि-चमत्कार का ही आश्रय लेना पडता है। अत यह निष्कर्ष निकालना न्यायसगत होगा कि पचपीरो की कल्पना हीर और राँझे के मन मे विश्वास की भावना को दृढ करने के लिये

और पाठकों के मन में लौकिक प्रेम की पवित्रता का प्रभाव पुष्ट करने के लिये ही की गई है। अन्यथा पात्रो के चरित्र-चित्रण और घटनाचक्र का निर्माण पूर्णतः भौतिक भित्ति पर ही हुआ है।

सूफी प्रेम-प्रबन्धो में भी चमत्कारों के दर्शन होते हैं। इन चमत्कारो को हम दो वर्गों मे बाँट सकते हैं। एक प्रकार के चमत्कार तो ऐसे हैं जिनमें मानवीय पात्र अप्राकृतिक शक्तियों से सम्पन्न दृष्टिगत होते हैं अथवा मानवेतर पात्र मानवीय वाणी, बुद्धि, आदि का परिचय देते प्रतीत होते हैं। उदाहरण के लिये सूफी प्रबन्धो की कई नायिकाओं को उड सकने की शक्ति प्राप्त है। सुआ तो सूफी प्रबन्धो का लगभग अनिवार्य पात्र है। वह मानवीय वाणी से सम्पन्न है। ज्ञान मे वह मानव का पथ-प्रदर्शन करने की सामर्थ्य रखता है। पंजाबी भाषा मे लिखे गए कुछ किस्से ऐसे भी हैं जिनमे इस प्रकार के चमत्कारो का प्रयोग हुआ। किन्तु, पंजाब के प्रेम प्रबन्धों—हीर-राझा, सोहणी-महीवाल, सस्सी-पुन्नूँ, मिर्जा-साहिबाँ आदि—में इस प्रकार के चमत्कारों का सर्वथा अभाव है। विशेष रूप से द्रष्टव्य बात यह है कि पंजाबी प्रबन्धो में सुए का स्थानापन्न पात्र कोई नही। आध्यात्मिक आदर्श की ओर मोडने वाले पात्र के अभाव से इतना निष्कर्ष तो निकाला ही जा सकता है कि कम-से-कम पंजाबी किस्सा-काव्य मे आध्यात्मिक-आग्रह इतना आरोपित, इतना आयोजित नही जितना सूफी प्रेम-प्रबन्धो मे। यह बात सम्पूर्ण पंजाबी किस्सा काव्य के विषय मे साधारणत और गुरुदास गुणी (एव दामोदर) द्वारा लिखित 'कथा हीर राझे की' के विषय मे विषय में विशेष रूप से सत्य है।

दूसरे प्रकार के चमत्कार वे हैं जहाँ दैवी पात्र घटना-चक्र मे हस्तक्षेप करते हैं। इस प्रकार का हस्तक्षेप भी अपने महत्त्व के अनुसार सूक्ष्म अथवा स्थूल श्रेणियो मे विभाजित किया जा सकता है। यो हर मानव में दैवी संभावनायें रहती हैं। कई बार मानव को ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी क्षुद्रता मे ही कहीं लोकोत्तर उत्कृष्टता छिपी हुई है—जैसे कोई दिव्य अस्तित्व उसके भौतिक अस्तित्व मे समाया हुआ है। प्रेमावस्था मे यह सुन्दर भ्राति बहुधा हुआ ही करती है। प्रेमियो को यह भ्रम होना कि उनका प्रेम-सम्बन्ध दैव-निर्णीत है, स्वाभाविक ही है। प्रेम-कथा मे दैवी पात्रो का सन्निवेश इसी सूक्ष्म सत्य को स्थूलरूप से अभिव्यक्त करने के लिये होता है। इस रूप मे वह हमारे सहज-विश्वास पर भार नहीं प्रतीत होता। किन्तु, कई बार दैवी पात्रो का घटना-चक्र मे हस्तक्षेप इतना स्थूल और उसका कथा-प्रवाह पर प्रभाव इतना स्पष्ट होता है कि वह हमारे सहज-विश्वास को स्वीकार्य नही होता। उदाहरण के लिये पद्मावत मे दो स्थानो पर शिव-पार्वती हस्तक्षेप करते हैं। एक बार शिव और पार्वती राजा रत्नसेन की परीक्षा लेने के लिये प्रकट होते हैं। अप्सरा का रूप धारण किये पार्वती के रूप पर राजा रत्नसेन लुब्ध नही होता। परीक्षा मे उत्तीर्ण रत्नसेन को महादेव 'गढ तस बाक जैसि तोरि काया' का उपदेश देते हैं। यह घटना पद्मावत के कथा-प्रवाह एव दिशा को किसी प्रकार भी प्रभावित नहीं करती। यह घटना केवल इस सूक्ष्म सत्य की स्थूल अभिव्यक्ति है कि सच्चे प्रेम मे एकनिष्ठता

अनिवार्य है। पद्मावत में लक्ष्मी का पद्मावती का रूप बना कर रत्नसेन को लुब्ध करने का प्रयत्न भी इसी प्रकार का ही चमत्कार है। किन्तु जब सूली खंड में सूली पर चढ़े रत्नसेन को शिव सूली से बचाते हैं तो बात इतनी सूक्ष्म नहीं रहती। शिव के दर्शन रत्नसेन और सिंहलपति गंधर्वसेन दोनों को होते हैं। इस प्रकार उनका स्वरूप सूक्ष्म दिव्य पात्र की अपेक्षा स्थूल दिव्य पात्र के अधिक निकट है। दूसरी विचारणीय बात यह है कि शिव का यह हस्तक्षेप कथा को एक विशेष दिशा में मोड़ देता है। यह मोड़ बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। 'कथा हीर रांझे की' में दैवी पात्रों का ऐसा स्थूल एवं महत्त्वपूर्ण हस्तक्षेप कहीं नहीं हुआ। स्पष्ट है इस प्रकार का हस्तक्षेप पौराणिक (अथवा आध्यात्मिक) कथा-काव्य के जितने काम की वस्तु है उतने लौकिक प्रेम प्रबन्धों के काम की नहीं। इस रूप से भी गुरुदास लिखित हीर रांझे की कथा पद्मावत आदि सूफी प्रेमप्रबन्धों की अपेक्षा अधिक लौकिक और कम आध्यात्मिक है।

पंचपीरों की कल्पना ने हीर के चरित्र को संयत करने में[1] बड़ी सहायता दी है। पीरों का दर्शन और निर्देश उसके विश्वास को अडिग बनाये रखता है। जिस निस्संकोच भाव से वह अपनी माँ, मुल्ला, भावी पति और काजी के सामने रांझे के प्रति अपने प्रेम को प्रकट करती है[2] वह नारी-सुलभ लज्जा के अभाव का इतना

---

१. दोऊ तव ढिग आए हीरा। अरु रांझे संग पाँचों पीरा।
रहे पीर सद आप छिपाए। अवसर बिना न किसे जनाए।
बाहर दर रखवारे खरे। मत ही हीर रौरव हरे।
भीतर गृह के रांझा हीरा। अरु रखवारे ता सन पीरा।
सोभा ता क्या कहूँ सुनाये। सत सूरज जनु इक गृह आए।
जगमगाति तिमको इमि भयो। रखवारों को धीरज गयो। —पृ० ३०७

२. हीर माता से—

मुझ विवाह रांझे संग कीना।
पीरों आप भनी सुधि दीना।
रांझा मेरो सिर को ताजा।
प्रगट कहूँ अब कैसी लाजा। —पृ० २६३

हीर मुल्ला से—

बोली हीर कह्यो पुनि ताही।
मुझ कबूल यहि खेड़ा नाही।
करते रांझा मुझ को दीना।
....
अवर न कोउ मुझे हलाला।
बिन रांझे जो दियो दयाला। —पृ० ३१३

हीर माता से पालकी में बैठते समय—

रांझा क्या मैं अब ही पायो।
जब ही तो गृह भीतर आयो।

(शेष अगले पृष्ठ पर)

परिचायक नहीं जितना गहरे आत्मविश्वास का। पीरों की कल्पना के बिना यह सभव न होता। इस किस्से मे पचपीरो की कल्पना का हीर के चरित्र-विकास पर वही आभार है जो अभिज्ञान शाकुतलम् मे दुर्वासा के अभिशाप की कल्पना का दुष्यत के चरित्र पर है। इनके बिना दोनो के कर्म अदम्य कामुकता से परिचालित प्रतीत होगे।

अलौकिकता : एक परम्परा—ऐसा प्रतीत होता है कि हीर-राँझे की प्रेमकथा मे अलौकिक तत्त्वो का समावेश गुरदास गुणी के समय तक एक परम्परा का रूप धारण कर चुका था। प्रसिद्ध सिक्ख कवि गुरुदास भल्ला द्वारा उनकी प्रेम-कथा के स्तुतिपूर्ण उल्लेख से प्रकट होता है कि जनसाधारण उनके प्रेम की असाधारणता एव अलौकिकता को स्वीकार कर चुका था। लोकप्रिय जनकथा बन जाने के कारण इसमे असाधारण तत्त्वो का समावेश हो जाना स्वाभाविक ही है। गुरु गोविन्द सिंह के समय तक हीर और राझा को पौराणिक परम्परा मे स्थान देने का प्रयास हो चुका था। दशम ग्रथ के चरित्रोपाख्यान मे वे मेनका और इद्र के अवतार रूप मे गृहीत हैं। मेनका कपिलमुनि के शाप के कारण ही धरती पर म्लेच्छ वश मे उत्पन्न हुई है

तौने सभा कपिल मुनि आयो। औसर जहा मैनका पायो।
तिह लगि मुनि वीरज गिरि गयो। चपि चित मे स्रापत तिह भयो ॥१२॥
तुम गिरि मात लोक मे परो। जूनि सयाल जाट की धरो।
हीर आपनो नाम सदावो। जूठ कूठ तुरकन की खावो ॥१३॥
दोहरा—तब अबला कपति भई ताके परिकै पाय।
क्योहू होय उधार मम सो दिज कहो उपाय ॥१४॥
चौपई—इन्द्र जु मृत मडल जब जैहै। राझा अपनो नामु कहैहै।
तोसौ अधिक प्रीति उपजावै। अमरावती बहुरि तुहि ल्यावै ॥१५॥

—दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ९४२-४३

जहाँ हिन्दी क्षेत्र मे हिन्दू परिवार की कथा को सूफी सिद्धान्तो के अनुसार ढालने का यत्न किया गया है, वहाँ पजाब मे मुसलमान परिवार की कथा को पौराणिक परम्परा के अनुसार ढालने का प्रयास किया गया है। इस आख्यान मे हीर-राझे का प्रेमवर्णन भी इस प्रकार हुआ है कि वह अद्वैत अथवा फना का प्रतीक दिखाई देता है

अरी दिवानी सोच न तुझे।
करवे पीरौ दीनो मुझे।
जा दिन जनम दोऊ हम लीनो।
हम सजोग आपनि प्रभि दीनो।
प्रगटि भया तुझि गृह माही।
सही जान टूटन को नाही। —पृ० ३२६७

राझन ही के रूप वह भई । ज्यो मिलि बूंदि वारि मो गई ॥२३॥
जैसे लकरी आगि मैं परत कहूँ ते आय ।
पलक द्वैक तामें रहै बहुरि आगि ह्वै जाय ॥२४॥
—पृष्ठ ९४३

उपर्युक्त तथ्यो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अपनी कथा म अलौकिक तत्वो का समावेश कर गुरुदास गुणी एक लोक-परम्परा का ही पालन कर रहे थे । इस अलौकिकता के आधार पर इसे अन्योक्ति शैली पर लिखी सूफी सिद्धान्तो की प्रतीक कथा मानना युक्ति-सगत न होगा । यहाँ विशेष स्मरणीय यह भी है कि दामोदर, गुरु गोविन्द सिंह तथा गुरुदास गुणी तीनो मे कोई भी सूफी नही था । गुरुदास गुणी अपनी कथा का आरम्भ क्रमश गणेशवन्दना, गुरु पद वन्दना, सरस्वती वन्दना और औरगजेब की स्तुति से करते हैं । निश्चय ही गणेश वन्दना और सरस्वती वन्दना सूफी काव्य-परम्परा का अग नही । कहीं कही तो ऐसा प्रतीत होता है कि यदि यह अन्योक्ति ही है तो सूफी काव्य धारा की नही अपितु कृष्ण काव्य धारा की है । राझे की नगरी 'दूजी मथुरा'[1] है । कृष्ण के समान उसे भी जान खोने का भय है ।[2] माता समान भावजो को छोड कर वह चल देता है ।[3] कृष्ण के समान राझे के पास भी 'काली कमली, मुरली, असा (लकुटिया)' है । उसकी मुरली जड-चेतन को मोह लेती है ।[4] वह स्वय तिय मोहन है । राधिका-सरीखी हीर और उसकी सखियाँ सब ठगी जाती हैं ।[5] सियाल मे भैसें चराता हुआ राझा वृन्दावन म गोएँ चराते हुए कृष्ण के सदृश ही प्रतीत होता है ।[6] इससे आग यह सादृश्य नही चलता । वास्तव मे गुरुदास हीर राझे के लौकिक प्रेम को अति पवित्र दिखाने के उद्देश्य से ही उसे कभी कृष्ण-राधिका और कभी मुर्शिद-मुरीद

---

१ सुन्दर नगरी तीर भनाउ । उज्जल निपट हजारो नाउ ।
दूजी मथुरा माने बनी । लोक बमै तिह पुर को धनी ।
रूप दरस के सब ही पूरे । दया धरम करि अतही सूरे ।
जप भनै नित राम समारे । गुण हरि के निस दिन उच्चारे । —पृ० २०८

२. मारैं धीदो को छल करि कै । तब हम होवें खावद घरकै । —पृ० २११

३ रोवै सबही बिनती करैं । तोहि चलत सुत हम सब मरैं । —पृ० २१६

४ मच्छ कच्छ अबरै जीअ जन्ता । पानी मद्दि आए तिह तन्ता ।
सिह प्रमोदै अरु मृग जलतै । भए मगनि सुरति खोए जवतै ।
जल थल में आ इकठे भए । मन सबके मुरली मुस लए । —पृ० २३१

५ इक टक रहा सबै धरि ध्याना । बादर ते ज्यों निकस्यो भाना ।
सकै न बोल पूतरी न्याई । रहा पद्धार मूरछ होई जाई ।

कहा कहूँ कैसे वहि भर । सब मानो बौरा होइ गई । —पृ० २३६

६. जैसे गऊआँ वृन्दावन मों । प्रीत धरैं थी मदन मोहन सों ।
तैसे भैंसा अतिरग पगै । धीधो को अब चाटन लगै ।
पाछे भैंसा धीधो आगै । किसे ओर कोऊ एक न भागै । —पृ० २५६

कोटि का दिखाता है। जहाँ किस्से के आन्तरिक आग्रह ने उसे सूफी सिद्धान्तों का अवलम्ब ग्रहण करने के लिये बाध्य किया है, वहाँ लेखक के अपने विश्वास के कारण इसमें कृष्ण भक्ति का हल्का-सा पुट भी आ गया है। यह बहुत अनुचित भी नहीं। कथा के पात्र नौ-मुस्लिम हैं और उनका हिन्दू-परम्परा से पूर्ण-विच्छेद अभी नहीं हो पाया। ये दोनों कथायें गोप समाज से सम्बन्धित हैं।

चारित्रिक अलौकिकता—अब हम उस अलौकिकता का विवेचन करेंगे जो पात्रों के चरित्र का अनिवार्य अंग है। हीर और राझे की सौम्यता से दिव्य-प्रकृति का प्रभाव पड़ता है।[1] जब दोनों का प्रेम सम्बन्ध लोगों पर प्रकट होता है तो एक आदमी उन्हें छिप-छिप कर देखने के लिये बेले में जाता है, किन्तु दोनों को कतेब (कुरान) पढ़ते हुए और 'कर्तें की चर्चा' करते हुए देखता है।[2] निश्चय ही यह हीर के चरित्र को अतिरिक्त पवित्रता का पुट देने का प्रयास है। किन्तु इससे यह निष्कर्ष निकालना कि हीर-राझा कर्ता की चर्चा करने वाले दो सत्संगी जिज्ञासु मात्र हैं, निर्भ्रान्त न होगा। हीर को जब पता चलता है कि कैदो छिप कर बेले में आया है और छलपूर्वक राझे से हीर-राझे के प्रेम का प्रमाण चूरी ले गया है तो वह क्रोध से उबल उठती है। उसकी सौम्यता रौद्रता में बदल जाती है और वह अपने चाचा कैदो की कुटिया जला देने में रंचमात्र संकोच का भी अनुभव नहीं करती। गुरुदास गुणी का कैदो, वारिस के कैदो के समान असाधारण शठता का प्रतीक नहीं।[3] उपर्युक्त घटनाओं से यही प्रतीत होता है कि हीर का चरित्र असाधारण पवित्र, किन्तु क्रोधादि लौकिक दुर्बलताओं से रहित नहीं।

हीर राझे को 'मुर्शिद कामिल' के समान चाहती है। अपनी माँ, मुल्ला और काजी से वह बार-बार यही कहती है। इस किस्से में ऐसे स्थल भी आते हैं जब हीर और राझा जीव और परमात्मा के प्रतीक दिखाई देते हैं। हीर का राझे के प्रति प्रेम जीव का परमात्मा से अद्वैत-प्राप्त करने का साधन मात्र दिखाई देता है। कम से कम दो स्थानों पर यह अद्वैत-भावना तो बिल्कुल स्पष्ट है :

१. हीर अपनी माता से कहती है :
मुझ विवाह राँझे संग कीनो। पीरौं आप धनी मुहि दीनो।
मैं तिस मुरसद कामल पायो। साचो जान तुझ प्रगट बतायो।
राँझा मेरो सिर को ताजा। प्रगट कहूँ अब कैसी लाजा।
आखनि मेरो तेज तिसी ते। बल देही मै सभी ओसां ते।

---

१. (क) यह तो चाक न मुझ दिस्टावै। वली पुरख कोऊ दिस्टी आवै। —पृ० ३०१
(ख) राझा हीर है दोऊ वली। इह की बात न तुझ समली। —पृ० ३८५

२. छिपि कर गयो एक कोऊ बेलै। देख्यो हीर अतिहि सों खेलै।
हीर चाक दोऊ पढै कतेबा। इक पूछै इक देह जवाबा।
चर्चा करे कर्तें की दोऊ। अदर बात उचरै नही कोऊ। —पृ० २८८

३. कैदो लंगरो ताको भाई। भेस फकीरे रहै बनाई।
सुघड़ चतर अरु बोध को पूरो। कदे बचन नही बोले कूरो। —पृ० २७१

जीव प्रान मेरे तिस जानो। निस वासर मुझ वही धिम्रानो।
एक पलक जो होइ न्यारो। सूना जानो सब संसारो।
रोम रोम मेरे रच रह्यो। सुनो कान दे मेरो कह्यो।—२६४

२. विदा के समय हीर माता से कहती है :

रांझा हीर हीर है रांझा। दोऊ देह जीव हम सांझा।

स्मृतिपरक आध्यात्मिकता—यहां हीर-रांझे के प्रेम को आध्यात्मिक कोटि का न मानना कठिन है। किन्तु यह कहना कि हीर के उपर्युक्त उद्गारों का कोई लौकिक आधार नहीं है, भी सत्य न होगा। हीर ने इस प्रकार के उद्गार तीन स्थानों पर प्रकट किये हैं :

१. अपनी माता से, कंगन बंधन के समय और विदाई के समय;

२. मुल्ला से, निकाह के समय; तथा

३. काज़ी से, विवाह के पश्चात् रांझे के साथ पतिगृह से भाग जाने पर।

तीनों स्थानों पर प्रकृत विषय विवाह-बन्धन है। ऊपरी दृष्टि से देखने पर प्रतीत होता है कि वह माता-पिता, धर्म और न्याय के दुरनुशासन के विरुद्ध झगड़ रही है, किन्तु तीनों को अधिकार प्रदान करने वाला स्रोत एक ही है—शरह। मुल्ला निकाह पढ़ाते समय हीर को 'हलाल' 'हराम' के प्रति सचेत करता हुआ शरह की आज्ञा-पालन की ओर ही संकेत करता है।[1] हीर शरह की अनुदारता के प्रति विद्रोह करने के लिये सूफी सिद्धान्तों की उदार परम्परा का आश्रय ग्रहण कर रही है। उन दिनों शरह की अनुदारता का विद्रोह केवल आध्यात्मिक क्षेत्र में ही—सरमद आदि सूफी फकीरों द्वारा—नहीं हो रहा था बल्कि उसकी जकड़ सामाजिक रीति-रिवाजों में भी अनुभव की जा रही थी और कहीं कहीं नवयुक अपनी सामर्थ्य अनुसार उसका विरोध कर रहे थे। उनका विद्रोह, बहुत सूक्ष्म न होने पर भी, एक व्यापक उदार आन्दोलन का ही अंग समझा जाना चाहिए। गुरुदास गुणी के किस्से की आध्यात्मिकता—यदि इसे आध्यामिकता कहना ही है, तो—इतनी 'श्रुतिपरक' नहीं जितनी 'स्मृतिपरक' है।

यदि गुरुदास गुणी के किस्से को पद्मावत आदि सूफी रचनाओं के समान अन्योक्ति मानने का आग्रह करें, तो इसकी विभिन्न घटनाओं और पात्रों की व्याख्या किस प्रकार होगी? गुरुदास गुणी ने जायसी अथवा हीर के सुविख्यात लेखक वारिस के समान इस ओर कोई संकेत नहीं किया। 'तन चितउर मन राजा कीन्हा' अथवा 'रांझा रूह ते हीर कलबूत जाणों' जैसी पंक्तियां इस किस्से में नहीं मिलती। इस प्रकार का स्पष्ट संकेत न मिलना किस्से के अन्योक्तित्व के विरुद्ध प्रतिमा अथवा

१. री वारी क्या कमरी भई। कैसी मती तै चित मै लई।
जो हलाल तिस रिदे न आने। है हराम तिस गुरसर माने।
काहे नरक समग्री करै। सुरे राह क्यों पग को धरे।
जो मन चाहे इक पछान। नहीं जात है तेरे प्रान।

निर्णायक प्रमाण नही माना जा सकता। अत: क्षण भर के लिए इस किस्से को अन्योक्ति मान कर यह देखना उपयुक्त होगा कि सूफी अन्योक्ति के प्रमुख प्रतीक यहाँ कौन-कौन से पात्र हैं ? जीव कौन है और बुद्धि कौन ? रूह कौन है और कलब कौन ? गुरु कौन है और शैतान कौन ? क्या पद्मावत के समान यहां 'माया' का प्रतीक भी है ? इन सब की खोज करने पर बडी निराशा होती है। पचपीरो को गुरु का स्थानापन्न माना जा सकता है किन्तु कैंदो को शैतान मानना निरापद न होगा। गुरुदास का कैंदो वारिस के कैंदो के समान शठ नही है। वह हीर रांझे के प्रेम का पता, छल से, लगाता जरूर है किन्तु हीर के पिता के जोर देने पर। अन्यथा :

> भेस फकीरे रहे बनाई।
> सुघड चतर अरु बोध को पूरो। कदे बचन नही बोले कूडो।—२७०

हीर को जिज्ञासु माना जाये या बुद्धि—ब्रह्म ? घर से बाहर तो राझा ही निकलता है, योगी का भेष भी वही धारण करता है। अतः उसे ही जिज्ञासु मानना युक्ति-सगत होगा। यह हिन्दी सूफी-काव्य-परपरा के अनुकूल भी है। परन्तु सारी कथा मे वह अर्ध-मूक के समान विचरण करता है। हर विपदा से जूझती हीर ही है। मां, मुल्ला, काजी, पति सब से विवाद उसी का होता है। हीर राझे को प्राप्त करने का जितना प्रयास करती है, उतना राझा हीर को प्राप्त करने का नही। तो क्या हीर जिज्ञासु है और राझा ब्रह्म। हिन्दी सूफी काव्य-परपरा का यह उल्लघन क्यों ? यह पजाब की सूफी परपरा का प्रभाव कहा जा सकता है। पजाबी सूफियो ने अपने इष्ट को पति रूप मे ही चाहा है। इतनी छूट देने पर भी हीर और रांझे की प्रतीकात्मकता के विषय मे अनिश्चितता बना ही रहता है। हीर 'राझा हीर हीर है राझा' कह कर अद्वैतानुभव की ओर सकेत तो अवश्य करती है किन्तु इसे अमिश्रित, आध्यात्मिक कोटि का अद्वैत मानने भी आपत्ति उपस्थित होती है, हिन्दी सूफी कवियो के प्रबन्धो का पर्यवसान साधारणतः नायक-नायिका की मृत्यु मे होता है। नायिका नायक के साथ चिता पर चढ कर पूर्णाद्वैत अथवा फना का अनुभव करती है। पजाब मे लिखी गई अन्य सभी हीरें दुखान्त हैं। वारिसशाह भी अपने किस्से का अन्त हीर और राझे की मृत्यु पर करते हैं। गुरुदास गुणी ने—दामोदर का अनुसरण करते हुए—अपने किस्से को दुखान्त नही बनाया। राझे को हीर प्राप्त हो जाती है। वे नगर छोड कर निर्जन मे विचरण करते हैं तो उन्हे पाचपीरो के दर्शन होते हैं। पीर कहते हैं

> दोनो को तब पीरो कह्यो। अब तुम भीतर मैल न रह्यो।
> इतनी पीरा जो तुम पाई। अपने मन की मैल गवाई।
> भला भया अब निर्मल हूए। जग ते निकसे मन तन धोए।
> हम असीस अब तुम को लागा। रहे सदा थिरा हीर सुहागो।
> भूम अकास जब लग है ठाढे। नाम तुम्हारा जग महि बाढे।—३६०

स्पष्टत: यह फना का प्रतीक चित्रण नही। यह मिलन है, अद्वैत नही। विपदाओं ने दोनो का मल धो दिया है, दोनो ने ससार को देख परख लिया है और अब इससे उदासीन होकर निर्जन मे भ्रमण कर रहे हैं। यदि जिज्ञासु हैं तो दोनो। दोनो ही अपनी पवित्रता के कारण स्वर्ग के अधिकारी हैं :

दोनो स्वर्ग मे जाये पहूँचे।
बैठो जाय आसन तह ऊँचे। —३६०

'कथा हीर राझे की' को लौकिक प्रेम-कथा मानने पर भी एक प्रश्न बना रहता है। क्या इस प्रेमकथा का मनोरथ विशुद्ध मनोरजन है? अथवा क्या किसी विशेष लौकिक उद्देश्य की पूर्ति कवि का अभीष्ट है? इस प्रेम-कथा से हमारा मनोरजन होता है, यह तो स्पष्ट ही है। किन्तु इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इससे हमारी चित्तवृत्तियो का परिष्करण अथवा उन्नयन भी होता है, जो कि यूनानी दार्शनिक अरस्तु के अनुसार किसी भी त्रासदी का मुख्य उद्देश्य है। इसमें शृगार (हीर का नख-शिख वर्णन, हीर-राझे का मिलन, हीर का विरह वर्णन), वीर (हीर-नूरखाँ का युद्ध, नाहर-खेडा युद्ध), अद्भुत (पचपीर वर्णन, मुरलीवादन), करुण (राझे की माता का देहान्त, राझे का गृह-त्याग), हास्य (हीर द्वारा शहबाज का तिरस्कार), शात (हीर-राझे द्वारा कर्त्ता की चर्चा), भयानक (सर्प-वर्णन) आदि रसो के परिपाक द्वारा हमारी दमित वृत्तियो के परिष्करण का अवसर दिया गया है। इस सारे रस विधान का आधार पाठक की युगल प्रेमियो के प्रति स्थिर, अचल सहानुभूति है। इस सहानुभूति के बिना कई स्थानो पर रस का परिपाक सम्भव न होता। उदाहरण के लिए हीर-राझे के प्रति मूल सहानुभूति के बिना हीर (विवाहिता पत्नी) द्वारा शहबाज (पति) के दाँत तोडने का वर्णन हमारे हास्य का विषय न होकर भर्त्सना का विषय होता। इसका अनौचित्य इसे रसाभास कोटि से ऊपर उठने न देता। अब प्रश्न यह है कि हमारी हीर-राझे के प्रति सहानुभूति क्यो है? वह कौन सा लक्ष्य है जिसकी प्राप्ति हीर राझे को अभीष्ट है और जिसको प्राप्त करने के यत्नो में उन्हें हमारा अनुमोदन प्राप्त है?

स्पष्ट है कि हीर-राझे की समस्या प्रेम-स्वातन्त्र्य की है। वे मर्यादा के दुरनुशासन के विरुद्ध जूझ रहे हैं, और इस सग्राम मे उन्हे पाठक की सहानुभूति प्राप्त है। अतः यह कहना उपयुक्त प्रतीत होता कि सयत स्वातन्त्र्य की अन्धमर्यादा पर विजय ही इस कथा का उद्देश्य है। प्रेम-स्वातन्त्र्य उस युग का सामाजिक अध्यात्म है। पचपीर इसी सामाजिक अध्यात्म का प्रतीक हैं। तत्कालीन समाज मे इस नवमूल्य का विरोध करने वाले भी हैं और इसका पक्ष लेने वाले भी। सहती, हीर, राझे के शरणदाता नाहर, कोट कबूल के लोग, इसी नवचेतना, नवजागरूकता के प्रतीक हैं। ऐसा प्रतीत होता कि तत्कालीन समाज का एक भाग प्रेम-स्वातन्त्र्य की पुकार का न्याय स्वीकार करता था। विवाह-मर्यादा का उत्पीडन पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो को अधिक सहन करना पडता है, अतः विद्रोहियो की अग्रपक्ति मे वे ही हैं। धीवर-सुता, हीर और सहती ही इस स्वातन्त्र्य के लिए सक्रिय दृष्टिगोचर होती हैं। इस

प्रेम-कथा का सुखमय पर्यवसान पारिवारिक मर्यादा, धर्मानुमोदित न्याय, और अर्थावलम्बित विशेषाधिकार के विरुद्ध जनसाधारण के सफल विद्रोह की ओर ही सकेत करता है। प्रेम-कथा के प्रेम और कथा शब्द क्रमशः समस्या और साधन, उद्देश्य और मनोरजन की ओर ही इगित करते हैं। इन दोनो का सुखद समन्वय इस कथा का विशिष्ट गुण है।

सक्षेप से हम कह सकते है कि इस किस्से मे हिन्दी सूफी-काव्य परम्परा का पूर्ण पालन नही हुआ है। पचपीरो की कल्पना एव हीर राँझे की चरित्रगत पवित्रता से ऐसा सन्देह अवश्य होता है किन्तु इनके आधार पर इसे सूफी अन्योक्ति कहना उचित न होगा। हीर ने भी अपने माता-पिता, मुल्ला, काज़ी आदि से उलझते समय सूफी सिद्धान्तो का आश्रय लिया है किन्तु इसका महत्त्व आध्यात्मिक न होकर विशुद्ध लौकिक है।

चरित्र-चित्रण—इस किस्से की एक स्तुत्य विशिष्टता है कथा और पात्रो का सुन्दर सतुलन। कथा पात्रो के स्वभाव और तज्जनित परिस्थितियो के सहारे ही आगे बढ़ती है। सयोग का भी घटनाचक्र मे कुछ योग है किन्तु उसका महत्त्व सर्वथा नगण्य है। एक अपवाद के अतिरिक्त (कोट कबूल का अग्निकाण्ड) कही भी किसी विकट परिस्थिति को सयोग अथवा अदृश्य भावी द्वारा सुलझाने का यत्न नही है। यहाँ एक सराहनीय बात यह भी है कि पात्रो के स्वभाव से भी कोई अनुचित, अस्वाभाविक, खिलवाड नही किया गया। हमारे कवि को मानव-कर्म और मानव-स्वभाव के सूक्ष्म सम्बन्ध का पूरा परिचय है।

हीर और राझा इस कथा के मुख्य पात्र हैं। चूचक, हीर की माता, कैदो, शहबाज़ खाँ, सेडा, सहती का भी घटना-प्रवाह मे पर्याप्त हाथ है। इनके अतिरिक्त और भी छोटे-मोटे पात्र हैं। हर पात्र, बिना अपवाद, अपने निजी हित, स्वभाव और परिस्थितियो के अनुकूल कर्मरत दिखाई देता है। इस प्रकार पात्रो के चरित्र का पारस्परिक अन्तर, सघर्ष और घात-प्रतिघात बहुत निखर कर सामने आया है।

सर्वप्रथम धीदो के गृहत्याग को लें। माता-पिता की मृत्यु के उपरान्त बडे भाई धीदो (राझा) को मार डालना चाहते हैं किन्तु मारते नही; जमीन का बँटवारा मात्र ही करना पर्याप्त समझते हैं। ऊसर धरती राझे को दे देते हैं। राझा घर छोडने पर बाध्य हो जाता है। क्या परिवार के सभी सदस्य राझे को घर-ग्राम से निकालने पर ही उतारू हैं। भाई ऐसा चाहते हैं, यह उनके आर्थिक हितों का आग्रह है। धीदो की अपरिपक्वता उन्हें इस प्रकार का व्यवहार करने की अतिरिक्त प्रेरणा भी देती है। कवि यहाँ भावजो का व्यवहार अपने पतियो के नितान्त प्रतिकूल दिखा कर मानव स्वभाव की वर्तुलता का परिचय देता है। राझा भाइयो की धूर्तता का शिकार हो कर ग्राम छोडकर जा रहा था किन्तु भावजें उसे रोकती हैं। उनके अनुरोध में उतनी ही सबल सवेदना है जितनी उनके पतियो के व्यवहार में हृदयहीनता।[1]

१. पकड खडी मग जान न देही। आन्वनि तै जिव बरसै मेही।
रोवै सबही बिनती करे। ग्रोहि चलत सुत हम सब मरे।
मत कहूँ जाइ रहो हम पाहा। तुम देखन की हम अति चाहा—प० २१६

कुछ इसी प्रकार की परिस्थिति खेडा-परिवार मे है। राझे से खेडो की शत्रुता स्वाभाविक और सकारण है। उसी के कारण शाहबाज़ खाँ को भरी सभा मे अनादृत होना पडा। हीर ने खेडे से विवाह करने से इन्कार कर दिया। सुहाग रात्रि को इसी राझे के प्रेम मे बावली हीर ने उसका स्वागत उसके चार दाँत तोड कर किया। विवाहोपरान्त भी हीर ने शाहबाज़ खाँ को पति नही समझा। शाहबाज़ खाँ उसे मारना चाहे, यह अस्वाभाविक नही। किन्तु उसी परिवार मे उसकी अपनी बहन सहती राझे की हितैषिणी है। उसकी अपनी परिस्थितियाँ हैं। वह स्वय प्रेम-दग्धा है, सामाजिक मर्यादा उसके प्रेम सम्बन्ध मे बाधक है। अपने ही जैसी विरह-विधुरा हीर के दु:ख के प्रति उसकी सहानुभूति स्वाभाविक है। मानव कही भी अकेला नही। हितो के व्यापक द्वन्द्व के सौजन्य से शत्रु-मित्रो का प्रबन्ध हर स्थान पर स्वयमेव होता रहता है—इस सत्य को गुरुदास गुणी ने भली प्रकार समझ रखा था।

राझा और हीर जब रगपुर—हीर की ससुराल—को छोड कर भागते हैं, तो निश्चय ही वे सामाजिक मर्यादा का उल्लघन करते हैं। इस प्रकार के साहस अथवा दुस्साहस के पात्र साधारणत व्यापक तिरस्कार और भर्त्सना को प्राप्त होते हैं। किन्तु हीर और राझा नाहर परिवार की शरण ग्रहण करते हैं। शरणागत की रक्षा भी तो सामाजिक मर्यादा है। मर्यादा पालन के लिए ही नाहर हीर-राझे की रक्षा के लिए उन खेडो से लोहा लेने के लिये तत्पर हो जाते हैं जिन्हें मर्यादा-भग के कारण हानि उठानी पडी है। ये तीन उदाहरण हैं उस व्यापक द्वन्द्व के जो व्यक्तियो के चारित्रिक वैलक्षण्य के लिये उत्तरदायी हैं। गुरुदास गुणी ने अपने कथा-सूत्र को आगे बढाने के लिये इसी वैलक्षण्य से काम लिया है। स्वभाव और हितो के इस ध्रुवीकरण (Polarization) के लिये अनिवार्यत एक से अधिक व्यक्तियो की अपेक्षा नही रहती। द्वन्द्व के प्रतिकूल छोर किसी एक ही व्यक्ति मे भी विद्यमान रहते हैं और कई बार किसी एक ही क्षण मे सक्रिय हो उठते हैं। ऐसे क्षणो का चित्रण किसी सिद्ध कवि द्वारा ही सभव है। हीर के किस्से मे ऐसे क्षणो का सफल चित्रण हो सका है, इससे गुरुदास गुणी की चरित्र-चित्रण शक्ति और अधिक उजागर हो जाती है।

हीर और राझे के प्रथम मिलन मे भी मानव की ऐसी ही द्वन्द्व-जनित सम्पन्नता दिखाई देती है। राझा हीर की नौका मे शैय्या पर सोया हुआ था। नदी तट पर झूला झूलती हुई हीर ने एक अज्ञात अपरिचित पुरुष को अपनी शैय्या पर सोया देखा, क्रोध से उबल ही तो उठी। क्रोध भी ऐसा जो मृत्यु का तिरस्कार करे।[1] निश्चय हुआ कि वृक्षो से सटियाँ तोड कर इस पर टूट पडें।[2] किन्तु मानव स्वभाव इतना एकागी तो नही कि उसमे रोष के अतिरिक्त किसी और चीज के लिये स्थान ही न हो। राझे ने करवट बदली, नयन उघारे और

---

१. परी कूद कै नद के बीचा। क्रोध साथि डर कियो न मीचा। —२३५
२ हम छटियाँ दरखै ज्यों ओले। यहि कोऊ मोयो नैक न बोले। —२३५

इक टक रही सबै धरि ध्याना । बादर ते ज्यों निकस्यो भाना ।
सकै न बोल पूतरी न्याई । खा पछार मूरछ होइ जाई ॥—२३६

....

बैठी आय सभी निध तीरा । घायल निपटै होई हीरा ।
कहि न सकै मुख तै किछ बानी । ससियन मै तब निपट लजानी ।
छपी दिस्ट ताहूँ दिस देखै । मुख नीचै अगुरी धर लेखै ॥
—२३७

उद्देश्यानुकूलता—गुरुदास गुणी के चरित्र-चित्रण की दूसरी विशिष्टता यह है कि वह कथा के मूल उद्देश्य के अनुकूल है । उसने कुशल सूत्रधार के समान सब पात्रो के चरित्र-सूत्रो पर कडा नियत्रण रखा है और उन्हे कथा-प्रवाह मे अपने उद्देश्य की आवश्यकतानुसार ही कम या अधिक महत्त्व दिया है । हम देख चुके है कि इस कथा का उद्देश्य है प्रेम-स्वातन्त्र्य की अधमर्यादा से टक्कर और उस पर विजय । अतः गुरुदास ने दो प्रकार के पात्रो का चित्रण विशेष तन्मयता और सहानुभूति से किया है । एक वे जो प्रेम-स्वातन्त्र्य के लिये सग्राम कर रहे हैं और दूसरे वे जो समय-समादृत मर्यादा को बनाये रखना चाहते हैं ।

(क) मर्यादा के बन्धनो का उत्पीडन सर्वाधिक स्त्री को ही सहना पडता है, अत इस कथा मे विद्रोह का उत्तरदायित्व भी स्त्री पात्रों पर ही छोडा गया है। वस्तुत सम्पूर्ण किस्सा साहित्य मे सामाजिक बन्धनो के प्रति सक्रिय विद्रोह का भार स्त्रियो पर ही है । सोहणी-महीवाल मे तूफानी नदी को रात्रि के अधकार मे पार करके अपने प्रिय से मिलने वाली, सस्सी-पुन्नूँ मे प्रिय मिलन के लिये तप्त मरु-भूमि को लाँघने के प्रयास मे झुलस मरने वाली नारी ही है । देशज प्रेम-कथाओ (हीर-राझा, सस्सी-पुन्नूँ, सोहणी-महीवाल) की तुलना विदेशी प्रेम-कथाओ (लैला-मजनूँ, शीरी-फरहाद) से करने से एक बात स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है—जहाँ विदेशी प्रेम-कथाओं मे सक्रिय पात्र पुरुष हैं, वहाँ देशी (पजाबी) प्रेम-कथाओ मे सक्रिय पात्र नारियाँ हैं । यह तत्कालीन चेतना का प्रभाव है ।

हीर-राझा मे राझा बहुत दुर्बल पात्र है । प्रथम प्रेम मिलन मे भी आकर्षित होने का श्रेय हीर को है । उसे सियाल मे टिकाए रखने के लिये युक्ति भी हीर ही सोचती है । प्रेम के प्रकट होने पर उग्र क्रोध का प्रदर्शन भी हीर द्वारा होता है । हीर कैदो की कुटिया जला रही है और राझा[1] चुपचाप बेले मे बैठा है । विवाह के समय कितना कडा विरोध हीर करती है, राझा उसकी कुछ भी सहायता नही कर सका । सहायता करने की इच्छा भी उसमे नही । हीर पालकी मे बैठने से इन्कार कर देती है, किन्तु राझे को जब नगारा उठा कर बारात के साथ

---

१. सुन महरी मै हित चित दीनो । कौतक देख्यो अति रस भीनो ।
निज मसीत बैठ्यो है सोई । नैन बान लायो जिन मोही ॥ —२१६

माँ ने जब इस प्रकार के निर्लज्ज प्रलाप से रोका तो—
उत्तर दीनो तब तिह बाला । कहाँ लाज जहा प्रेम उजाला । —२२०

जाने के लिये कहा जाता है तो वह आज्ञाकारी बालक के समान तैयार हो जाता है। योगी का भेष बनाकर रंगपुर में आना, हीर को सर्प-दंशन, और हीर-रांझे का रंगपुर से भाग निकलना ये सब नारी पात्रों की युक्तियों द्वारा ही संभव हो सके है। काज़ी की कचहरी मे प्रीति-मुकद्दमे की पैरवी का बोझ भी हीर अपने ही सिर लेती है। हीर स्थान-स्थान पर लोकलाज की चिन्ता किये बिना अपने प्रेम का इकबाल करती है। सम्पूर्ण कथा मे किसी एक स्थान पर भी रांझे द्वारा हीर के प्रति अपनी प्रेम भावना का बखान नही। कहना न होगा कि इस प्रेम-कथा की सफलता का श्रेय हीर की चारित्रिक शक्ति को है।

हीर के अतिरिक्त मर्यादा से टक्कर लेने वाली दो और नारियां भी हैं—धीवरसुता और सहती। धीवरसुता रांझे पर मुग्ध है, यह स्वीकार करने में उसे कोई लज्जा नही। सहती बाल-विधवा है और गुप्त-प्रेम रखने के लिये बाध्य और अभिशप्त। जहाँ हीर के प्रेम को आध्यात्मिक अनुमोदन प्राप्त है, वहाँ धीवरसुता के भाग्य मे जग-हंसाई ही लिखी है। सहती को अभी अपनी मुक्ति का मार्ग सुझाई नही दिया। वारिसशाह तक पहुँच कर सहती भी अपने प्रेमी के साथ भाग जाने का बल बटोर सकी है।

शठपात्र

त्रिकोण—प्रेम-कथाओ में द्वन्द्व उत्पन्न करने का एक सरल साधन है जिसे सुभीते के लिये त्रिकोण अथवा शाश्वत त्रिकोण कहा जाता है। त्रिकोण के पात्र साधारणतः नायक, नायिका और शठनायक रहते हैं। हिन्दी सूफी काव्य में भी ऐसे त्रिकोण-द्वन्द्व के दर्शन होते हैं। शैतान (अथवा माया) का प्रतीक शठनायक (अथवा उपनायिका) जीव और बुद्धि के प्रतीक नायक और नायिका के मिलन में बाधा उपस्थित करता है। पद्मावत के उत्तरार्ध में ऐसा ही त्रिकोण-द्वन्द्व दृष्टिगत होता है। ऐसा द्वन्द्व सब प्रकार के कथाकारों का प्रिय रहा है। पंजाब के किस्सा कवियों ने भी इसका पर्याप्त प्रयोग किया है।

कहने की आवश्यकता नही कि इस प्रकार का द्वन्द्व सरल, सुबोध तो है किन्तु जीवन की जटिलता का (जिसे सम्पन्नता भी कहा जा सकता है) चित्रण करने मे समर्थ नही। द्वन्द्व का माध्यम तो व्यक्ति ही होता है, किन्तु व्यक्ति केवल व्यक्तिगत हित द्वारा ही अनुशासित नही होता। कई बार मानव, शठ न रहता हुआ भी, शठता का माध्यम बनने पर बाध्य होता है। वस्तुतः, शठ होती है पारिवारिक परिस्थितियाँ और सामाजिक मर्यादा, किन्तु शठता का वहन करना पड़ता है व्यक्ति को। कई बार, शठता के वाहन होते हैं हमारे अपने ही परिजन, बन्धु, मित्र, हितैषी। गुरुदास गुणी ने इस सूक्ष्म सत्य को बहुत भली प्रकार पहचाना है, अतः उसके शठपात्र भी हमारी सहानुभूति के नहीं, तो हमारी विचारणा के पात्र अवश्य हैं।

हीर और रांझे के प्रेम-सम्बन्ध में प्रथम बाधा किसी शठ-व्यक्ति द्वारा उपस्थित नहीं होती। शठता के बीज स्वयं प्रेम सम्बन्ध में विद्यमान हैं। प्रेम छिप

कर किया जा रहा है। उसका प्रकट हो जाना ही शठता को निमन्त्रण है। तथा, उसका प्रकट होना किसी व्यक्ति के प्रयास की अपेक्षा नहीं रखता।

छपी बाति प्रगटन पर आई। बासनि आग न रहे छपाई —२६३
लग्यो डानो क्यो करि कोऊ राखै। अगनि फूस को चाहो चाखै—२६६

बात पिता तक पहुँच जाती है :

हीर चाक के सगह रची। आग तुमारे गृह मे मची। —२६७

सूफी प्रबन्धकारो को इस प्रकार की परिस्थिति से नहीं निपटना पड़ा। उदाहरणार्थ, पद्मावत मे पद्मावती राज-प्रासाद मे तथा योगी रत्नसिंह शिव-मन्दिर के पार्श्व में एक दूसरे से दूर बैठे प्रेम किये जा रहे हैं। मृगावती आदि कुछ सूफी प्रबन्धो मे नायक-नायिका स्वप्न मे एक दूसरे के दर्शन करके विह्वल हुए जा रहे हैं। यहाँ गोपनीय प्रेम के प्रकट होने का भय नहीं। इससे आध्यात्मिक अभिप्राय की पूर्ति तो होती है, लौकिक सौंदर्य की प्राप्ति नहीं। हीर का यह किस्सा सूफी प्रबन्धों की अपेक्षा धरती के निकट की वस्तु है।

जब बात पिता तक पहुँची तो उसका चिंतातुर होना स्वाभाविक था। गुरुदास गुणी यहाँ दामोदर और वारिस की अपेक्षा अधिक सयत है। दामोदर के अनुसार पिता स्वय बेले मे जाता है, हीर-राभा को इकट्ठा सोया हुआ देखकर दूर ही से, लज्जित और क्रुद्ध, लौट आता है। वारिस ने सम्पूर्ण शठता का भार हीर के लगडे चाचा कैंदो पर डाल कर सतोष किया है। गुरदास यहाँ अधिक सयत है। इस किस्से मे चूचक (हीर का पिता) स्वय बेले मे न जाकर अपने छोटे भाई कैंदो को भेजता है। कैंदो असाध्य शठता का प्रतीक नहीं। वह फकीर है, चतुर है, बोधयुक्त है और सत्यवादी है।[1] झूठ बोलने की असामर्थ्य ही यहाँ शठता की जन्मदात्री है। वह बेले म जाकर जो कुछ देखता है, उसे गाँव मे आकर उगल देता है। वह उपदेष्टा है, उपदेश उसका सहज स्वभाव है। वह मर्यादाबद्ध स्वस्थ यौन सम्बन्ध का हामी है, ऐसे सम्बन्ध का जो कुरुचिपूर्ण निन्दा कथा का विषय न बन सके। वह बाल विवाह की अनुमति देता है।[2] उसका चिन्तन प्रतिगामी हो सकता है किन्तु शठता से अथवा व्यक्तिगत हित-साधन से अनुशासित कदापि नहीं। इसके विपरीत—हीर द्वारा कैंदो की कुटिया का जलाया जाना व्यक्तिगत अध-प्रतिकार का परिणाम—सुपरिणाम नहीं—है। हम कैंदों से सहानुभूति नहीं कर पाते क्योकि हमारी हीर और राझे के प्रति मूल सहानुभूति कहीं अधिक पुष्ट है।

---

१. कैंदों लगरो ताको भाई। भेस फकीरे रहे बनाई।
सुघड चतर अरु बोध को पूरो। कदे बचन नह बोले कूड़ो —२७०

२ कह्यो रयालो इह सुनि लिजे। बेटी को गृह ज्यिन न दाजे।
जब जामै इव ऐसा करो। तत छिन ता सिर भरता धरो।
तिसे समेत तिस देह ब्याहा। बहुरो ताका करो न चाहा।
जानो इव पति रहै तुमारा। गृह मांह सुता न रखी कुआरी।
पति= इज्जत—२८४

एवं चित्रण विशेष तन्मयता से किया है। इसके लिये उसके कथा प्रवाह की गति कुछ मन्थर पड़ गई है। इसकी उसने विशेष चिन्ता नही की।

शृंगार के आलम्बन का नख-शिख वर्णन गुरुदास ने बहुत डूब कर किया है। दीपक के समान जगमगाता हुआ माथा जैसे इश्क के अक लिखने को ही बनाया गया है। भृकुटी इन्द्र-धनुष से भी रमणीय है और लजीली अनियारी आँखें काजल के बिना काली एवं मद के बिना मदमत्त हैं। कान जोवन मन्दिर के द्वार हैं, कानों के पास तिल अपशब्द को रोकने वाले दो द्वारपाल हैं। रक्तवर्ण एडी को देख कर सदेह होता है कि इनमे यावक लगाया गया है अथवा नही। केश और कुच का वर्णन कवि ने काफी चटखारा लेकर किया है। एकाध स्थान पर वह सयम और शालीनता की सीमा का उल्लघन करता दिखाई देता है। इसे तत्कालीन रीति परम्परा का प्रभाव ही मानना चाहिये :

श्याम केस कैसे तिन आए।
छूटे सीस ते परसे पाए।
धोवन हू ते जब पानी बोरे।
सूकन को मुख ऊपर सोरे।
तिह गर ते जो बूँदे परे।
सरपनि मुख बूँदे बिख ढरे।
अर जब उनको गूंदन आवै।
सरपनि भै मन महा डरावै ॥—१७८
घूंघरियारे अलकै फबे।
दोऊ कुच परसै डो (?) जबै।
अहि सुत मानो दोऊ बीरा।
कुच कलसन ते ढूंढे छीरा ॥—१८०
कुच मध करे ठौर जो जानो।
निरमल सलता ताको मानो।
ताहि बीच कुच अग्र दिसटावै।
मानो जोगी जोग कमावे।
भस्म चढाये दोनो मुख पर।
करै तपस्या बैठे सुख कर।
कै बैरागी टोपी धारे।
दोऊ बैठे राम सभारे।
चक्रवाक हो खेलत होऊ।
वार पार सलता की दोऊ।
ताकी सोभा क्यो कोई करे।
घूंघर घेर ते जी अति डरे ॥—१८३

जिस लगन से गुरुदास ने हीर का रूप-वर्णन किया, उसी लगन से रांझे का नहीं हो पाया। वास्तव में गुरुदास द्वारा रांझे के व्यक्तित्व और चरित्र को सम्पूर्ण किस्से में अपेक्षाकृत गौण महत्त्व ही मिल पाया है। वैसे बार-बार रांझे की तिय-मोहिनी शक्ति की ओर संकेत करके कवि ने परोक्षरूप से रांझे की असाधारण रूप-छटा को ही व्यंजित किया है।

उद्दीपन विभावों को भी कवि ने महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। संयोगावस्था में नदी-तट, शीतल पवन, और बेले के शान्त, एकान्त वातावरण का वर्णन है। वियोगावस्था मे चन्द्रमा, सूर्य, वर्षा की बूँदें, शीतल बयार, नदी-तट, वृक्ष आदि जड़ प्रकृति के अतिरिक्त मोर, पपीहा आदि चेतन प्रकृति का भी प्रयोग किया है :

रैन समय सस बान लगावै।
वासर सब अंग भान जरावै।
निस बासर दोऊ रोई गुजारूँ।
बिरह आगि अब कौ लौ मारूँ।
मोरन क्या विरथा कर कहूँ।
ता बोलनि बरछी जिय सहूँ।
पापी पपीहा अधिक सतावै।
बिरह घाव पर लूने लावै।
पीअ पीअ रटै न पीव दिखावै।
जित कित सब दुख देवन आवै।
तन बल खोयो सीतल ब्यारे।
या मुझ मारे सब ते न्यारे।
नदी बिरछ बैलो जब देखौ।
बिन तो चरनन सुनी न पेखौ।

—३४८-३४९

कथा में ऐसा समय भी आता है जब हीर इन उद्दीपनों में मानव चेतना की कल्पना करके इन से दया की भिक्षा मांगती सी दिखाई देती है :

कबहूँ मेघो सो इउ कहै। परे बूंद तुम तै मुझ दहै।
कबहू देखे बोलन मोरा। दुखते कहे कहा यहि सोरा।
तुमरी बोलन मोहि न भावा। राझन बिछरे को अति हावा।

—३४४

अनुभाव

असुवन आखन जल तन भरे॥ —२१७
नैन बाण धीधो के दही।
भर न सकै दृग गृह की ओरा॥ —२१९

कहि न सकै मुख तै किछ बानी।
सखियन में तब निपट लजानी।
छपी दिसट ताहूँ दिस देखैं।
मुख नीचै अगुरी धर लेखैं॥ —२३७

जवी बात हीर यहि सुनी।
छाती पीटे मुडे धुनी।
करि कलाच बैठी आ बाहर।
जान पिंजर ते निकस्यो नाहर॥ —३१०

झुरि झुरि पिंजर हो गई रही न देह सभाल॥ —३४३

शृंगार के अतिरिक्त दूसरे रसो का भी स्थान-स्थान पर वर्णन है :

करुण

माता की मृत्यु पर

पूत पिता दोऊ अति रोवैं। मुख छाती नयनन जल धोवैं॥ —२१०

रांझे के गृह-त्याग पर

तीनो दौरी तब ही मन दह्यो। मारग जाय धीधो तिह गह्यो।
पकड खड़ी मग जान न देही। आखनि ते जिव बरसैं मेही।
रोवैं सब ही विनती करैं। तोहि चलत सुत हम सब मरैं।
मत कहू जाह रहो हम पाहा। तुम देखन की हम अति चाहा॥—२१६

देख्यो तब तिह तीनो नारी। रहे न सुन्द्र विनै करि हारी।
असुवन आखन जल तन भरैं। खाइ पछारि धरनि गिर परे॥—२१७

वीर

(१) नूर खां से हीर का युद्ध

सब नारी तब करी बिचारा। दावनि ज्यों चमकें इक बारा।
कर खाडे मुख ढालें धरैं। दौर फौज के भीतर परैं।
जाको खाडा मारैं ढूकैं। एक चोट सें करे टूटूकैं।
गये उसान जोधन के तबही। नारी हाथ लगाए जबही॥—२०६

(२) नाहरो और खेड़ों का युद्ध

कैसे नाहर दलमैं पेले। आयो फाग जन होली खेलें।
जाको मारे लै तलवारा। करै टूक कोऊ एकै बारा।
अरु तिह हाथनि तीर जु छूटैं। खेडयो के पिंजर सर फूटे।
लावहि बरछा जाहि सँमारे। बेग जीन ते लेहु उतारे॥—३७६

रौद्र

हीर ने रांझे को अपनो नाव में सोया हुआ देखा

> झूलत देख्यो नैनि उघारे। पलक पास इम्र को भी डारै।
> परी कूद कै नद के वीचा। क्रोध साथि डर कीयो न मीचा।
> हम छटियाँ वरखैं ज्यों ओले। यहि कोउ सोयो नैंक न बोले।
> —२३४-२३५

अद्‌भुत

घीदो का मुरलीवादन

> धीधो मुरली अधरन धरई। कहा कहूँ कैसी सुर भरई।
> मगन भयो लुड्डन तत्काला।.........सब गई संभाला।
> मच्छ कच्छ अवरैं जीअ जंता। पानी महि आए तिह तंता।
> सिह प्रमोदे अरु मृग चलतै। भये मगनि सुरति खोय जवतै।
> जल थल मैं आ इकट्ठे भये। मन सबके मुरली मुस लये।—२३२

पंचपीरों का प्रभाव

> भीतर गृह के रांझा हीरा। अरु रखवारे ता सब पीरा।
> सोभा ता क्या कहूं सुनाये। सस सूरज जनु इक गृह आये।
> जगमगाति तिस को इम भयो। रखवारों को धीरज गयो।
> आखनि ता दिस जोर न सकैं। सिर करि मुह सब नीचे तकैं॥
> —३०७

सूररंभावत

सूररंभावत का यह किस्सा सिक्ख रैफ्रेन्स लाइब्रेरी की पाण्डुलिपि एक्सेशन नं० १५६२ से प्राप्त हुआ है। यह पाण्डुलिपि बहुत पुरानी है। इसमें इस किस्से के अतिरिक्त दशम गुरु के समकालीन कवियों की मार्फ़े, आलम का माधवानल कामकंदला तथा अज्ञात कवियों की कृतियां 'अंग फुरन को फल' और 'तिलस्तुति' भी सम्मिलित हैं। यह पाण्डुलिपि बहुत पुरानी है, पुस्तकालय के भूतपूर्व विशेषज्ञ एवं शोधकर्त्ता सरदार रणधीर सिंह के अनुमानुसार दो सौ वर्ष पुरानी (अठारहवीं शती ईस्वी) है।

लेखक

सूररभावत के रचयिता ने ग्रन्थारम्भ मे अपने विषय मे एव ग्रन्थसमाप्ति पर कृति के रचना-काल के विषय मे कुछ सूचना दी है। उस[1] से पता चलता है कि उनका नाम राजाराम था और वे दुग्गल (क्षत्रिय) जाति के थे। वे रतनपुर नगर के निवासी थे। रतनपुर जगल देश मे कही स्थित था। जगल देश से उनका अभिप्राय झग के आसपास का भूभाग ही प्रतीत होता है। १६४७ से पूर्व दुग्गल जाति के क्षत्रिय जेहलुम दरिया के उस पार के भूभाग मे ही रहते थे। राजाराम का काम-धन्धा 'कानूनगोई' था। 'कथा हीर राँझे की' के लेखक गुरदास गुणी के समान राजा राम भी सरकारी कर्मचारी था। हिन्दू सरकारी-कर्मचारियो के लिये कदाचित् इसी प्रकार की रचना कर सकना ही सभव था। निर्गुणपथ भी उन दिनो सरकारी कोप का भाजन बन रहा था, प्रसिद्ध निर्गुणी ग्रथ—गुरु ग्रथ—पर भी आपत्ति आ चुकी थी।

राजाराम ने अपने आपको हरि पथी[2] बताया है। हरिया जी के ग्रन्थ का उल्लेख इसी निबन्ध मे किसी और स्थान पर किया गया है। गुरु ग्रथ के अनुकरण पर की गई यह रचना किसी पथ विशेष का धार्मिक ग्रथ रही हो—ऐसा अनुमान उपयुक्त होगा।

सूररभावत की रचना[3] विक्रमी सवत् १७०४ मे हुई। (इस तिथि से हरिया जी के ग्रथ के रचनाकाल के विषय मे स्थिर किये गए हमारे मत का प्रति-रिक्त प्राप्त अनुमोदन होता है)

सूररभावत की कथा इस प्रकार है :

उत्तराखण्ड मे भानकपुर नामक नगर है। नगर इतना बडा है कि 'बरस चले तो अत न आवै'।[4] वहाँ हरदत्त तम्बोली रहता था जिसका एक-एक पत्ता लाख टके का बिकता था। वहाँ ही सबलसाहु नाम का साहूकार रहता था जिसके बाग का अनार बिना राजा के किसी के हाथ न आता था। वहाँ का राजा बडा ज्ञानी, योद्धा और द्विजसेवी था। उसके सन्तान न थी। दम्पति ने सन्तानार्थी हो कर सूर्य का पूजन किया। सूर्य भगवान के अनुग्रह से उनके यहाँ एक पुत्र का जन्म हुआ। राजा ने उसे सूर्यदेव का प्रसाद समझ कर उसका नाम सूर प्रताप रक्खा।

---

१. यह हरि पथी गुर का दासु। भूपतनाम रतनपुर वासु।
जगलदेस जैसा सापूगल। जामबस कहावे दुगल।
नीचो नीच नीच पुन होइ। विरसा राखो कानूगोई।
जिस लै लेखन अक न लेखी। सिद्ध आई आखन देखी।
तिस मन भीतर ऐसी ठानी। सूररभावत करे कहानी। —प० १

२. यह हरिपथी गुर का दासु—प० १

३. सवत खट दस एक सो ऊपर तिन के चार।
भूपत सूर रभावती मेले सिरजन हार। —पृ० १७५

४. पृष्ठ १०६

शिक्षा-दीक्षा के पश्चात् नवयुवक सूर प्रताप अपना समय आखेट आदि वीरोचित क्रीड़ाओं में व्यतीत करने लगा। उसमें शौर्य और सौंदर्य का अद्भुत सामंजस्य था। चांद से शरीर और रवि-से ललाट वाला [1] यह राजकुमार एक-एक बाण से दस-दस हाथी छेदने में समर्थ था।[2]

एक दिन सूर प्रताप अपने अन्तरंग सखा सुरबंगी सहित शिकार खेलता हुआ गंधर्वपति चित्रसेन के उपवन मे जा पहुँचा। उस अनुपम शोभायमान उपवन में रत्न-जटित प्रासाद को देख राजकुमार ने निश्चय किया कि रात यहीं व्यतीत की जाय। वे सोये ही थे कि गंधर्वराज अपनी सेना सहित वहाँ प्रविष्ट हुआ। सूर प्रताप की अद्वितीय रूप-छटा को देखकर गंधर्वराज मूर्च्छित हो गया। चेतने पर कहने लगा कि 'ऐसा अवर न जग महि देखा'[3] जिसे सुन कर उसके सैनिकों में से एक कह उठा कि रंभावती इससे कई गुणा अधिक लावण्यवती है। रंभावती कौन? दक्षिणाखंड मे संभल-नगरी के राजा की पुत्री। "उसकी शोभा क्या कही जाये, अप्सरायें उसके पग चापने के भी योग्य नहीं। वह तन्वंगी तो पवन के झकोरे से उड़ जाय यदि उसने शिरो-भूषण धारण न कर रखा हो। वह अपने नयनों मे अंजन लगाती है तो लंका और लंका से परे के द्वीपसमुदाय काँप जाते हैं। जब कभी धरती पर दृष्टिपात करती है तो धरती पुष्प-राशि से लद जाती है ···अर्धरात्रि मे विलपती कोयल उसकी स्वरमाधुरी के समक्ष 'वायस-बैनी' से अधिक नहीं। पंचतारा और सरिंदा जैसे सुमधुर वाद्ययंत्र भी उसके स्वर के तुल्य नहीं। वह बोलती तो इन्द्र बरसने लगता है।"[4]

ऐसी सुन्दरी का वर ढूँढने के लिए जब ब्राह्मण भेजा गया तो उसने धन के लोभ में आकर उसकी सगाई एक अत्यन्त कुरूप राजकुमार से करदी। अपने भावी पति की कुरूपता का समाचार सुनकर रंभावती छिप-छिप कर रोती और 'झुर-झुर

---

१. रवि लिलार तन चन्द सो, दामन दसन दिपंत।
बोले तउ मानक झरै, फूल गिरे बिगसंत। —पृ० ११०

२. एक बान दस छेदे हाथी। अर्जन भीमसेन को साथी।
जिस चाहे तिस पकड़ पछोरे। को हनवंत ताम कर जोरे।
जब ले धनख बान को साधे। जो चाहे तो सायर बाधे।
जो बरछी ले आसन आवै। कांपे गगन धरन धसकावै। —पृ० ११२

३. पृ० ११३

४. इन्द्रानी की अपधर आवै। पग चापन बाके नहीं पावै।
परसे पवन उडे बहु गोरी। ज्यों सिरभूसन धरे न डोरी।
चमक लिलाट चाँद ते दौनी। चंदन देसी सरल सलौनी।
··· ··· ··· ··· ···
जब नैनन मैं अंजन चाँपै। लंका छोड़ बिलंका काँपै।
जबै ध्यान धर धरन निहारी। फूल-फूल फूलै फुलवारी।
जो अकास दिस देखै नैना। कर जोरे दिगपालव सेना।
जब रसना रस भाखै बैना। रसक मरै सुआ अरु मैना। —पृ० ११५

कर कांपता। अपने वस्त्रों मे पडी चिन्ता रूपी चिंगारी को छिपाना उसके लिए कठिन हो गया'।[१] आज विवाह के पश्चात् वह अपने पति के साथ एक ही शैया पर पीठ देकर सो रही है। शैया रूपी पावक पर पति रूपी सींक पर चढ़ा रभा का कलेजा कबाब के समान पक रहा है।

क्रीडाप्रिय गधर्व-पति ने जब यह बात सुनी तो उसने अपने सेवको को आज्ञा दी कि वे सूर कुंवर को रभा के शयनागार मे पहुँचा दें और उसके कुरूप-पति को किसी और स्थान पर छिपा दें।

रभा ने पीठ मोडी तो सूर कुंवर को देख कर लुभा गई। सोचने लगी कि पति की कुरूपता की कथा अवश्य ही किसी शठ द्वारा गढ़ी गई है। चरण चाप कर उसने राजकुमार को जगाया। सूर कुंवर जागा और अपने आप को अपरिचित स्थान मे देखकर घबराया। रभा ने उसकी घबराहट दूर करने के लिए उसे अनार काट कर दिया। राजकुमार कहने लगा: यह तो सबल साहु के अनार जैसा है। फिर रभा ने उसे पान दिया। यह हरदत्त तम्बोली के पान जैसा था। तदनन्तर वे भोग विलास करने लगे। उन्होंने अपनी अगूठियां अदल-बदल कर लीं।[२] नींद आने पर जब वे सो गये तो गधर्वों ने राजकुमार को उठा कर फिर उपवन मे ला पटका और कुरूप राजकुमार को रभा की शैया पर सुला दिया।

सूर कुंवर जागा तो न वह कनक-भवन था न रभा। यह आकस्मिक परिवर्तन देखकर वह अपना सतुलन खो बैठा।[३] हाहाकार करने लगा। पत्थर लेकर अपना सिर तोडने लगा, मिट्टी सिर पर डालने लगा। बाल उखाड कर उसने अपना सिर हथेली के समान साफ कर दिया। यह समाचार राजा तक पहुँचा। वह सेना सहित जगल मे पहुँचा। देखा कि विरह कसाई ने राजकुमार को बकरी के समान धरती पर पटक रखा है। राजा ने बहुत इलाज करवाया पर राजकुंवर अच्छा न हुआ।

---

१. दुर दुर रोवै झुर झुर कांपै। चीरे चिनग परी अत दांपै। —पृ० १११

२. रानी कुवर सेज पर खेलै। मुसक मुसक पुन हाथन मेलै।
रानी कुवर धरे मुख बीरा। वहु रभा मुस मलै अबीरा।
रानी कुवर गहे कर छोड़ी। हाथ गहे कुच कभी न छोड़ा।
... ...
सूर कुवर और रभा सुन्दरी। अदर बदर कर लीनी मुदरी। —पृ० १२३

३. जब जागे तब भयो अचम्भा। वह बहु कनक भवन कह रभा।
हा हा करे हाथ पुन तोरे। पाथर ले कर सीस चढ़ोरे।
ऊचा रोवै चीरन फारे। भसम सकेल सीस महि डारे।
फुरकि फुरकि पुनि मीचै नैना। तरफि तरफि तरफाए नैना।
गिर गिरि परे जरे तन रावे। मुखि परि भाग बुदबुदे धावे।
टूक टूक कर बदन उखेरी। खोस सीस सिर कियो हथेरी।
थर थर कांपे डर डर चमके। झुर झुर झुलगे जर जर तमकै।
छिन नख स्यों लै नैना चूडे। छिन मुहि मार मोन मांहि बूडे।
कहा वहु सुख कहा बहु जोता। कहा वहु सूर कुवर जो होता।
—पृ० १२४-१२५

इधर जब रंभा सो कर उठी तो शैया पर कुरूप राजकुमार को देखकर चकित हुई। उसने जूतों से उसकी खूब मरम्मत की। भाग्य की इस विडम्बना पर उसके दुख का पारावार न था। वह अपने हाथ-पांव तोड़ने लगी। गांठ हार चुके जुआरी के समान मौन सी रह गई। विकलमना कभी दौड़ती है, कभी अकस्मात् जड़वत् थम जाती है मानो सर्पिनी अपना बिल भूल गई है। गुलेल खाई हुई चिड़िया के समान वह तड़पती है, कुछ बोल नहीं सकती।

दिन, महीने और सप्ताह बीतने लगे। सूर कुंवर का विरह रंभा का चिरसंगी हो गया—जैसे ब्राह्मण का उपवीत अथवा योगी का खिथा।[1] मां-बाप ने उसका इलाज करवाने के लिये वैद्य को बुलाया किन्तु विरह की औषधि कहां ?[2]

रंभावती की एक सहेली थी—सुन्दर। वह ताड़ गई कि यह तो विरह-बाण की मारी है। एक दिन एकांत में उसने रंभा से कहा :

जैसी तू रंभा बौरानी। ऐसी फूलमती इक रानी।
पुन देख्यो जु सखी सहेली। अति हित कर लै पीऊ सों मेली।

प्रिय-मिलन की संभावना ने रंभावती को सचेत कर दिया। कहने लगी : हे सुन्दर, कहो तो फूलमती को उसका प्रिय किस प्रकार प्राप्त हुआ था। सुन्दर उसे फूलमती की कहानी सुनाने लगी :

बुद्ध नगरी के राजा की लड़की फूलमती थी—फूलों से कोमल, नाक के मोती-सी हल्की। उसके लावण्य में अद्भुत आकर्षण था। उसकी पायल की झंकार से पक्षी पर-कटे से धरती पर लोटते थे, आंखों में अंजन लगा ले तो सूर्य देव के रथ को खेंच कर रख ले। एक दिन सूर्योदय देखने के लिये मंदिर पर चढ़ी। वहां यमुना-तट पर 'शशि के माथे रवि-सी ज्योति' वाले एक सुन्दर पुरुष को देखकर वह लुभा गई।[3] फूलमती प्रतिदिन अरुणोदय के समय उसे देखने लगी। विरह से वह पीली पड़ती गई पर लज्जावश किसी से कुछ कह भी न सकती थी। उसकी सखी—कूमल—ताड़ गई कि 'इन सरि खायो विरह अहेरे।'[4] कूमल को पता चल गया कि राजकुमारी का चित-चोर तो इसी नगर का दूलो नामक एक जड़िया नव-युवक है। कूमल फूलमती को कनक-कंगन पहना कर उसे जड़िये के घर ले गई। कूमल ने उसे सोने का कंगन देकर कहा कि इसे अविलम्ब जड़ कर फूलमती को पहना दो। वह फूलमती को देखते ही मूर्च्छित हो गया। अब वे दोनों ही वहां से चल कर राजप्रासाद में पहुंची।

---

१. ओढ़ियो रंभा विरह अभेउ। ब्राह्मण ज्यों गल डार जनेऊ।
   निस दिन सूर कुंवर की चिंता। गर डारी जोगी ज्यों सिंथा। —प० १३२
२. कहा ट्योरे नारि, काहे औषध मुख धरे।
   उठ रे वैद गवार, विरह धुनक दूनी करे॥ —प० १३४
३. सस से मुख पर रवि सी जोता। —प० १३८
४. पन्ना १४०।

इधर दूलो जडिये की दशा बडी शोचनीय थी। ऐसे प्रतीत होता था, मानो सांप सूँघ गया हो।[1] दूलो की पत्नी—सीतल—बडी चतुर थी।[2] उसने विरह के लक्षण जान लिये। सोचने लगी कि मेरे घर मे यह आग कौन लगा सकता है? फूलमती के अतिरिक्त मुझसे सुन्दर कौन हो सकता है। पूछने पर उसके पति ने सारा भेद बता दिया और कहने लगा कि मुझे फूलमती दिखा दो, नही तो मैं मरा। उसे इस प्रकार विक्षिप्त देख कर उसकी पत्नी ने सोचा कि यह कही मर ही न जाये। अत उसे समझाया कि कल यमुना तट पर जाओ, वहाँ तुम्हें फूलमती का निमन्त्रण मिलेगा। यमुना पर पहुँच कर दूलो ने फूलमती के महल की ओर देखा। उसने ये तीन सकेत किए :

१ चमेली के फूल दिखाये।

२ जल-झारी मँगवा कर सारा पानी टोटी के मार्ग बहा दिया।

३. उसने अपनी वेणी खोल कर अपने केश मुख पर बिखेर दिये।

दूलो की पत्नी ने उसके ये अर्थ लगाये

१. बाग के पास।

२ राज-भवन के गुप्त मार्ग (मोरी) द्वारा।

३ चाँद छिपने पर अधेरे मे मुझे मिलो।

मोरी के मार्ग वह राजभवन मे पहुँचा। दोनो भोग-विलास करने लगे। जब फूलमती उसे मोरी के मार्ग बाहर तक छोडने गई तो दोनो वही खडे होकर बातें करने लगे। प्रेमियो के लिये बिछुडना कठिन हो गया।[3] इतने मे कोतवाल वहाँ आ पहुँचा। उसने दोनो को राजभवन मे घुसने के अपराध मे पकड लिया। अब क्या किया जाय। सवेरा होते ही राजा को पता चल गया तो कुशल नही। इतने मे एक तपस्वी उधर से गुज़रा। जडिया ने उसे खिडकी के मार्ग हीरो जडी अगूठी दी और कहा कि हमारा काम करो। नगरी की गली-गली मे जाकर उच्च स्वर से यह रट लगाओ :

पुन मुख तैं इह बान पुकारू। पकरा बैल जु परा उजारू।
निस को छूटे धनी कहावैं। नही विहान को धनी लुटावैं।[4]

जब यह पुकार सीतल ने सुनी तो ताड गई कि पति-देव पकडे गये। उसने चंगेरों मे मिठाई भर कर दस सहेलियों के सिर पर उठवाई। हाथ मे तुरही और

---

१. पुन वह अरिया परयो उदासू।
जन कर सौं। सोस्यो सासू। —पृ० १४१

२. अपने हाथ जु आग लगावै।
भूपत बहुर उदक को जावै। —पृ० १४२

३. करि करि बिगसहि मीठे बैना। सकै न छोड़ नैन सो नैना।
बाहर खरे न मोरी मेरहि। पल पल माते लोचन हेरहि।
दोऊ कमे प्रीत बिसाहे। बाधे नैनन बिछुर्या चाहे। —पन्ना १४७

४. पन्ना १४६।

छैने लिये। तिर-चावल (तिल और चावल) भिगो लिये और 'वंदी देवी' के पूजन के निमित्त चली।

ये सब वहां पहुँची जहाँ दूलो और फूलमती कैद थे। पहरेदारो से कहा : आज अष्टमी है। मैं 'बदी' का पूजन करने आई हूँ। ये दस चंगेरें हैं। इनमे मिठाई और तिल-चावल हैं। तुम्हारी आज्ञा से ही मैं पूजन करूँगी। अदर अकेली ही जाऊँगी। पहरेदार मिठाई देख कर ललचा गए। कहने लगे : तुम अकेली अन्दर जाओ, एक चगेर ले जाओ, बाकी यहीं रख दो।

सीतल ने अन्दर जाकर फूलमती के बन्धन तोड, कपडे अदल-बदल कर लिये। चगेर फूलमती को देकर बाहर भेजा और स्वय बन्दीगृह मे उसकी जगह ले ली। फूलमती सखियो को साथ लेकर चल दी। पहरेदार मिठाई बाँटते खाते रहे।

दूसरे दिन वे राजा के सामने पेश हुए। सीतल ने कहा हम दम्पति अष्टमी को बुघनगरी की जुहारी करने आये थे—पुत्रेच्छा से। तुम्हारे सिपाहियो ने पकड लिया और हथकडी लगा दी। राजा ने कोतवाल को डाँट पिलाई और इन्हे छोड दिया।

इस कहानी के उपदेश को हृदयगम करते फूलमती को देर नही लगी। उद्देश्य-प्राप्ति के लिये रोना-धोना व्यर्थ है। यहाँ तो धूर्तता से ही काम चलेगा। रभा ने अपना सारा भेद सुन्दर पर प्रकट कर दिया। 'प्रिय मिलन की बात स्वप्न भी नही, उसकी सहदानी मेरे पास है, मैंने उन्हे अनार छील कर दिये थे, कहते थे सबलबाहु के बाग का है, पान चख कर कहते थे कि हरदत्त तबोली का है।'

सुन्दर की अनुमति से राजकुमारी ने एक धर्मशाला बनवाई। वहाँ सदाव्रत चलने लगा। देश-देशातर से आने वाले यात्रियो से वे अपने नगर-शाह और तबोली का नाम पूछती, इस प्रकार दो वर्ष बीत गये। एक दिन मानकपुर के दो बनजारे—जिनका जहाज टूट गया था—सभल नगरी मे पहुँचे। उनसे उन्हे सबलसाहु और हरदत्त तबोली का पता चला। यह भी ज्ञात हुआ कि

सूर कुवर इक दिन बौराने। गधरवा तब वन महि ठाने।
छल छाया भयो कँ कछु औरा। सोयो चतुर जागियो बौरा।[1]

प्रिय का सदेश पाकर रभा के मुख पर वर्षों के उपरात हँसी की रेखा दिखाई दी। एक दिन अर्धरात्रि के समय पुरुष वेष धारण कर और अपने साथ अतुलित धन-राशि लेकर घोडी पर सवार होकर दोनो चल दीं। पाँच वर्ष के बाद वे समुद्र तट पर पहुँची। वहाँ से जलयान द्वारा दो वर्ष मे दूसरे किनारे पहुँची और भाडा देकर कए मकान मे रहने लगी। सुन्दर ने वैद्य का स्वाग रचा और गली-गली मे हाँक देने लगी।

---

१. पन्ना १६०।

यह समाचार राजभवन तक भी पहुँचा। सूर कुँवर का इलाज करने के लिये उसे बुलवाया गया। सुन्दर ने सूर कुँवर को अनेक प्रकार के चित्र दिखाए। सूर कुँवर अन्यमनस्क होकर बैठा रहा। अन्त में सुन्दर ने उसे रभा का चित्र दिखाया। सूर कुँवर ने एक झपटे मे ही उसे पकड लिया। राजा रानी ने सुन्दर के पांव पकड़ लिये। कहने लगे—जैसे भी हो, राजकुमार का उपचार करो। सुन्दर ने कहा कि इसके लिये एक अलग मन्दिर बनवाया जाए। वही इसका उपचार होगा। राजा ने सेना भेजकर अनेक मजदूरो को पकड मँगवाया और मन्दिर बनने लगा। यह मदिर सभल नगरी के राजभवन जैसा बनवाया गया। दिन को सुन्दर मन्दिर बनवाती और रात के समय रभा को समझाती कि अपने आपको मिलने के लिए तैयार करे। षट् रस भोजन खा कर देह की दुर्बलता का त्याग करो। नित्य केशर-मिला जल पियो और कस्तूरिका निर्मित उबटन मल कर प्रतिदिन दस बार स्नान करो। जब महल तैयार हो गया तो उसमे रभा को रक्खा गया। रभा ने प्रिय-मिलन के लिये शृगार किया। वह ऐसे खिल उठी मानो 'चैत्रमास का बाग' हो। उसे सेज पर लिटाने के पश्चात् सुन्दर सूर कुँवर के पास आई और बोली—हे कुँवर जिसके हाथ का बीडा तुमने खाया था, वही तुम्हें बुला रही है। यह सुनते ही सूर कुँवर की आँखें चमक उठी। बोला—क्या फिर से स्वप्न देखना होगा। सुन्दर ने उत्तर दिया—रोते क्यो हो, वह अनार फिर से नीका हो जाएगा। अब तो सूर कुँवर अधीर हो उठा। सुन्दर के पाँव पकड कर कहने लगा, 'क्यो जले को जलाती हो।' सुन्दर ने उसका हाथ पकडा और कहा—'यह अगूठी किसकी पकड रक्खी है।' यह सुन कर वह उच्च स्वर मे विलाप करने लगा, 'इस अगूठी ने तो मुझे मिट्टी मे मिला दिया।' सुन्दर ने कहा, 'देर मत करो, चलो तुम्हे रभा मिलाऊँ।' कुँवर दौड कर आगे बढा। राजा रानी यह देखकर मुस्कराए। सूर कुँवर को नहलाया गया। नए कपडे पहनाए गए। अब सुन्दर उसे रभा के महल मे ले गई। सूर ने रभा को देखा तो मूर्च्छित होकर गिर पडा। सूर को मूर्च्छित देख कर रभा भी सेज से धरती पर गिर पडी। सुन्दर ने सूर की मूर्च्छा तोडी। दोनों एक-दूसरे से मिलकर मुस्काने लगे। भोग-विलास मे सारी-रात बीत गई। वे सोते नही, डरते हैं कि कही विधि फिर से छल न करे।[1]

सूर कुँवर सुन्दर के प्रति बडा कृतज्ञ था। उसी ने उसे 'मिट्टी से मानस' किया था।[2] अन्त मे रभा का सूर कुँवर से और सुन्दर का सुरबगी से विवाह हुआ।

---

१. धाय धाय परदे पुन बल ते
डरत न सोवहि विधना छल ते।
सगली निस बीती जगते।
भोर भई पुनि भोग करते। —प० १७४

२. सुन्दर तुम मोको जिउ दीना।
माटी ते लै मानस कीना। —प० १७४

स्वप्न की भाँति ही इस स्वप्न-कथा मे नियत्रण (Censorship) का सर्वथा अभाव है। जहाँ कही भी कवि को अवसर मिला है उसने भोग-विलास का वर्णन निस्सकोच भाव से किया है।[१] यहाँ यह बात विशेष रूप से चिन्त्य है कि कवि ने तीन बार भोग-विलास का वर्णन किया है और तीनो बार ही प्रेमी और प्रेमिका विवाह-बधन मे बधे बिना ही विलासास्वादन करते हैं। यह किस्सा मुख्यत अनमेल-विवाह के प्रति विरोध और साधारणत विवाह-बधन के प्रति अत्यत विरोध की ही अचेत अभिव्यक्ति है।

इस कथा की दूसरी विशेषता इसकी सम्पन्नता और प्रचुरता है। मानकपुर नामक नगर इतना बडा है कि 'बरस चले तो अन्त न पावे।'[२] मानकपुर और सभल नगरी के बीच अन्तर इतना अधिक है कि सभल नगरी से चलने वाली रभा और सुन्दर का मानकपुर पहुँचना पाँच वर्ष की घुडसवारी और दो वर्ष की जल-यात्रा के उपरान्त ही सभव हो सका। हरदत्त तबोली का बीडा भी लाख लाख का बिकता है[३] और सबलसाहु के अनार 'बिन भूपत किसी हाथ न आवे।'[४] राजा अपने विक्षप्त पुत्र को लिवा लाने के लिए जाता है तो 'सग लिये रथ पाँच करोरन'।[५] यहाँ जगल भी ऐसे हैं जिनमे रत्नजटित राजप्रासादो के दर्शन होते है।[६] राजकुमारियाँ पानी पीती हैं तो केशर-मिश्रित। दिन मे दस-दस बार कस्तूरिका-निर्मित उबटन लगा कर स्नान करती हैं।[७] इस कथा मे ऐसी सुन्दरियो के भी दर्शन होते है जो आग लगा दें तो उसे बुझाने के लिये 'भूपत बहुर उदक को जावे।'[८] सूर-रभावत का जगत् ऐसा समृद्ध है कि विरह-रोग के उपचार के लिये अविलम्ब धर्मशालाएँ बनती, सदाव्रत लगते और राजप्रासादो का निर्माण होता है। जनकथा मे इतना अतिशय, इतनी सम्पन्नता अभावमय जन-जीवन का समृद्धि-स्वप्न ही तो है।

---

१. (क) रानी कुँवर सेज पर खेलैं। मुमक मुमक पुन हाथन मेलैं।
रानी कुँवर धरे मुख बीरा। बहु रभा मुख मले अबीरा।
रानी कुँवर गहे कर होड़ा। हाथ गहे कुच कभी न छोड़ा।
—पन्ना १२३

(ख) धाय धाय परहै पुन वल ते। डरत न सोवहि विधना छल ते।
सगली निस बीती आते। भोर भई पुनि भोग करन्ते॥
—पन्ना १७६

२. पन्ना १०६

३. तिसका बीरा कोऊ न पावे। लाख लाख इक पात बिकावे। —१०६

४. पन्ना १०७

५. पन्ना १२५

६. बन अनूप सोभा अत भरया। बीच धौलहर मोत जरया
दिस दिस कोकिल की ललकारा। पग पग अवन के खलवारा॥ —प० ११३

७ केसर सगि मिलावहु पानी। तिस तुम अचवो रभारानी
मज्जन करो नीत दस बेरा। बटना मल कस्तूरी केरा॥ —प० १६८

८. प० १४२

रूप और शौर्य के वर्णन में भी ऐसे ही अतिशय के दर्शन होते हैं। नारी-सौंदर्य को देखकर नर का बेसुध होना तो लोक-कथाओं और सूफी-कथाओं में परम्परा के रूप में स्वीकृत है ही, यहाँ नर-रूप को देख कर गधर्व भी मोहित, मूर्च्छित हैं और कहते हैं—'ऐसा अवर न जग महि देखा'।[1] इस लोक-कथा की सुन्दरियाँ पुरुष तो क्या विरह तक को अपने रूप पाश में बाँधने में समर्थ हैं।[2] रूप वर्णन में कवि का मुख्य साधन अतिशयोक्ति ही है। दो उदाहरण इस प्रकार हैं :

(क) रंभावती रूप-वर्णन[3]

इन्द्रासनी की अपच्छर आवे। पग चापन वाके नही पावे।
परसे पवन उडे वहु गोरी। ज्यो सिर भूखन धरे न डोरी।
जब नैनन मैं अजन चापे। लका छोड विलका कापे।
जबै ध्यान धर धरत निहारी। फूल फूल फूले फुलवारी।
जो अकास दिस देखै नैना। रसक मरे सूआ अरु मैना।
क्या कोकल कूकहि अधरैनी। उस वोले तू वायस बैनी।
क्या पजतारा अवर सरिंदा। उस वोले ते वरखे इन्द्रा ।।

(ख) फूलमती रूप-वर्णन[4]

जग मूरछ जो अभरन काछे। जोखे[5] फूल चढे नहि पाछे।
भूपत साचु, नाक का मोती। यहि भारा वह हौरी होती।
दाना दाखा खाय जो नारी। है है कहे अजीरन भारी।
जो बीरा को चाबे गोरी। लालो पकरे गर की चोरी।
जो भनकारे पग की नेवर। परकुट हुइ धर गिरे परेवर।
जब अजन लै नैना नाखे। रथ ज्यो खिच सूर को राखे ।।

पुरुष के रूप पर भी भूपत की दृष्टि कभी-कभी गई है।[6] कहीं-कहीं उनके शौर्य का भी बखान है। शौर्य-वर्णन मे भी प्रमुखत. अतिशयोक्ति का ही प्रयोग हुआ है। 'सूर कुँवर एक बाण मे दस हाथी छेद देता है। वह अर्जुन और भीमसेन का

---

१. पृ० ११४

२. (क) भौंह कमान वरन सर साधे। जो चाहे तो बिरहे बाधे।
जो सुन्दर अलबेली मावै। बिरहा को कर मोर नचावै ।। —१७३५
(ख) रे बिरहे मे प्रातुर होती। बिरहा बाथ पलथ सो सोती। —पृ० १४०

३. पृ० ११६

४. पृ० १३६-१३७

५. ओसना = तोलना

६. (क) सूर कुँवर—
रवि झिलार तन चन्द सो दामन दमन दिपंत।
बोलै तउ मानक झरै, फूल गिरै बिगसत ।। —पृ० ११०
(ख) दूलो बढ़िया—
रस से मावे रवि सी जोता। ऐसा सुंदर अवर न होता। —११८

साथी है। हनुमान उसके सम्मुख हाथ बाँध कर उसकी श्रेष्ठता तो स्वीकार करता है। शर-सधान से वह सागर को बाँधने मे समर्थ है। जब वह हाथ मे बरछी पकडता है तो आकाश काँपता है, धरती धसकती है।'[1]

इस प्रकार का है सूर रभावत का ससार—स्वतन्त्र रति-विहार के लिये अत्य-नुकूल, बाधाविहीन, मैत्री, रूप, शौर्य की प्रचुरता से सम्पन्न। इसे तृप्ति स्वप्न अथवा समृद्धि-स्वप्न कहना अनुपयुक्त प्रतीत नही होता।

यहाँ इस जनकथा मे प्रयुक्त अतिशयोक्ति की तुलना उस अतिशयोक्ति से कर लेना समीचीन होगा जिसका प्रयोग राजदरबारो में समादृत कविता मे होता रहा है। पहली प्रकार का अतिशय जनजीवन की सरलता से उत्पन्न होता है, इसके लिये कवि को क्लिष्ट कल्पना अथवा जटिल मानसिक व्यापार का आश्रय नही लेना पडता। जनभाषा मे स्वाभाविक अतिशयमूलक आलकारिता होती है, जनकथा का लेखक इसी का प्रयोग करता है। क्लिष्ट अतिशयोक्तियो द्वारा अपने श्रोताओ को आतकित करना लोककथाकार का अभीष्ट नही होता। उपर्युक्त उद्धरणो मे 'लका छोड बिलका कांपे', 'परसे पवन उडे वह गोरी', 'उस बोले ते बरखे इन्द्रा', जोखे फूल चढे नहि पाछे', 'रथ ज्यो खिच सूर को राखे' आदि अतिशय अवलम्बित उक्तियाँ ग्राम्य जीवन की जानी पहचानी उक्तियाँ हैं, इन्हें कहने या समझने के लिये किसी असाधारण ज्ञान अथवा विद्वत्ता की अपेक्षा नही। इसके विपरीत बिहारी-सरीखे कवियो की अतिशयोक्तियों का आधार है क्लिष्ट कल्पना, जटिल मानसिक व्यापार, असाधारण जानकारी, विद्वत्ता। जहाँ भूपत-सरीखे कवि अतिशय का (जन भाषा से) चयन करते हैं, वहाँ बिहारी-सरीखे कवि अतिशय का अपनी कल्पना और विद्वत्ता द्वारा सृजन करते हैं।

लोककथा के दूसरे तत्त्व जिनका प्रयोग इस किस्से मे हुआ हैं, वे हैं दैव पर विश्वास, अतिप्राकृतिक घटनाएँ, सहृदानी, जासूसी और ऐयारी।

(क) दैव पर विश्वास—दैव पर विश्वास इस कथा का मुख्य आधार नही। इस कथा का सबसे स्वस्थ अश है मानव का अपने चरित्र बल, अपनी एकनिष्ठता, अपनी कार्य-दक्षता, अपनी बुद्धि पर विश्वास। किसी विपदा को सुलझाने के लिए दैव का आवाहन नहीं किया है। केवल सूर कुँवर का जन्म सूर्यदेव के अनुग्रह से हुआ। जन्मोपरान्त कहीं सूर्यदेव का आराधान-पूजन नही हुआ है, सूर कुँवर के विक्षप्त होने पर भी उसके माता-पिता सूर्यदेव के अनुग्रह की पुन याचना नही करते।

(ख) अतिप्राकृतिक घटनाएँ—इस कथा मे केवल एक ही अतिप्राकृतिक घटना है, वह है गधर्वों द्वारा सूर कुँवर को उडा कर रभावती के शयनागार मे पहुँचाना

---

१. एक बान दस छेदे हाथी। अर्जन भीम सैन को साथी।
जित चाहे तित पकड पछोरे। को हनवत ताम कर जोरे।
जब लै धनख बान को साधे। जो चाहे तो सागर बाधे।
जो बरछी लै भ सन आवै। कापे गगन धरन धसकावै। —पृ० ११२

और उसे पुनः उड़ा कर वन में ला पटकना। लोक कथा—विशेषतः 'परीकथा'—में अतिप्राकृतिक घटनाएँ परम्परा के रूप में मान्य हैं, किन्तु ऐसी कथाएँ प्रौढ़ों को कम ही प्रभावित करती हैं। प्रौढ अपनी समस्याओं का सरल समाधान तो चाहता है, अतिसरल समाधान नहीं। इस कथा में समस्या के सृजन के लिये ही अतिप्राकृतिकता का प्रयोग किया गया है, समस्या के समाधान के लिये नही। समाधान तो मानवीय यत्नों से ही संभव हो सका है।

(ग) सहदानी—अंगूठियों की अदल-बदल इस कथा की बडी महत्त्वपूर्ण घटना है। इसके बिना नायक-नायिका को मिलन-घटना; की ऐन्द्रिय सत्यता में विश्वास ही न होता और दोनों का एक-दूसरे के लिये विक्षप्त होना स्वांग-सा प्रतीत होता। दोनों ही उस स्वप्नवत् घटना को सहदानी के कारण ही सत्य मानने को बाध्य हैं।[1]

(घ) जासूसी और धूर्तता—जहाँ समस्या का सृजन, जैसे कि ऊपर कहा जा चुका है, अतिप्राकृतिक घटना द्वारा हुआ, वहाँ इसके समाधान में मानवीय एकनिष्ठता और साहस के अतिरिक्त जासूसी और ऐयारी ने योग दिया है। सबल साहु के अनार और हरदत्त तंबोली के पान दो ऐसे चिह्न हैं जिनकी सहायता से रंभा और सुन्दर सूर कुँवर का पता लगाती है। जिस प्रकार दैव और अतिप्राकृतिक घटनाओं का प्रयोग करते समय कवि ने बहुत संयम से काम लिया है, इसी प्रकार जासूसी तत्त्व का प्रयोग भी बहुत सयम से किया गया है जिसके कारण सूर रंभावत की कथा जासूसी कहानी नही बन पाती। अनार और पान के चिह्नों से मानकपुर का पता निकाल लेना केवल सुन्दर और रंभा की मानसिक सजगता की ओर ही संकेत करता है।

धूर्तता के अंश जासूसी, अतिप्राकृतिकता, दैवयोग आदि की अपेक्षा कुछ अधिक हैं। फूलमती द्वारा दूलो को तीन संकेत[2], तपस्वी द्वारा 'बैल छुड़ा लो' की हाँक, सीतल द्वारा बदी पूजा का स्वाँग, सुन्दर द्वारा वैद्य बनने का स्वांग कुछ ऐसे धूर्त कर्म हैं जो आधिकारिक और प्रासंगिक कथा की गतिविधि पर बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं। यहाँ इतना विशेष रूप से ज्ञातव्य है कि सम्पूर्ण कथा मे कही भी धूर्तता शठता की संगिनी नहीं बनी। धूर्तता का प्रयोग केवल ऐसे उद्देश्य के लिए ही हुआ जिससे पाठक अथवा श्रोता की सहानुभूति है।

---

१. (क) रंभा—
चीन धरै मत सुगना होवै। पुन सुंदरी देखै औ रोवै। —पृ० १२६
(ख) सूर कुंवर—
सुन चौरा ऊँचा विरलायो। दस सुंदरी मैं रेत रलायो। —पृ० १७१

२. प्रिथम चबेली फूल मंगाये। कर धर के दूलो दिखराये।
बहुर मंगाई जल की झारी। ले कर झारी राजकुमारी।
टूटी के मग सब जल डारा। ठाढे दूलो राम निहारा।
जूरी खोल केस झटकाये। मुख पर डार मीत दिखराये। —पृ० १४४

दैव-योग, अतिप्राकृतिक घटनाएँ, सहुदानी, जासूसी, ऐयारी—इन सब मे से एक अथवा ये सब मिल कर भी किसी जनकथा को काव्य-प्रबन्ध बना सकने की सामर्थ्य नही रखती। काव्य (अथवा काव्य-प्रबन्ध) की अन्तिम और निर्णायक कसौटी है—हमारे मनोभावो को स्पर्श एवं उद्बुद्ध कर सकने की शक्ति। कवि भूपत ने इस सत्य को भली प्रकार पहचाना है। दैवयोग, अतिप्राकृतिकता, जासूसी, ऐयारी आदि हमे विस्मित और यदा-कदा आतंकित, तो कर सकती हैं, इनमें हमारे मर्म को छूने की सामर्थ्य बहुत अधिक नही। कवि भूपत ने न तो इनके द्वारा अपने पाठक को चकित करने का यत्न किया है और न घटनाचक्र के जटिल व्यापार मे उलझा कर पाठक की कोरी कौतूहल भावना की तुष्टि की है। भूपत इससे कही अधिक महत्वाकांक्षी है, वह मर्म तक पहुँचने का अभिलाषी है और इसके लिए कृतप्रयास भी।

प्रेम-कथा होने के नाते इस कथा का मुख्य रस शृंगार है, शृंगार के दोनो पक्षों के दर्शन इस कथा में होते हैं। शृंगार के आलम्बन और आश्रय के रूप-वर्णन की ओर हमारे कवि का ध्यान गया है, इसकी चर्चा पीछे हो चुकी है। रूप, शील और कुल की दृष्टि से वे शृंगार के आलम्बन एव आश्रय के सर्वथा उपयुक्त हैं। मिलन-वर्णन मे विलास की प्रधानता है। एकाध स्थान पर यह विलास-वर्णन शिष्टता की सीमा का उल्लघन करता दिखाई देता है, किन्तु कवि जल्दी ही अपने आपको रोक लेता है। विस्तृत विलास-वर्णन की ओर कवि की रुचि नही। बिछुडने की घडी शीघ्र ही उपस्थित होती है। प्रेमी आँखों-मे-आँखें गडाये खडे हैं, सूक्ष्म दृष्टि-सूत्र को तोडना कठिन हो रहा है, तन की सुधि नहीं—

> बिगसहि करि करि मीठे बैना।
> सके न छोड नैन सो नैना।
> बाहर सरे न मोरी भेरहि।
> पल पल माते लोचन हेरहि।
> दोऊ ऊभे प्रीत बिसाहे।
> बांधे नैन न बिछुर्या चाहे। —पृ० १४७

यो तो कवि 'प्रीतम गल बाह' को स्वर्ग, बैकुंठ और कल्पवृक्ष की छाँह से भी श्रेष्ठ बताते हैं[१], किन्तु उनका मन विप्रलम्भ मे ही अधिक रमा है। रंभा के रूप वर्णन के उपरात पाठक को ब्राह्मण देवता के लोभ द्वारा अन्वेषित कुरूप पति का समाचार मिलता है। लज्जाशील रभा छिप-छिप कर अपने दुख पर रोती, झुरती और कांपती है। अपना दुःख किसी पर प्रकट नही करती मानो वस्त्रो मे पड़ी चिंगारी को छिपाने का यत्न कर रही हो।[२] तत्पश्चात् अग्निवत् सुहाग-शैया पर रभा का

---

१. कहा सुरग बैकुंठ पुन कल्प बिरछ की छाह।
भीषम न सुहावणा जो प्रीतम गल बाह। —पृ० १४७

२. दुर दुर रोवै झुर झुर कापै।
चोरे चिनग परी वस्त्र ढापै। —पृ० ११६

कलेजा जलता दिखाई देता है।[1] इसके पश्चात् मिलन का तिज-सुख और बिछोह का गिरि-दुःख।[2] यहाँ आकर कथा-प्रवाह रुक जाता है और कवि अपना सारा कौशल विरह-वर्णन के लिये सुरक्षित कर देता है। भाग्य के अकस्मात् कुपरिवर्तन पर नायक-नायिका ठगे-से रह जाते हैं। सूर कुँवर तो मानसिक संतुलन खो बैठता है। उसकी विक्षप्तावस्था का वर्णन कवि ने अभिधामूलक भाषा में किया है। विक्षप्त सूर कुँवर के कर्म जितने अदम्य और द्रुत वेग से होते हैं, कवि उतनी ही तीव्रगति से उनका चित्रण करना चाहता है। लाक्षणिक प्रयोगों अथवा सादृश्यों की खोज में वह प्रवाह को रोकना नहीं चाहता :

जब जागे तब भयो अचंभा। कहु वहु कनक भवन कह रंभा।
हा हा करे हाथ पुन तोरे। पाथर लै कर सीस चहोरे।
ऊंचा रोवै चीरन फारे। भसम सकेल सीस महि डारे।
फुरकि फुरकि पुनि मीचै नैना। तरफि तरफि तरफाए बैना।
गिरि गिरि परे जरे तन राधे। मुखि परि भाग बुदबुदे बाधे।
टूक टूक कर वदन उखेरी। खोस सीस सिर कियो हथेरी।
थर थर काँपै डर डर चमकै। मुर मुर सुलगे जर जर तमकै।
छिन नख स्यों लै नैना चूडे। छिन मुहि भार भोन महि सूडे।
कहा बुध कहा वहु जोता। कहा वहु सूर कुँवर जो होता।
—प० १२४, १२५

उपर्युक्त अवतरण में हा हा, फुरकि फुरकि, तरफि तरफि, गिर गिरि, टूक टूक, थर थर, डर डर, मुर मुर, जर जर, आदि युग्शब्दों से कवि ने पागल राजकुमार की असह्य, अनवरत विकलता की ओर ही संकेत किया है।

संतुलन तो रंभा भी खो बैठी है किन्तु विक्षप्ति की अवस्था तक नहीं। उसकी अवस्था अपेक्षाकृत जटिल और संयत है। जहाँ विरही सूर कुँवर दुःख झेलता हुआ दुःख झेलने की अनुभूति से—विक्षिप्त होने के कारण—मुक्त है, वहाँ रंभा को इतनी भी छूट नहीं। उसके विरह-वर्णन में कवि ने शारीरिक चेष्टा और मानसिक व्यापार दोनों की ओर ध्यान दिया है, इसके लिये कवि ने अनेक उपयुक्त सादृश्यों से सहायता ली है :

तू रह पाव हाथ रंभावतं। कबही तरफत कबही धावत।
जल बिन काँपत मीन दुहेली। चाहे सूर कुँवर अलबेली।
घर पर कोडे दुर दुर हेरे। जनक अहेरी मृगी अहेरे।
कबही मोन गहै मन मारे। जनक जुआरी गाठे हारे।
बिनसै बदन सीस भनकारा। जन कर साहु खेप का मारा।
लसक चले फुन लसक लसावै। जनकर नागन बिलहि न पावै।
कबही तरफे होय अबोला। जन कर खाए चिरी गलोला।

---

१. सीख रमक भई, पावक सेजा।
तिह रंभा का धरयो कलेजा। —प० १२०.

२. तिज सुख ते गिर दुख भयो, सुन्दर होछै भाग। —प० १६०

रभावती मे विरह का बडा ही विस्तृत वर्णन किया है। रसशास्त्रियो द्वारा गिनवाये शृगार सम्बन्धी लगभग सभी अनुभाव और सचारी इस विरह-वर्णन मे ढूँढे जा सकते हैं। तिस पर भी कही बनावट अथवा आयास दिखाई नही देता।

जब व्रती ब्राह्मण के उपवीत के समान रभा ने विरह को नित्य का सगी बना लिया[1] तो माँ बाप ने वैद्य को बुलाया किन्तु उसे देखते ही जैसे विरह रूपी धुनकैया ने अपनी 'धुनक दूनी' कर दी हो।[2] और, जब रभा को पता चलता है कि उसका प्रिय उसके कारण 'बौरा' होकर घूम रहा है तो वह आत्म ग्लानि से भर जाती है। सभल नगरी से मान्कपुर तक की यात्रा इसी आत्म ग्लानि और आत्म धिक्कार के अश्रुओ से सिक्त है। रभा के विक्षुब्ध मन म झाँकने के लिये कवि कथा प्रवाह को रोक देता है। रभा की आत्म धिक्कार विक्षप्ति के बहुत निकट है और इसका वर्णन कवि ने अभिधामूलक भाषा मे ही किया है

अपने हाथ मूँड को फोरो। वह बौरा मैं सुधि महि दौरो।
धृग जीवन धृग जन्म स्यानी। वह बौरा मैं रभा रानी।
मुहि करन उन सुध जु बिसारी। मै न मुई पापन हत्यारी।
वह मसान महि ईंट सिराना। यौ सुन्दर मैं तजो पराना।

तिल सुख ते गिर सुख भयो, सुन्दर होछे भाग।
उन मुहि कारन गृह तज्यो, मैं गृह लाऊ आग।

धन वह देस जहा ए सगी। धन वह कुवर धन्न सुरवगी।
धृग सुन्दर धृग रभारानी। धृग सभल जो रही स्यानी।
सूर कुँवर को बौरा कह्यो। सुन्दर क्यो जीवते रह्यो।

—१६०-६१

सक्षेप से, सूर-रभावत एक रस कथा है। कवि का अभीष्ट कथा के माध्यम से प्रेम की पीर का गायन करना है। घटना प्रसग मे यह प्रेम की पीडा और भी मर्ममयी, और भी महत्त्वशालिनी हो जाती है। कथा का सूत्र तो कवि ने कही टूटने नही दिया, मार्मिक स्थलो पर पहुँच कर उसके प्रवाह को थोडी देर के लिए रोक अवश्य लिया है। निस्सदेह इस कथा में कौतूहल की अपेक्षा भावातिरेक की मात्रा कही अधिक है।

यह भावातिरेक कई बार सामाजिक रीति रिवाज और मर्यादा का उल्लघन करता हुआ, अतएव अनुचित, प्रतीत होगा। एकाध स्थान पर यह अनौचित्य सर्वथा अक्षम्य है। दूलो जडिये का अपनी गुणवती और रूपवती पत्नी को छोड कुमारी राजकन्या से छिप कर मिलना किसी भी दृष्टि से उचित नही ठहराया जा सकता। यहाँ बचाव

---

१. ओढियो रभा विरह अभेऊ। ब्राह्मण ज्यो गल डार जनेऊ। —पृ० १३२
२ कहा टटोरे नारि बाहे औखध मुख धरे।
उठ रे बैद गवार, विरह धुनक दूनी करे। —पृ० १३४

केवल इतना है कि यह प्रासंगिक कथा है और सुन्दर द्वारा फूलमती को एक विशेष उपदेश हृदयंगम कराने के लिये सुनाई गई है। उपदेश (मिलन प्राप्ति के लिए रोना धोना ही पर्याप्त नहीं, यत्न भी आवश्यक है) मे किसी प्रकार का अनौचित्य नहीं। आधिकारिक कथा में भी सामाजिक मर्यादा का पालन नही किया गया। मर्यादा तो कोढ़ी-कुष्ठी पति को भी सहर्ष स्वीकार कर लेने का उपदेश देती है। यह आख्यान ऐसी मर्यादा को स्वीकार नही करता। अनमेल व्याह, मर्यादा-समर्थित होने पर, कवि की सहानुभूति का अधिकारी नहीं। किन्तु, यह निष्कर्ष निकालना उचित न होगा कि कवि अमर्यादित उच्छृंखलता का पोषक है। हृदय की अपनी मर्यादा है जिसका पालन, कदाचित् सामाजिक मर्यादा, से भी कठिन है। प्रेम मे एकनिष्ठता का भाव प्रेमी के भावातिरेक को मर्यादित, संयत करता है। यह ऐसा संयम है जो सात समुद्र पार बसने वाले प्रिय को आज्ञा पर सब संसार को छोडने का बल देता है। यह नारी को प्रेम-क्रीड़ा का निष्क्रिय संगी न बना कर उसे सक्रिय बनाता, अतः उसके चरित्र को अधिक गौरवान्वित करता है। रंभा अपने गुणहीन-रूपहीन पति का त्याग कामुकता की अदम्य तृप्ति के लिये नही करती। काम का मार्ग सौख्य, सुभीते का मार्ग है। वह तो माता-पिता को सुखद छाया का त्याग कर वर्षों बन-बन की खाक छान कर मानकपुर पहुँचती है। निश्चय ही वह अपनी रति को एकोन्मुख बना कर अपने आप को कड़े संयम द्वारा अनुशासित करती है। रंभा का प्रेम अवांछित को छोड़ देने की सुविधा नहीं, वांछित को प्राप्त करने की तपस्या है।

कवि ने इस अतिरेक को संयत करने के लिए एक और साधन का भी प्रयोग किया है। वह स्थान-स्थान पर प्रौढ़ अनुभव द्वारा सचित सत्य सूक्तियों के रूप में देता जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कहानी किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा कही जा रही है जिसके चरित्र में रसिकता और प्रौढ़ता का समुचित मेल है। कुछ सूक्तियों के उदाहरण कुस्थान न होंगे:

१. जिस सर पर तरवर नहीं, जिस नर के सुत नाहि।
जिस घट महि विद्या नहीं, ते निंदक जग माहि।
—१०७

२. राम वरी रावण हरी सीता लख्यो न भेख।
तिल भर वधे न जो घटै, भूपत विध की लेख।
(वधे = वढ़े) —१२८

३. पर त्रिय रावन मग मुसन, गृह फोरन को साथ।
भूपत तब लग ही भले, जब लग परे न हाथ।
—१४८

४. कहा सुरग वैकुंठ पुन कलप विरछ की छाह।
ग्रीपम जड सुहावणा जो प्रीतम गल बाह।
—१४७

५. जागते मन महि बसैं, सुपने सोवत सोइ।
भूपत जीवते मिलन, इक दिन ऐसा होइ।

—१५७

जनकथाओं के मुख्य पात्र साधारणत. राजे, रानियाँ, राजकुमार और राजकुमारियाँ रही हैं, किन्तु यह है मूलत: निर्धन किसानों का व्यसन। राजप्रासादों में लोकगाथा के पात्र रहते हैं, लोकगाथा नही। अत लोकगाथा का वातावरण अनिवार्यत. ग्रामीण होता है।[1] सूररभावत्त की कथा भी इस सत्य का कोई अपवाद नही। मणिजटित राजप्रासाद, कनक-खभा, रथ पाँचकरोडन, आदि से कथा मे. राजप्रासाद का वातावरण का यत्न तो है पर ग्राम्य भाषा, मुहावरे, उपमान इस वातावरण को छिन्न-भिन्न कर देते हैं। राजमाता रभा को सयानी होती देखकर किसान-घरनी के समान, उसी की भाषा मे कहती है—"इस अबला की करो वहानी"।[2] और राजा, सच्चे किसान के समान यह काम ब्राह्मण पर छोड देता है। यह ब्राह्मण धन के लोभ के कारण रूपवती रभा का लग्न कुरूप राजकुमार से जोड देता है और बेचारा राजा सब जानता-बूझता हुआ ब्रह्माजी के सम्मुख नतमस्तक होता है। राजकुमारी भी अपने विरह की बात अपनी सखी से करती हुई ग्राम्यजीवन से उपमान लेकर कहती है :

सूक साक सन होयो लकरी।
पीअ छोरी कर कोरी खखरी—१५३

और उसको सखी उसे धीरज दिलाती हुई ग्रीष्म ऋतु मे झुलसे हुए विरल छाया वाले जड वृक्ष का स्मरण कराती है—'ग्रीषम जड सुहावणा जो प्रीतम गल बाह' (१४७)। इन पात्रों के वार्तालाप मे उस सस्कार, सायास शिष्टता अथवा कृत्रिमता के दर्शन नही होते जिसका सम्बन्ध साधारणत. राजभवनो से जोडा जाता है। राजधानी का वातावरण भी गाँव जैसा है। राजनगरी मे अर्धरात्रि के समय लोग निस्सकोच भाव से हाँक दे रहे हैं 'किसी का बैल पकडा गया है, रातो रात छुडा लेने में बचाव है, दिन के समय छुडाने मे हानि उठानी पडेगी।'

जहाँ कवि अपनी ओर से किसी दृश्य, घटना अथवा मन स्थिति का वर्णन अथवा चित्रण करता है वहाँ भी भाषा का वातावरण ग्रामीण—(गँवारू नही)—ही है। वस्तुत पात्रों और कवि की भाषा मे कही भी कोई अन्तर नही। भाषा सर्वत्र एकरस है—जो ग्रामीण शब्दावली की ओर झुकती हुई भी गँवारू, कर्णकटु अथवा कठोर नहीं होने पाई। कहना होगा कि इस भाषा का सम्बन्ध उस सीमारेखा से है जहाँ जनभाषा और साहित्यिक भाषा का अन्तर मिट जाता है। हिन्दी भाषी क्षेत्र की साहित्यिक भाषा साधारणत नगरोन्मुख रही है। ग्रामभाषा को गँवारू, असस्कृत कह कर उसे साधारणत साहित्य क्षेत्र के अनुपयुक्त समझा गया है। पजाबी क्षेत्र के

१. इसीलिये जनकथा को निर्धन का समृद्धि स्वप्न कहा था।
२. ११७

द्वारा इस ओर नया प्रयोग हुआ है। ग्राम्य भाषा म भी सौंदर्य है जो साहित्य मे स्थान पाने का अधिकारी है—ऐसा इस प्रयोग का निष्कर्ष है।

इस कवि की भाषा 'कथा हीर रांझे की' के लेखक के समान ही खडी बोली की ओर झुकती हुई व्रज है। पजाबी भाषा के शब्दो का कही-कही प्रयोग हुआ है। कुछ एक उदाहरण इस प्रकार हैं

तिस बिन होर न कोऊ दूजा(और)	—१०३
होमै कूर करे ससार (अहकार)	—१०३
बल करि दीर छडायो हाथी(छुडाया, छुडायो)	—१०४
आपे कारन करन करावै (आपही)	—१०५
ले ले कुच्छर मात नचावै(गोद)	—१०६
भूआ मासी और पिताणी (बुआ)	—१०६
मुख देख को राखहि चिंदा (इच्छा)	—११०
आवै रभा कोल स्यानी (पास)	—११६
मधुर-मधुर पुन कहै संगाती (शर्माती हुई)	—११६
तिल भर वधे (बढे)	—१२८
जो लेखन लै लेख लिखावै (ले)	—१३५
गरी गरी महि कूक सुनाऊ (उच्च स्वर से)	—१५०
सुन्दर पुन मेरी तू भैना (बहिन)	—१५३
मासक महि धरमसाल उसारी (बनवाई)	—१५६
पंधाऊ को बाट जुहारे (पाथी, पथिक)	—१५६
रे वीरा कित मारग आए (भाई, किस)	—१५८
तो पुन उरले न्नाठे आए (इस पार)	—१६३
जो उरवार आइ गई नगरी (इस पार)	—१६३
जेते चाहे तेते ल्याए (जितने, उतने)	—१६७
धृग जीवन धृग जन्म (धिक्)	—१६०

सूररभावत की भाषा सहजालकृता है। उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक—इन तीन अलकारो का ही प्रयोग कवि भूपत द्वारा हुआ है। एकाध स्थान को छोड—जहां रूढ उपमानो का प्रयोग हुआ है—अन्यत्र सब जगह उपमान ग्राम्य जीवन से लिए गए हैं, जो चिरपरिचित होने पर भी साहित्य मे अप्रयुक्त होने के कारण, नवीन ताजा, दिखाई देते हैं। सूररभावत के अलकारो की दूसरी विशिष्टता यह है कि उसने सादृश्यो का प्रयोग सर्वदा मन स्थिति के स्पष्टीकरण के लिए किया है। अदृश्य, सूक्ष्म मन स्थिति को दृश्य, स्थूल उपमानो द्वारा स्पष्ट करने की ही उनकी रुचि है। प्रकृत स्थूल या अप्रकृत स्थूल समान्तर दिखाने की चेष्टा उनकी नही है।

जहाँ कही रूपवर्णन मे अतिरंजना का पुट देने की आवश्यकता प्रतीत हुई है, उन्होने अतिशयोक्ति का आश्रय लिया है जिसके पर्याप्त उदाहरण पहले दिये जा चुके हैं। कुछ सादृश्यमूलक अलकारो की बानगी इस प्रकार है :

१. दुर दुर रोवै झुर झुर काँपै।
चौगे चिनग परी अत काँपै —११६

२. लसक चले फुन लसक लसावै।
जन कर नागन बिलहि न पावै ॥ —१३०

३. कबही मोन गहै मन मारे।
जनक जुआरी गाठे हारे ॥ —१३०

४. कबही तरफ होय अबोला।
जन कर खाए चिरी गलोला ॥ —१३०

५. उठरे वैद गँवार बिरह धुनक दूनी करे ॥ —१३४

६. पुन वह जरिया पर्यो उदासू।
जन कर साप सोख्यो सासू ॥ —१४१

७ बौराने को सुध महि ल्याऊँ।
सूका तरवर पात लगाऊँ ॥ —१६५

८. पिय मिलवे का थट्ठ भया, तज निकस्या बैराग।
भूपत जन कर मौलियो चेत समै का बाग ॥ —१६६

९. सुन्दर तुम मुझ को जिउ दीना।
माटी ते लै मानस कीना ॥ —१७४

कुछ स्थानो पर कवि ने साग रूपकों का प्रयोग किया जिनमे कृत्रिमता तो नही, अपेक्षाकृत आयास की प्रतीति अवश्य होता है। निश्चय ही इन मे पूर्वोक्त अलकारो जैसी वह ताजगी नही।

१. ऊधी परो एक 'पसवारी।
सीख रसक भई पावक सेजा।
तिह रभा का धर्यो कलेजा ॥ —१२०

२. हाथ भये दोऊ सावरी सीस भए घन तार।
भूपत बिरहै की जरे खेडे राजकुआर ॥ —१३१

३. बिरह सुनार जार कर गारी। कनक देह घर प्रेम कुठारी।
छुलक अगार जरावहि आगा। यह सुन्दर उफ भई सुहागा —१३३

४. तन दीपक बुध बाती डारै।
तापर हुई पतग जिउ जारे ॥ —१३०

रूढ़ उपमाएँ भी यदा-कदा दिखाई देती हैं, जैसे :

ठोडी महि अमृत का दौना।
छूटी अलक नाग ज्यों छौना॥
कनक कलस कुच विधिना कीने।
सिर पर छाप प्रेम के दीने॥ —११६

पंजाबी किस्सा लेखकों ने अपने कथा-काव्य के लिये हिन्दी प्रबन्धों के प्रसिद्ध छन्दों—दोहा, सोरठा, चौपाई (अथवा चौपई) का ही प्रयोग किया है। हमारे निबन्ध की कालावधि के तीनों किस्सा कवियों—(भूपत, सभाचन्द सोधी और गुरदास गुणी) ने इन छन्दों के अतिरिक्त किसी और छन्द का प्रयोग नहीं किया।

चतुर्थ अध्याय

गुरु गोविंद सिंह

चरित्रोपाख्यान

(सामान्य परिचय)

अधिकांशतः धर्मयुद्ध के सेनानियों की ही रही होगी, ऐसा अनुमान लगाना उचित ही होगा। कथाओं को अपने श्रोताओं के लिये सहज ग्राह्य बनाने के लिये कवि ने कई एक स्थानों पर कथन और वर्णन में सुसस्कृत शैली की आवश्यकताओं की ओर ध्यान नहीं दिया। अतः कुछ स्थानों पर काम-क्रीडा का नग्न चित्रण उपस्थित हो गया है, जो शिष्ट-सस्कारों पर आघात करता है। सेनानियों के लिए नारी-चरित्र का, विशेषतः उसकी कामपरता और धूर्तता का अतिरजित चित्र उपस्थित करने का दायित्व उन परिस्थितियों पर है जिनमे इस ग्रंथ की रचना हुई थी। धर्मयुद्ध के लिये यह सगठन बहुत दिनों के पश्चात् हो रहा था। इस सगठन में सदस्यों के लिये गृहस्थ के मोह का त्याग बहुत आवश्यक था। गुरु गोविंदसिंह से पहले गुरु तेग़बहादुर द्वारा भी इसी त्याग का प्रचार प्रारम्भ हो चुका था। इसका कुछ सकेत हम गुरु तेग़बहादुर की वाणी का विवेचन करते समय कर चुके हैं। दूसरा कारण इस सगठन की भौगोलिक परिस्थिति में निहित था। आनन्दपुर शिवालिक पर्वत-माला की तलहटी में बसा हुआ नगर है। यहाँ बैठ कर गुरु जी को मुगल-सत्ता के विरुद्ध धर्मयुद्ध का सचालन करना था। यहाँ युद्ध के साथ धर्म शब्द का प्रयोग साभिप्राय है। वे अपने सेनानियों के युद्ध कर्म को जितना महत्त्व देते थे, उतना ही उनके धर्म, उनके नैतिक विश्वास के लिये भी सतर्क थे। इन सेनानियों के मार्ग में नारी एक बहुत बड़ा प्रलोभन थी। गृहस्थ से दूरी, पार्वत्य क्षेत्र में नैतिकता का पतनशील स्तर और युद्धो में शत्रुओं की नारी पर बलात्कार करने की छूट—ये सब परिस्थितियाँ उपर्युक्त प्रलोभन को बहुत कुछ यथार्थ रूप प्रदान कर रही थीं। गुरु गोविंदसिंह ने उपदेश और व्याख्यान, दोनों रीतियों से अपने अनुयायियों को इस प्रकार के प्रलोभन के प्रति सावधान किया। उन्होंने अपने सैनिकों को जिन चार 'बज्जर कुरैहतो'—बज्र कुरीतियों अथवा घातक अपराधों—से बचने का उपदेश बड़ी कड़ाई से दिया उनमे से एक था 'परस्त्री-गमन'। इसी उपदेश को सेनानियों के हृदय में बैठाने के लिये चरित्रोपाख्यानों की रचना हुई, ऐसा अनुमान सहज में ही किया जा सकता है।

कथा-योजना

मुख्य कथा

चरित्रोपाख्यान की कथा, सक्षेप से, इस प्रकार है:

चित्रवती नामक नगरी में चित्रसिंह नाम का एक राजा था। इन्द्रसभा की एक अप्सरा राजा का अनुपम रूप देखकर मोहित हो गई। उन दोनो के मिलन से एक पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम हनुवतसिंह रक्खा गया।

कुछ वर्ष तक चित्रसिंह के साथ भोग-विलास का जीवन व्यतीत कर अप्सरा उड़ कर इन्द्रलोक को चली गई। विरहातुर राजा ने वियोगाग्नि को शात करने के

चतुर्थ अध्याय

गुरु गोविंदसिंह

चरित्रोपाख्यान

(सामान्य परिचय)

चरित्रोपाख्यान नामक वृहद् कथा-सग्रह दशम ग्रथ मे सम्मिलित है। इनको चरित्र, उपाख्यान अथवा पख्यान नाम से भी अभिहित किया जाता है। इन उपाख्यानो मे ४०५ कथाओ के अक दिये गये हैं, किन्तु, कुल मिला कर इन कथाओ की सख्या चार सौ से कुछ कम है। ३२५ वाँ उपाख्यान लिखा ही नही गया, ग्रन्थारम्भ में मगलाचरण को भी एक उपाख्यान मान लिया गया है; कुछ कथायें एक से अधिक उपाख्यानो मे बँट गई है।

इन उपाख्यानो का आकार, ग्रन्थकर्ता की अपनी गणना के अनुसार ७५५५ छन्दो तक फैला हुआ है। प्रकाशित रूप मे यह ५७६ पृष्ठो की दीर्घकाय रचना है। प्रत्येक पृष्ठ मे २७ पक्तियो और प्रत्येक पक्ति मे दस से तेरह शब्दो की दर से यह डेढ लाख से भी ऊपर शब्दों की रचना है।[1]

इस रचना मे सम्मिलित कथाओं के मुख्य प्रेरणा-स्रोत हैं—बहार दानिश (फारसी रचना), भारतीय पुराण, लोकगाथा, पजाबी किस्सा काव्य, भारतीय इतिहास आदि। इन स्रोतो का प्रचुर मात्रा में प्रयोग करने पर भी कवि ने अपनी कल्पना-शक्ति का कुछ कम प्रयोग नही किया। इस कथासग्रह का एक बहुत बडा भाग उनकी कल्पना शक्ति द्वारा ही उद्‌भूत है।

इन कथाओ का केन्द्रीय विषय है स्त्री-चरित्र। यदि सभी नहीं तो, लगभग सभी कथाओं का केन्द्र बिन्दु कोई नारी पात्र है। उसके प्रेम, शौर्य, धूर्तता, साधन-सम्पन्नता का चित्रण इनका ध्येय है। देश काल की परिस्थितियो का ब्योरा कम-से-कम दिया गया है, केवल इतना ही जितना कि नारी-चरित्र को उद्‌घाटित करने में सहायक बन सके। सक्षेप से इन कथाओं को नारी-चरित्र-कथा-सग्रह की सज्ञा देना उपयुक्त ही है। इस रचना का लोकप्रिय नाम भी चरित्र अथवा त्रिया-चरित्र है।

इन कथाओ की रचना स० १७५३ वि० मे आनन्दपुर मे हुई। इस समय गुरु गोविन्दसिंह धर्मयुद्ध में लिये सेना-सगठन कर रहे थे। इनकी श्रोता-मडली

---

१. इन आँकड़ों का आधार है जवाहरसिंह कृपालसिंह द्वारा प्रकाशित दशम ग्रथ का स० २०१३ वि० का सस्करण।

अधिकांशत धर्मयुद्ध के सेनानियो की ही रही होगी, ऐसा अनुमान लगाना उचित ही होगा। कथाओ को अपने श्रोताओ के लिये सहज ग्राह्य बनाने के लिये कवि ने कई एक स्थानो पर कथन और वर्णन मे सुसस्कृत शैली की आवश्यकताओ की ओर ध्यान नही दिया। अत कुछ स्थानो पर काम-क्रीडा का नग्न चित्रण उपस्थित हो गया है, जो शिष्ट-सस्कारो पर आघात करता है। सेनानियो के लिए नारी-चरित्र का, विशेषत उसकी कामपरता और धूर्तता का अतिरजित चित्र उपस्थित करने का दायित्व उन परिस्थितियो पर है जिनमे इस ग्रथ की रचना हुई थी। धर्मयुद्ध के लिये यह सगठन बहुत दिनो के पश्चात् हो रहा था। इस सगठन के सदस्यो के लिये गृहस्थ के मोह का त्याग बहुत आवश्यक था। गुरु गोविंदसिंह से पहले गुरु तेग़बहादुर द्वारा भी इसी त्याग का प्रचार आरम्भ हो चुका था। इसका कुछ सकेत हम गुरु तेग़बहादुर की वाणी का विवेचन करते समय कर चुके हैं। दूसरा कारण इस सगठन की भौगोलिक परिस्थिति मे निहित था। आनन्दपुर शिवालिक पर्वत-माला की तलहटी म बसा हुआ नगर है। यही बैठ कर गुरु जी को मुग़ल सत्ता के विरुद्ध धर्मयुद्ध का सचालन करना था। यहाँ युद्ध के साथ धर्म शब्द का प्रयोग साभिप्राय है। वे अपने सेनानियो के युद्ध कर्म को जितना महत्त्व देते थे, उतना ही उनके धर्म, उनके नैतिक विकास के लिये भी सतर्क थे। इन सेनानियो के मार्ग मे नारी एक बहुत बडा प्रलोभन थी। गृहस्थ से दूरी, पार्वत्य क्षेत्र मे नैतिकता का पतनशील स्तर और युद्धो मे शत्रुओं की नारी पर बलात्कार करने की छूट—ये सब परिस्थितियाँ उपर्युक्त प्रलोभन को बहुत कुछ यथार्थ रूप प्रदान कर रही थी। गुरु गोविंदसिंह ने उपदेश और व्याख्यान, दोनो रीतियो से अपने अनुयायियो को इस प्रकार के प्रलोभन के प्रति सावधान किया। उन्होने अपने सैनिको को जिन चार 'बज्जर कुरैहतो'—वज्र कुरीतियो अथवा घातक अपराधो—से बचने का उपदेश बडी कडाई से दिया उनमे से एक था 'परस्त्री-गमन'। इसी उपदेश को सेनानियो के हृदय मे बैठाने के लिये चरित्रोपाख्यानो की रचना हुई, ऐसा अनुमान सहज मे ही किया जा सकता है।

कथा-योजना

मुख्य कथा

चरित्रोपाख्यान की कथा, सक्षेप से, इस प्रकार है

चित्रवती नामक नगरी में चित्रसिंह नाम का एक राजा था। इन्द्रसभा की एक अप्सरा राजा का अनुपम रूप देखकर मोहित हो गई। उन दोनो के मिलन से एक पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम हनुवतसिंह रखा गया।

कुछ वर्ष तक चित्रसिंह के साथ भोग-विलास का जीवन व्यतीत कर अप्सरा उड कर इन्द्रलोक को चली गई। विरहातुर राजा ने वियोगाग्नि को शात करने के

लिए ओड़छा-नरेश की कन्या चित्रमती से विवाह कर लिया। चित्रमती राजकुमार के रूप को देखकर उस पर मुग्ध हो गई। किन्तु हनुवन्तसिंह विमाता के काम-प्रस्ताव को स्वीकार न कर सका। अत तिरस्कृत होकर चित्रमती ने राजा के दरबार मे राजकुमार के चरित्र पर मिथ्या आरोप लगाया। राजा ने राजकुमार को प्राण-दण्ड की आज्ञा दी। उस समय राजा के चतुर मन्त्री ने निरपराध राजकुमार की जान बचाने के लिए राजा को अनेक 'तिरिया चरित्र' सुनाये। चरित्र-कथन का यह क्रम न जाने कितने दिन चलता रहा। प्रत्येक सध्या को राजकुमार बदीगृह मे भेज दिया जाता। प्रात काल उसे फिर बुला लिया जाता और मन्त्री द्वारा एक नया चरित्रोपाख्यान आरम्भ कर दिया जाता। इस प्रकार जहाँ प्रत्येक उपाख्यान अपने आप मे स्वतन्त्र है, वहाँ वह एक बृहत्तर कथा-योजना का अग भी है। प्रत्येक कथा की सफलता इस बात मे है कि उसका अपना स्वतन्त्र तात्कालिक प्रभाव भी हो और सभी कथाओं के सयुक्त प्रभाव को गहरा करने मे भी उसका योग हो। यही कारण है कि इसमे आये अधिकाश उपाख्यान ऐसे हैं जो नारी की स्वेच्छाचारिता, कामुकता और धूर्तता का प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

चरित्रोपाख्यान का लोक-प्रिय नाम 'तिरिया-चरित्र' है और ऊपर दिये विवेचन की दृष्टि मे यह नाम अनुपयुक्त प्रतीत नहीं होता। स्वय चरित्रोपाख्यान का रचयिता भी इस मत का स्पष्ट पोषण करता हुआ प्रतीत होता है। उसने प्रत्येक उपाख्यान को चरित्र की सज्ञा दी है और पुस्तक का वैकल्पिक नाम 'त्रिया-चरित्र' ही रक्खा है। प्रत्येक कथा की समाप्ति पर वह इस प्रकार का सकेत देता है :—

'इति श्री चरित्रोपाख्याने त्रिया चरित्रे मत्री भूप सवादे चार सौ तीन (प्रत्येक चरित्र की सख्या) चरित्र समाप्तमस्तु शुभमस्तु'।

चरित्र क्या है ?—दशम ग्रथ मे चरित्र शब्द का प्रयोग विस्तृत अर्थ मे भी हुआ है और सीमित अर्थ मे भी। चण्डी-कथा का अभिधान भी चण्डी-चरित्र ही है। स्पष्ट है यहाँ चरित्र का अर्थ है लीला। चौबीस अवतार वर्णन मे भी कई स्थानों पर चरित्र शब्द लीला का पर्याय बन कर ही प्रयुक्त हुआ है।[1] चरित्र अथवा लीला मे आख्यान और वैचित्र्य के तत्वो का समावेश माना जाये तो हम चरित्र को वैचित्र्यपूर्ण आख्यान कह सकते हैं। इन दोनो तत्वो का ग्रहण चरित्रोपाख्यान मे भी हुआ है। सभी चरित्र कथायें तो हैं ही, अपनी विचित्रता के कारण कौतूहल-वर्धक भी हैं। इस दृष्टि से चरित्रोपाख्यान मे आई सभी प्रकार की कथाओ—काम-कथाओ, प्रेम-कथाओ, शौर्य-कथाओ एव विनोद-कथाओ—का 'चरित्र' अभिधान उपयुक्त ही है। निस्सदेह इन विचित्र कथाओ मे वह अलौकिक तत्त्व विद्यमान नहीं, जिसके दर्शन अवतार-लीला अथवा 'चरित्र' मे होते हैं।

किन्तु चरित्रोपाख्यान मे चरित्र शब्द का प्रयोग इससे सीमित अर्थ मे भी हुआ है। इसका सर्वथा स्पष्ट उदाहरण अन्तिम चरित्र (४०४) मे मिलता है।

---

१. जे जे किसन चरित्र दिखाये।
दसम बीच सभ भाख सुनाये। —दशम ग्रथ, पृष्ठ २५४

ग्रन्थ समाप्ति पर चरित्रोपाख्यान लेखक ने चरित्र-लेखक को ही कथा का एक पात्र बनाया है । कोई राजा स्वय चरित्र बना कर स्त्रियो को सुनाया करता था ।[1] शिवामती नामक स्त्री ने उसे भी चरित्र दिखाने का इरादा किया ।[2] राजा शिवामती के रूप द्वारा छला गया । शिवामती ने यह बात अपने परिवार और सखी-वर्ग मे कह दी और अन्त मे अपने आप को लाछन से मुक्त करने के लिये कहने लगी कि मैं तो यो ही तुम्हारा मन देख रही थी । लोगो को इस प्रकार बहका कर उसने चरित्र-लेखक को लिखवा भेजा कि इस चरित्र को भी अपने ग्रथ मे सम्मिलित कर लीजिये .

> लोगन कह इह बिधि डहकाय । पिय तन पत्री लिखी बनाय ।
> मो पर यार अनुग्रह कीजै । इह भी चरित ग्रन्थ लिखि लीजै ।[3]

इस उपाख्यान मे आये चरित अथवा चरित्र शब्द से स्पष्ट है कि ग्रथ लेखक का चरित्र से अभिप्राय किसी स्त्री की छल कथा है ।

सक्षेप से हम कह सकते हैं कि चरित्रोपाख्यान मे चरित्र शब्द का प्रयोग व्यापक और सीमित दोनो प्रकार के अर्थों के लिए हुआ है । व्यापक अर्थों मे यह ग्रथ विचित्र कौतूहल-वर्धक कथाओ का सग्रह है । अर्थ की इस व्यापकता को ग्रहण किये बिना विनोद-कथाओ, प्रेम-कथाओ, पौराणिक आख्यानो आदि को इस कथा-सग्रह मे सम्मिलित करने का कोई उचित आधार नही मिलता । सीमित अर्थों में चरित्र शब्द स्त्री-चरित्र (उनके साहस, स्वभाव, साधन-सम्पन्नता आदि) का उद्घाटन करने वाली कथा का पर्याय है । कथारम्भ मे दिये गये वाक्यो को ध्यान मे रखते हुए चरित्र शब्द की यह परिभाषा समीचीन प्रतीत होती है । इस ग्रथ मे दी गई अधिकाश कथाओ की विषय-वस्तु भी इसी मत का समर्थन करती है ।

प्रबन्धात्मकता—ऊपर कहा जा चुका कि सभी चरित्र अपने आप मे स्वतन्त्र होते हुए भी एक बृहत्तर कथा-योजना के अग हैं । अत इनकी परीक्षा सामूहिक और स्वतन्त्र दोनो दृष्टियो से होनी चाहिये । ये सभी चरित्र चित्रसिंह राजा को उसके मत्री द्वारा एक विशेष लक्ष्य की सिद्धि के लिए सुनाये गये हैं । यह लक्ष्य है विमाता द्वारा लाछित राजकुमार हनुवन्तसिंह को प्राणदण्ड से मुक्त कराना । इसी लक्ष्य की सिद्धि के लिये लेखक एक विशेष प्रभाव उत्पन्न करना चाहता है । इसी प्रभाव को हम प्रकारान्तर से कथा का उद्देश्य कह सकते हैं । लक्ष्य और उद्देश्य का सन्तुलन ही किसी कथा कृति की सफलता की कसौटी बन सकता है ।

---

१ राजा आप चरित्र बनावत । लिखि लिखि पढ़ि इस्त्रियन सुनावत ।
—द० ग्र०, पृ० १३५८

२. अस करि इसै चरित्र दिखाऊँ । या भजि यारी सौं लिखवाऊँ ।
—द० ग्र०, पृ० १३५८

३. द० ग्र०, —पृ० १३५६

चरित्रोपाख्यान के लेखक के लिए कथा का उद्देश्य जितना महत्त्वपूर्ण है कथा का लक्ष्य उतना महत्त्वपूर्ण प्रतीत नही होता। कथा का उद्देश्य कथारम्भ से पहले ही उनके सामने है। वे मगलाचरण मे भगवती चण्डी का आवाहन करते हुए अपने उद्देश्य का कथन इस प्रकार करते हैं :

> अरघ गरभ नृप त्रियन को भेद न पायो जाय।
> तऊ तिहारी कृपा ते कछु कछु कहो बनाय।[1]

इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होने इस बृहत् कथा-सग्रह की रचना की है। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि लेखक अपने उद्देश्य की सिद्धि मे सफल रहा है। स्वतन्त्र चरित्रो का सामूहिक प्रभाव निश्चय ही हमारे इस कथन का समर्थन करता है। किन्तु विशुद्ध कथात्मक दृष्टि से यह उद्देश्य मुख्य कथा का अग नही बन सका। वस्तुत: सम्पूर्ण कथा-सग्रह म प्रभावमूलक अथवा उद्देश्यमूलक एक-सूत्रता तो है, कथामूलक एकसूत्रता नहीं। हमारे इस कथन की पुष्टि के लिए इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि लेखक ने मुख्य कथा अथवा मूल सूत्र को अन्त तक नही निभाया। मन्त्री राजा चित्रसिंह को कथा सुना रहा है इस बात का निर्वाह कवि कुछ दूर तक ही कर सका है। तत्पश्चात् कवि इन्हें ऐसा भूलता है कि बहुत समय तक उसे इनकी सुधि ही नही रहती। क्या मन्त्री अपने लक्ष्य मे सफल रहा? क्या राजकुमार प्राणदण्ड से मुक्त कराया जा सका? क्या दुश्चरित्रा विमाता को दण्ड मिला? इन सब प्रश्नों का कोई उत्तर हमे नही मिलता। दूसरे शब्द मे मुख्य कथा, जिसमें अनेक स्वतन्त्र, विशृ खल कथाओ को समेटने की शक्ति होती है, अधबीच ही छोड दी गई है। कथागठन की एकता न होने के कारण, चरित्रोपाख्यान सफल प्रबन्ध नहीं कहा जा सकता। अधिक से अधिक इसे प्रायः समान प्रभाव वाली कथाओ का सगठन कहा जा सकता है।

वर्गीकरण

विषय की दृष्टि से इन कथाओं को निम्नलिखित वर्गों मे बाँटा जा सकता है :

१. प्रेम-कथाएँ
२. शौर्य-कथाएँ
३. विनोद-कथाएँ
४. काम-कथाएँ अथवा छल-कथाएँ

---

१. दशम ग्रथ, पृष्ठ ८१३

प्रेमाख्यान

इन चरित्र-कथाओं में लगभग बारह कथायें ऐसी हैं जिन्हें प्रेम-कथा अथवा प्रेमाख्यान की संज्ञा दी जा सकती है। इनके नाम इस प्रकार हैं :

(१) हीर-राझा (चरित्र ९८)।
(२) सोहणी-महीवाल (चरित्र १०१)।
(३) सस्सी-पुन्नू (चरित्र १०८)।
(४) मिर्जा-साहिबाँ (चरित्र १२९)।
(५) सम्मी ढोला (चरित्र १६१)।
(६) माधवानल काम-कदला (चरित्र ९१)।
(७) रत्नसेन पद्मावती (चरित्र १९९)।
(८) यूसफ जुलैखाँ (चरित्र २०१)।
(९) कृष्ण राधिका (चरित्र १२)।
(१०) कृष्ण रुक्मिणी (चरित्र ३२०)।
(११) भर्तृहरि पिंगला (चरित्र २०९)।
(१२) नल दमयती (चरित्र १५७)।

इन प्रेम कथाओं के प्रेरणा-स्रोत पजाबी किस्सा-काव्य (१, २, ३, ४), पजाबी लोक-गाथा (१, २, ३, ४, ११), पजाबेतर लोक-गाथा (५, ७), हिन्दी कथा-काव्य (५ ६, ७), फारसी कथा-साहित्य (८) और भारतीय पुराण (९, १०, १२) हैं। काम-कथाओं ही के समान उसकी प्रेम-कथाओं के प्रेरणा-स्रोतो का वैविध्य लेखक के विस्तृत अध्ययन का परिचायक तो है ही, साथ ही उसकी असकुचित ग्रहण-शक्ति का भी साक्षी है। इतने विविध प्रेरणा-स्रोतों को निस्सकोच भाव से अपना सकने की क्षमता तत्कालीन साहित्य-क्षेत्र मे तो सर्वथा अलभ्य थी ही, परवर्ती साहित्य-क्षेत्र मे भी दुर्लभ ही रही।

लेखक ने इन प्रेम कथाओं को उपरिलिखित स्रोतों से ग्रहण कर उन्हें ज्यों-का-त्यों प्रस्तुत नहीं कर दिया। उन्होने आवश्यकतानुसार उचित काँट-छाँट, परिवर्तन, परिवर्धन आदि के अधिकार का पूर्ण प्रयोग किया है। परिणामस्वरूप एक तो सभी कथायें सक्षिप्त हो गई हैं। दूसरे उनके वातावरण, चरित्र-चित्रण आदि मे भी अन्तर आया है।

पुराण परम्परा—दशम-ग्रथ के लेखक के मन मे भारतीय पुराण-परम्परा के लिये कितना मोह है इसकी ओर कुछ सकेत उनके पौराणिक प्रबन्धो के सदर्भ मे हो चुका है। पजाबी किस्सा-काव्य अथवा पजाबी लोक-गाथा पर आधारित प्रेम-कथाओं का पुनर्कथन करते हुए उन्होने उनमे से कुछ कथाओं को भारतीय पुराण के साथ सम्बन्धित करने का यत्न किया है।

पजाब-क्षेत्र की सभी प्रेम-कथाओ के पात्र निरपवाद रूप से मुसलमान हैं। हिन्दू प्रेमियो की कोई कथा पजाब मे लोकप्रिय नही हुई—यह अपने आप मे चिंतन का विषय है। बहुत प्रत्यक्ष कारण तो यह प्रतीत होता है कि मुसलमानो के अभ्युदय के कारण हिन्दू-कन्याओ के समक्ष समस्या प्रेम स्वातन्त्र्य की नही थी, अपनी लज्जा की रक्षा की थी। अत पारिवारिक नियत्रण बधन का नही रक्षा का ही साधन था। एक और कारण भी है। इस्लाम पुरुष-समाज के लिये समानता का जो सदेश लेकर आया वह नारी-समाज के लिये नही। भारतीय शूद्र वर्ग ने इस्लाम की शरण ग्रहण करने मे वर्ण-व्यवस्था के कसाव से जिस प्रकार की मुक्ति पाई वैसी ही मुक्ति इन नव मुस्लिम परिवारो के नारी-वर्ग को नही मिली। इन नव-मुस्लिम परिवारो की स्थिति बडी विचित्र थी। एक नई दुविधा का प्रवेश उनके घरेलू जीवन मे हो रहा था। सम्पूर्ण नव-मुस्लिम जनता मे इधर तो अपूर्व स्वातत्र्य का सचार हो रहा था पर उधर इस जन-वर्ग का एक भाग प्राचीन बधनो का भार वहन किये जा रहा था। पजाबी किस्सा-काव्य मे नारी का परम्परागत बधन के प्रति विद्रोह इसी दुविधा का परिणाम है। हमारे इस कथन की अतिरिक्त पुष्टि इस बात से भी होती है कि इन लोक-कथाओ के सक्रिय पात्र नारियाँ है, पुरुष नही। दूसरे, लगभग सभी प्रेम कथाओ के पात्र नव-मुस्लिम हैं। हीर, राँझा, सोहणी, महीवाल, इनमे कोई भी स्पष्टतः मुस्लिम नाम नही। ससी और पुन्नू तो सस्कृत के शशि और पूर्ण का अपभ्रश-रूप हैं। केवल मिर्जा और साहिबाँ मे नव मुस्लिम परिवार नाम-सस्करण मे अपनी पूर्व-परम्परा से कुछ दूर हटता हुआ प्रतीत होता है।

गुरु गोविन्दसिंह के समय तक स्वातत्र्य और विद्रोह का भाव हिन्दू जनता मे भी जाग रहा था। अत इन कथाओ को अपने सास्कृतिक ताने-बाने मे समाविष्ट कर लेने के लिये समय अनुकूल था। विद्रोह चाहे किसी क्षेत्र मे भी हो, अपनी सामर्थ्यानुसार प्रतिष्ठित सत्ता को जर्जरित करता ही है। हीर-राझा आदि प्रेमियो की कथायें पजाब मे इतनी लोकप्रिय हुईं—इससे तत्कालीन जनसाधारण की चित्तवृत्ति की सूचना मिलती है। गुरु गोविन्दसिंह ने उन्हे अपनाकर, उन्हें पुराण-परम्परा के अनुसार ढाल कर, इस प्रवृत्ति को स्वीकार किया है।

जिन दो प्रेम-कथाओ को उन्होंने पुराण-परम्परा के अनुसार ढाला है, वे हैं हीर-राझा और ससी पुन्नू। हीर और राझे को उन्होने मेनिका और इन्द्र का अवतार बनाया है जिन्हे कपिल मुनि के अभिशाप के कारण मर्त्यलोक में आना पडा है।[1] ससी भी चरित्रोपाख्यान के अनुसार कपिल मुनि के वीर्यपात से उत्पन्न हुई।

---

१ इन्द्रराय की नगर अपछरा इक रहै।
मैन कला तिह नाम सकल जग यौ कहै।
ताको रूप नरेस जु कोऊ निहारही।
हो गिरै धरनि पर भूमि मैन सर मारही।

(शेष अगले पृष्ठ पर)

हीर के मर्त्यलोक के माता-पिता और राझा के पालक माता-पिता मुसलमान थे, किन्तु सस्सी के पालक माता-पिता को भी पजाबी किस्सा परम्परा के विपरीत हिन्दू दिखाया गया है। लेखक एक मुस्लिम घराने की कथा को हिन्दू वातावरण के अनुसार ढाल रहा है। इस बात का कुछ सकेत ऐसे स्थलो पर मिल जाता है जहाँ मूल कथा का वातावरण अनायास ही कवि के प्रयत्न की अवहेलना करता हुआ उपस्थित हो जाता है। उदाहरणार्थ वन मे पुन्नू की मृत्यु होने पर उसके लिये वही 'कब्र' खोदी जाती है। बाद मे सस्सी भी उसी मे लीन हो जाती है।

मूल कथा का एक और तत्त्व जिसके अवशेष इन कथाओ मे मिलते हैं वह है सूफी सिद्धान्त 'फना'।[1] गुरदास गुणी का क़िस्सा (कथा हीर-राझे की) का विवेचन करते हुए हम देख चुके हैं कि सूफी विचार उन दिनो एक व्यापक उदारान्दोलन का भाग बन रहे थे। हीर सूफी सिद्धातो का प्रयोग पारिवारिक बधनो के प्रति विद्रोह करने के लिए करती है। हमारे कवि ने सभी सूफी सिद्धान्तो को अपनी कथाओ मे नहीं अपनाया। वे केवल 'फना' को ही अपना सके हैं। फना अथवा 'लय' का सिद्धान्त, भारतीय परम्परा से मेल खाने के कारण इन प्रेम-कथाओ के 'पुराणीकृत' रूप मे स्थान पाने का सर्वथा अधिकारी रहा है। इस प्रकार ये कथायें हमारी परम्परा का भी अग बन गई हैं और उनका मुस्लिम-परम्परा से भी सम्बन्ध बना रहा है।

चौ०—तीने समा कपिल मुनि आयो। औसर जहा मेनका पायो।
तिह लखि मुनि बीरज गिरि गयो। चपि चित मै स्थापित तिह भयो।
तुम गिरि मिरत लोक मै परो। जूनि स्यान जाट की धरो।
हीर आपनो नाम सदावो। जूठ कूठ तुरकन की खावो।
दो०—तब अबला कपत भई लके परि कै पाय।
कौ हू दोष उधार मम सो दिज कहो उपाय।
चौ०—इन्द्र जु मृत म्डल जन जै है। राझा अपनो नाम कहै है।
तो सो अधिक प्रीति उपजावै। अमरावती बहुरि तुहि ल्यावै॥
—दशम ग्रथ, पृष्ठ ६४२-४३

एक दिवस स्रो कपिल मुनि इकठा कियो पयान।
हेरि अप्सरा बसि भयो सो तुम सुनो सुजान।
रभा नामा अप्सरा ताको रूप निहारि।
मुनि को गिरयो तुरत ही बीरज भूमि मझार।
गिरयो रेन मुनि को जबै रभा रह्यो अधान।
डारि सिंधु सरिता विसै सुर पुर कर्यो पयान।
मळदत्त सो नैन निहारी। तदवे काढि सुता करि पारी।
ससिया सरया (सज्ञा) ताकी धरी। भाति भाति सों सेवा करी।
—दशम ग्रथ, पृ० ६५४-५५

१. (क) राझन के ही रूप वह भई। ज्यों मिलि बूद वारि मों गई।
... .
जैसे लकरी आग मैं परत कई ते आय।
पलक द्वैक ता मै रहे बहुरि आगि है जाय। —पृ० ६४३
(ख) कवर निहारि चकित चित भई।
ताही बिखै लीन है गई।
जन जन के सग मिलि रह्यो तनु पिय को सरबग। —पृ० ६५८

इस रूप मे ढाली हुई कथाओ की एक विशिष्टता उनका सुखमय अन्त है। पंजाब की सभी प्रेम-कथाओ का पर्यवसान मृत्यु मे हुआ है। इसका एक कारण तो ऐतिहासिक परिस्थितियो मे निहित है। अधिकृत सत्ता के विरुद्ध उठते हुए विद्रोह की सफलता अभी निश्चित नही हुई थी। चरित्रोपाख्यान मे सम्मिलित सोहणी महीवाल और मिरजा साहिबां का अन्त भी प्रेमियो की मृत्यु मे ही हुआ है। किन्तु 'हीर-रांझा' और 'सस्सी-पुन्नू' को पौराणिक परम्परा के अनुसार ढाल कर कवि ने भारतीय काव्य-परम्परा के अनुसरण पर उनका अन्त आनन्दमय ही किया है।[१] इन कथाओ का आनन्दमय अन्त करने मे कुछ हाथ सभवत उस आशापूर्ण वातावरण का भी रहा हो जिसमें तत्कालीन जनता को अधिकृत सत्ता की अन्तिम पराजय निश्चित-सी दिखाई देने लगी थी। गुरुजी के इस आशावादी दृष्टिकोण का प्रभाव दूसरी कथाओ पर भी पडा है। रत्नसिंह और पद्मिनी की कथा का अन्त रत्नसिंह की मृत्यु और पद्मिनी के जौहर मे हुआ—इतिहास, लोक-गाथा और सूफी परम्परा इस विषय मे एकमत है। चरित्रोपाख्यान मे इस कथा का अन्त भी सुखमय है। कवि ने रत्नसेन, पद्मिनी, गोरा, बादल आदि को इसी ससार मे चिरतन सुखलाभ करते हुए दिखा कर अपनी कथा की समाप्ति की है। यह तथ्य भी गुरु गोविन्दसिंह के यत्नो द्वारा नवजात आशामय वातावरण का ही परिणाम एव प्रमाण समझा जाना चाहिये।[२]

---

१. (क) रांझा हीर मिलन जब भये।
चित के सकल सोक मिटि गये।
हिया की अवधि बीति जब गई
बाट दुहूँ सुरपुर की लई ॥३०॥
रांझा भयो सुरेस तह भई मैनका हीर
या जग में गावत सदा सब कवि कुल जस धीर ॥३१॥ दशम ग्रथ, पृ० ६४३-४४

(ख) पिय हित देह सबन (सस्सी) त्रिय दई।
देव लोक भीतर ले गई।
अर्धासन बासव तिह दीनो।
भांति-भांति सौ आदर कीनो

दोहरा—देव बधून अपच्छरन छायो बिवान चढ़ाय।
दै जैकार अपार हुअ हरखे मुनि, सुर राय। —पृष्ठ ६५८

२. रत्नसेन-पदमावती के चरित्र का अन्त इस प्रकार हुआ है :—
गढ़ पर जबै चढाई भई। सऊअन काढि कृपानै गई।
ता पर पहुँचि खड्ग कह मारयो। एकै धाम मार ही डारयो।
धुकि धुकि परे धरनि भट मारे। जनुक करवतन बिरछ बिदारे।
जुझि जुझि मरे अधिक रिस भरे। बहुरि न दिख्यत ताजियन चरे।
जैन दावदी (जैनुल आबदीन) साह को तब ही दयो भजाय।
रतन सैन राना गये गड इह चरित दिखाय।
गोरा बादल को दियो अति धन छोरि भण्डार।
ता दिन ते पदुमिनि भये बाढ़ी प्रीति अपार।
—दशम ग्रथ, १०६१-६२

जिन कथाओं को ग्रंथकर्त्ता ने पौराणिक सांचे में ढालने का यत्न नहीं किया, वहाँ भी भारतीय पुराण के पात्रों का प्रकरण के अनुसार समावेश हो गया है। इसका एक मनोरंजक उदाहरण यूसुफ जुलेखाँ की प्रेम-कथा में मिलता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस सामी प्रेम-कथा में पौराणिक वातावरण खप नहीं सकता है। तो भी, इस कथा को अपनी श्रोता-मण्डली के लिये सहज-ग्राह्य बनाने के उद्देश्य से उन्होंने इस कथा में भी पौराणिक पात्रों का समावेश कर दिया है। इससे कथा के कलात्मक सौंदर्य को भले ही कुछ ठेस पहुँची हो, किन्तु जिस प्रसंग में पौराणिकता का ग्रहण हुआ है, उसका भाव-सौंदर्य अवश्य ही समृद्ध हो उठा है। जुलेखाँ चित्रशाला में यूसुफ से काम प्रस्ताव करती है। यूसुफ का उत्तर इस प्रकार है

धरमराय की सभा जबै दोऊ जाइ हैं।
कहा वदन लै तासै उत्र दियाइ है।
इन वातन को तें तिय कहा विचारई।
हो महा नरक के बीच न मोको डारई।
सालग्राम परमेसर इही गति तै भये।।
दस रावण के सीस इही वातन गये।
सहस भगन वासव याही ते पाइयो।
इन वातन तै मदन अनंग कहाइयो।
इन वातन ते चन्द्र कलंकित तन भये।
सुंभ असुंभ असुरिन्द्र सदन जम के गये।।[1]

प्रेम सम्बन्धी विषयमूलक दृष्टिकोण—इन प्रेम-कथाओं को, गुरु गोविंदसिंह ने केवल पौराणिक रूप ही नहीं दिया, बल्कि इनकी प्रकृति में, इनके दृष्टिकोण में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन भी कर दिया है। पंजाब की प्रेम-कथाओं को कभी-कभी विद्रोह-कथाओं की संज्ञा भी दी जाती है। गुरु गोविन्द सिंह ने इन कथाओं में समाविष्ट विद्रोह-भावना को एक सिरे से अस्वीकार तो नहीं किया, किन्तु हर प्रेम कथा को विद्रोह कथा के रूप में प्रस्तुत करने का मोह भी उन्होंने नहीं दिखाया। उन्होंने प्रेम बाधक शक्तियों के विषय में बड़ा वस्तुपरक और असंकीर्ण दृष्टिकोण अपनाया है।

गुरदास गुणी द्वारा लिखित क़िस्से का विवेचन करते समय हम देख चुके हैं कि वहाँ पारिवारिक नियंत्रण को प्रेम-मार्ग की मुख्य बाधा के रूप में प्रस्तुत किया गया है। बीच बीच में धार्मिक और राजनीतिक विधान गौण-बाधाओं के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। पंजाब की दूसरी प्रेम-कथाओं—मिर्जा साहिबाँ, सोहणी महींवाल– में भी शाठ्य की प्रतिष्ठा पारिवारिक बन्धन में की गई है। सस्सी पुन्नूँ में स्थिति कुछ भिन्न है। सस्सी पुन्नूँ के विवाह तक पारिवारिक अनुशासन कोई बाधा उपस्थित नहीं करता। विवाहोपरान्त पुन्नूँ के भाई उसे मदिरापान द्वारा बेसुध करके सस्सी के देश से दूर अपने देश में ले आते हैं। उनकी इस शठता का कोई सुनिश्चित परिस्थिति जन्य कारण दृष्टिगत नहीं होता।

---

१. दशम ग्रंथ, पृष्ठ १०१६

हम देख चुके हैं कि पारिवारिक नियत्रण के प्रति विद्रोह का जो भाव पजाबी मुस्लिम जनसाधारण मे था, वह पजाबी हिन्दू जनता मे नही था। अत हमारा कवि पारिवारिक अनुशासन के प्रति विद्रोह करने की वर्गगत मजबूरी से मुक्त था। वह प्रेम की समस्या के प्रति अपेक्षाकृत अधिक विषयगत दृष्टिकोण अपना सकता था। उसने ऐसा ही दृष्टिकोण अपनाया भी। उसकी प्रेम-कथाओ मे यह प्रश्न दो प्रकार से उठता है

(१) क्या प्रेम मार्ग मे बाधाओ का आना अनिवार्य है ?

(२) क्या प्रेममार्ग की एक मात्रा बाधा परिवार की परम्परानुसारिणी इच्छा है ?

इन प्रश्नो को इस रूप म उठाना या उनका सीधा उत्तर देना कवि-कर्म का अग नही। सो भी उनके द्वारा लिखी प्रेम-कथाओ को पढकर ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने इन दोनो प्रश्नो का उत्तर नकार मे दिया है। हीर-रांझा, कृष्ण-राधिका और सम्मी-ढोला मे प्रेमास्वादन के मार्ग मे कोई बाधा है ही नही। पारिवारिक सत्ता का प्रयोग सतान की प्रेम भावना को कुण्ठित अथवा अवरुद्ध करने के लिये ही हो—ऐसी कोई अपरिहार्य विवशता गुरु गोविन्दसिंह को स्वीकार नही। जहाँ बाधायें उपस्थित होती भी हैं, वहाँ पारिवारिक अनुशासन उनमे से एक है। प्रेमी अपनी सभी कुण्ठाओ का दोष परिवार के माथे लगा दें—यह मत लोकप्रिय और सहजग्राह्य होकर भी एकागी है, अत यह जीवन की बहुमुखी विविधता को अपने आप मे समेट लेने मे असमर्थ है। उनके द्वारा लिखी केवल तीन प्रेमकथाओ मे पारिवारिक बन्धन बाधक शक्ति के रूप मे उपस्थित होते हैं। शेष सभी प्रेमकथाओ मे द्वन्द्व के कारणो की तालिका देना अनुपयुक्त न होगा

हीर-राँझा	—कोई द्वन्द्व नहीं।
नल-दमयन्ती	—कोई द्वन्द्व नही।
कृष्ण-राधिका	—कोई परिस्थितिजन्य बाधा नही। केवल मनोवैज्ञानिक आग्रह है।
सम्मी ढोला	—प्रेम मार्ग मे कोई बाधा नही। नायक-नायिका का विवाह शैशव मे ही हो जाता है। केवल गौने के समय सौतिया डाह के कारण द्वन्द्व उपस्थित होता है।
सोहणी महीवाल	—पारिवारिक अनुशासन।
मिर्ज़ा-साहिबाँ	—पारिवारिक अनुशासन।
कृष्ण रुक्मिणी	—पारिवारिक अनुशासन।
ससी पुन्नूँ	—सौतिया डाह।

माधवानल कामकदला—राजाज्ञा ।

रत्नसेन पद्मावती —राजनीतिक-धार्मिक ।

यूसुफ जुलेखां —यहां द्वन्द्व नही, अन्तर्द्वन्द्व है । दास यूसुफ स्वामिनी जुलेखां का प्रेम-प्रस्ताव स्वीकार करने मे सकोच करता है ।

भर्तृहरि-पिंगला —आध्यात्मिक

इनके अतिरिक्त कतिपय ऐसी कथाओ मे जिन्हें विशुद्ध प्रेमकथा की सज्ञा देना हमने उचित नही समझा, भिन्न प्रकार के द्वन्द्वो का उल्लेख हुआ है । एक कथा मे बाधा का सृजन तत्कालीन हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य द्वारा हुआ है । एक अर्ध-ऐतिहासिक अर्ध-काल्पनिक कथा (चरित्र २३६) मे किसी बीरमदेव नाम राजकुमार पर अलाउद्दीन खां की कन्या के आसक्त होने का उल्लेख है । दिल्लीपति अपनी कन्या की इच्छा को ठुकरा नही देता । वह बीरमदेव को इस्लाम कबूल करने के लिए कहता है । बीरमदेव द्वारा यह प्रस्ताव स्वीकार न करने पर युद्ध होता है । बीरमदेव अपने राज्य और प्राण का बलिदान कर देता है । इस कथा द्वारा कवि ने प्रेम-समस्या को तत्कालीन यथार्थ के साथ जोड दिया है ।

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि कवि ने प्रेम की समस्या को पजाबी किस्साकारो के सकुचित दृष्टिकोण से नही देखा । प्रेम उनके लिए विवाह पूर्व की ही समस्या नही । विवाहोपरान्त भी प्रेममार्ग मे बाधायें उपस्थित होती हैं । ये बाधायें माता-पिता द्वारा मान्य पूर्व-प्रतिष्ठित परपरा के कारण ही उत्पन्न नही होती । प्रेम एक सर्वग्राही समस्या है, इसके कारण भी बहुविध हैं । ये मनोवैज्ञानिक भी हैं और आध्यात्मिक भी, सामाजिक (बहु-विवाह) भी हैं और राजनीतिक भी । परिस्थितियो की विशाल प्रवाहिणी मे बहता हुआ मानव कब, कहाँ इनसे दो चार हो, कहा नही जा सकता । ये परिस्थितियाँ कुछ तो पूर्व परपरा की देन हैं और कुछ तत्कालीन यथार्थ का प्रसाद । कवि के दृष्टिकोण की इस असकीर्णता का कारण है—भारतीय पूर्व-परपरा से परिचय, सामयिक सत्य को समझने की क्षमता और सतुलित जीवन-दृष्टि ।

रूप और प्रेम—चरित्रोपाख्यान की शिल्पविधि की विवेचना करते हुए हम देखेंगे कि इन उपाख्यानो का आरम्भ साधारणत देश और पात्रो के नाम, रूप, गुण आदि के परिचय से होता है । विस्तृत रूप वर्णन हमारे ग्रथकर्त्ता को कभी प्रिय नही रहा, तो भी नायिका के रूप की सक्षिप्त एव सश्लिष्ट झाँकी इन उपाख्यानो का प्राय अभिन्न अग है । प्रेम कथाओ मे कवि ने अपनी इस रुचि पर नियत्रण रखा है । हीर, सोहणी, साहिबां, कामकदला, राधिका, रुक्मिणी, पिंगला के शारीरिक सौंदर्य के विषय मे कवि सर्वथा मौन है । सस्सी, सम्मी और पद्मावती के रूप के विषय मे एकाध सकेत अवश्य मिलता है, किन्तु उनके रूप का औपचारिक वर्णन

इन आख्यानो मे नही मिलता।[1] प्रसंग-निरपेक्ष रूप-वर्णन केवल जुलेखां और दमयंती का हुआ है।[2] सारांश यह है कि प्रेमकथाओं मे कवि की दृष्टि प्रेम के आन्तरिक पक्ष पर अधिक रही है, उसके वाह्य उपादान रूप, शृंगार आदि पर नहीं। बनाव-सिंगार का वर्णन जहाँ भी हुआ है, पुरुष-प्रसंग मे हुआ है, नारी-प्रसंग मे नहीं।

रूप नहीं, रूप का प्रभाव—किन्तु उपर्युक्त बात से यह निष्कर्ष निकालना भ्रामक होगा कि प्रेम-कथाओं मे शारीरिक सौंदर्य की अवहेलना की गई है। रूप के अस्तित्व को अस्वीकार करना हमारे ग्रन्थ-कर्ता का अभीष्ट नहीं। प्रेम के प्रथम जागरण का कारण उन्होंने भी रूप को ही माना है। केवल, इन कथाओ मे उन्होंने रूपवर्णन की अपेक्षा रूप के प्रभाव का वर्णन करना अधिक उपयुक्त समझा है। इस प्रकार उन्होंने अपने समय की प्रमुख काव्य-प्रवृत्ति नखशिख-वर्णन के प्रति अरुचि भी प्रकट कर दी है और प्रेम-कथा मे प्रेम और रूप का अनुपात भी बिगड़ने

---

१. (क) ससी का रूप-वर्णन उसके नाम का महत्व प्रतिपादित करने में :—
मृगियहि ते जा के सरस नैन बिराजत स्याम।
जीति लई ससि की कला याते ससिया नाम।
—दशम ग्रंथ, पृष्ठ ६५५

(ख) सम्मी का रूपवर्णन केलि-प्रसग में :—
सम्मम सग न कसि रति करै। चित मैं इहै विचार बिचरै।
ऐंचि हाथ ता को न चलावै। जिनि कटि टूटि प्रिया की जावै।
—द० ग्रं०, पृ० १०५१

(ग) पद्मावती का रूपवर्णन प्रिय-रक्षा प्रसग में :—
जब वह सुंदरी पान चबा। देखी पीक कण्ठ में जावै।
ऊपर भवर भ्रमहि मतवारे। नैन बान दोऊ बने कटारे।
... ...
एक वस्त्र हमरो तुम लीजै। प्रथम पातकी मौ धरि दीजे।
ता पर भवर गुंजारत जैहैं। भेद अभेद लोग नहि लेहैं।
... ...
पदमिनी के पट पर घने भवर करै गुंजार।
लोग सबै पदुमिनी, लखे बस्त्र न सकै बिचारि।
—दशम ग्रन्थ, पृष्ठ १०१०-११

२. (क) रूम सहर के साह की सुता जलीखाँ नाम।
किधौं काम की कामनी किधौं आप ही काम।
अति जोबन ताके दिपै सब अगन के साथ।
दिन आसिक दिनपति रहै निसु आसिक निसनाथ।
—द० ग्रं०, १०६५

(ख) नैन हरन के हरे बैन पिक के हरि लीने।
हरि दामनि की दिपति दसन दारिन बस कीने।
कीर नासिका हेरी कदलि कंचन तें हारे।
दो दपे जलज जल माहि आँखि तखि लजत तिहारे।
—दशम ग्रंथ, पृष्ठ १०४४

नही दिया। रूप के प्रभाव के चित्र बहुत अनूठे बन पडे हैं। यहाँ दो उदाहरण देना अनुपयुक्त न होगा :

(१) बैठी हुती साजि कै सिंगार सब सखियन मे
याही बीच कान्ह जू दिखाई आनि दै गये।
तब ही ते लीनो है चुराय चित मेरो माई
चेटक चलाइ मानो चेरी मोहि कै गये।
कहा करौ कित जाँउ मरौं किधो विखु खाउँ
बीस बिस्वे मेरे जान बिज्जू सो डसै गये।
चखन चितोन सो चुराय चितु मेरो लियो
लटपटी पाग सो लपेटि मनु लै गये।

—दशम ग्रथ, पृष्ठ ८२५

(२) रीझ रहो अबला मन मै अति ही लखि रूप सरूप की धानी।
स्यान छुटी सिगरी सभ की लखि लाल को ख्याल भई अति यानी।
लाज तजी सजि साज सभै लखि हेरि रही सजनी सभ स्यानो।
ही मन होरि रही न हट्यो बिनु दामन मीत के हाथ बिकानी॥
अग सभै बिनु सग सखी सिव को अरि आनि अनग जग्यो।
तब तें न सुहात कछू मुहि को सभ खान औ पान स्यान भग्यो।
झटकौ पटकौ चित ते भट दे न छुटे इह भाँति सो नेह लग्यो।
बलि हौ जु गई ठगको ठगनै ठग मै न ठग्यो ठग मोहि ठग्यो॥

—दशम ग्रथ, पृष्ठ ६५७

विरह—इन प्रेम-कथाओ मे जहाँ रूपवर्णन नही, वहाँ चरित्रोपाख्यान की एक और विशिष्टता—केलिवर्णन—पर भी कडा नियत्रण रखा गया है, केलि-प्रसग इन कथाओ मे भी एकाध स्थान पर आ गया है, किन्तु सामान्यत इन कथाओ मे विरह का रग प्रधान है। जहाँ कही प्रियवियोग का प्रसग आया है कवि ने कथा प्रवाह को थोडा रोक कर भी उसका अपेक्षाकृत विस्तृत वर्णन करना उचित समझा है। माधवानल के परदेश गमन पर कामकन्दला के अधैर्य को कवि ने इस प्रकार प्रकट किया है

आजु सखी मै यौ सुन्यो पह फाटत पिय गौन।
यह हियरे झगरा पर्‌यो पहिले फटिहै कौन॥२१॥

माधव वाच। चौपई— तुम सुख सो सुदर ह्याँ रहो।
हत को वेगि बिदा मुख कहो।
हमरो कछू ताप निह करियहु।
निति राम को नाम समरियहु॥२२॥

दोहरा— सुनत वचन बामा तबै भूमि परि मुरछाइ।
जनु घायल घाइन लगे गिरै उठै बरराइ॥२३॥

सोरठा— अधिक बिरह के सग पीत बरन कामा भई।
रक्त न रहियो अग चल्यो मीत चुराय चित ॥२४॥

दोहरा— टाँक तोल तन न रह्यो मासा रह्यो न मास।
बिरहिन को तीनो भले हाड चाम अरु स्वास ॥२५॥
अति कामा लोटत धरनि माधवानल के हेत।
टूटो अमल अफीम यहि जनु पसवारे लेत ॥२६॥
... ...

चौपई— खण्ड खण्ड के तीरथ करिहौ।
वारि अनेक आगि मे बरिहौ।
कासी बिखै करवतिहि पैहौ।
ढूंढि मीत तो कौ तऊ लैहौ ॥२८॥
... ...

दोहरा— जो तुमरी बाछा करत प्रान हरै जम मोहि।
मरे परात चुरैल ह्वै चमकि चितैहौ तोहि ॥३०॥
... ...

साच कहत है बिरहनी रही प्रेम सौ पागि।
डरत बिरह की अगनि सौ जरत काठ की आगि ॥

—दशम ग्रथ, पृष्ठ ९२६-२७

एकनिष्ठता तथा कर्मण्यता

इन प्रेमकथाओ का तीसरा विशेष गुण नारी पात्रो का गरिमामय चरित्र-चित्रण है। प्रेम ने जैसे उनके चाचल्य एव उनकी अनेकोन्मुखता को जला कर राख कर दिया है। कामातुरा नारियो के पापाचार, उनके छलछिद्रो को अनावृत्त करने मे कवि जितना निर्मम है, प्रेमाख्यानो की नायिकाओ की एकनिष्ठता को चित्रित करने मे वह उतना ही श्रद्धापूर्ण है। इन नारियो के चरित्र की एकाग्रता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि ग्यारह प्रेमकथाओ मे से आठ कथाओ का कोई शठनायक नही। केवल हीर-राझा, रत्नसेन-पद्मावती और कृष्ण-रुक्मिणी मे शठनायक का उल्लेख है। हीर-राझा का खेडा तो बहुत दुर्बल पात्र है। रत्नसेन-पद्मावती मे शठ पात्र से जूझने की योजना नायिका स्वय बनाती है और कृष्ण-रुक्मिणी कथा के शठनायक को भी इतना अवसर नही दिया जाता कि वह अपना प्रेमनिवेदन कर सके। किसी भी कथा में किसी पात्र का पग प्रेममार्ग पर एक क्षण के लिए भी विचलित होता दृष्टिगत नही होता। इन प्रेमदग्ध नारियो के चरित्र की एकनिष्ठता का इससे बढकर और क्या प्रमाण होगा कि वे प्रिय के चले जाने पर वृद्धावस्था तक उनकी प्रतीक्षा करती हैं (जुलैखाँ)[1]। प्रिय की मृत्यु की सूचना पाकर ही प्राण त्याग

---

१. तरुन भयो यूसफ अवला वृद्धित भइ।
हो ताके चित ते रीति प्रीति की नहि गई।

(शेष अगले पृष्ठ पर)

देती है (कामकंदला),[1] प्रिय की कब्र में जिंदा दफन होने को प्रस्तुत है (सस्सी)[2] और परलोक में उसका अनुसरण करने के लिये अपने हाथों अपने वक्ष में छुरा घोंप लेती है।[3]

प्रेम उन्हें केवल प्रतीक्षा कर सकना अथवा प्रिय की मृत्यु पर मरना ही नहीं सिखाता, अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये कर्मण्य भी बनाता है। ऐसी कर्मण्यता का विस्तृत उल्लेख तो शौर्य-कथाओं के प्रसंग में आयेगा। यहाँ केवल इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि प्रेम ने उनके चरित्र को कुछ ऐसा बल प्रदान किया है कि उनमें पुरुष-पात्रों की अपेक्षा अधिक उपक्रम-क्षमता (initiative) आ गई है। जब प्रेमी-द्वय नदी के विभिन्न तटों पर रहते हैं तो तैरना न जानने पर भी एक मटिया का सहारा लेकर नदी पार करने का बल नारी-पात्र ही बटोरती है (सोहणी), परपुरुष के साथ विवाह के उपस्थित होने पर बचाव की युक्ति भी स्त्री ही सोचती है (साहिबाँ,

---

मारि मृगन यूसफ तह इक दिन आइयो।
पूछन के मिस ताको हाथ लगाइयो।
बान ताज जुत बस्त्र बिरह बाला जर्यो।
हो, सो अन्तर बसि रह्यो सो ताते उरर्यो।

—दशम ग्रंथ, पृष्ठ १०६६

१. अथिन (अतिथि) मेरउ सजि आपु नृप गयो बिप्र के काम।
जह कामा लोटत हुती लै माधव को नाम।
चौपाई—जाते इहै बचन तिन कह्यो।
माधव खेत हेत तव रह्यो।
सुनत बचन तब ही मरि गई।
नृप लै इहै खबरि दिज दई।

—दशम ग्रंथ, पृष्ठ ६२६।

२. कबुर निहारि चकित चित भई।
ताही बिखै लीन ह्वै गई।
मरन सभन के मूँड पै सफल मरन है ताहि।
तनक बिखै तन को तजै पिय सों प्रीति बनाइ।
हत गाडयो जह तुम मिले आग मिल्यो सरवग।
सभ किछु तजि गृह को चल्यो प्रान प्यारे सग।

—दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ६५८

३ किनहूँ बार गुरज को कीनो।
खेत मारि मिरजा को लीनो।
प्रथम नाम मिरजा को कर्यो।
बहुरो जाय साहिबहि धर्यो।
बैठे तिसी बिरछ तर आइ।
तह तिन दुहूँअन रैनि बिताइ।
कमर भ्रात के की तुरत जमधर लइ निकारि।
कियो पयानो मीत पहि उदर कटारी मारि।

—दशम ग्रंथ, पृष्ठ १००७

रुक्मिणी) और पति के बन्दी होने पर युद्ध सचालन का भार भी स्त्री ही अपने कधों पर लेती है (पद्मिनी)। कामकथाओ मे नारी के प्रति जो अन्याय हो गया था, उसकी क्षति पूर्ति इन कथाओ मे हो गई है। काम-कथाओ मे नारी हृदयहीन-सी प्रतीत होती है। वह अपनी कामतृप्ति के लिए और पापाचार को छिपाने के लिये पति, पिता, पुत्र, प्रेमी सब की हत्या कर सकती है—यहाँ तक कि अपनी भी। प्रेम-कथाओ मे नारी हृदयहीन नही। वह अपने प्रिय से प्रेम करती है, दूसरो से घृणा नही। इन प्रेम-कथाओ मे दो स्थानो पर नारी को अपने प्रिय और अपने भ्राता के बीच युद्ध का दर्शक बनना पडा है। दोनो स्थानो पर उसने अपने भाई के साथ अन्याय नही होने दिया। एक स्थान पर तो वह भाई को बचाने की चेष्टा मे ही अपने प्रिय की मनचाही हत्या करवा बैठती है।[1]

शौर्य-कथायें

चरित्रोपाख्यान मे जिन कथाओ को शौर्य-कथा की सज्ञा दी जा सकती है, वे निम्नलिखित हैं :—

१. चरित्र ५२—इस आख्यान मे सूर्यवशी राजा विजयसिंह की दुहिता का अपने प्रिय राजा सुभटसिंह से युद्ध वर्णित है।

२. चरित्र ६५—बटमार मित्रसिंह की पत्नी अपने पति को शत्रुओं से मुक्त करवाती है।

३. चरित्र ९६—मरगजोहद नामक स्थान के शासक बैरमखां पठान पर शत्रु आक्रमण करते हैं। बैरम खां भाग जाना चाहता है। उसकी पत्नी गोहर बेगम

१ (क) कृष्ण रुक्मिणी कथा में —

तब रुक्मी पहुँचत भयो जाई। अधिक कृस्न सौ करी लराई।
भांति भाँति तन बिसिख प्रहारे। हारयो बडे कृस्न नहि हारे।
... .

बैरम को बाँध कर मोहरे में डाल देती है। स्वयं शत्रुओं से जूझती है और उन्हें परास्त करती है।

४. चरित्र १०२—कैकेयी रणक्षेत्र में दशरथ के रथ का बड़ी कुशलता से संचालन करती है।

५. चरित्र १२२—काहलूर नरेश अभय सांड (सिंह) का पठानों से युद्ध होता है। अभयसिंह की मृत्यु के पश्चात् कुंकम देवी और पनसर देवी नामक पत्नियों ने शत्रुओं से लोहा लिया और वीर-गति प्राप्त की।

६. चरित्र १२३—सुरासुर-युद्ध में मोहिनी द्वारा असुरों के छले जाने की कथा इस चरित्र में कही गई है। इस चरित्र में युद्ध-प्रसंग को ही महत्व दिया गया है।

७. चरित्र १२५—एक शूरवीर निशाचर के इन्द्रमती वेश्या द्वारा छले जाने की कथा इस चरित्र में कही गई है। इस चरित्र में भी युद्ध-प्रसंग को ही महत्त्व प्राप्त हुआ है।

८. चरित्र १२६—युद्ध में पत्नी पति की सहायता करती है। पति के वीरगति पाने पर स्वयं सती हो जाती है।

९. चरित्र १२८—मारवारपति उग्रदत्त की पत्नी मानवती नर-वेश में शत्रुओं के साथ जूझती है और रणक्षेत्र में घायल पति को मृत्यु एवं पराजय से बचाती है।

१०. चरित्र १३७—द्रौपदी के स्वयंवर पर कौरव योगी वेशधारी पाण्डवों से उलझ पड़ते हैं। अर्जुन के आहत होने पर द्रौपदी स्वयं शत्रुओं से जूझती और उन्हें पराजित करती है।

११. चरित्र १४२—ऊषा-अनिरुद्ध-प्रेम एवं बाणासुर-कृष्ण-युद्ध की कथा इस चरित्र में कही गई है।

१२. चरित्र १४७—फतेह नामक बलोच की खेरी और सम्मी नामक वीर पत्नियाँ उसे दिल्लीपति की कैद से मुक्त कराती हैं।

१३. चरित्र १५१—राजौरी नरेश कुपित सिंह की वीर पत्नी अपने पति के साथ युद्ध के लिये प्रयाण करती है। तुफंग लगने पर राजा का देहान्त होता है। राजा का मृत शरीर अम्बारी पर बाँध कर वह सेना को हतोत्साह नहीं होने देती। इस प्रकार वह युद्ध में विजय प्राप्त करती है।

१४. चरित्र १५२—जम्भासुर के मोहिनी द्वारा ठगे जाने की कथा इस चरित्र में कही गई है।

१५. चरित्र १७६—सुवीरमती नामक स्त्री का डाकुओं से युद्ध।

१६. चरित्र १९५—मारवारपति जसवन्त सिंह की मृत्यु पर औरंगजेब

रुक्मिणी) और पति के बन्दी होने पर युद्ध संचालन का भार भी स्त्री ही अपने कंधों पर लेती है (पद्मिनी)। कामकथाओं में नारी के प्रति जो अन्याय हो गया था, उसकी क्षति-पूर्ति इन कथाओं में हो गई है। काम-कथाओं में नारी हृदयहीन-सी प्रतीत होती है। वह अपनी कामतृप्ति के लिए और पापाचार को छिपाने के लिये पति, पिता, पुत्र, प्रेमी सब की हत्या कर सकती है—यहाँ तक कि अपनी भी। प्रेम-कथाओं में नारी हृदयहीन नहीं। वह अपने प्रिय से प्रेम करती है, दूसरों से घृणा नहीं। इन प्रेम-कथाओं में दो स्थानों पर नारी को अपने प्रिय और अपने भ्राता के बीच युद्ध का दर्शक बनना पड़ा है। दोनों स्थानों पर उसने अपने भाई के साथ अन्याय नहीं होने दिया। एक स्थान पर तो वह भाई को बचाने की चेष्टा में ही अपने प्रिय की अनचाही हत्या करवा बैठती है।[1]

शौर्य-कथायें

चरित्रोपाख्यान में जिन कथाओं को शौर्य-कथा की संज्ञा दी जा सकती है, वे निम्नलिखित हैं :—

१. चरित्र ५२—इस आख्यान में सूर्यवंशी राजा विजयसिंह की दुहिता का अपने प्रिय राजा सुभटसिंह से युद्ध वर्णित है।

२. चरित्र ६५—बटमार मित्रसिंह की पत्नी अपने पति को शत्रुओं से मुक्त करवाती है।

३. चरित्र ९६—मरगजोहड नामक स्थान के शासक वैरमखाँ पठान पर शत्रु आक्रमण करते हैं। वैरम खाँ भाग जाना चाहता है। उसकी पत्नी गोहर बेगम

१. (क) कृष्ण-रुक्मिणी कथा में :—

तब रुकमी पहुँचत भयो आई। अधिक कृस्न सौ करी लराई।
भाँति भाँति तन बिसिख प्रहारे। हार्यो बहै कृस्न नहि हारे।
... ...
एक बान तब स्याम प्रहारा। गिर्यो पृथी पर बातु सहारा।
सर सौ मूँडि प्रथम तिह ईसा। बाँधि लियो रथ सौ जदु ईसा।
भ्रात जानि रुक्मिनी छडायो। लजत धाम सिसपाल सिधायो।

—दशम ग्रन्थ, पृ० १२७४

(ख) मिर्जा-साहिबाँ कथा में :—

तब साहिबाँ रग ओरि निहारा। हेरे पहूँ ओर असवारा॥
सग भाई दोऊ ताहि निहारे। करुणा बहे नैन कजरारे॥
जो हमरो पति इनै निहरि है। दुहूँ मान दुहूअन कहि हरि है॥
ताते कछू जतन अब कीजै। जाते राखि भाइअन लीजै॥
सोवत हुतो मीत न जगायो। जाइ भये तरकस अटकायो।

—दशम ग्रंथ, पृ० १००१।

बैरम को बांध कर भोहरे मे डाल देती है। स्वय शत्रुओ से जूझती है और उन्हें परास्त करती है।

४. चरित्र १०२—कैकेयी रणक्षेत्र मे दशरथ के रथ का बडी कुशलता से सचालन करती है।

५. चरित्र १२२—काहलूर नरेश अभय साड (सिंह) का पठानो से युद्ध होता है। अभयसिंह की मृत्यु के पश्चात् कुकम देवी और घनसर देवी नामक पत्नियो ने शत्रुओ से लोहा लिया और वीर-गति प्राप्त की।

६ चरित्र १२३—सुरासुर युद्ध मे मोहिनी द्वारा असुरो के छले जाने की कथा इस चरित्र मे कही गई है। इस चरित्र मे युद्ध-प्रसग को ही महत्त्व दिया गया है।

७. चरित्र १२५—एक शूरवीर निशाचर के इन्द्रमती वेश्या द्वारा छले जाने की कथा इस चरित्र मे कही गई है। इस चरित्र मे भी युद्ध-प्रसग को ही महत्त्व प्राप्त हुआ है।

८ चरित्र १२६—युद्ध मे पत्नी पति की सहायता करती है। पति के वीरगति पाने पर स्वय सती हो जाती है।

९ चरित्र १२८—मारवारपति उग्रदत्त की पत्नी मानवती नर-वेश मे शत्रुओ के साथ जूझती है और रणक्षेत्र मे घायल पति को मृत्यु एव पराजय से बचाती है।

१०. चरित्र १३७—द्रौपदी के स्वयवर पर कौरव योगी वेशधारी पाण्डवों से उलझ पडते हैं। अर्जुन के आहत होने पर द्रौपदी स्वय शत्रुओ से जूझती और उन्हें पराजित करती है।

११. चरित्र १४२—ऊषा अनिरुद्ध-प्रेम एव बाणासुर कृष्ण-युद्ध की कथा इस चरित्र मे कही गई है।

१२. चरित्र १४७—फतेह नामक बलोच की सेरी और सम्मी नामक वीर पत्नियाँ उसे दिल्लीपति की कैद से मुक्त कराती हैं।

१३ चरित्र १५१—राजौरी नरेश कुपित सिंह की वीर पत्नी अपने पति के साथ युद्ध के लिये प्रयाण करती है। तुफग लगने पर राजा का देहान्त होता है। राजा का मृत शरीर अम्बारी पर बाँध कर वह सेना को हतोत्साह नही होने देती। इस प्रकार वह युद्ध मे विजय प्राप्त करती है।

१४. चरित्र १५२—जम्भासुर के मोहिनी द्वारा ठगे जाने की कथा इस चरित्र मे कही गई है।

१५ चरित्र १७६—सुवीरमती नामक स्त्री का डाकुओ से युद्ध।

१६ चरित्र १९५—मारवारपति जसवन्त सिंह की मृत्यु पर औरग-

और जसवन्त सिंह की रानियों में युद्ध। रघुनाथ नामक राजपूत वीर की स्वामिभक्ति और शूरवीरता का चित्र भी इस चरित्र में अंकित है।

१७. चरित्र २०४—रमछ-नरेश बीरसिंह की पत्नी कैलाशमती के दिल्ली-पति शाहजहान की सेना से युद्ध का वर्णन इस चरित्र में है।

१८. चरित्र २०७—कूच-बिहार के राजा बीरदत्त की रानी मुसकमती के दिल्लीपति अकबर की सेना से युद्ध का वर्णन इस चरित्र में है।

१९. चरित्र २१७—सिकन्दर की विश्वविजय का संक्षिप्त चित्र इस चरित्र में अंकित है।

२०. चरित्र २६७—दिल्ली का दीवान शमसुद्दीन सिद्धपाल नामक क्षत्रिय की कन्या पर आसक्त हो जाता है। क्षत्रिय अपनी कन्या का विवाह मुस्लिम परिवार में नहीं करना चाहता है। अतः युद्ध होता है जिसमें शमसुद्दीन की पराजय होती है।

२१. चरित्र ३३३—प्रीतिकला पतिवरण के लिये राजा के महल से उसका घोड़ा चुरा लाती है।

२२ चरित्र ३३६—दिल्ली नरेश अलाउद्दीन की कन्या बीरमदेव पर आसक्त हो जाती है। अलाउद्दीन बीरमदेव को धर्म परिवर्तन के लिये कहता है। बीरमदेव द्वारा यह प्रस्ताव स्वीकृत न होने पर युद्ध होता है। बीरमदेव अपने देश से भाग कर राजा कांधलदेव के नगर में प्रवेश करता है। बीरमदेव की रक्षा के लिये कांधलदेवी शाही सेना से युद्ध करती है और अपने पुत्रों सहित मारी जाती है।

२३. चरित्र २०२—नरकासुर-कृष्ण युद्ध।

२४. चरित्र ४०५—महाकाल का तुरुकों से युद्ध।

कथा-स्रोत

पुराण-इतिहास-लोकगाथा—प्रेम-कथाओं के समान शौर्य-कथाओं का प्रमुख प्रेरणा-स्रोत भी भारतीय पुराण ही हैं। उपरिलिखित चौबीस कथाओं में से सात तो भारतीय पुराणों और महाकाव्यों से ही ली गई हैं। इन कथाओं में से अधिकांश का वर्णन अथवा उल्लेख उन्होंने अपने पौराणिक प्रबन्धों में भी किया है। पौराणिक कथाओं के लिये गुरु गोविन्दसिंह को इतना मोह है कि वे उनकी पुनरावृत्ति करते हुए भी नहीं उकताते। इन कथाओं में से भी सुरासुर युद्ध के लिये तो उन्हें विशेष मोह है। अन्तिम चरित्र (४०५) में दी गई असुर-चण्डी अथवा असुर-महाकाल की कथा उन्होंने थोड़े बहुत अन्तर के साथ दशमग्रंथ में छः-सात बार कही है।

शौर्य-कथाओं में एक नया प्रेरणा स्रोत भी हमें दृष्टिगत होता है, वह है इतिहास-मिश्रित-लोकगाथा का। इतिहास के तथ्यों को तोड़ मरोड़ कर उन्हें एक नया अर्थ देने की प्रवृत्ति बहुत पुरानी है। प्रेम-कथाओं में परिगणित रत्नसेन-पद्मिनी

की प्रेमकथा एक ऐसी ही लोकगाथा है जिसे इतिहास का क्षीण-सा आधार प्राप्त है। ऐतिहासिक सत्य का यह दिशान्तरण लोक-जीवन की आशाओं, आकांक्षाओं एवं आशंकाओं को ही प्रतिबिम्बित करता है। गुरु गोविन्दसिंह ने भी लोक-जीवन में नवोदित जागरण को लोकगाथा के स्तर पर अभिव्यक्त करने के लिये ऐतिहासिक सत्य का क्षीण-सा आधार ग्रहण किया है। उन्होंने न तो ऐतिहासिक सत्य को यथातथ्य रूप में प्रस्तुत किया है और न ही किसी पूर्वकथित लोकगाथा का परिवर्तित अथवा अपरिवर्तित रूप में पुन कथन किया है। उन्होंने ऐतिहासिक सत्य के आधार पर लोकजीवन की आशाओं, आकांक्षाओं को प्रतिबिम्बित करने वाली नई लोक-गाथाओं का सृजन किया है। दूसरे शब्दों में यहाँ एक नवीन लोक-गाथा-परम्परा जन्म लेती हुई दृष्टिगत होती है।

शौर्य-कथाओं में एक वर्ग ऐसी कथाओं का है जिनमें हिन्दू वीर और वीरागनायें एवं मुस्लिम पठान वीर और वीरागनायें मुस्लिम मुगल (अथवा तुरुक) दिल्ली-पतियों अलाउद्दीन (च० ३३६), अकबर (च० २०७), शाहजहाँ (च० २०४) और औरंगजेब (च० १६५) की सेनाओं से जूझती और उन्हें पराजित करती हैं। एक कथा (च० २६७) में तो दिल्ली को जीतने और दिल्ली का सिंहासन किसी और व्यक्ति को प्रदान करने का भी वर्णन हुआ है। हिन्दुओं के समान ही पठान भी दिल्ली के सत्ताधारियों से लोहा लेने के लिये उद्यत दिखाई देते हैं (च० १४७)। ये कथाएँ गुरु गोविन्दसिंह की सेना में पठान-सैनिकों के समावेश की साक्षी हैं। इस प्रकार पहाड़ी राज्य काहलूर के राजा और रानी की मुगल-सेना के विरुद्ध लड़ने की कथा पहाड़ी राजाओं को स्व-पक्ष में लाने की इच्छा का ही प्रतिबिम्ब है।

स्पष्ट है कि इन कथाओं में ऐतिहासिक सत्य कम और तत्कालीन नवजागरण का आभास अधिक है। प्रेम-कथाओं के सुखमय अन्त का विवेचन करते हुए हमने जिस आशामय भविष्य की ओर संकेत किया था, उसका समर्थन इन कथाओं से भी होता है। इन कथाओं का सृजन खालसा के जन्म से कुछ ही समय पूर्व हुआ। उन दिनों पंजाब के जीवन में एक नव-विद्रोह, एवं नवोत्साह का संचार हो रहा था। पंजाब का दलित-वर्ग मुगल-सत्ता से लोहा लेने के लिये संगठित हो रहा था। मुगल-सत्ता को पराजित करने के आशामय स्वप्नों का समावेश लोकजीवन में प्रथम बार हो रहा था। इस अन्यायी राज्य की अन्तिम पराजय के सुस्वप्नों के कारण ही हमारी प्रेम-कथाओं एवं शौर्य-कथाओं का अन्त सुखमय ही रहा था। प्रेम-प्रबन्ध सूररभावत की व्याख्या करते समय हमने लोकगाथा की परिभाषा जनसाधारण के तृप्ति-स्वप्न के रूप में की है। दिल्ली-सेना को जीतने और दिल्ली सिंहासन पर किसी और व्यक्ति को आरूढ करने की ये कहानियाँ हमारी उसी धारणा का समर्थन करती हैं।

लोक-गाथा केवल ऐतिहासिक सत्य को ही नव-दिशा में ही नहीं मोड़ती, चिर-काल से स्थिर पौराणिक सत्य का प्रयोग भी अपनी सुविधा के लिये कर लेती है। इसका कुछ आभास इन कथाओं में मिलता है। भगवती चण्डी का असुरों से युद्ध एक चिर-परिचित पौराणिक गाथा है। दशम-ग्रथ के लेखक ने पठानों-तुरुकों-मुगलों

को असुरों का ही पर्याय मानते हुए भगवती चण्डी और महाकाल से उनके नाश के लिये केवल विनती ही नहीं की बल्कि पठानो को असुरो से जन्म पाते हुए और महाकाल को उनसे जूझने और उनका नाश करते हुए भी दिखाया है। यहाँ मुगलो, पठानो की सम्मिलित शक्ति के साथ महाकाल के युद्ध का एक दृश्य उद्धृत करना अनुपयुक्त न होगा :

इह विधि भये शस्त्र जव लीना।
असुरन कोप अमित तब कीना।
काँपत अधिक चित्त मो गये।
शस्त्र अस्त्र लै धावत भये ॥१९७॥
ज्वाल तजी करि कोप निशाचर।
तिन ते भये पठान धनुसधर।
पुनि मुख ते उलका जे काढे।
ताते मुगल उपजि भे ठाढे ॥१९८॥
पुनि रिस तन तिन स्वास निकारे।
सैयद सेख भये रिस वारे।
धाये शस्त्र अस्त्र कर लैके।
तमकि तेज रण तुरी नचैके ॥१९९॥
खान पठान ढुके रिसि कैकै।
कोपि कृपान नगन कर लैकै।
महाकाल कौ करत प्रहारा।
एकन उपर तरोम उपारा ॥२००॥
आवत ही किये बान प्रहारा।
महाकाल कह चहत संघारा।
महाकाल सर चलत निहारे।
टूक सहस्र पृथी करि डारे ॥२०५॥
डारे सत सत टूक पृथी करि।
महाकाल करि रोप अमित सर।
इक इक सर तन बहुरि प्रहारे।
गिरे पठान सु भूमि मझारे ॥२०६॥

—दशम ग्रंथ, पृष्ठ १७७३-७४

संक्षेप मे हम कह सकते हैं कि इन शौर्य-कथाओ मे पौराणिक एवं ऐतिहासिक सामग्री को तत्कालीन जनजीवन की आवश्यकतानुसार एक नया मोड़ देने का प्रयास किया गया है।

धर्म-परिवर्तन—तत्कालीन यथार्थ से जोड़ने वाला एक और तत्त्व जो इन कथाओं मे पाया जाता है, वह है धर्म-परिवर्तन का तत्त्व। मध्ययुग मे राजनीतिक सत्ताधारियो का प्रमुख प्रेरणा-स्रोत धर्म ही था। अतः उनके विरुद्ध उठने वाले

आन्दोलन का रूप भी मिश्रित ही था। दक्षिण में शिवाजी और उत्तर में गुरु गोविन्द-सिंह जिस विद्रोह का संगठन और संचालन कर रहे थे उसका रूप राजनीतिक भी था और धार्मिक भी। परिणामतः इन शौर्यकथाओं में युद्ध, राजनीतिक, और धार्मिक दोनों प्रकार के कारणों से होते हैं। चरित्र १२२, १२६, १२८, १४७, १५१, २०७, में युद्ध का कारण प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप मे राजनीतिक है। किन्तु चरित्र २६७ और ३३६ में युद्ध का कारण क्रमशः अन्तःधर्म-विवाह और धर्म-परिवर्तन है। धर्म-परिवर्तन उन दिनों की बड़ी विकट समस्या थी, यह समस्या कई बार एक ऐसी ही अन्य विकट समस्या 'अन्त.धर्म-विवाह' से संयुक्त रहतीथी। उपर्युक्त चरित्रों में यह दो रूपों में प्रस्तुत होती है—प्रथम चरित्र (२६७) में दिल्लीपति शमसुद्दीन सिद्धपाल नामक क्षत्रिय की कन्या से विवाह करना चाहता है और दूसरे चरित्र में दिल्लीपति अलाउद्दीन की दुहिता बीरमदेव नामक क्षत्रिय राजकुमार पर आसक्त हो जाती है। अलाउद्दीन विवाह के मार्ग मे बाधा नही डालता, किन्तु बीरमदेव को इस्लाम कबूल करने की आज्ञा देता है। बस युद्ध ठन जाता है। इन दोनो चरित्रों के प्रासंगिक उद्धरण निम्नांकित हैं :—

(१) हजरति सकल पठान बुलाये। सिद्धपाल के धाम सिधाये।
कै अपनी दुहिता मुहि दीजै। नातर मीच मूंड पर लीजै ॥२०॥

... ...

सिद्धपाल जब ऐसे सुना। अधिक दुखित ह्वै मस्तक धुना।
दैव कवन गति करी हमारी। गृह असि उपजी सुता हमारी ॥२२॥
जो नहि देत तु बिगरत काजा। जात दये क्षत्रिन को लाजा।
मुगल पठान तुरक घर माही। अब लगि गी छत्रानी नाही ॥२३॥
छत्रिन के अब लगे न भई। दुहिता काढि तुरक कह दई।
रजपूतन के होतिह आई। पुत्री धाम म्लेच्छ पठाई ॥२४॥
हाडन एक दूसरन छत्री। तुरकन कह इन दई न पुत्री।
जो छत्री अस धर्म कमावै। कुंभी नरक देह जुत जावै ॥२५॥
जो नर तुरकहि देत दुलारी। धृग धृग जग तिह करत उचारी ॥२६॥
कछु रजपूतन लाज गवाई। रानो ते बेगमा कहाई ॥२७॥
तब कन्या निजु पिता हकारा। इह विधि तासौ मत्र उचारा।
तात तनिक चिन्ता नहि करियै। सनमुख पातिसाह सौ लरियै ॥२६॥
खडग हाथ जिनि तजहु खडग धारा सहो।
भाजि न चलियहु तात मेडि रन कौ रहो।
पठे पखरिया हनियहु बिसिख प्रहार करि।
हो, मारि अरिन कौ मरियहु हमहि संघारि करि ॥३१॥

—दशम ग्रंथ, पृष्ठ १२४६-४७

(२) बीरमदे मुजरा कह आयो। साहु सुता को हृदे चुरायो।
अनिक जतन अबला करि हारी। कैसिहु मिला न प्रीतम प्यारी ॥१२॥
कामातुर भी अधिक बिगम जब। पिता पास तजि लाज कही तब।
कै बाबुल गृह गोरि खुदाओ। कै बीरमदे मुहि वर धाओ ॥१३॥
भली भली तब साह उचारी। मुसलमान बीरम कर प्यारी।
बहुरि ताहि तुम करो निकाहा। जिह सौ तुमरी लगी निगाहा ॥१४॥
बीरम तीर वजीर पठायो। साह कह्यो तिन ताहि सुनायो।
हमरे दीन प्रथम तुम आवहु। बहुरि दिलिस की सुता ब्यावहु ॥१५॥
बीरमदेव कहा नही माना। कर्यो आपने देस प्याना।
प्राते खबरि दिलिस जब पाई। अमिति सेन अरि गहन पठाई ॥१६॥
—दशम ग्रंथ, पृष्ठ १२९२

सक्षेप से हम कह सकते हैं कि इन कथाओ मे अपने अतीत को भी स्मरण किया गया है और सामयिक समस्याओ की ओर भी ध्यान आकर्षित किया गया है। वस्तुत अतीत का स्मरण भी सामयिक समस्याओ से ही सम्बद्ध है।

शौर्यकथाओं मे नारी—चरित्रोपाख्यान प्रमुखत नारी चरित्र से सम्बन्धित कथाओं का सग्रह है। शौर्य कथाओ मे भी कथा का केन्द्र नारी-पात्र ही हैं। इन चौबीस कथाओ मे केवल तीन कथाओ[1] को ही पुरुष पराक्रम की कथायें कहा जा सकता है। शेष सभी कथाओ की प्रमुख पात्र नारी ही हैं।

इन कथाओ मे नारी का शौर्य और साहसिकता हमारे सामने चार रूपो मे प्रकट होता है।

१. पतिवरण के लिये शौर्य एव साहस का प्रदर्शन।

२. भीषण युद्ध मे दुर्जेय शत्रु को बलहीन करने के लिये नारी की छल-क्रिया।

३ युद्ध भूमि मे पति की सहायता, रक्षा, पति-मरण पर युद्ध-सचालन आदि।

४ चोरो डाकुओ से पति एव धन की रक्षा।

पतिवरण के लिये शौर्य प्रदर्शन—भारतीय साहित्य मे स्वयवर की प्रथा का कई बार उल्लेख हुआ है। इन कथाओ मे कन्या को प्राप्त करने के लिये पुरुषों के पराक्रम एव पौरुष की ही परीक्षा होती रही है। नारी प्राप्तव्य रही है और पुरुष-पराक्रम प्राप्ति का साधन। इन कथाओ मे नारी और पुरुष ने जैसे अपने स्थान अदल-बदल कर लिये हैं। पुरुष की सहचरी बनने के लिये अपनी योग्यता सिद्ध करने के लिये नारी को अपने पौरुष और साहस की परीक्षा देनी पड़ी है। चरित्र ५२ मे राजा सुभट सिंह को वर रूप मे प्राप्त करने के लिये सूर्यवशी राजा विजय सिंह की दुहिता

१. अनिरुद्ध-ऊषा (च० १४२), नरकासुर कृष्ण युद्ध (च० २०२) और सिकन्दर की विश्वविजय (च० २१७)।

को अपने ही भावी वर से जूझना और उसे परास्त करना पडा है।[1] एक और कथा (च० ३३३) मे प्रीतिकला नामक वीरबाला को अपना मन चाहा वर प्राप्त करने के लिये अपने साहस का प्रमाण देना पडा है। उसके प्रेमी की शर्त है कि उसे विवाह-पूर्व राजा की अश्व शाला से नवजात घोडा ला कर दिया जाय। प्रीतिकला अपने प्राणों को सकट मे डाल कर, मार्ग मे खडे प्रहरियो को मार काट कर घोडा ले आती है।

इन दोनों कथाओं में परम्परागत नारी भावना का आमूल वैपरीत्य मिलता है। सस्कृत महाकाव्यो म, रासो ग्रन्थो मे एव रामचरित मानस आदि महाकाव्यो मे पुरुष पराक्रम की परीक्षा के ही अवसर जुटाये गये हैं। पूर्वीय एव पाश्चात्य लोक-गाथाओ मे अपनी प्रेयसी की, अथवा उसके माता पिता की, इच्छापूर्ति के लिये पुरुष को ही जोखम उठाने पडे हैं। इन कथाओ मे परम्परा का यह व्यतिक्रम क्यो ?

हम देख चुके हैं कि ये कथायें युद्ध के वातावरण मे लिखी गई। गुरु गोविन्द सिंह ने तीन 'वज्र कुरीतियो'—अक्षम्य अपराधो—मे एक अपराध रखा था परस्त्री-गमन। परस्त्री-गमन धर्मयुद्ध के सेनानियो के लिये सदाचार की दृष्टि से बुरा तो था ही, युद्ध-सचालन की दृष्टि से भी अनेक अप्रत्याशित विपदाओ का कारण बन सकता था। स्त्री-त्याग का उपदेश देने वाली इन कथाओ मे स्त्री-निंदा का स्वर इतना बलवान हो उठा कि प्रश्न उठने लगा—क्या 'स्त्री सर्वथा त्याज्य है ?' क्या सिक्ख धर्म जिस नई दिशा मे मुड रहा है उसमे सैनिक सन्यासियो के लिये ही स्थान होगा ? सिक्ख धर्म की समूची पूर्व परम्परा इस प्रश्न का 'हाँ' मे उत्तर देने की आज्ञा नही देती थी। यदि स्त्री ग्राह्य है, तो कैसी ? इस प्रश्न का उत्तर इन शौर्यकथाओ

१ दैत दये जम धाम पठाइ। बारी सुभट सिंह की आइ ॥
सिंह निय कहा आय तुम लरो। कै अब हारि मानि मुहि बरो ॥
सुभट सिंह जब यौ सुनि पायो। अधिक चित्त मै कोप बढायो ॥
मैं का जुद्ध निया ते टरिहो। याको नाम मानि यह बरिहो ॥८३॥
श्री सुभटेस बडो दलु लै उमड्यो गहि कै करि आयुध बाके ॥
बीर हठी कवची खड्गी पर सीस भई सरदार निसाके ॥
एक टरे इक आनि अरे इक जूझि गिरे बृथि खाइ निया के ॥
धार चढाइकै अग मलग रहे मनो सोइ पिये बिनयाके ॥८५॥
सुभट सिंह तनहा बचा साथी रहा न एक।
है गै रथ बाजी घने रथ कटि गए अनेक ॥८८॥
दु द युद्ध निय पतिह मचायो। निरखन दिविस निमिस रन आयो ॥८६॥
निय कोमल भिय बान प्रहारे। जिय तै ताहि मारि नहि डारे ॥६०॥
चारि बाज बिसिखन निय मारे। रथ के काटि दोऊ चक डारे ॥
नाथ भुजा कटि भूमि गिराई। सूत दिया जम लोक पठाइ ॥८७॥
सुभट सिंह को पुनि सर मार्यो। मूरछित करि पृथ्वी पर डार्यो ॥८८॥
—दशम ग्रथ, पृष्ठ ८८१ ८२

मे दिया गया है। स्त्री वही ग्राह्य है जो वीरांगना हो, पति के युद्धकर्म में न केवल बाधा उपस्थित न करे, बल्कि उसकी सहायता करे। इन कथाओ मे प्रश्न का उत्तर अतिशयोक्तिपूर्ण अवश्य हो गया है जिसके कारण परम्परा भग होती सी दिखाई देती है। किन्तु स्त्री निंदा का स्वर भी तो असतुलित, अतिशयोक्तिपूर्ण हो गया था। यहाँ एक अतिशयोक्ति का उत्तर दूसरी अतिशयोक्ति से दिया गया है। स्मरण रहे कि चरित्रोपाख्यान के श्रोताजन सेनानी ही रहे होगे जिन्हे अतिशयोक्ति की भाषा मे बात समझाना अपेक्षाकृत सरल था।

इन कथाओ मे नारी के शौर्य और कर्मण्यता का ही नही उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व का भी परिचय मिलता है। हिन्दी के प्राचीन साहित्य मे नारी शूरवीरो के शौर्य का पुरस्कार, साधना मार्ग की बाधा और विलास का सुहृद साधन—इन रूपो मे ग्रहण की गई है। स्पष्ट है कि इन तीनो रूपो मे नारी के अपने व्यक्तित्व, उसकी स्वतन्त्र इच्छा, आकाक्षा आदि की स्वीकृति नही। पति-वरण के लिये भीषण रण लडती हुई, अपने भावी पति की इच्छापूर्ति के लिये जोखम उठाती हुई स्त्री अपनी पूर्वजा के समान व्यक्तित्वहीन नही है। यहाँ उसकी इच्छा का स्पष्ट आभास मिलता है। पति का चयन वह स्वय करती है और अपने चयन का मूल्य अपने शौर्य द्वारा चुकाती है। इन कहानियो मे पुरुष-चरित्र के साथ कुछ अन्याय अवश्य हुआ है पर नारी का चरित्र चमक उठा है।

युद्ध मे नारी की छल-क्रिया—इन कथाओ मे तीन कथायें ऐसी हैं जहाँ नारी भीषण युद्ध मे परपक्ष के दुर्जेय सेनानियो को निरायुध करने के लिये अपनी मोहिनी शक्ति का प्रयोग करती है। इन कथाओ को छल-कथाओ मे सम्मिलित करना भी उचित होता, किन्तु शौर्य का प्रदर्शन भी इन कथाओं मे कम नही हुआ। मुख्यत: ये युद्ध की ही कथायें हैं।

जिन कथाओ मे शत्रुओ को परास्त करने मे नारी की मोहिनी शक्ति का प्रयोग हुआ है, वे हैं सुरो और असुरो के युद्ध की कथा (च० १२३), लका निवासी दानवो द्वारा भारत पर आक्रमण की कथा (च० १२५) और जम्भासुर की कथा (च० १५२)। इन सभी कथाओ में आसुरी शक्तियां इतनी बलवान हैं कि उन्हे सैन्य बल द्वारा परास्त करने की आशा फलीभूत होती दिखाई नही देती। सैन्य बल के विफल होने पर ही नारी अपने अमोघ छलास्त्र का प्रयोग करती है। इनमे से दो कथायें तो पौराणिक हैं, तीसरी पौराणिक ढर्रे पर लिखी लोक गाथा है। स्पष्ट है इस प्रकार की छल क्रिया पुराणो, अतएव चिरकालीन परम्परा, द्वारा अनुमोदित है। नारी की मोहिनी शक्ति का यह परम्परानुमोदित प्रयोग, नारीत्व के उच्चतम गौरव का प्रतीक न होकर भी उसके लिये शोभाकारक ही है।

नारी रणक्षेत्र मे—नारी की कर्मण्यता के प्रति सर्वाधिक न्याय उन कथाओं मे हुआ है, जहाँ नारी अपने धर्म पारिवारिक मर्यादा अथवा पति के प्राणो की रक्षा के लिये रण मे जूझती है और अपने शारीरिक सौकुमार्य एव नैतिक दौर्बल्य विषयक परम्परा-

गत भावनाओं को मिथ्या प्रमाणित करती है। हिन्दी साहित्य मे नारी, कदाचित प्रथम बार, पुरुष की दुर्बलता के रूप मे नही, पुरुष की शक्ति के रूप मे प्रस्तुत हुई है।

जिन कथाओ मे नारी रण-चण्डी के रूप मे चित्रित हुई है, उनमे से दो पौराणिक कथा-भण्डार से ली गई हैं। इनमें से एक कथा (च० १०२) मे कैकेयी की सारथी कर्म मे निपुणता[1] और दूसरी में (च० १३७) द्रौपदी की युद्ध कला मे प्रवीणता[2] का चित्र अकित किया गया है। शेष सभी कथायें कल्पना का चमत्कार हैं। पुराणो की इन दो कथाओ को सम्मिलित कर कवि ने अपनी दूसरी कथाओ के लिये जैसे श्रोतावर्ग की अनुमति प्राप्त कर ली है। वे अपने युग की नारी के शौर्य की कथायें भी उसी विश्वास से सुनने को तैयार हो जाते हैं जिस विश्वास से वे इन कथाओ की समानान्तर पौराणिक कथाओ को सुनते हैं। हर प्रकार की कथाओ (प्रेम कथाओ, शौर्य कथाओ और छल कथाओ) मे पौराणिक कथाओ के समावेश द्वारा कवि को अपने श्रोताओ मे सहज प्रत्यय-भावना उत्पन्न करने मे बडी सहायता मिली है।

इन पौराणिक कथाओं से प्रेरणा ग्रहण कर कवि ने दस ऐसी कथायें लिखी हैं, जिनमे वीरागनायें चिरस्थापित सत्ता से लोहा लेती और उन्हें पराजित करती हुई दिखाई गई है। ये कथायें तत्कालीन विद्रोह भावना का कितना सच्चा प्रतिनिधित्व करती हैं, यह पहले कहा जा चुका है। यहाँ केवल इतना और कहना है कि

---

१. असुरन की सैना हुते असुर निकस्यो एक।
सूत सवारि अजनंद को मारे विसिख अनेक ॥१५॥
भरत मात ऐसे मुनि पायो।
काम सूत अजि मुत को आयो॥
आपन भेख सुभट को धर्यो।
जाइ सूत पन नृप को कर्यो ॥१६॥
स्यदन ऐसा भाति भवावै।
नृप को बान न लागन पावै ॥१७॥
अजिसित चर्हा त्रिन्ह लै जावै।
तहाँ कैकइ लै पहुँचावै॥
अमित रासि ऐसो रथ हाक्यो।
निजु पिय को इक बार न बाच्यो ॥३१॥
—दशम ग्रथ पृष्ठ ६४७, ६४८, ६४६

२. एक विसिख अर्जुन के उर मैं मारियो।
गिर्यो मूरछना धरनि न नेक समारियो॥
तबै द्रोपती सायक धनुख समार कै।
हो बहु बीरन कौ दियो छिनिक मौ मारिकै ॥३२॥
एक बिसिख मानुज कै उर में मारियो।
दुतिय बान सो दुर्जोधन है प्रहारियो॥
भीखम भूर स्रवहि द्रोण घायल कियो।
दो द्रोणज कृपा दुसासन को स्यदन दुर्यो ॥३३। (शेष अगले पृष्ठ पर)

ये कथायें पंजाबी वीरबालाओं को तत्कालीन धर्म युद्ध में भाग लेने का एक आवाहन थी।[1]

ये नारी-चरित्र के प्रति कितना न्याय करती हैं इसका कुछ अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि जहाँ ये नारी को पुरुष की शक्ति प्रदान करती हैं, वहाँ वे उनमें नारी-सुलभ सौकुमार्य, पति-परायणता, एकनिष्ठता आदि गुणों का ह्रास भी नहीं होने देतीं। इन कथाओं में कोई भी स्त्री स्वतन्त्र-रूप से युद्ध में भाग लेने की इच्छुक नहीं, वे पति की सहायतार्थ ही अथवा पतिमरण पर अपने देश, राज्यादि की रक्षार्थ ही युद्ध में भाग लेती हैं। शौर्य-कर्म एक प्रकार से उनके लिये आपद्धर्म है। इस प्रकार जहाँ गुरु ने नारी को शूर-कर्मों के लिये प्रेरणा दी है, वहाँ उसे पारिवारिक नियन्त्रण में रखना भी आवश्यक समझा है। संक्षेप में इन कथाओं में पौरुष नारी का अतिरिक्त गुण है, उसमें नारीत्व के अभाव की पूर्ति नहीं।

इस प्रकार शौर्य कर्म को प्रेम का पूरक ही समझा जाना चाहिये। युद्ध के लिये जाने वाले वीरपतियों का संग वे प्रेम के कारण ही करती हैं। वियोग दुःख उन्हें युद्ध के संकट से भी अधिक असह्य प्रतीत होता है।[2] इन युद्धों में भाग लेने वाली लगभग[3] सभी नारियाँ युद्ध-प्रयाण करते समय सती के समान जल मरने की

पहर एक राखे अटकाई। भांति भांति सो करी लराई ॥
गहि धनु पान धनजै गाज्यो। तब ही सैन वैरिन भाज्यो ॥

—दशम ग्रन्थ, पृष्ठ १०१६

१. ये कथायें तत्कालीन जनजीवन से सर्वथा परे की वस्तु न थीं। सिक्ख लहर में नारी का भाग बड़ा महत्त्वपूर्ण रहा है। गुरु गोविंदसिंह द्वारा नारी के शौर्य की जो कथायें रची गईं, उनके माडल उनके दरबार में विद्यमान थे। उनमें से एक 'माई भागो' के विषय में 'गुरु शब्द रत्नाकर' का कर्त्ता इस प्रकार लिखता है

"जब बहुत से सिक्ख आनन्दपुर की जंग में बेदावा लिख कर अपने घर चले आये, तब इसने उन्हें बहुत धिक्कारा और स्वयं घोड़े पर सवार होकर सिंह वेश धारण करके ऐसे तर्क-वाक्य कहे कि जिनसे प्रभावित होकर बहुत से सिक्ख सतिगुरु की सेवा में उपस्थित हो जाने के लिये तैयार हो गये।"

संवत् १७६१ में माई भागो सिंहों के साथ मिल कर मुक्तसर के युद्ध में बहुत शूर-वीरता से लड़ी और बहुत घायल हुई। यह पुरुष वेश धारण करके सतिगुरु की सेवा अदल में रहती थी।

—गुरु शब्द रत्नाकर, पृष्ठ २७३०

२. चले चलौं रहिहौ तो रहिसौं।
नातर देह अगिन मैं दहिहौं। —दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ६४७

३ दे- [illegible] है (- [illegible] ३३६)।

अभिलाषा मन मे लिये हैं।[1] इन वीरांगनाओं के प्रति कवि का अपना दृष्टिकोण भी अत्यन्त श्रद्धापूर्ण है। जिस प्रकार वे कामकथाओ अथवा छलकथाओ मे नारी की निन्दा करते हुए अपने श्रोताओ को उनके प्रति सावधान करते हैं,[2] उसी प्रकार इन कथाओ मे वे न केवल स्वय उनकी प्रशसा करते है[3] बल्कि देवताओ द्वारा उनके सत्कर्म पर पुष्प-वर्षा भी कराते हैं[4] और एक स्थान पर तो सती होने के लिये प्रस्तुत वीरपत्नी के पति को पुनर्जीवित करने का चमत्कार भी अपनी कथा मे समा-

---

१. (क) पति मरण का समाचार पा कर—
कुकम दे घनसार दे यौ स्रवनन सुनि पाय।
मतो बैठि दुहूँअन कियो जूझि मरन के भाय।
जौ हमरे पति लरि मरे समुद्र वदन अिग खाय।
तौ हम हूँ सम लरि मरै नर को भेख बनाय। —दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ६८८

(ख) राजा के मर जाने पर और युद्ध हार जाने पर रानी को शत्रु पत्नी रूप में ग्रहण करना चाहता है किन्तु—
प्रथम चिता मैं सुत को डारयो। मृतक खसम कौ बहुरि प्रजारयो॥
बहुरो काति मुगल को मरी। आपन लै पावक यौ परी॥
—दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ६६५

(ग) युद्ध प्रयाण केसमय
फिरि हैं किधौ जीति अयोधन को, नहि राय मरे तही जाय मरौ।
—दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ६६८

(घ) पति मरण के पश्चात् युद्ध करती हुई पत्नी के उद्गार इस प्रकार हैं:
जब लगि राना नाय तब लगे जाइ हौं।
इन वैरिन के सिर पर खग मचाइ हौं।
सकल बैरियन धाय पलति घर आइ कै।
हो करि हौं जाइ प्रणाम पतिहि मुसकाइ कै। —दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ११६०

२. जो नर काहू त्रिया को देत आपनो चित्त।
ता नर कौ इह जगत में होत खुआरी नित्त। —दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ८२६

३. प्रीति प्रिया कौ मे लरी धन्नि धन्नि ते नारि।
पूरि रहयो जसु जगत में सुरपुर बसी सुधारि।—दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ६८६

४. (क) ऐसे जब अबला रन कीनो। ठाढे इन्द्र दत्त सम चीनो॥
—दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ६६६

(ख) दुद जुद्ध त्रिय पतिहि मचायो। निरखन दिनिस निसिम रन आयो॥
—दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ८८१

(ग) रानी जा तन बिसिख प्रहारे कोप करि।
तछिन मृतक ह्वै परइ सुर सुमूनि पर।
फूल दये बरखाइ गगन ते देवतन।
हो रानी को रन हेरि उचारे धन्य धन्नि। —दशम ग्रन्थ, पृष्ठ १०३६

विष्ट कर लेते हैं।[1] इससे पता चलता है कि चरित्रोपाख्यान की रचना करते समय केवल कामी, छलिया नारियों तक ही उनकी दृष्टि सीमित न थी। वस्तुतः उनके मन में एक आदर्श नारी का चित्र विद्यमान था। उनके मतानुसार आदर्श नारी वह है, जो अपने पति की आज्ञानुसारिणी होकर, गृहस्थ-धर्म के दायित्व को निभाती है, विपद्-काल में पति की सहायता करती है और पति के मरणोपरात भी निष्ठा में अन्तर नहीं आने देती।

यहाँ चरित्रोपाख्यान में वर्णित सती-प्रथा के विषय में कुछ शब्द अनुचित न होंगे। सिक्ख धर्म सती प्रथा का हामी नहीं रहा। तृतीय और पचम गुरुओं की वाणी में सती प्रथा के विरोध में कुछ सकेत मिलते हैं। किन्तु पचम गुरु के समकालीन भाई गुरुदास की वाणी में कुछ ऐसी पक्तियाँ भी आती हैं जिनमें सती-प्रथा के पक्ष या विपक्ष में दो-टूक मत तो नहीं स्थिर किया गया, किन्तु प्रकारान्तर से वे जनसाधारण में प्रचलित सती विषयक श्रद्धा को ही अभिव्यक्त करती हैं। दशमग्रन्थ में, जैसा कि पिछले विवेचन से स्पष्ट है, इसी श्रद्धाभावना की अभिव्यक्ति हुई है। क्या सती का यह श्रद्धापूर्ण वर्णन दशम ग्रन्थ के लेखक की सतीप्रथा विषयक निजी धारणा का परिचायक है।

इस विषय में कोई मत स्थिर करते हुए यह स्मरण रखना लाभप्रद होगा कि गुरु गोविंदसिंह की अध्यक्षता में लड़े गये किसी युद्ध में भी कोई ऐसा उदाहरण नहीं मिलता जब किसी खालसा-योद्धा के वीरगति प्राप्त करने पर उसकी पत्नी ने सतीव्रत का पालन किया हो। दूसरे, पूर्ववर्ती गुरुओं द्वारा स्थापित परम्पराओं को तोड़ने की आशा गुरु गोविंदसिंह से नहीं की जा सकती।

किन्तु, ये दोनों बातें विवेच्य-ग्रन्थ से बाहर की हैं। यदि केवल विवेच्य-ग्रथ के आधार पर ही अपना मत स्थिर करना हो तो कह सकते हैं कि दशमग्रन्थ में अच्छी और बुरी, सच्चरित्र और दुश्चरित्र सभी प्रकार की स्त्रियों के सती होने की कथाएँ हैं। एक कथा (च० १५) में एक दुश्चरित्रा विधवा का वर्णन है जो अपने अवैध गर्भ को छिपाने के लिये सती हो जाती है।[2]

---

१. त करिकै बडो अडबर आपु जरन लगी। दो तबै गगन ते बानी आपु जरन चली ॥१५॥
कृपासिंधु जू कृपा अधिक तुम पर करी। किन्तु नायक के हेतु बहुत बिधि तै लरी।
तांते अपना भरता लेहु जियाइकै। बहुरि राज को करो हरख उपजाइकै ॥१६॥

—दशम ग्रन्थ, पृष्ठ १०३६

२. जब ताको रहि गयो अधाना। तब अबला को इहै डराना।
... ...
जा दिन मोरे पति मरे मोसो कह्यो बुलाय।
जे अब तू मो सो जरै परै नरक मो जाय।
मान (नाम) लरिकवा रहै सेव निह कीजिये।
पानी पोसि करि ताहि बडो करि लीजिये।
... ...
मान करो करते बडो, सुतन दियो पति आय।
ताते हो हरिराय पै, जरत कीरति पुर जाय।

—दशम ग्रंथ, पृष्ठ ८२१

जन साधारण की श्रद्धा तो इस विधवा के सती होने पर भी अभिव्यक्त हुई थी।[1] इसी प्रकार चरित्र १८८ में एक ऐसी स्त्री का वर्णन है जो एक-एक करके अपने आठ पतियों की हत्या करती और अन्त में सती हो जाती है।[2] निश्चय ही यहाँ लेखक सती-प्रथा का श्रद्धामय समर्थन नहीं कर रहा अतः यहाँ सती वर्णन सतीप्रथा का अनिवार्यतः अनुमोदन ही है, ऐसा मत निर्धारित करना भ्रामक होगा। सती वर्णन लेखक के निजी मत की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि कथा के देश-काल सम्बन्धी पृष्ठभूमि का ही अंग है।

चोरों और डाकुओं का सामना करने वाली नारी—इन कथाओं में दो कथायें ऐसी हैं जहाँ स्त्री चोरों अथवा डाकुओं से टक्कर लेती है और उन्हें परास्त करती है। जहाँ रणक्षेत्र में शत्रुओं से लोहा लेने वाली सभी नारियाँ राजन्य-वर्ग से सम्बन्ध रखती हैं, वहाँ चोरों से टक्कर लेने वाली नारियाँ क्षत्रियेतर परिवार से सम्बन्धित हैं। इनमें से एक तो किसी साहूकार की पत्नी है और दूसरी किसी बटमार की। एक कथा में नारी के शौर्य का उद्देश्य धन-रक्षा है दूसरी कथा में पति-प्राण—रक्षा। स्त्री की पति-परायणता और शौर्य की प्रशंसा में हमारा कवि इतना दत्तचित्त है कि उसने बटमार की घृणित-वृत्ति की निन्दा करने के लिये (अथवा उसके विषय में अपना किसी प्रकार का मत प्रकट करने के लिये) अवकाश नहीं निकाला। एक घृणित धंधे में लगे हुए पुरुष के लिये भी उसकी पत्नी का प्रेम बना रहता है, ऐसी इस कथा की ध्वनि प्रतीत होती है।

उपसंहार—शौर्य-कथाओं के सम्बन्ध में हमारी धारणा, संक्षेप में इस प्रकार है :

सैनिक-मंडली के लिये लिखे गये इस कथा-संग्रह में शौर्य-कथाओं का सन्निवेश स्वाभाविक ही है। इन कथाओं को चरित्रोपाख्यान में सन्निविष्ट काम-कथाओं और प्रेम-कथाओं का पूरक ही समझा जाना चाहिये। इन कथाओं में उस आदर्श नारी का चित्रण किया गया है, जो हमारे लेखक के मानस में अचेत अथवा सचेत रूप से सर्वदा रही है। इस आदर्श नारी के चरित्र को समझे बिना चरित्रोपाख्यान में आई काम-कथाओं अथवा छल-कथाओं के समझने में चूक हो जाने की सम्भावना है। काम-कथाओं की स्त्री का चरित्र शौर्य-कथाओं की वीरांगना की तुलना में ही निन्दनीय है।

---

१. बहु लोगन देखत जरी इक पग ठाढी सोइ।
हरि रीझ रीझक रहे भेद न जानत कोइ॥

—दशम ग्रंथ पृष्ठ ८२६

२. सपत नाथ निज करन हनि कियो सती को भेस
ऊँच नीच देखत तरनि पावक कियो प्रवेस॥

—दशम ग्रंथ, पृष्ठ १०८०

इन कथाओं को प्रेम-कथाओ का पूरक समझने का कारण इनके सामान्य-धर्म 'कर्मण्यता' मे है। प्रेम नारी को कितना कर्मठ बना देता है, इसका पूर्ण उद्घाटन इन्ही कथाओ में हो सका है। नारी द्वारा सम्पन्न शौर्य-कर्मों की सचालिका शक्ति प्रेम ही है। अत इन कथाओ को प्रेम-कथाओ का पूरक अथवा उनकी विस्तृति समझना उपयुक्त ही होगा। सक्षेप से काम-कथाओ, प्रेम-कथाओ और शौर्य कथाओ को एक ही शृ खला की कडियाँ समझना चाहिये। इन तीनो के सयोग से ही चरित्रोपाख्यान मे नारी चरित्र का सश्लिष्ट और सम्पूर्ण चित्र उभरता दिखाई देता है।

ये कथायें, प्रेम-कथाओ के समान ही विद्रोह-कथायें हैं। प्रेम-कथाओं में विद्रोह का भाव इतना प्रत्यक्ष नही था जितना इन कथाओ मे। विद्रोह के कारण राजनीतिक भी हैं और धार्मिक एव सामाजिक भी। बहुत-सी कथाओ मे हिन्दू राजा और उनकी पत्नी मुसलमान शासको से लोहा लेते दिखाई देते हैं। युद्ध मे पराजय का अर्थ है राज्य हानि, एव स्वतन्त्रता की हानि। दो ऐसे युद्धों का वर्णन भी इन कथाओ मे है जहाँ पराजय का अर्थ है धर्म-हानि। फलत इन शौर्य कथाओ मे यथार्थ भी पूर्ण रूप से प्रतिबिम्बित है।

विनोद कथायें

चरित्रोपाख्यान मे कुछ कथायें ऐसी हैं जिन्हें विनोद कथा की सज्ञा दी जा सकती है। इन कथाओ का मूल कथा के साथ कोई सीधा सम्बन्ध नही। यो तो ग्रन्थकार ने इनकी गिनती भी त्रिया-चरित्रो मे की है, किन्तु इनमे से एकाध कथा को छोड कर शेष कथाओ मे नारी-चरित्र है ही नही। मूल कथा के उद्देश्य की प्राप्ति मे अथवा प्रभाव की स्थापना मे इन कथाओ की देन सर्वथा नगण्य है। अधिक से अधिक इनका महत्त्व इतना ही है कि ये त्रिया-चरित्रो मे पडने वाली सीमित-सी परिस्थितियो और बँधी-बँधाई चारित्रिक विशिष्टताओं की पुनरावृत्ति से उत्पन्न एकस्वरता को थोडा कम करती हैं। साढे तीन सौ से कुछ ऊपर त्रिया-चरित्रो म केवल आठ विनोद कथायें अपने इस कर्त्तव्य को भी सुचारु रूप से निबाहने मे विशेष समर्थ नही।

वैसे तो विनोद का हल्का पुट अधिकाश उपाख्यानो मे मिलता है, धूर्तता चरित्रोपाख्यान मे चित्रित नारी-चरित्र की प्रमुख विशिष्टता है, तो भी इन कथाओं को स्वतन्त्र कोटि मे रखे जाने का अधिकार बहुत पुष्ट है। ये कथायें उद्देश्य अथवा प्रभाव की दृष्टि से त्रिया-चरित्रों से सर्वथा भिन्न हैं। त्रिया-चरित्र का मूल उद्देश्य नारी-चरित्र का, तत्रापि उसके छल, छद्म, कामपरता का, उद्घाटन है। विनोद-कथा की कोटि मे पडने वाली इन कथाओ का उद्देश्य ऐसा कदापि नहीं है। चोट और व्यग्य इन कथाओ मे भी मिलते हैं किन्तु इनकी विषयवस्तु का क्षेत्र त्रिया-चरित्रो से सर्वथा भिन्न है।

इन कथाओं का मूल स्रोत लोक गाथा है। इनमें से अधिकांश कथायें ऐसी हैं जो हमारे देश के विभिन्न भू-भागों में सर्वथा भिन्न भाषा-भाषी जनसाधारण के बीच आज तक प्रचलित हैं। इनमें से कुछ कथाओं के स्रोत बहुत दूर तक, संस्कृत साहित्य में ढूंढे जा सकते हैं। 'चार ठगों ने एक मूर्ख से बकरा किस प्रकार छीना (चरित्र १०६)', 'मूर्ख जुलाहा किस प्रकार निरपराध होने पर भी अपनी मूर्खता के कारण एक के पश्चात् दूसरे जन समूह द्वारा पीटा गया (चरित्र ६३)'; 'गप्पी बनिक की पत्नी ने किस प्रकार अपने पति को मिथ्याभाषण से रोका (चरित्र २६)' आदि ऐसी ही कथायें हैं।

विशुद्ध साहित्यिक दृष्टि से इन कथाओं का विशेष मूल्य नहीं। यदि इन्हें स्वतंत्र रूप से परखा जाये तो इन्हें साहित्य-कोटि में स्थान देने मे संकोच होगा। चरित्रोपाख्यान की समूची कथायोजना में भी इनका स्थान विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं। त्रिया-चरित्रों की एकस्वरता के निवारण में इन कथाओं का कितना योग है यह ऊपर कहा जा चुका है।

चरित्रोपाख्यान के पाठक के लिये इनका महत्त्व इतना अवश्य है कि ये लेखक के व्यक्तित्व की अपेक्षाकृत सम्पूर्ण झांकी प्राप्त करने में सहायता देती हैं। इनसे यह भी पता चलता है कि लेखक के मन मे किस प्रकार की श्रोता मण्डली का संकल्प था। जिन कथाओं के नाम ऊपर आये हैं वे किसी प्रकार की श्रोता मण्डली को भी सुनाई जा सकती है। मानवीय मूर्खता सदा विनोद का विषय रही है। किन्तु ७०, ७१, ७४ और ७५ मे कही गई कथाओं के श्रोताओं की वर्ग-विशिष्टता बहुत स्पष्ट है। जहाँ गप्पी पति, मूर्ख जुलाहा और चार ठगों की कथाओं में मानवीय मूर्खता पर व्यंग्य कसा गया है वहाँ इन कथाओं मे व्यंग्य का निशाना है धनिक वर्ग और तीर्थसेवी जनता। चरित्र ७० मे चोर सुनार के एक सावधान स्त्री द्वारा, चरित्र ७४ मे पलवल नगर के बनियों के बैरमखाँ नामक चोर द्वारा और चरित्र ७५ मे गजनी निवासी मुगल के एक अन्य चोर द्वारा ठगे जाने की कहानी है। सुनार के ठगे जाने में कुछ न्याय हो सकता है, किन्तु बनिये और मुगल के ठगे जाने और उनके विनोद का विषय बनने का दायित्व उनकी वर्ग-स्थति पर है। स्पष्ट है कि लेखक और उसके श्रोताओं को धनाढ्य वर्ग से किसी प्रकार की सहानुभूति नहीं। यहाँ इन तीनों कथाओं मे से एक कथा को उद्धृत किया जाता है ताकि हमारे उपर्युक्त कथन का समर्थन हो सके :

दो०—मुगल एक गजनी रहै बख्तियार तिह नाम।
वडे सदन ताके बने वहुत गाँठ में दाम ॥१॥
ताके घर इक हय हुतो ताको चोर निहारि।
याको क्योंहूँ चोरियै कछू चरित्र सुधारि ॥२॥
आनि चाकरी की करी ताके धाम तलास।
मुगल महीना कै तुरतु चाकर कीनो तास ॥३॥
चौ०—महियाना अपनो करवायो। करजाई को नाम सुनायो।
ताकी सेवा को वहु कर्‌यो। बख्तियार को धन है हर्‌यो ॥४॥

दो०—दिन को धन है हरि चल्यो करजाई कहलाइ।
सकल लोग ठटके रहै रैनाई लखि पाइ ॥५॥

चौपाई— पीछे मुगल पीटतो आयो।
करजाई धन तुरा चुरायो॥
जो इह वैनन कों सुनि पावै।
ताही को झूठो ठहरावै ॥६॥
जाते दख करजु ले आयो।
कहा भयो तिना तुरु चुरायो॥
क्यों तै दरबु उधारो लयो।
कहा भयो जो है लै गयो ॥७॥

दोहरा— वाही को झूठा कियो भेद न पावै कोइ।
वह दिन धन है हर गयो राम करै सो होइ ॥८॥

चरित्र ७१ की कथा गुरु गोविंदसिंह के अपने जीवन से सम्बन्धित है। इस कथा में कपाल मोचन नामक तीर्थ पर आये हुए यात्रियों की पगडियां उतारने का वृत्तान्त है। गुरु जी को इसी मेला पर आए सिक्खों को सिरपाव देने के लिये पगडियों की आवश्यकता है। नगर मे पगडियाँ मिलती नही। इधर कपाल मोचन के दर्शनार्थ आये यात्री मन्दिर के निकट ही मलमूत्र करके उसकी पवित्रता भंग कर रहे हैं। गुरु जी इन यात्रियों को दण्डित भी करते हैं और सिरपाव के लिये पगडियाँ भी बटोर लेते हैं। यों तो इस कथा मे समस्त सहृदयों के मर्म को छूने की शक्ति विद्यमान है, तो भी इसकी सिक्ख-श्रोताओ के लिये विशेष अपील तो निश्चित ही है। सम्पूर्ण कथा इस प्रकार है :

दोहरा— नगर पावटा वहु बसे सरमौर के देस।
जमुना नदी निकटि वहे जनुक पुरी अलिकेस ॥१॥
नदी जमुन के तीर मै तीरथ मुचन कपाल।
नगर पांटवा छोरि हम आये तहां उताल ॥२॥

चौपाई— खिलत अखेट सूकर मारे। बहुते मृग औरै हनि डारे।
पुनि तिह ठां को हम मगु लीनो। वा तीरथ के दरसन कीनो ॥३॥

दोहरा— तहा हमारे सिख्य सम अमित पहूचे आइ।
तिनै दैन को चाहियै जोरि भलो सिरपाइ ॥४॥
नगर पांवटे बूरियै पठये लोक बुलाइ।
सक पाग पाई नही निहफता पहुचे जाइ ॥५॥

चौपाई—मौलहि एक पाग नहि पाई। तव मसलति हम जियहि बनाई।
जाहि इहां मूतति लखि पावो। ताकों छीन पगरिया ल्यावो ॥६॥
जब प्यादन ऐसो सुनि पायो। तिही भांति मिलि सभन कमायो।
जो मनमुख तीरथ तिह आयो। पाग बिना करि तांहि पठायो ॥७॥

दोहरा—राति बीच करि आठ सै पगरी लई उतारि।
आन तिनैं हम दीह मैं धोवनि दई सुधारि ॥८॥

चौपाई—प्रात लेत सभ धोय बनाई। सब ही सिक्खन को बँधवाई।
बची सु बेंचि तुरत तह लई। बाकी बची सिपाहिन दई ॥९॥

दोहरा—बटिकैं पगरी नगर को जात भये सुख पाइ।
भेद मूर्खन ना लह्यो कहा गयो करि राइ ॥१०॥

—दशम ग्रंथ, पृष्ठ ९०२

उपसंहार—संक्षेप से विनोद कथाओं के सम्बन्ध में हमारी धारणा इस प्रकार है :

ये कथायें चरित्रोपाख्यान के उद्देश्य से भिन्न होने के कारण समूची कथा-योजना का अनिवार्य अंग नहीं हैं। हां, लगभग सभी कहानियों की परिस्थिति, घटनावली, पात्रों के चरित्र, प्रभाव आदि की उकता देने वाली एकस्वरता का कुछ निराकरण इनसे अवश्य होता है। इन कथाओं के इस ग्रन्थ में संगृहीत होने का औचित्य केवल इतना ही है।

ये कथायें लेखक के व्यक्तित्व के विषय में हमें इतना अतिरिक्त ज्ञान देती हैं, कि वह सभी प्रकार की मानवीय मूर्खता को उपहास्य समझता था। धनिक वर्ग के प्रति वह विशेष रूप से निर्मम था। इन कथाओं से इनकी श्रोता-मण्डली की वर्ग-स्थिति का भी कुछ परिचय मिलता है।

फिर भी, स्वतन्त्र रूप से इन कथाओं का विशेष मूल्य—साहित्यिक मूल्य—नहीं है।

काम-कथायें और छल-कथायें

ये काम-कथायें अथवा छल-कथायें रीतिकालीन क्षयग्रस्त समाज का बड़ा सच्चा और खरा चित्र उपस्थित करती हैं। रीतिकालीन शृंगार के सभी प्रसाधन—राजप्रासाद, विलासी राजा, उनकी अनेक रूपसी पत्नियाँ, रक्षिताएँ, वेश्यायें, दूतियाँ, अभिसारिकायें—यहाँ विद्यमान हैं। किन्तु इनमें रीतिकालीन कवि का दृष्टिकोण नहीं है। रीतिकालीन शृंगार के पीछे कितनी पीड़ा, जलन, ईर्ष्या, विश्वासघात और व्यभिचार छिपा है, चरित्रोपाख्यान में उसके पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। इन काम

कथाओं की पृष्ठभूमि मे रीतिकालीन शृंगारिक रचनाओ को पढ कर ऐसी प्रतीति होती है मानो किसी चतुर गृहिणी ने किसी फटे-पुराने, दुर्गंधयुक्त, अतः परित्याज्य वस्त्र का थोडा-सा अच्छा भाग बाहर की ओर ओढ रखा हो। चरित्रोपाख्यान उसकी दुर्गंध और उसके पैबदो की ओर हमारी दृष्टि आकर्षित करता है।

इसका कारण कवि का अपना व्यक्तित्व और उसकी अपनी स्थिति है। गुरु गोविन्दसिह उन कवियों मे से थे जिनकी दृष्टि तत्कालीन यथार्थ पर थी। वे समाज को समझना ही नही चाहते थे, इसे बदलना भी चाहते थे। दूसरे, इन चरित्रो की श्रोता-मण्डली भी रीतिकालीन शृगारी कवित्त-सवैयो की सामान्य श्रोतामण्डली से सर्वथा भिन्न थी। इन चरित्रो के श्रोतागण राजा, रईस और उनके मित्र न थे जो तत्कालीन सामाजिक एव राजनीतिक व्यवस्था को बदलने मे विशेष रुचि न रखते थे। इन कथाओ को सुनने वाले थे आनन्दपुर मे एकत्रित, धर्म युद्ध के उदात्त भाव से प्रेरित स्वयसेवक जिन्हें न मुगल-सत्ता की प्रजापीडक नीति से सहानुभूति थी, न हिन्दू राजाओ की चरित्रहीनता से। वस्तुत ये स्वयसेवक ऐसा कार्य करने के लिये सगठित हो रहे थे जो हिन्दू राजाओ को करना चाहिये था। ऐसे स्वय सेवक इन राजाओ की कर्त्तव्यविमुखता एव कामुकता के इतने ही निर्मम आलोचक थे जितने मुगल-शासको की धर्मान्धता एव राजनीतिक उत्पीडन के।

चरित्र—चरित्रोपाख्यान की काव्यरचना को रीतिकालीन शृगारी कविता की प्रतिक्रिया के रूप मे ही देखा जाना चाहिये दूसरे शब्दो मे उसे विद्रोह-साहित्य की सज्ञा दी जा सकती है। विषय-वस्तु, शैली और मूल स्वर की दृष्टि से ये तत्कालीन काव्य-परम्परा से सर्वथा भिन्न हैं। विषय-वस्तु की दृष्टि से जहाँ शृगारी-कविता रूप-रस पर बल देती है, वहाँ चरित्रोपाख्यान 'चरित्र' पर। रीति-कालीन काव्य नायिका-भेद, नखशिख वर्णन आदि मे जितनी दृष्टि नारी के रूप पर, उसकी वर्गगत सामान्यता पर रही है उतनी उसके चरित्र पर अथवा उसके व्यक्तित्व पर नही रही है। वस्तुतः जाति, कर्म, वय, मान आदि के आधार पर खडा किया गया, हमारा नायिका-भेद का ढाँचा कितना अविश्वसनीय है, चरित्रोपाख्यान इसकी ओर स्पष्ट इगित करता है। हमारे नायिका-भेद मे दो बहुत भारी दोष हैं—प्रथम, यह 'प्रेम अथवा कामवृत्ति के बाह्य रूप को ही लेकर, दूसरे उसको स्वत. परिमित मान कर चला है'; द्वितीय, इस विभाजन का आधार है नारी के प्रति पुरुष का दृष्टिकोण। चरित्रोपाख्यान इन धारणाओ का किस प्रकार खण्डन करता है, इसका एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा। चरित्रोपाख्यान मे कई ऐसे राजाओ का वर्णन है जिनके रनिवास मे सैकडो रानियाँ हैं। साधारणतया ऐसी स्थिति मे नायिका अन्य-सुरति-दु खिता, मानवती, (धीरा, अधीरा, धीराधीरा), गर्विता आदि किसी एक कोटि मे ही रखी जायगी। इस नायिका-भेद का दोष यह है कि यह समूचे नारीवर्ग को एक इकाई मान कर उसके लिये विशेष स्थिति मे एक विशेष प्रकार की प्रतिक्रिया नियत कर देता है। चरित्रोपाख्यान नारी चरित्र की इस यान्त्रिकता का उल्लघन करता है। बहुनायिका भोगी नायक की कोई एक पत्नी

केवल दुःख, मान अथवा गर्व पर ही संतोष नही करती। वह अपने नायक की ही 'पथानुगामिनी' होकर उसके चरित्र का अनुकरण करती है। बहुनायिका-रति का उत्तर वह बहुनायक-रीति से देती है। अब उस नायिका का कौन सा 'भेद' होगा? कदाचित् उसे परिस्थिति अनुसार कभी 'दक्षिण' नायिका, कभी 'शठ' नायिका की कोटि मे रखना होगा। 'नारी सदा पुरुषाधीन रहेगी' इस खुशफहमी पर आधारित हमारे नायिका-भेद का ढाँचा यहाँ गिरता हुआ दिखाई देता है। चरित्रोपाख्यान से जो नया, कदाचित् अप्रिय, उपदेश हमे प्राप्त होता है, वह इस प्रकार है :

> नारी चरित्र का केवल पुरुष-हित की दृष्टि से मूल्यांकन एकांगी है। नारी का अपना व्यक्तित्व है, जो यन्त्र की भाँति, किसी एक लीक का सदा सर्वदा अनुसरण नही करता। पुरुष-चरित्र, उसके सत्कर्म और कुकर्म नारी चरित्र मे बड़ी अप्रत्याशित प्रतिक्रिया उत्पन्न कर सकते हैं।

इस उपदेश को अधिक स्पष्टतया से हृदयंगम करने के लिए चरित्रोपाख्यान की काम-कथाओ के वातावरण की छान-बीन करनी उपयुक्त होगी। यो तो चरित्रोपाख्यान मे नाइन, सुनारिन, जाट-पत्नी, बनिक-पत्नी आदि की भी कथायें हैं किन्तु अधिकतर राजाओ और रानियो का वर्णन ही इन कथाओ मे हुआ है। इन चरित्रो का सर्वप्रथम प्रभाव जो हम पर पड़ता है, वह है इन स्त्रियो के रूप और यौवन का। वृद्ध, नपुंसक, कुरूप पतियो का वर्णन इन कथाओ मे अवश्य मिलेगा, किन्तु नारी पात्र सदा-सर्वदा रूपवान और यौवन-सम्पन्न हैं। वस्तुतः कथा के आरंभ मे ही अपने नारीपात्रों के रूप का संक्षिप्त, एक-पंक्तीय वर्णन, इन कथाओ की विशिष्टता हैं।[1] उनके नाम भी उनके रूप, यौवन और चांचल्य के साक्षी हैं—रसमंजरी (च० ३२), प्रीतिमंजरी (च० ४१) दन्तप्रभा (६३), रूपप्रभा (च० ६७) चित्र कुअरि (च० १००), भ्रमरमती (१३७), तरुण कला (च० २१५), कटाछ कुअरि (च० २१६), विचच्छनमती (च० २३३), मदनमंजरी (च० २४५), अलिगुंजमती (च० २५७), और कजराछमती (च० २६०) आदि। वैसे तो ये इन नामो से ही स्पष्ट है कि हमारे पुरुष-प्रधान समाज मे नारी की उपयोगिता उसकी मोहिनी शक्ति मे है। इन चरित्रो मे आने वाले सभी पुरुष-पात्र, पति अथवा प्रेमी नारी को

१. कुछ एक उदाहरण इस प्रकार हैं :

(क) निरखि छपा कर की छवि लाजै।	—८१६
(ख) कमल निरखि लोचन जलत, हेरि जलत मृगराइ।	—पृ० ८२१
(ग) दिपै चारु आभा मनो राग माला।	—पृ० ८३७
(घ) जनुक चीर चन्द्रमा निकारी।	—पृ० ८८५
(ङ) दिपै चारु सोभा मनो आगि ज्वाला।	—पृ० ६४६
(च) कटि जाकी मृग राज सी मृग से नैन बिसाल।	—पृ० ११४४
(छ) जानुक चन्द्र सूर मथि काढी।	—पृ० १३३०
(ज) कंचन अवटि साँचे जनु ढारी।	—पृ० १३३३

योनि से अधिक कुछ नहीं समझते। एक स्थान (च० २८८) पर राजा अपनी मरणासन्न पत्नी का उपचार इसीलिए करता है क्योकि वह उसकी शय्या का अच्छा क्रीडा-कन्दुक है।[1] नारी ऐसे व्यवहार की प्रतिक्रिया-स्वरूप पुरुष को भी इसी दृष्टि से देखती है।

रनिवासो मे सैकडो सपत्नियाँ, दूतियाँ और नपुसक हैं। कुछ ऐसी अभागी स्त्रियाँ भी हैं जो पतिगृह मे रहती हुई भी अविवाहिता हैं। सपत्नियो, अविवाहिताओ के वातावरण मे उत्पन्न तिरस्कार की भावना और भी तीव्र करती हैं—वेश्याएँ। और जैसे इतना तिरस्कार ही पर्याप्त न हो, सन्तानहीनता, तथापि पुत्रहीनता, एक कलक के समान नारी के व्यक्तित्व को दूषित किये रहता है। इस पर नायक की महाशठता—अपनी पत्नी की उपस्थिति मे परस्त्रीगमन। कभी-कभी रूप और यौवन की अवहेलना की प्रतिक्रियास्वरूप, कभी इनकी यौन आवश्यकता की सतुष्टिस्वरूप और कभी सन्तान हीनता के कलक को धोने के लिए नारी वह कुछ करती है जिसे साधारणत दुश्चरित्रता का नाम दिया जाता है। इस मार्ग पर चलने का अतिरिक्त कारण पति की शठता भी है। रनिवासो का विरोधाभास यह है कि वहाँ नारी को योनि से अधिक कुछ नही समझा जाता, किन्तु वहाँ उसकी यौन बुभुक्षा ही सर्वाधिक अतृप्त रहती है। परानुरक्ति ऐसी अवस्था का अनिवार्य परिणाम है। चरित्रोपाख्यान पतनशील राजन्यवर्ग की दुश्चरित्रता को एक अनिवार्य और असाध्य रोग के रूप मे प्रस्तुत करता है।

चरित्रोपाख्यान की काम कथाओ के सभी नारी पात्र बडे कृतनिश्चय है। अबला की अकर्मण्यता, साहसहीनता और सावधानहीनता के विषय मे जो प्राचीन, परपरागत धारणाएँ पुरुषसमाज ने अपना रखी हैं चरित्रोपाख्यान उन्हें मिथ्या प्रमाणित करता है। नारी के सामने कोई अच्छा या बुरा लक्ष्य होना चाहिए, उसे प्राप्त करने के लिए वह अपूर्व बल और साहस बटोर लेती है। वह अपने प्रिय के लिए अपने प्राणो तक का उत्सर्ग करने मे सकोच नही करती इसका कुछ आभास हमें प्रेम-कथाओ और शौर्य-कथाओं मे मिल चुका है। काम-कथाओं मे भी हम यनतत्र नारी की एकनिष्ठता के सकेत मिलते हैं। वैवाहिक अनुशासन भग करने की दृष्टि से ये कथाएँ कामकथाएँ कहलाने की ही अधिकारी हैं, किन्तु इनमे एकनिष्ठ प्रेम के भी दर्शन होते हैं, यह भी सत्य है। काम-कथाओ मे नारी के साथ अन्याय यह हुआ कि उसे विवाह तो मिला है प्रेम नहीं, वह चाहती है कि उसे प्रेम मिले, विवाह-बधन के परपरागत अनुशासन का उल्लघन भले ही हो जाये। चरित्रोपाख्यान म ऐसी कथाओं की कमी नही, जहाँ नारी धनवान कि तु अनेको-मुख पति को छोड कर

---

१. सन बैदन सो नृपति उचारा।
याको करहु कछू उपचारा॥
जाते रानी मरै न पावै।
बहुरि हमारी सेज सुहावै।

—दशम ग्रथ, पृष्ठ १२६३

निर्धन किन्तु एकनिष्ठ प्रेमी के पास चली गई है। कुछ कथाएँ ऐसी भी हैं जहाँ विवाहित स्त्री से काम प्रस्ताव करने वाले धनवान प्रमी को अनादर सहना पडा है। निश्चय ही ऐसी कथाओं को अमिश्रित दुश्चरित्रता का प्रतीक नही कहा जा सकता। वस्तुत इन सभी कथाओं को पढ कर पता चलता है कि नारी चरित्र कोई सीधा-सादा, सहज-ग्राह्य, अमिश्र पदार्थ नही। मानव-स्वभाव की संपूर्ण वर्तुलता इस चरित्र मे मिलती है। प्रेम और काम, एकनिष्ठता और अनेकोन्मुखता, ममता और निर्ममता, धूर्तता और विश्वास, न जाने कितने विरोधी तत्वो के मेल से नारी-चरित्र बना है। इसकी अपूर्णता, इसकी वर्तुलता ही इसे हमारे लिए अज्ञेय बना देती है।

जितना न्याय इन चरित्रो मे नारी के प्रति हुआ है उतना पुरुष के प्रति नहीं। कामी और मूर्ख—इन कथाओं मे आये पुरुष चरित्र इन्ही दो विशेषणो से विशिष्ट किये जा सकते हैं। उनका काम कही भी प्रेम की अवस्था तक पहुँचता हुआ दिखाई नही देता। स्त्री पुरुषो से इतना छल इसीलिये कर पाती है कि उनका काम उन्हे अन्धा, अत मूर्ख बनाये रखता है। इसके विपरीत अत्यन्त कामुक नारी कामावस्था मे भी अत्यन्त चतुर और सतर्क दिखाई गई है।

नारी-कथा राजप्रासाद से चौपाल मे आकर अधिक चरित्रवान तो हुई किन्तु उसे अपने बाह्यरूप मे अवश्य हानि उठानी पडी। चरित्रोपाख्यान की कथाएँ सीधे-सादे, लोक-ग्राह्य ढग से कही गई हैं। उनमे वह कलात्मकता दिखाई नही देती जो रीतिकालीन साहित्य की प्रमुख विशिष्टता है। इन कथाओं का एक बडा दोष यह है कि इनकी स्पष्टवादिता कई बार अशिष्टता की सीमा को छू लेती है। चरित्रो-पाख्यान मे कई अश ऐसे हैं जो शिष्ट-मडली अथवा पारिवारिक क्षेत्र मे निस्सकोच भाव से सुने सुनाये नही जा सकते। इसकी भाषा मे सैनिक छावनी का-सा अनगढ स्वास्थ्य दिखाई देता है।

साहित्यिक परम्परा मे चरित्रोपाख्यान का स्थान—चरित्रोपाख्यान हमारी साहित्य-परम्परा मे एक अपवाद के रूप में उपस्थित होता है। यह न तो किसी पूर्व-परम्परा की अपरिशोधित विस्तृति है और न तत्कालीन साहित्यिक मान्यताओं का अन्धानुसरण।

सर्वप्रथम इसके विषय वस्तु की परीक्षा करना उपयुक्त होगा। चरित्रोपाख्यान मे, जैसा कि इसके नाम से ही प्रकट है, अनेक छोटी छोटी कथायें हैं। इनमे से अधिकाश कथाओं का केन्द्रीय पात्र कोई स्त्री है। स्त्रियो का काम, प्रेम, शौर्य और साधनसम्पन्नता इन कथाओं का विषय है। कुछ एक कथायें ऐसी भी हैं जिनका केन्द्रीय पात्र कोई स्त्री नही है। किन्तु, ऐसी कथायें इतनी कम हैं कि समग्रत यह कृति 'तिरिया चरित्तर' के नाम से ही प्रसिद्ध रही है।

हमारी पूर्वकालीन साहित्य-परम्परा मे नारी को बहुत आदरणीय स्थान नही दिया गया। वीरगाथा साहित्य मे नारी कलह का विषय रही। भक्तिकाल में नारी को निन्दा का भार वहन करना पड़ा। नाथ-योगियो से प्रभावित निर्गुणियो ने

नारी को अध्यात्म-मार्ग मे बाधा समझा और उसे त्याग देने का आदेश दिया। प्रतीक रूप मे नारी का स्थान इतना निकृष्ट नही था। कबीर और दूसरे निर्गुण भक्तो ने अपनी रहस्यवादी रचनाओ मे साधक को नारी के रूप मे प्रस्तुत किया है। प्रेममार्गी सूफियों ने उसे साधना मार्ग की बाधा (नागमती) के रूप मे भी प्रस्तुत किया है और साधक के अन्तिम प्राप्तव्य के रूप मे भी। किन्तु नारी का यह प्रतीक नारी की अपेक्षा अधिक आदरणीय होने पर भी उसकी असहाय अवस्था का ही प्रतिबिम्ब है। निर्गुण-सतो की रचनाओ मे नारी (प्रतीक) अपनी चुनरी पर दाग लगने से चिन्तित, अपने प्रिय के विरह मे विक्षिप्त, विह्वल दिखाई देती है। उसकी दर्शनाभिलाषा अपने प्रिय की कृपा-कोर की याचना मे ही अभिव्यक्त हो पाई है। जैसे गृहिणी अपने पति के सामने सर्वथा परवश है, वैसे ही साधक अपने इष्ट के समक्ष परवश है। निर्गुण-सतो मे गुरु नानक का नारी के प्रति दृष्टिकोण विशेष रूप से द्रष्टव्य है। गुरु नानक की दृष्टि अन्य निर्गुण-सतो के विपरीत नारी के मातृत्व पर गई। उन्होंने उसके मातृत्व का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए नाथ योगियो और निर्गुणियो द्वारा प्रचारित नारी निन्दा का स्पष्ट विरोध किया है और उनके पश्चात् आने वाले सभी कवि-गुरुओ की रचना मे नारी-निन्दा का स्वर सुनाई नही देता।

रीतिकालीन साहित्य मे नारी के रूप, यौवन आदि का विस्तृत गुणानुवाद हुआ। यों तो नारी के रूपादि का वर्णन वीरगाथा मे भी हुआ था और प्रेम-प्रबन्धों मे भी। सूर-तुलसी आदि सगुण भक्तों ने भी अपनी सीमाओ के भीतर इस ओर ध्यान दिया था। किन्तु रीतिकालीन कवियो ने नारी के मोहक रूप को जितने विस्तृत और ऐन्द्रिय रूप मे अकित किया वह हिन्दी साहित्य मे अपूर्व घटना थी।

सगुणोपासक सूर और तुलसी ने यशोदा, राधिका, सीता, कौशल्या, पार्वती आदि विशेष पात्रो के चित्रण मे आदर्श-नारीत्व को प्रस्तुत किया, किन्तु, इनकी सामान्य नारी-भावना निर्गुण सतो से विशेष भिन्न न थी।[१] सूरसागर और रामचरितमानस मे ऐसे बहुत से उद्धरण मिलते हैं जहाँ नारी-निन्दा का स्वर इतना ही निस्सशय है जितना कबीर, पलटू आदि निर्गुणियो की बानी मे।[२]

सक्षेप मे विभिन्न कालो मे हमारे कवियो का दृष्टिकोण नारी के प्रति इस प्रकार रहा है .

१. नारी विलास का साधन है, एव युद्ध की प्रेरणा है।

२. नारी साधना-मार्ग मे बाधा है, अत निन्द्य एव त्याज्य है।

---

१. उनकी (तुलसी की) यह विशिष्ट नारी भावना सामान्य नारी-भावना से बिल्कुल मेल नहीं खाती। जो कवि स्त्रियों के सम्बन्ध में इतने असहिष्णु हों वही अपना आध्यात्मिक अनुभूति के लिए नारी को साधन बनायें, यह विचित्र तो है ही, साथ ही उन कवियों की दुर्बलता भी कही जायगी। लौकिक भूमि पर नारी-आकर्षण को रुद्ध करने के कारण समस्त आध्यात्मिक क्षेत्र में भक्त कवियों की नारी-कल्पना तीव्र हो गई। —'आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना', पृष्ठ ६।

२. वही पृष्ठ ७।

३. नारी प्रेमातुर है किन्तु असहाय और परवश, अतः असहाय, परवश एवं प्रेमातुर साधक का प्रतीक है।

४. नारी जगत्-जननी है, अतः वन्द्य है। कम से कम वह निन्दा का विषय कदापि नहीं।

५. नारी ऐन्द्रिय सन्तुष्टि का साधन है, अतः उस का रूप, यौवन, हावभाव गेय एवं आस्वाद्य है।

गुरु गोविन्दसिंह ने किसी एक दृष्टिकोण को पूर्णतः स्वीकार नहीं किया। उपर्युक्त दृष्टिकोण एकांगी, एवं परस्पर-निवारक हैं। चरित्रोपाख्यान नारी के प्रति एकांगी दृष्टिकोण नहीं अपनाता। इस कृति में नारी-जीवन का अपेक्षाकृत बहु-पक्षीय विवेचन हुआ है, अतः यह दृष्टिकोण अधिक संतुलित और यथार्थ बन पड़ा है।

चरित्रोपाख्यान मे भी नारी विलास के साधन के रूप मे चित्रित है और युद्ध की प्रेरणा के रूप में भी। किन्तु जो नारी विलास का साधन है, वही युद्ध की प्रेरणा बन सकने मे शक्य नहीं। गुरु गोविन्दसिंह वीरगाथाकालीन राजपूत राजाओं के समान युद्ध को विलास-कर्म का सहचर या अनुचर न समझते थे। इन आख्यानों में बहुत कम आख्यान ऐसे हैं जहाँ नारी के लिये युद्ध हुआ है। जहाँ ऐसा युद्ध हुआ भी है वहाँ लेखक ने उसे स्तुति का विषय नहीं समझा। चरित्रोपाख्यान किसी शूरवीर किन्तु विलासी राजा की साहसिकता का यशोगान नहीं है।

युद्ध की प्रेरणा वे भी एक नारी, देवी चण्डिका, से ही प्राप्त करते हैं, किन्तु चण्डिका उनके लिये मात्र नारी नहीं। वह तो महाकाल का ही स्वरूप है।[1] यह विशेष रूप से द्रष्टव्य है कि चरित्रोपाख्यान का आरम्भ भी चण्डी-वन्दना से हुआ है। इस प्रकार यह रचना भी धर्म-युद्ध की तैयारी का ही एक अंग है।[2] तिरिया-चरित्र

---

१. तू नरसिंह ह्वै कै हिरनाक्ष मारयो।
तुमी दाढ पै भूमि को भार धारयो।
तुमी राम ह्वै कै दठी दैंत धायो।
तुम कान्ह ह्वै कृष्न केसी खपायो।
... ...
तुहीं काल की रात्रि ह्वै कै बिहारै।
तुही आदि उपारै तुही अन्त मारै।

—दशम ग्रंथ, पृष्ठ ८०१

२. चरित्रोपाख्यान के मंगलाचरण में वे भगवती चण्डी से 'म्लेच्छों का नाश' करने की शक्ति का वरदान ही माँगते हैं :—

तुही आपको रक्तदन्ता कहै है।
तुही बिन चिन्तान हूँ को चबै है।
... ...
तु धोधा तुही मच्छ को रूप कै है (शेष अगले पृष्ठ पर)

की रचना के लिये चण्डी की कृपा-कोर की याचना करके उन्होने एक प्रकार से एक शूरवीर का नारी-विषयक दृष्टिकोण ही उपस्थित किया है। चण्डी के सेवकों (शूरवीरो) को इस ओर से सावधान करने के लिए चरित्रोपाख्यान की रचना हुई है। जिस शक्तिमती नारी (चण्डिका) का आवाहन वे युद्ध-प्रेरणा के लिए करते हैं, उसका रूप रति का नही, उत्साह का विषय है।[1]

गुरु गोविन्दसिंह की नारी-भावना निर्गुण सतो का भी अनुसरण नही करती। उन्होने नारी का वर्णन साधना-मार्ग की बाधा के रूप मे नही किया है। वस्तुतः चरित्रोपाख्यान के लेखक-श्रोता वातावरण निर्गुण-वाणी के लेखक-श्रोता वातावरण से सर्वथा भिन्न हैं। चरित्रोपाख्यान का लेखक मुक्ति का प्रचारक नही, इसके श्रोता भी भक्तजन नही। यहाँ युद्ध अथवा युद्ध की तैयारी का वातावरण प्रस्तुत है। यहाँ नारी भक्ति-मार्ग की बाधा के रूप मे नहीं, धर्मयुद्ध की बाधा के रूप मे ही निन्द्य ठहराई गई है।

भक्तो ने नारी को प्रेमातुर, असहाय और असमर्थ समझ कर ही उसे आत्म-समर्पित भक्त का उपयुक्त प्रतीक समझा था। एक विचारधारा के अनुसार लौकिक भूमि पर नारी आकर्षण को रुद्ध करने के ही कारण सभवत. नारी आध्यात्मिक-क्षेत्र मे भक्त कवियो की नारी-कल्पना तीव्रतर हो गई।[2] इस तथ्य की अपेक्षाकृत उदार व्याख्या यह भी हो सकती है कि भक्तजन अपने पुरुष-स्वभाव जनित अहकार के निराकरण के लिये ही, भगवान के समक्ष विनम्रभाव से उपस्थित होने के लिये ही अपनी कल्पना नारी रूप मे करते थे। कुछ भी हो नारी-प्रतीक नारी के समान निन्दनीय न होकर भी नारी को विशेष आदरणीय नही बनाता। इस प्रतीक मे भी नारी का दैन्य, उसका असामर्थ्य ही उभरता है। गुरु गोविन्दसिंह ने नारी को कहीं भी दीन-हीन, असमर्थ अथवा अनाथ नहीं समझा। चरित्रोपाख्यान मे नारी की अपेक्षा

तुही कच्छ ह्वै कै समुन्द्रहि मथै है।
तुही आप दिज राम को रूप धरि है।
निछत्रा पृथी बार इक्कीस करि है।
तुही आप को निहकलकी कने है।
सबै हा मलेछान को नास कै है।
मइया जान चेरो मया मोहि की।
चहो चित्त मे जो वहै मोहि दीजै।

—दशम ग्रंथ, पृष्ठ ८१०

१. मुंड की माल दिसान को अंबर वाम करयो गल में असि भारे।
लोचन लाल कराल दिपै दोऊ भाल बिराजत है अनियारे।
छूट है बार महा बिकराल बिसाल लसै रद पंति उजयारो।
छाडत ज्वाल लए कर ब्याल सुकाल सदा प्रतिपाल तिहारो।

—दशम ग्रंथ, पृष्ठ ८१०

२. शैलकुमारी : आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना, पृष्ठ ६।

पुरुष अधिक मूर्ख, अतः असमर्थ दिखाया गया है। यहाँ पुरुष के प्रति कुछ अन्याय अवश्य हो गया है, नारी के प्रति नहीं। इन आख्यानों में नारी कहीं कामांगना, कहीं वीरांगना के रूप में चित्रित हुई है। दोनों रूप में ही वह आश्चर्यजनक साधन-सम्पन्नता और शक्ति का भण्डार है। कामांगना के रूप मे वह अपनी धूर्तता से अपने पति, प्रेमी, राज्यकर्मचारी सभी को मूर्ख बनाती हुई दृष्टिगत होती है और वीरांगना के रूप में वह अपने वीरपति की सहचरी होकर युद्धकर्म में लीन दिखाई देती है। १२८ वें उपाख्यान मे मारवार देश का राजा उग्रसेन युद्ध क्षेत्र में आहत हो कर गिर जाता है। उसकी पत्नी अपनी सखियों सहित उसकी सहायता के लिये युद्धक्षेत्र में पहुँचती है और उसके शत्रुओं को भगा कर राजा को पराजित होने से बचाती है।[1] इस प्रकार एक उपाख्यान (१०२) में कैकेयी के सारथी-कर्म और एक अन्य उपाख्यान में (१३६) द्रौपदी के युद्ध-कर्म का वर्णन है। संक्षेप से बौद्धिक और शारीरिक शक्ति में नारी पुरुष से किसी प्रकार भी कम नहीं दिखाई गई। कुल मिला वह बौद्धिक और शारीरिक शक्ति में पुरुष की अपेक्षा बलवती ही ठहरती है।

निर्गुण भक्तो में कुछ संत ऐसे भी थे जिन्होंने भक्ति प्रचार के लिए नारी-निन्दा को अनिवार्य नहीं समझा। गुरु नानक और उनके पश्चात् अन्य गुरुओं ने नारी-निंदा का स्पष्ट विरोध किया। वस्तुतः सिक्ख गुरुओं का नारी-विषयक दृष्टिकोण शुद्ध आध्यात्मिक न था। उन्होंने सामाजिक जीवन में नारी का महत्त्व स्वीकार करते हुए नाथ योगियों एवं कबीरादि निर्गुण संतों की नारी-विरोधी भावना की अव्यावहारिकता की ओर संकेत किया। सिक्ख मार्ग कबीर पंथ की अपेक्षा प्रवृत्तिमूलक था। अतः इसमें नारी एवं पारिवारिक जीवन का महत्त्व स्पष्ट रूप से

---

१. ऐसो वीर खेत तह पर्यो। एक वीर साबित न उबर्यो।
राजा जू भी खेत गिरि गए। जीवत रहे मृतक नहि भए।

—दशम ग्रंथ, पृष्ठ ९९७

मारि परे बिसभार धरा पर सूर सुभे सुभ सुद्ध अनी के।
ता पर कंत सुन्यो जु जुझ्यो दिन रैनि बसे जोऊ अन्तर जी के।
ता बिन हार सिंगार अपार सबै सजनी मुँह लागत फीके।
कै रिपु मारि मिलो मैं पिआ संग नातर प्यान करो संग पी के।

—दशम ग्रंथ, पृ० ९९८

आवत ही अति जुद्ध कर्यो तिन बाज करी रथ कोरिन कूटे।
पांसन पासि लये अरि केतक सूरन के सिर केतिक टूटे।
हेरि टरे फेऊ आनि अरे इक जूझि परे रन प्रान निखूटे।
पौन समान छुटे तिय बान सबै दल बादल से चलि फूटे।

—दशम ग्रंथ, पृ० ९९८

धन्नि रानी तैं जीति रन हमको लयो उबारि।
भान लगे चौदह भवन होर न तोसी नारि।।

—दशम ग्रंथ, पृ० ९९९

स्वीकार किया गया।[1] न केवल उसके निन्दको की भर्त्सना गुरुओ द्वारा हुई, स्त्रियो पर सती प्रथा आदि के रूप मे हो रहे घोर सामाजिक अन्याय का निराकरण भी सर्वप्रथम उन्ही द्वारा हुआ।[2]

गुरु नानक एव परकालीन गुरुओ द्वारा जहाँ निर्गुण-सतो के समान नारी-प्रतीक का प्रयोग हुआ है, वहाँ भी नारी को उसकी पारिवारिक परिस्थितियो से विमुक्त करने की चेष्टा नही की गई। यहाँ केवल दो ऐसे उदाहरण दिये जाते हैं जहाँ सास और बहू के कलह की ओर सकेत है।

१ सासु बुरी घरि वासु न देवै पिर सिउ मिलण न देइ बुरी।
सखी साजनी के हउ चरन सरेवउ हरि गुर किरपा ते नदरि धरी॥
—आदि ग्रथ, ३५५-५७

(सास बुरी है। मुझे घर मे रहने नही देती। वह इतनी बुरी है कि मुझे प्रिय से मिलने नही देती। मैं अपनी सखियो के चरण छूती हूँ जिनके कारण मुझे ऐसा गुरु मिला जिसकी कृपा से हरि (पति) ने मुझ पर कृपा-दृष्टि की है।)

२ उत्तगी पैओहरी गहिरी गभीरी।
ससुडि सुहीआ किव करी निवणु न जाय थणी।
गचु जि लगा गिडवडी सखीए धउलहरी।
से भी ढहदे डिठु मै मु ध न गरव थणी।
—आदि, ग्रथ १४१०

---

१ भडि जमीए भडि निभीए भडि मगणु वीआहु।
भडहु होवै दोसती भडहु चलै राहु।
भडु मुआ भडु भालीऐ भडि होवै बधानु।
सो किउ मदा आखीऐ जितु जमहि राजानु।
भडहु ही भड ऊपजै भडै बाझ न कोइ।
नानक भडै बाहरा एको सचा सोइ॥ गुरु नानक : (आदि ग्रथ—पृष्ठ ४७३)

भावार्थ :—स्त्री से जन्म प्राप्त करते है और उसी के गर्भ में प्राणी का शरीर बनता है। स्त्री से ही सगाई-विवाह हो। है। उसी के माध्यम से मैत्री स्थापित होती है, जगत् की उत्पत्ति का मार्ग उसी के द्वारा चलता है। स्त्री की मृत्यु पर अन्य स्त्री की खोज होती है, सब सासारिक नाते उसी के द्वारा स्थापित होते हैं। जो स्त्री राजाओं की जन्म दातृ है उसके लिये अपशब्दों का प्रयोग क्यों किया जाये? स्त्री से ही सभी जन्म पाते हैं। कोई भी जीव स्त्री के बिना जन्म नहीं पा सकता। नानक कहते हैं केवल एक सच्चा प्रभु ही स्त्री से जन्म नही पाता।

२. जले न पाईये राम सनेही।
किरति सजोग सती उठि होइ।
देखा देखी मन हठ जलि जाईऐ।
प्रिअ सगु न पावै बहु जोनि भवाईऐ।
सील सजम प्रिअ आगिआ मानै।
तिसु नारी को दुख न जमानै।
—गुरु रामदास, आदि ग्रथ

(शेष अगले पृष्ठ पर)

(हे उत्तग पयोधरो वाली, गांभीर्य धारण कर। हे सास, मैं नमस्कार कैसे करूँ। उरोजो के कारण मुझ से झुका नही जाता। चूना-गच के बने पर्वत जैसे ऊंचे राजप्रासाद भी गिरते देखे गये है। हे मुग्धा, तू अपने उरोजो का गर्व मत कर।)

इस प्रकार हम देखते हैं कि निर्गुण भक्तो मे नारी के प्रति दो विरोधी मत अपनाये गये हैं। इनमें एक मत अध्यात्म-मार्ग की आवश्यकताओ को और दूसरा भौतिक (सामाजिक) जीवन की आवश्यकताओं को ध्यान मे रखता है। गुरु गोविन्द-सिंह के मत की तुलना प्रथम प्रकार के मत से हो चुकी है।

दूसरे मत से इसकी तुलना करते समय हमे दोनो की वस्तु-स्थिति को समझना होगा। गुरु नानक की नारी-भावना, नाथो-निर्गुणियो के नारी-निन्दक प्रचार की प्रतिक्रिया मे और गुरु गोविन्दसिंह का नारी-विषयक दृष्टिकोण रीतिकालीन अनेकोन्मुख विलास-वर्णन की प्रतिक्रिया मे उत्पन्न हुआ। ये दोनो मत अपने-अपने समय के दो अव्यावहारिक, असामाजिक अतिवादो के विरोधी रूप थे। इनका 'साधारण-धर्म' है इनकी सहज अव्यावहारिकता।

चरित्रोपाख्यान का नारी-विषयक मत गुरुवाणी के मत का विरोध नही उसकी किंचित् परिशोधित विस्तृति है। गुरुवाणी नारीत्व के गौरव का अतिरजित आदर्शवादी चित्रण नही करती, वह उसके गौरव को स्वीकार करती है। नारीत्व हर दशा मे निन्दनीय समझा जाय—गुरुवाणी इस मत का खण्डन करती है। कुलटा, दुश्चरित्रा, अनेकोन्मुख नारी की स्तुति का विधान गुरुवाणी नही करती। इस सम्बन्ध मे गुरु-वाणी मे प्रयुक्त 'दुहागिन'—प्रतीक विशेष रूप से द्रष्टव्य है। परमात्मा रूपी कन्त से विमुख जीव के लिये उन्होने 'दुहागिन' शब्द का प्रयोग किया है। स्पष्ट है गुरु अपने पति से विमुख दुहागिन को उसी प्रकार निन्दनीय समझते हैं जैसे परमात्मा से विमुख मनमुख जीव को। गुरु गोविन्दसिंह का दृष्टिकोण भी इसी कोटि का सतुलित दृष्टि-कोण है। वे परकीया, सामान्या, अनेकोन्मुख कामागनाओ की निन्दा और स्वकीया, निजपति-अनुरक्ता, एकनिष्ठ सुगृहिणियो की प्रशसा करते हैं।

रीतिकालीन नारी-भावना और चरित्रोपाख्यान की नारी-भावना का विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन काम-कथाओ अथवा छल-कथाओ का विवेचन करते समय हो चुका है।

चरित्रोपाख्यान मे एक तत्त्व ऐसा भी है जो सर्वथा आधुनिक कहे जाने का अधिकारी है। वीरगाथा, भक्ति और रीति काल मे नारी की निन्दा, प्रशसा आदि तो हुई, उसके रूप को त्याज्य प्रलोभन अथवा आस्वाद्य माधुरी के रूप मे प्रस्तुत

भावार्थ :—चिता पर (जीवित) जल मरने से राम स्नेही को प्राप्त नहीं किया जा सकता। यदि कोई (स्त्री) देखा देखी हठपूर्वक जल मरे तो भी उसे प्रिय का सहवास प्राप्त न होगा और उसे बहुत-सी योनियों में भ्रमण करना होगा। जो (स्त्री) शील-संयम का पालन करती हुई अपने प्रिय की आज्ञा का पालन करती है उस नारी को यम की यातना सहन न करनी पड़ेगी।

किया गया, किन्तु नारी की वस्तु स्थिति की ओर किसी काल मे, किसी कवि ने सकेत नहीं किया—इसका विवेचन तो बहुत दूर की बात है। बाल-विवाह, विधवा-विवाह, बहु-विवाह, अनमेल-विवाह आदि समस्याओ का बोध वर्तमान युग का प्रसाद है। नारी की दुश्चरित्रता को कविजन एक आदि-पाप जैसी निरपेक्ष, स्वयभू वस्तु समझ कर उसकी निन्दा करते रहे है। नारी के दौर्बल्य मे सामाजिक परिस्थितियो का कितना हाथ है, यह कवियो के चिन्तन-क्षेत्र से बाहर की वस्तु रही।

चरित्रोपाख्यान नारी से सम्बन्धित समस्याओ की सम्पूर्ण जटिलता का विवेचन तो नही करता, किन्तु वह इनकी ओर स्थान-स्थान पर स्पष्ट सकेत करता है। मन स्थिति बाह्य वस्तु-स्थिति का ही प्रतिबिम्ब है, चरित्रोपाख्यान इस सत्य को हिन्दी साहित्य मे, कदाचित, सर्वप्रथम प्रस्तुत करता है। इस दृष्टि से चरित्रोपाख्यान को आधुनिक यथार्थवाद का अग्रवर्ती कहा जा सकता है। चरित्रोपाख्यान की परानुरक्ता नायिकाओ की वस्तु-स्थिति से सम्बन्धित कुछ उदाहरण यहाँ देने अनुपयुक्त न होंगे :

१. पति वृद्ध और काना :

महानन्द मुरदार की घुरकी त्रिय को नाम।
कोप समै निजु नाह को घुरकत आठो जाम।
एक चच्छ ताको रहै बिरधि आप त्रिय ज्वान।
सो या पर रीझत नही याके वा महि प्रान।

—दशम ग्रथ, पृष्ठ ८१६

२. पहली पत्नी के जीवित होने पर भी दूसरा विवाह करने वाला कुरुप पति :

एक वधू थी जाट की दूजै बरी गवार।
... ...
इही बीच आवत भयो जाट रीहा के रग।

—दशम ग्रथ, पृष्ठ ८१८

३ रूपवती पत्नी का कामी पति :

ताको नाम नादरा बानो।
अमित रूप ताको जग जानो।
अधिक तरुनि को तेज बराजत।
जा सम अनत न कतहू राजत।
निसदिन बास तहा करै मुगल न अनतै जाइ।
और इस्त्रियन को भजै त्रिया तो कछु न सैकाइ।
हेर मुगल अनतै रमत तरुनि धार रिसि चित्त।
कीना एक बुलाए गृह बाल वनिक को मित्त।

— ग्रथ पृ[illegible] ८३६

४. संतानोत्पत्ति में असमर्थ वृद्ध पति :

प्रेम कुअरि ताको इक रानी।
विरध राव लखि कर डरपानी।
या के धाम एक सुत नाही।
इह चिता ताके चित माही।
पुत्र न गृह या के भयो विरध गयो ह्वै राय।
केलकला तें थकि गयो सके न सुत उपजाय।
—दशम ग्रंथ, पृष्ठ ८४८

५. निस्संतान स्त्री का अनादर :

सुत विनु त्रिय चित चित्त विचारी।
क्यों न दैवगति भई हमारी।
दिज मुरि हाथ दान नहि लेही।
गृह के लोग उराँभे देही।
(उराँभे=उपालम्भ)—दशम ग्रंथ, पृष्ठ ८५६

६. वैधव्य :

कितकि दिनन राजा वहु मर्‍यो।
तिह सिर छत्र पूत विधि धर्‍यो।
को आज्ञा ताकी ते टरै।
जो भावै चित मैं सो करै।
ऐस भांति वहु काल विहान्यो।
चढ़यो वसंत सभन जिय जान्यो।
ताते पिय विनु रह्यो न परै।
विरह वान भये जियरा जरै।
विरह वान गाढे लगे कैसर वंधे धीर।
मुख फीकी वातें करे पेट पिया की पीर।
सर अनंग के तन गढे कढ़े दसऊ अलि फूटि।
लोक लाज कुल कानि सभ गई तरक दै टूटि।
—दशम ग्रंथ, पृष्ठ ८४५

७. अविवाहित 'पत्नी' :

ताके (रस राजा के) पूत होत गृह नाहो।
चिता यहै प्रजा मन माही।
तव तिह मात अधिक अकलाई।
एक त्रिया तिह निकट वुलाई।
कन्या एक राव की लही।
सो नृप के वरवे कह कही।

रायपुरा के भीतर आनी।
रोपेश्वर (राजा का नाम) मन नही मानी।
जन कहि रहे ब्याह न कियो।
ताहि विसरि चित्त तैं दियो।
तवन नारि हट्टनि हठि गही।
ताके द्वार बसि बहु रही।

—दशम ग्रथ, पृष्ठ ९६५

पूर्वकालीन नारी भावना का एक प्रमुख लक्षण उसकी एकपक्षीयता है। इस प्रकार की नारी-भावना को नारी-विषयक भावना कहना अधिक उपयुक्त और यथार्थ होगा। आध्यात्मिक जिज्ञासा मे लगे हुए पुरुष के लिये नारी बाधा है, अत: त्याज्य है, विलास-प्रिय पुरुष के लिये नारी विलास का प्रमुख साधन है, अत ग्राह्य है। इस प्रकार की भावना नारी को यदि सर्वथा जड यत्र नही समझती तो उसकी स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति का अस्तित्व भी स्वीकार नही करती। नारी की भी अपनी भावना है, इस सत्य की स्वीकृति पूर्वकालीन कवियो मे नही मिलती।

चरित्रोपाख्यान का दूसरा आधुनिक लक्षण नारी की अपनी इच्छा शक्ति, नारी के अपनी भावना की स्वीकृति है। इन आख्यानो मे नारी कामागना के रूप मे भी चित्रित हुई है और वीरागना के रूप मे भो, किन्तु उसे ऐसा बनने के लिये पुरुष का मुखापेक्षी नही होना पडा। वह पुरुष का उपकरण मात्र नही जिसे वह अपनी इच्छा एव सुविधानुसार ग्रहण कर ले अथवा त्याग दे। चरित्रोपाख्यान की काम-कथाओं का सक्रिय पात्र पुरुष नही, नारी है। राजा-रईसो की अनेकोन्मुख रति रीतिकालीन कविता का प्रमुख विषय है। चरित्रोपाख्यान का विषय है कामनियो की अनेकोन्मुख रति। कई उपाख्यानो मे दूसरी प्रकार की अनेकोन्मुखता प्रथम प्रकार की अनेकोन्मुखता के अनिवार्य परिणाम के रूप मे ही चित्रित हुई है। प्रथम प्रकार का आचरण तत्कालीन समाज द्वारा स्वीकृत होने के कारण काव्य मे चित्रित होकर सहृदयो का साधुवाद ग्रहण कर रहा था। गुरु गोविन्दसिंह ने इस प्रकार के आचरण और इस प्रकार के आचरण को चित्रित करने वाले साहित्य को निन्दनीय समझा। उसके द्वारा रचित उपाख्यान नारी-विलास का विस्तृत चित्र अकित करके समाज के सुप्त सद्विवेक को झकझोडने का प्रयत्न करता है। इस कृति की काम-कथायें, मानो अनेकोन्मुख विलास का गुणानुवाद करने वाले पुरुष समाज को सावधान कर रही हो कि नारी का भी अपना व्यक्तित्व है, अपनी भावना है जो कुण्ठित खण्डित होकर मान, विरह आदि मे ही अभिव्यक्ति नही पाती। यह ऐसी प्रवाहिणी है जो पारि-वारिक पवित्रता को नष्ट-भ्रष्ट करने वाली, पुरुष समाज की प्रतिष्ठा-भग करने वाली दिशा मे भी प्रवाहित हो सकती है।

इस विचार की पुष्टि चरित्रोपाख्यान की उन कथाओं से भी होती है जहाँ नारी को वीरागना के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। नारी चरित्र का यह चित्रण

काव्यशास्त्र में परिगणित वासकसज्जा, प्रोषितपतिका आदि नायिका भेद को अपूर्ण, अव्याप्त सिद्ध करने के लिये नहीं, अपितु नारी-विषयक परम्परागत भावना को अन्यथा सिद्ध करने के उद्देश्य से हुआ है। वीर नारी का यह चित्र न तो वीरगाथाओं में और न रीतिकालीन वीर-स्तोत्रों में ही पाया जाता है। हिन्दी साहित्य के कुछ विद्वानों को इसका खेद भी है।[1] चरित्रोपाख्यान में नारी कई बार अपने पति का रथ हांकती हुई, पुरुष भेष में पति के साथ युद्ध भूमि में शत्रुओं से जूझती हुई, पति के आहत होने पर उसकी रक्षा करती हुई दिखाई देती है। और जब पति-रक्षा और स्वदेश-रक्षा एक दूसरे से भिन्न न हो तो उन वीरांगनाओं में देशभक्ति की (भले ही परोक्ष रूप से सही) भावना का अस्तित्व भी स्वीकार करना पड़ता है। यह कहना बहुत साहसपूर्ण प्रतीत होता हुआ भी सर्वथा सारहीन नहीं कि 'खूब लड़ी मरदानी वह तो झांसी वाली रानी थी' की अग्रवर्ती नारियों के चित्र चरित्रोपाख्यान में मिलते हैं। १२८ वें चरित्र में मारवार पति उग्रसेन की पत्नी मानवती, १३६ वें उपाख्यान में द्रौपदी और १४७ वें उपाख्यान में फतेहखान की दोनो पत्नियों के चरित्र इसी प्रकार के हैं।

शिल्पविधि—चरित्रोपाख्यान-लेखक ने अपनी कथाओं में एक सुनिश्चित शिल्प-विधि का प्रयोग किया है। उसकी प्रायः सभी कथाओं को शिल्प की दृष्टि से निम्नलिखित भागों में बांटा जा सकता है :

१. वक्ता-श्रोता सम्बन्ध का कथन (अथवा पुनर्कथन);
२. नाम-धाम का संक्षिप्त किंतु सम्पूर्ण परिचय;
३. उत्थान;
४. पराकोटि,
५. उपदेश अथवा सारांश।

सकेत किया गया है जिससे एक ओर प्रत्येव उपाख्यान का सम्पूर्ण कथा योजना से सम्बन्ध स्थिर रहता है और दूसरी ओर कथा के सत्याभास का दायित्व सीधा लेखक पर नही रहता। एक औसत उपाख्यान का आरम्भ लगभग इन शब्दो मे होता है—

(क) बदसाल नृप सुतहि पठायो।
प्रात समै पुनि निकट बुलायो।
बुहरो मत्री कथा उचार्‌यो।
चित्र सिंह को भरमु निवार्‌यो।
(चरित्र १६)

(ख) सुन राजा इक और प्रसगा।
जस छल कीना नारि सुरगा।
(चरित्र ३६७)

(ग) पुन मत्री इह भाँति उचारा।
सुनहु नृपति जू बचन हमारा।
(चरित्र ३१०)

(घ) सुनहु भूप इक कथा नवीनी (चरित्र ३५५)
सुनु राजा इक कथा अपूरब। (चरित्र ३५६)
सुनु राजा इक और प्रसगा। (चरित्र ३५८)
सुनु राजा इक कथा पुरातन। (चरित्र ३६२)
सुनु भूपति इक कथा बचित्र। (चरित्र ३६३)

नाम धाम—पूर्व वक्ता और श्रोता का स्मरण करता हुआ कवि कथा के स्थान और पात्रो का सक्षिप्त किन्तु सम्पूर्ण परिचय देता है। स्थान और पात्रो—नायक और नायिका के नाम तो दिये ही जाते हैं। वह पात्रो की जाति, पद एव नायिका के रूप आदि की ओर भी सकेत कर देता है —

जोवन जब आयो अंग ताके।
साह एक आयो तब वाके।
(चरित्र ३१७)

उत्थान—कथा के इस अंश मे अधिकतर प्रेम-निवेदन (अथवा काम-निवेदन), दूती-गमन, एवं काम-चेष्टा का वर्णन रहता है। इन नारी-प्रधान उपाख्यानों में प्रेम-निवेदन सदा नारी द्वारा ही हुआ है। इस कथांश की विशिष्टता इसकी द्रुतगति में है। कवि की रुचि काम-प्रसंग को संक्षेप से कहने मे है। विस्तार के दर्शन केवल युद्ध-प्रसंग मे ही होते है :

काम-प्रसंग (संक्षिप्त)

राज सुता तिह ऊपर अटकी।
बिसरि गई सब हो सुधि घट की।
चतुरि सहचरी तहाँ पठाई।
नारि भेस करि तिह लै आई।
जब वहु तरुन तरुनि यह पायो।
भाँति-भाँति भजि गरे लगायो।

(इन प्रसंगो मे कई बार कामशास्त्र के चौरासी आसनो का उल्लेख भी आ जाता है। किंतु कवि उससे एक दो पक्तियो मे ही निवृत्त होकर आगे बढ़ता है।)

शौर्य-प्रसंग (विस्तृत)—मारवार देश के उग्रदत्त राजा पर धारवार-नरेश ने आक्रमण किया। भीषण युद्ध हुआ। मारवारपति घायल होकर गिर पड़े। उसकी पत्नी ने राजा के शत्रुओ से लोहा लेने की प्रतिज्ञा की और :

जोरि महा दल कौरि कई भट भूखन अंग सुरंग सुहाये।
बाँधि कृपान प्रचण्ड चढी रथ देव अदेव सबै बिरमाये।
वीरी चबात कछू मुसकात सु मातिन हार हिये उरझाये।
अग दुकूल फबै सिर फूल बिलोकि प्रभा दिवनाथ लजाये।
(चरित्र १२८)

तत्पश्चात् रानी का युद्ध का वर्णन तीन सवैयों, छः चौपाइयो और दो दोहो (कुल=१२ छन्दो) मे हुआ है। यह उदाहरण संक्षिप्ततम युद्ध-वर्णन का है। कई ऐसे उपाख्यान भी हैं जहाँ युद्ध-वर्णन पचास छन्दो से भी ऊपर तक व्याप्त है।

पराकोटि—काम-कथाओ मे साधारणतः कथा पराकोटि पर ही समाप्त हो जाती है। कामांगना का कुकर्म उसके पति आदि पर खुलने लगता है किन्तु वह अपनी असाधारण धूर्तता अथवा साधन-सम्पन्नता से उसे छिपा लेती है। अधिकांश (६० प्रतिशत से ऊपर) काम-कथाओं मे काव्य-न्याय नामक शिल्प-साधन का प्रयोग नहीं किया गया। कामांगनायें प्राय. अपने कुकर्मों के लिये दण्डित नहीं होती।

सारांश अथवा उपदेश—प्रथम पचास एक चरित्रों तक कवि की प्रवृत्ति उपदेशात्मक रही है। वह कथा के अन्त में स्पष्ट शब्दों में नारी-निन्दा करता हुआ अपने श्रोताओं अथवा पाठकों को नारी से सावधान रहने का उपदेश देता है। सच तो यह है कि ग्रन्थ का आरम्भिक भाग काम-कथाओं से भरा हुआ है। कवि ज्यों-ज्यों आगे बढता है वह नारी-सम्बन्धी सद्गुण—शौर्य, एकनिष्ठा—आदि का भी वर्णन करता है। ऐसी कथाओं के समावेश के साथ-साथ उसकी कथाओं से वर्जन का भाव भी कम होता है। परिणामत उसे कथा के अन्त में उपदेशमूलक सार नहीं देना पड़ता। इसके स्थान पर वह कथा में समाविष्ट मुख्य घटना अथवा घटनाओं की संक्षिप्त आवृत्ति कर देता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह संक्षेपण उपदेश की अपेक्षा अधिक कलापूर्ण एवं शिल्प-विषयक प्रौढता का सूचक है। एक बार इस शिल्प-विधि को अपना कर कवि फिर उपदेशात्मक प्रवृत्ति का आश्रय नहीं लेता।

उदाहरण

उपदेशात्मक अंत

(क) चरित्र (१०) की अन्तिम दो पंक्तियाँ।

गध्रव जच्छ भुजग गन नर बपुरे किन माँहि।
देव अदेव त्रियान के भेव पछानत नाहि।

—दशम ग्रंथ ८२३

(ख) चरित्र (१२) की अन्तिम दो पंक्तियाँ।

जो निजु त्रिय को देत पुरख भेद कछु आपनो।
ताके विधना लेत प्रान हरन करि पलक मे।

—दशम ग्रंथ, पृ० ८२७

(ग) चरित्र (१३) के अन्तिम तीन छंद

'कैसो ही बुधिजन कोऊ चतुर कैसऊ होय।
चरित चतुरिया त्रियन को पाय सकत नहि कोय ॥८॥
जो नर अपने चित को त्रिय कर देत बनाय।
जरा ताँहि जोबन हरै प्रान हरत जम जाय ॥९॥
त्रियहि न दीजै भेद ताहि भेद लीजै सदा।
कहत सिम्रिति अरु वेद कोकसारऊ यौ कहत ॥१०॥

(घ) चरित्र (१५) के अन्तिम दो छन्द

सकल जगत में जे पुरखु त्रिय को करत बिस्वास।
सांति दिवस भीतर तुरतु होत तवन को नास ॥११॥
जो नर काहू त्रिया को देत आपनो चित्त।
ता नर को इस जगत मैं होत पुआरी नित्त ॥१२॥

कथासार अंत

(क) राजा को करि वसि लियो दीनो जार निकारि।
सखियन मैं साची भई तौने सखी सेधारि। —चरित्र १३२
नृपसुत को भर्ता कियो चतुरा चरित सुधारि।
मन मानत को वरु वर्‍यो देवकाजि महि भारि। —चरित्र १३५
इह छल अवला असुर हनि नृपहि वरयो सुख पाय।
सकल प्रजा सुख सौं बसी हृदै हर्ख उपजाय।
—चरित्र ३३१

कई कथायें ऐसी भी मिलती है जहाँ पूर्व-वक्ता-श्रोता निर्देश तथा उपदेशात्मक अन्त (अथवा कथासार अंत) का सर्वथा अभाव है। कथा देश और पात्रो के नाम से आरम्भ होकर द्रुत गति से अपने लक्ष्य की ओर बढती है और पराकोटि पर जा कर समाप्त हो जाती है। इस प्रकार शिल्पविधि की दृष्टि से ये चरित्रोपाख्यान आधुनिक युग की छोटी कहानी के सर्वथा निकट हैं। यह नैकट्य और भी सार्थक प्रतीत होता है जब हम देखते हैं कि चरित्रोपाख्यान मे उपाख्यान की अपेक्षा चरित्र को अधिक महत्त्व प्राप्त हुआ है। वस्तुत अधिकाश चरित्रोपाख्यानो का कथा भाग बहुत ही नगण्य है। इन विचित्र कथाओ मे वैचित्र्य चरित्र का है, कथा का नही। इसके अतिरिक्त एक और विचारणीय बात यह है कि कवि ने अपनी उपदेशात्मक प्रवृत्ति को यहाँ तक बढने नही दिया कि वह कथा की गठन, उसके आदि, मध्य अथवा अत पर अनुचित, असह्य भार डाले। इसी कारण सुपात्रो को पुरस्कृत और कुपात्रो को दण्डित करने की प्रवृत्ति इन उपाख्यानो मे दिखाई नही देती। किसी सफल कलाकृति की यह अनिवार्य शर्त नही कि उपदेशात्मक तत्त्व प्रच्छन्न रूप से हर अच्छी कलाकृति के साथ लगा ही रहता है। जहाँ उपदेशात्मक तत्त्व को अनुपात से अधिक महत्त्व मिल जाता है वहाँ पात्रो को दण्डित या पुरस्कृत करने का भाव आख्यान की गठन को प्रभावित करता है। चरित्रोपाख्यान के रचयिता ने अपने आप को इस प्रवृत्ति से बचाया है। उन्होने पापाचार की सदा पोल खुलते, उसे सदा निरावृत्त होते नही दिखाया। उन्होने केवल पापाचार के चित्र खीच कर उसके विरुद्ध घृणा उत्पन्न करने का यत्न किया है। इस दृष्टि से भी चरित्रोपाख्यान आधुनिक छोटी कहानी का सहोदर प्रतीत होता है।

कवि की रुचि कथा कहने की है। वह ग्रन्थ पुरुष मे (कुछ एक अपवादो को छोड कर) कथा कहता है। देश, काल आदि का विस्तृत वर्णन कवि को रुचिकर नही। रूप आदि का वर्णन वह कम से-कम शब्दो मे करता है। अधिकाश कथाओं मे रूप वर्णन एक पक्ति से अधिक नही। हाँ, युद्ध-वर्णन के लिए उसे विशेष मोह है, युद्ध वर्णन के लिए वह कथा प्रवाह को रोक लेता है। अन्यथा वह एक निपुण कथाकार के समान मार्ग मे कही नही रुकता। नाटकीय शैली का प्रयोग भी कही-कही मिलता है। बीच-बीच मे सुन्दर सवाद भी सुनाई देते हैं। परन्तु कुल मिला, कवि आख्यान शैली से ही अधिक काम लेता है।

चरित्रोपाख्यान की बानगी

१. रूप भरे राग भरे सुन्दर सुहाग भरे।
मृग औ मिमोलन की मानो इह खानि हैं।
मीन हीन कीने छीन लोने है विधूप रूप।
चित्त को चुराइवे कौ चोरन समान हैं।
लोगो के उजागर है गुनन के नागर हैं।
सूरति के सागर है सोभा के निधान हैं।
साहिब की सीरी पडे चेटक की चीरी अरी।
आली तेरे नैन रामचन्द्र के से वान है।

२. विरह वान गाड़े लगे कैसक वधै धीर।
मुख फीकी वातै करै पेट पिया की पीर॥ —पृ० ८४५

३. वन माला उर मे धरो पीत वसन फहराय।
निरख दिपत दामनि लजै प्रभा न वरनी जाय॥ —पृ० ८४७

४. सब कछु टूटे जुरत है जानि लेहु मन मित्त।
ए द्वै टूटे ना जुरहि एकु सोस अरु चित्त॥ —पृ० ८५८

५. आजु सखी मैं यौ सुन्यो पह फाटत पिय गौन।
पर हियरे झगरा पर्यो पहले फटि है कौन॥ —पृ० ६२६

६. साच कहत है विरहनी रही प्रेम सौ पागि।
डरत विरह की अगनि सौ जरत काठ की आगि॥ —पृ० ९२७

७ बैठी हुती सखी मिद्धि (मध्य) अलीन मो दीनदयाल सो नेहु नवीनो।
वैननि चित्त करे चित्त मे इत नैननि प्रीतम को मनु लीनो।
नैन की काल को वीचल देखि सुसु दरि घात चितैबे को कीनो।
ही लखि पाइ जभाइ लिई चुटकी चटकाइ बिदा कर दीनो।
—पृ० ६३३

८. हरिजा असि ऐसे सुन्यो करत एक ते दोय।
विरह वढारिन जे वधे एक दोइ ते होय॥ —पृ० ६४३

९. बीन सकै विगसै नहि काहू सौ लोक की लाज बिदा करि राखे।
वीरी चवात न वैठि सकै बिलमै नहि बाल हहा करि भाखे।
इन्द्र को राज समाज न सो सुख छाडि छिनेक विखै दुख गाखे।
तीर लगो तरवारि लगो न लगो जिनि काहू सौ काहू की आखे।
—पृ० ६५०

१०. बात विदा की सुनी जब ही बिन चैन भई न सुहावत जीकी।
लाल गुलाल सी बाल हुतो तत्काल भई मुख की छबि फीकी।
हाथ उचाइ हनी छतिया उर पै लसै यौ मुंदरी अंगुरी की।
देखन की पिय कौ तिय की प्रगटी अखियां जुग जानु कहो की।
—पृ० ६६३

११. आजु पयान करौंगी तहाँ सखी भूखन वस्त्र अनूप बनाऊँ।
मोत के धाम बद्यो मिलिबो निसि होत नही अब ही मिलि आऊँ।
सावन भो मन भावन के लिए सात समुंद्रन को तरि जाऊँ।
कोरि उपाय करो सजनी पिय को तन कै तन मेटन पाऊँ।
—पृ० ६६३

१२. पीय कियो परदेस पयान गए कतहूँ उठि बंधव दोऊ।
हौ बिललात अनाथ भई इत अन्तर की गति जानत सोऊ।
पूत रहे सिस मात पिता कबहूँ नहि आवत ह्याँ घर खोऊ।
वैद उपाय करो हमरो कछु आंधरी सासु निवास न कोऊ।
—पृ० १०७२

१३. आय हुती बनि एक बाला राग माला सम,
मेरे गृह माझ रू दीपमाला जनु बैगई।
बिछुआ को बिझक सो बोछु सो डसाय मानो।
चेटक चलाय निजु चेरो मोहि कै गई।
दासन की दिपत दिवाने देव दानौ कीने,
नैनन की कोर सौ मरोरि मन लै गई।
कंचन से गात रवि थोरक चिलचिलात,
दामनी सी कामनी दिखाई आनि दे गई।
—पृ० १०७६

१४. (वृद्धावस्था)
केसन प्रभा जात नही कही।
जानुक जटन जानुवी बही॥
कैधों सकल दुग्ध सौ धोए।
ताते सेत बरन कच होए॥
मुकतन हीरन के बहुत इन पर किये सिंगार।
ताते तिनकी छवि भए तरुनि तिहारे वार॥

कैधों सकल पुहप गुहि डारे।
ताते कच सित भये तिहारे॥
ससि की जोनि अधिक घो परी।
ताते सकल स्यामता हरो॥ —पृ० ११९४

१५. मधुरी मूरति मित्त की बसी चित्त में चोन।
बहुरि निकासे जाहि नहि नैना भये रंगीन। —पृ० ११५३

१६. मनभावन के नैन दोऊ चुभे चित्त के माहि।
सेलन ज्यों सर कै परे नाहि निकारे जाहि। —पृ० ११५३

१७. नैन पिया के पारधी मन मैं किया निवास।
काढ़ि करेजा लेहि जनु याते अधिक विस्वास। —पृ० ११५३

१८. नैन पिया के पालने करि राखे करतार।
जिन महि जनु झूलहि घने हम से वैठि हजार। —पृ० ११५३

१९. नैन रसीले रस भरे झलक रसन की देहि।
चंचलान के चित्त कौ चमकि चुराये लेहि॥ —पृ० ११५३

२०. सीसे सराब कि फूल गुलाब कि मत्त किधौ मदरा के से प्यारे।
बानन से मृग बारन से तरवारन से कि बिखी बिखियारे।
नारिन के कजरारन के दुख टारन है किधौ नीद निदारे।
नेह जगे कि रंगे रग काहू के मीत के नैन सखी रसियारे॥
—पृ० ११३०

२१. बस्त्र भगौहे आजु सुभंगन मैं करौं।
आखिन की चिपिया अपने कर मैं धरौं।
बिरह मुद्रिका कानन दुहूँ सुहाइ हो।
हो, पिय दरसन कि भिच्छया माँगि अघाइ हो।
—दशम ग्रंथ, पृ० ११४६

२२. अरी बरी यह प्रीति निसु दिन होत खरी खरो।
जल सकरी को रीति, पीय पानि बिछुरे मरत। —पृ० १२५८

२३. थरहराहि थिर ना रहहि पलक नही ठहराहि।
जह लागे ए लोइना, फिरि आवन के नाहि। —पृ० ११९५

२४. निरखि नैन महबूब के नैन गडे तिन माहि।
उडे अघाते बाज ज्यों फिर आवन के नाहि। —पृ० ११९५

२५. जहाँ लगे ए लोइना तह ही के सुभये।
बहरी ज्यों कहरी दाऊ गये सु गये गये। —पृं० ११९५

२६. बिसिख बराबर नैन तवि बिधना धरे बनाइ।
लाज कौच मो कौ दयौ चुभत न तांते आइ। —पृ० ८४१

२७. जोबन जेब जगे अति सुन्दर जा तज राव जुरीं कहू नातें।
अंग हुते बृज लोग सभे हरि राय बिना इक ही इक बातें।
हाथ उचाय हनो छतियां मुसकाय लजाय सखी चहूँ घातें।
नैनन सो कह्यो ए जदुनाथ सु भौंहन सो कह्यो जाहु इहां तें।
—पृ० ६०८

२८. है बन को बसिबो दुख को कहु सुंदरि तूं संग क्यों निवहै हैं।
सीत तुसार परें तन पें सु इतो तब तौ हठ्हूँ न गहै हैं।
साल तमाल बड़े जह ब्याल निहाल तिनैं बहुधा बिलले हैं।
तूं सुकुमारि करो करतार सुहारि परे तुहि कौन उठै है॥
सीत समीर सहों तन पै सुनु नाथ तुमैं अब छाडि न जैहों।
राज तजौ सज साज तपोवन लाज धरे प्रभ संग सिधै हों।
बात इहै दुख गात सहों वन नायक के संग पात चबै हों।
—पृ० ६१३

२९. लांबी लांबी साल जहां ऊंचे बटताल,
तहां ऐसी ठौर तप की पधारें ऐसो कौन है।
जाकी प्रभा देख प्रभा खांडव को फीकी लागै,
नंदन निहारि बन ऐसो भजै भौन है।
तारन की कहा नैकु नभ न हिरायो जाय,
सूरज की जोति तहां चन्द्र की न जौन है।
देवन निहार्‌यो दैत कोऊ न बिहार्‌यो,
जहां पंछी की न गम्य तहां चीटी को न गौन है। —पृ० ६१५

३०. सात सुहागिन लै बटनो घसि लावत है पिय के तन में।
मुरछाइ लुभाइ रही अबला लखि लालची लाल तिसी छिन में।
नृपराज सु राजत है तिनमो लखि यो उपमा उपजी मन में।
सजि साज बिराजत सु मनो निसिराज नक्षत्रन के गन में।
—पृ० ६५५

३१. अंग सभे, बिनु संग सखी सिव को अरि आनि अनंग जग्यो।
तब तें न सुहात कछू मुहि को सभ खान औ पान सयान भग्यो।

झटको पटको चित ते झट दै न छुटे इह भांति सो नेह लग्यो।
वलि हौ जु गई ठग की ठगने ठग मै न ठग्यो ठग मोहि ठग्यो।
—पृ० ६५७

३२. देखें मुख जी हो विनु देखे पय हूँ न पीहो
ताल मात त्याग वात इहै है प्रतीत की।
ऐसो प्रन लेहो पिय कहै सोई काज कैहो
अति ही रिझैहो यहै सिच्छा राजनीत की।
जो कहे विकै हो पानी भरि आनि देहो
हेरे वलि जैहो सुन सखी वातचीत की।
लगन निगोडी लागी जाते नीद भूख भागो
प्यारे मीत मेरे हो पियारी अति मीत की। —पृ० ६५७

३३. आयुध धारि अनूपम सुन्दरि भूखन अंग अजारव धारे।
लाल को हार लसै उर भीतर भान ते जानु वड़े छवियारे।
मोतिन की लटकै मुख पै मृगनैनि फवे मृग से कजरारे।
मोहत है सभ ही के चितै निजु हाथ मनो वृजनाथ सुधारे।
—पृ० ६५६

३४. कोरि कलाप करै कमलाछगि द्योस निसा कवहू नहि सोवै।
सांपिन ज्यों ससके छित ऊपर लोक की लाज सभै हठि खोवै।
हार सिंगार धरै नहि सुन्दरि आंस्वन सो ससिआनन धोवै।
वेगि चलो वनि वैठे कहा तव मारग को मुनि मानिनि जोवै।
—पृ० ६७८

३५. नीच संग कीजै नही सुनहो मीत कुमार।
भेड पूछि भादौ नदी को गहि उतर्यो पार। —पृ० १०८४

३६. रोवत है सुकहूँ पुर के जन वौरे से डोलत ज्यों मतवारे।
फारत चीर सुवीर गिरे कहूँ जूझे है खेत मनो जुझियारे।
रोवत नार अपार कहूँ विसभारि भई करि नैननि तारे।
त्याग के राज समाज सभै महाराज सखी विनु आजु पधारे।
—पृ० ११२२

३७. बांक-सी वीन सिंगार अंगार से तान मृदंग कृपान कटारे।
ज्वाल-सो जौनि जुडाइ सी जेव सखी घनसार कि सार कि आरे।

रोग सो राग विराग सो बोलव वारिद बूंदन बान बिसारे।
बान से बैन भला जैसे भूखन हारन होहि भुजगम कारे।
—पृ० ११०९

३८. एकत बोलत मोर औरन दूसरे कोकिल काक हकारें।
दादर दाहत है हिय को अरु नानी परै छित मेघ फुहारें।
झिग्र करै झरना उर मांझ कृपान कि विद्दलता चमकारें।
प्रान बचे इह कारण ते पिय आस लगे नहि आजु पधारें।
—पृ० ११८१

तृतीय खण्ड

प्रथम अध्याय

दरबारी काव्य

गुरुदरबार

पूर्वपीठिका—सिक्ख गुरुओं ने न केवल भारतीय सास्कृतिक मूल्यो का सरक्षण स्वय किया, बल्कि इन्ही मूल्यो के सरक्षक, समर्थक और प्रचारक हिन्दू कवियो को प्रोत्साहन भी दिया। पजाब मे सास्कृतिक सरक्षण के दो स्पष्ट केन्द्र स्थापित हो रहे थे—राजदरबार और गुरुदरबार । जहाँ तत्कालीन राजदरबार फारसी काव्य और विद्वत्ता को प्रोत्साहन दे रहा था वहाँ गुरु दरबार म हिन्दू कवियो को आश्रय मिलना आरम्भ हुआ।

पजाब का त्रस्त और उत्पीडित जनसाधारण गुरुओ को अपना त्राता समझने लगा था। इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि गुरु को पादशाह अथवा सच्चा पादशाह गुरु की उपस्थिति मे एकत्रित सभा को दरबार अथवा दीवान, गुरु द्वारा नियुक्त प्रतिनिधियो को मसन्द अर्थात् मसनद-नशीन कहने लगे थे। गुरु-सस्था जाने अनजाने राजसत्ता के समानान्तर सत्ता के रूप मे स्थापित एव स्वीकृत हो रही थी। ऐसी दशा मे हिन्दू कवियो द्वारा सिक्ख गुरुओ को अपना अभिभावक समझा जाना स्वाभाविक सा ही प्रतीत होता है।

'आदि ग्रथ' सगृहीत गुरुवाणी एव भक्तवाणी का विषय जीव ब्रह्म का मिलन, गुरु महिमा, पाखण्ड खण्डन आदि ही रहा है। गुरु महिमा प्रसग मे भी गुरु-व्यक्ति अथवा गुरु-व्यक्तियो का स्तवन नही हुआ है। किन्तु गुरुओ और भक्तो की वाणी के अतिरिक्त तीन ऐसी वाणियाँ भी हैं जो इस नियम का अपवाद है। ये वाणियाँ हैं—सुन्दर की सद', सत्त बलवड की 'रामकली की वार' और 'भट्टो के सवैये'। यही तीनो रचनाएँ सिक्ख काव्य' परम्परा मे दरबारीकाव्य के प्राचीनतम उदाहरण हैं। 'सद' म तृतीय गुरु के स्वर्गारोहण का वर्णन है, 'रामकली की वार' मे चार गुरुओ का स्तुति-गान है। 'भट्टो के सवैये' भी प्रथम पाँच गुरुओ की प्रशसा मे रचे गय हैं। इन के परवर्ती गुरुदास और बावन कवि इसी दरबारी परम्परा से प्रेरणा ग्रहण करते हैं।

गुरुओ की अपनी वाणी के समान ही गुरुदरबारी कवियो की वाणी मे भी पजाबी और पजाबीतर काव्य परम्पराओ का समन्वय दृष्टिगत होता है। पूर्वनानक काल मे दरबारी काव्य की दो परम्परायें हमें दिखाई देती हैं। एक परम्परा तो विशुद्ध पजाबी परम्परा है । इसे 'वार'-काव्य का नाम दिया जाता है। 'वार'

किसी युद्ध-नायक के शौर्यकर्म का स्तवन नाटकीय शैली मे प्रस्तुत किया जाता है। यह उस समय की उपज है जब पंजाबियो को उत्तर-पश्चिम से आने वाले आक्रान्ताओ का सामना प्रतिवर्ष करना पड़ता था। उपर्युक्त तीन रचनाओ मे 'रामकली की वार' इसी परम्परा की क्षीण प्रतिध्वनि है। इनके अतिरिक्त राज्याश्रित भाट काव्य या चारण काव्य की परम्परा थी जो सवैया, कवित्त, पाघड़ी, छप्पय आदि मे आश्रयदाता के शौर्य एव दानवीरता का स्तवन करती थी। 'आदि ग्रन्थ' मे सगृहीत भट्टो के कवित्त इसी परम्परा मे पड़ते हैं। सक्षेप मे आदि ग्रथ मे सगृहीत दरबारी कविता पूर्वकालीन पजाबी एव पजाबीतर काव्य परम्पराओ से प्रेरणा ग्रहण करती है। भाषा की दृष्टि से भी उसमें उसी सामजस्य के दर्शन होते हैं। 'रामकली की वार' तत्कालीन पजाबी में, 'भट्टो के सवैय' में मिश्रित ब्रज में और 'सद' सधुक्कड़ी भाषा लिखी गई है।

आदि ग्रन्थ मे सगृहीत दरबारी रचनाओ की विशेषतायें :

गुरु-व्यक्ति और गुरु सस्था का स्तवन—आदि ग्रथ में गुरु एवं भक्त कवियों ने गुरु महिमा का अतिशय गायन करते समय अपनी दृष्टि 'गुरु' के सैद्धान्तिक पक्ष पर ही केन्द्रित रखी है। "गुरुकृपा' अथवा 'गुरुप्रसादि' के बिना अकाल पुरुष तक पहुँचना कठिन है"—गुरुओं एव भक्तो की वाणी बार-बार हमे यही सावधान करती है। गुरुवाणी मे गुरु के प्रति श्रद्धा, एव आत्मसमर्पण का भी विस्तृत वर्णन हुआ है किन्तु किसी व्यक्ति विशेष अथवा संस्था विशेष का वर्णन अथवा स्तवन गुरुवाणी अथवा भक्तवाणी मे नहीं हो पाया है। इसके विपरीत ये तीनो रचनाएँ गुरु के सैद्धातिक पक्ष पर नही, उसके व्यक्तित्व एवं सस्थागत महत्त्व पर बल देती हैं। यह दृष्टि-परिवर्तन इन रचनाओं को गुरुवाणी से विशिष्ट करता है। रामकली 'सदु' मे तृतीय गुरु अमरदास के देहावसान का वर्णन है। इसमे गुरु नानक और गुरु अगद के प्रसाद से परम पदवी प्राप्त करने का वर्णन है।[1] यह नानक और अगद के व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धा का ही उदाहरण है। इसी प्रकार इस रचना में गुरु रामदास को तिलक दिये जाने का भी वर्णन हुआ है।[2] इसे गुरु-सस्था के महत्त्व-निदर्शन का उदाहरण माना जाना चाहिए।

सत्ते और बलवड द्वारा लिखित 'रामकली की वार' मे भी प्रथम पाँच गुरुओं का स्तवन हुआ है। इसी रचना मे गुरु (अगद देव) को 'सचे पातिसाह' विशेषण से विभूषित किया गया है। गुरु ही नही, गुरु-पत्नि की प्रशसा भी इस रचना मे हुई है। बलवड कहता है कि 'गुरु अगद की पत्नी खीवी बहुत 'नेक जन' है। वह घनी छाया वाले पत्र-बहुल वृक्ष के समान है। वह लगर और धन-सम्पत्ति बाँटती है। उसके लगर में अमृत रस और घीपक खीर मिलती है।"[3]

---

१. परसादि नानक गुरु अगद परम पदवी पावहे। —आदि ग्रथ, पृ० ९२३

२. रामदास सोढी तिलकु दीआ।
गुर सबदु सचु नीसाणु कीउ। —आदि ग्रथ, पृ० ९२३

३. बलवड खीवी नेक जन जिसु बहुती छाउ पत्राली।
लगरि दउलति वडीऐ रसु अमृतु खीरि घिआली। —आदि ग्रंथ, पृ० ९६७

गुरु-सस्था—इस रचना में गुरु-सस्था के सम्बन्ध में पहली बार स्पष्ट रूप से एक सिद्धान्त स्थिर किया गया है। सिद्धान्त यह है कि सभी गुरु-व्यक्तियो में एक ही ज्योति विद्यमान है। गुरु नानक ने ही रूप बदल कर अगद, अमरदास, रामदास, अर्जुनदेव का व्यक्तित्व धारण किया है।[1] सत्ता और बलवड के पश्चात् भट्टों[2] और गुरुदास[3] ने भी अपने कवित्त-सवैयो में इसी सिद्धात का प्रतिपादन किया है।

अवतारवाद—गुरु सस्था सम्बन्धी इस सिद्धान्त में परोक्ष रूप से अवतारवाद की स्वीकृति तो है ही, इन दरबारी कवियो द्वारा अवतारवाद को स्पष्ट, प्रत्यक्ष रूप में भी स्वीकार किया गया है। वे न केवल विभिन्न गुरु-व्यक्तियो को नानक का रूप समझते हैं बल्कि नानक और अन्य गुरुओ को पौराणिक मतानुसार विष्णु तथा भिन्न देवताओं का अवतार भी मानते हैं। यहाँ विशेष द्रष्टव्य यह है कि इन रचनाओ में अवतारवाद की जितनी स्पष्ट स्वीकृति है, वह गुरुवाणी में सर्वथा अलभ्य है। सत्ता और बलवड गुरु नानक को 'ईसरि' और 'जगनाथ', गुरु अमरदास को 'सुजाणु पुरख' का अवतार और गुरु रामदास को 'पर ब्रह्म' का अवतार कह कर उनकी वन्दना करते हैं। गुरु व्यक्तियो के अवतार रूप में वर्णन के सबसे स्पष्ट उदाहरण भट्टो के सवैयों में मिलते है। भट्टो की वाणी से पता चलता है कि ये इतर मतावलबी थे और सत्य की खोज करते हुए गुरु अर्जुन देव के दरबार में पहुँचे। गुरु अर्जुन के दर्शन इन्हें अपनी-अपनी भावनानुसार रामरूप अथवा कृष्णरूप में हुए। तत्पश्चात् इन्होने गुरु अर्जुन एव प्रथम चार गुरुओ की महिमा का गायन अवतारवादी दृष्टि-कोण से किया। यहाँ कुछ उदाहरण अनुपयुक्त न होगे '

गुरु नानक

सतजुगि तै माणिओ छलिओ बलि बावन भाइयो।
त्रेतै तै माणिओ रामु रघुबसु कहाइओ।
दुआपरि कृसन मुरारि कसु किरतारथु कीओ।
उग्रसैण कउ राजु अभै भगतह जन दीओ।
कलिजुग प्रमाणु नानक गुरु अगद अमर कहाइओ।[4]

गुरु अगद

तू ता जनिक राजा, अउतारु सबदु ससारि सारु।
रहहि जगन जल पदम बीचार।[5]

---

१. जोति ओहा जुगति सोइ सहि काइआ फेरि पलटीऐ। —आदि ग्रथ, पृ० ६६६

२. नानकु तू लहणा तू है गुरु अमरु तू वीचारिआ। —आदि ग्रथ, पृ० ६६८

३. अदभुत अनहि अनूप रूप पारस पै पारस।
गुरु अगद मिल अग सग मिल रग सुधारस।
अकल कला भरपूर सूत गति ओत पोत महि।
जग मग जोति सरूप जोति मिल जोति जोति महि ॥१

—कवित्त सवैये भाई गुरदास, पृ० २

४. आदि ग्रथ, पृ० १३९०

५. वही, पृ० १३९१

गुरु अमरदास

आपि नराइणु कला धारि जग महि परवरिउ ।[1]

गुरु रामदास

नारद ध्रू प्रहलाद सुदामा पुब भगत हरि के जु गणं ।
अंबरी कु जयदेव त्रिलोचनु नामा अवरु कबीरु भणं ।
तिन को अवतारु भयउ कलि भितरि जसु जगत्र परि छाइयउ ।
स्री गुर रामदास जयो जय जग महि तैं हरि परम पद पाइयउ ।[2]

गुरु अर्जुन देव

भनि मथुरा कछु भेदु नही गुरु अरजुनु परतख्य हरि ।[3]

कुछ एक स्थलो में तो यह अवतारवादी स्तवन कृष्ण काव्य के समस्त रूप विधान सहित प्रस्तुत हुआ है। गुरु रामदास विष्णु के अवतार रूप में इस प्रकार चित्रित किये गये हैं :

कवल नैंन मधुर बैंन कोटि सन संग सोभ,
कहत मा जसोद जिसहि दही भातु खाहि जीउ।
देखि रूपु अति अनूपु मोह महा मग भई,
किंकनी सबद झनतकार खेलु पाहि जीउ ।[4]
... ...
सुथर चित भगत हित भेखु धरिओ,
हरनाखसु हरिओ नख बिदारि जीउ ।
संख चक्र गदा पदम आपि आपु कीओ छदम,
अपरपर पार ब्रह्म लखै कउनु ताहि जीउ।
... ...
पीतबसन कुंद दसन प्रिआ सहित कंठ माल
मुकटु सीसि मोर पख चाहि जीउ ।

यह अवतारवादी दृष्टिकोण गुरुवाणी के व्यापक दृष्टिकोण से सर्वथा भिन्न है और आश्चर्य होता है कि इन्हें आदिग्रंथ में स्थान कैसे मिला ! इसीलिए सिक्ख विद्वानों मे एक ऐसा वर्ग भी है जो इस वाणी को आदिग्रन्थ का अंग मानना नहीं चाहता है। दूसरे कुछ विद्वान् ऐसे हैं जो इस मतिवाद का विरोध करने के लिये इन रचनाओं की व्याख्या सिद्धान्तवादी दृष्टिकोण से करते हैं। गुरुवाणी के प्रसिद्ध टीकाकार भाई साहब सिंह की टीका में यह सिद्धान्तवादी आग्रह अत्यन्त स्पष्ट है। किन्तु इन सवैयों की अवतारवादी प्रवृत्ति कितनी स्पष्ट है इसका कुछ अनुमान इस बात से

१. आदि ग्रन्थ, पृ० १३९५।
२. वही, पृ० १४०५।
३. वही, पृ० १४०९।
४. वही, पृ० १४०२।

लगाया जा सकता है कि प्रसिद्ध सिक्ख कवि संतोखसिंह ने इन भाटों को भी विभिन्न वेदों और श्री कमलासन का अवतार माना है जैसा कि निम्नलिखित उद्धरण से स्पष्ट है :

इक इक वेद चतुर वपु धारे,
प्रगट नाम तिन कहों निसंस।
पूरव सामवेद के इह में,
मथुरा जालप वल हरिबंस।
पुनि ऋगवेद कल्य जल नल त्रै,
क्लसहार चौथे गिनि अस।
भये यजुर के टल्य सल्य पुनि,
जल्य भल्य उपजे दिजवंस।
वहुर अथरबण दासरू कीरति,
गनि गयद सदरग सुचार।
कमलासन को भिक्खा नाम सु,
इह सभ तें भा अधिक उदार।[1]

गुरु अर्जुन के पश्चात् गुरु हरिगोविंद के दरबार में भी कुछ कवि 'वार' सुना कर श्रोताओं में वीर रस का सचार करते थे, ऐसा उल्लेख भी इतिहास मे मिलता है। दशम गुरु के आश्रय में बावन कवियों की रचनायें इसी परम्परा का अनुसरण हैं।

बावन कवि

सिक्ख संगतो में ऐसा विश्वास बहुत देर से चला आ रहा था कि गुरु गोविन्द-सिंह के दरबार मे बावन कवि उपस्थित रहते थे जो अपनी काव्य-रचना द्वारा आनन्दपुरीय सैनिकों, सगति और सतिगुरु को प्रसन्न किया करते थे। इधर-उधर इन कवियों की कुछ रचनायें भी बिखरी हुई मिलती थीं जो इस विश्वास को पुष्ट करती थी। स्वय गुरु गोविंदसिंह द्वारा लिखित दशम ग्रंथ मे राम, श्याम और काल इन तीनों उपनामों का प्रयोग हुआ है। कुछ विद्वान् इन तीन को भी हजूरी कवि मानते थे।

गुरु गोविन्द सिंह के सर्वप्रथम जीवनचरित गुरशोभा की रचना तो उन्ही के एक हजूरी कवि सेनापति द्वारा हुई थी। उनके स्वर्गारोहण (सन् १७०८ ई०) के ८९ वर्ष उपरान्त उनके दूसरे जीवन चरित गुरुविलास (सन् १७९७ ई०) की रचना हुई। इस चरितकाव्य मे भी हजूरी कवियों की ओर स्पष्ट सकेत है। गुरुविलास से ऐसा प्रतीत होता है कि गुरु गोविन्दसिंह द्वारा गुरुपद ग्रहण के पूर्व ही कवि गुरु दरबार मे विद्यमान थे। गुरुपद ग्रहण करने के सुअवसर पर अनेक कवि उनकी प्रशसा करते दिखाई देते हैं :

---

१. गुर प्रताप सूर्य रासि ३, अ : ४८

इम विधि सों उपमा करी कहि कवि अनिक प्रकार।
खुसी भये महाराज कह, मांगहु सकल सुधार॥[1]

गुरु जी प्रशंसा में 'रार करै तुम सो चवगत्ता' इस समस्या से सम्बोधित सवैयों में उदाहरण स्वरूप एक सवैया यहाँ उद्धृत करना अनुपयुक्त न होगा

धीरज धाम अराम कृपानिधि एक अकाल जू के रस रत्ता।
मीर सु पीर सिंहासन ऊपर गाजत यों जन वासर पत्ता।
साहिब दीन दयाल सिरोमणि आप धरयो तुमरे सिर छत्ता।
बेमुख मूढ गवार कहा इह रार करै तुम सो चवगत्ता।[2]

गुरविलास के छयालीस वर्ष पश्चात् भाई संतोखसिंह द्वारा गुर प्रताप सूर्य ग्रंथ (रचनाकाल सन् १८४३ ई०) की रचना हुई। भाई संतोखसिंह ने अपने ग्रन्थ में इन कवियों का न केवल यथोचित उल्लेख किया बल्कि उनकी बिखरी हुई वाणी को एकत्रित करने का भी यत्न किया। हजूरी कवियों के मुक्तक छन्दों को संकलित करने का श्रेय भाई संतोखसिंह जी को ही है। इन्होंने कुल मिला कर तेंतालीस छन्दों का उद्धार किया। हजूरी कवियों के मुक्तक छन्दों का यही अन्तिम एवं प्रामाणिक संकलन अब तक प्राप्त है। इनके उत्तरकालीन विद्वानों ने न तो इन छन्दों की संख्या में कोई अभिवर्धन किया है और न इनकी प्रामाणिकता पर संदेह किया है। सिक्ख धर्म के विश्वकोश—गुरु शब्द रत्नाकर—के लेखक ने भी इन छन्दों को प्रामाणिक मानते हुए यथास्थान उन्हें उद्धृत किया है।

अब तक जिन कवियों की कोई न कोई रचना प्राप्त हो सकी है, उनके नाम इस प्रकार हैं—

१ हंसराम (महाभारत कर्ण पर्व का अनुवाद)
२ कुवरेश (महाभारत द्रोण पर्व का अनुवाद)
३. टहकन (महाभारत अश्वमेध पर्व का अनुवाद)
४. सेनापति (चाणक्य नीति का अनुवाद) (गुरशोभा, मौलिक प्रबन्ध)
५. अणीराय (जगनामा, मौलिक प्रबन्ध)
६. अमृतराय (चित्र विलास)
७. आसासिंह (फुटकर छन्द)
८. आलिम
९ सुदामा
१०. हीर
११. चन्दन
१२ धन्नासिंह
१३. मंगल

---

१. गुरविलास, पृ० १००
२ वही, पृ० ९८

१४. सुन्दर
१५. शारदा
१६. नन्दलाल (फ़ारसी गजलें)

बहुत से कवियों की रचना आज उपलब्ध नहीं है। किंवदन्ती यह है कि इन कवियों द्वारा अनेक संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद हुआ और अनूदित एवं मौलिक रचनाओं के संकलन-स्वरूप 'विद्या धर' नामक ग्रन्थ की रचना हुई थी। जब आनन्दपुर के युद्ध मे गुरु जी ने आनन्दपुर छोड़ देने का निश्चय किया तो यह ग्रन्थ उनके साथ था। मार्ग में विश्वासघातक मुगलों ने वचन-भंग करके खालसा-सेना पर आक्रमण किया। इस अप्रत्याशित आक्रमण में सिक्ख सेना की अत्यधिक हानि हुई और यह ग्रंथ उसी युद्ध मे सदा के लिये काल-कवलित हो गया। भाई संतोखसिंह ने इस घटना का वर्णन इस प्रकार किया है:

बावन कवी हजूर गुर रहति सदा ही पास।
आवें जाहि अनेक ही, कहि जस, लें धन रास।
तिन कवियन बानी रची लिखि कागद तुलवाय।
नौ मण होए तोल महिं सूखम लिखत लिखाय।
विद्याधर तिस ग्रंथ को नाम धर्यो करि प्रीत।
नाना विधि कविता रची रखि रखि नौ रस रीति।
मच्यो जंग गुर संग वड रह्यो ग्रंथ सो बीच।
निकसे आनन्दपुर तज्यो लूटयो पुन मिलि नीच।
प्रथक प्रथक पत्रे हुते लुटयो सु ग्रन्थ वखेर।
इक थल रह्यो न, इम गयो जिसते मिल्यो न फेर।
वाहठ पत्रे कहूँ ते रह्यो अनन्दपुरि माहि।
तिन तें लिये कवित्त इह गुर जसु बरन्यो जाहि॥[1]

प्राप्त सामग्री से जिन बावन कवियो के नाम ढूंढ़ निकाले गये हैं, वे इस प्रकार हैं

(१) उदयराय, (२) अणीराय, (३) अमृतराय, (४) अल्लू, (५) आसासिंह, (६) आलिम, (७) ईश्वरदास, (८) सुखदेव, (९) सुक्खासिंह, (१०) सुखिया, (११) सुदामा; (१२) सेनापति, (१३) श्याम, (१४) हीर, (१५) हुसैनअली, (१६) हंसराम, (१७) कल्लू, (१८) कुवरेश, (१९) खानचन्द, (२०) गुणिया, (२१) गुरदास, (२२) गोपाल, (२३) चन्दन, (२४) चन्दा, (२५) जमाल, (२६) टहकन, (२७) धर्मसिंह, (२८) धन्नासिंह, (२९) ध्यानसिंह, (३०) नानू, (३१) निश्चलदास, (३२) निहालचन्द, (३३) नन्दसिंह, (३४) नन्दलाल, (३५) पिंडीदास, (३६) बल्लभ, (३७) बल्लू, (३८) बिधीचन्द,

१. गुरुप्रताप सूर्य ग्रंथ, पृ० ५७२३।

(३६) बुलन्द, (४०) वृन्द, (४१) वृजलाल, (४२) मथुरा, (४३) मदनसिंह (४४) मदनगिरि, (४५) मल्लू, (४६) मल्लू, (४७) माला सिंह, (४८) मगल, (४९) राम, (५०) रावल, (५१) रोशनसिंह, (५२) लक्खासिंह।

सिक्ख विद्वान् इन नामों के विषय मे सहमत नही हैं और न यह निश्चिय-पूर्वक कहा जा सकता है कि ये बावन कवि किसी एक ही समय आनन्दपुर मे विद्यमान थे। प्रसिद्ध विद्वान भाई वीर सिंह का मत है कि यह 'सख्या घटती बढती भी थी।'[१] उन्होने हजूरी कवियों की जो तालिका दी है उसमे उपर्युक्त कवियो में से कुछ को सम्मिलित नहीं किया और उसमे सुक्खू, सुन्दर, सोहन, दयासिंह, मधू, मानचन्द, अचलदास[२] ऐसे कवियो को सम्मिलित किया है जो उपर्युक्त तालिका मे स्थान नहीं पा सके। एक और सिक्ख विद्वान ज्ञानी ज्ञान सिंह भी उपर्युक्त तालिका से सहमत नही। ज्ञानी ज्ञान सिंह ने मद्ध, रामदास, सैना, सेखा, रामचन्द, मानी, सुन्दर, जान और ठाकुर कुछ और कवि गिनवाये हैं। यदि काहनसिंह, वीरसिंह और ज्ञानी ज्ञान सिंह द्वारा गिनवाये गये सभी कवियो को स्वीकार किया जाये तो कवियो की सख्या चौसठ तक पहुँच जाती है।

इन कवियो की नामावली का अध्ययन करने से पता चलता है कि इनमे कुछ कवि गुरु जी के सिक्ख थे। असिक्ख कवियों मे कुछ नाम मुस्लिम भी हैं। इससे अनुमान किया जा सकता है कि कुछ कवियो को स्थायी रूप से गुरु-आश्रय प्राप्त था, अन्य कवि ऐसे थे जो आनन्दपुर में गुरु दर्शनार्थ आते थे और काव्यकला मे कुछ अभ्यास रखने के कारण अपनी श्रद्धा की अभिव्यक्ति पद्य मे करते थे। यदि इन सब को हजूरी कवि मान लिया जाय तो इनकी सख्या चौसठ से भी कही अधिक होगी। स्थायी रूप से गुरु-आश्रय-प्राप्त कवियों की सख्या औपचारिक रूप से बावन ही निश्चित थी, ऐसा मानने के लिये कोई प्रमाण नही है। सक्षेप मे हम भाई वीर-सिंह के पूर्व-उद्धृत मत से सहमत है कि इन कवियो की सख्या घटती बढती रहती थी।

आनन्दपुरीय दरबार

आनन्दपुरीय दरबार के कवि आनन्दपुर के जनजीवन के अभिन्न अग थे। भरे दीवान मे गोष्ठियां सजती थी, प्रश्नोत्तर होते थे, कवियो को अपना ज्ञान एवं योग्यता दिखाने का अवसर मिलता था। इन दीवानो मे साक्षर और निरक्षर सभी प्रकार के व्यक्ति होते थे और उनके ज्ञान मे अभिवृद्धि करने तथा उनकी शकाओ का समाधान करने के अभिप्राय से ही इन गोष्ठियों का आयोजन होता था।

भाई सन्तोखसिंह ने अपने ग्रथ गुरु प्रताप-सूर्यग्रथ मे ऐसी दो गोष्ठियो का वर्णन किया है। एक बार आनन्दपुर मे महाभारत की कथा के उपरान्त गोष्ठी हुई।

---

१. गुरु प्रताप सूर्य ग्रथ, पृ० ५५६७।
२. वही, पृ० ५५६७।
३. प्राचीन ब्गता में पृ० १२।

विषय था—मरणोपरान्त व्यक्ति कहाँ जाता है ? किस प्रकार का जीवन व्यतीत करता है ? मरणोपरान्त जीवन का कुछ अस्तित्व भी है या नहीं ?[1] इस पर नन्दलाल, सेनापति, उदयराय, रावल, अल्लू, मघू, बल्लू, लक्खासिंह, ईश्वर, सुखिया, धर्मसिंह, ध्यानसिंह, मालासिंह आदि कवियो ने अपना-अपना मत व्यक्त किया और अन्त में गुरु जी ने अपने विचार बता कर इस विवाद की समाप्ति की। एक और गोष्ठी मे स्वय गुरु जी ने कवियो से कई प्रकार के प्रश्न पूछे। गुरु जी अमृत बेला मे स्नानादि के पश्चात् वस्त्र-शस्त्र पहन कर, आभूषण धारण कर सभा मे पधारते हैं और हेम-लष्टिका-धारी चोबदारो को आज्ञा देते हैं कि गुणज्ञ पण्डितो एव कवीश्वरो को बुला लायें। उनकी आज्ञा पा कर कुवरेश (केशवदास के पुत्र), गुणिया, सुखिया, वल्लभ, ध्यानसिंह आदि कवि और विद्वज्जन वहाँ एकत्रित होते हैं ?[2] गुरु जी उनसे प्रश्न करते हैं :

कहि ते सुपना पावहि प्रानी।
किम निसपति मैं शाम निशानी।
किम गोडे पर पाग रखते।
किम चीते पाछे थुक्यते।
चून पकावन जबि ही लागे।
तोरि पिछे किम जोरत आगे।
रुख बिगैर क्यो बोलन करिहै?
धनु टकार करैं क्यो नर हैं।

---

१. एक बार श्री सतिगुरु बैठे अपने भाय।
कथा भई तहि पाडवनि पड़त भारत थाय ॥१॥
तहि पाछे चरचा भई मर्यो न आवै कोइ।
क्या जाने क्या होइ तहि है वा नाही होइ ॥२॥

२. दोहा—सुप्ते निस महि सतिगुरू मनभावति करि सान।
अमृत वेला महि उठे, कीनो सौच सनान ॥१॥

चौपाई—बरन शस्न को पहिरनि करिकै। सुन्दर, अग विभूषण धरि कै।
सभा विषै कलगी धर आए। चामीकरि मयक जिम थाए।
आसतरन मखमल को कर्यो। जरी सहित गुम्फन युति लस्यो।
तिसपर थिरे बिसाल कृपाला। आय खालसागन तिस काला।
नमो करति अरु बैठति हेरे। लग्यो दिवान आनि तिस घेरे।
हेमलष्टका धारन करे। आगे चोबदार तहि खरे।
श्रीमुखते तब हुकम बखाना। गुनी कवीशर पडित नाना।
सहिहिनि को हकार ले आवहु। जहि जहिं डेरे तहां मिधावहु।
सुनिकै सवि तत्काल बुलाए। तिनको देहों नाम बताए।
केशोदास पुन कुवरेश। द्रोण परब जिन कीन अशेष।
गुणिया, सुखिया, वल्लभ आयो। ध्यान सिंह गुर दर्शन पायो

—सन्तोखसिंह 'गुर प्रताप सूर्य ग्रथ, पृ० ५५४४

कहहु तमाकू क्यो नहि छुहैं।
कथा द्वादशी किम नहि कहै ।।[१]

इन प्रश्नो के उत्तर ढूंढने के ब्याज से भारतीय पुराण से सम्बन्धित अनेक उपाख्यानो का कथन हो जाता है। इस प्रकार ये गोष्ठियाँ श्रोताओ का मनोरजन भी करती हैं और उनके ज्ञान में अभिवर्धन भी।

सक्षेप में यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि गुरु जी के स्तुति पाठ में ही आनन्दपुरीय दरबार के कवियो के कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं थी। वहाँ एकत्रित सिक्खों एव सेनानियो के अनौपचारिक शिक्षण कार्य का ध्यान भी इन्ही महानुभावो को करना होता था।

कई बार कवियो में नोक-झोंक भी चलती थी। एक बार चन्दन नाम का अभिमानी कवि गुरु जी के दरबार मे उपस्थित हुआ और सभी कवियों का पाडित्य परखने के लिये उसने एक सवैया पढा। उसे घमण्ड था कि कोई कवि इसके अर्थ न कर पाएगा। सवैया इस प्रकार था:

नवसात तिये, नवसात किये, नवसात पिये, नवसात पियाए।
नवसात रचे, नवसात वदे, नवसात पया पहि दायक पाए।।
जोत कला नवसातन की, नवसातन के मुख अचर छाए।
मानहु मेघ के मडल मैं कवि चदन चंद कलेवर छाए ।।[२]

आनन्दपुरीय दरबार मे पाण्डित्य-प्रदर्शन एव अहकार का पोषण करने वाली कोई पूर्व-परम्परा न थी। गुरुजी ने आपने किसी कवि को इस सवैया के अर्थ करने की आज्ञा देने के स्थान पर अपने एक साईस धन्नासिह को बुला भेजा और उसे उक्त सवैया की व्याख्या करने का आदेश दिया। धन्नासिह ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की :

सुण धन्नासिह अर्थ वखाना। तिय षोडस वर्षन बयवाना।
तन षोडस सिगार सुहायो। षोडस मासन महि पिय आयो ।।
षोडस घर को चौपट रच्यो। षोडस दाव लाय सुख मच्यो।
सोई षोडस प्यारो लायो। षोडस की बाजी जय पायो ।।
षोडस कला चन्द मुख जोई। हांर पाय तिय छादति सोई।
मनहु मेघ महि निसपति छायो। इस अचरि महि मुखि दरसायो ।।[३]

धन्नासिह के अर्थों पर चन्दन कवि आपत्ति न कर सका। किन्तु उसका अहकार सहज में ही शात होने वाला न था। उसने धन्नासिह की व्याख्या को गुरु की अलौकिक शक्ति का चमत्कार समझा। उसका गर्व-भजन सम्यक् रूप से करने के लिये धन्नासिह ने दो सवैये पढे जिनके अर्थ उसे करने थे

१. सन्तोखसिंह गुर प्रताप सूर्य ग्रथ, पृ० ५५४४-४५
२. वही, पृ० ५५६३
३. वही, पृ० ५५६४

मीन मरे जलके परसे कबहू न मरे पर पावक पाए।
हाथी मरे मद के परसे कबहू न मरे तन ताप के आए॥
तीय मरे पिय के परसे कबहू न मरे परदेश सिधाए।
गूंढ मैं बात कही दिजराज! विचार सके न बिना चित लाए॥
कउल मरे रवि के परसे कबहू न मरे ससि की छवि पाए।
मित्र मरे मित के मिलिबे कबहू न मरे जब दूर सिधाए॥
सिंघ मरे जवि मास मिले कबहू न मरे जवि हाथ न आए।
गूढ मैं बात कही दिजराज! विचार सके न बिना चित लाए॥'[1]

ये सवैये उलटवासी परम्परा की विस्तृति नही है। छन्द की नियमित यति का प्रयोग यहाँ नही हुआ। यदि प्रत्येक पक्ति मे यति 'कबहू न' के बाद रख दी जाये तो सवैया का सीधा सरल अर्थ समझ मे आ जाता है। चदन की अभिमानाच्छादित बुद्धि इस सारल्य तक न पहुँच सकी। अभिमान का निराकरण हो चुकने पर गुरुजी ने इस कवि को भी अपनी सभा मे आश्रय दिया।

ऊपर आनन्दपुरीय दरबार का जो सक्षेप-सा चित्र 'गुरु प्रताप सूर्य ग्रथ' के आधार पर उपस्थित किया गया है, निश्चय ही उसमे यथार्थ और कल्पना का मिश्रण है। तो भी इसमे कल्पना सत्य को आघात पहुँचाती दृष्टिगत नही होती। कवियो के नाम, कवियो की उद्धृत कवितायें आदि के विषय मे किसी प्रकार का मतभेद नही। सिक्ख धर्म के इन्साइक्लोपीडिया—महान्‌कोष—के लेखक इन तथ्यों का समर्थन करते हुए प्रतीत होते हैं। इनके आधार पर यह कहा जा सकता है—

(क) आनन्दपुरीय दरबार मे एक ही समय कई कवियो को आश्रय प्राप्त था। उनकी रचित कवितायें सुनी जाती थी एव उनकी अनूदित रचनाओ (महाभारत) की कथा भी होती थी।

(ख) ये कवि आनन्दपुर के सास्कृतिक जीवन के अभिन्न अग थे और इनके पाण्डित्य एव काव्य-कौशल से लाभान्वित होने का अवसर जनसाधारण को मिलता था। परिणामस्वरूप निम्न जातियो अथवा निम्न पेशों से सम्बन्धित व्यक्तियो का ज्ञान-वर्धन एव सुरुचि का परिष्कार होता था।

(ग) ये कवि अनिवार्यतः सिक्ख धर्म के अनुयायी नही थे। इन गोष्ठियो मे अनेक मतवादो से सम्बन्धित कवि उपस्थित रहते थे और इनका वातावरण असकीर्ण एव उदार रहता था। परिणामत श्रोताओ को विशाल हिन्दू-सस्कृति के विभिन्न पक्षों एव दृष्टिकोणों से परिचय प्राप्त करने का सुभीता रहता था।

विषयवस्तु :

(१) शौर्य-वर्णन—हजूरी कवियो द्वारा चित्रित गुरु गोविन्दसिंह के चरित्र की प्रमुख विशेषता उनकी शूरवीरता है। प्राप्त छन्दो मे सर्वाधिक सख्या ऐसे छन्दो की है जिनमे गुरुजी का योद्धा रूप चित्रित है। इन छन्दो मे भिन्न भिन्न कवियो ने बडी तन्मयता से गुरुजी को सेना सचालन करते, कृपाण ग्रहण करते, रणभूमि मे

१. सतोखसिंह : गुर प्रताप सूर्य ग्रथ, पृ० ५५६५

शत्रुओ से जूझते एव अपने पराक्रम के प्रभाव से रणक्षेत्र से दूर शत्रुओ एव शत्रु-पत्नियो को त्रासित करते दिखाया है। निश्चय ही इन छन्दो मे गुरु गोविन्दसिंह एक यशस्वी एव पराक्रमी योद्धा के रूप मे उभरते हैं।

एक छन्द से ऐसा भी प्रतीत होता है कि कवि युद्ध क्षेत्र से बहुत दूर न थे। जिन दिनों आनन्दपुर मे भयानक युद्ध हो रहा था, ये कवि अपने काव्य-सृजन मे व्यस्त थे। कदाचित् काव्य-कर्म युद्ध-कर्म के पूरक रूप मे ही चल रहा था। जिस छन्द का उल्लेख ऊपर हुआ है उसमे एक ऐसी घटना (विचित्रसिंह का हाथी से युद्ध) का वर्णन है जिसके कुछ ही दिन बाद गुरुजी को आनन्दपुर छोडना पडा था। सेना बिखर गई और उसके साथ कवि भी। निश्चय ही यह छन्द युद्ध के दिनो मे ही रचा जा सकता था। अत. यह निष्कर्ष अनुपयुक्त प्रतीत नही होता कि हजूरी कवि अत्यन्त गाढे दिनो मे भी गुरुजी के निकट थे। छन्द इस पकार है .

श्री गुर गोविंद खग्ग गह्यो अरि फौजनि के इम सैल बिभैलहि।
साग सभारि दई गज सीस, असीस दई हरि घूमति गैलहि॥
घायन ते भभकै निज श्रौन फुहारनि लौ उपमा छवि फैलहि।
दो भुज हेल मनो हनुमान हिलावति जानि सजीवनि सैलहि॥[1]

खेद है कि इस प्रकार के और छन्द आज प्राप्य नही। यह अनुमान किया जा सकता है कि आनन्दपुर छोडने समय जो रचनाएँ नष्ट हुईं उनमे युद्धकाल मे रचे छन्द भी रहे होंगे। जो छन्द हमें आज प्राप्त है वे उस समय के प्रतीत होते हैं जब आनन्दपुर घेरे मे नही आया था। श्रद्धालु सिक्ख आनन्दपुर मे निर्बाध रूप से आ-जा सकते थे। उन्ही के साथ हजूरी कवियो के कुछ छन्द भी आनन्दपुर से बाहर आये और सुरक्षित रहे। अत ऐसे छन्दो में गुरु गोविन्दसिंह के महत्त्वपूर्ण युद्धो का उल्लेख न होना अस्वाभाविक नही।

जो छन्द आज प्राप्य हैं, उनकी सदाशयता विवाद का विषय नही। चिन्ता का विषय यह है कि उनमे गुरु जी के युद्ध-कर्म का वास्तविक महत्त्व ग्रहण करने अथवा उनके युद्धोद्देश्य को हृदयगम करने की क्षमता नही है। युद्ध किन से हो रहा है और क्यों ? इसका कुछ पता इन छन्दो मे नही मिलता। अरि, वैरिनि, द्रुजन, रिपु आदि शब्दों का प्रयोग अवश्य हुआ है, किन्तु कुछ इस प्रकार से कि इनसे कोई वैशिष्ट्य प्रतिपादित नही होता। ये छन्द थाडे से परिवर्तन के साथ किसी भी योद्धा अभिभावक के लिये तदाश्रित कवि कह सकता है। यहाँ दो उदाहरण पर्याप्त होंगे :

१ डुललति अपर नरेश पत्ति हत्यहि जिम हल्लै।
सूखति सायर सलल, सक धूम्र धाम न चल्लै॥
खलक खैल खलभलति भैल भग्गहि तिलोक महिं।
पलक पेल गढि लेति हेत हुकति सु जग महिं।

---

[1] गुर प्रताप सूर्य ग्रथ, रु० ५७।७।

कहि हसराम सति सिमर कै सकुच रहति दिगपाल तबि ।
घसमसति धरन दल भार ते सो बिरचराय गोविंद जबि ॥[1]

२ हूरनि को नर सूर मिले, वर चौसठि जोगनि सैन अघाई ।
देति असीस सबै मिलि जबुक, गोघनि ते रणभूम सुहाई ॥
छाडि सुहाग लिये विधवा इक बैरन की तिय को दुखताई ।
खग्ग गहे गुर गोबिंद के हरि नारद के घर होत बधाई ॥[2]

ये छन्द गुरुजी की शूरवीरता मे लिखे छन्दो के आदर्श उदाहरण हैं। स्पष्ट है कि ये युद्ध का सामान्य वातावरण उपस्थित करते हैं, विशिष्ट वातावरण नही। दोनो छन्दो मे 'गोविन्द' अथवा 'गुरु गोविन्द' को बदल देने पर यह किसी भी और आश्रयदाता के दरबार मे सुनाए जा सकते हैं।

इस स्थिति को समझने के लिये इन छन्दो को भूषण लिखित शिवा-बावनी या शिवभूषण से सामान्य-सी तुलना ही पर्याप्त होगी। भूषण भी इस प्रकार अतिरंजित स्तवन करने के अभ्यस्त हैं किन्तु उनके अतिरंजित स्तवन मे शिवाजी के युद्ध कर्म का विशिष्ट महत्त्व कही भी लुप्त नही हुआ। शिवाजी हिन्दू राष्ट्र-चेतना के प्रतिनिधि के रूप मे उपस्थित हैं, उनका लक्ष्य दिल्ली की शासक-सत्ता से सत्ता हस्तगत करना है—भूषण की वाणी इन महत्त्वपूर्ण तथ्यो की कही अवहेलना नही करती। हजूरी कवियो के सामने युद्धोद्देश्य की ऐसी स्पष्ट एव विशिष्ट रूप-रेखा नही। आनन्दपुर मे जिस नवचेतना का जागरण हो रहा था, उसका हल्का-सा आभास भी इन छन्दो मे नही मिलता। गुरु गोविन्दसिंह के बल-पराक्रम का उल्लेख रूढ शैली मे एव सामान्य रूप से करने मे ही इन कवियो ने अपने कर्त्तव्य की सार्थकता समझी है। इस सामान्यता का, वैशिष्ट्य की इस उपेक्षा का कारण क्या है ?

एक कारण की ओर सकेत ऊपर किया ही जा चुका है। ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि एक अपवाद के अतिरिक्त लगभग सभी प्राप्त छन्दो की रचना मुगल आक्रमण से पहले हुई थी। अत उनकी रचना मे युद्ध-कर्म के महत्त्व का सम्यक् समावेश नही हो पाया। इस तर्क से भी इस प्रश्न का सतोषजनक उत्तर नही मिलता। मुगल सेना के आक्रमण से पूर्व जिन युद्धो में गुरुजी ने भाग लिया था, उनकी ओर एक भी प्रत्यक्ष या परोक्ष सकेत इन छन्दो में नहीं मिलता। मुगल सेना के आक्रमण से पूर्व भी आक्रमण की सभावना तो विद्यमान ही थी और यह सभावना आनन्दपुरीय जनजीवन मे प्रतिबिम्बित हुई होगी। इसका कुछ भी परिचय इन कवियों की कृतियो मे नही मिलता। यह सत्य है कि ऐतिहासिक घटनाओ का यथातथ्य अकन कवि का अभीष्ट नही होता किन्तु ऐतिहासिक वातावरण के महत्त्व की अवहेलना उच्च कोटि की काव्य प्रतिभा का परिचय नही देती।

---

१ गुरु प्रताप सूर्य ग्रन्थ, पृ० ५७१८

२. वही, पृ० ५७२२

इन कवियो के पक्ष मे यह तर्क दिया जा सकता है कि आनन्दपुरीय दरबार का वातावरण शिवाजी के दरबार के समान उग्र विरोध का नही था। स्वय गुरुजी की वाणी से ऐसी पक्तियाँ कठिनता से ही मिल सकती हैं जिनसे शासकवर्ग के प्रति उनके विरोध का स्पष्ट, असदिग्ध प्रमाण मिल सके। 'अपनी कथा' नामक ग्रथ मे तो उन्होंने बाबर परिवार की राजनीतिक सत्ता को ऐसे ही स्वीकार्य बताया है जैसे नानक परिवार की धार्मिक सत्ता को। वे कहते हैं

बाबे के बाबर के दोऊ। आप करे परमेसर सोऊ।
दीन साह इनको पहचानो। दुनी पति उनको अनुमानो ॥६॥
जो बाबे के दाम न देहै। तिनते गहि बाबर के लैहै।
दै दै तिनको बडी सजाइ। पुनि लैहै ग्रहि लूटि बनाइ।[1]

ऐसा प्रतित होता है कि आनन्दपुरीय सैनिको का प्रेरणा-स्रोत राजनीतिक महत्वाकांक्षा न होकर धार्मिक रक्षा का भाव ही है। इस भाव की ओर हमारे कवियों का भी ध्यान गया है। उन्होने गुरु गोविंदसिंह को उस विष्णु के अवतार के रूप मे ग्रहण किया है जो 'धमस्य ग्लानि' के अवसर पर भूभार उतारने के लिये सगुण रूप मे अवतरित होता है। गुरु जी की कृपाण का सम्बन्ध विष्णु के गदा-चक्र से स्थापित करते हुए एक कवि लिखता है

असुर बिदारिबे को सुरपति पारिबे को,
भगत उधारिबे को मुकति की जरी है।
अरि दल भजिबे को, गाढे दल गजिबे को,
सभि सुख सजिबे को, महासुख भरी है।
करति कलोल गुर गोविंद के कर माहि,
चक्र साथ हूँ ते मारिबे की बिधि परी है।
फते की निशानी यहि पूरब जनम हूँ की,
तबि हुति गदा अबि स्याम रग छरी है।[2]

एक ओर कवि ने इसे श्याम की बासुरी का ही रूप माना है

कान्ह ह्वै के औतर्‌यो तो मुख ही रहति लागि,
गोविंद ह्वै के औतर्‌यो तो हाथ ही रहति है।[3]

सक्षेप मे हम कह सकते हैं कि हजूरी कवियों के शौर्य-स्तवन सम्बन्धी छन्द युद्ध के लगभग सभी पक्षो का उल्लेख करते हैं किन्तु उनमें समाविष्ट वातावरण सामान्य सैन्य वातावरण है, विशिष्ट नही। वे युद्धोद्देश्य के सम्बन्ध मे भूषण के समान जागरूक नही। परिणामत वे इतने उग्र भी नही। उनका अपना वैशिष्ट्य केवल इतना है कि वे अपने वीरनायक को अवतार रूप मे प्रस्तुत करते हैं।

---

१ दशम ग्रथ, पृ० ८१
२ गुर प्रताप सर्य ग्रथ, पृष्ठ ५७२६
३ वही, पृ० ५७२६

(२) मृगया वर्णन—गुरु गोविंदसिंह के युद्धोत्साह के पूरक रूप में उनके मृगया-प्रेम का चित्रण भी इन कवियों द्वारा हुआ है। वे मृगया के लिए भी युद्ध के समान ही चाव से प्रस्थान करते हैं। युद्ध-प्रस्थान के समय जैसी दहशत शत्रु-वर्ग को छा जाती है, वैसा आतंक ही मृगया-प्रस्थान के समय भी दृष्टिगत होता है। बेचारा विभीषण युद्ध-प्रस्थान के समय भी त्रस्त है और मृगया-प्रस्थान के समय भी।[1] अरिसमूह भी घर-बार छोड़ कर भागता है।[2] शैल-शृंग दबते,[3] फणीधर के फण टूटते, दिग्गज चीत्कार करते एवं 'धौल' का धैर्य भी उनसे विदा लेता प्रतीत होता है।[4] योद्धा के समान मृगया भी गर्व-गंजन और मान-भंजन का ही साधन है। गुरु जी का 'वेसरा' सम्पूर्ण विहग-वर्ग को आतंकित कर देता है।[5] स्पष्ट है कि हजूरी कवियों का मृगया वर्णन भी युद्ध-वर्णन के समान अपने श्रोताओं में अजेय-भावना का संचरण करता होगा। अतः उद्देश्य की दृष्टि से मृगया-वर्णन को भी युद्ध-वर्णन का ही भाग समझा जा सकता है। एक उदाहरण इस प्रकार है:

बेश वेसरा है गुरु गोविंद की सरकार,
जांकी दहशति गिरे कुहन के घर हैं।
जांकी दहशति वर बाजन वर न धरें,
जांकी दहशति छूटे बहरी के वर हैं।
जांकी दहशति चारा चुगति न चक्रवाक,
जांकी दहशति शारदूल सुर तर हैं।
सगरे जहान के विहग जिन भंग कीने,
कोप सुनि आवति कुलंग पाइ तर है।[6]

मृगया उनके शौर्य से ही नहीं, दान से भी सम्बन्धित दृष्टिगत होती है। सफल मृगया से लौट कर वे एक सफल विजेता के समान ही दान वितरण करते दिखाई देते हैं:

---

१. (क) साज सिंगार चढ़े गुर गोविंद पब्यन शृंग पिसान भये नित,
लंक अतंक पुकार परी, पुरि शंक विभीखन रंक भयो तित। —गु० प्र० सू० ग्र०, पृ० ५७१३

(ख) होति है अतंक संक लंक हूं में मानियत।
रंक है विभीखन सो डोलत डहर में। —वही, पृ० ५७१६

२. परन पुकार अरि छोडे घर बार भाजै, सो तो गुरु गोविंद की सहजि शिकार है। —वही, पृ० ५७१३

३. सैल दबति, ऐल परति अलंक परि।
सैल सैल खलक खलन घर बार है॥ —वही, पृ० ५७१२

४. टूटि फनीफन छूटिगे दिग्गज।
धीरज धौल की जाइ रही कित॥ —वही, पृ० ५७१३

५. गरुर गरूर तज्यो, बाज समि बाज आए,
जोरावर जुर्रा, जानि जोर आन हैं भए। —वही, पृ० ५७१२

६. वही, पृ० ५७१२।

(बंसरा ने) चरन चपेट, चिच चोभ ते चिमिट चपि,
मारयो कुल मुरग, कलोल जीग्र मैं भये ।
ताही खिन तीखे तेज तरल तुरग केते,
मौज सों मँगाय मोल महावाहु तै दये ।

(३) दान-वर्णन—हजूरी कवियों की रचना में चित्रित गुरु गोविंदसिंह के चरित्र की दूसरी प्रमुख विशेषता है उनकी दानवीरता । इतने कवियों ने उन्हें अपने आश्रयदाता के रूप में ग्रहण किया, इसका स्पष्ट कारण उनकी अतिशय दानवीरता ही है । अतः यह स्वाभाविक ही है कि बहुत से कवियों ने उनके दानी स्वभाव का उल्लेख अनेक बार किया है । अणीराय, अमृतराय, हंसराम, कुवरेश, सुदामा, आलम, मंगल आदि अनेक कवियों ने उनके दान की प्रशंसा मुक्त-कण्ठ से की है ।

अणीराय कहते हैं कि उन्हें गुरु द्वारा 'नग, कंचन, भूखन' एवं 'हुक्मनामा' 'वखसीस' में मिला था ।[१] हंसराम ने महाभारत के कर्ण पर्व के अनुवाद करने के लिए साठ हजार टका पुरस्कार में प्राप्त किया था ।[२] अमृतराय उनके द्वारा हीर, 'चीर, मुक्ता' दिये जाने का उल्लेख करते हैं[३] और कुवरेश उन्हें सकल भूतल के कवि-बुध-वृन्द की आजीविका देने वाले मानते हैं ।[४] एक और कवि ने 'भोज की सी मौज तेरे रोज रोज पाइये' कह कर गुरु जी के दानी स्वभाव की सराहना की है । रीतिकालीन कवियों के दान-वर्णन में अतिशयोक्ति का जो तत्त्व विद्यमान है, उसकी स्थिति यदि इन कवियों के दान-वर्णन में मान भी ली जाय तो भी हंसराम द्वारा साठ हजार टका की निश्चित रकम के उल्लेख को असत्य नहीं ठहराया जा सकता ।[४] इस से सिद्ध होता है कि गुरु जी कवियों को दान देने में अतिशय मुक्त हस्त थे ।

इन कवियों की प्राप्त रचना से प्रतीत होता है कि दान मुद्राओं के अतिरिक्त वस्त्र[५],

---

१. अनीराय गुरु से मिले, दीनो ताहि असीस ।
आन कह्यो मुख आपने, बहुरि करी बखसीस ॥१॥
नग कंचन भूखन बहुर, दीनो सतिगुर ताहि ।
नामा हुकम लिखाय कै, दीनो सरम सनेह ॥२॥—अशोक : प्राचीन जगनामे—पृ० १७

२ प्रथम कृपा करि राख कर गुरु गोविंद उदार ।
टका करे बखशीश तब मोको साठ हजार॥ —गुर प्रताप सूर्य ग्रंथ, पृ० ५५६२

३. हीर चीर मुक्ता जे देत दिन प्रति दान तनै देख देख अभिलाखनि धनेरा जू ।
—गुर प्रताप सूर्य ग्रंथ, पृ० ५५६१

४. गुरु गोविंद नरिंद हैं, तेग बहादुर नन्द,
जिन ते जीवन हैं सकल भूतल कवि बुध वृन्द ।
—कान्हसिंह, गुर शब्द रत्नाकर, पृ० १०२१

५. कपर नरेश हूँ की, छोहैं शुभ बेश हूँ की,
काशमीर देश हूँ की, नरी आन धाम री ।
बनी कारीगर भारी, करी खूब गुलकारी,
पहरें भिखारी, मोल पावें लाख दाम री ।
सीन हूँ को जीत लेत, ऐसी शोभा देह देति,
मंगल सुकवि ज्यों कन्हैया जी को बागरी ।

आभूषण, नग, कंचन[1], अश्व[2], गज[3] आदि के रूप में होता था। 'हुकमनामा' भी दान मे दिया जाता है। 'हुकमनामा' गुरुजी के हस्ताक्षरो से प्रमाणित एक लिखित आज्ञा थी। जो कोई सिक्ख इसे देखता था अपनी शक्ति के अनुसार हुकमनामाधारी को भेंट अर्पित करता था। इस प्रकार हुकमनामा एक स्थायी जागीर के रूप मे रहता था। अश्वदान का वर्णन अन्य प्रकार के दान की अपेक्षा अधिक हुआ है। एकाध स्थान पर तो कवि ने अश्वदान वर्णन के बहाने अश्व-वर्णन ही कर दिया है :

> अश्व अराकवै द्वै नाव द्वै रकाव वारे,
> वारे बड़े डील पील सैनक हैं कूत के।
> चपला से चपल, चलाक चहूँ पाइ पूरे,
> पौन गौन, पल को सके न दिन दूत के।
> मन के हरन, मनमीन के दरन,
> जिनै चाहन की चाह, पातशाहन के पूति के।
> बख़्शे तिहारे गुर गोविंद जी ऐसे है,
> विरथ है, न जाइ पाइ गये पुरहूत के।[4]

जहाँ हुजूरी कवियो का दान वर्णन गुरु गोविन्दसिंह के चरित्र से पूर्ण न्याय करता प्रतीत होता है, वह यहाँ उन कवियो की कवित्व शक्ति का कोई प्रत्ययकारी प्रमाण देता दिखाई नही देता है। इन कवियों का दान वर्णन रीतिकालीन कवियो के अतिशयोक्तिपूर्ण दान-वर्णन से बहुत भिन्न नही है। यह सारी रचना एक बँधी-सी लीक पर चली है अपवाद रूप से कुछ-एक स्थलो पर कवि का विशुद्ध याचक रूप न उभर कर 'भक्त' रूप भी सामने आता है। वहाँ याचना मे भी आत्म-समर्पण का भाव झलकने लगता है। भले ही गुरु जी ने नरक-कुण्ड का भय दिखाकर अपने श्रद्धालुओ को सावधान कर दिया था कि वे उन्हें ईश्वर न मानें किन्तु श्रद्धा इस यातना से भी आतंकित नही होती। मगल कवि अपनी भावना इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं :

स्याम, सेत, पीरी, लाल, जरद, सब्ज रंग।
गुरू जी गुविंद ऐसी देत मौज पामरी। —गुर प्रताप सू० अ०, पृ० ५७२४

१. देखिए पिछले पृष्ठ की टिप्पणी

२. ऐसे गुर गोबिंद की सुकवि शरन्न ताको पूरन प्रताप जाको जग छाइयति है।
राजी हुजियति गाजियति ताके दरबार घर बाजी बाँध बाजी लेनि आइयति है। —वही, पृष्ठ ५७१७

३. हाथिनि के हलका हजारनि, गने को हय,
जटित जवाहर जो जगमग गात है।
... ...
हसराम कहित बिराजो जिन भाजो
गुर गोविंद को मांगे कविराज चले ज्यत हैं। —वही, पृ० ५७२०

४. वही, पृ० ५७१५

जांचे ध्रू पायो है अमर पुर सुर लोक,
नामा जू के जाचे दियो देहुरा फिराय जी।
विपदा में लंका दीनी जाचे ते बिभीखन को,
मंगल सुकवि जाचों मंगल सुनाय जी।
द्रौपती नगन होति जाच्यो सभा माँहि ठाढो,
अंबर लौ अंबर मही पै रहे छाय जी।
ऐसो दान देवो कौन कोऊ सतिगुर विना,
और को न जाचिये विना गोबिंद राय जी।[1]

ऐसे स्थलों पर आनन्दपुरीय दरबारी कविता का दान-वर्णन तत्कालीन दानवर्णन से स्पष्टत भिन्न प्रतीत होने लगता है।

(४) अवतार वर्णन—युद्ध-वर्णन और दान-वर्णन प्रसंग मे यह देखा जा चुका है कि कवियों ने अपने आश्रय-दाता को विष्णु के अवतार रूप मे ग्रहण किया है। गुरु गोविन्दसिंह ने अपने मानवत्व पर बल देने के लिए अपने अनुयायियो को स्पष्ट निर्देश दे रखा था कि वे उन्हें अवतार न समझें[2], किन्तु हजूरी कवियों की श्रद्धा इस प्रतिबन्ध को स्वीकार न कर सकी। उन्होंने गुरु जी के प्रत्येक कर्म का स्तवन करते समय उनके अवतारत्व को कही विस्मृत नही होने दिया। उनके युद्ध वर्णन, दान वर्णन, यश वर्णन मे कही परोक्ष कही प्रत्यक्ष रूप मे उनका अवतारत्व संलग्न है ही।

हम गुरु दरबारी कवियों की परम्परा का विवेचन करते समय देख चुके हैं कि गुरुओ को अवतार रूप में ग्रहण करने की प्रवृत्ति बहुत पुरानी है। आदि ग्रन्थ म समाविष्ट दरबारा कोटि की वाणी मे गुरुओ को अवतार रूप मे ही ग्रहण किया गया है। वहाँ अवतार भावना द्विमुखी है। सुन्दर, सत्ता-बलवंड और भाट कवि सभी गुरुओ को विष्णु एव पौराणिक देवमडल के अवतार भी मानते हैं और नानकोत्तर गुरुओं को नानक का रूप (अथवा अवतार) भी मानते हैं। गुरु गोविन्दसिंह के कवि, अपनी प्राप्त रचना मे, दूसरी कोटि म पडने वाली अवतार भावना के विषय मे सर्वथा मौन हैं। किसी कवि मे भी गुरु गोविन्दसिंह के पूर्ववर्ती गुरुओ का स्मरण करने की रुचि दिखाई नहीं देती। एक दो स्थानों पर गुरु तेग बहादुर का उल्लेख अवश्य है किन्तु गुरु गोविन्दसिंह के पिता के रूप मे गुरु नानकदेव के अवतार अथवा ज्योतिवाहक के रूप मे नहीं।[3] इन कवियो ने गुरु गोविन्दसिंह को भी कही नानक का रूप अथवा अवतार नही कहा।

इसका कारण क्या है? हमारे विचार मे गुरु गोविन्दसिंह के समय म गुरु के महत्त्व का प्रतिपादन वैसी स्पष्टता एव उस दृढता से नही हुआ था जैसा

---

१ गुर प्रताप सूर्य ग्रथ, पृष्ठ ५७२६

२ जे हमको परमेसर उचरिहैं। ते सभ नरक कुण्ड महि परिहैं॥
मोको दास तवन का जानो। या मैं भेदु न रंच पछानो।३२। —दशम ग्रथ, पृ० ५७

३ हम तेग बहादर नंद जगे, किन गोबिंद राय गुरु दरसै—गु० प्र० सू०ग्र०, पृ० ५७११

कि प्रथम पाँच गुरुओं की वाणी में हुआ है। हमारे मत में यह प्रवृत्ति सिक्खमत के उत्तरोत्तर पुराण-प्रभाव को ग्रहण करने के कारण है। गुरु गोविंद के दरबारी कवियों की सिक्ख गुरु-परम्परा के प्रति उदासीनता इस प्रवृत्ति का परिणाम एवं प्रमाण है।

हजूरी कवियों ने गुरु जी को बावन, नृसिंह, परसराम, रघुनाथ एवं कृष्ण का अवतार माना है और इस प्रकार उनका सम्बन्ध वैष्णव अवतार-परम्परा से जोड़ दिया है। स्वयं गुरु गोविंदसिंह की वाणी में भगवती चण्डी एवं महाकाल को सर्वोत्तम देव समझने का जो आग्रह है, उसका क्षीण-सा प्रभाव भी इन कवियों की वाणी में दिखाई नहीं देता। संक्षेप में इन कवियों की अवतार भावना न तो पूर्णतः आदि-ग्रंथीय है और न दशम-ग्रंथीय। यह तथ्य आनन्दपुर के असंकीर्ण एवं स्वतन्त्र वातावरण का साक्षी है। गुरु दरबारी कवियों के लिए अपनी विशिष्ट धर्म-भावना का त्याग अनिवार्य न था। यह आवश्यक न था कि आश्रयदाता की प्रसन्नता के लिये आश्रित कवि अपनी धर्मभावना को छिपाएँ अथवा उसमें संशोधन करें। सभी कवि अपनी व्यक्तिगत धर्म भावना का पालन करते हुए भी आनन्दपुर के सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन को समृद्ध बना सकते थे। यहाँ गुरु गोविंदसिंह और उनके हजूरी कवियों की अवतार भावना-सम्बन्धी उदाहरण देना अनुपयुक्त न होगा :

गुरु गोविंदसिंह।

(क) किते कृस्न से कीट कोटै बनाए।
किते राम से मेटि डारि उपाए।[१]

(ख) तात मात न जात जाकर पुत्र पौत्र मुकंद।
कौन काज कहाहिगे ते आनि देवकिनंद।[२]

हजूरी कवि :

(क) सति जुग प्रबल प्रगट परसराम ह्वै कै।
छेक छाडे छत्री कर काहूँ अत्र न धर्‌यो॥
त्रेतै रघुनाथ ह्वै कै रावन सनाथ कीनो।
गोधन खुवायो मास लंकपति जो लर्‌यो॥
द्वापर कन्हाई बनि बांसरी बजाई सुनि।
सुरि मुनि नर काहूँ धीर न तबै धर्‌यो॥
कलजुग तारिबे को साधन के पारिबे को।
सुन्दर सुरूप गुरु गोबिंद ह्वै अवतर्‌यो॥[३]

---

१. दशम ग्रंथ, पृष्ठ ४१
२. वही, ७११
३. गु० प्र० सू० ग्रं०, पृष्ठ ५७३०

(ख) रावन ते छीनि दई वरश विभीसण को,
बावन ह्वै बाध्यो बलि, जब तुम चाही है ॥
कवि चारमुख रच्यो थभ वीच नरसिंह,
प्रहिलाद जूकी पैज पूरन निवाही है ॥
गुरु जी गुबिंद राम चाहो तुम सोई करो,
बूझि देखो वेद इस बात की उगाही है ॥
और पातशाही सब लोगन को पातशाहु,
पातशाहो पर साची तेरी पातशाही है ॥[1]

स्पष्ट है कि यह अवतार भावना पूर्णत समन्वयात्मक है। प्राचीन का त्याग किये बिना नवीन समकालीन को ग्रहण करने की प्रवृत्ति यहाँ दिखाई देती है। कभी-कभी इस कवि-मडली मे कोई ऐसा कवि भी प्रवेश पा जाता है जो नवीन के ग्रहण के लिये प्राचीन का निषेध भी आवश्यक समझता था

कौनो बनारसी बास करै जहि बाशक नाग हिये मै लसै।
औध की औसर नाथ भयो रघुनाथ के पायन पाप नसै।
करि मु डन कौन सितासित मे जहि देखिकै लोक रु देव हसै।
इम तेग बहादर नद जगे, किन गोविंद राय गुरू दरसै।[2]

सक्षेप में आनन्दपुर के बाधा-हीन, असकीर्ण वायुमडल में हर प्रकार की भावना के सुरक्षण का अवसर था। हर भावना दूसरी को पल्लवित होने का अधिकार देती हुई स्वय भी पल्लवित हो सकती थी। शासक वर्ग की धार्मिक असहिष्णुता के विरोधी स्वय सहिष्णुता का आदर्श स्थापित करें, यह उचित ही है।

(५) यश-वर्णन—हजूरी कवियो ने मुख्य रूप से गुरु जी के शौर्य, मृगया, दान एव अवतारत्व को ही अपनी वाणी का विषय बनाया है। कुछ छन्द ऐसे भी हैं जहाँ गुरु जी का यश-वर्णन सामान्य रूप से है। ऐसे छन्दो को दो वर्गों मे बाँटा जा सकता है। एक वर्ग ऐसे छ दो का है जहाँ एक ही छन्द मे अनेक गुणो का एक साथ वर्णन हुआ है। दूसरे वर्ग मे ऐसे छन्द हैं जहाँ गुणो का उल्लेख नहीं, केवल गुरु जी की यश-व्याप्ति का ही वर्णन है। प्रत्येक वर्ग का एक-एक उदाहरण प्रस्तुत है

(क) सोभा हूँ के सागर नवल नेह नागर है,
बलि भीम सम, शील कहाँ लौ गिनाइये।
भूम के बिभूखन, जु दूखन के दूखन,
समूह सुख हूँ के, मुख देखे ते अघाइये।
हिम्मत निधान, आन दान को बखाने?
जाने आलम तमाम जाम आठो गुन गाइये।

---

१ गु० प्र० सू० अ०, पृ० ५७२७
२ वही, पृ० ५७११

प्रबल प्रतापी पातिशाहु गुरू गोविंद जी।
भोज की सो मौज तेरे रोज रोज पाइये।[1]

(ख) जहाँ दिनकर को प्रताप दिनमान नाही,
जहाँ न दिलेश को प्रताप छाइयति है।
जहाँ न कलानिधि की कला की किरन एक,
जहाँ मृगराजन के थर घाइयति है।
जहाँ सुरपति की न गति, रतिपति की न मति,
जहाँ धौलपति हूँ मैं पाइयति है।
जहाँ श्रुति सिमृति सुनी न श्रौन सुपने हूँ,
तहाँ गुरु गोविंद कौ जस गाइयति है।[2]

आनन्दपुरीय दरबार के दो प्रबन्ध

१. गुरु शोभा २. जंगनामा

सेनापति रचित 'गुरुशोभा'

कर्त्ता :

कवि सेनापति गुरु गोविन्दसिंह के दरबारी कवि थे, सेनापति स्वयं इस विषय पर मान हैं। अणीराय के समान उन्होंने गुरु गोविन्दसिंह द्वारा नग, कंचन, भूषण अथवा हुकमनामा द्वारा समादृत होने का कोई संकेत 'गुरु शोभा' में नही दिया।

उनकी एक और कृति है—चाणक्य नीति का भाषानुवाद। इन दोनों के अतिरिक्त इनकी कोई और रचना प्राप्त नही हुई। स्वयं 'गुरु शोभा' को पढ कर ऐसा अनुमान लगाना अनुचित न होगा कि कवि सेनापति को बहुत दिनों तक आनन्दपुर में गुरु गोविन्दसिंह के सामीप्य का सुअवसर मिला था। 'गुरु शोभा' मे दी गई सभी घटनायें, उनके संवत् और उनका काल-क्रम ऐतिहासिक दृष्टि से दोष रहित हैं। गुरु गोविन्दसिंह के जीवन चरित सम्बन्धी यह प्राचीनतम कृति है।

रचना काल:

'गुरु शोभा' की रचना संवत् १७५८ वि० (सन् १७०१ ई०) में हुई। कवि ने स्वयं इस काव्यकृति का रचनाकाल इस प्रकार सूचित किया है :

संवत सत्रह सै भये बरख अठावन बीत।
भादव सुद पंद्रस भई रची कथा करि प्रीत।[3]

---

१. गु० ग्र० सू० ग्र०, पृ० ५७१६
२. वही, पृ० ५७११
३. गुरु शोभा, पृ० ३

'गुरु शोभा' की प्रतियाँ :

'गुरु शोभा' की दो हस्तलिखित प्रतियाँ सिक्ख रेफ्रेंस पुस्तकालय, अमृतसर में विद्यमान हैं। इसका एक मुद्रित संस्करण भी भाई कौरसिंह निहंग द्वारा (संवत् १९२५) में सम्पादित हुआ था। अपने अध्ययन के लिये हमने इन तीनों प्रतियों (दो हस्तलिखित, एक मुद्रित) से लाभ उठाया है।[1]

विषय-वस्तु :

यशोगान—'गुरु शोभा' का उद्देश्य गुरु गोविन्दसिंह का स्तवन है। अपने आश्रयदाता की प्रशंसा तत्कालीन दरबारी कवियों का प्रिय विषय रहा है। साधारणतः यह प्रशंसा बड़े स्पष्ट और निस्संकोच भाव से होती थी, और कदाचित् यह प्रशंसा जितनी अत्युक्तिपूर्ण होती थी, उतनी ही आश्रयदाता की दान-दृष्टि अधिक पसीजती थी। रीतिकाल के दो कवि जो कविता द्वारा धनार्जन में दूसरे कवियों की अपेक्षा अधिक सफल हुए, वे हैं भूषण और पद्माकर। इन दोनों कवियों की कविता की प्रमुख विशेषता है अपने आश्रयदाताओं की अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसा। भूषण का सौभाग्य यह है कि उसका आश्रयदाता इससे भी अधिक प्रशंसा का भार वहन कर सकता है। तो भी इतना तो स्पष्ट ही है कि 'शिवा बावनी' के लेखक की रुचि अपने आश्रयदाता की शौर्य-कथा कहने की अपेक्षा उसकी प्रशंसा और उसके प्रतिद्वन्द्वी की निन्दा में अत्युक्तिपूर्ण कवित्त, सवैये लिखने की ओर ही अधिक रही है।

गुरु गोविंदसिंह के दरबारी कवियों में भी इस प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। किन्तु सेनापति ने अपनी वाणी को बड़ा संयत रखा है। अत्युक्ति उनके कलास्त्रों में स्थान नहीं पा सकी। कोरी प्रशंसा करने की अपेक्षा सेनापति ने अपने चरितनायक की यशकथा को प्रबन्ध रूप में कहना ही उचित समझा है। सम्पूर्ण प्रबन्ध में उनके नायक का जो उज्ज्वल व्यक्तित्व उभरता है, वह भी वस्तुतः उनकी प्रशंसा ही है। किन्तु यह ऐसी प्रशंसा है जो शिष्ट सुरुचि की मर्यादा का उल्लंघन किये बिना ही सुनी जा सकती है।

गुरु गोविंदसिंह को चण्डी, विष्णु, ब्रह्मा, महादेव की ही कोटि का अवतार समझने पर भी सेनापति ने उनकी प्रशंसा में अत्युक्तिपूर्ण कलाबाजियाँ लगाना उचित नहीं समझा। कदाचित्, गोविंदसिंह, के अवतारत्व के विश्वास ने ही उनकी वाणी को संयत कर दिया है। उनकी वाणी में दैन्य और श्रद्धा का स्वर उसी अनुपात में सबल हो उठा है, जिस अनुपात से चाटुकारी का स्वर क्षीण :

> काहू की मात पिता सुत है अर काहू के भ्रात महाबलकारी।
> काहू के मीत सखा हित साजन काहू के गेह विराजत नारी।

---

[1] इन प्रतियों का पूर्ण परिचय इस प्रकार है—
(क) सिक्ख रेफ्रेंस पुस्तकालय, हस्तलिखित प्रति अंक १६६।३६१५
(ख) सिक्ख रेफ्रेंस पुस्तकालय, हस्तलिखित प्रति अंक २२२।४४४६
(ग) मुद्रित संस्करण, प्रकाशक नानक सिंह, भूपाल सिंह, हजूरिया, बाजार माई सेवाँ, अमृतसर (संवत् १९८२ वि०)

काहू के धाम महानिध राजत आपस में करि है हित भारी।
होहु दयाल दया करि के प्रभ गोविन्द सिह मुहि टेक तिहारी।
—पृ० १०५

अपने आश्रयदाता से इहलौकिक सुख-सुभीते की याचना करने के स्थान पर वह उनसे पारलौकिक शांति की अभ्यर्थना करता है।[1] अतः उसके स्वर में चाटुकार दरबारी कवि-सा कला-चापल्य नहीं, भक्त-कवि का-सा गाम्भीर्य है। गुरु के ज्योति-ज्योति समाने (महापरिनिर्वाण) के अवसर पर भी वह अशांत है किन्तु असंतुलित नहीं। वह करुणा के हल्के पुट से ही इस घटना का वर्णन करता है :

कैसे करो नही जात कही कित की कितही सर फेर धरी।
कह्यो कछु और करी कछु और सु और की और ही होय परी।
तिन नाहिन अंत, बि-अंत सुअंत इकंत जपंत अगंत हरी।
जिय जानत है कछु की कछु ही बिधना कछु और की और करी।
—पृ० १०५

बहुत दिनों तक गुरु गोविंदसिंह के निकट रहने के कारण यह चिर वियोग सेनापति को रुचिकर नहीं। गुरु के महानिधन पर अश्रुपात करके अशांत मन को शान्त करने का मार्ग भी उनके लिए खुला नहीं। इस महादुःख के अवसर पर गुरु गोविंदसिंह का अवतारत्व ही उसका सबल है, उसे विश्वास है कि ये एक बार फिर आनन्दपुर को बसायेंगे। अवतारत्व के पश्चात् वे उनके ब्रह्मत्व का स्मरण करते हैं। रोना-धोना कैसा ? वे गए कहाँ हैं ? ये तो विश्व के अणु-अणु में विद्यमान हैं।

फूलन मे जिम वास वसै बसिहै हरि जी इम ही घटिमाही।
दीपक मै बतिया जिम है तिमही जग मै जगदीसर आही।
भान प्रगास अकास करै निरखो जल मै तिह की परछाही।
गोरस मै घृत जान इमै प्रितमा प्रभ की सब ही घटमाही।
—पृ० ११२

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि 'गुरु शोभा' नामक ग्रंथ में दरबारी कोटि का यशोगान नहीं मिलता। स्वयं गुरु गोविंदसिंह के हजूरी कवियों ने गुरु जी की स्तुति में जिस प्रकार के मुक्तक छन्दों की रचना की, उसका क्षीण-सा आभास भी इस कृति में नहीं। इस कृति में उनका यशोगान केवल उतना ही समाविष्ट हो पाया है, जितना वह गुरु जी के जीवन चरित का अनिवार्य एवं अभिन्न अंग है।

युद्ध वर्णन—युद्ध-अनुराग और क्रीडा का विषय।

कवि सेनापति ने अपने वीर-नायक की शोभा-गायन का सर्वोत्तम साधन उनके युद्धों का वर्णन ही समझा है। यह सर्वथा उपयुक्त ही है। शूरवीर के लिये युद्ध कर्म के अतिरिक्त और कौनसा कर्म शोभनीय होगा। 'गुरु शोभा' के कुल बास

---

१. चितवै मन मै कछु और उपाय बिना हरि क्यों गति पावहिगे। —पृ०

वर्षा, फाग और रासलीला, कवि सेनापति के तीन ऐसे प्रिय रूपक हैं, जिनका आश्रय (युद्ध-वर्णन के प्रसंग में) उन्होंने बार-बार लिया है। उन्हें युद्ध कभी वर्षा के समान सिंचित करता, कभी फाग के समान विकसित करता और कभी रासलीला के समान अनुरंजित करता है। गुरुशोभा मे आए ऐसे दर्जनों रूपकों में से यहाँ दो तीन को उदाहरण-स्वरूप उद्धृत करना अनुपयुक्त न होगा।

युद्ध वर्षा के रूप में :

स्याम घटा उमडै चहू ओर ते यो उमडै दलदूत के आही।
दामन जो दमकै तरवार लिये करवार फिरावत ताही।
सूर की सुआवी ते धार परै घन मैं मानो तास कमान की निआई।
छूटत तोर मनो रन मधि जु सावन की बरखा बरखाही।

—पृ० ४६

अथवा

वाजत सार सो सार तहाँ चमकै चिनगी सम तारन जैसी।
ऐसी बनो रुति सावन की, पटवीजनि जोति अनूप रतैसी।
इउ उपजै झुनकार तहाँ मानो (मनु) सैल पै वाजत है चमकैसी।
मानो महाघन मै चमकै दमकै तरवार महा बिजलैसी।

—पृ० ५२

युद्ध फाग के रूप में :

खेलत सूर महा रन मैं वन मै मनु स्याम जी फाग मचायो।
दौरत सूर लिए कर मैं पिचकारन जो सु वंदूक चलायो।
स्रोनन धारि चली तिनके तन मानहु लाल गुलाल लगायो।
बागे वने तिनके तन लाल मनो रंगरेज रंग रंग ल्यायो।

—पृ० ५०

गुरु गोविंदसिंह के ही समान कवि सेनापति ने भी युद्ध-वर्णन में निम्न समझी जाने वाली जातियों में से कई उपमानों का चयन किया है। इन उपमानों के सौजन्य से युद्ध-कर्म उच्च जातियों के लिए ही सुरक्षित नही रह जाता। वस्तुतः गुरु गोविंद के नेतृत्व में मुगल शासन के विरुद्ध जो सशस्त्र विद्रोह हुआ, उसमें भाग लेने वालो की बहु-संख्या तथा-कथित निम्न जातियों की ही थी। कवि सेनापति सदा अपने विशिष्ट श्रोता-वर्ग से तादात्म्य स्थापित किये रखते हैं। इन जातियों में से लोहार,[1] धोबी,[2] रंगरेज और माली इनको अधिक पसन्द हैं। लोहार

---

१. सूर अर सिंह मिलि जुद्ध ऐसो भयो लोह लोहार जैसे बजाये।
चोट पै चोट अर'ओट करतार की सार की मार मैं सिंह धाये॥ —पृ० ८७

२. जो धुबिया पट पै पट डारे।
तैसे सूर सूर को मारे॥ —पृ० ८७

अध्याय हैं जिनमें नौ अध्याय तो सम्पूर्णतः युद्ध वर्णन के लिए सुरक्षित हैं। शेष ग्यारह अध्यायों मे भी युद्ध के दृश्य यत्र-तत्र बिखरे हुए हैं। कुल मिलाकर 'गुरु शोभा' का सबसे प्रमुख विषय युद्ध वर्णन ही है।

कवि सेनापति ने जिस वीर शिरोमणि को अपने ग्रन्थ का नायक बनाया है, वह स्वयं कवि भी था। सेनापति ने उसके शोभा-गान के लिए उसी की काव्यशैली को अपनाया है। गुरु गोविंदसिंह के लिए युद्ध सार्वकालिक अनुराग का विषय था। कवि सेनापति की कृति भी इसी अनुराग-तत्त्व से रंजित है। कई स्थानों पर ऐसा आभास मिलता है कि कवि युद्ध को प्रेयसी के समान प्रेम करते हैं।[1]

युद्ध के लिए इस अनुरागमय दृष्टिकोण के दो कारण तो बहुत स्पष्ट प्रतीत होते हैं। प्रथम, गुरु गोविंदसिंह के नेतृत्व मे लड़े गए युद्ध एक महान् उद्देश्य के लिए थे। उस उद्देश्य के लिए प्राणदान देना इतना दुःख का विषय न था जितना सुख और गौरव का। यह भी स्मरणीय है कि गोविंदसिंह की सेना भाड़े के टट्टुओं की न थी। इस सेना की सदस्यता के लिए न धन का आकर्षण था, न शासनशक्ति का दबाव। कदाचित् धर्म का दबाव भी न था। कितने ही नानक-मार्ग के अनुयायी ऐसे थे जिन्होने खालसा-धर्म के कड़े अनुशासन को स्वीकार नही किया था। खालसा-सेना तो मुट्ठी भर ऐसे मनचलो का समूह थी जिन्हें प्राणों का मोह न था, जिन्हें कबीर के शब्दों मे सचमुच ही 'जूझने का चाव' था। धर्म युद्ध के ऐसे ही अनुरागी वीरो द्वारा लड़े गये युद्धो मे अनुराग तत्त्व की प्रधानता स्वाभाविक ही है।

इसका एक अन्य कारण तत्कालीन काव्य-प्रवृत्ति भी है। तत्कालीन साहित्य विलास-जीवन की मादकता से सिक्त था। यह साहित्य लोक-रंजन की दृष्टि से उत्कृष्ट था या निकृष्ट—इसका विवेचन यहाँ आवश्यक नही। इतना स्पष्ट है कि विलास तत्कालीन साहित्य की बड़ी व्यापक और लोकप्रिय प्रवृत्ति थी। इसकी पकड़ का कुछ अनुमान इस बात से ही लगाया जा सकता है कि भूषण-सरीखे समर्थ कवि भी—जिन्होंने इसके विरुद्ध कड़ा विद्रोह किया था—इसकी मार से बच नही सके। गुरु गोविंदसिंह और उन्ही का अनुसरण करने वाले कतिपय कवियों का दृष्टिकोण इतना कट्टर नही था। उन्होंने, एस प्रकार से, रीतिकालीन साहित्य की लोकप्रियता को स्वीकार किया और उसके कुछ तत्त्वो का उपयोग अपने काव्य को लोकप्रिय बनाने के लिए किया। गुरु गोविंदसिंह और उनके सहयोगियों के युद्ध वर्णन मे जो एक मोहक, कोमल तत्त्व के दर्शन होते हैं, उसका एक कारण यह भी प्रतीत होता है।

---

१. (क) कथ मै धसि कै इम लोह कियो न कियो तिर मोह महा मनको।
जिम सारंग माहि पतंग परै न डरै करि लोभ कछू तन को॥

—पृ० ६-१०

(ख) लग्यो वार ऐसे बग्यो स्रोन भारी।
भयो लाल दाग भिजो देह सारी।
कहू रैन जागा किधों प्रेम माता।
चढ़ी है खुमारी चलै डगमगाता।

—पृ० ६८

वर्षा, फाग और रासलीला, कवि सेनापति के तीन ऐसे प्रिय रूपक हैं, जिनका आश्रय (युद्ध-वर्णन के प्रसग में) उन्होंने बार-बार लिया है। उन्हें युद्ध कभी वर्षा के समान सिंचित करता, कभी फाग के समान विकसित करता और कभी रासलीला के समान अनुरंजित करता है। गुरु शोभा में आए ऐसे दर्जनों रूपकों में से यहाँ दो तीन को उदाहरण-स्वरूप उद्धृत करना अनुपयुक्त न होगा।

युद्ध वर्षा के रूप में :

स्याम घटा उमडै चहू ओर ते यो उमडे दलदूत के आही।
दामन जो दमकै तरवार लिये करवार फिरावत ताही।
सूर की सुआवी ते धार परै धन मैं मानो तास कमान की निआई।
छूटत तीर मनो रन मधि जु सावत की बरखा बरखाही।
—पृ० ४६

अथवा

बाजत सार सो सार तहाँ चमकै चिनगी सम तारन जैसी।
ऐसी बनो रुति सावन की, पटबीजनि जोति अनूप रतैसी।
इउ उपजै भुनकार तहाँ मानो (मनु) सैल पै बाजत है चमकैसी।
मानो महाघन मै चमकै दमकै तरवार महा बिजलैसी।
—पृ० ५२

युद्ध फाग के रूप में :

खेलत सूर महा रन मैं बन मै मनु स्याम जी फाग मचायो।
दौरत सूर लिए कर मैं पिचकारन जो सु बदूक चलायो।
स्रोनन धारि चली तिनके तन मानहु लाल गुलाल लगायो।
बागे बने तिनके तन लाल मनो रगरेज रग रग ल्यायो।
—पृ० ५०

गुरु गोविंदसिंह के ही समान कवि सेनापति ने भी युद्ध-वर्णन में निम्न समझी जाने वाली जातियों में से कई उपमानों का चयन किया है। इन उपमानों के सौजन्य से युद्ध-कर्म उच्च जातियों के लिए ही सुरक्षित नहीं रह जाता। वस्तुतः गुरु गोविंद के नेतृत्व में मुगल शासन के विरुद्ध जो सशस्त्र विद्रोह हुआ, उसमें भाग लेने वालों की बहु-संख्या तथा-कथित निम्न जातियों की ही थी। कवि सेनापति सदा अपने विशिष्ट श्रोता-वर्ग से तादात्म्य स्थापित किये रखते हैं। इन जातियों में से लोहार,[1] धोबी,[2] रंगरेज और माली इनको अधिक पसन्द हैं। लोहार

---

१. सूर अर सिंह मिलि जुद्ध ऐसो भयो लोह लोहार जैसे बजाये।
चोट पै चोट अर ओट करतार की सार की धार मैं सिंह धाये॥ —पृ० ८७

२. जो धुबिया पट पै पट डारे।
तैसे सूर सूर को मारे॥ —पृ० ८७

और धोबी की अपेक्षा भी इन्होंने रगरेज और माली का प्रयोग अधिक चाव से किया है। कदाचित्, रगरेज और माली का काम अधिक सौंदर्यमय है। रक्त मे भीगे हुए शूरवीरो को रगरेज द्वारा रगे हुए कपडो से उपमित करने के लिए आपने पुनरावृत्ति के दोष को भी शिरोधार्य किया है :

> गिरी है लोथ छवि यौ धरी ताहि की वस्त्र सूके धरे सर किनारे।
> स्रोन के रग मे लाल हुइ भुइ परे मनो रगरेज रग रग डारे।।
> —पृ० ६३

इसी प्रकार शूरवीरो के कटे हुए शिर देख कर आपको युद्ध-देव के पूजनार्थ अर्पित पुष्पो का ही ध्यान आया है। युद्ध-भूमि मे तेजी से घुसता हुआ शूरवीर पवन-प्रवाह के सदृश दिखाई देता है जो हार गूँथने के लिए शिर-सुमनो को धराशायी कर रहा है, बरछी मे टँगे हुए शिर पुष्पमाल मे पिरोये हुए पुष्प के समान और धरती पर बिखरे हुए शिर टूटी हुई पुष्पमाल के बासी पुष्पों के समान प्रतीत होते हैं :

> १. गूँदबे को हार झार झार डारी घनसार।
> पौन परवाह वह्यो ऐसौ जाइयति है।।—पृ० ७०
>
> २. ऐसो ही चल्यो जब बरछी फिरावै हाथ।
> लेत है परोइ मानो फूल पोईअत है।। —पृ० ७०
>
> ३. गिरी लोथ पै लोथ ऐसे पुकारे।
> कहू तार ते तोरिकै फूल डारे।।
> गुहे भाँति ताको किधौं हार कीने।
> भये अत बासी तऊ डारि दीनै।। —पृ० ६८

इस प्रकार कवि सेनापति ने धर्मानुरागी शूरवीरो द्वारा लडे गये इन युद्धो को बडे सुन्दर, सुखद और मोहक रूप मे चित्रित किया है। कहीं-कहीं अनुराग के एक और सहयोगी के भी दर्शन होते हैं, वह है क्रीडा। फाग की चर्चा ऊपर हो चुकी है। ऐसे कई स्थल हैं जहाँ युद्ध को फाग के रूप मे चित्रित करने वाले कवि ने शूरवीरो के शरीर को स्रोन-भरी पिचकारियो से उपमित किया है।[1] कही-कही फाग की अपेक्षा अधिक पुरुषोचित क्रीडाओ का भी वर्णन आया है। उदाहरण के लिए मल्लयुद्ध। युद्ध में योद्धा मल्लो के समान एक दूसरे को उठा लेते हैं और उसे धरती पर पटकने से पूर्व अपनी उत्कृष्टता असदिग्ध रूप से प्रमाणित करने के लिए दर्शको को दिखा देते हैं :

> भुजन पै जोर करि लेत उठाइकै।
> सबन दिखलाइ भुइ माहि डारे।। —पृ० ६७

---

१. रनकारी वर सूरमा, स्रोन रग भरि लीन।
छिरक छिरक तन रगयो फागन का रस कीन।। —पृ० ६८

कभी-कभी कुछ चित्र काम-क्रीडा से भी लेकर 'युद्ध क्रीडा है' इस भाव को श्रौर भी पुष्ट करते हैं :

(१) लरैं सिंह इह भाति अपारे।
चढी खुमार भये मतवारे ॥ —पृ० ६५

(२) लग्यो वार ऐसे वह्यो स्रोन भारी।
भयो लाल बागा भिजो देह सारी ॥
कहूँ रैन जागा किधौं प्रेम माता।
चढी है खुमारी चलैं डगमगाता ॥ —पृ० ९८

(३) वसुधा सम कीनो पलंग, रक्त निहाली डार।
महा उनीदे रैन के, सोवत पाइ पसार ॥ —पृ० ५०

इस अनुराग और क्रीडा का पालन् किन विकट परिस्थितियों में हुआ था, इसकी ओर कवि सेनापति बहुत कम सकेत करते हैं। शक्तिशाली मुगल साम्राज्य से लोहा लेने वाले इन धर्म-योद्धाओ की स्थिति किसी प्रकार ईर्ष्या योग्य नही थी। चारो ओर अमित्र पहाडी राजाओ से घिरे इन शूरवीरो को भरपेट भोजन तक का सुभीता न था। आनन्दपुर वर्षों तक शत्रुओ द्वारा घिरा रहा। अन्दर योद्धाओ की यह दशा थी :

देखहु यह हवाल अब भयो।
रहे हाड चामि उडि गयो। —पृ० ६१

आनन्दपुर को छोडने के पश्चात् खालसा-सेना बुरी तरह खदेडी गई। चमकौर के युद्ध मे खालसा को और भी हानि उठानी पडी। गुरु के ज्येष्ठ पुत्र रणजीतसिंह (अजीत सिंह) वीरगति को प्राप्त हुए। गुरु को जगल की शरण लेनी पडी। सेनापति इन विपदाओ के चित्रण मे अपनी काव्यप्रतिभा का व्यय नही करता। इसे वह क्रीडा का अपेक्षाकृत महत्त्वहीन अग समझकर छोड देता है। जहाँ उनका वर्णन करता भी है तो इस प्रकार कि विकट परिस्थितियाँ भी आनन्दमय खेल दिखाई देने लगती हैं। देखिये गुरु गोविन्दसिंह का वन-निवास कितना आनन्दमय है :

सिंह गोविन्द तिह ठौर कीनी मया बजे घनघोर अनाहद पूरा।
पढै दिन रैनि तिह ठौर इत भात वानी गुर मारू सु वाजत तूरा।
कथा मुखि पाठ कवि छन्द सग्राम के सुनत आनन्द सो सबै सूरा।
—पृ० ७४

वस्तुत, कवि सेनापति का सम्पूर्ण दृष्टिकोण ही क्रीडा का है। इस दृष्टिकोण के कारण ही कथा मे कई रिक्त-स्थान रह गए हैं जिनसे कहीं-कहीं चरितनायक और कथा के उद्देश्य के प्रति अनर्थ हो गया है, इसका विवेचन करने का अवसर भी आगे आयेगा। यहाँ अभिप्रेत इतना ही है कि जो कथाएं लेखक के

क्रीड़ामय दृष्टिकोण से मेल नहीं खाता, उसका निराकरण हो गया है, जो इसके अनुकूल है, वह कथासूत्र में अनिवार्य न होने पर भी सम्मिलित कर लिया गया है। उदाहरण के लिये गुरु के वृन्दावन-निवास और आगरा-निवास के समय गुरु द्वारा बन्दरों को मिष्ठान्न खिलाकर उनकी छीना-झपटी देखना और हाथियों की भिड़न्त कराना।[1]

इस क्रीडामय दृष्टिकोण का एक लाभ यह हुआ है कि युद्ध-कथाओं में हमारे कवि ने अपने चरितनायक के प्रतिद्वन्द्वियों के शौर्य अथवा नैतिकता की कहीं निन्दा नहीं की जैसा कि उनके समकालीन भूषण कवि द्वारा हुई है। उसके युद्ध वर्णन का एक स्वस्थ पक्ष यह है कि उसमें हिन्दू अथवा मुसलमान, निजपक्ष और परपक्ष का अन्तर सर्वथा मिट जाता है। पक्ष-द्वय के सेनानी शूरवीर हैं। युद्ध-क्षेत्र मे उनका अभिधान सूर, सूरमा, जोद्धा, वीर आदि ही है। पक्ष-द्वय के बीच उनकी निष्पक्षता अपूर्व और अद्वितीय है।[2]

उन्होंने व्यक्तिगत पराक्रम की प्रशंसा के लिये जहाँ गुरु गोविन्दसिंह के दो पुत्रों रणजीत (अजीत) सिंह और जुझार सिंह को चुना है, वहाँ भी परपक्ष के प्रति

---

१. (क) आप आन बैठे तहाँ अरु मिस्टान मँगाइ।
राख दियो मैदान मैं बंदर मुंचत खाइ॥
आपस मै लर-लर मरत किचकत अति खुनसाइ।
कौतक तिनके अनिक बिधि देखि प्रभू बिगसाइ। —पृ० ६३

(ख) थानन ते छुटके दोऊ कुंजर तोर जंजीरन साम्हे आए।
सूँढ सौं सूँढ मिलाइ दई पग सौं पग जोर करे खुनसाए॥
....
मानो घटा उमडी चहू ओरन ते रंग स्याम बने गज आए।
माते मतंग भिरे इह मातन जेती कही सब तेती सराए।
पेल दियो गज ने गज को इत ते उनको इह भाँति उठाए।
साहन साह प्रभू हमरो तिह बैठ भरोखे गयंद लराए। —पृ० ६५

२. यहाँ सेनापति के निष्पक्ष युद्ध वर्णन के उदाहरण अनुपयुक्त न होंगे—

(क) दौर दौर जोधा लरत, मानहु लरत गयन्द।
चलत चाल धरनी हलत, बजत सार किलकन्द॥ —पृ० ५०

(ख) चलत रवत दरियाउ गिरत जूझत सूर तह।
दिवस रैनि छोइ गइ, पौन हुइ रही मंद जह॥ —पृ० ४४

(ग) निम्नलिखित पंक्तियों में खालसा द्वारा आक्रमण का वर्णन है, किन्तु मुगलसेना के लिये निन्दा सूचक शब्दों का सर्वथा अभाव है—

दौर दौर फौजन मै परही। सिंह सबै ऐसी विधि करही।
बजे सार सो सार अपारा। झडझड़ाक धाजे भुनकारा।
पड़पड़ाक धरती पर परही। जूझे सूर बहुत तह मरही।
इक घायल है गिरे विहाला। एकन आप तजे ततकाला।
इक भाजे फिरि निकट न आवे। इक सनमुख है जुद्ध मचावे।
लरे सिंह इह भाँति अपारे। चढ़ी खुमार भये मतवारे। —पृ० ६५

हेठी का भाव कही दृष्टिगत नही होता। 'धरती काँप उठी, भानु छिप गया, पवन मन्द हो गई, दिन के समय ही रात छा गई, शंकर सहित देवता विमानो पर चढ कर उसका युद्ध देखने लगे'—किन्तु उसके प्रतिद्वद्वी ? सेनापति की उदार निष्पक्षता ने मौन ग्रहण करने मे ही औचित्य समझा है

ता दिन गडहु रण खम्भ सिह रणजीत धरत पर।
धरत लरज उठी धूर भान छिप गयो अपिघर।
पवन मद हुई रही रैनि भई दिवस छिपानो।
लरजे सकल अकास तोप छूटी परमानो।
वज्यो निसान तिहु लोक मैं सुनि देवन मन भौ भयो।
चढि चढि विवान देखन चले सु सकर समेति नही को रह्यो॥
—पृ० ६६

जहाँ कही अवसर मिला है आपने मुसलमान पात्रो की भी प्रशसा की है :

सानी आजमशाह की अवर नही सुलतान।
लोह लाज जिन रण बिखै ऐसी करी निदान॥ —पृ० ६१

मुगल-सेना द्वारा विश्वासघात करने पर 'गुरुशोभा' के नायक को औरगजेब से यही शिकायत है कि उसने 'क्षेत्र' के नियमो का पालन नही किया। प्राचीन भारत मे भीषण युद्ध भी कुछ नियमों की सीमा मे ही लडे जाते थे। इन नियमो के पालन से ही युद्ध की विकरालता भी क्रीडा के समान सह्य हो जाती थी। गुरु गोविन्दसिंह युद्ध-सचालन मे इसी चिर-परिचित भारतीय परम्परा का पालन कर रहे थे, औरगजेब द्वारा इनके उल्लघन पर उन्होने लिख भेजा :

महाबोझ है सीसे पै जान तेरे।
भये कौल बेकौल सो लोक तेरे।
लिखा है तुझे जान ईमान सगे।
करोगे कहा जीव करतार मगे।
सुखन मरद को जान मै जान राखे।
सुखन बेसुखन और की और भाखे। —पृ० ७८

सेनापति के निष्पक्ष युद्ध वर्णन से यह अनुमान लगाना भ्रमपूर्ण होगा कि वह अपनी सहानुभूति के विषय में कृतनिश्चय नही। 'गुरुशोभा' नाम से स्पष्ट ही प्रतीत है कि कवि ने इस ग्रथ की रचना गुरु के यशोगान के लिये की है। युद्धेतर प्रसग भी कवि की सहानुभूति के विषय मे किसी प्रकार का सदेह बना नही रहने देते। केवल युद्ध वर्णन मे वे निष्पक्ष भाव को अपनाते हैं जिसका एक निश्चित लाभ तो यह होता है कि दोनों सेनाओ का सतुलन बना रहता है। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि खालसा और मुगलसेना के बीच युद्ध मे स्पष्ट विजय किसी पक्ष की भी नहीं हुई। तो भी, युद्ध-वर्णन मे भी अपवाद रूप से ऐसे स्थल भी आते हैं जिनसे स्पष्ट सकेत मिलता है कि कवि की सहानुभूति किस पक्ष के साथ है। यहाँ ऐसे दो स्थलो के उदाहरण देना उपयुक्त होगा :

१. जैसे नगीना अगूठी मे होत सुहोत है चद जु तारिअन माही।
जो घन मै बिजरी चमकै, दमकै तहा खालसा फौजन माही।
सिंह इकै अरु लच्छ पसू, सब भाजत देखत ही बन माही।
ऐसे मनो तहा खालसा सिंह है, और नही समता जग माही।
—पृ० ४८

२. लेत परोइ पठान को सबहन साग दिखाए।
देखत ही सब करत है अरे खुदाय ! खुदाय !! —पृ० ६७

ऐसे स्थल 'गुरुशोभा' मे बहुत विरले हैं। कदाचित कुल मिला कर चार पाँच से अधिक न होगे।

(२) अपूर्णता —गुरु गोविंदसिंह द्वारा युद्ध वर्णन के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण अपनाया गया था, उसी का अनुसरण गुरुशोभा' के लेखक द्वारा हुआ। चण्डी चरित्रो—विशेषत उक्ति विलास—का अनुसरण करते हुए कवि सेनापति ने युद्ध कर्म को बडा सुन्दर, सुखमय और आकर्षणमय मान कर ही उसका चित्रण किया है। किस प्रकार भीषण, भयावह युद्धो को सेनापति ने (गुरु गोविन्दसिंह के समान ही) वर्षा, वसन्त और रासलीला आदि सुखद ऋतुओं और कर्मों के समानान्तर समझा है, इसका कुछ उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। कवि सेनापति ने अपने वीर नायक की युद्ध-वर्णन शैली की एक और विशिष्टता को भी अपनाया है, जिसका परिणाम इतना हितकर नही हुआ।

चण्डी-चरित्रो मे गुरु गोविंदसिंह वास्तविक युद्ध (भिडन्त कहना अधिक उपयुक्त होगा) चित्रो को प्रस्तुत करने मे इतने रम गये हैं कि उन्होने दूसरे अगो की अवहेलना-सी ही कर दी है। युद्ध के कारण, उसके उद्देश्य आदि को गोविंदसिंह ने उसी मात्रा मे महत्त्व नहीं दिया है। परिणामत युद्ध-वर्णन उच्चकोटि का होने पर भी सर्वांग सतुलित नही। चण्डी चरित्रो मे सतुलन का यह अभाव इतना अखरता नही। भगवती दुर्गा हमारी सास्कृतिक परम्परा में शतियो से सुपरिचित और समादृत पात्र हैं। उनकी यशकथा, अनेक स्रोतों द्वारा कथित होने के कारण, हमारी जानी पहचानी है। चण्डी-चरित्र के रिक्त अशो की पूर्ति पाठक परम्परा द्वारा अर्जित ज्ञान से कर लेता है।

किन्तु जब कोई लेखक किसी समकालीन घटना को ही अपने काव्य का विषय बना रहा हो तो वह अपनी काव्यकथा मे इस प्रकार के रिक्त स्थान छोडकर अनेक अनावश्यक, आशकाओ को जन्म दे जाता है। युद्ध-कथा मे इस प्रकार के रिक्त-स्थानो से अनचाहा अहित हो जाने की सभावना भी रहती है। युद्ध और युद्ध मे अन्तर होता है। यदि धर्मयुद्ध भी आवश्यक पूर्वापर क्रम सहित प्रस्तुत न किया जाये तो वह अनावश्यक, कदाचित् अक्षम्य, नर-सहार प्रतीत होने लगता है। युद्ध की पृष्ठ-भूमि ही उसके महत्त्व को स्थापित करती और सु-युद्ध को कु-युद्ध से अलग करती है।

इस दृष्टि से यह स्वीकार करना होगा कि कवि सेनापति गुरु गोविंदसिंह द्वारा लडे गये युद्धो के महत्त्व के प्रति बहुत सजग नही रहे। कम-से-कम उनके युद्ध वर्णनो में ऐसी सजगता के दर्शन नही होते। उनकी युद्ध-कथाओ मे रिक्त-स्थान इतने अधिक हैं कि उनके नायक द्वारा लडे सभी युद्धो का कोई सश्लिष्ट प्रभाव स्थापित नही होता। परिणामतः उनके नायक का चरित्र विश्रृंखल-सा रह जाता है और उसका वीरत्व किसी दिशा-विशेष मे अग्रसर होता हुआ दिखाई नही देता।

'गुरुशोभा' के युद्ध को चार श्रेणियो मे बाँटा जा सकता है :

१. पहाडी राजाओ से युद्ध;
२. मुगल सेना से युद्ध;
३. सुलतानी युद्ध;
४. लूटमार।

कवि सेनापति ने सभी प्रकार के युद्धो का चित्रण लगभग एक-सा ही किया है, परिणामतः एक को दूसरे से अलग करना कठिन हो गया है। 'बचित्तर नाटक' के 'अपनी कथा' नामक प्रसग से सेनापति ने प्रेरणा ग्रहण की है, किन्तु जहाँ 'अपनी कथा' में खालसा की स्थापना से पहले के युद्धों का उल्लेख है, वहाँ कवि सेनापति ने बाद के युद्धों का भी कालक्रमानुसार चित्रण किया है। वे खालसा की स्थापना की कथा और उसके महत्त्व का उल्लेख तो अवश्य करते हैं, किन्तु यह महत्त्व उनकी युद्ध-कथाओ मे प्रतिबिम्बित नही हो पाया।

'गुरुशोभा' के पाठक पर तात्कालिक प्रभाव यह पडता है कि गुरु जी का वास्तविक युद्ध तो पहाडी राजाओं से था। मुगल सेना तो पहाडी राजाओ की सहायतार्थ उनके निमन्त्रण पर ही इस युद्ध मे प्रविष्ट हुई। पहाडी राजाओं से अनचाहे युद्ध किन परिस्थितियो मे हुए, इनके उल्लेख की कवि सेनापति ने आवश्यकता नहीं समझी। आरम्भ में ही हम गुरु गोविंदसिह को पहाडी राजाओ से उलझा हुआ पाते हैं। गुरु गोविंदसिह के धर्मयुद्धो के मूल प्रेरणास्रोतो—शासक वर्ग की धर्मान्धता, हिन्दु प्रजा पर अत्याचार और गुरु तेगबहादुर की निर्मम हत्या—इसका कोई उल्लेख 'गुरु शोभा' मे नही।

कवि सेनापति की मानसिक प्रतिक्रिया एक ऐसे उत्साही वीर सैनिक की सी है जो युद्ध के समुपस्थित होने पर प्रथम पक्ति मे जूझ कर अपने शौर्य को सफल करना चाहता हो। दूसरी तीसरी पक्ति मे ठहर कर अपनी पारी की प्रतीक्षा करने का धैर्य उनमे नही। वन्दन, स्तवन, तिथि-वर्णन आदि से निवृत्त हो कवि ग्रथारम्भ गुरु गोविंदसिह के प्रथम युद्ध से ही करता है। उनके 'रण मै घसिकै हम लोह कीउ न कीउ तिह मोह महा मन को' को पढकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे वे काव्य रूपी रण मे 'घुसने' के लिए अधीर हो उठे हैं। उनका काव्य-कर्म युद्ध-कर्म से घनिष्ठ समानता रखता है। वर्षा, फाग और रासलीला जैसे चित्ताकर्षक युद्धो मे वे ऐसे

खो गए हैं कि युद्ध के दूसरे उपकरणो को जुटाने का (रिक्त-स्थानों की पूर्ति का) आपको अवकाश ही नहीं मिला।

सेनापति कुछ इस प्रकार के सैनिक हैं जो युद्ध के समाप्त होने पर भी लडना समाप्त नही करते और यहीं वे अपने वीर नायक के चरित्र से अन्याय कर जाते हैं। गुरु गोविन्दसिंह जी एक पहाडी राजा की सहायतार्थ एक युद्ध मे भाग लेकर आनन्दपुर लौट रहे हैं, मार्ग मे 'अलसून' नामक नगर पडता था। वहाँ पहुँच कर गुरु जी आज्ञा देते हैं कि इस ग्राम को लूट लिया जाए। क्यो ? इस नगर द्वारा गुरु अथवा उसके अनुयायियो का क्या अहित हुआ था ?—यह बताने का अवकाश सेनापति के पास नही। 'गुर शोभा' को पढकर तो यह लूटमार सर्वथा अक्षम्य प्रतीत होती है :

> युद्ध जीत ताही समैं नव रस के तटि आन।
> पाँच दोइ अरु एक दिन रहे तहा इम जान।
> पउर-पउर देखी ठउर राजन के अस्थान।
> विदा भये ताही समे सतिगुर पुरख सुजान।
> निकट गाव अलसून के तबैं पहूचे आन।
> ताहि समे ऐसे कह्यो लूटि लेहु इह थान। —पृ० १६

यह तो गुरु जी की उपस्थिति मे उनकी आज्ञानुसार हुआ। लूटमार के लिए खालसा को सदा गुरु-आज्ञा की अपेक्षा न रहनी थी।[1] ऐसा प्रतीत होता है कि लूटमार का यह क्रम वर्षो तक अनवरत रूप से चलता रहा। इस प्रकार खालसा सेना साहसिक लुटेरो के गिरोह से कुछ कम अथवा अधिक प्रतीत नही होती :

> निकट गाँव जेते बसे लए खालसे जीत।
> केतक दिन अर दुइ वरस इहि विधि भये बतीत॥
> —पृ० ५५

> तबैं खालसा ऐसी करैं। हुइ असवार गावन पै चरैं।
> जो आगे ते मिलने आवैं। बसत रहै कछु भेट चढावैं।
> करैं बिलम भेट नही देइ। ताको लूट खालसा लेइ।
> —पृ० ५६

यह वही परिस्थिति है जिसने एक शती उपरान्त पटियाला-नरेश अमरसिंह को भट्टी मुसलमानो पर आक्रमण के लिए उभारा था।[2] पहाडी राजे भी प्रतिदिन

---

१. गोबिंद सिंह निर्मोह मै आन किया बिस्राम।
   चली फौज कहलूर की लूटि लेहु सभि ग्राम॥
   (निर्मोह और कहलूर पहाड़ी नगर हैं।)

२. (क) करत कजाकी मार मुलक मै ना छाडी बाकी। —प्राचीन जंगनामे, पृ० ४५
   (ख) भट्टी महा मलेछ, सदा गो दीन सतावैं।
   जिह को अधिक त्रास, पथिक पैंडा ना पावैं।
   यहि उपाव नीको अधिक, भट्टी पै चढ़ि धायो।
   राउर मारि निकार कै, धरम राज तब साधयो॥
   —प्राचीन जंगनामे, पृ० ४६

की इस लूटमार से तंग आकर मुग़ल सेना से सहायता की याचना करते हैं। 'गुरुशोभा' द्वारा वर्णित परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में यह याचना बहुत निन्द्य प्रतीत नहीं होती। इस प्रकार के वर्णन से गुरु गोविन्दसिंह के चरित्र के साथ न्याय नहीं हुआ। यहाँ गुरु गोविन्दसिंह शासित, उत्पीडित हिन्दू प्रजा की रक्षार्थ मुग़ल साम्राज्य से लोहा लेने वाले वीरनायक प्रतीत नहीं होते। यहाँ तो स्वयं हिन्दू जनसाधारण गुरु गोविन्द सिंह के खालसा द्वारा त्रस्त हैं और उनके त्रास-निवारण का श्रेय मुग़ल सेना को है। 'गुरुशोभा' को पढ़कर कहीं-कहीं ऐसा प्रतीत होता है जैसे पीडक और रक्षक ने स्थान अदल-बदल कर लिये हों।

'गुरु शोभा' के अध्ययन में हम ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते हैं, यह प्रभाव और भी गहरा हो जाता है कि लूटमार शस्त्रधारी सिक्ख साहसिकों का सार्वकालिक धन्धा है। गुरु जी मेवाड के मार्ग से दक्षिण को जा रहे हैं। मार्ग में आये गाँवों की लूटमार का कवि किस निस्संकोच भाव से वर्णन करता है:

जिह गावन खालसा परे लूट कूट तिह लेत।
गाव बचे राजा मिले भेट प्रभू सो देत॥ —पृ० ८३
जो राजा करि जोरि के मिलत प्रभू सो धाय।
बसहै देश अनद सो ता ढिग कोइ न जाय॥
जो मन में गरबत रहे मिलना उन नही कीन।
लूट-कूट के खालसे भु च ताहि को लीन॥ —पृ० ८३

इस प्रकार पर-सम्पत्ति-मुसन के कारण ही एक छोटा-मोटा युद्ध भी हो जाता है। पजाब से दक्षिण जाते समय गुरु जी अपने सैनिकों सहित बाघौर नामक नगर में पहुँचते हैं। वहाँ के लोग भयभीत होकर इनसे मिलते हैं। उन्हें डर है कि 'हमहू लूटि लेह ए धामा' (८४)। गुरु जी उन्हें अभयदान देते हैं। वहाँ पर:

केतक दिन तिह ठौर बिहाने। ऊठि हरा बागन के खाने।
माली भाजि राव पैं आए। सगरे हरा बाग के खाए॥
भोजन हेत ऊठ जे आए। तोरि तोरि सबही उन खाए।
सुनत वचन मन माहि रिसाए। कोप भरे अति हो गरबाए॥
तब प्रभु सों कछु नाही बखानी। मन मैं राखि बात इम ठानी।
सिंह एक किही काज सिधायो। तन के डेरा माहि बहु आयो।
तनक भनक तिन सों भई रारा। युद्ध भयो तिनके संग भारा॥
—पृ० ८५-८६

---

१. केते हा गाव अपार निहार के मारि लए ज्यौ खालसा धागो।
राजन सोच कियो मन मैं अब ओर ही खालसा धूम उठागो।
गावन के नर भाजि गए सुबसे घर मैं न रहे ठाहरागो।
ऐसो उपाव कोई करिए यह ठौर सों नाही होत बिनाशो।
तब राव फत्तूर के कीनो एक उपाउ।
बिदा कियो परधान को अब तुरक पै जाउ। —पृ०

इस युद्ध मे बहुत-सा रक्त-पात होता है। स्वय वाघौरपति वीरगति को प्राप्त होते हैं। इस युद्ध मे सहृदय पाठक की सहानुभूति असदिग्ध रूप से गोविन्दसिंह तथा उनके वीर सैनिको से होगी—ऐसा कह सकना कठिन है। कवि सेनापति के हाथों अपने वीर चरित्र का अनिष्ट वहाँ भी हुआ है जहाँ वे युद्धो की पृष्ठभूमि, उसके कारण आदि देना भूल गए हैं और वहाँ भी जहाँ वे अपूर्ण कारण दे गए हैं अथवा कारणों की सन्तोषजनक व्याख्या नही कर पाए।

यह ठीक है कि कवि से इतिहासज्ञ सी पूर्णता की आशा नही रखी जा सकती। इतिहासज्ञ के समान कारणो की तालिका देना अथवा घटना-क्रम का प्रत्येक व्यौरा उपस्थित करना कवि का काम नही। तो भी तथ्यो की अपूर्णता क्या कवि की दुर्बलता नही है? चयन का जो अधिकार कवि को है वह इतिहासज्ञ को नहीं। आवश्यक के चयन और अनावश्यक के बहिष्करण एव समृद्ध कल्पना के नव-सृजन द्वारा कवि एक ऐसी 'प्रबन्ध वक्रता' को जन्म देता है जो इतिहासज्ञ की शक्ति और परिधि से बाहर की वस्तु है। कवि सेनापति से शिकायत यह है कि उन्होंने कथा कहते समय, घटनाओं का उद्घाटन करते समय न तो आवश्यक तथ्यो का चयन किया है और न अनावश्यक तथ्यो का त्याग ही। अपनी समृद्ध कल्पना शक्ति को भी उन्होने एक विशेष प्रसग—भिडन्त-वर्णन—के लिए सुरक्षित कर रखा है। परिणामत, उनके चरित-नायक के व्यक्तित्व का निर्माण सुचारु रूप से नही हो सका। काव्य के गुरु गोविन्दसिंह इतिहास के गुरु गोविन्दसिंह से महत्तर होने चाहिये थे, कम से-कम काव्य से आशा तो ऐसी ही होती है। खेद है कि 'गुरुशोभा' मे कई एक स्थानो पर वीर शिरोमणि गुरु गोविन्दसिंह का जो चरित्र उभरता है वह गुरुजी की परपरागत अथवा इतिहासगत ख्याति के प्रति न्याय नहीं करता। यह सभी एक ऐसे श्रद्धालु लेखक द्वारा हुआ जो गुरु गोविन्दसिंह का समकालीन था और जिसने ग्रन्थरचना गुरु के यशोगान के अभिप्राय से ही की थी।[1]

इसका मुख्य कारण, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, कथा का अपूर्ण आख्यान है। इस अपूर्ण आख्यान के कारण क्या थे? एक कारण तो गुरु गोविन्दसिंह द्वारा पोषित और प्रचारित काव्य-परम्परा है। गुरु गोविन्दसिंह के समान ही वह युद्ध-कथाओं मे भिडन्त को इतना महत्त्व देता है कि शेष अग कहीं तो सर्वथा छूट जाते हैं और कही उनकी ओर सकेत-मात्र ही होता है। दूसरा कारण यह भी है कि लेखक तत्कालीन इतिहास के इतना निकट था कि वह उसके महत्त्व का निरपेक्ष अवलोकन नही कर सका। जो बातें उस समय स्वत परिचित एव स्वत स्वीकृत थी उनका आलेखन कर उसने अपने कथा-कलेवर को बढ़ाना उचित नही समझा। उस समय युद्ध विशेष परिस्थितियो मे हो रहे थे, गुरु के निकटवर्ती सिक्ख इन परिस्थितियो से भली-भाँति परिचित थे। ऐसे श्रद्धालु सिक्ख श्रोताओं के लिए लिखी गई इस पुस्तक मे जाने-पहचाने प्रसगो का छूट जाना बहुत अस्वाभाविक प्रतीत नही होता। अत. 'गुरु शोभा' का आस्वादन गुरु गोविन्दसिंह के जीवन से सम्बन्धित ऐतिहासिक घटनाओं

१ तुमरी उपमा हतमी बरनो कर आपन ते कर मो गहिये। —पृ० ३

से पूर्व परिचय की अपेक्षा रखता है, यह ऐसा ग्रन्थ नही जो इस प्रकार के परिचय के अभाव की पूर्ति करता हो। और, कदाचित यह पाठक से गुरु के प्रति श्रद्धापूर्ण दृष्टिकोण की भी माँग करता है। ऐसी पूर्व-श्रद्धा के बिना कुछ एक स्थलो का अध्ययन मन मे कई प्रकार के कुतर्क जगा देता है जिससे रसास्वादन मे बाधा पड़ती है।

भाषा, छन्द, अलंकार—सेनापति की भाषा सर्वत्र खड़ी-बोली मिश्रित व्रज है। गुरु गोविन्दसिंह के दरबारी कवियो मे सेनापति पजाबी पाठको के लिए कदाचित् सबसे अधिक सरल और ग्राह्य हैं। इस सारल्य का प्रमुख कारण उसमे खड़ी बोली का पर्याप्त पुट है। सेनापति मे पजाबी मिश्रण का लगभग अभाव है। सारी रचना मे कठिनता से चार-पाँच ही पजाबी प्रयोग मिल सकेंगे। फारसी शब्दो का भी साधारणत. बहिष्कार किया गया है। जहाँ मुसलमान पात्र बोल रहे हो,[1] अथवा मुसलमान पात्रो को सम्बोधन किया जा रहा हो,[2] वहाँ परिचित फारसी शब्दो का हल्का पुट अवश्य दिया गया है, जिससे प्रसगानुकूल वातावरण उत्पन्न हो गया है। सेनापति की एक और भाषा-विषयक विशिष्टता अकारान्त शब्दो को अनुस्वारान्त बनाने की है। यह प्रवृत्ति गुरु अर्जुन देव के समय से ही चली आ रही थी। वीर रस के अनुकूल होने से गुरु गोविन्दसिंह ने इसका बहुत प्रयोग किया है। सेनापति ने साधारणत शब्दो को अनुस्वारान्त करने का यत्न नही किया। तो भी इस प्रवृत्ति से वे पूर्णत. बच भी नहीं सके हैं, कही-कही इसके दर्शन हो ही जाते हैं।[3]

सेनापति ने युद्ध-कर्म को सुन्दर, सुखद और सुकोमल रूप मे चित्रित किया है तो उसके लिये वैसी ही भाषा का चयन किया है। टवर्ग और सयुक्ताक्षरो के प्रयोग से भाषा को ओजस्विनी बनाने का प्रयास कही लक्षित नही होता। सयुक्ताक्षरो का प्रयोग अपवाद रूप मे ही हुआ है। भाषा सर्वत्र युद्ध की विकरालता को विरल करती

---

१. सुनो जो साहि बिगमर ऐसो कह्यो, सुकर दरगाह तेरी इलाही।
किये है फैज मुहि आपनो जानि कै रहम की नजर ते फतेह पाई।
बार जोधा बलि धाक जाकी बली सग थे खूब जाके सिपाही।
जीव ताका लिओ ताज हमको दियो, अजब है खेल तेरे खुदाई।
—(बहादुरशाह के मुख से), पृष्ठ ९१

२. महा बोझ है सीस पै जान तोरे।
भये कौन वे कौन सो लोग तेरे।
लिखा है तुझे जान ईमान सगे।
करोगे कहा जीव करतार मगे।
सुखन मरद को जान मै जान राखे।
सुखन बेसुखन और की और भाखे।
—(गुरु गोविन्दसिंह का औरगजेब को पत्र), पृ० ७८

३. (क) बनाय बिनास उपाय खपाय।
करनहार करतार जोनी भुलाय। —पृ० ५
(ख) बजे सार सार। झडै चनिगियारं।
कडक्के कमान। समारे न बाण। —पृ० १२

हुई दिखाई देती है। उन्होंने व्रज और खडी बोली का प्रयोग बडे कौशल से किया है। खडी बोली व्रज को सरल करती हुई और व्रज खडी बोली की नोकों को मुलायम करती हुई प्रतीत होती है। परिणामत भाषा सर्वत्र सेनापति के उद्देश्य—युद्ध को सुन्दर, सुखद रूप मे चित्रित करना—की पूर्ति मे सहायक हुई है।

'गुरु शोभा' के फाग, वर्षा, रास लीला, आदि विलासप्रिय और धोबी, लोहार, माली, और रगरेज आदि निम्न जातियों से सम्बन्धित अलकारो की चर्चा युद्धवर्णन प्रसग मे हो चुकी है। यों तो गुरु शोभा मे ऐसे स्थल भी मिल जायेंगे जहाँ भाषा अलकार-रहित है, किन्तु कवि का झुकाव साधारणत सहज अलकारयुक्त भाषा के प्रयोग की ओर ही रहा है। अधिकाश अलकार भावों को तीव्र करने के उद्देश्य से ही प्रयुक्त हुए हैं। फाग, वर्षा और रासलीला आदि तो सहज विलास का वातावरण उत्पन्न करने मे सहायक हुए हैं, कुछ अलकार करुणा के हल्के छीटे इधर-उधर बखेरने मे सफल हुए हैं, जैसे

१. जिह सर लागत जाइकै रहत नाहि अरुमान।
भानहु मडप खोखरो, गिर-गिर परत पठान॥ —पृ० ६६

२. खैंचत खडग, जद मारत सडक।
गिर परत तडक असवार आगे ताही के॥
गिरत बिहाल बिकराल सुध नाही कछु।
लोटत धरत जो कपोत सुत ताही के॥ —पृ० ७१

३ ज्यो भुजग अग कोऊ डसै।
तैसे सस्त्र को ग्रसै॥ —पृ० ८६

नीचे कुछ और अलकारो के उदाहरण दिये जाते हैं। इनमे भी सौन्दर्य और क्रीडा के तत्त्व का ही प्राधान्य पाया जाता है :

१. गाजत सूर महारन मैं घन मैं चमकै बिजरी घननावै।
तारन मैं जिम चन्द दिपै न छिपै रणजीत महारण पावै॥
—पृ० ४५

२ ज्यो घन मैं बिजरी चमकै दमकै तहा खालसा तारन माहीं।
—पृ० ४८

३. दौर दौर जोधा लरत मानहु लरत गयद।
चलत चाल धरनी हलत बजत सार किलकत॥
—पृ० ५२

४ तेग चौगान अर सीस बटा करे खेलते सिंह गोविन्द प्यारे।
—पृ० ७४

५. भाजी फौज कहलूर की हुइ करि सकल अधीर।
मानो गुन ते छुटक कै भज्यो जाति है तीर॥
—पृ० ५३

कवि अणीराय रचित 'जंगनामा'

अणीराय

अणीराय गुरु गोविन्दसिंह के दरबारी कवि थे। इन की रचना 'जंगनामा'[1]

१. जंगनामा क्या है ?

जंगनामा और वार पंजाब की बड़ी लोकप्रिय काव्य-शैलियाँ हैं। जिस प्रकार हिन्दी के आदिकाल में रासो ग्रन्थों की रचना हुई, पंजाबी साहित्य का आरम्भ वार-साहित्य से हुआ। रासो ग्रन्थों के समान वारों के रचयिता भी भट्ट और ढाडी हुआ करते थे। रासो ग्रंथकारों के समान पंजाबी भट्टों ने भी अपनी वारों की प्रेरणा तत्कालीन मारधाड़, बाह्य आक्रमण और आन्तरिक कलह से प्राप्त की। वीर-गाथा और यशोगान रासो और वारों के समान विषय हैं। अन्तर केवल इतना है कि जहाँ रासो-लेखकों के आश्रयदाता छोटे बड़े राजपूत राजा थे, वहाँ पंजाबी भट्टों और ढाडियों के आश्रयदाता स्थानीय सरदार एवं जननायक थे। वार राजदरबार की वस्तु न होकर 'परहे'—चौपाल का पंजाबी स्थानापन्न—की वस्तु थी। अतः वार में किसी अयोग्य व्यक्ति का यशोगान हो सकना असम्भव था। संक्षेप में वार अथवा जंगनामा लोक जीवन से सम्बद्ध ऐसी रचना है जिसमें किसी लोक-प्रिय वीर नायक के शौर्य की कथा रहती है। वीर-नायक, वीर कथा, यशोगान और लोकजीवन से सम्बन्ध किसी वार अथवा जंगनामा के आवश्यक तत्त्व हैं।

वार-काव्य पंजाब में कितना सर्वप्रिय रहा होगा इसका कुछ अनुमान इस बात से लगाया जाता है कि शांति, अहिंसा और विश्वजनीन प्रेम का प्रचार करने वाले सिक्ख गुरुओं को अपनी रचनाओं के लिए इसी काव्य शैली का आश्रय ग्रहण करना पड़ा। सिक्ख गुरुओं के पश्चात् भी वारें लिखी जाती रहीं और अत्याधुनिक काल तक भी इनकी रचना होती रही है।

वार—पूर्णतया पंजाबी काव्य शैली है। जैसे ब्रज और अवधी में रासो ग्रंथों की कल्पना करना कठिन है, पंजाबी के अतिरिक्त किसी और भाषा में वार की कल्पना भी उतनी ही कठिन है। हिन्दी और पंजाबी दोनों भाषाओं में रचना करने वाले पंजाबी कवियों ने वार रचना निरपवाद रूप से पंजाबी में की है। सिक्ख गुरुओं द्वारा लिखी गई बाईस वारें पंजाबी भाषा में ही हैं। हिन्दी भाषा (ब्रज) में पांच सौ से अधिक कवित्त सवैयों के रचयिता भाई गुरुदास ने अपनी वारों की रचना विशुद्ध अमिश्रित पंजाबी भाषा में ही की है। स्वयं दशम ग्रन्थ के रचयिता गुरु गोविन्दसिंह ने 'चण्डी दी वार' की रचना पंजाबी भाषा में ही की है। दशम ग्रंथ की यही एक रचना (एक दो फुटकर पदों के अतिरिक्त) पंजाबी भाषा में है। हिन्दी भाषा में सर्वप्रथम वार (अथवा जंगनामा) लिखने का श्रेय अणीराय को है। उनके पश्चात् पटियालापति अमरसिंह के दरबारी कवि केसवदास और पंजाबकेसरी रणजीत सिंह के दरबारी कवि ग्वाल ने भी वार शैली को अपने वीर आश्रयदाताओं के यशोगान का माध्यम बनाया। हिन्दी कवियों ने वार को हिन्दी भाषा में अपनाते समय उसे हिन्दी छन्दों—कवित्त, सवैया छप्पय, पाधड़ी (पद्धटिका), भुजंगप्रयात आदि—में ही लिखा। जब कभी वार के प्रसिद्ध छन्द—वार छन्द, पौड़ी छन्द अथवा निशानी छन्द—का प्रयोग इन कवियों द्वारा हुआ, भाषा पंजाबी हो गई है। इन सब रचनाओं में केवल एक स्थान पर पौड़ी छन्द हिन्दी (हिन्दी के निकटतम) रचना के लिए प्रयुक्त हुआ है :

पौड़ी।

हिम्मत सिंह दलेल सिंह, गुर आज्ञाकारी।
मारी तेग मतंग सिर, ढाही अम्बारी।
मानो पावस बीजली, गिरि परी करारी।
लकावास जु पौन पूत, डारा अटारी।
मारी सरजे खान नो जन हर थ्राख उभारी।
मंगल गावैं जोगणी, पहनि सूही सारी।।३६।।

—अशोक : प्राचीन जंगनामे, पृ० २४

से पता चलता है कि गुरु गोविंदसिंह ने इन्हें नग, कञ्चन, भूषण और हुकमनामा देकर इनका सत्कार किया था।[१] इसके अतिरिक्त इनके जीवन के विषय में कोई सामग्री उपलब्ध नहीं। अन्तस्साक्ष्य से केवल इतना ही प्रतीत होता है कि ये पंजाबी थे अथवा इन्हें पंजाब में दीर्घकाल तक रहने का अवसर मिला था। 'जंगनामा' के अमिश्रित पंजाबी मे लिखे हुए नौ छन्द इसी तथ्य की ओर सकेत करते हैं।[२]

कथानक :

अणीराय की केवल एक ही रचना 'जंगनामा श्री गुरु गोविंदसिंह' प्राप्त है। इनका रचना-चातुर्य और भाषा पर अधिकार देखकर यह अनुमान करना अनुचित न होगा कि इन्होंने और काव्यरचना भी की होगी।

'जगनामा' मे कथानक[३] का अंश अति संक्षिप्त है। कथा कहना कवि का अभीष्ट नहीं। उसने कथानक से कुछ-एक नाटकीय महत्त्व की घटनाएँ—गुरु गोविन्द सिंह द्वारा औरंगजेब को पत्र-प्रेषण, उमरावों द्वारा गोविंदसिंह की निन्दा, स्वामी के लिए अजीमखाँ का प्राणोत्सर्ग—ले ली हैं, शेष की ओर उनकी दृष्टि अवहेलना की ही रही है। इसी कारण 'जंगनामा' में आख्यान शैली के दर्शन नहीं होते।

ऐतिहासिकता :

'जगनामा' की घटना ऐतिहासिक है, इसमें आये पक्ष-द्वय के नाम और स्थान सब ऐतिहासिक हैं। किन्तु 'जगनामा' का उद्देश्य किसी ऐतिहासिक इतिवृत्त का अभिलेखन नहीं है। इसमे घटनायें उनके नाटकीय महत्त्व के कारण ली गई हैं, ऐतिहासिक इतिवृत्तात्मकता के कारण नहीं। उदाहरण के लिए गुरु गोविंदसिंह द्वारा

---

१. अनीराय गुरु से मिले, दीनी ताही असीस।
आउ कह्यो मुख आपने, बहुर करी बखसीस ॥१॥
नग कचन भूखन बहुर, दीने सतिगुर एह।
नामा हुकम लिखायकै, दीनो सरस सनेह ॥२॥

अशोक : प्राचीन जगनामे, पृष्ठ १७

२. इन नौ छन्दों में से एक इस प्रकार है—
खडे धूहे म्यान ते, वैरी दिलखाने।
जुट्टे दुहूँ मुकाबले, बिज्जू झरलाने।
वाहण मुखसाँ घोड़ियाँ, घायल घुम्माने।
जुज्झन सौंहे सार दे' दरगह परवाने।
मुड मंडकन मेदनी, पही नेसाने।
जया माली सिट्टे बाड़ियाँ, खरबूजे काने।

—अशोक : प्राचीन जंगनामे, पृष्ठ ६२

३. जंगनामा का कथानक इस प्रकार है :
औरंगजेब के अन्यायपूर्ण शासन की प्रतिक्रिया स्वरूप 'खालसा' का जन्म हुआ। औरंगजेब ने निन्दाजीवी सरदारों की बात मान कर अजीमखाँ सरदार की अध्यक्षता में मुगलसेना को गुरु गोविन्दसिंह पर चढ़ाई के लिए भेजा। आनन्दपुर के समीप ही सतलुज नदी के तट पर घमासान युद्ध हुआ। दोनों ओर के शूरवीरों ने खूब हाथ दिखाए। अन्त में गुरु गोबिन्दसिंह और अजीमखाँ के बीच द्वंद्व युद्ध हुआ, अजीमखाँ मारा गया और विजय खालसा के हाथ रही।

औरंगजेब को यह पत्र लिखा जाना कि कुछ ही दिनों में खालसा मुगलों से राज्य हथिया लेगा,[1] ऐतिहासिक सत्य की दृष्टि से सर्वथा संदिग्ध है।

इसके अतिरिक्त अणीराय के मत में हिन्दुत्व की रक्षा के लिए युद्धरत गुरु गोविंद के प्रति सहानुभूति अत्यन्त स्पष्ट है। साहित्यकार की यह सहानुभूति, इतिहासलेखक में पक्षपात बन जाती है। अणीराय कई स्थानों पर गुरु गोविंद को हिन्दुपति सुलतान,[2] हिन्दुपतिनाह,[3] हिन्दुपति[4] आदि विशेषणों से विभूषित करता है। जंगनामा हिन्दुत्व की रक्षार्थ लड़ रहे खालसा और 'तिमिर वंश का ओप'[5] बढ़ाने के उद्देश्य से लड़ रही मुगलसेना के बीच भिड़न्त का दृश्य उपस्थित करता है। हिन्दुत्व के प्रति आग्रह के कारण ही कवि ने मुगल सेना के सहकारी हिन्दु राजाओं के योग के विषय में कुछ नही लिखा। इतिहासकार में यह चूक अक्षम्य मानी जानी चाहिए। वस्तुतः सारी रचना को पढकर इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि लेखक का दृष्टिकोण साहित्यिक है, ऐतिहासिक नही; नाटकीय है, इतिवृत्तात्मक नही है।

चरित्र-चित्रण :

इस 'जंगनामा', का नायक कवि का अपना आश्रयदाता है। अतः उनके चरित्र-चित्रण में प्रशंसा एवं अत्युक्ति का अंश आ ही गया है। यह प्रशंसा स्पष्ट, सीधी और कथा-निरपेक्ष भी है तथा परोक्ष और कथासापेक्ष भी। मंगलाचरण के प्रथम पांच छन्दों का गुरु गोविन्दसिंह की स्पष्ट, कथा-निरपेक्ष स्तुति के लिये प्रयोग किया गया है। यहाँ उनके कहने का ढंग बहुत कुछ उनके समकालीन भूषण से मिलता-जुलता है। भूषण के नायक के समान ही अणीराय के नायक की धाक भी ऐसी है कि उसे सुनकर शत्रुओं के कलेजे काँपते हैं,[6] वे गुरु गोविन्दसिंह से लोहा लेने की

---

१. लिखे पठाये शाह पै, छोड्यो सकल समाज।
कछुक दिनन लग खालसा, लहै तख्त और ताज ॥१०॥
—अशोक : प्राचीन जंगनामे, पृ० १८

२. धनुख चक्र खण्डा धरै, हिन्दू पति सुलतान।
सोढ वंश अवतार हो, गोविन्दसिंह बलवान ॥९॥
—अशोकः प्राचीन जंगनामे, पृ० १८

३. और मत अमृत मतंग वृन्द बल बाह के।
को कवि सकै सराहि, हिन्दु पति नाह के ॥२६॥
—अशोक : प्राचीन जंगनामे, पृ० २१

४. हिन्दू पति गुरु आप, सिंह गोविन्द है ॥२७॥

५. तिमर वंस को ओप चढावैं।
जाको कर्ता देह सु पावैं ॥५२॥
—अशोक : प्राचीन जंगनामे, पृ० २८

६. स्री गुरु गोविन्दसिंह चढ़े अरि के सुनके हियरे थहिराने।
तेज के त्रास ते यौं तरफै, थरके थिरया ज्यों पारद पाने ॥३॥ वही, पृ० १७

अपेक्षा सन्यास ग्रहण करना सुखकर समझते हैं,[1] इधर-उधर भटकते हुए वे पुराने पत्तों के समान प्रतीत होते हैं।[2]

'जगनामा' युद्ध चित्रण है, वीर-स्तोत्र नहीं। उपर्युक्त अपवादों को छोड़ कर सम्पूर्ण 'जगनामा' में किसी भी पात्र का कथा-निरपेक्ष स्तवन नहीं हुआ। कथा में पात्रों का सम्पूर्ण चरित्र उपस्थित करने का आग्रह कहीं दिखाई नहीं देता। उनके उतने चरित्र का ही अनावरण हो पाया है जितना 'जगनामा' के कला-गत आग्रह के लिये अनिवार्य है। गुरु गोविन्दसिंह हिन्दुत्व के रक्षक और असाधारण कोटि के शूरवीर हैं। अजीमखाँ भी असाधारण शौर्य सपन्न व्यक्ति हैं। उसे युद्ध की प्रेरणा स्वामिभक्ति और तैमूरवंश का गौरव बढ़ाने की उत्कट अभिलाषा से मिलती है। कवि की श्रद्धाजनक सहानुभूति तो गुरु गोविन्दसिंह के लिये सुरक्षित है, किन्तु उसने विपक्षी अजीमखाँ के शौर्य का कहीं भी अवमूल्यन नहीं किया। वस्तुतः वह गुरु गोविन्दसिंह जैसे शूरवीर के योग्य प्रतिद्वन्द्वी के रूप में ही चित्रित हुआ है।

किन्तु सब मिलाकर कवि ने विपक्षी योद्धाओं के धनानुप्राणित स्वरूप पर बार-बार जोर दिया है।[3] परोक्ष रूप से यह स्व पक्ष के सेनानियों के धर्मानुप्राणित स्वरूप की ओर संकेत करता है। इससे अधिक चरित्र-चित्रण की कवि ने आवश्यकता नहीं समझी।

युद्ध-चित्रण :

'जगनामा', जैसा कि इसके नाम से ही प्रकट है, युद्ध-कथा है। इस रचना में जो महत्त्व युद्ध-वर्णन को मिला है वह कथा को नहीं। वस्तुतः स्वय गुरु गोविन्द सिंह में भी यही प्रवृत्ति पाई जाती है। उनके समीपवर्ती कवियों—विशेषतः 'गुरु शोभा' के रचयिता सेनापति—द्वारा भी इस प्रवृत्ति का पालन हुआ है। युद्ध-वर्णन के लिये इन कवियों में कुछ ऐसा चाव उमड़ा रहता था कि उसके सामने रचना के शेष अंगों की प्रायः अवहेलना हो जाती थी। अणीराय भी इसी प्रवृत्ति का अनुसरण करते प्रतीत होते हैं। यहाँ यह स्मरणीय है कि यह प्रवृत्ति 'जगनामा' एवं 'वार' की परम्परा के सर्वथा अनुकूल है।

किन्तु इस प्रवृत्ति का पालन करते हुए भी अणीराय का युद्ध वर्णन अपनी विशिष्टता लिये हुए है। गुरु गोविन्दसिंह और सेनापति में जहाँ भिड़न्त पर इतना

---

१. जाके घास बैरी बनवास उपहास लेत,
   छाडे सुख आस उपहास जाकी ताही को ॥४॥
२. पायो जैसे पत्र सत्र पत्र ज्यों पुराणे भये,
   एक उट गए एक पवन उडात है ॥५॥
   —अशोक : प्राचीन जगनामे, पृ० १७
३. (क) युद्ध वचित्र अरु बड़ो खजाना ॥२८॥ —वही, पृ० २२
   (ख) इत ए सब को मनहार करें,
       दल को धन देत निसक धरें ॥३२॥ —वही, पृ० २३
   (ग) धरयो ही रह्यो खजाना, बाध्यो रह्यो बीर बाना। —वही, पृ० २६

बल दिया गया है कि युद्ध-वर्णन के अन्य अंश दब गये हैं, वहाँ अणीराय के युद्ध वर्णन में अपेक्षाकृत अधिक संतुलन है। वे अन्य अंशों की अवहेलना नहीं करते। वे दोनों पक्षों की सेनाओं का प्रस्थान, उनके हाथियों, घोड़ों का वर्णन, प्रमुख योद्धाओं का व्यक्तिगत शौर्य, भागती हुई सेनाओं को सेना-नायक का प्रोत्साहन आदि का वर्णन भी उपयुक्त स्थान पर अवश्य करते हैं। इस प्रकार तत्कालीन युद्ध-वर्णनों में अणीराय का वर्णन क्रम-सूत्र की दृष्टि से अपना वैशिष्ट्य लिये हुए है।

अणीराय पहले मुगलसेना के प्रस्थान, दिक्पालों के विचलित होने का वर्णन करते हैं।[1] उनके पास तीर, तोप, गोला, गुर्ज, बर्छी, बाण आदि शस्त्र हैं। इसके पश्चात् घटा के समान छाने वाले हाथियों का वर्णन है।[2] मुगल सेना के घोड़ों का वर्णन अणीराय ने विशेष तन्मयता से किया है। उनके रंग, उनकी नसल और उनके जीन, जड़ाउ पटे आदि का वर्णन उन्होने १४ पंक्तियों के गीता छन्द मे किया है।[3] गुरु गोविन्दसिंह की सेना का वर्णन भी इसी क्रम और इसी तन्मयता से किया गया है। इस सारे वर्णन में उनके प्रिय साधन सादृश्यमूलक अलकार रहे हैं। ध्वजायें इन्द्रधनुष, गज धाराधर, गज दन्त बुगले, गंडमद पानी, धूलि धुन्द, अंकुश बिजली, गज कज्जल-गिरि, सिन्दूर से सजी शुण्ड साँझ ललाई के समय गिरिराज, के समान हैं।[4] अश्वों का वर्णन भी अलंकारों के माध्यम से हुआ है। दोनों पक्षों का वर्णन पूर्ण निष्पक्षता से करते हुए भी कवि अपने मन में विश्वस्त है कि भावी मुगल सेना के साथ नहीं। इस विश्वास का कथन वे पुनर्वार करते हैं।[5]

अणीराय ने भिड़न्त का वर्णन विशेष तन्मयता से किया है। सेना का सेना पर धावा और शूरवीरों के व्यक्तिगत पराक्रम—दोनों की ओर ही उनकी दृष्टि रही है। दोनों प्रकार के वर्णनों मे कवि ने पक्ष द्वय के बीच निष्पक्षता का दृष्टिकोण अपनाया है। भिड़न्त मे मुगल और खालसा का अन्तर मिट जाता है। दोनों पक्ष के वीर जूझते और मरते हैं। युद्ध क्षेत्र को कुरुक्षेत्र-जैसा कह कर कवि ने व्यंग्य से शत्रुओं को कौरव-वीरो के समान हमारी प्रशंसा का पात्र बनाया है। सभी शूरवीर लौह-शस्त्रो पर छोह रखते हैं। सभी मृतवीरों के शिर ईश की मुंडमाल में स्थान

---

१. कूच कियो अजीम, अरजै भाँन मैं,
हर हुल्ले दिगपाल, चाल असमान मैं ॥२०॥ [पृ० १६

२. आप घटा अंकुश छटा बग दंन्तन की पाति,
मद पानी बानी गरज, धन गज ऐकै भाति ॥२४॥ पृ० २०

३. गीआ छन्द, २५

४. रास छन्द, २६ पृ० २१

५. (क) सैयद चले पठान, मुगल्ल कई लक्ख हैं,
चले जाहि सनमुख, काल सम भक्ख हैं ॥२०॥ पृ० १६

(ख) सबै मनाव टेक हैं याके। होनी हाथ रही कर ताके ॥२८॥ पृ० २२

(ग) अजीम खान भावी भरमायो ॥५२॥ पृ० २८

पाने के अधिकारी है। धरती पर गिरे प्रतिद्वन्द्वी निःशंक प्रेमालिंगन में आबद्ध हैं। यहाँ कोई हिन्दू है न मुसलमान, सभी वीर हैं।[1]

दोनों सेनाओं के शौर्य का जहाँ अलग वर्णन हुआ है, वहाँ भी उनमें उपयुक्त संतुलन अवश्य रखा गया है। दोनो सेनायें दुर्जेय दिखाई गई हैं। [2] दोनों सेनाओं के सैनिक स्वामिभक्ति की भावना से अनुशासित हैं।[3] मुगल सैनिक की स्वामिभक्ति धनार्जन की अतिरिक्त भावना से पुष्ट है। इस सम्बन्ध में गुरु गोविन्दसिंह और उनके दरबारी कवि अपने समकालीन भूषण से सर्वथा भिन्न हैं। भूषण का मन परपक्ष के योद्धाओं की कापुरुषता का वर्णन करने में विशेष रूप से रमा है। 'शिवा-बावनी' का लेखक मुगल सैनिकों की स्वामिभक्ति से अपरिचित ही रहा है।[4]

वैयक्तिक पराक्रम की प्रशंसा के लिए इस कवि ने अपने नायक के अतिरिक्त मुहकमसिंह, अजीमशाह और रफी अतेब को चुना है। किन्तु सर्वाधिक प्रशंसा के पात्र जंगनामा के नायक ही रहे हैं। यह वार-परम्परा के अनुकूल ही है। गुरु गोविंद

---

१. मची मार भारी, दुहूँ ओर ऐसी।
भई भीर कुरखेत के खेत जैसी॥
छुटे तोप, बन्दूक, धुरंनाल गोला।
परे ऊख के पूख में बज्र ओला॥
चले तान कम्मान सों तीर तिक्खे।
मनो भूमि भारत्थ पारत्थ सिक्खे॥
किते बान कुद्दकंत सुक्कंत आवैं।
उडै आग ज्यों, लाग ज्यों नाग धावैं॥
कई बीर रन माहि कर खग्ग झारैं।
कटै सीस तै ईस शमला सवारैं॥
करैं घाउ पर घाउ खपुआ कटारैं।
मिले अंक जिन संक ज्यों परे प्यारैं॥
गिरैं लुत्थ पर लुत्थ बहु जुत्थ ऐसे।
परे ताल के पाल बहु मग्र जैसे॥
किने नीर बिन मीन ज्यों तरफरावैं।
किते लोह के छोह पर मोह धावैं।५८।

२. (क) को समुझाई करैं रण मैं, जब धाई गुरु वरैं साहि की फौजें॥४८॥

(ख) सबद गहिर सुनि हहि हिय हहिरात, ठहिर न सकैं कोउ देखैं दुख दाह की।
लागत अचूकैं हाहा कूकैं उरि हूकैं उठैं, छूटत बंदूकैं रण ऐसी जहाँ शाह की॥५१॥
—अशोक : प्राचीन जंगनामे, पृ० २७

३. (क) गुरू गोविन्द की लाज के काज भजै न महारण में भुक भूमैं॥५०॥
—वही, पृ० २७

(ख) खेलैं खेत लाय सिर बाजी
मारैं मुरैं टरैं अब कैसे। पाछैं हैं आई नित ऐसे॥५२॥ —वही, पृ० २८

४. भीख माँग खैहे, बिन मन सब रैहैं,
पै न जैहे हजरत, शिवराज महाराज पै।
—भूषण भारती, पृ० २२५

सिंह को अपने प्रसंगानुकूल हैदर[1] और इन्द्र[2] के समान बलवान् दिखाया है। 'हिन्दू पति' गुरु गोविन्दसिंह की तुलना मुस्लिम वीर हैदर से देकर अणीराय ने अपनी समत्व-बुद्धि का ही परिचय दिया है। इस प्रकार की उपमायें हिन्दी साहित्य में बिरली ही मिलती हैं।

युद्ध का वर्णन अणीराय ने सालंकार और निरलंकार दोनो शैलियो मे किया है। अलंकार-विधान के लिए उन्होने उपमान अधिकतर पौराणिक प्रसंगो और साधारण प्राकृतिक पदार्थों से लिये हैं। पौराणिक प्रसंग तो उन दिनों वीर रस सम्बन्धी उपमानों का प्रमुख स्रोत थे। गुरु गोविंदसिंह के 'दशमग्रंथ' से इस प्रवृत्ति को बहुत प्रोत्साहन मिला। 'जंगनामा' जैसी छोटी-सी रचना मे भी कृतयुग, त्रेता और द्वापर—तीनों युगों के प्रसंग अलंकार रूप मे प्रस्तुत हैं। पौराणिक प्रसंगो का यह प्राचुर्य अणीराय के पांडित्य का भी द्योतक है और इस रचना के उद्देश्य का भी।

अणीराय ने युद्ध के चित्र मुख्यतः प्राकृतिक दृश्यो और पदार्थों से सम्बद्ध सुन्दर और सहज उपमाओं तथा उत्प्रेक्षाओं की सहायता से ही प्रस्तुत किए हैं। प्राकृतिक दृश्यों के सुखद सौंदर्य और मनुष्येतर जीव-सृष्टि की भयंकरता एवं कारुणिकता के संयोग से एक सहज संतुलन की सृष्टि की गई है। नीचे क्रमशः प्राकृतिक दृश्य और मनुष्येतर जीव सृष्टि से उपमानो के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं :

(क) १. जब सुंडाहल सजे पूर संधूर रुच,
साँझ ललाई माँझ किधों गिरिराज उच्च।
—वही, पृष्ठ २१

२. मारी तेग मतंग सिर, ढाही अम्बारी
मानो पावस बीजली गिरि परी करारी।
—वही, पृष्ठ २६

३. मत्त मतंग उत्तंग धुजा फरहाहि इव,
घुरवा धावत लिये इन्द्र को धनुप शिव।
—वही, पृष्ठ २१

४. अंकुश जड़त जड़ाउ,, दिपै तह अत भला।
जन घटा छटा आकाश, जु चमकै चंचला।
—वही, पृष्ठ २१

(ख) १. किते वान कुहकंत भुवकुंत आवें।
उड़ै आग ज्यों लाग ज्यो नाग धावे॥—वही, पृष्ठ २९

---

१. लरत अजीम जहां गुरू ललकारयो आय, हैदर की हाक जैसे सद्दवर हटाना है॥४४॥
—अशोक : प्राचीन जंगनामे, पृ० २६

२. हिन्दु पति गुरु आप, सिंह गोविंद है।
जन मत्ता चढ्यो गुराक, सुर सम वृंद है॥२७॥
—वही, पृ० २२

२. गिरें लुत्थ पर लुत्थ वहु जुत्थ ऐसे।
परे ताल के पाल पर मग्र जैसे॥

—वही, पृष्ठ ३०

३. आप (तीर) गडे उर बाहर फोंक सु, यो कविता छवि भाउ विचारे।
पोत कपोत करायन ते सु मनो, मुख काढ के आगत चारे।

—वही, पृ० २६

४. सनद्ध बद्ध युद्ध मे गिरें कपोत कीर सं।

—वही, पृ० २७

गुरु गोविन्दसिंह की चित्र सृष्टि का एक बडा स्रोत ग्राम्य जीवन था। *अणीराय ने भी कुछ चित्रों का चयन ग्राम्य जीवन से किया है :*

१. टुट्टत सीस भुजा उर छुट्टत, लुट्टत ज्यों परपावक होलें ॥४६॥ —वही, पृ० २७

२. सकट कहाँ लौ चले जहाँ घोरी सब हारे ॥५३॥

—वही, पृ० २८

३. छुटे तोप वंदूक धुरंनाल गोला।
परें ऊखके पूख मैं वज्र ओला॥ ॥५७॥

—वही, पृष्ठ २६

गुरु गोविन्दसिंह युद्ध-वर्णन मे स्थिर दृश्य-चित्रों के अतिरिक्त ध्वनि-चित्रों और गति-चित्रो को भी बडी तन्मयता से खीचते थे। वास्तव मे ध्वनि और गति युद्ध-चित्रो के प्राण हैं। अणीराय भी अनुप्रास और अनुकरणात्मक शब्दों के प्रयोगो से युद्ध की ध्वनियाँ उपस्थित करते हैं[1] किन्तु उनका मन ध्वनि की अपेक्षा गति-चित्रों[2] में

---

१. ध्वनि चित्र—

रद फुट्टे वारहि तलातल निड तुड्ग।
धौल धराधर कम्पयो, कूरमकिड्ड मुड्ग ॥२६॥ —वही, पृ० २१

२. गति-चित्र—

अन्तिमाक्षरों में अनुप्रास और आन्तरिक तुक के द्वारा

(क) काटत रुण्डन, मुण्डन, भ्रुण्डन, सो तरवार गुरू बरसाही ॥४०॥ —वही, पृ० २५

(ख) घटा छटा विदारनी, धनी धरा मदारनी,
कि काल व्याल काल कूट गूढ़ ध्यान त्रान को।
प्रसिद्ध दीप देस मैं, पुरो गनेस सेस मैं,
गुरू गोबिन्दसिंह की कृपान के समान को ॥३०॥ —वही, पृष्ठ २३

(ग) बार न पार बिथार महा उमड़ै घुमड़ै जिम सिंध की आगें ॥४७॥

—वही, पृष्ठ २७

अधिक रमा है । गुरु गोविन्दसिंह के समान उन्होंने लघु छन्दो का प्रयोग तो नही किया किन्तु शब्दो के अन्तिमाक्षरो मे अनुप्रास और आन्तरिक तुक का प्रयोग उन्होने विशेष सफलता से किया है । उनकी रुचि शब्दो के प्रथमाक्षरो की आवृत्ति मे इतनी नहीं जितनी अन्तिमाक्षरों की आवृत्ति मे जिससे युद्ध-चित्र बडे सजीव बन पडे हैं। इसके साथ ही (जहाँ युद्ध-चित्र नहीं) भाषा मे एक सुखद प्रवाह आ गया है।

उद्देश्य :—

अणीराय अपने युद्ध-वर्णन मे सतुलित अवश्य हैं, तटस्थ कदापि नहीं हैं। अपने नायक के प्रति उनकी सहानुभूति, विपक्षी सैनिको के धर्माणुप्राणित एव स्व-पक्षी सैनिको के धर्माणुप्राणित स्वरूप की ओर सकेत पहले किया जा चुका है। स्पष्ट है कि अणीराय युद्ध के उद्देश्य के प्रति जागरूक हैं। वे इस युद्ध को औरगजेब की अनीति एव धर्मान्ध उत्पीडन के विरुद्ध नव-जागृत हिन्दू चेतना के विद्रोह के रूप में देखते हैं। वे इस युद्ध की धर्मपरक एव राजनीतिपरक व्यजना का परिचय इस प्रकार देते हैं :

> तख्ते बैठ अनीति को, सुने न चित अकुलाय।
> ता को कर्ता दिनन के, क्यो न लगे फल आय ॥६॥
> मुसलमान हिन्दू करे, जु देव ढहावें नित्त।
> फरयाद लगी दरगाह मे, कर्ता धरे न चित्त ॥७॥
> हुकम हुओ गोविन्द को, उतरयो अवनी जाय।
> कुटल करम औरग करे, ताको देहु सजाय ॥८॥
> धनुख चक्र खडा धरे, हिन्दूपति सुलतान।
> सोढ वश अवतार हो, गोबिंदसिंह बलवान ॥९॥
> लिखे पठाए शाह पै, छोड्यो सकल समाज।
> कछुक दिनन लग खालसा, लहै तख्त और ताज ॥१०॥

अन्तिम पक्ति में राज्य सत्ता सम्बन्धी जिस आकांक्षा को गुरु गोविन्दसिंह से सम्बन्धित किया गया है वह ऐतिहासिक-सत्य का नही, काव्य-सत्य का ही प्रतिनिधि है। अन्य हजूरी कवियो की रचनाओ मे अथवा गुरु गोविन्दसिंह की अपनी रचना मे इसका कही उल्लेख नही मिलता है।

अणीराय के अलकार साधारणत सहज और निरायास हैं। उपमान जाने-पहचाने हैं। अपवाद रूप से, कही-कही 'तेरी तरवार है बिरचि पादसाही को' अथवा 'तेरी तरवारी ऋतुराज ज्यो बिख्यात है' आदि सागरूपकों को निबाहने के लिए उन्हें क्लिष्ट कल्पना का सहारा लेना पडा है, परन्तु क्लिष्ट कल्पना उनके काव्य का साधारण गुण नही है। अपवाद रूप मे इसका प्रयोग शब्द से खिलवाड करने की तत्कालीन प्रवृत्ति का ही प्रभाव समझा जाना चाहिए। 'जगनामा' मे ऐसे स्थल ही अधिक हैं जहाँ अलकार, कवि-रुढि, क्लिष्ट कल्पना अथवा शब्दा-

डबर की सहायता के बिना भी युद्ध के सुन्दर, सश्लिष्ट चित्र उपस्थित किये गये हैं।[1]

रस, छन्द, भाषा—जगनामा मे, जैसा कि स्वाभाविक है, एक ही रस की निष्पत्ति हुई है और वह है वीर। इसके सहायक रौद्र, अद्भुत, भयानक आदि रसो का प्रयोग भी बहुत कम हो पाया है।

इनकी भाषा खडी बोली की ओर झुकती हुई ब्रज है। सरलता इसका प्रमुख गुण है। पजाब, जैसे अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र मे केवल सरल ब्रज के लिए ही स्थान हो सकता था। जिस प्रकार कवि ने क्लिष्ट कल्पना को अपने काव्य में स्थान नही दिया, इसी प्रकार क्लिष्ट भाषा अथवा शब्दाडबर से भी बचने का प्रयास किया है। शब्दों से खिलवाड करने की प्रवृत्ति भी नही के बराबर है। यमक, श्लेष आदि अलकारो का बहिष्कार इसका प्रमाण है।

पजाबी श्रोताओ के लिये लिखी जाने के कारण और पंजाबी वार-छन्द का एकाध स्थान पर प्रयोग होने के कारण इस छन्द मे कहीं-कही पजाबी शब्दो[2] का भी प्रयोग हो गया है। किन्तु पजाबी शब्दो की सख्या एक दर्जन से अधिक नही और वे ऐसे नही जो ब्रजभाषियो की समझ से बाहर हो। एक स्थान पर हरियाना क्षेत्र का प्रभाव भी पडा है।[3] कुल मिलाकर भाषा सरल, अमिश्रित ब्रज है।

---

१. एक उदाहरण इस प्रकार है—
छाड छाड तीरन को मुरी है कमान केती,
छुटकैं, बदूकैं, गोली बानी ह्वै दुरत है।
मारि मारि बरछी मुरी है केती राय कवि,
वान भवकाय, मुरे भूमि में हुरत है।
काटि-काटि सीस तरवारें मुरि म्यान केती,
हाथी घोरा मुरे जासो समर जुरत है।
लरि लरि मुरैं फेर लरैं परैं रन माझ,
मुहकम सिंह जू वो मुख न मुरत है॥३१॥ —वही पृ० २५

२ पजाबी शब्द —पृ० २४
मारी सरजे खान नो ॥३६॥ —पृ० २४
पहनि सूही सारी ॥३६॥
मसलत करें अनेक ॥१६॥ (मसलहत का पजाबी रूपान्तर) —पृ० १८
होनी हाथ रही कर रार्के ॥२८॥ —पृ० २२
समै पहुती आय ॥५३॥ —पृ० ३०
किते नीर बिन मीन ज्यों तरफरावैं ॥५८॥
लुब्ब ज्यों परपावक होलें ॥४६॥ —पृ० २७

३ सनद्ध वद्ध जुद्ध में
गिरैं कपोत कीर सैं ॥४७॥ —पृ० २७

द्वितीय अध्याय

राजदरबारी काव्य

फूलवंशी राजदरबार : गुरु दरबार की विस्तृति के रूप में—पटियाला और [illegible]विश के अन्य राज्यों का प्रादुर्भाव अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ। इन [illegible]यों को उन सिक्खों ने अपने भुजबल से स्थापित किया था, जिनके परिवारों में [illegible]ता, शासन आदि की परम्परा का सर्वथा अभाव था। राजनीतिक अशांति और [illegible]स्थिरता का तत्कालीन वातावरण भी किसी ललित कला के पनपने के लिए अनुकूल [illegible]था। तो भी इन राज्यों के सस्थापन के साथ ही जिस द्रुतगति से यहाँ के शासक [illegible] में काव्यकला का अभ्युदय हुआ, वह विस्मय का विषय है। पटियाला के दूसरे [illegible]श महाराज अमरसिंह एवं नाभा के द्वितीय नरेश राजा जसवतसिंह के दरबार में [illegible]शः केशवदास और गोपालसिंह नवीन को आश्रय मिल चुका था। दूसरे राज्यों में [illegible]हीं के अनुकरण पर कवियों का सम्मान होने लगा। राज्यपति ही नहीं राज्यों के [illegible]दारों द्वारा भी कवियों को प्रोत्साहन मिला। दूर-दूर से कविजन आकर गुणग्राही [illegible]जाओं एवं सभ्रान्त सरदारों की काव्यमर्मज्ञता एवं दान-वीरता से लाभान्वित होते। [illegible]र इन्हीं राज्यों के निवासियों में काव्य-सृजन की संभावनायें जागृत होने लगीं। [illegible]ट्याला के महाराजा नरेन्द्रसिंह, नाभा के राजा भरपूरसिंह और राजा रिपुदमनसिंह स्वयं कुशल कवि थे।

फूलवंशी राज्यों की सस्थापना के साथ इस भूभाग का भगवती सरस्वती द्वारा [illegible]तना कल्याण हुआ इसका अनुमान केवल इसी बात से लगाया जा सकता है कि [illegible] राज्यों की स्थापना से पूर्व इस भूभाग में किसी एक उल्लेखनीय रचना का भी [illegible]न नहीं हुआ था। यह बात हिन्दी और पंजाबी दोनों भाषाओं के विषय में सत्य [illegible]। इन राज्यों की स्थापना के साथ ही काव्य की अनवरत धारा बहने लगी। [illegible]व्यत्व के साथ-साथ पाण्डित्य की परम्परा भी स्थापित होने लगी। भाई सतोषसिंह, [illegible]र्सिंह नरोत्तम, ज्ञानी ज्ञानसिंह और भाई काहनसिंह आदि के नाम कविता और [illegible]द्वता में सामजस्य के उदाहरण हैं।

फूल-वंशी सिक्ख राज्यों द्वारा जो प्रोत्साहन हिन्दी काव्य को प्राप्त हुआ वह [illegible]ाबी काव्य को नहीं। वस्तुतः किसी पंजाबी कवि को राजाश्रय प्राप्त होने का [illegible]भ्रान्त, असंदिग्ध प्रमाण अब तक नहीं मिल पाया। पंजाब केसरी महाराजा [illegible]जीतसिंह के दरबार में भी ब्रजभाषा के कवि लाल को आश्रय मिलने का प्रमाण [illegible]तना निर्विवाद है, उतना पंजाबी कवि हाशिम को नहीं। हिन्दी कविता को ही

आश्रय प्रदान करने के कारण, फूलवशी राज्यो के विषय मे यह कहा जा सकता है कि उन्होंने इस दिशा मे प्रेरणा पास-पड़ोस के हिन्दू राजाओ से प्राप्त की थी, ऐसी सभावना सर्वथा निर्मूल नहीं समझी जानी चाहिये। किन्तु यह भी नही कहा जा सकता कि पजाब मे ऐसी परम्परा का सर्वथा अभाव था। पजाब मे हिन्दी कवियो को आश्रय सर्वप्रथम सिक्ख गुरुओ द्वारा प्राप्त हुआ। गुरु ग्रथ मे भट्टो के सवैये इस कथन का स्पष्ट समर्थन हैं। तदुपरात गुरु गोविन्दसिंह द्वारा बावन कवियो को आदरपूर्ण आश्रयदान भी इसी बात की ओर निर्भ्रान्त सकेत करता है। अत फूलवशीय राज्यो की स्थापना से पूर्व ही पजाब मे काव्यमर्मज्ञता, और कवियो के समुचित आदर की परम्परा स्थापित हो चुकी थी। सिक्ख सरदारो ने भुजबल से राज्य स्थापन करने की प्रेरणा जिस शूरवीर—गुरु गोविन्दसिंह—से प्राप्त की थी, वही ललित कलाओ—विशेषत काव्यकला—के प्रोत्साहन का भी प्रेरणा-स्रोत था। इसका एक अकाट्य प्रमाण है इन कवियो की कृतियो को लिपिबद्ध करने के लिये गुरुमुखी का निरपवाद प्रयोग। गुरु अर्जुन द्वारा समादृत भट्ट कवियो, गुरु गोविन्दसिंह द्वारा प्रोत्साहित बावन-कवियो और फूलवशी नरेशो द्वारा आश्रित कवियो की रचनायें गुरुमुखी मे ही लिपिबद्ध हुई हैं। फूलवशी राजा अपने दरबारो मे हिन्दी कवियो को आश्रय देकर पजाबी परम्परा का ही पालन कर रहे हैं, ऐसा मानने के कुछ अतिरिक्त कारण भी हैं।

फूलवशी राजाओ द्वारा गुरु गोविन्दसिंह और उनके कवियो की रचनाओ को एकत्रित करने का कार्य आरम्भ किया गया। गुरु गोविन्दसिंह के आश्रय मे किये गये महाभारत के भाषानुवाद के जो पर्व उपलब्ध नही थे, उनका फिर से अनुवाद करवाने का यत्न हुआ। गुरु गोविन्दसिंह ने पजाब-निवासियो का भारतीय सस्कृति से परिचय बनाये रखने के लिए कुछ सस्कृत ग्रथों का भाषानुवाद कराया था। इन ग्रथो का बहुत बडा भाग आनन्दपुर छोडने के पश्चात् लुप्त हो गया था। पटियाला नरेश महाराजा नरेन्द्रसिंह द्वारा इस लुप्त साहित्य का पुनरुद्धार करने का यत्न किया गया। इसी नरेश के आश्रय मे चन्द्रशेखर द्वारा 'देवी भागवत' का अनुवाद और नाभानरेश भरपूरसिंह के आश्रय मे लालसिंह 'दास' द्वारा 'फूलमाला रामायण' का सकलन भी 'दशमग्रथ' की परम्परा को आगे बढाते हैं। इस प्रकार फूलवशी दरबार आनन्दपुर दरबार की विस्तृति के रूप में ही प्रकट होता है।

किन्तु फूलवशी दरबार आनन्दपुर दरबार के समान धार्मिक-दरबार न था। अत. उसमे कुछ ऐसे ग्रथो की रचना भी स्वाभाविक थी जो रीतिकालीन दरबारी कविता की परम्परा के अनुकूल हो। शृगारी कवित्त-सवैयो एव एकाध लक्षण-ग्रथ की रचना इसी रीतिकालीन प्रभाव को ही प्रकट करती है।

रीतिकालीन प्रभाव—फूल-दरबारों की प्रारम्भिक रचनायें विषय-वस्तु और शैली की दृष्टि से खालिस पजाबी हैं। उदाहरण के लिये पटियाला दरबार की पहली रचना केशवदास कृत राजा अमरसिंह की वार को लीजिये। वार-शैली शत-प्रतिशत पजाबी रचना-शैली है। केशवदास ने छन्दो के चयन मे भी रीतिकालीन कवित्त-

सवैया-शैली का अनुसरण न करके आनन्दपुर के दरबार की छन्द परम्परा का ही निर्वाह किया है। कवित्त-सवैया से अधिक छप्पय, पवंगम, पाधड़ी, भुजंग आदि छन्दों का प्रयोग हमारे कथन का समर्थन करता है। अलंकारों का विरल-प्रयाग भी इसे रीतिकालीन परम्परा से अलग करता है। भाषा में पंजाबी शब्दावली का क्षीण पुट भी आनन्दपुर दरबार की काव्य परम्परा का पालन करता प्रतीत होता है। किन्तु, धीरे-धीरे रीतिकालीन प्रभाव की अभिवृद्धि होती गई। शृंगारी कवित्त-सवैयों का चलन बढ़ा,[1] प्राचीन आचार्यों के अनुकरण पर एकाध लक्षण ग्रंथ (कवि निहाल का 'साहित्य शिरोमणि') का भी निर्माण हुआ,[2] समस्या-पूर्ति पर भी ध्यान दिया गया।[3] उत्तरोत्तर आनन्दपुरीय परम्परा का त्याग होता गया और रीति-परम्परा का चलन बढ़ता गया। तो भी इतना कहा जा सकता है कि इन राजाओं ने रीति-परम्परा को लगभग उस समय ग्रहण किया जब हिन्दी क्षेत्र में उसका प्रभाव मिट रहा था। रीतिकाव्य के चरमोत्कर्ष के समय तो पंजाब की हिन्दी कविता कुछ एक अपवादों को छोड़, इस प्रभाव से सुरक्षित ही रही किन्तु उसके ह्रास के समय फूल दरबार के सौजन्य से इसको ग्रहण किया गया। विशेष ज्ञातव्य यह है कि यहाँ केवल ग्रहण ही ग्रहण है, फूल दरबार के कवि हिन्दी काव्य परम्परा को कोई मौलिक तत्त्व—

---

१. कवि चन्द्रशेखर द्वारा पटियाला-नरेश की रचिताओं का वर्णन :

थोरी थोरी वैसवारी नवल किसोरी सबै,
भोरी भोरी बातनि विहँसि मुख मोरतीं।
बसन विभूखन विराजत विमल वर,
मदन मरोरनि तरक तन तोरतीं।
प्यारे पातशाह के परम अनुराग रँगी,
चाय भरी चायल चपल दृग जोरतीं।
काम अबला सी कलाधर की कला सी चारु,
चम्पक लता सी चपला सी चित चोरतीं।

रामशेर सिंह अशोक : पेप्सू का प्राचीन हिन्दी साहित्य —पृष्ठ ९-१०

२. मम्मट मत को सार लै कछुक आपनो वित्त।
साहित्य शिरोमणि ग्रंथ के, बाधे उक्त कवित्त॥ —वही, पृ० १२

३. नाभा नरेश रिपुदमनसिंह के समय में समस्यापूर्ति का विशेष चलन हुआ। 'नारी चढ़ी है अटारी न उतारी उतरत है'—इस समस्या पर लिखे गए कवित्तों का संग्रह प्रकाशित भी हुआ था। उनमें महाराज के भी कुछ सवैये थे। एक सवैया इस प्रकार था :

राधिका जो प्यारी, वृषभानु की कुमारी,
खाई प्रेम की कटारी, श्याम श्याम हूँ ररत है।
नाहक गवात किस हेतु प्राण सुनो सखी,
कहे जब कोऊ तब ताहि सों लरत है।
हाय हाय देत न दिखाई कित गए प्यारे,
पागरी की भाँति कहि धरा में गिरत है।
तन की सँभार खोज प्रीतम को लेन हेतु,
चढ़ी है अटारी, न उतारी उतरत है॥३॥

विषयवस्तु अथवा रचना-शैली के अन्तर्गत नही दे सके। एक तो गुरुमुखी लिपि के प्रयोग के कारण पजाब की रचनाओं का हिन्दी क्षेत्र तक पहुँचना ही कठिन हो रहा था, दूसरे यहाँ स्वय रीति-परम्परा का अनुकरण मात्र होता रहा। हिंदी काव्य अपनी ही पुष्ट रीति परम्परा की क्षीण अनुकृति से प्रभावित होता—ऐसी आशा करना व्यर्थ है।

ऐतिहासिक कारण—फूल-दरबारी कविता का प्रेरणा-स्रोत आनन्दपुरीय काव्य परम्परा न रह कर उत्तरोत्तर रीति काव्य परम्परा बनता गया—इसके कुछ ऐतिहासिक कारण हैं। फूल-राज्यो की स्थापना करने वाले सिक्ख सरदार उन वीर पूर्वजो की सन्तान थे जिन्होने गुरु गोविन्दसिंह की अध्यक्षता मे मुगल-सेनाओ से लोहा लिया था। इनके धर्मपरायण परिवार मे गुरु गोविन्दसिंह द्वारा उपदिष्ट धर्मयुद्ध के प्रति गहरा अनुराग था। अत फूलवश की स्थापना इतनी राज्य लोभ, राज्य भोग के अभिप्राय से नही हुई जितनी मुगल राज्य के उन्मूलन के उद्देश्य से हुई। स्वभावत इन राज्यो के प्रारम्भिक काल मे आनन्दपुरीय काव्य परम्परा से प्रेरणा प्राप्त की जाती रही। महाराज अमरसिंह (पटियाला के द्वितीय महाराजा) की प्रशसा मे लिखी गई 'महाराज अमरसिंह की वार' (लेखक केशवदास) मे महाराज 'दनुज-दल-दहन' के उद्देश्य से युद्ध करते हुए 'हिन्दु पति नाह' के रूप मे चित्रित किये गये हैं। प्रकारान्तर से वे गुरु गोविन्दसिंह, और बन्दा बहादुर के अपूर्ण कार्य की पूर्ति करते हुए दिखाई देते हैं। अत ऐसे राजा का यशोगान करने के लिए आनन्दपुरीय परम्परा का अपनाया जाना सर्वथा स्वाभाविक और उपयुक्त था।

आनन्दपुरीय साहित्य विरोध और विद्रोह का साहित्य था—इसके विपरीत रीति साहित्य समझौते का परिचायक है। क्या कारण है कि फूलदरबारी साहित्य उत्तरोत्तर समझौता-वृत्ति की परिचायिका काव्य परम्परा को अपनाता गया। इसका कारण स्वय फूलवशी राजाओ और सरदारो की परिस्थिति मे परिवर्तन है। फूलवशी राजाओ का अग्रेजी शासन से समझौता उत्तरोत्तर पुष्ट होता गया। ज्यों ज्यो इन राजाओ के हित भारतीय जनसमुदायो के हितो से भिन्न होते गए, त्यो-त्यो इनकी कविता भी हिन्दी काव्य की बासी और परित्यक्त परम्परा की परिधि में सकुचित होती गई। यहाँ तक कि जब भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनकी मित्र मडली के सद्प्रयास से हिन्दी-काव्य मे नवचेतना का जागरण हो रहा था, उस समय भी फूलदरबारी कवि शृ गार की बँधी हुई लीक पर ही चलने मे सन्तुष्ट रहे। किसी श्रेणी का काव्य उसके भौतिक हितो से कितना सम्बद्ध रहता है, फूलदरबारी काव्य इसका स्पष्ट प्रमाण है।

जिस प्रकार गोस्वामी तुलसी दास ने अपनी रचना को अपने समय के चाटुकार तुक्कडों की काव्य-चेष्टाओ से भिन्न बताया था, इसी प्रकार सतरेण को भी 'धन कारन छद' बनानेवाले कवि महाशयो का विरोध करना पडा था। उन्होने धन लोभ के उद्देश्य से कविता करने वाले कवियों की रचना का श्रवन-पठन करने वालों को भी इसके दुष्परिणाम से सूचित किया है।[1] सतरेण जी का निवृत्ति-परायण, शान्त-रस प्रधान काव्य राज दरबार के प्रदर्शन-प्रधान काव्य के दुष्प्रभावो का निराकरण करने मे कृतनिश्चय दिखाई देता है । धनी अभिभावको का आश्रय ग्रहण करने के लिए द्वार पर निरादृत, अपमानित होते हुए[2] प्रतिभा-सम्पन्न कवियो को वे बार-बार 'धनवानन के मति जाय दुआरे' का उपदेश देते हैं और उन्हे गुरु की 'उपमा' मे वाणी सफल करने के लिए प्रबोधन देते हैं।[3] इस प्रकार सतरेण के काव्य को दरबारी-कविता की विस्तृत्रि के रूप मे नही, बल्कि उसकी विरोधिनी प्रवृत्ति के रूप मे ही देखा जाना चाहिए।

---

१. गुर नाम विना जु सराहि कवि अन सो कवि मोख न है जग थी रे।
वहि बारम बार मरै जनमै, तिन की चरचा सुकदेव कथी रे।
नर जो तिन की कविता पढि है, वहि जातहिगे सभि प्रेत पथी रे।
इम सतहि रेण कहै मन को, तिन की कविता बिरथी बिरथी रे।
सो धन कारन छन्द बनाय, रिझाय लहै धन धान्य उदारे।
मात पिता सुत नार सु ता घर, ताहि खुलाई ल्याद सु सारे।
जो धन कारन छद बनावति, सो मन जान पशू नर नारे।
सतहि रेण कहै मन को, कबहूँ मन होय न ताहि उधारे ।।१४।।
—(मन प्रबोध) श्री सतरेण ग्रथावली—पृष्ठ ५

२. धनदान करै अपमान सबै, मुख बोल कठोर करै धिरकारे।
तिनवाक सिलीमुख के सम है, मन के टुकरे टुकरे करि डारे। —वही, पृष्ठ ६

३. हरि की गुर की करि तू उपमा, जिससे तुमरा मन होय उधारे।
सतिसग करो नित सतन का रसना जपु नाम सु राम मुरारे।
मन साविध हो सति मारग मै, जित मारग सत गए सु अगारे।
इम सतहि रेण कहै मन को धनवानन के मति जाय दुआरे।
—पृष्ठ ६

कवि केशवदास रचित 'वार अमरसिंह'

कर्ता और काल :

'वार अमर सिंह' के रचयिता कवि केशवदास के जीवन-चरित के विषय में कोई सामग्री प्राप्त नही। 'वार' का रचना काल तक भी इन्होंने नही दिया। अतः निश्चित नही कहा जा सकता है कि कवि केशवदास इसी 'वार' के नायक राजा अमर सिंह के ही आश्रयदाता रहे होगे। किन्तु 'वार' मे राजा अमर सिंह के अतिरिक्त उनकी महारानी हुकम कौर, उनके दीवान नानकमल और मुन्शी दयालाल की भी प्रशसा की गई है। राजा अमरसिंह के किसी उत्तराधिकारी की प्रशसा नहीं की है। अतएत यह निष्कर्ष बहुत विवादास्पद प्रतीत नही कि कवि राजा अमरसिंह के ही समकालीन थे और उनका उद्देश्य इस 'वार' द्वारा राजा अमरसिंह, उनकी महारानी और दरबार के दूसरे कर्मचारियो को प्रसन्न करना था। इस 'वार' की रचना राजा अमरसिंह के राजत्व काल (स० १७६५-१७८० ई०) में ही मानी जानी उपयुक्त प्रतीत होती है।

प्रतिपाद्य :

इस 'वार' का सम्बन्ध एक ऐतिहासिक घटना—भटियाना के युद्ध (स० १७६६ ई०) से है। पटियाला राज्य के निर्माता महाराजा पटियाला की मृत्यु के पश्चात् उनका पौत्र अमरसिंह पटियाला के सिंहासन पर बैठा। पटियाला के पडोस का भूभाग अभी भट्टी मुसलमानों के अधिकार मे ही था। मुसलमान शासको ने अभी गैर-मुस्लिम राज्य पटियाला के अस्तित्व को स्वीकार नही किया था और वे इसे पुनः अपने अधिकार मे ले लेने की अभिलाषा लिए बैठे थे। सरदार आला सिंह की मृत्यु पर इनका साहस और भी बढा। पटियाला रियासत की सीमा पर पडने वाले ग्रामो की लूटमार, हिन्दु प्रजा पर अत्याचार आदि बढने लगा। इस समय महाराज अमर सिंह ने भटियाना पर चढाई की और भट्टी मुसलमानो को परास्त किया। इस 'वार' मे मुख्यतः इसी घटना का उल्लेख है।

वार :

'वार' पजाबी साहित्य की अपनी विशिष्ट शैली है। पूर्व नानक-काल से ही पजाबी मे 'वारों' का प्रचलन रहा है। हिन्दी और पजाबी दोनो भाषाओ मे रचना करने वाले गुरुओं, गुरुदास और दूसरे कवियों ने भी वार-रचना पजाबी भाषा मे ही की है। हमारे शोध-प्रबन्ध की कालावधि मे दो 'वारें' (एक जगनामा और एक वार कहना अधिक उपयुक्त होगा) हिन्दी भाषा मे भी रची गईं। वस्तुतः ये रचनाएँ पजाबी 'वार' का अत्यन्त क्षीण रूपान्तर मात्र हैं और इन रचनाओ से पजाबी 'वार' की शक्ति का अनुमान लगाना भ्रमोत्पादक होगा।

केशवदास को पंजाबी वार-परम्परा का ज्ञान बहुत गहरा न था। कम से कम उनकी स्वरचित 'वार' से तो ऐसा ही प्रतीत होता है। 'वार' किसी लोकनायक द्वारा लोक-कल्याण के लिए किए गए युद्ध का नाटकीय शैली मे स्तुतिपूर्ण वर्णन होता है। अतः 'वार' मे निम्नलिखित तत्वो का होना आवश्यक है—

१. लोक-कल्याण के लिए युद्ध।
२. लोक-नायक की स्तुति।
३. युद्ध-वर्णन।
४. नाटकीय शैली।

(१) लोक-कल्याण के लिए युद्ध—कवि केशवदास ने भी अपनी 'वार' मे युद्ध का उद्देश्य लोक-कल्याण ही माना है। मुसलमान पटियाले के भूभाग मे लूटमार करते थे।[1] गो ब्राह्मण और दीन-धर्मको सताते थे, बटमारी के भय से पथिकों के लिए मार्ग पर चलना कठिन हो रहा था।[2] अत. जब महाराज ने भटियाना पर चढाई की तो प्रजा मे आनन्द की लहर दौड गई[3] और प्रजा ने उनकी विजय पर हार्दिक प्रसन्नता का प्रदर्शन किया।[4]

यहाँ तक तो ठीक है, किन्तु कवि के मन मे उद्देश्य-सम्बन्धी स्पष्टता नही। लोक-कल्याण और राज्य विस्तार दोनो ही इस 'वार' के उद्देश्य प्रतीत होते हैं।[5] वार-परम्परा मे राज्य-विस्तार को युद्ध का लोकप्रिय कारण कभी नही माना गया। पूर्व नानक-कालीन 'वारें' तो अब अप्राप्य हैं। नानक-परवर्ती काल मे पजाब का इतिहास राज्य-लोलुप आततायियो के विरुद्ध युद्ध का ही इतिहास है। पजाबी स्वय अपने शासक न बन सके थे। अतः राज्य विस्तार की भावना को कभी लोक-समर्थन

१. करत कजा की मार मुलक में ना छाडी बाकी।
रहैं सदा जाकी फौजदारन हरायो है। —पृष्ठ ४५
२. भट्टी महा मलेछ, सदा गो दीन सतावैं।
जिह के अधिक त्रास, पथिक पैंडा ना पावैं। —पृष्ठ ४६
३. जा ठाढ्यो तहि अति भयो, गाम गाम आनन्द।
तिमर हरण कारण करण, चढ्यो जिम दुति को चद। —पृष्ठ ४८
४. बिघडा मार फतह कियो, जस चल्यो जग माहि।
घर घर भइ बधाइयाँ, मनो अनद विवाह॥ —पृ० ५३
५. (क) बिघडा मार फतेह कियो जस चल्यो जग माहि। —पृ० ४५
(ख) बिघड़े ते तिघड़े चल्यो अमरसिंह महाराज। —पृ० ४५
(ग) मार मवास किए सब ख्वास, सु दुरजन के सिर खग्ग उठाई।
धाय चल्यो सरसागढ़ लेन को, आगे हुसैन हुतो तिस ठाई। —पृ० ४५
(घ) बिघड़ा तिघडा और सरसा को जीत कर राना अमरसिंह बीकानेर की सीमा तक पहुँचा। बीकानेर-नरेश गजसिंह उन्हें अपने राज्य की सीमा पर मिला और दोनों नृपतियों ने आपस में मैत्री सम्बन्ध स्थापित किये।
मुक्तमाल गजसिंह ने, महाराज डारी गलै।
मानो भुजा दो प्रीत की, यह प्रभाव अति सोभरे। —पृ०

प्राप्त नहीं हुआ। अब शतियों के पश्चात् पहली बार पटियाला और उसके आसपास पंजाबियों का अपना राज्य स्थापित हुआ था। वार लेखक केशव के सामने स्थिति सर्वथा नूतन और अपूर्व थी। अत. महाराजा अमरसिंह द्वारा राज्य विस्तार का अर्थ था अत्याचारी मुस्लिम शासन का नाश। अत. राज्य-विस्तार के लिए किए गए इस युद्ध में भी परोक्ष रूप से लोककल्याण का तत्त्व निहित था। इस युद्ध को जन-साधारण का समर्थन प्राप्त होगा, ऐसी सभावना सहज ही की जा सकती है। तो भी यह कवि इस निहित तत्त्व को अधिक स्पष्ट करता तो वार-परम्परा का पालन अधिक सुचारु रूप से होता।

(२) लोकनायक की स्तुति—'वार' के नायक को लोकप्रिय नायक बनाने के लिए उसे हिन्दूपति के विशेषण से युक्त किया है। केशव ने एक चमत्कारपूर्ण घटना का आविष्कार करके अपने नायक के कर्म को देव-समर्थित, अत. सर्वथा उचित और दोषरहित, बताने का भी यत्न किया है। महाराज अमरसिंह दुर्ग में घिरे भट्टियों से युद्ध कर रहे हैं, सूर्यास्त हुआ चाहता है। अमरसिंह जानते हैं कि रात्रि के अन्धकार में भट्टियों को इधर-उधर से कुमक पहुँच जाएगी और उनकी पराजय कठिनतर हो जायेगी, अत वे 'वृजराय' से प्रार्थना करते हैं कि सूर्य-रथ की गति रुक जाय। प्रार्थना स्वीकार हुई और दो घडी दिन बढ गया जिससे महाराज ने सूर्यास्त से पहले ही शत्रु को परास्त कर दिया।[1] अत्युक्ति 'वार' का स्वभाव है, केशव की कल्पना द्वारा निर्मित यह घटना 'वार' परम्परा के सर्वथा अनुकूल है।

केशव ने अमरसिंह की अनावश्यक, असतुलित प्रशसा कहीं नहीं की, उन्होंने सदा उनके शौर्य को ही सराहा है। खेद है कि अमरसिंह के विषय में (जो 'वार' का नायक है और कदाचित् कवि का आश्रयदाता भी) इस प्रकार का सयत दृष्टिकोण अपनाने वाला केशव महारानी और मुन्शी की प्रशसा करता हुआ इस मर्यादा का पालन न कर सका। ये तीनों अपने सच्चरित्र और सत्कर्मों के कारण प्रशंसा के उपयुक्त पात्र होने पर भी 'वार' में प्रशसा पाने के अधिकारी नहीं हैं। वार-नायक की पत्नी और कर्मचारियों की प्रशसा वार-परम्परा के सर्वथा प्रतिकूल है। राज्याश्रय किस प्रकार कवि से चापलूसी कराता है, इसका एक छोटा सा उदाहरण यह वार भी है। वस्तुत' इससे पूर्व 'वार' चौपल की वस्तु रही है। पहली वार वार को

---

१. वेद घरी बाकी रही, गढी सु टूटी नाहि।
अमरसिंह महाराज के, भइ सोच मन माही ॥३२॥
तिमर भये मट्टी दलन, चल आवैं चहूँ ओर।
विनय करी नृप देव न, रवि को रुके सु तोर ॥३३॥
दिवस बड्यो जाने जगत, कृपा करी वृजराय।
अमर सिंह महाराज के, सूरज भयो सहाय ॥३४॥
जुद्ध को जोर भयो दुहूँ ओर सु, सूरन के चित होत हुलासा।
राज को रैन लरे निन लक सु रारन होत अनेक विनासा।
इन्द्र को आप भयो उत्साह सु, आय कै हाथ लियो घन बान्ना।
कश्यप पुन मशा हर्यो, रथ ठाढ़ो कियो तहाँ देख तमासा ॥३५॥ —पृ० ५१

राजदरबार मे स्थान मिला और तभी शूरेतर पात्रो की भी प्रशसा का श्रीगणेश हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि केशवदास अपने साथ अपने समकालीन दरबारी कवियो की परम्परा लाये थे जिसका प्रयोग उन्होने इस वार मे किया। पजाबी— पजाब मे लिखे गए—साहित्य मे (केवल वार साहित्य मे ही नहीं) ऐसा प्रथम वार हुआ।[१] इस प्रकार इस रचना को पजाबी वार-शैली और हिन्दी राजदरबारी यशोगान शैली से प्रभावित मानना चाहिये।

कवि ने जहाँ नायक पक्ष की प्रशसा मे इतनी उदारता दिखाई है, वहाँ परपक्ष के लिए निन्दा सूचक विशेषणों के प्रयोग मे भी कार्पण्य से काम नही लिया।

---

१. रानी की प्रशंसा

इन्द्र के सची और कुशल्या जैसे दसरथ के
जानकी जू रानी जैसे राम रघुराज के।
राजा बसुदेव जू कै देवकी प्रसिद्ध जग
रुकमनि रानी जैसे किशन ब्रिजराज के।
जैसे राजा पण्डु जू के पटरानी कुती जान
दरुपत सुता रानी जैसे अरजन सुख साज के।
महारानी जगरानी पट्टरानी सुखदानी।
तैसे वामे अग अमरसिंह महाराज के ॥५॥ —पृ० ४५

सत पुनि सुराज की रीति बिसै, अति नीति करे जिम बेद बतायो।
पारथ ज्यों चित में उत्साह सु, दान माहि बल कू सु लजायो।
बृद्धि को गृह बनी नृप भोज नू, केशव दास यही मति आयो।
रानि सभै पुरषोत्तम पूरन, भूल गयो बिध तीय बनायो ॥२६॥
—पृ० ४६

दीवान नानकचद की प्रशसा

जित अठ खड हरयार थने निवल जिन किय बम।
भय बस भए सुराठ, मारि सब लिए सु सरकस।
गोला हड गुमराहि, ताहि को गरब गवायो।
पावूल थाना कियो, और रय्यत सु बसायो।
दीवान सु नानकचद वर, नर बुधवत रावत सही।
करवार कलम कर्तार निज, किरपा कर ताको दई ॥२६॥ —पृ० ५०

मुन्शी दयालाल की प्रशसा

दयालाल दयावत, और दानत सु दार नर।
चित्त उदार सरदार, कियो करतार कलाधर।
कारबार सरकार, करत अत ही चित लाई।
जो लो पार बसाय, लेत जग मै भल्याई।
मुन्शी द्वारा महाराज के, नेकी से जग जसु लियो।
विद्या सुबुधि गुन खान, सुबर बिधाता तिह दियो ॥ —पृ० ५०

उनके लिए मवासी,[1] कन्दरानिवासी (असभ्य),[1] कज्जाक,[1] म्लेच्छ,[2] मूढ म्लेच्छ,[3] राक्षस,[4] आदि विशेषण प्रयुक्त किए गए हैं। मुसलमान शासक वर्ग और हिन्दू (विशेषत केशधारी खालसा) प्रजा के बीच दीर्घकालीन वैमनस्य और 'घल्लूघारे' की कटु स्मृतियो की पृष्ठ-भूमि मे ऐसे शब्दो का प्रयोग अस्वाभाविक प्रतीत नहीं होता। ऐसी शब्दावली उन दिनो लोकप्रिय रही होगी—ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है। किन्तु इस प्रकार की भर्त्सना—जो केवल प्रतिद्वन्द्वी पर ही न बरसती हो, बल्कि एक सम्प्रदाय विशेष पर—यदि न भी हो तो वार-परम्परा का अहित नहीं होता। गुरु गोविन्दसिंह के दरबारी कवि ने अपने 'जगनामा' मे इस प्रकार की शब्दावली का सर्वथा बहिष्कार किया है जिससे उनकी रचना का गौरव बढ़ा ही है। प्रतिद्वन्द्वी की अत्यधिक निन्दा से वार-नायक का गौरव बढ़ता नही।

(३) युद्ध-वर्णन—'वार' मूलत. वीरगाथा है और उसका प्रधान तत्त्व युद्ध-वर्णन है। सशक्त, सजीव युद्ध-वर्णन से ही किसी 'वार' (अथवा वीरगाथा) की सफलता आँकी जा सकती है।

भट्टी राजपूतों को परास्त करने के उद्देश्य से महाराज अमरसिंह 'ग्रीष्म ऋतु भानु' के समान शत्रु पर धावा बोलते हैं। उनकी अनन्त चतुरंगिनी सेना के चलने से सूर्य धूलि से ढक गया। ऐसे प्रतीत होता था मानो अगस्त्य जलनिधि को सुखाने के लिए क्रुद्ध हों। साकार क्रोध सेनानी शत्रुवध के लिए तत्पर थे। ध्वजाएँ फहराते और नगाडे बजाती हुई सेना ने हाथी घोडो सहित कूच किया। युद्ध होने लगा। महाभारत के घमसान सग्राम के पश्चात् शत्रुओ ने भाग कर गढ मे शरण ली। महाराज ने गढ को घेर लिया। उनकी प्रार्थना को सुनकर सूर्य भी रुक गया। महाराज ने गढ तोड दिया। भट्टियो की पराजय हुई। यह है, सक्षेप से, केशवदास के अनुसार इस युद्ध की कहानी।

स्पष्ट है कि युद्ध का यह वर्णन एकपक्षीय, अत. अपूर्ण है। शत्रु निन्दनीय तो हो सकता है अवहेलनीय नहीं। 'जगनामा' के लेखक अणीराय ने नायकपक्ष और शत्रुपक्ष के बीच शूरवीरता का जो सतुलन स्थापित किया है, केशव के काव्य में उसके दर्शन नहीं होते। अतः यह अनुमान लगाना कठिन हो जाता है कि नायक को विजय प्राप्त करने के लिए कैसे दुर्द्धर्ष शत्रु से पाला पडा था। शत्रु के प्रति अवहेलना दिखाकर कवि ने नायक पक्ष के प्रति न्याय नहीं किया।

---

१. आदि के निवासी, कन्दरा के सब बनवासी,
हते कई बेर, नाहि रच मग पायो है।
करत कजाकी मार मुलक मे न छाडा बाकी,
रहै सदा आको फौजदारन हरासो है। —पृ० ४५

२. भट्टी महा मलेच्छ, सदा गौ दीन सतावै। —पृ० ४५

३. अमरसिंह महाराज, उन्हें ज्यों ज्यों समुझावै।
त्यों त्यों मूढ मलेच्छ, नैन मन मैं न लजावै। —पृ० ४८

४. राक्स मारि निकारि, चैन परजा को दीनै। —पृ० ४६

नायक पक्ष के प्रारम्भिक सेना-प्रयान का वर्णन संक्षिप्त होने पर भी सशक्त और सजीव है, जैसे :

> अमर सिंह तब ही चढयो, जिम ग्रीषम को भान ॥११॥ —४६
> ....
>
> चमू चली चतुरगनी, गिनी अन्त न आया।
> घोरन की खुर ताल सो, सूरज रज छाया।
> ....
>
> मानों कुम्भज सुकोप कै, निधि सोखन धाया ॥१२॥—४७
> मूनक मैं सु मुकाम करि, साज लई सब सैन।
> वध कर चढयो सु अरि को वधन, वदन गेरु, रिस नैन॥१५॥—४७

तदुपरात नगाड़ा, ध्वजा, हाथी, घम्बारी आदि का वर्णन इतिवृत्तात्मक-सा ही है। उसमें उतनी ही शक्ति और वेग है जितनी द्रुतगति पाधड़ी छन्द में स्वभावत होती है :

> अमरसिंह चढ चलयो भूप
> अत तेजवत सुन्दर सरूप।
> जहाँ वजयो दमामा घोर धार,
> सब चढी सैन शस्तर सभार।
> स्वरन वरन अर पीत रग,
> फहिरैं धुजा निशान सग।
> मैंगल चलत तहाँ अति अवत,
> सभ स्याम अग उज्जल मुदत।
> सुन्दर सधूर राजैं सुभाल,
> गज गाह घोर चुदा रसाल' —पृ० ४८-४९

---

१. सेना-प्रस्थान की यह झाँकी और भी निर्जीव प्रतीत होने लगती है जब इसकी तुलना मणीराय के 'जगनामा'—जिसके परिचय की आशा केशवदास से रखना अनुचित नहीं—की समानान्तर झाँकी से की जाती है

> चढि चलयो जु सिंह गुबिंद, सग सैना सवल।
> जन पच्छम घनघोर,' उठयो पावस प्रवल॥
> मत्त मतग उतग, धुजा फर हरहि इव।
> धुरवा धावत लिए इन्द्र को धनुप शिव॥
> ....
>
> कज्जल गिर से मरयो वरय ग्नाय वर।
> मारैं मुट फुकार सु पारावारि पर॥
> जव मुडाहल साजे पूर मधूर रुच।
> साफ ललाटें मांझ किधौं गिरिराज उच॥'
> डर डुल्लो दिगपाल, ग्लाजल कीच हुइ।
> दुरे दौर दर हार, व्याल विल वाच हुइ॥
> रद पुऊँ वाराह, तलातल निड तुन्ग।
> धौल धरावर कम्पयो, कूरम विड मुडग॥ —प्राचीन जगनामे पृ० २१

भिडन्त को भी कवि ने भुजग छन्द की १२ पक्तियो मे समाप्त किया। तोप, गोला, जबूरे, रहकले, बाण, बदूक, कृपाण के नाम गिनवा कर कवि युद्ध-वर्णन से निवृत्त हुए हैं। युद्ध मे न गति है, न ध्वनि। सेनानियो का वीर-गर्जन और गर्वोक्तियाँ, सेना-द्वय का सामूहिक शौर्य अथवा सैनिको का व्यक्तिगत पराक्रम, अस्त्र-शस्त्रो की चमक और गति, सेनापतियो की चुनौतियाँ और उत्साहवर्धक वचन, मृत, कटते हुए हाथ, गिरते हुए सुण्ड, लडते हुए रुण्ड, हताहतो का चीत्कार, किसी का वर्णन कवि ने आवश्यक नही समझा। कदाचित् कवि को उसकी त्रुटियों के आधार पर परखना न्यायसगत न होगा। जो कुछ कवि ने लिखा है, उनके आधार पर कहा जा सकता है कि कवि विस्तृत युद्ध-वर्णन—विशेषत. अतिशयोक्तिपूर्ण युद्ध-वर्णन को विशेष महत्त्व नहीं देते। युद्ध के वीभत्स चित्र उपस्थित करने मे तो उनकी रुचि बिल्कुल नही है। तो भी उन्होने उनकी 'मानो राम दल चढयो तोरन सु लका', 'मानो पके खेत बरसत गोले' (ओले ?), 'चली रुधिर सरिता भई भूमि रत्ती',[1] 'रुको सिंह मानो विकट बन मझारी,'[2] 'केते उलट के धूर मे परे माइल'[3] आदि पक्तियो से युद्ध का वातावरण उत्पन्न करने का प्रयास अवश्य किया है। कुल मिलाकर उनका युद्ध-वर्णन गतिहीन, नीरस और निर्जीव है। उनके युद्ध-वर्णन को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि पजाबी वार-साहित्य अथवा हिन्दी रासो-साहित्य से उनका परिचय बहुत घनिष्ठ न था।

(४) नाटकीय शैली—

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, वार काव्य में नाटकीय गुण का होना नितान्त आवश्यक है। वस्तुतः यही गुण इसे 'जगनामा' से अलग करता है। पजाबी वार-लेखकों ने कल (कलह) और नारद के प्रतीको का सृजन 'वार' में नाटकत्व

---

१. उनके युद्ध-वर्णन के उदाहरण इस प्रकार हैं :—
चढ्यो महाराज, बज्यो सबल डका।
मानो रामदल चढयो, तोरन सु लका ॥
छूटे तोप सुकाप परे गोले।
मानो पके खेत बरसत गोले (ओले ?)॥
छूटे रहिकले और जबूरे अंजाइल।
हुए शत्रु की सैन के लोक घाइल ॥
छूटे बाण बदूख तीखे करारे।
लरे खेत जस हेत जोधा सूर भारे ॥
गही सूर कृपान अरु तेज कत्ती।
चली रुधिर सरिता भई भूमि रत्ती ॥
अमरसिंह को तेज दिन दिन सवायो।
जिन मारि मलेछ मट्टी खपायो ॥ —पृ० ५०

२. रुके गढ़ी मैं कार किय युद्ध भारी।
रुको सिंह मानो विकट बन मझारी ॥ —पृ० ५१

३. केते जीव त्यागी, केते परे घाइल।
केते उलट के धूर मैं परे माइल ॥ —पृ० ५२

लाने के लिए ही किया था। वीरों के गर्वोक्तियाँ भरे सवाद और वीरों के द्वन्द्व-युद्ध भी युद्ध-दृश्य को नाटकमय बना देते थे। कवि केसवदास की वार मे इस तत्त्व का नितात अभाव है। केवल एक स्थान पर सूर्य के रुक जाने का प्रसग इस अभाव की पूर्ति करता प्रतीत होता है। उसके युद्ध-वर्णन मे इतिवृत्त की प्रधानता है जो इसे 'वार' से अधिक 'जगनामा' के निकट ले जाती है।

छन्द—गुरु गोविन्दसिंह तथा उनके दरबारी कवि सेनापति और अणीराय आदि का अनुसरण करते हुए इन्होने भी अपनी रचना मे छन्द-वैविध्य को अपनाया है। इन्होने दोहा, सोरठा, कवित्त, सवैया, छप्पय, पवगम, पाधडी, भुजग, इम्मत (सवैया) आदि छन्दो का प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त पजाबी वार के सुप्रसिद्ध छन्द—पौडी, निशानी अथवा वार छन्द—का प्रयोग किया है। केशव का छन्द निर्वाह सर्वदा निर्दोष नही है। किसी-किसी स्थान पर इसकी सदोषता बहुत अखरती है जैसे कि निम्नलिखित छन्द मे :

चढयो महाराज बजयो सबल डका। —२१
मानो रामदल चढयो तोरन सु लका ॥ —२२
छूटे तोप सु कोप परे गोले। —१८
मानो पके खेत बरखत ओले ॥ —१८
छूटे रहकले औ जबूरे जजायल। —२३
हुए शत्रु की सैन के लोक घायल ॥ —२०
छूटे वान वदूख तीखे करारे। —२१
लरे खेत जस हेत जोधा सूर भारे ॥ —२१

अलंकार—कवि की रुचि चित्रात्मकता की ओर नही है, इसका कुछ आभास उनके निर्जीव युद्ध-चित्रण से ही मिलता है। स्वतन्त्र निरीक्षण के अभाव की पूर्ति एक हद तक रूढ अलकारो द्वारा हो सकती है, पर कवि ने अलकारो का प्रयोग भी बहुत कम मात्रा मे किया है। सारी 'वार' मे केवल निम्नलिखित सादृश्यमूलक अलकारों का प्रयोग है :

१. अमरसिंह तब ही चढयो, जिम ग्रीषम को भान ॥११॥
(उपमा)—पृ० ४६

२. तिमर हरण कारण करण, चढयो जिम दुति को चन्द ॥१७॥
(उपमा)—पृ० ४८

३. छूटे तोप सुकोप परे गोले।
मानो पके खेत बरखत गोले (ओले ?) ॥२६॥
(उत्प्रेक्षा) —पृ० ५०

४. चली रुधिर सरिता ॥२६॥ (रूपक)—पृ० ५०

५. रुके गढी मे जाय किय जुद्ध भारी।
रुको सिंह मानो बिकट बन मझारी ॥३१॥
(उत्प्रेक्षा)—पृ० ५१

६. मुक्तमाल गज सिंह नै, महाराज डारी गरे।
मानी भुजा दो प्रीत की, यह प्रभाव अति सो घरे ॥५४॥
(उत्प्रेक्षा)—पृ० ५४

स्पष्ट है कि केशवदास को न तो अपने विषय—युद्ध—का ही विशेष परिचय था और न उनका प्रकृति-निरीक्षण ही विशेष गहरा था। इस अभाव की पूर्ति उन्होंने पौराणिक प्रसगो से की है। इन्द्र, शची, कौशल्या, दशरथ जानकी, रघुराज, रुक्मिणी, कृष्ण, पाडु कुन्ती, द्रौपदी, अर्जुन, बलि, भोज, कुम्भज (अगस्त्य), महाभारत, राम-सेना, कश्यप कुरुक्षेत्र, नारद आदि के प्रयोग से उन्होंने सारी कथा को पौराणिक वातावरण देने का यत्न किया है जिससे इस रूखी-फीकी 'वार' मे भी यत्र-तत्र रसके छीटे बिखर गए हैं। शूरवीर कही पारथ के समान शत्रुओ को ललकारते, कही अगस्त्य के समान शत्रु सेना रूपी समुद्र का शोपण करते दिखाई देते हैं। ऐसे रसमय स्थलों मे से एक उदाहरण यहाँ अनुपयुक्त न होगा :

जुद्ध को जोर भयो दुहूँ ओर सु, सूरन के चित होत हुलासा।
राम की सैन लरे जिम लक सु, राखस होत अनेक बिनासा।
इन्द्र को आय भयो उत्साह सु, आय के छाय लियो घनवासा।
कस्यप त्र महा हर्ष्यो, रथ ठाढो कियो तहाँ देख तमासा ॥१३॥
—पृ० ५१

भाषा—'वार राजा अमर सिंह' मुख्यत खडी बोली मिश्रित ब्रज मे लिखी गई। पजाब मे हिन्दी रचनाओ की भाषा का स्वरूप साधारणत खडी बोली मिश्रित ब्रज ही रहा है। इस रचना में जहाँ पजाबी 'वार' के प्रसिद्ध छद—पौडी, निशानी अथवा वार छन्द—का प्रयोग किया गया है वहाँ भाषा पजाबी हो गई है अथवा पजाबी-हिन्दी की खिचडी। इस प्रकार केशवदास ने हिन्दी 'जगनामा' के लेखक अणीराय द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का ही अनुसरण किया है।

वार छन्द के अतिरिक्त दूसरे छन्दो मे पजाबी और फारसी शब्दो का बडा हलका सा मिश्रण है। 'ठारा, (अठारा), साध्यो (ठिकाने लगाया), उताल (उस ओर), ते (और), पिच्छा (पीछा), राठ (वीर), भल्याई (भलाई), सवायो (अधिक), माख (कह), तुग्ध (चमडा), बधाइयाँ (बधाई), पजाबी शब्द, और मगरूर, मुलक, कजाकी, बाकी, चैन, मुकाम, दुसमन, जालम, गरूर, ताब, फारसी शब्दो का प्रयोग इस रचना में पाया जाता है। 'प्राचीन जगनामे' के सम्पादक सरदार शमशेर सिंह 'अशोक' ने इस रचना की भाषा को हिन्दी पजाबी भाषा की खिचडी कहा है। किन्तु उनका यह कथन बहुत ठीक प्रतीत नहीं होता। यह भाषा, अधिकाशत, पजाबी का पुट लिए हुए हिन्दी ही है।

उपसहार—

अशोक जी ने ही इस 'वार' को साहित्यिक और ऐतिहासिक दृष्टियो से बडी सफल रचना माना है। इस रचना के ऐतिहासिक महत्त्व का मूल्यांकन करने के

लिए प्रस्तुत प्रबध में अवकाश नही है। स्वतन्त्र काव्यग्रन्थ के रूप मे यह रचना प्रथम कोटि की काव्यकृतियों मे स्थान पाने की अधिकारी नही है। इसे सफल 'वार' तो किसी रूप मे नही कहा जा सकता। वीर-काव्य के नाते श्राता को रस-निमज्जित करने अथवा उसे उच्छ्वसित करने की उसकी शक्ति बहुत सदिग्ध है। दोष रहित छन्दो, चमत्कृत करने वाले अलकारो अथवा ओजस्विनी भाषा के प्रेमियो की तुष्टि इस रचना से हो सकती है ऐसा कहने के लिए भी साहस अपेक्षित है। हाँ, इसका ऐतिहासिक महत्त्व अवश्य है। इस रचना द्वारा फूल-क्षेत्र मे हिन्दी साहित्य-निर्माण का सूत्रपात हुआ, फूल-नरेशों मे हिन्दी साहित्य के प्रति रुचि उत्पन्न करने का यह पहला प्रयास है। तदुपरात चन्द्रशेखर और निहाल आदि कवियो को उच्च कोटि की काव्यकृतियो के सृजन का जो अवसर मिला, उसका बीज केशवदास की 'वार राजा अमरसिंह की' द्वारा ही आरोपित हुआ था।

उपसंहार

वैविध्य—

सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी के हिन्दी-गुरुमुखी साहित्य की जो बात अध्येता के मस्तिष्क को तुरन्त प्रभावित करती है, वह है उसका बहुमुखी वैविध्य। यह वैविध्य विषयगत भी है तथा रूपगत एवं शैलीगत भी।

विषयगत वैविध्य—

दो सौ वर्षों की इस कालावधि में हिन्दी साहित्य के तीन युगों की विषय-वस्तु को समेट लेने का आग्रह विद्यमान है। इस काल में हमें वीरगाथा, भक्ति और रीति तीनों प्रकार के विषयों से सम्बन्धित काव्य रचनायें मिलती हैं।

१. वीर काव्य :

(क) वीर-गाथा : अपनी कथा, गुरु शोभा, जगनामा, वार अमर सिंह की, दशम ग्रंथ के पौराणिक प्रबन्ध।

(ख) वीर-स्तोत्र : बावन कवियों की मुक्तक रचनायें।

२. भक्ति-काव्य :

(क) निर्गुण बानी : गुरु तेग बहादुर के शब्द, गुरु गोविंदसिंह के शब्द, जापु, कवित्त-सवैये ; हरिया जी का ग्रन्थ, संत रैण का मन प्रबोध, सहज राम की आसावरियाँ और गुलाब सिंह निर्मला का भाव रसामृत।

(ख) सगुण

रामकाव्य : हनूमान् नाटक, रामावतार, भावरसामृत (आंशिक), हरिया जी का ग्रन्थ (आंशिक)।

कृष्णकाव्य : कृष्णावतार, बारहमासा कृष्ण जी का।

(ग) सूफी काव्य : कथा हीर रांझन की।

३. रीति :

(क) निर्गुण भक्ति मिश्रित शृंगार : गुरु दास के कवित्त-सवैये (नायिका-भेद)

(ख) सगुण भक्ति मिश्रित शृंगार : रास-मंडल।

(ग) लौकिक प्रेमाख्यान—विशुद्ध शृंगार: चरित्रोपाख्यान

(घ) लक्षण ग्रंथ : चित्र विलास

रूपगत वैविध्य :

हमारे अध्ययन-काल मे गद्य और पद्यमय, मौलिक और अनूदित सभी प्रकार के ग्रन्थ मिलते हैं। किन्तु प्रस्तुत प्रबध का क्षेत्र मौलिक पद्य तक ही सीमित होने के कारण, हम इसी के अतर्गत उपलब्ध रूपों का वर्णन करेंगे।

१. मुक्तक :

(क) गेय पद : गुरु तेग बहादुर और गुरु गोविन्दसिंह के पद (शब्द), आसावरियाँ।

(ख) कवित्त-सवैया : कवित्त-सवैये (गुरुदास), सवैये (गुरु गोविंदसिंह); भाव रसामृत, मनप्रबोध, आसावरियाँ।

२. प्रबन्ध :

(क) महाकाव्य : हनूमान नाटक, रामावतार, कृष्णावतार, नानक विजय, गुरु विलास।

(ख) खण्डकाव्य : जंगनामा, अमर सिंह की वार, सूर रंभावत, कथा हीर राझन की।

(ग) एकार्थ काव्य : चरित्रोपाख्यान, परचियाँ सेवाराम, साखियाँ गुरु नानक।

(घ) नव-पुराण अथवा पुराणाभास : बचित्र नाटक, नानक विजय।

प्रबन्ध-काव्य मे कथा और पात्रों की दृष्टि से भी पर्याप्त रूप-वैविध्य के दर्शन होते हैं।

(क) कथाश्रित रूप :

१. आत्म-कथा : अपनी-कथा

२. पर-कथा : चौबीस अवतार, चण्डी-चरित्र, कथा हीर राझन की, सूर रंभावत आदि।

३. पौराणिक शैली पर वर्णित कथा : नानक विजय, साखियाँ नानक देव

(ख) पात्राश्रित रूप :

१. पौराणिक : सत्-युगीन — चण्डी चरित्र

त्रेता-युगीन — हनूमान नाटक, रामावतार

द्वापर-युगीन — कृष्णावतार

कलि-युगीन — कल्कि अवतार

२. ऐतिहासिक : गुरु-विषयक	गुरुविलास, गुरु शोभा, नानक विजय, महिमा प्रकाश।
गुरु-भक्ति विषयक :	परचियाँ।
नरेश-विषयक :	वार अमर सिंह की।
३. लोक गाथा :	कथा हीर रांझन की।
४. काल्पनिक :	सूर रंभावत।

शैलीगत वैविध्य :

रस—इस युग की रचनाओं में सभी रसों के दर्शन होते हैं। प्रधान रस तीन हैं :

शृंगार	पार्थिव	रासमण्डल
	अपार्थिव	कवित्त-सवैया (नायिका-भेद) गुरु दास
शांत	वाणी साहित्य	
वीर	दशम ग्रंथ के प्रबन्ध	

छन्द—छन्द शैली	प्रबन्ध	मुक्तक
दोहा-चौपाई शैली	कथा हीर रांझन की, सूर रंभावत	
कवित्त-सवैया शैली	चण्डीचरित्र उक्ति-बिलास	कवित्त-सवैये गुरुदास, मन प्रबोध
गेय-पद शैली	पारसनाथ रुद्रावतार	गुरु तेग बहादुर और गुरु गोविन्दसिंह के पद
मिश्रित पद्धटिका शैली	चण्डी चरित्र, हनूमान नाटक	अकाल उस्तति
जापु शैली	कृष्णावतार (दुर्गा पूजा से सम्बन्धित एक अंश)	जापु
रेखता शैली	रामावतार (एक अंश)	आसावरियाँ
दोहा शैली		नवम गुरु के श्लोक

इस रूप-वैविध्य का ऐतिहासिक महत्त्व क्या है ? हिन्दी साहित्य का रीति-काल अपनी विषय-वस्तु और काव्य रूप की एकांगिता के लिए कुख्यात है। यह ठीक है कि विषय-विशेष (नख-शिख) और शैली के एक अंग-विशेष (अलंकार-विधान) में रीतिकालीन कवियों ने अत्यन्त सूक्ष्म विवरण उपस्थित किये हैं। किन्तु इन से बाहर अपार सौंदर्य-राशि (वस्तुगत, भावगत एवं शैलीगत) के प्रति उनकी दृष्टि नहीं गई। सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी में रचित, गुरुमुखी में लिपिबद्ध, हिन्दी काव्य को हिन्दी साहित्य का अंग मान लेने पर रीतिकाल की यह एकांगिता बहुत कम हो

संक्षेप में हमारा निष्कर्ष है कि पंजाब उन दिनों हिन्दी-काव्य की स्वस्थ प्रवृत्तियों की रक्षा कर रहा था जब कि हिन्दी-भाषी क्षेत्र इनकी ओर से उदासीन था।

(३) ग्रहण कवि-कर्म का अथ है, इति नहीं। सृजनात्मक शक्ति के बिना ग्राहक शक्ति व्यर्थ है। प्रत्येक प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति परम्परा से कुछ ग्रहण करता और अपनी सामर्थ्य के अनुसार कुछ उसमें परिवर्तन भी करता है। इसी प्रकार किसी प्रदेश-विशेष का साहित्य दूसरे प्रदेश से कुछ ग्रहण करता हुआ भी अपने क्षेत्र एवं युग के आग्रह के अनुसार गृहीत वस्तु को नवीन रूप देता तथा सर्वथा नवीन वस्तु का सृजन भी करता है। पंजाब में भी ऐसा ही हुआ। पंजाब का मौलिक योगदान इस प्रकार है :

विषय-वस्तु : हिन्दी में सर्वप्रथम भगवती चण्डी, कल्कि अवतार, रुद्र अवतार एवं हीर-रांझा पर प्रबन्ध कोटि की रचना।

रूप :

१. आत्मकथात्मक प्रबन्ध	(अपनी कथा)
२. उपाख्यान	(चरित्रोपाख्यान)
३. नव-पुराण अथवा पुराणाभास	(बचित्र नाटक और नानक विजय)

शैली :

१. वार-शैली,	(अमर सिंह की वार)
२. जंगनामा शैली	(जंगनामा गोविंदसिंह)
३. गेय पद शैली में युद्ध वर्णन	(पारसनाथ रुद्रावतार)

राष्ट्रीय साहित्य—

सत्रहवीं अठारहवीं शताब्दी के गुरुमुखी हिन्दी साहित्य का अत्यन्त स्पष्ट वैशिष्ट्य है उसका 'धर्म-युद्ध' से सम्बन्ध। पंजाब में राष्ट्र-चेतना अथवा संघ-चेतना सर्वप्रथम धर्म-युद्ध के रूप में ही प्रतिबिम्बित हुई। हिन्दी भाषा को इतने विस्तृत क्षेत्र और इतने दीर्घ-काल के लिए 'राष्ट्र चेतना' के माध्यम-रूप में प्रयोग करने का श्रेय पंजाब-क्षेत्र को ही है। इस साहित्य के राष्ट्रीय स्वरूप के स्पष्ट प्रमाण निम्नलिखित हैं :

१ यह मुगल-शासन के विरुद्ध प्रतिरक्षा, प्रतिकार और विद्रोह आन्दोलन का सहयोगी है।

२. यह तत्कालीन पंजाबी-साहित्य की प्रादेशिक विशेषताओं (सूफियों और किस्सा-कवियों के एकांगी प्रेमवाद) से मुक्त है।

३. यह तत्कालीन हिन्दी-साहित्य की प्रादेशिक विशेषताओं (रीतिवाद, शृंगारवाद) से भी प्राय मुक्त है।

४. यह हिन्दी-भाषा को एक पर-प्रदेशीय भाषा के रूप में नहीं अपनाता, बल्कि एक ऐसे रूप में अपनाता है कि यह इसी प्रदेश का एक स्थायी एवं निजी अंग बन सके। गुरमुखी लिपि का प्रयोग इसका प्रमाण है।

संक्षेप मे, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि इन दो शताब्दियों का साहित्य निर्भ्रान्त रूप से राष्ट्रीय साहित्य है। इस निष्कर्ष के अनिवार्य उप-परिणाम इस प्रकार हैं :

(क) हिन्दी साहित्य की व्याप्ति देवनागरी लिपि तक ही सीमित नहीं है।

(ख) हिन्दी साहित्य केवल प्रादेशिक साहित्य नहीं है।

(क) हिन्दी साहित्य देवनागरी की अपेक्षा अधिक व्यापक—प्रत्येक भाषा की अपनी विशिष्ट लिपि हो, यह स्वाभाविक ही है। उस भाषा का सामान्य अध्येता उस भाषा के साहित्य को उसकी विशिष्ट लिपि में परिबद्ध अथवा सीमित समझ ले, यह भी बहुत अस्वाभाविक नहीं। किन्तु जो सहज स्वाभाविक है, वही अन्तिम, अपरिवर्तनीय सत्य है, ऐसा आवश्यक नहीं।

राष्ट्र-भाषा का ग्रहण विभिन्न प्रदेशों द्वारा अपनी क्षमता और प्रतिभा के अनुरूप ही हो सकता है। लिपि किसी प्रदेश की उच्चारण-विषयक क्षमता एवं प्रतिभा की परिचायक होती है। सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी के पंजाब ने हिन्दी को अपनी प्रतिभा के अनुरूप ही ग्रहण किया। परिणामतः जिस साहित्य का सृजन हुआ, वह हिन्दी हो कर भी पंजाबी स्वभाव के अनुकूल था। इसकी भाषा को हिन्दी मानते हुए भी इसे पंजाबी साहित्य मानने का आग्रह आज तक विद्यमान है। तत्कालीन पंजाब में इसके प्रादेशिक और राष्ट्रीय स्वरूप के विषय में किसी विवाद का क्षीण-सा संकेत भी नहीं मिलता।

गुरमुखी लिपि और हिन्दी-काव्य के समन्वय मे जहाँ लाभ का पक्ष है वहाँ हानि का पक्ष भी है। लिपि की भेदक दीवार के कारण यह साहित्य हिन्दी विद्वानों तक नहीं पहुँच सका। इस साहित्य के अब तक उपेक्षित रहने का कुछ दायित्व इस उपलक्षित किन्तु भ्रान्त भावना पर भी है कि हिन्दी साहित्य देवनागरी लिपि में ही उपलब्ध है, अन्यथा गुरमुखी लिपि इतनी दुर्जेय बाधा उपस्थित न कर सकती थी।

संक्षेप में, हमारा निष्कर्ष है कि हिन्दी-साहित्य देवनागरी की सीमा-रेखाओं में ही सीमित नहीं है। इसके राष्ट्रीय स्वरूप का सम्यक्‌रूपेण हृदयंगम करने के लिए तथा उसके अखण्डित रूप का साक्षात्कार करने के लिए लिपि-विषयक आग्रह से मुक्त होना आवश्यक है।

(ख) हिन्दी साहित्य केवल प्रादेशिक नहीं—हिन्दी-साहित्य के स्पष्टतः दो रूप हैं—प्रादेशिक और राष्ट्रीय। हिन्दी विद्वानों ने सिद्धान्त रूप मे साहित्य-भाषा हिन्दी के क्षेत्र का आरम्भ 'राजस्थान और पंजाब राज्य की पश्चिमी सीमा' से किया है किन्तु व्यवहार रूप में उसे वस्तुतः मध्यदेश तक ही सीमित रखा है। हिन्दी

साहित्य के प्रचलन इतिहासो मे हिन्दी साहित्य के राष्ट्रीय-स्वरूप को ग्रहण करने का आग्रह बहुत स्पष्ट नही।

हमारे अध्ययन की कालावधि वही है जो 'रीतिकाल' की है। इस काल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ, हिन्दी-साहित्य के प्रामाणिक इतिहासों के अनुसार हैं, रीति और शृंगार। रीति प्रवृत्ति मुख्यतः प्रादेशिक प्रवृत्ति है, यह राष्ट्रीय प्रवृत्ति कदापि नहीं। केवल इसी के आधार पर हिन्दी-साहित्य के युग-विशेष का विवेचन एव मूल्याकन करना इस साहित्य के राष्ट्रीय-स्वरूप के प्रति अन्याय करना है।

सत्रहवी-अठारहवीं शताब्दी का गुरुमुखी-हिन्दी साहित्य तत्कालीन स्वस्थ राष्ट्रीय प्रवृत्ति—सास्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक स्वातन्त्र्य—का प्रतिनिधि है। यह अपने ढग से रीति-प्रेरित कृत्रिमता और शृंगार-प्रेरिता रुग्णता का विरोध करता है। यह साहित्य आकार मे इतना नगण्य और भाव एव कलागत सौष्ठव से इतना कोरा नही कि हिन्दी-साहित्य की प्रवृत्तियो के अध्ययन में इसे दृष्टि से ओझल किया जाना न्याय-सम्मत प्रतीत हो।

इस साहित्य का सम्यक् अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि हिन्दी साहित्य केवल प्रादेशिक साहित्य नहीं है। 'केन्द्रीय भाषा' का व्यवहार केवल 'मध्य देश के साहित्यिक प्रयत्नों के लिए' ही नहीं होता रहा। पजाब के गुरुदास, हृदयराम गुरु तेग़बहादुर, गुरु गोविंदसिह, आनन्दपुरीय कवि, सेनापति, अणीराय, अमृत राय, गुरदास गुणी, राजाराम, गुलाबसिह, सभी अमिश्रित केन्द्रोन्मुख, हिन्दी लिखने के लिए कृतसकल्प हैं। अतः 'राजस्थान और पजाब प्रदेश की पश्चिमी सीमा' तक व्याप्त 'एक बहुत विशाल प्रदेश की साहित्य-भाषा' हिन्दी की प्रवृत्तियो के अखण्डित परिचय के लिए पजाब-प्रदेश मे रचित साहित्य का अनुशीलन परमावश्यक है।

परिशिष्ट (१)

सहस्रनाम (रामायण) से—

तब श्री रामचन्द सुग्रीव को बुलाय करि कह्या—आज सीता की खबरि पाई है। तू अबि अपने लसकरि एकठे करि जे नगारु दे करि हम रावनि ऊपरि चढ़हि। तब राजे सुग्रीव राजे रामचदि पास बेनती करी जि महाराजि अठासीह पदमि तेरी चौकी सदा हजूरि रहते हैं। अरु जो हाजर नाही तिन को भी बुलावता हो। तब राजे सुग्रीव रिछि बतरा को सेवक पठाए सब आइ हाजर होवहु। तब रिछि अरु बतर इतने आइ इकठे भए जि गिणती कछु आवै नाही। तब श्री रामचदु रिछि बतरा का पैंदल जोडि करि कै काधि नगरी ते चलै। आवते आवते समुद्रि के कठे ऊपरि आइ डेरा दिया। सौ जोजना समुद्र का पेटु था। समुंद्रि को लघे सो लका ते

पारि जाए। तब स्री रामचंदि बनरा को कह्या जि समुंद्र बांधने का जतन कीजियें।[1]

सहस्रनाम (महाभारत) से—

जब एह बाति रुकमनी सुनी। तब जैसे कागदि ऊपरि पूतरी होती है। रुकमनी तैसे ही होय गई। अरु भैं चक्रित रही। जानियें जि बाल मृगनी डारि ते बिछुरी है। चहु दिसा को लागी झाकने। अरु बदन रुकमनी का मलीन होय गैग्रा। जैसा कवल टूटा होग्रा कुमलाइ जाता है। अरु प्रेमि के रसि साथ जि नैन भरे थे से जल भरि आए जैसे गुदरि कमल के ऊपरि ग्रोमि के क्णिके आइ ठहरावते हैं। अरु प्रभात को भवरि जाइ बैठते है। अरु कमलि को डुलावते है। अर मोतिया की न्याई ग्रोमि के किणके गिर गिर पड़िते हैं। तैसे ही कुमलि जि है रुकमनी के नेत्र अरु उसि के जल की न्याई जि भर भरि आए हैं। अरु नेत्रो के विखे जो स्यामता है सेई भउरि है। तिना नेत्रा बीजि बूदा गिर गिर पडतिया है सु मानउ मोती की बरखा होती है। तब सखिया रुकमनी को लागिया पूछने जि है बाला नैना के विखें पानी क्यो है। तउ उनिको टहलाय करि कह्या जि पुहपा की पखुडी नेत्रां के विखे उडि पडी है। तब उनि को मधुरि कमनु वचना साथि कहती है। अरु छपावती है।[2]

परिशिष्ट (२)

सेवापंथी गद्य

(१) किसी बादशाह ने इक साहिब लोक को अपनी ओर बुलाया सी[3] जो दया कर के दर्शन दे जावहु। तब साहिब लोक अपना मूंह काला करकै बादशाह को आइ मिल्या। फिर बादशाह कह्या जो जी तुमहु ने इहु क्या किया। तब साहिब लोक कह्या जो अतीत फकीर होइ कै मायावानहुँ के दरवाजे जाता है तिसका परलोक विखे परमेशर मूंह काला करता है। ताते मैं इहु गनी, जो मेरा मूंह परमेशर को काला ना करना पडे हुउं भी मायावान के दरवाजे जाता हौं क्यो। फिर बादशाह कह्या जो जो परमेशर मूंह काला किस निमित करता है, अतीतां का। सो बिचार मुझ सुनाइये। तब साहिब लोक बादशाह को इहं बिचार समझाया। परमेशर कहता है रे भेखधारी तैं मेरा अतीत फकीर कहाया। तू ऐसे नीचो का मुहताज क्यो जाइ हुआ। उनके पास जो कुछ धन सपता थी सो भी मेरी दई हुई थी अर सदा ही बेनतियां[4] करकै मेरे ही पासो पदारथ मांगते हैं। मुहताजो के आगे मुहताज जाइ होवणा, एह तुमारी परम भूल है।

—सहजराम कृत आसावरियाँ (प्रकाशित), पृ० ७

१. सहस्रनाम (पाण्डुलिपि), पृ० १८०।

२. सहस्रनाम (पाण्डुलिपि), पृ० २३२।

३. सी=था।

४. बेनतयां (बेनती=विनती) का बहुवचन।

ग्रन्थ-सूची

हस्तलिखित ग्रन्थ :

१. अज्ञात , गुरबिलास, पातशाही छठी , सि० रे० ला०, अमृतसर, ६०।११६४।

२ अज्ञात , विवेक सार , महन्त नारायण सिंह, अमृतसर।

३ अनेमी, दयाल , ज्ञान बोधिनी, सेंट्रल लायब्रेरी, पटियाला।

४. अलाल कुइरसिंह, गुर बिलास , सि० रे० ला०, अमृतसर , ५२।११५१।

५. कृष्ण दास, भगवत गीता , सि० रे० ला०, अमृतसर , ४१।१०५१।

६ कृष्ण दास, भागवत पुराण, दशम स्कन्ध, सि०रे० ला०, अमृतसर, ४२।१०६६।

७. कृपाराम, श्रीमदभागवत् सि०रे० ला०, अमृतसर, १३७।२५६८—१५०।२६११

८. केशवदास, अमर सिंह की वार, मोती महल लाइब्रेरी, पटियाला।

६. केशवदास, बारामाह, श्रीकृष्ण जी की, मोती महल लाइब्रेरी, पटियाला।

१०. गग , कवित्त हीर राझन के, सिक्ख रेफ़ेंस लाइब्रेरी, अमृतसर; २१२।४२६३।

११. गग , कवित्त हीर राझन के, सेंट्रल लाइब्रेरी, पटियाला ; ५२५।

१२. गुरदास, वारां ते कवित्त सवैये, सि०रे०ला०, अमृतसर: १५।७३६, ७५।१३६१।

१३ गुरदास गुणी , कथा हीर राझन की ; सि०रे०ला०, अमृतसर , ७०।१५६३।

१४. गोविन्दसिंह, कृष्णावतार, सि०रे०ला०, अमृतसर, ७३।१५७६, २७५।५०४३।

१५ गोविन्दसिंह चरित्रोपाख्यान , सि० रेफ़ेंस लाइब्रेरी, अमृतसर, ४६।११०५, २७६।५०४८, २७७ ५०४५।

१६ गोविन्दसिंह , दशम ग्रंथ , सि० रे० ला०, अमृतसर, ६५।२०६५।

१७ गोविन्दसिंह, गुरु, परचियां प्रेम भगतां दियां, सिक्ख रेफ़ेंस लाइब्रेरी, अमृतसर, ११३।२३२२। यह पुस्तक प्रेम अम्बोध के नाम से भी प्रसिद्ध है।

१८ गोविन्दसिंह, गुरु; पर्याय दशम पातशाह जी के ग्रंथ साहिब जी के, सिक्ख रेफ़ेंस लाइब्रेरी, अमृतसर, १८४।३३७८।

१६. गोविन्दसिंह, गुरु, सर्वलोह, १८०।३२६१, १८१।३२६२, १८२।३२६२।

२०. छिब्बर सतदास ; जन्म साखी नानक शाह की, सि० रे० ला०, अमृतसर, १६१।१६७३।

२१. छिब्बर, केसरसिंह , बसावलीनामा दसां पातशाहियां दा, १८३६ वि० (१७८० ई०)।

२२. टहकन, अश्वमेध (भाषानुवाद) ; सि० रे० ला०, अमृतसर ; १६।७४१ ; १५४।२६४१।

२३. दयाल अनेमी, अज्ञान बोधनी, सि० रे० ला०, अमृतसर; ४०।८०२।

२४. दुग्गल, राजा राम ; सूर रभावती, सि० रे० ला०, अमृतसर; ६६।१५६३

३ अर्जुन देव, गुरु (सम्पादक), आदि ग्रन्थ, शिरोमणि गुरद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर, १९५१ (गुरमुखी)।

४ अर्जुन देव, गुरु (सम्पादक), आदि ग्रंथ, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर, १९५१ (देवनागरी)।

५. अशोक, शमशेर सिंह, पंजाब दियाँ लहराँ, कविराज नारायण सिंह वल्लभ, न्यामत पुरी, १९५४।

६. अशोक, शमशेर सिंह, पैप्सू का प्राचीन हिन्दी साहित्य (पैप्सू में हिन्दी की प्रगति में संकलित), पैप्सू प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पटियाला, १९५६।

७ अशोक, शमशेर सिंह, प्राचीन जंगनामे, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर, १९५०।

८ कान्ह सिंह, गुरु छन्द दिवाकर, दरबार नाभा, १९२४।

९. कान्ह सिंह, गुरमत प्रभाकर, खालसा ट्रैक्ट सोसाइटी, अमृतसर, १९१२।

१०. कान्ह सिंह, गुरु शब्द रत्नाकर, दरबार पटियाला, १९३० (चार भाग)।

११ कोहली, सुरेन्द्र सिंह, पंजाबी साहित दा इतिहास, लाहौर बुक शाप, लुधियाना १९५३।

१२. गणेशासिंह, महन्त, भारत मत दर्पण, (लेखक द्वारा प्रकाशित), अमृतसर, १९२६।

१३. गुरुदास, भाई, कवित्त सवैये, प्रथम स्कन्ध, संपादक और टीकाकार ज्ञानी बिशन सिंह, जवाहर सिंह, कृपाल सिंह, अमृतसर, १९५२।

१४ गुरुदास, भाई, कवित्त भाई गुरुदास, द्वितीय स्कन्ध, संपादक और टीकाकार भाई वीर सिंह, खालसा समाचार, अमृतसर, १९५०।

१५ गुरुदास (भाई), वाराँ भाई गुरुदास, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर, १९५२।

१६ गोविन्द सिंह, गुरु, दसम ग्रंथ, जवाहर सिंह कृपाल सिंह अमृतसर, संवत् २०१३ (दो भाग)।

१७ गौड, रामदास, हिन्दुत्व, शिव प्रसाद गुप्त, सेवा-उपवन, काशी, स० १९९५।

१८ घासीराम (प०), महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित (दो भाग), आर्य साहित्य-मण्डल, लिमिटेड, अजमेर, संवत् १९९०।

१९ जोध सिंह, गुरमति निर्णय, लाहौर बुक शाप, लुधियाना, तृतीय संस्करण (मुद्रण तिथि नहीं दी गई)।

२० ज्ञान सिंह ज्ञानी, निर्मल पंथ प्रदीपिका, गुरु गोविन्दसिंह प्रेस, सियालकोट, १८९१ ई०।

२१ ज्ञान सिंह, ज्ञानी, पंथ प्रकाश, खालसा ट्रैक्ट सोसाइटी, अमृतसर, पंचम संस्करण।

२२. तेजा सिंह और सहयोगी ; शब्दार्थ श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी ; शिरोमणि गुरद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर ; १९५६ (पोथी ३, ४)।
२३. तेजा सिंह और सहयोगी ; शब्दार्थ श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी ; शब्दार्थ गुरबाणी ट्रस्ट, लाहौर ; १९४४ (पोथी १७२)।
२४. दयानन्द सरस्वती (स्वामी) ; सत्यार्थ प्रकाश; सार्वदेशिक प्रकाशन लिमिटेड, दरियागंज, दिल्ली ; सं० २०१४ वि०।
२५. दयाल सिंह (महन्त) ; निर्मल पंथ दर्शन (प्रथम भाग) ; कर्ता, लछमन सर, अमृतसर ; संवत् २००९ वि०।
२६. दर्दी, गोपाल सिंह (डा०) ; गुरु ग्रंथ साहिब दी साहित्तक विशेषता ; पंजाबी ऐकाडेमी, दिल्ली ; १९५८।
२७. दर्दी, गोपाल सिंह (डा०) ; पंजाबी साहित्त दा इतिहास ; जसवंत पब्लिकेशन्स दिल्ली, १९५२।
२८. द्विवेदी, हजारीप्रसाद (डा०) ; हिन्दी साहित्य ; अतर चन्द कपूर एण्ड सन्ज, दिल्ली, १९५२।
२९. नारायण सिंह ; स्त्री बचित्र नाटक सटीक ; बूटा सिंह, प्रताप सिंह, अमृतसर ; तिथि नहीं दी गई।
३०. नाहर सिंह ; नामधारी इतिहास ; कर्त्ता नंगल ग्राम, लुधियाना ; १९५५।
३१. निर्मला, गुलाब सिंह ; प्रबोध चद्रोदय, ऐंग्लो संस्कृत प्रेस, लाहौर, १९५१ वि० (१८९४ ए० डी०)।
३२. निर्मला, गुलाब सिंह ; अध्यातम रामायण ; राय साहिब मुन्शी गुलाब सिंह ; लाहौर ; १९०६।
३३. निर्मला, गुलाब सिंह ; प्रबोध चन्द्रोदय, साधू ज्वाला दास (टीकाकार), जेहलम ; १९०५।
३४. प्रीतम सिंह (सम्पादक) ; पारस भाग, लाहौर बुक शाप, लुधियाना; १९५२।
३५. बुध सिंह, बावा ; प्रेम कहानी ; लाहौर बुक शाप, लाहौर ; तिथि नहीं दी गई।
३६. बुध, सिंह बावा ; कोइल कूक ; लाहौर बुक शाप, लुधियाना ; १९४९।
३७. बुध सिंह, बावा ; बंबीहा बोल ; फुतवाड़ी प्रेस, अमृतसर; १९३०।
३८. बुध सिंह (बावा) ; हंस चोग ; लाहौर बुक शाप, लुधियाना।
३९. भारती, धर्मवीर ; सिद्ध साहित्य ; किताब महल, इलाहाबाद; १९५५।
४०. मनीसिंह, भाई ; जन्म साखी गुरु नानक जी की ; संस्कृत बुक डिपो, लाहौर ; १८९४।
४१. मिश्र, जयराम ; श्री गुर ग्रंथ साहिब के दार्शनिक सिद्धांत, टंकित पाण्डुलिपि, १९५८।
४२. मोहन सिंह (डा०), पंजाबी अदब दी मुख्तसर तारीख ; लिखारी बुक डिपो, अमृतसर, १९४८।
४३. मोहन सिंह (डा०) ; बुल्हे शाह ; पंजाब यूनीवर्सिटी, लाहौर, १९३० ई०।
४४. रन्धावा, ऐम० ऐस० ; प्रीत कहाणियाँ ; हिन्द पब्लिशर्ज, १९५७।

४५ रणधीर सिंह, श०द मूरति, सिक्ख हिस्टरी सोसाइटी, अमृतसर, सवत् २०१२ वि०।
४६ रणधीर सिंह (सम्पादक), सिक्ख इतिहास दे प्रतक्ख दर्शन अर्थात् इतिहासक सोमे, (प्रथम भाग), शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर, सवत ४८८ नानकशाही।
४७ रूप हरिन्दर सिंह भाई गुर दास।
४८ लालचन्द, सन्त सो सा रत्न माल, वज़ीर हिन्द प्रेस, अमृतसर, १९२४।
४९ शान, हरनाम सिंह सम्सी हाशम, पजाबी साहित्त अकाडमी, लुधियाना, १९५६।
५०. विविध, गुर प्रणालियाँ, सिक्ख हिस्ट्री सोसाइटी अमृतसर, स० ४८३ नानकशाही (गुरुओं की जीवन तिथियाँ)।
५१ शैल कुमारी, आधुनिक हिन्दी-काव्य मे नारी भावना हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १९५१।
५२ सत रैण श्री सत रण ग्रथावली (प्रथम भाग), श्री सतरैणाश्रम, भूदन, १९५३।
५३ सतोखसिंह भाई, गुरप्रताप सूर्य ग्रथ, खालसा समाचार, अमृतसर, १९२६ ३४।
५४ सतोख सिंह भाई, गुरप्रताप सूर्य ग्रन्थ, कैक्सटन प्रेस, लाहौर (तिथि नही दी गई)।
५५ सपूरण सिंह, सत, जीवन भाई गुरुदास, गुरमत ट्रैक्ट सोसाइटी, लाहौर, १९३०-३१।
५६. सहज राम (भाई), आसावरियाँ, महन्त हीरासिंह, पटियाला, १९५५।
५७ साहिब सिंह, टीकाकार, आसा दी वार (सटीक), साहिब सिंह, शहीद मिशनरी कालेज अमृतसर, १९५३।
५८ साहिब सिंह, कुछ और धार्मिक लेख, लाहौर बुक शाप, लाहौर, १९४६।
५९ साहिब सिंह, सवत्त दा भला, साहिब सिंह खालसा कालेज, अमृतसर, १९५१।
६० साहिबसिंह (टीकाकार) सिद्ध गोसटि (सटीक), लाहौर बुक शाप, लुधियाना, १९५३।
६१ सुक्खा सिंह, गुरु बिलास, रामचन्द मानक टाहला, लोहारी गेट, लाहौर, सवत् १९६९।
६२ सेनापति, गुरु शोभा, नानक सिंह, कृपाल सिंह, अमृतसर, १९२५।
६३ हृदयराम, हनूमान नाटक, कैक्सटन प्रेस, लाहौर, सवत ४२८ नानकशाही।

अग्रेजी

1 Ashta Dharm Pal (Dr) *The Poetry of Dasam Granth*, Author; 6 Jorbagh Road, New Delhi, 1958 59

2 Kohli, Surrinder Singh (Dr), *A Critical Study of Adi Granth* Typed Manuscript, 1958

3 Cunnigham, *History of the Sikhas*, S Chand & Co, Delhi

4 Forester, G, *A journey from Bengal to England*, London, 1798

5 Ganda Singh *Banda Singh Bahadur*, Sikh History Research Department, Khalsa College, Amritsar, 1935

6 Lajwanti Rama Krishna, *Punjabi Sufi Poets*, Oxford University Press, 1938

7 Latif, *History of the Punjab*, Calcutta, 1819

8 Macauliffe, Max Arthur, *The Sikh Religion*, (6 Volumes) Oxford, 1909

9 Malcolm, John, *Sketch of the Sikhs*, London, 1812

10 Mohan Singh, (Dr), *An Introduction to Punjabi Literature*, Nanak Singh Pustak Mala, Amritsar, 1951

11 Mohan Singh (Dr) *History of Punjabi Literature*, Kasturi Lal & Sons, Amritsar

12 Narang, Sir Gokul Chand, *Transformation of Sikhism*, New Book Society of India, New Delhi, 1950

13 Teja Singh & Ganda Singh, *A Short History of the Sikhs*, Orient Longmans, Bombay, 1950

14 Temple Rc, Capt *The Legends of the Punjab*, Bombay, 1884 86